

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्

टीकाकार : पं० पद्मनाभ शर्मा

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
372

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्

'भावबोधिनी'-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार
पं. पद्मनाभ शर्मा
ज्यौतिषविभागाध्यक्ष
श्री नेपाली संस्कृत महाविद्यालय
मंगलागौरी, वाराणसी



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के-37/117 गोपाल मंदिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
पुनर्मुद्रित संस्करण : 2009
मूल्य : 250.00

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली न. 21-ए, अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली - 110002
दूरभाष: (011) 32996391,23286537, फैक्स: (011) 23286537



चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38. यू. ए. बंग्लो रोड़, जवाहर नगर,
पोस्ट बॉक्स न. 2113, दिल्ली - 110007



चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069, वाराणसी-221001

मुद्रक
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

प्रस्तावना

विश्व वाङ्मय का आरम्भ वेद से होना असन्दिग्ध है और उस वेदरूपी पुरुष के अंगभूत छः शास्त्रों–शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष में चक्षुरूप ज्यौतिषशास्त्र का स्थान निर्धारित किया गया है—**ज्यौतिषं नेत्रमुच्यते**। स्पष्ट है कि सभ्य समाज में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्धारण करने में शास्त्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है; अतः समाज के चक्षुरूप में शास्त्रों का स्थान प्रथमतः आता है। उन शास्त्रों का चक्षु वेद है और उसका भी चक्षु 'ज्यौतिष' है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार नेत्रहीन पुरुष स्वकार्य-सम्पादन में सर्वथा असमर्थ होता है, उसी प्रकार ज्यौतिषज्ञानविहीन पुरुष भी स्वकीय कर्त्तव्यों के निर्धारण में पूर्णतः अशक्य होता है। इसीलिए कहा भी गया है कि—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्॥

'ज्यौतिष' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है ? यह जिज्ञासा प्रथमतः उपस्थित होती है। इस जिज्ञासा का शमन साधारणतया ज्यौतिष शब्द की व्युत्पत्ति–**ज्यौतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकं शास्त्रम्** से किया जा सकता है। फिर भी स्पष्टबोध हेतु निम्न कथन द्रष्टव्य है—

विफलान्यन्यशास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्यौतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥

आशय यह है कि ज्यौतिष के अतिरिक्त समस्त शास्त्र **ननु, न च** के द्वारा सभी विषयों में मात्र विवाद को ही उत्पन्न करने वाले सिद्ध होते हैं। एकमात्र ज्यौतिषशास्त्र ही स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष शास्त्र है; साक्षात् सूर्य और चन्द्र इसके साक्षीस्वरूप हैं।

मानव-व्यवहार के साधनीभूत तथा कालगणना के स्वाभाविक प्रमाणभूत दिन, मास और वर्ष आकाशीय चमत्कारों पर आधारित हैं और वे आकाशीय चमत्कार भी सूर्य और चन्द्र के ऊपर अवलम्बित होते हैं। इन सूर्य, चन्द्र, तारा आदि ज्योतिष्पिण्डों का प्रदर्शक होने के कारण ही प्रकृत शास्त्र को 'ज्यौतिषशास्त्र' के नाम से जाना जाता है।

इस ज्यौतिषशास्त्र का प्रादुर्भाव कब हुआ ? इस विषय में इदमित्थन्तया कुछ भी कहना सम्भव नहीं है, फिर भी इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि प्रकृत सृष्टि के अस्तित्व-ग्रहण के साथ ही साथ किसी न किसी रूप में इस शास्त्र ने भी अस्तित्व ग्रहण कर लिया होगा। यतः मानवी सृष्टि को अपनी बुभुक्षा के शमन हेतु प्रथमतः उपलब्ध साधन (कृषि) था और उस कृषिकार्य के सम्पादनार्थ ऋतुओं का ज्ञान आवश्यक था; उन ऋतुओं का ज्ञान सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति जाने विना होना सम्भव नहीं था और उस सूर्य-चन्द्र का विवेचक शास्त्र ज्यौतिषशास्त्र ही है, अन्य कोई नहीं।

यह तो हुई समग्र विश्व की बात। भारतीय दृष्टिकोण से भी यदि देखा जाय तो

ज्यौतिष शास्त्र सृष्टिकालीन ही सिद्ध होता है; क्योंकि भारतीय वाङ्मय के अनुसार सृष्टि के अस्तित्व- धारण करते ही यज्ञ-यागादि भी अस्तित्व ग्रहण कर चुके थे। उन यज्ञों को करने हेतु विशिष्ट समयों का ज्ञान सर्वथा अपेक्षित था और यज्ञसम्पादन-हेतु 'समय की शुद्धि' एक आवश्यक तत्त्व था। यत: नक्षत्र, तिथि, पक्ष, मास, ऋतु, संवत्सर आदि के स्पष्ट ज्ञान के अभाव में विधिपूर्वक यज्ञसम्पादन कर पाना सम्भव ही नहीं है; इसीलिए ज्यौतिष-शास्त्र का प्रचलन में होना ध्रुव सत्य है। हाँ, यह हो सकता है कि इसका दृश्य स्वरूप कुछ और रहा हो; लेकिन इसका अस्तित्व तो था ही। इस सम्बन्ध में भारतीय ज्यौतिषशास्त्र के सर्वप्रथम ग्रन्थ लगधप्रणीत वेदाङ्गज्यौतिष का निम्न श्लोक भी द्रष्टव्य है—

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ता: कालादि पूर्वा विहिताश्च यज्ञा: ।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्यौतिषं वेद स एव यज्ञम् ॥

इस ज्यौतिषशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में अट्ठारह आचार्यों का नामत: उल्लेख प्राप्त होता है; वे हैं—सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पुलिश, च्यवन, यवन, भृगु एवं शौनक। इस सन्दर्भ में काश्यप का निम्न वचन उल्लेखनीय है—

सूर्य: पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रि: पराशर: ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा: ॥
लोमश: पौलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगु: ।
शौनकोऽष्टादशाश्चैते ज्योति:शास्त्रप्रवर्त्तका: ॥

यह ज्यौतिषशास्त्र तीन भागों में विभक्त है—सिद्धान्त, संहिता एवं होरा। प्रथमत: पठित 'सिद्धान्त भाग' ही भारतीय ज्योतिष का पहला भाग है। यह भाग मुख्यत: गणित शास्त्र का प्रदर्शक है। ज्योतिषीय गणित के सर्वप्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्तादि पाँच सिद्धान्त हैं, जो कि अपौरुषेय माने जाते हैं। वराहमिहिर ने अपनी पञ्चसिद्धान्तिका में **पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहास्तु पञ्चसिद्धान्ता:** कहकर इनका उल्लेख किया है, किन्तु ये सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते। वर्तमान में सिद्धान्त भाग से सम्बन्धित जो पाँच सिद्धान्तग्रन्थ उंपलब्ध होते हैं, वे हैं—सूर्यसिद्धान्त, सोमसिद्धान्त, वसिष्ठसिद्धान्त, रोमशसिद्धान्त और शाकल्यसंहितोक्त ब्रह्मसिद्धान्त। सिद्धान्तशिरोमणि भी इसका अत्यन्त प्रतिष्ठित ग्रन्थ है।

ग्रहों की तात्कालिक स्थितिवश सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, लाभ-हानि आदि राष्ट्रविषयक शुभाशुभ फलों का निर्देश करने वाले भाग को 'संहिता भाग' के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में यही स्कन्ध प्रमुख माना जाता था और इसीलिए इस भाग के लेखक आचार्यों के रूप में काश्यप, देवल, गर्ग, पराशर, वसिष्ठ आदि के नामों की एक लम्बी शृंखला प्राप्त होती है। यद्यपि उनके ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं होते; परन्तु उद्धरण जरूर उपलब्ध होते हैं। सम्प्रति वराहमिहिरप्रणीत 'बृहत्संहिता' ही इस भाग का प्रमुख ग्रन्थ है।

मानवों के जन्मकालीन ग्रहस्थिति या तिथि-नक्षत्रादि द्वारा उनके जीवन में घटित होने

वाले अतीत, भविष्य तथा वर्तमान के सुख-दु:खादिकों का ज्यौतिष की जिस शाखा द्वारा निर्धारण किया जाता है, उसे 'होराशास्त्र' के नाम से जाना जाता है। इसे ही 'जातक ग्रन्थ' भी कहते हैं। अरबी भाषा से अनूदित ताजिक शास्त्र भी इसी के अन्तर्गत आता है। इस होरा तथा मुहूर्त आदि का संयुक्त अभिधान 'फलित ज्यौतिष' है। इस भाग का सम्प्रति उपलब्ध सर्वप्राचीन ग्रन्थ वराहमिहिरप्रणीत बृहज्जातक ही है।

इस होरा या जातक शास्त्र की प्रक्रिया शुद्ध वैज्ञानिक है। किस लग्न में उत्पन्न मनुष्य के क्या लक्षण होंगे, उसके शरीर का विचार कुण्डली के किस स्थान से किया जायेगा, इत्यादि का निर्धारण इस शास्त्र में किया गया है। उदाहरणार्थ जातक की पत्नी से सम्बन्धित समस्त विचार सप्तम स्थान से एवं राजा से सम्बन्ध रखने वाली अधिकांश बातों का विचार दशम स्थान से करना चाहिए। लग्नकुण्डली में होने वाले सभी बारहों स्थानों के नाम निर्धारित कर दिये गये हैं और वे हैं—तनु, धन, सहज, सुहृत्, सुत, रिपु, जाया, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय। मनुष्य के बारे में फलादेश अधिकांशत: इस लग्नकुण्डली द्वारा ही किया जाता है। कभी-कभी राशिकुण्डली द्वारा भी फलादेश किया जाता है। लग्नकुण्डली से राशिकुण्डली में अन्तर यह है कि लग्नकुण्डली में प्रथम स्थान में जन्मकालीन लग्न की राशि का अंक लिखा जाता है; जबकि राशिकुण्डली में जन्मराशि लिखी रहती है। शेष बातें दोनों में ही समान होती हैं।

नारद और वसिष्ठ के पश्चात् फलित ज्यौतिष के क्षेत्र में 'महर्षि' का पद प्राप्त करने वाले पराशर ही हुए हैं। इस प्रकार भारतीय ज्यौतिष के प्रवर्तकों में महर्षि पराशर अग्रगण्य हैं—यह नि:सन्दिग्ध है। इसीलिए कहा भी गया है—**कलौ पाराशरः स्मृतः ।** स्पष्ट है कि वर्तमान कलियुग में पराशरकृत होराशास्त्र ही सर्वोपकारक शास्त्र है। 'अहोरात्र' शब्द दिन और रात्रि का बोधक है। इसी शब्द के आदि और अन्तिम अक्षर का लोप होकर 'होरा' शब्द की उत्पत्ति हुई है; जैसा कि कहा भी गया है—

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्।

बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रणेता महर्षि पराशर ने अतीत के किस कालखण्ड एवं स्थान को अपनी उपस्थिति से अलंकृत किया, इस पर निश्चितरूपेण कुछ भी कहना सम्भव नहीं है; किन्तु इनकी रचना एवं अन्य साक्ष्यों का आकलन करने पर यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि ये बृहज्जातक के प्रणेता वराहमिहिर के पूर्ववर्ती थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में पराशर को उद्धृत किया है। पराशर के नाम से एक स्मृति भी उपलब्ध है, जिसकी चर्चा गरुडपुराण में भी मिलती है। पराशर ने मनु, उशना, बृहस्पति आदि का नामोल्लेख किया है। बृहदारण्यकोपनिषद् और तैत्तिरीयारण्यक में भी पराशर का उल्लेख किया गया है। यास्क ने अपने निरुक्त में पराशर का उल्लेख करते हुए इन्हें शक्तिपुत्र कहा है। अग्निपुराण इन्हें स्पष्टत: 'शक्ति' नामक पिता का पुत्र घोषित करता है। इन्हीं पराशर का उल्लेख महाभारत में किया गया है, जिनके पुत्र के रूप में व्यास का उल्लेख प्राप्त होता है। बृहज्जातक के रचयिता वराहमिहिर ने इन्हीं शक्तिपुत्र पराशर को प्रकृत होराशास्त्र का प्रवर्त्तक स्वीकार किया है। वराहमिहिर का प्रादुर्भाव पाँचवीं शताब्दी में हुआ था—ऐसा

ऐतिह्यविद् स्वीकार करते हैं। स्पष्ट है कि पराशर वराहमिहिर से पूर्व रहे होंगे और इनको ईसापूर्व का मानना ही युक्तिसंगत है।

ज्यौतिषशास्त्र से सम्बद्ध पराशरप्रणीत पाराशरी के दो रूप उपलब्ध होते हैं— लघुपाराशरी और बृहत्पाराशरी। लघुपाराशरी दैवज्ञों में अत्यन्त ही आदरणीय लघुकाय ग्रन्थ है। पराशरप्रणीत पाराशरी के मूल स्वरूप के विषय में बृहज्जातक के टीकाकार भट्टोत्पल के **पाराशरीया संहिता केवलमस्माभिर्दृष्टा, न जातकम्। श्रूयते स्कन्धत्रयं पराशरस्येति। तदर्थं वराहमिहिरः शक्तिपूर्वैरित्याह** वचन से मात्र इतना ही ज्ञात होता है कि पराशरप्रणीत ज्यौतिष के तीनों स्कन्ध उस युग में सुने जाते थे, लेकिन उपलब्ध केवल 'पाराशरी संहिता' ही थी। 'पराशरतन्त्र' के नाम से भट्टोत्पल ने जो उद्धरण प्रस्तुत किये हैं, उनका विषय तन्त्र अर्थात् सिद्धान्त ज्यौतिष से कम और संहिता से अधिक साम्य रखता है।

प्रकृत बृहत्पाराशरहोराशास्त्र का मूल अभिधान सम्भवतः पाराशरहोराशास्त्र ही रहा होगा और बाद में लोगों ने इसकी विशालता को देखते हुए 'बृहत्' विशेषण से विभूषित कर दिया होगा। यह एक श्रुतपरम्परा से प्राप्त ग्रन्थ है। तत्कालीन समाज में मुद्रण एवं लेखन व्यवस्था का नामोनिशान तक नहीं था और पठन-पाठन की व्यवस्था केवल स्मरण-शक्ति पर आधारित थी। किसी भी ग्रन्थ का अस्तित्व गुरु-शिष्य परम्परा पर ही अवस्थित था। ऐसी स्थिति में पाठान्तर या पाठ में न्यूनाधिकता का होना सर्वथा स्वाभाविक है। यह भी सम्भव है कि प्रकृत ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों में भी पाठान्तर या पाठ में न्यूनाधिकता प्राप्त हो; लेकिन इससे यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक संस्करण पराशरप्रणीत है और अमुक संस्करण किसी अन्य के द्वारा प्रणीत है। फिर भी इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के सम्प्रति उपलब्ध संस्करणों में से प्रकृत संस्करण के स्वरूप को दैवज्ञों द्वारा सर्वाधिक प्रामाणिक स्वीकार किया जाता है।

बृहदाकृति वाला यह ग्रन्थ ९९ अध्यायों में निबद्ध है। प्रथम दो अध्याय सृष्टि-प्रक्रिया एवं विभिन्न अवतारों से सम्बन्धित हैं। तत्पश्चात् ग्रहगुणस्वरूप, राशिस्वरूप, ज्ञान, वर्णददशा, षोडशवर्ग, वर्गविवेक, राशिदृष्टि, अरिष्ट, अरिष्टभङ्ग, भावविवेक, तनुभाव, धनभाव, सहजभाव, सुखभाव, पञ्चमभाव, षष्ठभाव, जायाभाव, आयुर्भाव, भाग्यभाव, कर्मभाव, लाभभाव, व्ययभाव, भावेशफल, अप्रकाशग्रहफल, ग्रहस्फुटदृष्टि, स्पष्टबल, इष्टकष्ट, पद, उपपद, अर्गला, कारक, कारकांशफल, योगकारक, नाभसयोग, विविधयोग, चन्द्रयोग, सूर्ययोग, राजयोग, राजसम्बन्धयोग, विशेष धनयोग, दारिद्र्ययोग, आयुर्दाय, मारकभेद, ग्रहावस्था, दशा, कालचक्रदशा, दशाफल, विशेषनक्षत्रदशाफल, कालचक्रदशाफल, चरादिदशाफल, अन्तर्दशा, सूर्यदशान्तर्दशाफल, चन्द्रान्तर्दशाफल, भौमदशान्तर्दशाफल, राह्वन्तर्दशाफल, जीवान्तर्दशाफल, शन्यन्तर्दशाफल, बुधान्तर्दशाफल, केत्वन्तर्दशाफल, शुक्रान्तर्दशाफल, प्रत्यन्तर्दशाफल, सूक्ष्मान्तर्दशाफल, प्राणदशाफल, कालचक्रान्तर्दशाफल, कालचक्रनवांशदशाफल, अष्टकवर्ग, त्रिकोणशोधन, एकाधिपत्यशोधन, पिण्डसाधन, अष्टकवर्गफल, अष्टकवर्गायुर्दाय, समुदायाष्टकवर्ग, रश्मिफल, सुदर्शनचक्रफल, पञ्चमहा-

पुरुषलक्षण, पञ्चमहाभूतफल, सत्त्वादिगुणफल, नष्टजातक, प्रव्रज्यायोग, स्त्रीजातक, अङ्ग-लक्षणफल, तिलादिलाञ्छनफल, पूर्वजन्मशापद्योतन, ग्रहशान्ति, अशुभजन्मशान्ति, दर्श-जन्मशान्ति, कृष्णचतुर्दशीजन्मशान्ति, भद्रावमदुर्योगशान्ति, एकनक्षत्रजननशान्ति, संक्रान्ति-जन्मशान्ति, ग्रहणजननशान्ति, गण्डान्तजननशान्ति, अभुक्तमूलजननशान्ति, ज्येष्ठादि गण्ड-जननशान्ति, त्रीतरजन्मशान्ति एवं प्रसवविकारशान्ति विषयों का क्रमशः तीसरे से अट्ठानबेवें अध्याय तक में विवेचन किया गया है। अन्तिम अध्याय उपसंहाराध्याय है, जिसमें ग्रन्थ में विवेचित अध्यायों का नाम्ना निर्देश किया गया है।

इस प्रकार संहिता और जातक दोनों ही प्रकार के विषयों का प्रकृत ग्रन्थ में सांगोपांग विवेचन किया गया है; परिणामस्वरूप फलित ज्यौतिष के क्षेत्र में यह एकमात्र पूर्ण ग्रन्थ होने का गौरव रखता है। ग्रन्थ के अन्तिम 'उपसंहाराध्याय' में यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्राचीन होराविषयक ग्रन्थों से विलक्षण, अनेक अध्यायों से समन्वित, अतिश्रेष्ठ इस नवीन होराशास्त्र को संसार के कल्याणार्थ महर्षि पराशर ने मैत्रेय को बतलाया। तत्पश्चात् समस्त जगत् में इसका प्रचार-प्रसार हुआ और सभी ने इसे अतिशय आदर प्रदान किया—

इत्थं पराशरेणोक्तं होराशास्त्रचमत्कृतम्।
नवं नवजनप्रीत्यै विविधाध्यायसंयुतम्॥
श्रेष्ठं जगद्धितायेदं मैत्रेयाय द्विजन्मने।
ततः प्रचरितं पृथ्व्यामादृतं सादरं जनैः॥

—उपसंहाराध्याय, श्लोक, ८-९

जातक ग्रन्थों में विलक्षण प्रकृत ग्रन्थ को अत्यन्त सावधानी के साथ सरल एवं सुबोध 'भावबोधिनी' नामक भाषाटीका के द्वारा समलंकृत किया गया है। विषय की दुरूहता एवं सामान्य लोगों को उसकी महती आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए यथास्थान कुण्डलियों एवं चक्रों के द्वारा विषय को पूर्ण स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जिससे पाठक वर्ग एवं दैवज्ञजन को गूढ़ विषय भी सरलतया स्पष्ट हो सकेगा—ऐसा मेरा विश्वास है। आशा एवं विश्वास है कि बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रकृत संस्करण से दैवज्ञ एवं पाठक वर्ग पूर्णतया लाभान्वित होंगे एवं ज्यौतिष जैसे दुरूह शास्त्र में भी अपनी गति बनाने में सफल होंगे।

भावबोधिनी हिन्दी व्याख्या से समलंकृत प्रकृत संस्करण को प्रकाशित कर ज्यौतिष शास्त्रानुरागी जनों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के व्यवस्थापक श्री नवनीतदास जी गुप्त सर्वविध धन्यवादार्ह हैं। साथ ही यह विश्वास है कि श्री गुप्त जी इसी प्रकार अनवच्छिन्न रूप से संस्कृत साहित्य के विविध अंगों से सम्बन्धित विलक्षण ग्रन्थों को स्पष्ट एवं प्रामाणिक स्वरूप में सर्वजनसंवेद्य टीकाओं के साथ प्रकाशित करते हुए पाठकों को सुलभ कराते रहेंगे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, २०६०
वाराणसी

विद्वद्वशंवदः
पद्मनाभ शर्मा

विषय-सूची

चक्रानुक्रमणिका

॥ श्रीः॥

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्

'भावबोधिनी' - हिन्दीव्याख्योपेतम्

अथ सृष्टिक्रमकथनाध्यायः॥१॥

ग्रन्थावतरण

अथैकदा मुनिश्रेष्ठं त्रिकालज्ञं पराशरम्।
पप्रच्छोपेत्य मैत्रेयः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥१॥

किसी समय मैत्रेयजी ने त्रिकालज्ञ (तीनों काल को जानने वाले) महर्षि पराशर के सन्निकट उपस्थित होकर दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़कर पूछा ॥१॥

मैत्रेय उवाच

भगवन्! परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम्।
त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं होरा गणितं संहितेति च ॥२॥
एतेष्वपि त्रिषु श्रेष्ठा होरेति श्रूयते मुने!।
त्वत्तस्तां श्रोतुमिच्छामि कृपया वद मे प्रभो! ॥३॥
कथं सृष्टिरियं जाता जगतश्च लयः कथम्?।
खस्थानां भूस्थितानां च सम्बन्धं वद विस्तरात्? ॥४॥

मैत्रेय ने कहा—हे भगवन्! वेदाङ्गों में सर्वोत्तम एवं परम पुण्यदायक ज्योतिषशास्त्र के होरा, गणित और संहिता—इस प्रकार तीन स्कन्ध हैं। उनमें भी होराशास्त्र सर्वोत्तम है। उसे मैं आपसे सुनना चाहता हूँ। हे प्रभो! मुझे सब बतला दिया जाय। इस संसार की उत्पत्ति कैसे हुई और प्रलय किस प्रकार होता है; साथ ही आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्रों से पृथ्वीस्थित जीव-जन्तुओं का क्या सम्बन्ध है? इत्यादि सभी बातें विस्तारपूर्वक मुझे अवगत करा दें ॥२-४॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र! लोकानुग्रहकारिणा।
अथाहं परमं ब्रह्म तच्छक्तिं भारतीं पुनः ॥५॥
सूर्यं नत्वा ग्रहपतिं जगदुत्पत्तिकारणम्।
वक्ष्यामि वेदनयनं यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ॥६॥
शान्ताय गुरुभक्ताय सर्वदा सत्यवादिने।
आस्तिकाय प्रदातव्यं ततः श्रेयो ह्यवाप्स्यति ॥७॥
न देयं परशिष्याय नास्तिकाय शठाय वा।
दत्ते प्रतिदिनं दुःखं जायते नात्र संशयः ॥८॥

मैत्रेयजी के पूर्वोक्त प्रश्न को सुनकर महर्षि पराशर जी ने कहा कि हे ब्राह्मण ! लोककल्याण-हेतु आपने उत्तम प्रश्न किया है। आज मैं परब्रह्म परमेश्वर और सरस्वती देवी को तथा जगत् को उत्पन्न करने वाले ग्रहों के अधिपति भगवान् सूर्य को प्रणाम करके जिस प्रकार ब्रह्माजी के मुखारविन्द से ज्यौतिष शास्त्र सुना हूँ, उसी प्रकार कहता हूँ। इस शास्त्र का उपदेश शान्त, गुरुभक्त, सदैव सत्य बोलने वाले और आस्तिक को ही देना चाहिए; इसी से कल्याण प्राप्त होता है। परशिष्य, नास्तिक एवं शठजनों को इस शास्त्र का उपदेश नहीं करना चाहिए। इस प्रकार के मनुष्यों को ज्यौतिषशास्त्रोपदेश करने वाला दुःख का भागी होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५-८॥

सृष्टिक्रम

एकोऽव्यक्तात्मको विष्णुरनादिः प्रभुरीश्वरः ।
शुद्धसत्त्वो जगत्स्वामी निर्गुणस्त्रिगुणान्वितः ॥९॥
संसारकारकः श्रीमान्निमित्तात्मा प्रतापवान् ।
एकांशेन जगत्सर्वं सृजत्यवती लीलया ॥१०॥
त्रिपादं तस्य देवस्य ह्यमृतं तत्त्वदर्शिनः ।
विदन्ति तत्प्रमाणं च सप्रधानं तथैकपात् ॥११॥
व्यक्ताऽव्यक्तात्मको विष्णुर्वासुदेवस्तु गीयते ।
यदव्यक्तात्मको विष्णुः शक्तिद्वयसमन्वितः ॥१२॥
व्यक्तात्मकस्त्रिभिर्युक्तः कथ्यतेऽनन्तशक्तिमान् ।
सत्त्वप्रधाना श्रीशक्तिर्भूशक्तिश्च रजोगुणा ॥१३॥

एक अव्यक्तात्मा विष्णु भगवान् जो अनादि, प्रभु, ईश्वर, शुद्ध सत्त्व, जगत्स्वामी, निर्गुण (गुण-रहित) होते हुए भी त्रिगुणों से युक्त, संसार को बनाने वाले, सर्वशक्तिसम्पन्न और सम्पत्ति से युक्त हैं; जो अपने एक अंश से जगत् की सृष्टि और पालन करते हैं; तत्त्वदर्शी महात्मा लोग ही उनके अमृतस्वरूप तीन चरणों को जानते हैं। उनके प्रधान (प्रकृति) सहित एक अंश व्यक्त और अव्यक्त आत्मा, विष्णु, वासुदेवादि कहलाते हैं। जो अव्यक्तात्मा विष्णु हैं, वे दो शक्ति से युक्त हैं और जो व्यक्तात्मा विष्णु हैं, वे तीनों शक्तियों से युक्त अनन्त शक्ति वाले कहे जाते हैं। उन शक्तियों में सत्त्वगुणप्रधान श्रीशक्ति और रजोगुणप्रधान भूशक्ति है ॥९-१३॥

शक्तिस्तृतीया या प्रोक्ता नीलाख्या ध्वान्तरूपिणी ।
वासुदेवश्चतुर्थोऽभूच्छ्रीशक्त्या प्रेरिता यदा ॥१४॥
सङ्कर्षणश्च प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति मूर्तिधृक् ।
तपःशक्त्याऽन्वितो विष्णुर्देवः सङ्कर्षणाभिधः ॥१५॥
प्रद्युम्नो रजसा शक्त्याऽनिरुद्धः सत्त्वया युतः ।
महान् सङ्कर्षणाज्जातः प्रद्युम्नाद्यदहंकृतिः ॥१६॥

तमोगुणप्रधान नीलशक्ति कही जाती है। इन तीनों से अतिरिक्त चतुर्थ वासुदेव जब श्रीशक्ति से प्रेरित होते हैं तो संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस प्रकार तीन मूर्ति धारण

करते हैं। इनमें पुन: संकर्षण प्रभु नीलशक्ति से, प्रद्युम्न रजो-(भू)-शक्ति से और अनिरुद्ध सत्त्वशक्ति से युक्त हैं। संकर्षण से महान् और प्रद्युम्न से अहंकृति की उत्पत्ति होती है ॥

अनिरुद्धात् स्वयं जातो ब्रह्माहङ्कारमूर्तिधृक्।
सर्वेषु सर्वशक्तिश्च स्वशक्त्याऽधिकया युत: ॥१७॥

अनिरुद्ध से अहंकार-मूर्तिधारी स्वयं ब्रह्माजी की उत्पत्ति होती है। पूर्वोक्त शक्तियों के सहित सभी अपनी-अपनी शक्ति से भी संयुक्त होते हैं ॥१७॥

अहङ्कारस्त्रिधा भूत्वा सर्वमेतदविस्तरात्।
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्चेदहंकृति: ॥१८॥
देवा वैकारिकाज्जातास्तैजसादिन्द्रियाणि च।
तामसाच्चैव भूतानि खादीनि स्वस्वशक्तिभि: ॥१९॥

अहंकार के तीन भेद होते हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। इनमें सात्त्विक अहंकार से देवगण, राजस से इन्द्रिय और तामस से पञ्चमहाभूतादि की उत्पत्ति होती है। वे सभी पूर्व शक्ति के सहित अपने-अपने गुणों से भी युक्त होते हैं ॥१८-१९॥

श्रीशक्त्या सहितो विष्णु: सदा पाति जगत्त्रयम्।
भूशक्त्या सृजते ब्रह्मा नीलशक्त्या शिवोऽत्ति हि ॥२०॥

पूर्वोक्त वासुदेव श्रीशक्ति के सहित विष्णुस्वरूप होकर तीनों भुवनों का पालन करते हैं; भूशक्ति से युक्त होकर ब्रह्मस्वरूप बनकर सृष्टि करते हैं तथा नीलशक्ति से युक्त हो शिव-स्वरूप बनकर संहार करते हैं ॥२०॥

सर्वेषु चैव जीवेषु परमात्मा विराजते।
सर्वं हि तदिदं ब्रह्मन्! स्थितं हि परमात्मनि ॥२१॥
सर्वेषु चैव जीवेषु स्थितं ह्यंशद्वयं क्वचित्।
जीवांशो ह्यधिकस्तद्वत् परमात्मांशक: किल ॥२२॥
सूर्यादयो ग्रहा: सर्वे ब्रह्मकामद्विषादय:।
एते चान्ये च बहव: परमात्मांशकाधिका: ॥२३॥
शक्तयश्च तथैतेषामधिकांशा: श्रियादय:।
स्वस्वशक्तिषु चान्यासु ज्ञेया जीवांशकाधिका: ॥२४॥

हे भगवन्! सभी जीवों में परमात्मा रहते हैं और समस्त भुवन परमात्मा में ही स्थित हैं। सभी जीवों के मध्य में दो अंश (जीवांश और परमात्मांश) रहते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि किसी में जीवांश अधिक तथा किसी में परमात्मांश अधिक रहता है। जैसे–सूर्यादि ग्रह और ब्रह्मा, रुद्रदेव और ऐसे ही अन्य बहुत से अवतार हैं, जिनमें परमात्मांश अधिक होता है। इनकी भी लक्ष्मी आदि शक्तियाँ होती हैं। उनमें भी परमात्मांश अधिक होता है। इनके अतिरिक्त अन्य देवादि तथा अन्य शक्तियों में जीवांश का आधिक्य होता है ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सृष्टिक्रमकथनाध्याय: ॥१॥

अथावतारकथनाध्यायः ॥२॥

मैत्रेय उवाच

रामकृष्णादयो ये ये ह्यवतारा रमापतेः ।
तेऽपि जीवांशसंयुक्ताः किं वा ब्रूहि मुनीश्वर ! ॥१॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुनियों में श्रेष्ठ मुनिवर ! राम, कृष्ण आदि जो परमात्मा के अवतार हैं, क्या वे भी जीवांश से युक्त हैं ? ॥१॥

पराशर उवाच

रामः कृष्णश्च भो विप्र ! नृसिंहः सूकरस्तथा ।
एते पूर्णावताराश्च ह्यन्ये जीवांशकान्विताः ॥२॥

महर्षि पराशर ने कहा—हे विप्र ! राम, कृष्ण, नृसिंह तथा वराह—ये चार पूर्ण अवतार हैं और इनसे भिन्न जो अवतार हैं, वे सभी जीवांश से युक्त होते हैं ॥२॥

अवताराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः ।
जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः ॥३॥
दैत्यानां बलनाशाय देवानां बलवृद्धये ।
धर्मसंस्थापनार्थाय ग्रहाज्जाताः शुभाः क्रमात् ॥४॥

अजन्मा परमेश्वर के अनेक अवतार हैं और उनमें से जीवों के लिए स्व-स्वकर्मानुसार फलदायक के रूप में ग्रहस्वरूप जनार्दननामक अवतार है। दैत्यों के बल-नाशार्थ, देवों के बल-वृद्ध्यर्थ और धर्मस्थापन के लिए उक्त सूर्यादि ग्रहों से ही शुभप्रद अवतार हुए हैं ॥३-४॥

यथा—

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः ।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च ॥५॥
वामनो विबुधेज्यस्य भार्गवो भार्गवस्य च ।
कूर्मो भास्करपुत्रस्य सैंहिकेयस्य सूकरः ॥६॥
केतोर्मीनावतारश्च ये चान्ये तेऽपि खेटजाः ।
परात्मांशोऽधिको येषु ते सर्वे खेचराभिधाः ॥७॥

जैसे—श्रीसूर्य से श्रीराम का, चन्द्रमा से श्रीकृष्ण का, मंगल से श्रीनृसिंह का, बुध से बुद्ध का, गुरु से वामन का, शुक्र से परशुराम का, शनि से कूर्म का, राहु से वराह का और केतु से मत्स्य का अवतार हुआ है। इनसे अतिरिक्त भी जितने अवतार हैं, वे भी ग्रहों से ही अवतीर्ण हुए हैं। उनमें से जिनमें परमात्मांश अधिक है, वे खेचर अर्थात् देवता कहलाते हैं ॥५-७॥

जीवांशो ह्यधिको येषु जीवास्ते वै प्रकीर्तिताः।
सूर्यादिभ्यो ग्रहेभ्यश्च परमात्मांशनिःसृताः॥८॥
रामकृष्णादयः सर्वे ह्यवतारा भवन्ति वै।
तत्रैव ते विलीयन्ते पुनः कार्योत्तरे सदा॥९॥
जीवांशनिःसृतास्तेषां तेभ्यो जाता नरादयः।
तेऽपि तत्रैव लीयन्ते तेऽव्यक्ते समयन्ति हि॥१०॥
इदं ते कथितं विप्र! सर्वं यस्मिन् भवेदिति।
भूतान्यपि भविष्यन्ति तत्तज्जानन्ति तद्विदः॥११॥
विना तज्ज्यौतिषं नान्यो ज्ञातुं शक्नोति कर्हिचित्।
तस्मादवश्यमध्येयं ब्राह्मणैश्च विशेषतः॥१२॥
यो नरः शास्त्रमज्ञात्वा ज्यौतिषं खलु निन्दति।
रौरवं नरकं भुक्त्वा चान्धत्वं चान्यजन्मनि॥१३॥

जिनमें अधिक जीवांश हैं, वे जीव कहलाते हैं। सूर्यादि ग्रहों से अधिक परमात्मांश निकलकर राम, कृष्ण आदि अवतार होते हैं। फिर वे अपने-अपने कार्य को सुसम्पन्न करके सूर्यादि ग्रहों में ही लीन हो जाते हैं। साथ ही सूर्यादि ग्रहों से ही जीवांश निकलकर मनुष्यादि जीवों में प्रवेश करता है, जो जीवांश कहलाता है। वे भी अपने-अपने शुभाशुभ कर्म को भोग कर अन्त में उन्हीं ग्रहों में लीन हो जाते हैं। प्रलयकाल के समय में वे सूर्यादि ग्रह भी अव्यक्त परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं। इस प्रकार सृष्टि और प्रलय जिन-जिन समयों में होता है अथवा होने वाला होता है, उन सबको वे ही अच्छी प्रकार जान सकते हैं। यह समस्त ज्ञान ज्यौतिषशास्त्र के विना कोई जान नहीं सकता। इसलिए सभी को, विशेषकर विप्रों को ज्यौतिषशास्त्र का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। जो मानव ज्यौतिषशास्त्र को अच्छी प्रकार न समझकर उसकी निन्दा करता है, वह रौरवनामक नरक में वास करके अन्धा होकर जन्म ग्रहण करता है॥८-१३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामवतारकथनाध्याय: ॥२॥

अथ ग्रहगुणस्वरूपाध्याय: ॥३॥

मैत्रेय उवाच

कथितं भवता प्रेम्णा ग्रहावतरणं मुने ! ।
तेषां गुणस्वरूपाद्यं कृपया कथ्यतां पुनः ॥१॥

मैत्रेय ने कहा—हे महर्षि ! आपने ग्रहों के अवतरण को कहा, अब आप मुझे कृपा करके उन ग्रहों के गुण और रूप आदि को बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

शृणु विप्र ! प्रवक्ष्यामि भग्रहाणां परिस्थितिम् ।
आकाशे यानि दृश्यन्ते ज्योतिर्बिम्बान्यनेकशः ॥२॥
तेषु नक्षत्रसंज्ञानि ग्रहसंज्ञानि कानिचित् ।
तानि नक्षत्रनामानि स्थिरस्थानानि यानि वै ॥३॥

पराशर ने कहा—हे विप्र ! अब मैं नक्षत्रों एवं ग्रहों की परिस्थिति को कहता हूँ; आप सावधानपूर्वक श्रवण करें। आकाश में जितने भी ज्योतिर्मय बिम्ब देखे जाते हैं, उनमें से कुछ तो नक्षत्र और कुछ ग्रह होते हैं। उनमें से जिनके स्थान स्थिर होते हैं, वे नक्षत्र कहलाते हैं ॥२-३॥

गच्छन्तो भानि गृह्णन्ति सततं ये तु ते ग्रहाः ।
भाचक्रस्य नगाश्व्यंशा अश्विन्यादिसमाह्वयाः ॥४॥
तद्द्वादशविभागास्तु तुल्या मेषादिसंज्ञकाः ।
प्रसिद्धा राशयः सन्ति ग्रहास्त्वर्कादिसंज्ञकाः ॥५॥
राशीनामुदयो लग्नं तद्वशादेव जन्मिनाम् ।
ग्रहयोगवियोगाभ्यां फलं चिन्त्यं शुभाशुभम् ॥६॥

आकाश में पूर्वाभिमुख चलते हुए जो ज्योतिर्बिम्ब देखे जाते हैं, वे प्रत्येक नक्षत्रों का भोग करते हैं और वे ही ग्रह कहे जाते हैं। भचक्र के तुल्य २७ विभाग अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के स्थान हैं और उसी के तुल्य १२ भाग में मेषादि १२ राशियाँ प्रसिद्ध हैं; इनके अतिरिक्त सूर्यादि ग्रह भी प्रसिद्ध ही हैं। राशियों का उदय लग्न के नाम से जाना जाता है और उसी लग्न के माध्यम से ग्रहों के संयोग-वियोग द्वारा जातक का शुभाशुभ फल अवगत कियाँ जाता है ॥४-६॥

संज्ञा नक्षत्रवृन्दानां ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः ।
एतच्छास्त्रानुसारेण राशिखेटफलं ब्रुवे ॥७॥

अश्विन्यादि नक्षत्रों की चर, स्थिर, द्विस्वभाव, क्रूर, अक्रूर, धातु, वर्ण आदि संज्ञाओं को सामान्य शास्त्रों से जानना चाहिए। मैं इस शास्त्र में राशि और ग्रहों के शुभाशुभ फल को बता रहा हूँ ॥७॥

यस्मिन् काले यतः खेटा यान्ति दृग्गणितैकताम्।
तत एव स्फुटाः कार्याः दिक्कालौ च स्फुटौ विदा ॥८॥
भूकेन्द्रदृग्भवैः साध्यं लग्नं राश्युदयैः स्फुटम्।
अदृष्टफलसिद्ध्यर्थं भबिम्बीयैः बुधैः सदा ॥९॥
लग्नं दृष्टफलार्थं तु स्वस्थानीयैर्भवृत्तजैः।
अथादौ वच्मि खेटानां जातिरूपगुणानहम् ॥१०॥

जिस समय जिस प्रकार से ग्रहों का दृग्गणितैक्य हो, उस समय उसी प्रकार से ग्रह-स्पष्ट करना चाहिए तथा स्पष्ट दिग्साधन और स्पष्ट समय का ज्ञान भी उसी प्रकार करना चाहिए। इसी प्रकार जन्म-यात्रादि कार्य में अदृष्ट फल-ज्ञानार्थ भूकेन्द्रीय दृष्टिभव-नक्षत्रबिम्बीय राशि उदय द्वारा और दृष्ट फल-ज्ञानार्थ स्वकीय स्थानीय क्रान्ति-वृत्तीय राश्युदय द्वारा लग्नानयन करना चाहिए। अब मैं ग्रहों की जाति, रूप और गुणों को बताता हूँ ॥८-१०॥

अथ खेटा रविश्चन्द्रो मङ्गलश्च बुधस्तथा।
गुरुः शुक्रः शनी राहुः केतुश्चैते यथाक्रमम् ॥११॥

सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये क्रम से नव ग्रह कहे गये हैं ॥११॥

तत्रार्क-शनि-भूपुत्राः क्षीणेन्दु-राहु-केतवः।
क्रूराः शेषग्रहाः सौम्याः क्रूरः क्रूरयुतो बुधः ॥१२॥

पूर्वोक्त नव ग्रहों में से सूर्य, शनि, भौम, क्षीण चन्द्र, राहु और केतु—ये क्रूर ग्रह हैं तथा शेष—पूर्णचन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र शुभ ग्रह हैं। बुध क्रूर ग्रह से युक्त होने पर स्वयं भी क्रूरग्रह हो जाता है ॥१२॥

पराशर उवाच

सर्वात्मा च दिवानाथो मनः कुमुदबान्धवः।
सत्त्वं कुजो बुधैः प्रोक्तो बुधो वाणीप्रदायकः ॥१३॥
देवेज्यो ज्ञानसुखदो भृगुर्वीर्यप्रदायकः।
ऋषिभिः प्राक्तनैः प्रोक्तश्छायासूनुश्च दुःखदः ॥१४॥
रविचन्द्रौ तु राजानौ नेता ज्ञेयो धरात्मजः।
बुधो राजकुमारश्च सचिवौ गुरुभार्गवौ ॥१५॥

प्रेष्यको रविपुत्रश्च सेना स्वर्भानुपुच्छकौ।
एवं क्रमेण वै विप्र! सूर्यादीन् प्रविचिन्तयेत् ॥१६॥

समस्त चराचर का आत्मा सूर्य है। चन्द्र मन, मङ्गल बल, बुध वाणी, गुरु ज्ञान एवं सुख, शुक्र वीर्य तथा शनि दुःख का कारण है। सूर्य-चन्द्रमा दोनों राजा, मङ्गल नेता, बुध युवराज, गुरु एवं शुक्र मन्त्री, शनि नौकर तथा राहु और केतु सेना हैं ॥१३-१६॥

रक्तश्यामो दिवाधीशो गौरगात्रो निशाकरः।
नात्युच्चाङ्गः कुजो रक्तो दूर्वाश्यामो बुधस्तथा ॥१७॥
गौरगात्रो गुरुर्ज्ञेयः शुक्रः स्यावस्तथैव च।
कृष्णदेहो रवेः पुत्रो ज्ञायते द्विजसत्तम! ॥१८॥

हे द्विजोत्तम! सूर्य रक्त-श्याम, चन्द्र गौर, मङ्गल मध्यम शरीर एवं रक्त वर्ण, बुध दूर्वा-श्याम, गुरु गौर वर्ण, शुक्र चित्र वर्ण तथा शनि कृष्ण वर्ण के होते हैं ॥१८॥

वह्न्यम्बुशिखिजा विष्णुर्विडौजःशचिका द्विज!।
सूर्यादीनां खगानां च देवा ज्ञेयाः क्रमेण च ॥१९॥
क्लीबौ द्वौ सौम्यसौरी च युवतीन्दुभृगू द्विज!।
नराः शेषाश्च विज्ञेया भानुर्भौमो गुरुस्तथा ॥२०॥
अग्निभूमिनभस्तोयवायवः क्रमतो द्विज!।
भौमादीनां ग्रहाणां च तत्त्वानीति यथाक्रमम् ॥२१॥

हे द्विज! अग्नि, जल, स्वामी कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा—ये सभी सूर्यादि सात ग्रहों के क्रमशः देवता हैं। बुध एवं शनि नपुंसक, चन्द्र एवं शुक्र स्त्रीग्रह तथा शेष—सूर्य, भौम और गुरु पुरुषग्रह हैं। अग्नि, भूमि, आकाश, जल और वायु—ये क्रम से भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनि के तत्त्व हैं ॥१९-२१॥

गुरुशुक्रौ विप्रवर्णौ कुजार्कौ क्षत्रियौ द्विज!।
शशिसौम्यौ वैश्यवर्णौ शनिः शूद्रो द्विजोत्तम ॥२२॥
जीवसूर्येन्दवः सत्त्वं बुधशुक्रौ रजस्तथा।
सूर्यपुत्रधरापुत्रौ तमःप्रकृतिकौ द्विज! ॥२३॥

गुरु-शुक्र विप्र, भौम-शनि क्षत्रिय, चन्द्र-बुध वैश्य तथा शनि शूद्र वर्ण वाले हैं। गुरु, रवि और चन्द्र सत्त्व प्रकृति वाले, बुध और शुक्र रजोगुण वाले तथा भौम और शनि तमःप्रकृति वाले होते हैं ॥२२-२३॥

नवग्रहस्वरूप

मधुपिङ्गलदृक्सूर्यश्चतुरस्रः शुचिर्द्विज!।
पित्तप्रकृतिको धीमान् पुमानल्पकचो द्विज! ॥२४॥

बहुवातकफः प्राज्ञश्चन्द्रो वृत्ततनुर्द्विज ! ।
शुभदृङ्मधुवाक्यश्च चञ्चलो मदनातुरः ॥२५॥
क्रूरो रक्तेक्षणो भौमश्चपलोदारमूर्तिकः ।
पित्तप्रकृतिकः क्रोधी कृशमध्यतनुर्द्विज ! ॥२६॥
वपुः श्रेष्ठः श्लिष्टवाक् च ह्यतिहास्यरुचिर्बुधः ।
पित्तवान् कफवान् विप्र ! मारुतप्रकृतिस्तथा ॥२७॥
बृहद्गात्रो गुरुश्चैव पिङ्गलो मूर्द्धजेक्षणौः ।
कफप्रकृतिको धीमान् सर्वशास्त्रविशारदः ॥२८॥
सुखी कान्तवपुः श्रेष्ठः सुनेत्रश्च भृगोः सुतः ।
काव्यकर्ता कफाधिक्योऽनिलात्मा वक्रमूर्धजः ॥२९॥
कृशदीर्घतनुः शौरिः पिङ्गदृश्यनिलात्मकः ।
स्थूलदन्तोऽलसः पङ्गुः खररोमकचो द्विज ! ॥३०॥
धूम्राकारो नीलतनुर्वनस्थोऽपि भयङ्करः ।
वातप्रकृतिको धीमान् स्वर्भानुस्तत्समः शिखी ॥३१॥

मधु के समान पिङ्गल नेत्र, लम्बाई और चौड़ाई तुल्य शरीर वाला, पवित्र, पित्तप्रकृति, बुद्धिमान्, पुरुष और स्वल्प केश वाला सूर्य है। वात-कफ प्रकृति, पण्डित, गोलाकार शरीर, सुन्दर दृष्टि एवं वाक्य, चपल, अधिक कामना शक्ति वाला चन्द्रमा है। क्रूर स्वभाव वाला, रक्त नेत्र, चपल, उदारमना, पित्तप्रकृति, क्रोधी, दुर्बल और मध्यम शरीर वाला मंगल है। सुन्दर शरीर वाला, एक शब्द में अनेकार्थ शब्दों का प्रयोग करने वाला, हास्यप्रिय एवं तीनों (कफ-वात-पित्त) प्रकृति वाला बुध है। विशाल शरीर वाला, पिङ्गल वर्ण-केश एवं नेत्र वाला, कफप्रकृति, सभी शास्त्रों का ज्ञाता और बुद्धिमान् गुरु है। सुखी, सुन्दर शरीर वाला, श्रेष्ठ सुन्दर नेत्र, कवि, कफ-वातप्रकृति एवं टेढ़े-मेढ़े केश वाला शुक्र है। दुबला-पतला, दीर्घ शरीर वाला, पिङ्गल नेत्र, वातप्रकृति, बड़े दाँत वाला, आलसी, पङ्गु और कठोर रोम वाला शनि है। धूम के समान नील शरीर वाला, कानन (वन) में विचरण करने वाला, भयंकर वातप्रकृति वाला और बुद्धिमान् राहु है तथा राहु के सदृश ही केतु का भी स्वरूप होता है ॥२४-३१॥

अस्थि रक्तस्तथा मज्जा त्वग् वसा वीर्यमेव च ।
स्नायुरेषामधीशाश्च क्रमात् सूर्यादयो द्विज ! ॥३२॥
देवालयजलं वह्निक्रीडादीनां तथैव च ।
कोशशय्योत्कराणां तु नाथाः सूर्यादयः क्रमात् ॥३३॥
अयनक्षणवारर्तुमासपक्षसमा द्विज ! ।
सूर्यादीनां क्रमाज्ज्ञेया निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ॥३४॥

कटु-क्षार-तिक्त-मिश्र-मधुराम्ल-कषायकाः ।
क्रमेण सर्वे विज्ञेयाः सूर्यादीनां रसा इति ॥३५॥

अस्थि, रक्त, मज्जा, त्वचा, वसा, शुक्र और स्नायु—इनके स्वामी क्रम से सूर्यादि सात ग्रह हैं। देवस्थान, जलाशय, अग्निस्थान, क्रीड़ास्थान, कोश, शयनस्थान और कतवार रखने का स्थान—इन स्थानों के अधिपति भी क्रम से सूर्यादि सात ग्रह ही हैं। अयन, मुहूर्त, अहोरात्र, ऋतु, मास, पक्ष, वर्ष—इनके स्वामी भी क्रमशः सूर्यादि सात ग्रह हैं। कटु, लवण, तिक्त, मिश्रित, मधुर, अम्ल और कषाय—इन रसों के स्वामी भी सूर्यादि सात ग्रह ही होते हैं ॥३२-३५॥

बुधेज्यौ बलिनौ पूर्वे रविभौमौ च दक्षिणे ।
पश्चिमे सूर्यपुत्रश्च सितचन्द्रौ तथोत्तरे ॥३६॥
निशायां बलिनश्चन्द्र-कुज-सौरा भवन्ति हि ।
सर्वदा ज्ञो बली ज्ञेयो दिने शेषा द्विजोत्तम ॥३७॥
कृष्णे च बलिनः क्रूराः सौम्या वीर्ययुताः सिते ।
सौम्यायने सौम्यखेटो बली याम्यायनेऽपरः ॥३८॥
वर्षमासाहहोराणां पतयो बलिनस्तथा ।
शमम्बुगुशुचंराद्या वृद्धितो वीर्यवत्तराः ॥३९॥

बुध और बृहस्पति पूर्व दिशा में बली होते हैं; रवि-भौम दक्षिण में एवं शनि, पश्चिम और शुक्र तथा चन्द्रमा उत्तर दिशा में बली होते हैं। चन्द्र, भौम एवं शनि रात्रि में; बुध सदैव तथा रवि, गुरु और शुक्र दिन में बली होते हैं। अशुभ ग्रह कृष्ण पक्ष में तथा शुभ ग्रह शुक्ल पक्ष में बली होते हैं। उत्तरायण में शुभ ग्रह और दक्षिणायन में पापग्रह बली होते हैं। वर्षाधिप, मासाधिप, दिनपति और होरापति अपने-अपने समय में उत्तरोत्तर बली होते हैं। साथ ही शनि, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य भी उत्तरोत्तर बली होते हैं ॥३६-३९॥

सूर्यो जनयति स्थूलान् दुर्भगान् सूर्यपुत्रकः ।
क्षीरोपेतांस्तथा चन्द्रः कटुकाद्यान् धरासुतः ॥४०॥
पुष्पवृक्षं भृगोः पुत्रो गुरुज्ञौ सफलाफलौ ।
नीरसान् सूर्यपुत्रश्च एवं ज्ञेयाः खगा द्विज ॥४१॥

स्थूल वृक्षों को सूर्य, कुत्सित वृक्षों को शनि, दूध वाले वृक्षों को चन्द्रमा, कटु वृक्षों को भौम, सफल वृक्षों को गुरु, फलरहित वृक्षों को बुध, पुष्पवृक्षों को शुक्र और नीरस वृक्षों को शनि उत्पन्न करते हैं ॥४०-४१॥

राहुश्चाण्डालजातिश्च केतुर्जात्यन्तरस्तथा ।
शिखिस्वर्भानुमन्दानां वल्मीकं स्थानमुच्यते ॥४२॥

चित्रकन्था फणीन्द्रस्य केतोश्छिद्रयुतो द्विज ! ।
सीसं राहोर्नीलमणिः केतोर्ज्ञेयो द्विजोत्तम ! ॥४३॥
गुरोः पीताम्बरं विप्र ! भृगोः क्षौमं तथैव च ।
रक्तक्षौमं भास्करस्य इन्दोः क्षौमं सितं द्विज ! ॥४४॥
बुधस्य कृष्णक्षौमं तु रक्तवस्त्रं कुजस्य च ।
वस्त्रं चित्रं शनेर्विप्र ! पट्टवस्त्रं तथैव च ॥४५॥

राहु अन्त्यज जाति का और केतु मिश्रित जातियों का स्वामी होता है। राहु, केतु और शनि का स्थान दीमक का स्थान है। राहु का कपड़ा अनेक रंग की कन्था और केतु का छिद्रयुक्त है। राहु का धातु सीसा और केतु का नीलमणि है। गुरु का पीत वस्त्र, शुक्र का पट्टवस्त्र, रवि का रक्त वस्त्र, चन्द्रमा का उज्ज्वल वस्त्र, बुध का कृष्ण वस्त्र, भौम का रक्त वस्त्र तथा शनि के चित्र एवं पट्टवस्त्र होते हैं ॥४२-४५॥

भृगोर्ऋतुवसन्तश्च कुजभान्वोश्च ग्रीष्मकः ।
चन्द्रस्य वर्षा विज्ञेयाः शरच्चैव तथा विदः ॥४६॥
हेमन्तोऽपि गुरोर्ज्ञेयः शनेस्तु शिशिरो द्विज ! ।
अष्टौ मासाश्च स्वर्भानोः केतोर्मासत्रयं द्विज ! ॥४७॥
राह्वारपङ्गुचन्द्राश्च विज्ञेया धातुखेचराः ।
मूलग्रहौ सूर्यशुक्रौ अपरा जीवसंज्ञकाः ॥४८॥
ग्रहेषु मन्दो वृद्धोऽस्ति आयुर्वृद्धिप्रदायकः ।
नैसर्गिके बहुसमान् ददाति द्विजसत्तम ! ॥४९॥

शुक्र का वसन्त ऋतु, भौम और सूर्य का ग्रीष्म, चन्द्र का वर्षा, बुध का शरद्, गुरु का हेमन्त और शनि का शिशिर ऋतु होता है। राहु का समय आठ मास और केतु का तीन मास जानना चाहिए। राहु, भौम, शनि, चन्द्रमा—ये धातु के स्वामी, सूर्य और शुक्र मूलाधिप और शेष (बुध, गुरु, केतु) जीव के अधिपति होते हैं। सभी ग्रहों में शनि वृद्ध, परन्तु नैसर्गिक दशा में ये बहुत वर्षों वाली आयु को देने वाले होते हैं ॥४६-४९॥

ग्रहों के उच्च-नीच स्थान

मेषो वृषो मृगः कन्या कर्को मीनस्तथा तुला ।
सूर्यादीनां क्रमादेते कथिता उच्चराशयः ॥५०॥
भागा दश त्रयोऽष्टाश्च्यस्तिथ्योऽक्षाभमिता नखाः ।
उच्चात् सप्तमभं नीचं तैरेवांशैः प्रकीर्तितम् ॥५१॥

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला—ये सूर्यादि ग्रहों की उच्च राशियाँ हैं। उक्त राशियों में क्रम से १०, ३, २८, १५, ५, २७ और २० अंशों में परमोच्च होते हैं। अपने-अपने उच्च स्थान से सप्तम राशि के उतने ही अंशों में नीच स्थान होते हैं ॥५०-५१॥

उच्च-नीचचक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
उच्चराशि	०	१	९	५	३	११	६
अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०
नीचराशि	६	७	३	११	९	५	०
अंश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०

सूर्यादि ग्रहों के मूल त्रिकोण स्थान

रवेः सिंहे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम्।
उच्चमिन्दोर्वृषे त्र्यंशास्त्रिकोणमपरेंऽशकाः ॥५२॥
मेषेऽर्कांशास्तु भौमस्य त्रिकोणमपरे स्वभम्।
उच्चं बुधस्य कन्यायामुक्तं पञ्चदशांशकाः ॥५३॥
ततः पञ्चांशकाः प्रोक्तं त्रिकोणमपरे स्वभम्।
चापे दशांशा जीवस्य त्रिकोणमपरे स्वभम् ॥५४॥
तुले शुक्रस्य तिथ्यंशास्त्रिकोणमपरे स्वभम्।
शनेः कुम्भे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम् ॥५५॥

सिंह राशि में २० अंश तक सूर्य का मूल त्रिकोण और २१-३० अंश तक स्वराशि कहलाता है। आरम्भ से ३ अंश तक वृष का चन्द्रमा उच्च का एवं ४ अंश से ३० अंश तक वृष का चन्द्र स्वमूल त्रिकोण का होगा। मेष में १२ अंश तक का मंगल मूल त्रिकोण एवं १३ से ३० अंश तक स्वराशि का होगा। बुध कन्या में १५ अंश तक उच्च, उसके बाद ५ अंश तक मूल त्रिकोण और फिर अन्तिम के १० अंश तक स्वराशि का होगा। धन का गुरु १० अंश तक मूल त्रिकोण और बाद के २० अंश तक स्वराशि का होगा। तुला में १५ अंश तक का शुक्र मूल त्रिकोण और उसके बाद का १५ अंश तक स्वराशि का होगा। इसी प्रकार कुम्भ राशि का शनि २० अंश तक मूल त्रिकोण और तदनन्तर स्वराशि का कहलाता है ॥५२-५५॥

ग्रहों के नैसर्गिक मित्र-सम-शत्रुकथन

त्रिकोणात् स्वात्सुखस्वाऽन्त्यधीधर्मायुःस्वतुङ्गपाः।
सुहृदो रिपवश्चान्ये समाश्चोभयलक्षणाः ॥५६॥

अपने-अपने मूल त्रिकोण से ४, २, १२, ५, ९, ८ स्थान और अपने उच्च राशि के अधिपति मित्र होते हैं एवं अन्य स्थान के अधिपति शत्रु होते हैं। एक तरफ से शत्रु और अन्य तरफ से मित्र होने वाले सम कहलाते हैं ॥५६॥

जैसे—सूर्य के मूल त्रिकोण सिंह से पूर्वोक्त २, ४, ८, १२, ५, ९ तथा उच्च (मेष) के स्वामी क्रमशः बुध, मंगल, गुरु एवं चन्द्र सूर्य के मित्र हुए। इसी प्रकार सिंह से

पूर्वोक्त स्थान से अतिरिक्त स्थान १, ३, ६, ७, १०, ११ स्थानों के स्वामी क्रमशः बुध, शुक्र एवं शनि सूर्य के शत्रु हुए; किन्तु बुध शत्रु एवं मित्र दोनों पक्ष में है; अतः बुध सूर्य का सम हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी ज्ञान करना चाहिए।

रवेः समो ज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परे ते सुहृदो भवेयुः।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेषनभश्चराः स्युः ॥५७॥
समौ सितार्किरविजश्च शत्रुर्मित्रापि शेषाः पृथिवीसुतस्य।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः परे स्युः शशिनन्दनस्य ॥५८॥
गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शनि समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति।
शुक्रस्य मित्रे बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजार्यावितरावरी तौ ॥५९॥
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनु शुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रत्वसमत्वमुक्तम् ॥६०॥

सूर्य का बुध सम, शुक्र-शनि शत्रु और शेष (चन्द्र, मंगल, गुरु) ग्रह मित्र हैं। चन्द्र के सूर्य-बुध मित्र और शेष सभी ग्रह सम हैं। मंगल के शुक्र-शनि सम, बुध शत्रु तथा शेष मित्र हैं। बुध के चन्द्र शत्रु, सूर्य-शुक्र मित्र एवं अन्य सम हैं। बृहस्पति के बुध-शुक्र शत्रु, शनि सम और अन्य मित्र हैं। शुक्र के बुध-शनि मित्र, भौम-गुरु सम और शेष ग्रह शत्रु हैं। शनि के गुरु सम, बुध-शुक्र मित्र एवं शेष शत्रु हैं। यह ग्रहों का नैसर्गिक (स्वाभाविक) मित्रामित्र और सम विभाग ब्रह्मा जी ने कहा है ॥५७-६०॥

नैसर्गिक मित्र-अमित्र-समचक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं.म.बृ.	सूर्य, बुध	सू.चं.बृ.	सू. शुक्र	सू.चं.मं.	बु.श.	बु. शु.
सम	बु.	मं.बृ.शु.श.	शु.श.	मं.बृ.श.	श.	मं.बृ.	बृ.
शत्रु	शु.श.		बु.	चं.	बु.शु.	चं.सू.	सू.चं.मं.

ग्रहों के तात्कालिक मित्रामित्र

दशबन्ध्वाय-सहज-स्वान्त्यस्थास्ते परस्परम्।
तत्काले मित्रतां यान्ति रिपवोऽन्यत्र संस्थिताः ॥६१॥

सूर्यादि ग्रह तत्काल में अपने-अपने आश्रित स्थान से परस्पर १०,४,११,३,२,१२ में स्थित ग्रह मित्र तथा अन्य १,५,६,७,८,९ स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं ॥६१॥

उदाहरण—निम्न प्रदर्शित जन्माङ्गचक्र में सूर्य से १ में बुध, २ में वृष-शुक्र ३ में चन्द्र, ७ में शनि, ११ में मंगल हैं। इसीलिए पूर्वोक्त नियमानुसार सूर्य के मंगल-शुक्र-बृहस्पति एवं चन्द्र तात्कालिक मित्र हैं और बुध-शनि तात्कालिक शत्रु हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी विचार करना चाहिए।

जन्माङ्गचक्र

बु.शु.५ ३ के.
च. ६ ४ सू.बु. मं. २
७ १
८ श. १० १२
९ रा. ११

उपर्युक्त कुण्डली के अनुसार तात्कालिक मित्रामित्र चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	बृ.शु. चं.मं.	सू.बु. बृ.शु.	सू.बु. बृ.शु.	बृ.शु. चं.मं.	सू. चं. बु.	चं.मं. सू.बु.	
शत्रु	श.	श.मं.	चं.श.	सू. श.	शु.श.म.	बृ.श.	बृ.शु.चं. मं.सू.बु.

अब इन दोनों (स्वाभाविक-तात्कालिक) सम्बन्ध से पञ्चधा मैत्री

तत्काले च निसर्गे च मित्रं चेदधिमित्रकम् ।
मित्रं मित्रसमत्वे तु शत्रुः शत्रुसमत्वके ॥६२॥
समो मित्ररिपुत्वे तु शत्रुत्वे त्वधिशत्रुता ।
एवं विविच्य दैवज्ञो जातकस्य फलं वदेत् ॥६३॥

स्वाभाविक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हो तो वह ग्रह अधिमित्र कहलाता है। यदि एक जगह से मित्र और एक जगह से सम हो तो वह ग्रह मित्र हो जाता है एवं एक स्थान से शत्रु और दूसरे स्थान से मित्र हो तो वह ग्रह सम कहलाता है। यदि एक स्थान से सम एवं दूसरे स्थान से शत्रु हो तो वह ग्रह शत्रु कहलाता है। यदि दोनों प्रकार से शत्रु हो तो वह ग्रह अधिशत्रु कहलाता है। इस प्रकार (अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु, अधिशत्रु) पञ्चधा मैत्री का विचार कर जातक का शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥६२-६३॥

उदाहरण—जैसे सूर्य का चन्द्र तात्कालिक मित्र है और नैसर्गिक में भी चन्द्र सूर्य का मित्र ही है, अतः सूर्य का चन्द्र अधिमित्र हुआ। सूर्य का शनि तात्कालिक शत्रु है और नैसर्गिक में भी शनि सूर्य का शत्रु ही है, अतः दोनों तरफ से शत्रु होने के कारण वह अधिशत्रु हुआ। इसी प्रकार सूर्य का बुध तात्कालिक शत्रु है और नैसर्गिक में सम है; अतः सूर्य का बुध शत्रु है। सूर्य का चन्द्र अधिमित्र है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी अवगत करना चाहिए।

पञ्चधा मैत्री चक्र

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अधिमित्र	चं.म.बृ.	सू.बु.	सु.बृ.	शु.	सू.चं.	बु.	–
मित्र	–	बृ. शु.	शु.	मं.बृ.	–	मं.	–
सम	शु.	–	चं. बु.	सू.चं.	मं.बु.	सू.चं.श.	बु.शु.
शत्रु	बु.	मं. श.	श.	श.	श.	बृ.	बृ.
अधिशत्रु	श.	–	–	–	शु.	–	सू.चं.मं.

ग्रहों के उच्चादि स्थान-बल

स्वोच्चे शुभं फलं पूर्णं त्रिकोणे पादवर्जितम्।
स्वर्क्षेऽर्धं मित्रगेहे तु पादमात्रं प्रकीर्तितम्॥६४॥
पादार्धं समभे प्रोक्तं शून्यं नीचास्तशत्रुभे।
तद्वद् दुष्टफलं ब्रूयाद् व्यत्ययेन विचक्षणः॥६५॥

अपने उच्च राशि में स्थित ग्रह हो तो सम्पूर्ण शुभ फलदायक, मूल त्रिकोण में ३ चरण, स्वभवन में आधा, मित्रगृह में १ चरण, सम स्थान में $\frac{१}{२}$ चरण और नीच, अस्त तथा शत्रुगृह में ग्रह हो तो शुभ फल का अभाव होता है। इन स्थानों में इससे विपरीत अशुभ फल समझना चाहिए॥६४-६५॥

स्पष्टार्थ चक्र

शुभफल

उच्च	मू.त्रि.	स्व. भवन	मित्रगृ.	सम.	नी.अं.
६०'	४५'	३०'	१५'	७'/₂	०

अशुभफल

उच्च	मू.त्रि.	स्व. भवन	मित्र गृ.	सम.	नी.अं.
०	७'/₂'	१५'	३०'	४५'	६०'

धूमादि अप्रकाश ग्रह-साधन

त्र्यंशाढ्यविश्वभागैश्च चतुर्भैः सहितो रविः।
धूमो नाम महादोषः सर्वकर्मविनाशकः॥६६॥
धूमो मण्डलतः शुद्धो व्यतीपातोऽत्र दोषदः।
सषड्भोऽत्र व्यतीपातः परिवेषोऽतिदोषकृत्॥६७॥
परिवेषश्च्युतश्चक्रादिन्द्रचापस्तु दोषदः।
वित्र्यंशात्यष्टिभागाढ्यश्चापः केतुखमोऽशुभः॥६८॥

एकराशियुतः केतुः सूर्यतुल्यः प्रजायते ।
अप्रकाशग्रहाश्चैते पापदोषप्रदाः स्मृताः ॥६९॥

अभीष्ट-कालिक स्पष्ट सूर्य में ४।१३°।२०′ राश्यादि जोड़ने से धूमनामक अप्रकाश ग्रह होता है, जो कि सभी कार्यों का नाशकारक होता है। धूम को द्वादश राशि में शोधन करने से व्यतिपात योग होता है। व्यतिपात में ६ राशि युक्त करने पर परिवेष होता है। परिवेष को १२ में घटाने से इन्द्रचाप होता है; इन्द्रचाप में १६°।४०′ अंशादि योग करने पर केतु होता है, केतु में एक जोड़ने से पूर्वोक्त स्पष्ट सूर्य के समान होता है। ये सभी अप्रकाश ग्रह हैं। ये सभी अशुभ फल प्रदान करने के कारण पापग्रह कहे जाते हैं ॥६६-६९॥

उदाहरण—जैसे स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ है, इसमें ४।१३।२०।० राश्यादि जोड़ने से ८।३।२४।२५ धूम हुआ। इसको १२ राशि में घटाने से ३।२६।३५।३५ व्यतिपात हुआ। इसमें ६ राशि जोड़ने से ७।२६।३५।३५ परिवेष हुआ। इसको १२ राशि में घटाने से २।३।२४।२५ इन्द्रचाप हुआ। इसमें १६°।४०′ का योग करने से २।२०।४।२५ केतु हुआ। इसमें १ राशि जोड़ने से ३।२०।४।२५ स्पष्टसूर्य के समान हुआ।

अप्रकाशित ग्रहों का फल

सूर्येन्दुलग्नगेष्वेषु वंशायुर्ज्ञाननाशनम् ।
इति धूमादिदोषाणां स्थितिः पद्मासनोदिता ॥७०॥

पूर्वोक्त धूमादि (अप्रकाशित) ग्रह के सूर्य से युत होने पर वंशनाश, चन्द्र से युक्त होने पर आयुनाश और लग्न से युक्त होने पर ज्ञान का नाश होता है। धूमादि ग्रहों का यह फल ब्रह्माजी ने कहा है ॥७०॥

गुलिकादि साधन

रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते ।
दिवसानष्टधा भक्त्वा वारेशाद् गणयेत् क्रमात् ॥७१॥
अष्टमोऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः ।
रात्रिमप्यष्टधा कृत्वा वारेशात् पञ्चमादितः ॥७२॥
गणयेदष्टमः खण्डो निष्पतिः परिकीर्तितः ।
शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो रव्यंशः कालसंज्ञकः ॥७३॥
भौमांशो मृत्युरादिष्टो गुर्वंशो यमघण्टकः ।
सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्वस्वदेशोद्भवः स्फुटः ॥७४॥

अब रवि से शनि-पर्यन्त गुलिकादि काल बताते हैं। दिनमान को आठ से भाग देकर वाराधिपति से क्रम से सातो ग्रहों के काल होते हैं। आठवें भाग का स्वामी कोई नहीं है। इसमें शनि का जो भाग होगा, वह गुलिक कहलाता है। इसी प्रकार रात्रिमान को आठ का भाग देकर वारेश से पञ्चम ग्रह से आरम्भ करके क्रम से सात ग्रहों का भाग जान लेना

चाहिए; इसमें भी आठवें भाग का अधिपति नहीं है। शनि का काल गुलिक, रवि का भाग क़ाल वेला, भौम का भाग मृत्यु, गुरु का भाग यमघण्ट और बुध का भाग अर्धयाम होता है ॥७१-७४॥

गुलिक लग्नसाधन

गुलिकेष्टवशाल्लग्नं स्फुटं यज्जन्मकालिकम्।
गुलिकं प्रोच्यते तस्माज्जातकस्य फलं वदेत् ॥७५॥

गुलिक प्रारम्भ काल को इष्ट मानकर लग्नसाधन करने से गुलिक लग्न होता है। उसी गुलिक लग्न से ही जातक का फलादेश करना चाहिए ॥७५॥

प्राणपद-परिभाषा

भांशपादसमैः प्राणैश्चराद्यर्कत्रिकोणभात्।
उदयादिष्टकालान्तं यद्भं प्राणपदं हि तत् ॥७६॥

भांश (३६०) के १/४ भाग ९०' प्राण अर्थात् १५ पल के प्रमाण से चर, स्थिर, द्विस्वभाव राशिस्थित सूर्य के त्रिकोण (१, ९, ५) स्थान राशि-क्रम से उदय से इष्टकाल जो लग्न है वह प्राणपद कहलाता है ॥७६॥

विशेष—१ पल में ६ प्राण होते हैं।

प्राणपदसाधन

स्वेष्टकालं पलीकृत्य तिथ्याप्तं भादिकं च यत्।
चरागद्विभसंस्थेऽर्के भानौ युङ् नवमे सुते ॥७७॥
स्फुटं प्राणपदाख्यं तल्लग्नं ज्ञेयं द्विजोत्तम!।
लग्नाद् द्विकोणे तुर्ये च राज्ये प्राणपदं तदा ॥७८॥
शुभं जन्म विजानीयात्तथैवैकादशेऽपि च।
अन्यस्थाने स्थितं चेत् स्यात् तदा जन्माशुभं वदेत् ॥७९॥

सूर्योदय में जन्मकाल तक के इष्टघटी को पलात्मक बनाकर उसमें १५ का भाग देने से जो लब्धी आती है, उसको यदि चर राशि में सूर्य हो तो सूर्य में जोड़ने से, स्थिर राशि में सूर्य हो तो ८ में जोड़ने से एवं द्विस्वभाव राशि में सूर्य हो तो ४ राशि जोड़ने से स्पष्ट प्राणपद होता है। जन्मलग्न से २, ५, ९, ४, १० और ११ स्थान में प्राणपद रहने से जातक को शुभ फल प्राप्त होगा; अन्यथा अशुभ फल समझना चाहिए ॥७७-७९॥

उदाहरण—स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५, इष्टकाल ५।२५ है। ५ × ६० + २५ = ३२५, इसमें १५ का भाग दिया तो ९।२०।०।० हुआ। इसको स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ में जोड़ा तो १०।१०।४।२५ स्पष्ट सूर्य चर राशि में है, इसीलिए यही स्पष्ट प्राणपद राश्यादि हुई।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ग्रहगुणस्वरूपाध्याय: ॥३॥

अथ राशिस्वरूपाध्याय: ॥४॥

पराशर उवाच

अहोरात्रस्य पूर्वान्त्यलोपाद् होरावशिष्यते ।
तस्य विज्ञानमात्रेण जातकर्मफलं वदेत् ॥१॥
यदव्यक्तात्मको विष्णुः कालरूपो जनार्दनः ।
तस्याङ्गानि निबोध त्वं क्रमान्मेषादिराशयः ॥२॥
मेषो वृषश्च मिथुनः कर्क-सिंह-कुमारिकाः ।
तुलाऽलिश्च धनुर्नक्रे कुम्भो मीनस्ततः परम् ॥३॥

अहोरात्र शब्द के अन्त्य तथा पूर्व वर्ण का लोप करने पर 'होरा' शब्द अवशेष रहता है, अर्थात् एक अहोरात्र के अन्तर्गत ही होरा (द्वादश लग्न) रहते हैं। अत: उसके ज्ञान से ही जातक का शुभाशुभ फल कहना चाहिए। जो अव्यक्तात्मा भगवान् कालस्वरूप विष्णु हैं, उनके अंग मेषादि द्वादश राशि हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन—ये क्रम से द्वादश राशियों के नाम हैं ॥१-३॥

कालरूप पुरुष के अङ्गविभाग

शीर्षानने तथा बाहू हृत्क्रोड़कटिबस्तयः ।
गुह्योरुयुगले जानुयुग्मे वै जङ्घके तथा ॥४॥
चरणौ द्वौ तथा मेषात् ज्ञेयाः शीर्षादयः क्रमात् ॥४$\frac{1}{2}$॥

कालपुरुष के अङ्ग में मेषादि द्वादश राशियाँ क्रम से स्थित हैं; यथा—१ मस्तक, २ मुख, ३ बाहु, ४ हृदय, ५ उदर, ६ कटि, ७ वस्ति, ८ लिङ्ग, ९. जङ्घा, १०. घुटना, ११. घुटने से अधोभाग और १२ पैर हैं ॥४$\frac{1}{2}$॥

चरस्थिरादि राशिकथन

चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रूराक्रूरौ नरस्त्रियौ ॥५॥
पित्तानिलत्रिधात्वैक्यश्लेष्मिकाश्च क्रियादयः ॥५$\frac{1}{2}$॥

मेषादि द्वादश राशियाँ क्रम से चर-स्थिर-द्विस्वभाव, चर-स्थिर-द्विस्वभाव, चर-स्थिर-द्विस्वभाव एवं चर-स्थिर-द्विस्वभाव हैं। इनमें से मेषादि ६ विषम राशियाँ क्रूरसंज्ञक हैं तथा वृषादि ६ सम राशियाँ अक्रूरसंज्ञक हैं। जो क्रूरसंज्ञक राशियाँ हैं, वे पुरुषसंज्ञक हैं और जो अक्रूरसंज्ञक राशियाँ हैं, वे स्त्रीसंज्ञक हैं। मेषादि द्वादश राशियाँ क्रम से पित्त, वात, त्रिधातु, कफ, पित्त, वात, त्रिधातु, कफ, पित्त, वात, त्रिधातु, कफप्रकृतिक हैं ॥५$\frac{1}{2}$॥

स्पष्टार्थ चक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कन्या	तु.	वृश्चि.	ध.	म.	कुं.	मी.
चरादि	चर	स्थि.	द्वि.	चर.	स्थि.	द्वि.	चर.	स्थि.	द्वि.	च.	स्थि.	द्वि.
क्रूराक्रूर	क्रू.	अक्रू.	क्रू.	अक्रू.	क्रू.	अक्रू.	क्रू.	अक्रू.	क्रू.	अक्रू.	क्रू.	अक्रू.
पु.स्त्री	पुँ.	स्त्री	पुँ.	स्त्री	पुँ.	स्त्री	पुँ.	स्त्री	पुँ.	स्त्री	पुँ.	स्त्री
प्रकृति	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ	पित्त	वात	त्रिधातु	कफ

मेषादि राशि-स्वरूपकथन

रक्तवर्णो बृहद्गात्रश्चतुष्पाद्रात्रिविक्रमी ॥६॥
पूर्ववासी नृपज्ञातिः शैलचारी रजोगुणी ।
पृष्ठोदयी पावकी च मेषराशिः कुजाधिपः ॥७॥

रक्त वर्ण, लम्बा शरीर, चार पैर वाला, रात्रि में बली, पूर्व में रहने वाला, क्षत्रिय जाति, पर्वत पर विचरण करने वाला, रजोगुणी, पृष्ठोदयी एवं अग्नितत्त्वात्मक—इस प्रकार का मेष राशि का स्वरूप है। इसका अधिपति भौम होता है ॥६-७॥

श्वेतः शुक्राधिपो दीर्घश्चतुष्पाच्छर्वरी बली ।
याम्येद् ग्राम्यो वणिग्भूमिरजः पृष्ठोदयी वृषः ॥८॥

वृष राशि सफेद वर्ण, दीर्घ शरीर, चतुष्पाद, रात्रिबली, दक्षिण दिशा का निवासी, ग्राम में घूमने वाला, वैश्य जाति, भूमि तत्त्व, रजोगुणी और पृष्ठोदयी होता है। इसका स्वामी शुक्र होता है ॥८॥

शीर्षोदयी नृमिथुनं सगदं च सवीणकम् ।
प्रत्यग्वायुर्द्विपाद्रात्रिबली ग्रामव्रजोऽनिली ॥९॥
समगात्रो हरिद्वर्णो मिथुनाख्यो बुधाधिपः ।

मिथुन राशि शीर्षोदयी, गदा और वीणायुक्त पुरुष-स्त्री की जोड़ी, पश्चिम दिशा का निवासी, वायु तत्त्व, द्विपदी, रात्रिबली, ग्राम में रहने वाला, वायुप्रकृतिक, समान शरीर वाला और हरित वर्ण का होता है। इसका अधिपति बुध होता है ॥९$\frac{1}{2}$॥

पाटलो वनचारी च ब्राह्मणो निशि वीर्यवान् ॥१०॥
बहुपादचरः स्थौल्यतनुः सत्त्वगुणी जली ।
पृष्ठोदयी कर्कराशिर्मृगाङ्काऽधिपतिः स्मृतः ॥११॥

कर्क राशि का स्वरूप पाटल (श्वेतरक्तस्तु पाटलः) वर्ण, वनचारी, विप्रवर्ण, रात्रि में बली, अधिक पैर वाला, स्थूल शरीर, सत्त्वगुणी, जल तत्त्व वाला एवं पृष्ठोदयी कहा गया है। इसका अधिपति चन्द्र होता है ॥१०-११॥

सिंह सूर्याधिपः सत्त्वी चतुष्पात् क्षत्रियो वनी।
शीर्षोदयी बृहद्गात्रः पाण्डुः पूर्वेड् द्युवीर्यवान् ॥१२॥

सिंह राशि का स्वरूप सत्त्वगुणी, चतुष्पाद, क्षत्रिय, वनचारी, शीर्षोदयी, दीर्घ शरीर, पीला वर्ण, पूर्व दिशा का अधिपति और दिवाबली होना है। इसका स्वामी सूर्य होता है ॥१२॥

पार्वतीयाथ कन्याख्या राशिर्दिनबलान्विता।
शीर्षोदया च मध्याङ्गा द्विपद्याम्यचरा च सा ॥१३॥
सा सस्यदहना वैश्या चित्रवर्णा प्रभञ्जिनी।
कुमारी तमसा युक्ता बालभावा बुधाधिपा ॥१४॥

पर्वत पर घूमने वाला, दिवाबली, शीर्षोदयी, मध्यम शरीर वाला, द्विपदी, दक्षिण में रहने वाला, अन्नसहित अग्नि हाथ में रखने वाला, वैश्य जाति, अनेक वर्ण, वायु तत्त्व, कुमारी एवं तमोगुणी—ऐसा कन्या राशि का स्वरूप कहा गया है। इसका अधिपति बुध होता है ॥१३-१४॥

शीर्षोदयी द्युवीर्याढ्यस्तुलः कृष्णो रजोगुणी।
पश्चिमो भूचरो घाती शूद्रो मध्यतनुर्द्विपात् ॥१५॥
शुक्राधिपोऽथ-

शीर्षोदयी, दिनबली, कृष्ण वर्ण, रजोगुणी, पश्चिम में रहने वाला, भूमि में विचरण करने वाला, हिंसक, शूद्र जाति एवं मध्यम शरीर वाला—ऐसा तुला राशि का स्वरूप कहा गया है; इस स्वामी शुक्र होता है ॥१५॥

-स्वल्पाङ्गो बहुपाद्ब्राह्मणो बिली।
सौम्यस्थो दिनवीर्याढ्यः पिशङ्गो जलभूवहः ॥१६॥
रोमस्वाढ्योऽतितीक्ष्णाग्रो वृश्चिकश्च कुजाधिपः।

स्वल्प शरीर वाला, बहुपाद, विप्र जाति, छिद्र में रहने वाला, उत्तर दिशा में विचरण करने वाला, दिवाबली, पिशङ्ग वर्ण, जल तत्त्व, भूमि तत्त्व, अधिक रोमयुक्त, तीक्ष्ण अग्रिम भाग वाला एवं स्वामी मंगल—ऐसा वृश्चिक राशि का स्वरूप कहा गया है ॥१६॥

पृष्ठोदयी त्वथ धनुर्गुरुस्वामी च सात्त्विकः ॥१७॥
पिङ्गलो निशिवीर्याढ्यः पावकः क्षत्रियो द्विपात्।
आदावन्ते चतुष्पादः समगात्रो धनुर्धरः ॥१८॥
पूर्वस्थो वसुधाचारी तेजस्वी ब्रह्मणा कृतः।

पृष्ठोदयी, सत्त्वगुणी, पिङ्गल वर्ण, रात्रि में बली, अग्नि तत्त्व, क्षत्रिय, पूर्वार्द्ध (१५ अंश) में द्विपाद, उत्तरार्द्ध (१६-३० अंश) में चतुष्पाद, सम शरीर, धनुष धारण करने वाला, पूर्व दिशा में रहने वाला, भूमिचारी, तेजस्वी और गुरु स्वामी वाला धनुराशि होता है ॥१७-१८½॥

मन्दाधिपस्तमी भौमी याम्येट् च निशि वीर्यवान् ॥१९॥
पृष्ठोदयी बृहद्गात्रः कर्बूरो वनभूचरः ।
आदौ चतुष्पदोऽन्ते तु विपदो जलगो मतः ॥२०॥

तमोगुणी, भूतत्त्व, दक्षिण दिशा में रहने वाला, रात्रिबली, पृष्ठोदयी, दीर्घ शरीर, चित्र वर्ण, वन एवं भूचारी, पूर्वार्द्ध में चतुष्पाद, उत्तरार्द्ध में पैर से हीन, जलचर और स्वामी शनि—ऐसा मकर का स्वरूप कहा गया है ॥१९-२०॥

कुम्भः कुम्भी नरो बभ्रुवर्णो मध्यतनुर्द्विपात् ।
द्युवीर्यो जलमध्यस्थो वातशीर्षोदयी तमः ॥२१॥
शूद्रः पश्चिमदेशस्य स्वामी दैवाकरिः स्मृतः ।

घड़ा धारण किया हुआ पुरुष, भूरा वर्ण, मध्यम शरीर वाला, पैर से हीन, दिवाबली, जलचारी, वायु तत्त्व, शीर्षोदयी, तमोगुणी, शूद्र जाति, पश्चिम दिशाधिप और स्वामी शनि—ऐसा कुम्भ राशि का स्वरूप कहा गया है ॥२१-२१$\frac{1}{2}$॥

मीनौ पुच्छास्यसंलग्नौ मीनराशिर्दिवाबली ॥२२॥
जली सत्त्वगुणाढ्यश्च स्वस्थो जलचरो द्विजः ।
अपदो मध्यदेही च सौम्यस्थो ह्युभयोदयी ॥२३॥
सुराचार्याधिपश्चेति राशीनां गदिता गुणाः ।
त्रिंशद्भागात्मकानां च स्थूलसूक्ष्मफलाय च ॥२४॥

मुख-पुच्छ मिले हुए दो मछली, दिन में बली, जलतत्त्व, सत्त्व गुणयुक्त, स्वस्थ, जलचारी, विप्र जाति, पैर से हीन, मध्यम शरीर, उत्तर दिशाधिप, उभयोदयी एवं स्वामी गुरु—ऐसा मीन राशि का स्वरूप कहा गया है। इस प्रकार ३० अंशात्मक राशियों का स्वरूप स्थूल तथा सूक्ष्म फलादेश हेतु कहा गया है ॥२२-२४॥

जन्मकाल से आधान समय-ज्ञान

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मुनिपुङ्गव ! ।
जन्मलग्नं च संशोध्य निषेकं परिशोधयेत् ॥२५॥
तदहं सम्प्रवक्ष्यमि मैत्रेय ! त्वं विधारय ।
जन्मलग्नात् परिज्ञानं निषेकं सर्वजन्तु यत् ॥२६॥
यस्मिन् भावे स्थितो मन्दस्तस्य मान्देर्यदन्तरम् ।
लग्नभाग्यान्तरं योज्यं यच्च राश्यादि जायते ॥२७॥
मासादि तन्मितं ज्ञेयं जन्मतः प्राक् निषेकजम् ।
यद्यदृश्यदलेऽङ्गेशस्तदेन्दोर्भुक्त भागयुक् ॥२८॥
तत्काले साधयेल्लग्नं शोधयेत् पूर्ववत्तनुम् ।
तस्माच्छुभाशुभं वाच्यं गर्भस्थस्य विशेषतः ॥२९॥

शुभाशुभं वदेत् पित्रोर्जीवनं मरणं तथा।
एवं निषेकलग्नेन सम्यग् ज्ञेयं स्वकल्पनात् ॥३०॥

पराशरजी कहते हैं कि हे मैत्रेय ! जन्मलग्न अवगत करके उसके माध्यम से निषेक (आधानकालिक) लग्न अवगत करने की विधि कहता हूँ; सुनो। जिस भाव में शनि हो और जिस भाव में गुलिक हो, इन दोनों का अन्तर करके उसमें नवम और लग्न का अन्तर जोड़े, उससे जो राश्यादि हो, उतने ही मासादि जन्म से पूर्व गर्भाधान काल जानना चाहिए। यदि लग्नेश लग्न से ६ राशि के अन्तर्गत हो तो पूर्वसाधित राश्यादि में चन्द्रमा का भुक्तांश युत करना चाहिए। इस प्रकार गर्भाधान काल अवगत कर उस पर से लग्नसाधन करके उसके माध्यम से गर्भस्थित जीव का शुभाशुभ फल बताना चाहिए। माता-पिता का जीवन-मरण आदि फल स्वविवेकानुसार समझना चाहिए ॥२५-३०॥

उदाहरण—जैसे माना कि किसी का गुलिक ८।१५।७।३ राश्यादि है और शनि ८।१०।५।४; इन दोनों का अन्तर ०।५।१।५९ हुआ, इसमें लग्न ३।२५।९।४५ को नवम भाव ११।१८।१५।४ में घटाकर प्राप्त अन्तर ४।६।५४।४१ को जोड़ने से ४।११।५६।४० राश्यादि हुए। अत: इतने मासादि पूर्व आधान काल हुआ।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां राशिस्वरूपाध्याय: ॥४॥

अथ ज्ञानाध्यायः ॥५॥

भाव-लग्न-साधन

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि तवाग्रे द्विजसत्तम ! ।
भाव-होरा-घटी-संज्ञलग्नानीति पृथक् पृथक् ॥१॥
सूर्योदयं समारभ्य घटिकानां तु पञ्चकम् ।
प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तदेव हि ॥२॥
इष्टं घट्यादिकं भक्त्या पञ्चभिर्भादिजं फलम् ।
योज्यमौदयिके सूर्ये भावलग्नं स्फुटं च तत् ॥३॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विजप्रवर मैत्रेय ! अब मैं आपके समक्ष भाव लग्न, होरा लग्न और घटी लग्न को अलग-अलग कहता हूँ। सूर्योदय से जन्मकाल तक प्रत्येक ५-५ घटी के हिसाब से एक-एक लग्न का प्रमाण होता है और वह भावलग्न होता है। अत एव अपने इष्टकाल में ५ से भाग देने पर जो राश्यादि लब्धि हो उसे उदयकालिक स्पष्ट सूर्य में योग करने से राश्यादि स्पष्ट भावलग्न होता है ॥१-३॥

उदाहरण—जन्मेष्ट काल ५।२५ में ५ का भाग दिया तो १।५।०।० राश्यादि हुए, इसको उदयकालिक स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ में जोड़ने से ४।२५।४।२५ भावलग्न हुआ।

होरालग्नसाधन

तथा सार्धद्विघटिकामितादर्कोदयाद् द्विज ! ।
प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते ॥४॥
इष्टघट्यादिकं द्विघ्नं पञ्चाप्तं भादिकं च यत् ।
योज्यमौदयिके भानौ होरालग्नं स्फुटं हि तत् ॥५॥

सूर्योदय से जन्मेष्ट काल तक प्रति ढाई घटी में एक-एक होरालग्न का प्रमाण होता है, अत एव अपने इष्टकाल को दो से गुणा कर ५ का भाग देने पर जो राश्यादि लब्धि हो, उसे उदयकालिक सूर्य में योग कर देने से स्पष्ट होरालग्न होता है ॥४-५॥

उदाहरण—जन्मेष्ट काल ५।२५ को २ से गुणा किया तो १०।५० हुआ, इसमें ५ का भाग दिया तो २।१०।०।० राश्यादि हुए, इसे उदयकालिक सूर्य ३।२०।४।२५ में योग किया तो ६।०।४।२५ हुआ और यही होरालग्न हुआ।

घटीलग्नसाधन

कथयामि घटीलग्नं शृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।
सूर्योदयात् समारभ्य जन्मकालावधि क्रमात् ॥६॥

एकैकघटिकामानात् लग्नं यद्याति भादिकम् ।
तदेव घटिकालग्नं कथितं नारदादिभिः ॥७॥
राशयस्तु घटीतुल्याः पलार्थप्रमितांशकाः ।
यौज्यमौदयिके भानौ घटीलग्नं स्फुटं हि तत् ॥८॥
क्रमादेषां च लग्नानां भावकोष्ठं पृथग् लिखेत् ।
ये ग्रहा यत्र भे तत्र ते स्थाप्या राशिलग्नवत् ॥९॥

हे द्विजवर ! अब मैं घटीलग्न को कहता हूँ, उसे आप सुनिये । सूर्योदय से एक-एक घटी के प्रमाण से जो लग्न व्यतीत होता है, उसे घटीलग्न कहा जाता है । अत एव इष्ट घटी को राशि (१२ से अधिक होने पर १२ से तष्टित करे) एवं इष्ट पल को २ का भाग देकर अंशादि जानना चाहिए, पूर्वोक्त राशि और अंशादि को उदयकालिक स्पष्ट सूर्य में जोड़ने से घटीलग्न होता है । भाव, होरा, घटी—इन तीनों लग्नों को पृथक्-पृथक् कुण्डली बनाकर जिस-जिस राशि में जो-जो ग्रह हों तत् तत् राशि में ग्रहन्यास कर फल कहना चाहिए ॥६-९॥

उदाहरण—जन्मेष्ट काल ५।२५, घटी रा. ५ एवं पल २५ । २ से भाग दिया तो १२।३०।० अंशादि हुआ; अतः राश्यादि ५।१२।३०।० हुए, इसे उदयकालिक सूर्य ३।२०।४।२५ में युत किया तो ९।२।३४।२५ हुआ; यह घटीलग्न हुआ ।

उक्ता लग्नादि-भावानां दीप्तांशास्तिथिसम्मिताः ।
तस्माद् भावात्पुरः पृष्ठे तिथ्यंशैस्तत्फलं स्मृतम् ॥१०॥
लग्नात्तिथ्यंशतः पूर्वं भावारम्भः प्रजायते ।
तिथ्यंशैः परतस्तस्य पूर्तिः सन्धी च तौ स्मृतौ ॥११॥
भावारम्भो फलारम्भो पूर्णं भावसमे ग्रहे ।
फलं शून्यं च भावान्ते ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ॥१२॥

पूर्वोक्त लग्नादि भावों के १५-१५ अंश दीप्तांश होते हैं, अत एव भावांश से १५ अंश पूर्व से ही भावारम्भ होता है और भावांश से १५ अंश अनन्तर में भाव की पूर्ति होती है । भावारम्भ से फलारम्भ और भावान्त में फलान्त हो जाता है । भावांश तुल्य ग्रहों के अंश हो तो पूर्ण फल और भाव के अन्त में शून्य फल हो जाता है । अतः भाव और सन्धि के मध्य में ग्रह हो तो अनुपात से फलादेश करना चाहिए ॥१०-१२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ज्ञानाध्यायः ॥५॥

अथ वर्णददशाध्यायः ॥६॥

वर्णद दशा

वर्णदाख्यदशां भानां कथयाम्यथ तेऽग्रतः ।
यस्य विज्ञानमात्रेण वदेदायुर्भवं फलम् ॥१॥
ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात् ।
समलग्नप्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः ॥२॥
मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत् सुधीः ।
तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम् ॥३॥
ओजत्वेन समत्वेन सजातीये उभे यदि ।
तर्हि संख्ये योजयीत वैजात्ये तु वियोजयेत् ॥४॥
मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः ।

हे मैत्रेय ! अब मैं आपके आगे वर्णद दशा को कहता हूँ, जिसके माध्यम से आयुर्दाय का फल कहा जाता है। जिसका जन्म विषम (१, ३, ५ आदि) लग्न में हो, उसका मेष से जन्मलग्नपर्यन्त गणना करनी चाहिए तथा सम लग्न (२, ४, ६ आदि) में जन्म हो तो मीन से उत्क्रम से जन्म लग्न तक गिने। इसी प्रकार होरालग्न विषम हो तो मेष से क्रम से होरालग्न तक गिने; यदि सम होरालग्न हो तो मीन से उत्क्रम से होरालग्न तक गणना करनी चाहिए; इस प्रकार दोनों संख्यायें सम या विषम होती हैं। यदि दोनों सम-सम हो या विषम-विषम हो तो योग करें। यदि एक संख्या सम और अन्य संख्या विषम हो तो अन्तर करें। इस प्रकार योग, अन्तर करने से जो संख्या हो, यदि वह संख्या विषम हो तो मेषादि क्रम से और यदि सम हो तो मीनादि व्युत्क्रम से गणना करने पर जो राशि हो, वह राशि का वर्णद कहा जाता है ॥१-४$\frac{१}{२}$॥

उदाहरण—जन्मलग्न ३।२५।९।४५, होरालग्न ६।०।४।२५ और जन्मलग्न सम है, अत: मीन से उत्क्रम ९ हुई। होरालग्न विषम है, अत: मेष से क्रम से गिनने पर ७ संख्या हुई। दोनों संख्या विषम होने के कारण योग किया तो ७ + ९ = १६ हुई, १२ से अधिक होने के कारण १२ से शेष किया तो ४ हुई। ४ सम संख्या है, अत: मीन से विपरीत गिनने पर ९ धन वर्णद हुआ।

वर्णद का स्पष्ट राश्यादि अवगत करने के लिए विषम लग्न हो तो उसके राश्यादि का ग्रहण किया जाता है; समलग्न हो तो १२ में शोधित कर, दोनों सजातीय हों तो जोड़कर, विजातीय हों तो अन्तर कर; शेष विषम हो तो वही तथा सम हो तो १२ में घटाने से स्पष्ट राश्यादि वर्णद होता है।

जैसे जन्म लग्न ३।२५।९।४५ है, कर्क सम है; अत: १२ में घटाया तो ८।४।५०।१५

हुआ। इसमें होरालग्न ६।०।४।२५ है, तुला विषम है, अतः यही लिया गया। दोनों का योग किया तो ८।४।५०।१५ + ६।०।४।२५ = २।४।५४।४० तीसरी संख्या हुई। यह विषम है; अतः यही २।४।५४।४० लग्न का स्पष्ट वर्णद राश्यादि हुआ।

वर्णद-प्रयोजन

एतत्प्रयोजनं वक्ष्ये शृणु त्वं द्विजपुङ्गव!।
होरालग्नोभयोर्नेया सबलाद् वर्णदा दशा ॥५॥
यत्संख्यो वर्णदो लग्नात् तत्तत्संख्याक्रमेण तु।
क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशा स्यादोजयुग्मयोः ॥६॥

हे द्विजवर! अब मैं आपसे वर्णद दशा का प्रयोजन कहता हूँ, आप सुनिये। जन्मलग्न और होरालग्न दोनों में जो बली हो, उस राशि से (विषम में क्रम से और सम में व्युत्क्रम से) दशा होगी। लग्न से वर्णद जितनी संख्या पर हो, उतने ही वर्ष लग्न की दशा होगी। इसी प्रकार प्रत्येक भाव का वर्णद दशावर्ष अवगत करना चाहिए ॥५-६॥

पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके।
यदि स्यात्तर्हि तद्राशिपर्यन्तं तस्य जीवनम् ॥७॥
रुद्रशूले यथैवायुर्मरणादि निरूप्यते।
तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसङ्गमे ॥८॥
वर्णदादपि भो विप्र! लग्नवच्चिन्तयेत् फलम्।
वर्णदात्सप्तमाद्भावात् कलत्रायुर्विचिन्तयेत् ॥९॥
एकादशादग्रजस्य तृतीयात्तु यवीयसः।
सुतस्य पञ्चमे विद्यान्मातुश्च तूर्यभावतः ॥१०॥
पितुश्च नवमाद् भावादायुरेवं विचिन्तयेत्।
शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम् ॥११॥

लग्न के वर्णद से यदि त्रिकोण (५, ९) स्थान में पापग्रह हो या पापग्रह की दृष्टि हो तो उस जातक का जीवन उसी राशिदशा तक होता है। जिस प्रकार रुद्र ग्रह की शूल दशा में जीवन-मरणादि का विचार किया जाता है, उसी प्रकार वर्णद से त्रिकोण में पापग्रह का विचार होता है। हे द्विज! जन्मलग्न के समान ही वर्णद द्वारा भी शरीर के सुख-दुःख का विचार करना चाहिए। वर्णद के सप्तम से पत्नी के जीवन-मरण का, एकादश से अपने बड़े भाई, तृतीय से छोटे भाई, पञ्चम से पुत्र, चतुर्थ से माता एवं नवम से पिता का विचार करना चाहिए। शूलराशि की दशा में प्रबल अरिष्ट होता है ॥७-११॥

एवं तन्वादिभावानां कर्तव्या वर्णदा दशा।
पूर्ववच्च फलं ज्ञेयं देहिनां च शुभाशुभम् ॥१२॥
ग्रहाणां वर्णदा नैव राशिनां वर्णदा दशा।

कृत्वाऽर्कधा राशिदशां क्रमादन्तर्दशां वदेत् ॥१३॥
एवमन्तर्दशादिं च कृत्वा तेन फलं वदेत्।
क्रम-व्युत्क्रमभेदेन लिखेदन्तर्दशामपि ॥१४॥

पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्येक भाव की वर्णद दशा अवगत करके, उससे जीवों का शुभाशुभ फल कहना चाहिए। राशियों की ही वर्णद दशा होती है, ग्रहों की नहीं। राशियों की वर्णद दशावर्षादि को १२ से भाग देने पर अन्तर्दशा का प्रमाण ज्ञात होता है। अन्तर्दशा के माध्यम से जीवों का शुभाशुभ फल कहना चाहिए; साथ ही अन्तर्दशा में भी सम में उत्क्रम एवं विषम में क्रम से लिखा जाता है ॥१२-१४॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां वर्णददशाध्यायः ॥६॥

अथ षोडशवर्गाध्याय: ॥७॥

मैत्रेय उवाच

श्रुता ग्रहगुणास्त्वत्तस्तथा राशिगुणा मुने ! ।
श्रोतुमिच्छामि भावानां भेदांस्तान् कृपया वद ? ॥१॥

हे मुने ! ग्रहगुण और राशियों के स्वरूप सुनने के पश्चात् अब मैं भावों के भेद सुनना चाहता हूँ; कृपया उन्हें मुझसे कहें ॥१॥

पराशर उवाच

वर्गान् षोडश यानाह ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तानहं सम्प्रवक्ष्यामि मैत्रेय ! श्रूयतामिति ॥२॥
क्षेत्रं होरा च द्रेष्काणस्तुर्यांशः सप्तमांशकः ।
नवांशो दशमांशश्च सूर्यांशः षोडशांशकः ॥३॥
विंशांशो वेदबाह्वंशो भाशस्त्रिंशांशकस्ततः ।
खवेदांशोऽक्षवेदांशः षष्ठ्यंशश्च ततः परम् ॥४॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय ! लोक के पितामह ब्रह्माजी ने जो १६ वर्ग कहे हैं, उनको अब मैं कहता हूँ; उसे सुनिये । १ गृह, २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ चतुर्थांश, ५ सप्तमांश, ६ नवमांश, ७ दशमांश, ८ द्वादशांश, ९. षोडशांश, १० विंशांश, ११ चतुर्विंशांश, १२ सप्तविंशांश, १३ त्रिंशांश, १४ खवेदांश, १५ अक्षवेदांश और १६ षष्ठ्यंश—ये सोलह वर्गांश होते हैं ॥२-४॥

तत्क्षेत्रं तस्य खेटस्य राशेर्यो यस्य नायकः ।
सूर्येन्द्वोर्विषमे राशौ समे तद्विपरीतकम् ॥५॥
पितरश्चन्द्रहोरेशा देवाः सूर्यस्य कीर्तिताः ।
राशेरर्द्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृता ॥
मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥६॥

जिस ग्रह की जो राशि होती है, उसका वह क्षेत्र कहा जाता है । जैसे मेष का स्वामी भौम है, अत: भौम का क्षेत्र मेष हुआ । इसी प्रकार वृष का शुक्र, मिथुन-कन्या का बुध, कर्क का चन्द्र, सिंह का सूर्य, तुला का शुक्र, वृश्चिक का भौम, धन और मीन का गुरु तथा मकर-कुम्भ का शनि स्वामी है । विषम राशि में पूर्वार्द्ध (१-१५ अंश तक) में सूर्य की और उत्तरार्द्ध (१६°-३०°) में चन्द्रमा की होरा होती है । सम राशि में पूर्वार्द्ध में चन्द्रमा की और उत्तरार्द्ध में सूर्य की होरा होती है । चन्द्रमा और सूर्य के होराधिपति क्रमशः पितृ और देव होते हैं । राशि की आधी होरा कही जाती है, अत: एक राशि में दो होरा और १२ राशि में २४ होरा होते हैं । इन होरा में मेषादि राशियों की दो आवृत्ति होती है ॥५-६॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५, यह कर्क राशि है, अत: चन्द्रमा के गृह में हुआ। समराशि के उत्तरार्द्ध में है, अत: सूर्य की होरा हुई।

स्पष्टार्थ होराचक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कन्या	तु.	वृश्चि.	ध.	म.	कुं.	मी.	स्वामी
१५°	सू	चं	सू	चं	सू	चं	सू	चं.	सू.	चं	सू	चं.	देवता
३०°	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	पितर

द्रेष्काणसाधन

राशित्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिता:।
परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादे: क्रमशो भवेत् ॥७॥
स्वपञ्चनवमानां च राशीनां क्रमशश्च ते।
नारदाऽगस्तिदुर्वासा द्रेष्काणेशाश्चरादिषु ॥८॥

राशि का तीन भाग द्रेष्काण होता है, अत: एक राशि में तीन द्रेष्काण और १२ राशियों में ३६ द्रेष्काण होते हैं। १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण राशि का अपना ही होता है, ११°-२०° तक द्वितीय द्रेष्काण अपने से ५वीं और २१°-३०° तक तृतीय द्रेष्काण अपनी से नवीं राशि का होता है ॥७-८॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५; इसमें तृतीय द्रेष्काण है, अत: कर्क से नवीं राशि (मीन) का द्रेष्काण हुआ और मीन का अधिपति गुरु होता है।

द्रेष्काण चक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.	स्वामी
१°-१०°	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	नारद
११°-२०°	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	अगस्ति
२१°-३०°	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	दुर्वासा

विशेष—चर, स्थिर और द्विस्वभाव राशियों के द्रेष्काणों के स्वामी क्रमश: नारद, अगस्ति और दुर्वासा कहे गये हैं।

चतुर्थांश-कथन

स्वर्क्षादिकेन्द्रपतयस्तुर्यांशेशा: क्रियादिषु।
सनकश्च सनन्दश्च कुमारश्च सनातन: ॥९॥

मेषादि राशियों के चतुर्थांश केन्द्र (१, ४, ७, १०) के अधिपति होते हैं। प्रथम चतुर्थांश उसी राशि का, द्वितीय चतुर्थांश उससे चौथी राशि का, तृतीय चतुर्थांश उससे

सप्तम राशि का और चतुर्थ चतुर्थांश उससे दशम राशि का होता है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चतुर्थांशों के स्वामी क्रमशः सनक, सनन्दन, कुमार और सनातन होते हैं।

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५; यहाँ कर्क का चौथा चतुर्थांश है, अतः कर्क से दशम राशि (मेष) का चतुर्थांश हुआ और उसका अधिपति मंगल हुआ।

चतुर्थांश चक्र

स्वामी	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु,	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.	अंश
सनक	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	७°।३०'
सनन्दन	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	१५°।०'
कुमार	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	२२°।३०'
सनातन	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	३०°।०'

सप्तमांश-कथन

सप्तांशपास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः।
युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षादिनायकात्॥१०॥
क्षारक्षीरौ च दध्याज्यौ तथेक्षुरससम्भवः।
मद्यशुद्धजलावोजे समे शुद्धजलादिकाः॥११॥

मेषादि विषम राशियों में क्रम से उसी राशि से और वृषादि सम राशियों में उस राशि से सप्तम राशि से सप्तमांश होते हैं। एक सप्तमांश ४ अंश और १७ कला का होता है। विषम राशियों के सप्तमांशाधिप क्रमश १. क्षार, २. क्षीर, ३. दधि, ४. आज्य, ५. इक्षुरस, ६. मद्य और ७. शुद्ध जल होते हैं। सम राशियों के सप्तमांशाधिप क्रमशः १. शुद्ध जल, २. मद्य, ३. इक्षुरस, ४. आज्य, ५. दधि, ६. क्षीर और ७. क्षार होते हैं।

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ कर्क राशि के षष्ठ सप्तमांश में है। कर्क के समराशि होने के कारण, उससे सप्तम मकर, षष्ठांश होने के कारण मकर से षष्ठ मिथुन राशि के सप्तमांश में हुआ और इसका स्वामी बुध हुआ तथा सप्तमांश का नाम 'क्षीर' हुआ।

स्पष्टार्थ सप्तमांश चक्र

अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.	स्वामी
४।१७	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	क्षार
८।३४	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	क्षीर
१२।५१	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	दधि
१७।९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	आज्य
२१।२६	५	१२	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	इक्षुरस
२५।४३	६	१	८	३	१०	५	१२	७	२	९	४	११	मद्य
३०।०	७	२	९	४	११	६	१	८	३	१०	५	१२	शुद्ध जल

नवमांश-कथन

नवांशेशाश्चरे तस्मात् थिरे तन्नवमादित: ।
उभये तत्पञ्चमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणै: ॥
देवा नृराक्षसाश्चैव चरादिषु गृहेषु च ॥१२॥

चरसंज्ञक राशियों में उसी राशि से, स्थिरसंज्ञक राशियों में उस राशि से नवम राशि से और द्विस्वभाव राशियों में उस राशि से ५वीं राशि से नवमांश का प्रारम्भ होता है। ३० ÷ ९० = ३°।२०' अत: एक नवमांश ३°।२०' का होगा। चरादि राशियों के स्वामी देव, मनुष्य, राक्षस तथा स्थिर में मनुष्य, राक्षस, देव और द्विस्वभाव में राक्षस, देवता, मनुष्यादि होते हैं।

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ कर्क चर राशि है और आठवें खण्ड में है, चर में उसी राशि से आठवीं राशि कुम्भ है, इसका अधिपति शनि है और चर में देवता से आठवाँ मनुष्य का भाग हुआ।

स्पष्टार्थ नवमांश चक्र

स्वामी	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
देवता	३।२०	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४
मनुष्य	६।४०	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५
राक्षस	१०।०	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६
देवता	१३।२०	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७
मनुष्य	१६।४०	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११	८
राक्षस	२०।०	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९
देवता	२३।२०	७	४	१	१०	७	४	१	१०	७	४	१	१०
मनुष्य	२६।४०	८	५	२	११	८	५	२	११	८	५	२	११
राक्षस	३०।०	९	६	३	१२	९	६	३	१२	९	६	३	१२

दशमांश-कथन

दशमांशा: स्वतश्चौजे युग्मे तन्नवमात् स्मृता: ।
दश पूर्वादिदिक्पाला इन्द्रा-ऽग्नि-यम-राक्षसा: ॥१३॥
वरुणो मारुतश्चैव कुबेरेशान-पद्मजा: ।
अनन्तश्च क्रमादोजे समे वा व्युत्क्रमेण तु ॥१४॥

ओज (विषम) राशियों में उसी राशि से क्रम से १० राशियों के दशमांश होंगे। समराशियों में उस राशि से नवम से आरम्भ करके १० राशियों के दशमांश पूर्वादि दश दिक्पालों के नाम से व्यवहृत होते हैं। विषम राशियों में क्रमश: इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त होते हैं तथा सम राशियों में क्रमश: अनन्त, ब्रह्मा, ईशान, कुबेर, वायु, वरुण, राक्षस, यम, अग्नि और इन्द्र होते हैं।

उदाहरण—जैसे ३।२५।९।४५ कर्क समराशि है; अत: इससे नवम मीन राशि २५ अंश में है, अत: नवमी राशि हुई मीन से नवमी वृश्चिक राशि होने के कारण वृश्चिक के दशमांश में हुआ, उसका स्वामी भौम है और सम राशि होने से यह अग्नि का भाग हुआ ।।१३-१४।।

स्पष्टार्थ दशमांश चक्र

स्वामी विषम	अंश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	स्वामी सम
इन्द्र	३	१	१०	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	अनन्त
अग्नि	६	२	११	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	पद्मज
यम	९	३	१२	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	ईशान
राक्षस	१२	४	१	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	कुबेर
वरुण	१५	५	२	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	वायु
वायु	१८	६	३	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	वरुण
कुबेर	२१	७	४	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	राक्षस
ईशान	२४	८	५	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	यम
पद्मज	२७	९	६	११	८	१	१०	३	१२	५	२	७	४	अग्नि
अनन्त	३०	१०	७	१२	९	२	११	४	१	६	३	८	५	इन्द्र

द्वादशांश-साधन

द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत् ।
तेषामधीशा: क्रमशो गणेशाऽश्वियमाहया: ।।१५।।

द्वादशांश की गणना में उसी राशि से आरम्भ करके क्रम से १२ राशियाँ होती हैं। उनके अधिपति तीन आवृत्ति से क्रम से गणेश, अश्विनी कुमार, यम और सर्प होते हैं ।।१५।।

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ कर्क राशि के ११ वें खण्ड में है, कर्क से ११ वीं राशि वृष के द्वादशांश में पड़ी, वृषाधिप शुक्र है। ११ वें द्वादशांश यम के भाग में हुआ।

स्पष्टार्थ द्वादशांश चक्र

स्वामी	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
गणेश	२।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
अ.कु.	५।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
यम	७।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
सर्प	१०।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
गणेश	१२।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
अ.कु.	१५।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
यम	१७।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६

सर्प	२०।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
गणेश	२२।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
अ.कु.	२५।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
यम	२७।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
सर्प	३०।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११

षोडशांश-कथन

अज-सिंहाऽश्वितो ज्ञेया षोडशांशाश्चरादिषु।
अज-विष्णू हरः सूर्यो ह्योजे युग्मे प्रतीपकम् ॥१६॥

चर राशियों में मेष से, स्थिर राशियों में सिंह से और द्विस्वभाव राशियों में धनु से आरम्भ कर क्रम से षोडशांश होते हैं। इनके विषम में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्य क्रम से अधिपति होते हैं तथा सम में उत्क्रम (सूर्य, शिव, विष्णु, ब्रह्मा) से चार-चार आवृत्ति में षोडशांशाधिप होते हैं ॥१६॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५, कर्क चर राशि होने के कारण मेष से आरम्भ कर १४ वें खण्ड होने से वृष राशि का षोडशांश हुआ और सम राशि होने से शिव के भाग में पड़ा।

स्पष्टार्थ षोडशांश चक्र

विषम स्वामी	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	सम-स्वामी
ब्रह्मा	१।५२।३०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	सूर्य
विष्णु	३।४५।०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	शिव
शिव	५।३७।३०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	विष्णु
सूर्य	७।३०।०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	ब्रह्मा
ब्रह्मा	९।२२।३०	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	सूर्य
विष्णु	११।१५।०	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	शिव
शिव	१३।७।३०	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	विष्णु
सूर्य	१५।०।०	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	ब्रह्मा
ब्रह्मा	१६।५२।३०	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	सूर्य
विष्णु	१८।४५।०	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	शिव
शिव	२०।३७।३०	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	विष्णु
सूर्य	२२।३०।०	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	ब्रह्मा
ब्रह्मा	२४।२२।३०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	सूर्य
विष्णु	२६।१५।०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	शिव
शिव	२८।७।३०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	विष्णु
सूर्य	३०।०।०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	ब्रह्मा

विंशांश-साधन

अथ विंशतिभागानामधिपा ब्रह्मणोदिताः।
क्रियाच्चरे स्थिरे चापान् मृगेन्द्राद् द्विस्वभावके ॥१७॥
काली गौरी जया लक्ष्मीर्विजया विमला सती।
तारा ज्वालामुखी श्वेता ललिता बगलामुखी ॥१८॥
प्रत्यङ्गिरा शची रौद्री भवानी वरदा जया।
त्रिपुरा सुमुखी चेति विषमे परिचिन्तयेत् ॥१९॥
समराशौ दया मेधा छिन्नशीर्षा पिशाचिनी।
धूमावती च मातङ्गी बाला भद्राऽरुणानला ॥२०॥
पिङ्गला छुच्छुका घोरा वाराही वैष्णवी सिता।
भुवनेशी भैरवी च मङ्गला ह्यपराजिता ॥२१॥

अब विंशांश को कहता हूँ, जिसको ब्रह्माजी ने कहा है। चर राशियों में मेष से, स्थिर राशियों में धनु से और द्विस्वभाव राशियों में सिंह से आरम्भ करके क्रम से विंशांश होते हैं। उनके स्वामी विषम राशियों में क्रम से काली, गौरी, जया, लक्ष्मी, विजया, विमला, सती, तारा, ज्वालामुखी, श्वेता, ललिता, बगलामुखी, प्रत्यंगिरा, शची, रौद्री, भवानी, वरदा, जया, त्रिपुरा और सुमुखी होती हैं। सम राशियों में दया, मेधा, छिन्नशीर्षा, पिशाचिनी, धूमावती, मातङ्गी, बाला, भद्रा, अरुणा, अनला, पिङ्गला, छुच्छुका, घोरा, वाराही, वैष्णवी, सिता, भुवनेशी, भैरवी, मङ्गला और अपराजिता होती हैं ॥१७-२१॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५, कर्क चर राशि है, अतः मेष से आरम्भ कर १८ वें खण्ड में रहने से कन्या का विंशांश हुआ और समराशि (कर्क) है, अतः भैरवी स्वामिनी हुई, कन्या का स्वामी बुध है।

स्पष्टार्थ विंशांश चक्र

सं.	वि.स्वा.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	समस्वा.
१	काली	१।३०	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	दया
२	गौरी	३।०	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	मेधा
३	जया	४।३०	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	छि.शी.
४	लक्ष्मी	६।०	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	पिशा.
५	विजया	७।३०	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	धूमा.
६	विमला	९।०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	मातङ्गी
७	सती	१०।३०	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	बाला
८	तारा	१२।०	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	भद्रा
९	ज्वा.मु.	१३।३०	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	अरुणा
१०	श्वेता	१५।०	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	अनला

सं.	विषमस्वा.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	समस्वा.
११	ललिता	१६।३०	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	पिङ्गला
१२	बगलामुखी	१८।०	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	छुच्छुका
१३	प्रत्यंगिरा	१९।३०	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	घोरा
१४	शची	२१।०	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	वाराही
१५	रौद्री	२२।३०	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	वैष्णवी
१६	भवानी	२४।०	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	सिता
१७	वरदा	२३।३०	५	१	९	५	१	९	५	१	९	५	१	९	भुवनेश्वरी
१८	जया	२७।०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	६	२	१०	भैरवी
१९	त्रिपुरा	२८।३०	७	३	११	७	३	११	७	३	११	७	३	११	मंगला
२०	सुमुखी	३०।०	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	८	४	१२	अपराजि.

चतुर्विंशांश-साधन

सिद्धांशकानामधिपा: सिंहादोजभगे ग्रहे ।
कर्काद्युग्मभगे खेटे स्कन्द: पर्शुधरोऽनल: ॥२२॥
विश्वकर्मा भगो मित्रो मयोऽन्तकवृषध्वजा: ।
गोविन्दो मदनो भीम: सिंहादौ विषमे क्रमात् ॥
कर्कादौ सप्तमे भीमाद्विलोमेन विचिन्तयेत् ॥२३॥

विषम राशियों में सिंह राशि से और सम राशियों में कर्क राशि से आरम्भ करने से चतुर्विंशांश होते हैं । इनके अधिदेव विषम राशियों में स्कन्द, पर्शुधर, अनल आदि होते हैं और सम राशियों में भीम, मदन आदि व्युत्क्रम से होते हैं, जो निम्नाङ्कित चक्र से स्पष्ट है ॥२७॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ है, यह सम राशि होने के कारण कर्क राशि से २१ वें खण्ड मीन के चतुर्विंशांश में हुआ, इसका स्वामी गुरु और प्रत्यधिदेव विश्वक हुआ ।

स्पष्टार्थ चतुर्विंशांश चक्र

सं.	विस्वा.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	समस्वा.
१	स्कन्द	१।१५	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	भीम
२	पर्शुधर	२।३०	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	मदन
३	अनन्त	३।४५	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	गोविन्द
४	विश्वक	५।०	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	वृषध्वज
५	भग	६।१५	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	अन्तक
६	मित्र	७।३०	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	मय
७	मय	८।४५	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	मित्र
८	अन्तक	१०।०	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	भग
९	वृषध्वज	११।१५	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	विश्वक

सं.	वि.स्वा.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	समस्वा.
१०	गोविन्द	१२।३०	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	अनल
११	मदन	१३।४५	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	पर्शुधर
१२	भीम	१५।०	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	स्कन्द
१३	स्कन्द	१६।१५	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	५	४	भीम
१४	पर्शुधर	१७।३०	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	६	५	मदन
१५	अनल	१८।४५	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	७	६	गोविन्द
१६	विश्वक	२०।०	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	८	७	वृषध्वज
१७	भग	२१।१५	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	९	८	अन्तक
१८	मित्र	२२।३०	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	१०	९	मय
१९	मय	२३।४५	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	११	१०	मित्र
२०	अन्तक	२५।०	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	१२	११	भग
२१	वृषध्वज	२६।१५	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	१	१२	विश्वक
२२	गोविन्द	२७।३०	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	२	१	अनल
२३	मदन	२८।४५	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	३	२	पर्शुधर
२४	भीम	३०।०	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	४	३	स्कन्द

भांशसाधन

भांशाधिपाः क्रमाद्दस्त्रयमवह्निपितामहाः ।
चन्द्रेशादितिजीवाहिपितरो भगसंज्ञिताः ॥२४॥
अर्यमार्कत्वष्टमरुच्छक्राग्निमित्रवासवाः ।
निर्ऋत्युदकविश्वेऽजगोविन्दो वसवोऽम्बुपः ॥२५॥
ततोऽजपादहिर्बुध्न्यः पूषा चैव प्रकीर्तिताः ।
नक्षत्रेशास्तु भांशेशा मेषादि चरभक्रमात् ॥२६॥

मेषादि राशियों में चरसंज्ञक राशियों से सप्तविंशांश गिना जाता है, अर्थात् मेष को मेष से ही, वृष को कर्क से, मिथुन को तुला से, कर्क को मकर से, सिंह को मेष से, कन्या को कर्क से, तुला को तुला से, वृश्चिक को मकर से, धन को मेष से, मकर को कर्क से, कुम्भ को तुला से और मीन को मकर से क्रम से गिनने पर विंशांश होते हैं। उनके अधिदेवता क्रमशः अश्विनी कुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्र, ईश, अदिति, जीव, अहि, पितर, भग, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, मरुत्, शक्राग्नि, मित्र, वासव, राक्षस, वरुण, विश्वदेव, गोविन्द, वसु, वरुण, अजपात्, अहिर्बुध्न्य और पूषा होते हैं ॥२४-२६॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५, कर्क राशि है, अतः मकर से २३ वें खण्ड में है, इसीलिए वृश्चिक के सप्तविंशांश में है, इसका स्वामी भौम है और अधिदेव वसु हैं।

स्पष्टार्थ भांश चक्र

सं.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	स्वामी
१	१।६।४०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	अश्विनीकु.
२	२।१३।२०	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	यम
३	३।२०।०	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	अग्नि
४	४।२६।४०	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	ब्रह्मा
५	५।३३।२०	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	चन्द्र
६	६।४०।०	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	ईश
७	७।४६।४०	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	अदिति
८	८।५३।२०	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	जीव
९	१०।०।०	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	सर्प
१०	११।६।४०	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	पितर
११	१२।१३।२०	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	भग
१२	१३।२०।०	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	अर्यमा
१३	१४।२६।४०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	सूर्य
१४	१५।३३।२०	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	त्वष्टा
१५	१६।४०।०	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	मरुत्
१६	१७।४६।४०	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	शक्राग्नि
१७	१८।५३।२०	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	मित्र
१८	२०।०।०	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	वासव
१९	२१।६।४०	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	राक्षस
२०	२२।१३।२०	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	वरुण
२१	२३।२०।०	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	विश्वेदेवता
२२	२४।२६।४०	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	गोविन्द
२३	२५।३३।२०	११	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	वसु
२४	२६।४०।०	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	वरुण
२५	२७।४६।४०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	१	४	७	१०	अजपात्
२६	२८।५३।२०	२	५	८	११	२	५	८	११	२	५	८	११	अहिर्बुन्ध्य
२७	३०।०।०	३	६	९	१२	३	६	९	१२	३	६	९	१२	पूषा

त्रिंशांशसाधन

त्रिंशांशेशाश्च विषमे कुजार्कीज्यज्ञभार्गवा: ।
पञ्चपञ्चाष्टसप्ताक्षभागानां व्यत्ययात् समे ॥२७॥
वह्नि: समीरशक्रौ च धनदो जलदस्तथा ।
विषमेषु क्रमाज्ज्ञेया: समराशौ विपर्ययात् ॥२८॥

विषम राशियों में क्रम से भौम, शनि, गुरु, बुध, शुक्र ५,५,८,७,५ अंशों के त्रिंशांशाधिपति होते हैं। समराशियों में विपरीत होते हैं, अर्थात् शुक्र, बुध, गुरु, शनि, भौम

५,७,८,५,५ अंशों के त्रिंशांशाधिपति होते हैं। इनके अधिदेव विषम में क्रम से वह्नि, वायु, इन्द्र, कुबेर और वरुण होते हैं तथा सम में ये ही व्युत्क्रम से होते हैं ॥२७-२८॥

उदाहरण—लग्न ३।२५।९।४५ कर्क राशि के २५ अंश से आगे हैं। अत: भौम के त्रिंशांश में है और अधिदेव अग्नि हैं।

समत्रिंशांश चक्र

स्वामी	अंश	वृष	कर्क	कन्या	वृश्चिक	मकर	मीन
वरुण	५	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र
कुबेर	१२	बुध	बुध	बुध	बुध	बुध	बुध
इन्द्र	२०	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु
वायु	२५	शनि	शनि	शनि	शनि	शनि	शनि
अग्नि	३०	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल

विषम त्रिंशांश चक्र

स्वामी	अंश	मेष	मिथुन	सिंह	तुला	धनु	कुम्भ
अग्नि	५	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल	मंगल
वायु	१०	शनि	शनि	शनि	शनि	शनि	शनि
इन्द्र	१८	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु	गुरु
कुबेर	२५	बुध	बुध	बुध	बुध	बुध	बुध
वरुण	३०	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र

खवेदांशसाधन

चत्वारिंशद्विभागानामधिपा विषमे क्रियात्।
समभे तुलतो ज्ञेयाः स्वस्वाधिपसमन्विताः ॥२९॥
विष्णुश्चन्द्रो मरीचिश्च त्वष्टा धाता शिवो रविः।
यमो यक्षश्च गन्धर्वः कालो वरुण एव च ॥३०॥

विषम राशियों में मेष से और समराशियों में तुला से गिनने पर चत्वारिंशांशाधिपति होते हैं। इनके अधिदेव क्रम से विष्णु, चन्द्र, मरीचि आदि होते हैं, जो निम्न चक्र से स्पष्ट होगा ॥२९-३०॥

उदाहरण—लग्न ३।२५।९।४५ समराशि के ३४ वें खण्ड में है; अत: कर्क के ही खवेदांश में हुआ, इसके स्वामी चन्द्र हैं और अधिदेव गन्धर्व हैं।

स्पष्टार्थ खवेदांश चक्र

सं.	स्वामी	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१	विष्णु	०।४५।०	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
२	चन्द्र	१।३०।०	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८

सं.	स्वामी	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
३	मरीचि	२।१५।०	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
४	त्वष्टा	३।०।०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
५	धाता	३।४५।०	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
६	शिव	४।३०।०	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२
७	रवि	५।१५।०	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१
८	यम	६।०।०	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२
९	यक्षेश	६।४५।०	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३
१०	गन्धर्व	७।३०।०	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
११	काल	८।१५।०	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५
१२	वरुण	९।०।०	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६
१३	विष्णु	९।४५।०	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
१४	चन्द्र	१०।३०।०	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८
१५	मरीचि	११।१५।०	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
१६	त्वष्टा	१२।०।०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
१७	धाता	१२।४५।०	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
१८	शिव	१३।३०।०	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२
१९	रवि	१४।१५।०	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१
२०	यम	१५।०।०	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२
२१	यक्षेश	१५।४५।०	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३
२२	गन्धर्व	१६।३०।०	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
२३	काल	१७।१५।०	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५
२४	वरुण	१८।०।०	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६
२५	विष्णु	१८।४५।०	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
२६	चन्द्र	१९।३०।०	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८
२७	मरीचि	२०।१५।०	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
२८	त्वष्टा	२१।०।०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०
२९	धाता	२१।४५।०	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११
३०	शिव	२२।३०।०	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२
३१	रवि	२३।१५।०	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१
३२	यम	२४।०।०	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२
३३	यक्षेश	२४।४५।०	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३
३४	गन्धर्व	२५।३०।०	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४
३५	काल	२६।१५।०	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५	११	५
३६	वरुण	२७।०।०	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६	१२	६
३७	विष्णु	२७।४५।०	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७	१	७
३८	चन्द्र	२८।३०।०	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८	२	८
३९	मरीचि	२९।१५।०	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९	३	९
४०	त्वष्टा	३०।०।०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०	४	१०

अक्षवेदांश-साधन

तथाक्षवेदभागानामधिपाश्चरभे क्रियात्।
स्थिरे सिंहाद् द्विभे चापात् विधीशविष्णवश्चरे ॥३१॥
ईशाच्युतसुरज्येष्ठा विष्णुकेशाः स्थिरे द्विभे।
देवाः पञ्चदशावृत्त्या विज्ञेया द्विजसत्तम! ॥३२॥

चर राशियों में मेष से, स्थिर में सिंह से और द्विस्वभाव राशियों में धन से गणना करने पर पञ्चचत्वारिंशांश होते हैं। चरराशियों में ब्रह्मा, शिव, विष्णु; स्थिर में शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं द्विस्वभाव में विष्णु, ब्रह्मा, शिव १५-१५ आवृत्ति करके इनके अधिदेव होते हैं ॥३१-३२॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ कर्क चर राशि के अन्तर्गत है और ३८वें खण्ड में है, अतः वृष के पञ्चचत्वारिंशांश में है, वृष का अधिपति शुक्र है और अधिदेव शिव हैं।

स्पष्टार्थ अक्षवेदांश चक्र

सं.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
१	०।४०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
२	१।२०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
३	२।०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
४	२।४	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२
५	३।२०	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१
६	४।०	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२
७	४।४०	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३
८	५।२०	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४
९	६।०	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५
१०	६।४०	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६
११	७।२०	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७
१२	८।०	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८
१३	८।४०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
१४	९।२०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
१५	१०।०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
१६	१०।४०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२
१७	११।२०	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१
१८	१२।०	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२
१९	१२।४०	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३
२०	१३।२०	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४
२१	१४।०	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५

सं.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
२२	१४।४०	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६
२३	१५।२०	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७
२४	१६।०	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८
२५	१६।४०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
२६	१७।२०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
२७	१८।०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
२८	१८।४०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२
२९	१९।२०	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१
३०	२०।०	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२
३१	२०।४०	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३
३२	२१।२०	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४
३३	२२।०	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५
३४	२२।४०	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६
३५	२३।२०	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७
३६	२४।०	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८
३७	२४।४०	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९
३८	२५।२०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०
३९	२६।०	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११
४०	२६।४०	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२
४१	२७।२०	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१
४२	२८।००	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२	६	१०	२
४३	२८।४०	७	११	३	७	११	३	७	११	३	७	११	३
४४	२९।२०	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४	८	१२	४
४५	३०।०	९	१	५	९	१	५	९	१	५	९	१	५

षष्ट्यंश-साधन

राशीन् विहाय खेटस्य द्विघ्नमंशाद्यमर्कहृत् ।
शेषं सैकं च तद्राशेर्भपाः षष्ट्यंशपाः स्मृताः ॥३३॥
घोरश्च राक्षसो देवः कुबेरो यक्षकिन्नरौ ।
भ्रष्टः कुलघ्नो गरलो वह्निर्माया पुरीषकः ॥३४॥
अपाम्पतिर्मरुत्वांश्च कालः सर्पामृतेन्दुकाः ।
मृदुः कोमल-हेरम्ब-ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वराः ॥३५॥
देवादौ कलिनाशश्च क्षितीशकमलाकरौ ।
गुलिको मृत्युकालश्च दावाग्निर्घोरसंज्ञकः ॥३६॥
यमश्च कण्टकसुधाऽमृतौ पूर्णनिशाकरः ।
विषदग्धकुलान्तश्च मुख्यो वंशक्षयस्तथा ॥३७॥
उत्पातकालसौम्याख्याः कोमलः शीतलाभिधः ।

करालदंष्ट्रचन्द्रास्यौ प्रवीणः कालपावकः ॥३८॥
दण्डभृन्निर्मलः सौम्यः क्रूरोऽतिशीतलोऽमृतः ।
पयोधिभ्रमणाख्यौ च चन्द्ररेखा त्वयुग्मपाः ॥३९॥
समे भे व्यत्ययाज्ज्ञेयाः षष्ट्यंशेशाः प्रकीर्तिताः ।
षष्ट्यंशस्वामिनस्त्वोजे तदीशाद् व्यत्ययः समे ॥४०॥
शुभषष्ट्यंशसंयुक्ता ग्रहाः शुभफलप्रदाः ।
क्रूरषष्ट्यंशसंयुक्ता नाशयन्ति खचारिणः ॥४१॥

राशियों को छोड़कर अंशादि, ग्रह, भाव और स्पष्ट लग्न (जिसका षष्ट्यंश विचार करना है उसी का) को दो से गुणा कर १२ का भाग दें। शेष में एक जोड़ने से गिनने पर जो संख्या होती है, वह ग्रहाश्रित राशि से गिनने पर जिस राशि की होती हैं उसी का षष्ट्यंश होता है। द्विगुणित अंशादि में एक युक्त करने पर जो संख्या हो, उतनी संख्यक विषम में घोर, राक्षसादि क्रम से और सम में चन्द्ररेखा, भ्रमणादि व्युत्क्रम से अधिदेव होते हैं ॥३३-४१॥

उदाहरण—जैसे लग्न ३।२५।९।४५ इसमें राशि छोड़कर अंशादि २५।९।४५ को २ से गुणा कर ५०।१९।३० इसके अंश (५०) में १२ का भाग दिया, शेष २ में एक जोड़ा तो ३ हुआ, अत: कर्क से तीसरी कन्या राशि का षष्ट्यंश हुआ, उसका स्वामी बुध है तथा सैक द्विघ्नांस ५१ तुल्य, अग्नि अधिदेव हुए। इस प्रकार प्रतिभाव और प्रति ग्रह में षोडश वर्ग बनाकर विचार करें कि शुभ वर्ग अधिक होने से उन-उन ग्रह और भावों का फल शुभदायक तथा अशुभ ग्रह के वर्ग अधिक होने से अशुभदायक फल समझना चाहिए।

स्पष्टार्थ षष्ट्यंश चक्र

सं.	वि.स्वा.	अंशादि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	समस्वा.
१	घोर	०।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	चन्द्ररेखा
२	राक्षस	१।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	भ्रमण
३	देव	१।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	पयोधीश
४	कुबेर	२।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	सुधा
५	यक्ष	२।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	अतिशी.
६	किन्नर	३।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	क्रूर
७	भ्रष्ट	३।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	सौम्य
८	कुलघ्न	४।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	निर्मल
९	गरल	४।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	दण्डायुध
१०	अग्नि	५।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कालाग्नि
११	माया	५।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	प्रवीण
१२	पुरीष	६।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	इन्दुमुख
१३	अपांपति	६।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	दंष्ट्राकर

१४	मरुत्वान्	७।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शीतल
१५	काल	७।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	कोमल
१६	सर्प	८।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	सौम्य
१७	अमृत	८।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कालरूप
१८	चन्द्र	९।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	उत्पात
१९	मृदु	९।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	वंशक्षय
२०	कोमल	१०।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कुलनाश
२१	हेरम्ब	१०।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	विषदग्ध
२२	ब्रह्मा	११।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	पूर्ण चन्द्र
२३	विष्णु	११।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	अमृत
२४	महेश्वर	१२।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	सुधा
२५	देव	१२।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	कण्टक
२६	आर्द्र	१३।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	यम
२७	कलिनाश	१३।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	घोर
२८	क्षितीश्वर	१४।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	दावाग्नि
२९	कमलाकर	१४।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	काल
३०	गुलिक	१५।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	मृत्यु
३१	मृत्यु	१५।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	गुलिक
३२	काल	१६।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कमलाकर
३३	दावाग्नि	१६।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	क्षितीश्वर
३४	घोर	१७।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कलिनाश
३५	यम	१७।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	आर्द्र
३६	कण्टक	१८।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	देव
३७	सुधा	१८।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	महेश्वर
३८	अमृत	१९।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	विष्णु
३९	पूर्ण चन्द्र	१९।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	ब्रह्मा
४०	विषदग्ध	२०।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	हेरम्ब
४१	कुलनाश	२०।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कोमल
४२	वंशक्षय	२१।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	मृदु
४३	उत्पात	२१।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	चन्द्र
४४	काल	२२।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	अमृत
४५	सौम्य	२२।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	अहिभाग
४६	कोमल	२३।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	कलिनाश
४७	शीतल	२३।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मरुत्वान्
४८	दंष्ट्राकर	२४।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	अपांपति
४९	इन्दुमुख	२४।३०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	पुरीष
५०	प्रवीण	२५।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	माया

५१	कालाग्नि	२५।३०	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	अग्नि
५२	दण्डायुध	२६।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	गरल
५३	निर्मल	२६।३०	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	कुलघ्न
५४	सौम्य	२७।०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भ्रष्ट
५५	क्रूर	२७।३०	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	किन्नर
५६	अतिशीत.	२८।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	यक्ष
५७	सुधा	२८।३०	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	कुबेर
५८	पयोधी	२९।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	देव
५९	भ्रमण	२९।३०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	राक्षस
६०	चन्द्ररेखा	३०।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	घोर

वर्गभेद-कथन

वर्गभेदानहं वक्ष्ये मैत्रेय! त्वं विधारय।
षड्वर्गाः सप्तवर्गाश्च दिग्वर्गा नृपवर्गकाः ॥४२॥
भवन्ति वर्गसंयोगे षड्वर्गे किंशुकादयः।
द्वाभ्यां किंशुकनामा च त्रिभिर्व्यञ्जनमुच्यते ॥४३॥
चतुर्भिश्चामराख्यं च छत्रं पञ्चभिरेव च।
षड्भिः कुण्डलयोगः स्यान्मुकुटाख्यं च सप्तभिः ॥४४॥
सप्तवर्गेऽथ दिग्वर्गे पारिजातादिसंज्ञकाः।
पारिजातं भवेद् द्वाभ्यामुत्तमं त्रिभिरुच्यते ॥४५॥
चतुर्भिर्गोपुराख्यं स्याच्छरैः सिंहासनं तथा।
पारावतं भवेत् षड्भिर्देवलोकं च सप्तभिः ॥४६॥
वसुभिर्ब्रह्मलोकाख्यं नवभिः शक्रवाहनम्।
दिग्भिः श्रीधामयोगः स्यादथ षोडशवर्गके ॥४७॥
भेदकं च भवेद् द्वाभ्यां त्रिभिः स्यात् कुसुमाख्यकम्।
चतुर्भिर्नागपुष्पं स्यात् पञ्चभिः कन्दुकाह्वयम् ॥४८॥
केरलाख्यं भवेत् षड्भिः सप्तभिः कल्पवृक्षकम्।
अष्टभिश्चन्दनवनं नवभिः पूर्णचन्द्रकम् ॥४९॥
दिग्भिरुच्चैःश्रवा नाम रुद्रैर्धन्वन्तरिर्भवेत्।
सूर्यकान्तं भवेद् सूर्यैर्विश्वैः स्याद्विद्रुमाख्यकम् ॥५०॥
शक्रसिंहासनं शक्रैर्गोलोकं तिथिभिर्भवेत्।
भूपैः श्रीवल्लभाख्यं स्याद्वर्गा भेदैरुदाहृताः ॥५१॥
स्वोच्चमूलत्रिकोणस्वभवनाधिपतेः शुभा।

स्वारूढात् केन्द्रनाथानां वर्गा ग्राह्याः सुधीमता ॥५२॥
अस्तङ्गता ग्रहजिता नीचगा दुर्बलाश्च ये।
शयनादिगतास्तेभ्य उत्पन्ना योगनाशकाः ॥५३॥

हे मैत्रेय ! अब मैं वर्गभेद को कह रहा हूँ, आप सुनिये। वर्ग चार प्रकार के होते हैं—१. षड्वर्ग, २. समवर्ग, ३. दशवर्ग और ४. षोडश वर्ग। षड्वर्ग में २,३ आदि के स्ववर्ग में रहने से किंशुकादि संज्ञा होती है। जैसे दूसरे वर्ग स्व वर्ग में रहने से किंशुक संज्ञा होती है। इसी प्रकार ३ से व्यञ्जन, ४ से चामर, ५ से छत्र, ६ से कुण्डलनामक संज्ञा होती है। सप्तवर्ग में षड्वर्ग तक उक्त संज्ञा और ७ से मुकुटनामक संज्ञा होती है। दशवर्ग में २-३ आदि वर्ग की स्ववर्ग में रहने से पारिजात आदि संज्ञायें होती हैं। जैसे २ वर्ग की स्ववर्ग में रहने से पारिजातनामक संज्ञा होती है। इसी प्रकार ३ से उत्तम, ४ से गोपुर, ५ से सिंहासन, ६ से पारावत, ७ से देवलोक, ८ से ब्रह्मलोक, ९ से शक्रवाहन और १० वर्ग स्ववर्ग में रहने से श्रीधाम संज्ञा होती है। एवं षोडश वर्ग में २ आदि वर्ग के स्ववर्ग में रहने से भेदक आदि संज्ञायें होती हैं। यथा २ स्ववर्ग से भेदक, ३ से कुसुम, ४ से नागपुष्प, ५ से कन्दुक, ६ से केरल, ७ से कल्पवृक्ष, ८ से चन्दन, ९ से पूर्ण चन्द्र, १० से उच्चैःश्रवा, ११ से धन्वन्तरि, १२ से सूर्यकाल, १३ से विद्रुम, १४ से शक्रसिंहासन, १५ से गोलोक एवं १६ से श्रीवल्लभ नामक संज्ञा होती है। इस प्रकार वर्गभेद कहा गया है। इनमें अपने उच्च, अपना मूल त्रिकोण और स्वभवन, लग्न, केन्द्राधिपतियों के वर्ग शुभ होते हैं। अस्तङ्गत, पराजित, नीचगत, बलहीन, शयनादि अवस्था में स्थित ग्रहों के वर्ग अशुभ फलदायक और शुभ फलों के नाशकारक होते हैं ॥४२-५३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां षोडशवर्गाध्यायः ॥७॥

अथ वर्गविवेकाध्यायः ॥८॥

अथ षोडशवर्गेषु विवेकं च वदाम्यहम्।
लग्ने देहस्य विज्ञानं होरायां सम्पदादिकम् ॥१॥
द्रेष्काणे भ्रातृजं सौख्यं तुर्यांशे भाग्यचिन्तनम्।
पुत्रपौत्रादिकानां वै चिन्तनं सप्तमांशके ॥२॥
नवमांशे कलत्राणां दशमांशे महत्फलम्।
द्वादशांशे तथा पित्रोश्चिन्तनं षोडशांशके ॥३॥
सुखाऽसुखस्य विज्ञानं वाहनानां तथैव च।
उपासनाया विज्ञानं साध्यं विंशतिभागके ॥४॥
विद्याया वेदबाह्वंशे भांशे चैव बलाऽबलम्।
त्रिंशांशके रिष्टफलं खवेदांशे शुभाऽशुभम् ॥५॥
अक्षवेदांशके चैव षष्ट्यंशेऽखिलमीक्षयेत्।
यत्र कुत्रापि सम्प्राप्तः क्रूरषष्ट्यंशकाधिपः ॥६॥
तत्र नाशो न सन्देहो गर्गादीनां वचो यथा।
यत्र कुत्रापि सम्प्राप्तः कलांशाधिपतिः शुभः ॥७॥
तत्र वृद्धिश्च पुष्टिश्च गर्गादीनां वचो यथा।
इति षोडशवर्गाणां भेदास्ते प्रतिपादिताः ॥८॥

अब मैं षोडश वर्गों के विचारणीय विषय को कहता हूँ। लग्न की राशि से शरीर-सम्बन्धी विचार, नवमांश से स्त्री, दशमांश से आकस्मिक लाभ, राज्य, धनादि उत्कृष्ट लाभ, द्वादशांश से माता-पितासम्बन्धी विचार, षोडशांश से वाहनसम्बन्धी सुख-दुःख, विंशांश से उपासना ज्ञानसम्बन्धी विचार, चतुर्विंशांश से विद्या, भांश (समविंशांश) से बलाबल, त्रिंशांश से अरिष्ट फलसम्बन्धी विचार, खवेदांश से शुभाशुभ का विचार, अक्षवेदांश और षष्ट्यंश से सभी क्षेत्रों में, सभी वस्तुओं का शुभाशुभ फल बताना चाहिए। षष्ट्यंशपति क्रूर ग्रह होकर जिस भाव में बैठा हो, उस भाव का नाश हो जाता है और षोडशांशाधिप शुभ ग्रह होकर जिस भाव में स्थित हो, उस भाव की वृद्धि होती है। इस प्रकार आपसे मैंने षोडश वर्गों का शुभ-अशुभ फलों का प्रतिपादन किया है ॥१-८॥

उदयादिषु भावेषु खेटस्य भवनेषु वा।
वर्गविंशोपकं वीक्ष्य ज्ञेयं तेषां शुभाऽशुभम् ॥९॥
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वर्गविंशोपकं बलम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण विपाकं दृष्टगोचरम् ॥१०॥
गृहविंशोपकं वीक्ष्य सूर्यादीनां खचारिणाम्।
स्वगृहोच्चे बलं पूर्णं शून्यं तत्सप्तमस्थिते ॥११॥

ग्रहस्थितिवशाज्ज्ञेयं द्विराश्यधिपतिस्तथा ।
मध्येऽनुपाततो ज्ञेयं ओजयुग्मर्क्षभेदतः ॥१२॥

लग्न से द्वादश भावों का और स्पष्टग्रहों का विंशोपक बल देखकर जातक का शुभाशुभ फल बताना चाहिए; अतएव अब मैं वर्गों के विंशोपक बल को कहता हूँ, जिसके ज्ञान-मात्र से ही जातक का शुभाशुभ फल अवगत होता है। स्वगृह और उच्च में पूर्ण बल प्राप्त होता है एवं उससे सप्तम तथा नीच में बलाभाव (बल शून्य) हो जाता है। मध्य में अनुपात से बल का ज्ञान करना चाहिए ॥९-१२॥

सूर्यहोराफलं दद्युर्जीवार्कवसुधात्मजाः ।
चन्द्रास्फूजिदर्कपुत्राश्चन्द्रहोराफलप्रदाः ॥१३॥
फलद्वयं बुधो दद्यात् समे चन्द्रं तदन्यके ।
रवेः फलं स्वहोरादौ फलहीनं विरामके ॥१४॥
मध्येऽनुपातात् सर्वत्र द्रेष्काणेऽपि विचिन्तयेत् ।
गृहवत् तुर्यभागेऽपि नवांशादावपि स्वयम् ॥१५॥
सूर्यः कुजफलं धत्ते भार्गवस्य निशापतिः ।
त्रिंशांशके विचिन्त्यैवमत्रापि गृहवत् स्मृतम् ॥१६॥

बृहस्पति, सूर्य और भौम—ये ग्रह सूर्यहोरा का फल देते हैं; चन्द्र, शुक्र और शनि—ये ग्रह चन्द्रहोरा का फल प्रदान करते हैं तथा बुध, चन्द्र और सूर्य दोनों होरा का फल देता है। सम राशियों में चन्द्रहोरा का और विषम राशियों में सूर्यहोरा का फल प्रबल रूप से प्राप्त होता है। होरादि वर्ग के मध्य भाग में पूर्ण फलदायक होते हैं एवं अवसान में फलाभाव होता है, अतएव बीच में सर्वत्र अनुपात से फल अवगत करना चाहिए। इसी प्रकार द्रेष्काण आदि वर्गों का भी फल कहना चाहिए। चतुर्थांश में गृहसदृश फल जानना चाहिए; साथ ही त्रिंशांश में सूर्य भौम-तुल्य और चन्द्रमा शुक्र के तुल्य फलदायक होता है। इसमें प्राय: गृहसमान ही फल होता है ॥१३-१६॥

षड्वर्ग

लग्नहोरादृकाणाङ्कभागसूर्यांशका इति ।
त्रिंशांशकश्च षडवर्गा अत्र विंशोपकाः क्रमात् ॥१७॥
रसनेत्राब्धिपञ्चाश्विभूमयः सप्तवर्गके ।

लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश और त्रिंशांश—ये ६ षड्वर्ग कहलाते हैं। इनमें क्रम से ६, २, ४, ५, २, १—इतने विंशोपक बल होते हैं ॥१७॥

सप्तवर्ग

ससप्तमांशके तत्र विश्वकाः पञ्च लोचनम् ॥१८॥
त्रयः सार्द्धं द्वयं सार्द्धवेदा द्वौ रात्रिनायकः ।
स्थूलं फलं च संस्थाप्य तत्सूक्ष्मं च ततस्ततः ॥१९॥

सप्तमांशसहित (पूर्वोक्त लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवमांश, द्वादशांश और त्रिंशांश)

सप्तवर्ग हैं। उनमें क्रम से ५, २, ३, २$\frac{१}{२}$, ४$\frac{१}{२}$, २, १—ये विंशोपक बल हैं। ये स्थूल विंशोपक बल हैं, अनुपात से सूक्ष्म विंशोपक बल का साधन करना चाहिए ॥१८-१९॥

दशवर्ग

दशवर्गा दिगंशाढ्याः कलांशा षष्टिभागकाः।
त्रयं क्षेत्रस्य विज्ञेयाः पञ्चषष्ट्यंशकस्य च ॥२०॥
सार्द्धैकभागाः शेषाणां विश्वकाः परिकीर्तिताः।

पूर्वोक्त सप्तवर्ग में दशांश, षोडशांश और षष्ट्यंश युक्त करने पर दशवर्ग होते हैं। उनमें क्षेत्र (गृह) में ३, षष्ट्यंश में ५ एवं शेष में १$\frac{१}{२}$-१$\frac{१}{२}$ विंशोपक बल होते हैं ॥२०$\frac{१}{२}$॥

षोडशवर्ग

अथ वक्ष्ये विशेषेण बलं विंशोपकाह्वयम् ॥२१॥
क्रमात् षोडशवर्गाणां क्षेत्रादीनां पृथक्-पृथक्।
होरात्रिंशांशदृक्काणे कुचन्द्रशशिनः क्रमात् ॥२२॥
कलांशस्य द्वयं ज्ञेयं त्रयं नन्दांशकस्य च।
क्षेत्रे सार्द्धं च त्रितयं वेदाः षष्ट्यंशकस्य हि ॥२३॥
अर्धमर्धं तु शेषाणां ह्येतत् स्वीयमुदाहृतम्।
पूर्णं विंशोपकं विंशो धृतिः स्यादधिमित्रके ॥२४॥
मित्रे पञ्चदश प्रोक्तं समे दश प्रकीर्तितम्।
शत्रौ सप्ताधिशत्रौ च पञ्चविंशोपकं भवेत् ॥२५॥

अब मैं गृहादि १६ वर्गों का पृथक्-पृथक् विंशोपक बल कहता हूँ। होरा में १, त्रिशांश में १, दृक्काण में १, षोडशांश में २, नवमांश में ३, क्षेत्र में ३$\frac{१}{२}$, षष्ट्यंश में ४ और शेष में $\frac{१}{२}$-$\frac{१}{२}$ (आधा-आधा) इस प्रकार कुल २० विंशोपक बल होते हैं। ये सभी विंशोपक बल स्ववर्ग में हों तो पूर्ण (२०) बल, अपने अधिमित्रराशि में हों तो १८, अपने मित्र राशि में हों तो १५, समराशि में हों तो १०, शत्रुवर्ग में रहने पर ७ और अधिशत्रु राशि में हों तो ५ विंशोपक बल होता है ॥२१-२५॥

स्पष्टविंशोपकबलसाधन

वर्गविश्वाः स्वविश्वघ्नाः पुनर्विंशतिभाजिताः।
विश्वा फलोपयोग्यं तत्पञ्चोनं फलदं न हि ॥२६॥
तदूर्ध्वं स्वल्पफलदं दशोर्ध्वं मध्यमं स्मृतम्।
तिथ्यूर्ध्वं पूर्णफलदं बोध्यं सर्वं खचारिणाम् ॥२७॥

सभी वर्गविंशोपक को अधिमित्रादि पूर्वोक्त विंशोपक से गुणा कर २० का भाग देने पर तत्तद्वर्ग में स्पष्ट विंशोपक बल फलादेशोपयोगी होता है। वह विंशोपक बल ५ से अल्प रहने पर फलदायक नहीं होता, बल्कि ५ से ऊपर १० तक स्वल्प फलप्रद और १० से १५ तक मध्यम तथा १५ से २० तक पूर्ण फलदायक होता है ॥२६-२७॥

अथाऽन्यदपि वक्ष्येऽहं मैत्रेयः त्वं विधारय।
खेटाः पूर्णफलं दद्युः सूर्यात् सप्तमके स्थिताः ॥२८॥
फलाभावं विजानीयात् समे सूर्यनभश्चरे।
मध्येऽनुपातात् सर्वत्र ह्युदयास्तविशोपकाः ॥२९॥

हे मैत्रेय ! मैं अब अन्य फलों को बताता हूँ, सुनो। सूर्य से सप्तम स्थान में जितने ग्रह रहते हैं, वे सब पूर्ण फल प्रदान करते हैं। सूर्य के तुल्य जो ग्रह रहते हैं, वे समस्त फल प्रदान करने में असमर्थ होते हैं। मध्य में त्रैराशिक अनुपात से फल का ज्ञान करना चाहिए ॥२८-२९॥

वर्गविंशोपकं ज्ञेयं फलमस्य द्विजर्षभ !।
यच्च यत्र फलं बुद्ध्वा तत्फलं परिकीर्तितम् ॥३०॥
वर्गविंशोपकं चादावुदयास्तमतः परम्।
पूर्णं पूर्णेति पूर्णं स्यात् सर्वदैवं विचिन्तयेत् ॥३१॥
हीनं हीनेति हीनं स्यात् स्वल्पेऽल्पात्यल्पकं स्मृतम्।
मध्यं मध्येति मध्यं स्याद्यावत्तस्य दशास्थितिः ॥३२॥

हे द्विजवर ! ग्रहों के फलाफल का आधार वर्गविंशोपक बल ही है, अत: वर्ग- विंशोपक बल को सम्यग् प्रकार से जानकर ग्रहों के उदय, अस्त को भी अच्छी तरह जान लेना परमावश्यक हैं। पूर्ण विंशोपक में भी दो प्रकार है। जैसे सामान्य पूर्ण (१५ से १७$\frac{1}{2}$) तथा अति विशिष्ट पूर्ण (१७$\frac{1}{2}$ से २० तक) है। इसी प्रकार मध्य में भी दो भेद हैं। सोमान्य मध्य १० से १२$\frac{1}{2}$ तक है और १२$\frac{1}{2}$ से १५ तक उत्कृष्ट मध्य है। एवमेव हीन में भी २$\frac{1}{2}$ से ५ तक सामान्य हीन और ० से २$\frac{1}{2}$ तक अत्यन्त हीन होता है। इसी प्रकार स्वल्प में भी दो भेद हैं, जैसे ५ से ७$\frac{1}{2}$ तक अत्यन्त स्वल्प और ७$\frac{1}{2}$ से १० तक सामान्य स्वल्प है। इस प्रकार वर्गविंशोपक बलानुसार ग्रहों के सम्पूर्ण दशाफल को अवगत करना चाहिए ॥३०-३२॥

भावों के केन्द्र आदि कथन

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि मैत्रक ! श्रृणु सुव्रत।
लग्नतुर्यास्तवियतां केन्द्रसंज्ञा विशेषतः ॥३३॥
द्विपञ्चरन्ध्रलाभानां ज्ञेयं पणफराभिधम्।
त्रिषष्ठभाग्यरिष्फानामापोक्लिममिति द्विज ! ॥३४॥
लग्नात् पञ्चमभाग्यस्य कोणसंज्ञा विधीयते।
षष्टाष्टव्ययभावानां दुःसंज्ञास्त्रिकसंज्ञकाः ॥३५॥
चतुरस्त्रं तुर्यरन्ध्रं कथयन्ति द्विजोत्तम !।
स्वस्थादुपचयर्क्षाणि त्रिषडायाम्बराणि हि ॥३६॥

हे मैत्रेय ! अब मैं केन्द्रादि संज्ञा को कहता हूँ, सुनो। लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम की 'केन्द्र' संज्ञा है। २,५,८,११ की 'पणफर' संज्ञा है और ३,६,९,१२ की 'आपोक्लिम' संज्ञा है। लग्न से ५,९ की 'कोण' संज्ञा है, ६,८,१२ की दुष्ट स्थान और 'त्रिक' संज्ञा है। हे द्विजोत्तम ! ४,८ को 'चतुरस्त्र' कहते हैं एवं ३,६,१०,११ की 'उपचय' (वृद्धि) संज्ञा होती है ॥३३-३६॥

लग्नादि द्वादश भावों के नाम

तनुर्धनं च सहजो बन्धुपुत्रारयस्तथा।
युवतीरन्ध्रधर्माख्यकर्मलाभव्यया: क्रमात् ।।३७।।
संक्षेपेणैतदुदितमन्यद् बुद्ध्यनुसारतः।
किञ्चिद्विशेषं वक्ष्यामि यथा ब्रह्ममुखाच्छ्रुतम् ।।३८।।

तनु, धन, सहोदर, बन्धु, पुत्र, शत्रु, स्त्री, रन्ध्र, धर्म, कर्म, लाभ एवं व्यय—यह लग्न से द्वादश भावों के नाम हैं। यह संक्षेप से कहा गया है। इसके अतिरिक्त अपनी बुद्धि से भी समझना चाहिए। अब मैं कुछ विशेष कहता हूँ, जैसा कि ब्रह्मा जी से सुना है ।।३७-३८।।

नवमेऽपि पितुर्ज्ञानं सूर्याच्च नवमेऽथवा।
यत्किञ्चिद्दशमे लाभे तत्सूर्याद्दशमे भवे ।।३९।।
तुर्ये तनौ धने लाभे भाग्ये यच्चिन्तनं च तत्।
चन्द्रातुर्ये तनौ लाभे भाग्ये तच्चिन्तयेद् ध्रुवम् ।।४०।।
लग्नाद् दुश्चिक्यभवने यत्कुजाद् विक्रमेऽखिलम्।
विचार्यं षष्ठभावस्य बुधात् षष्ठे विलोकयेत् ।।४१।।
पुत्रस्य च गुरोः पुत्रे जायायाः सप्तमे भृगोः।
अष्टमस्य व्ययस्यापि मन्दान्मृत्यौ व्यये तथा ।।४२।।
यद्भावाद्यत्फलं चिन्त्यं तदीशात्तत्फलं विदुः।
ज्ञेयं तस्य फलं तद्धि तत्र चिन्त्यं शुभाऽशुभम् ।।४३।।

लग्न से नवम भाव से पिता का विचार करे अथवा सूर्य से नवम भाव से पिता के शुभ-अशुभ फल का विचार करना चाहिए। लग्न से दशम, एकादश भाव से जो विचार करने को कहा गया है, उस वस्तु का सूर्य से दशम, एकादश स्थान से विचार करना चाहिए। इसी प्रकार लग्न से ४,२,११ और ९ स्थान से जो विचार करने को कहा गया है, उसका विचार चन्द्र से ४, २, ११ और ९ स्थान से भी विचार करना चाहिए। लग्न से तृतीय भाव से जो विचार करने को कहा गया है, उसका भौम से तृतीय भाव से भी विचार करना चाहिए और लग्न से षष्ठ भाव में जो विषयवस्तु विचार करने को कहा गया है, उसका बुध से षष्ठ भाव से भी विचार करना चाहिए। लग्न से पञ्चम भाव से पुत्र-सन्तति का विचार करने का विधान है, उसका गुरु से पञ्चम भाव से भी विचार करना चाहिए। इसी प्रकार शुक्र से सप्तम में स्त्री का और शनि से अष्टम भाव से मृत्यु का विचार करना चाहिए। इसी प्रकार जिस भाव से जिसका विचार करने को कहा गया है, उस विषय का उस भाव के अधिपति से भी उसका विचार करना चाहिए ।।३९-४३।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां वर्गविवेकाध्यायः ।।८।।

अथ राशिदृष्टिकथनाध्यायः ॥९॥

पराशर उवाच

अथ मेषादिराशीनां चरादीनां पृथक् पृथक्।
दृष्टिभेदं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वं द्विजसत्तम! ॥१॥
राशयोऽभिमुखं विप्र! तथा पश्यन्ति पार्श्वभे।
यथा चरः स्थिरानेवं स्थिरः पश्यति वै चरान् ॥२॥
द्विस्वभावो विनाऽऽत्मानं द्विस्वभावान् प्रपश्यति।
समीपस्थं परित्यज्य खेटास्तत्र गतास्तथा ॥३॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय! अब मैं मेषादि राशियों के दृष्टिभेद बताता हूँ, सुनो। सभी राशियाँ अपने सम्मुख और दोनों पार्श्व में अर्थात् तीन स्थान में दृष्टि रखती हैं। जैसे चर राशियाँ अपने समीपस्थ स्थिर राशियों को छोड़ कर शेष ३ स्थान में स्थित राशियों को देखती हैं तथा स्थिर राशियाँ भी अपने समीपस्थ चर राशियों को छोड़कर शेष ३ चर राशियों को देखती है। इसी प्रकार द्विस्वभाव राशियाँ भी अपने को छोड़कर शेष तीनों द्विस्वभाव राशियों को देखती हैं तथा राशिनिष्ठ ग्रह भी राशि के सदृश ही देखते हैं। दृष्टिचक्र से यह स्पष्ट अवगत होगा। जैमिनी सूत्रकार ने भी ऐसा ही कहा है—"अभि-पश्यन्त्यृक्षाणि" "पार्श्वभे च" "तन्निष्ठाश्च तद्वत्" ॥१-३॥

चरेषु संस्थिताः खेटा पश्यन्ति स्थिरसङ्गतान्।
स्थिरेषु संस्थिता एवं पश्यन्ति चरसंस्थितान् ॥४॥
उभयस्थास्तु सूर्याद्याः पश्यन्त्युभयसंस्थितान्।
निकटस्थं विना खेटाः पश्यन्तीत्ययभागमः ॥५॥

चर राशिनिष्ठ ग्रह अपने समीपस्थ को छोड़कर, अन्य तीनों स्थिर राशियों को देखता है और स्थिर राशिस्थ ग्रह अपने समीपस्थ चर राशियों का त्याग कर शेष तीनों चर राशियों को देखता है तथा द्विस्वभावस्थ ग्रह अपने समीपवर्ती द्विस्वभाव को छोड़कर अन्य तीनों द्विस्वभाव राशियों को एवं उन स्थानों में स्थित ग्रहों को भी देखता है ॥४-५॥

दृष्टिचक्रन्यासविधि

दृष्टिचक्रमहं वक्ष्ये यथावद् ब्रह्मणोदितम्।
यस्य विन्यासमात्रेण दृष्टिभेदः प्रकाश्यते ॥६॥
प्राचि मेषवृषौ लेख्यौ कर्कसिंहौ तथोत्तरे।
तुलाऽऽली पश्चिमे विप्र! मृगकुम्भौ च दक्षिणे ॥७॥
ईश-कोणे तु मिथुनं वायव्ये कन्यकां तथा।

नैर्ऋत्यां चापमालिख्य वह्निकोणे झषं लिखेत् ॥८॥
एवं चतुर्भुजाकारं वृत्ताकारमथापि वा ।
दृष्टिचक्रं प्रविन्यस्य ततो दृष्टिं विचारयेत् ॥९॥

जैसा ब्रह्माजी ने कहा है, वैसा ही दृष्टिचक्र कहता हूँ, जिसके विन्यासमात्र से दृष्टि-भेद अवगत हो जाता है। चतुर्भुज अथवा वृत्ता-(गोलाकार)-कार चक्र बनाकर उसमें पूर्व में मेष-वृष, कर्क-सिंह उत्तर में, तुला-वृश्चिक पश्चिम में, मकर-कुम्भ दक्षिण में, ईशान कोण में मिथुन, वायव्य में कन्या, नैर्ऋत्य कोण में धन एवं आग्नेय कोण में मीन राशि लिखकर दृष्टि का विचार करना चाहिए ॥६-९॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां राशिदृष्टिकथनाध्यायः ॥९॥

अथारिष्टाध्यायः ॥१०॥

पराशर उवाच

आदौ जन्माङ्गतो विप्र! रिष्टाऽरिष्टं विचारयेत्।
ततस्तन्वादिभावानां जातकस्य फलं वदेत् ॥१॥

हे मैत्रेय! पहले जन्मलग्न से जातक का अरिष्ट और अरिष्टभंग योगों का विचार करके तदनन्तर तनु, धन आदि द्वादश भावों का फलादेश करना चाहिए ॥१॥

चतुर्विंशतिवर्षाणि यावद् गच्छन्ति जन्मतः।
जन्मारिष्टं तु तावत् स्यादायुर्दायं न चिन्तयेत् ॥२॥
षष्टाष्टरिष्फगश्चन्द्रः क्रूरैः खेटैश्च वीक्षितः।
जातस्य मृत्युदः सद्यस्त्वष्टवर्षैः शुभेक्षितः ॥३॥
शशिवन्मृत्युदाः सौम्याश्चेद्वक्राः क्रूरवीक्षिताः।
शिशोर्जातस्य मासेन लग्ने सौम्यविवर्जिते ॥४॥
यस्य जन्मनि धीस्थाः स्युः सूर्यार्कीन्दुकुजाभिधाः।
तस्य त्वाशु जनित्री च भ्राता च निधनं व्रजेत् ॥५॥
पापेक्षितो युतो भौमो लग्नगो न शुभेक्षितः।
मृत्युदस्त्वष्टमस्थोऽपि सौरेणार्केण वा युतः ॥६॥

जन्म से २४ वर्ष तक बालारिष्ट होता है, इसलिए २४ वर्ष तक आयुर्दाय का विचार नहीं करना चाहिए, केवल बालारिष्ट मात्र का ही विचार करना चाहिए। जन्मलग्न से ६, ८, १२ वें स्थान में चन्द्र स्थित हो और पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है। यदि शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित है तो ८ वर्ष में मरण होता है। चन्द्रसदृश शुभ ग्रह भी ६, ८, १२ वें भाव में वक्री हो तथा पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक का एक माह में मरण होता है, परन्तु यदि लग्न में शुभ ग्रह का अभाव हो तभी यह योग घटित होता है, अन्यथा नहीं। जिसके जन्मसमय में लग्न से ५ वें भाव में सूर्य, शनि, चन्द्र, भौम हो तो जातक की माता तथा भाई का मरण हो जाता है। यदि लग्न अथवा अष्टम स्थान में भौम हो और पापग्रहों द्वारा युत अथवा दृष्ट हो, सौम्य ग्रह से न युत हो, न ही दृष्ट हो तो यह योग भी मरणकारक होता है ॥२-६॥

चन्द्रसूर्यग्रहे राहुश्चन्द्रसूर्ययुतो यदि।
सौरिभौमेक्षितं लग्नं पक्षमेकं स जीवति ॥७॥
कर्मस्थाने स्थिताः सौरिः शत्रुस्थाने कलानिधिः।
क्षितिजः सप्तमस्थाने सह मात्रा विपद्यते ॥८॥

लग्ने भास्करपुत्रश्च निधने चन्द्रमा यदि।
तृतीयस्थो यदा जीवः स याति यममन्दिरम् ॥९॥
होरायां नवमे सूर्यः सप्तमस्थः शनैश्चरः।
एकादशे गुरुः शुक्रो मासमेकं स जीवति ॥१०॥
व्यये सर्वे ग्रहा नष्टाः सूर्यशुक्रेन्दुराहवः।
विशेषान्नाशकर्तारो दृष्ट्या वा भङ्गकारिणः ॥११॥

चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण का समय हो और किसी राशि में राहु, चन्द्र, सूर्य एकत्र हों, लग्न को शनि-भौम देखते हों तो वह जातक एक पक्ष (१५ दिन) तक जीवित रहता है। लग्न से १० वें स्थान में शनि, षष्ठ भाव में चन्द्र एवं सप्तम में भौम हो तो मातासहित वह जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। लग्न में शनि हो, अष्टम चन्द्रमा हो और तृतीय भाव में गुरु हो तो वह जातक यममन्दिर जाता है। लग्न अथवा नवम स्थान में सूर्य हो, सप्तमस्थ शनि और एकादश भाव में गुरु-शुक्र हो तो वह जातक एक माह जीवित रहता है। सभी ग्रह द्वादश भाव में अनिष्टकारक होते हैं; विशेष करके सूर्य, शुक्र, चन्द्र एवं राहु अनिष्टकारक होते हैं। इन अनिष्टकारक योगों की दृष्टि अनिष्ट योगों को भङ्ग करने वाली होती है ॥७-११॥

पापान्वितः शशी धर्मे द्यूनलग्नगतो यदि।
शुभैरवेक्षितयुतस्तदा मृत्युप्रदः शिशोः ॥१२॥
सन्ध्यायां चन्द्रहोरायां गण्डान्ते निधनाय वै।
प्रत्येकं चन्द्रपापैश्च केन्द्रगैः स्याद्विनाशनम् ॥१३॥
रवेस्तु मण्डलार्द्धास्तात् सायंसन्ध्या त्रिनाडिका।
तथैवार्द्धोदयात् पूर्वं प्रातःसन्ध्या त्रिनाडिका ॥१४॥
चक्रपूर्वापरार्द्धेषु क्रूरसौम्येषु कीटभे।
लग्नगे निधनं याति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१५॥
व्ययशत्रुगतैः क्रूरैर्मृत्युद्रव्यगतैरपि।
पापमध्यगते लग्ने सत्यमेव मृतिं वदेत् ॥१६॥
लग्नसप्तमगौ पापौ चन्द्रोऽपि क्रूरसंयुतः।
यदा नावेक्षितः सौम्यैः शीघ्रान् मृत्युर्भवेत्तदा ॥१७॥

पापग्रहयुक्त राशि धर्मस्थान, सप्तम भाव अथवा लग्न में स्थित हो और शुभग्रह के द्वारा न देखा जाता हो, न युत हो तो जातक के लिए मृत्युकारक होता है। सन्ध्या का समय हो और चन्द्र की होरा हो, लग्नगण्डान्त (कर्क, वृश्चिक, मीन लग्न का अन्त तथा सिंह, धन, मेष का आदि) में जन्म हो तथा चन्द्र एवं पापग्रह चारो केन्द्र (१-४-७-१०) में हो तो मरणदायक होता है। सूर्यबिम्ब के अर्धास्त के अनन्तर ३ घ. सायंसन्ध्या कही गयी है। इसी प्रकार सूर्यबिम्ब के अर्ध बिम्बोदय से पूर्व ३ घड़ी को प्रातःसन्ध्या कहा गया है। यदि कर्क लग्न हो और चक्र के पूर्वार्द्ध में सभी पापग्रह हों तथा चक्र के उत्तरार्द्ध में शुभ ग्रह

हों तो जातक का मरण होता है। (दशम भाव से आगे चतुर्थ भाव तक चक्र का पूर्वार्द्ध और चतुर्थ भाव से दशम भाव तक चक्र का उत्तरार्द्ध कहा जाता है)। लग्न से १२, ६, ८, २ भावों में पापग्रह हो तो नाशकारक योग होता है। दोनों पापग्रहों के मध्य में लग्न हो तो मरणकारक होता है। लग्न तथा सप्तम भाव में पापग्रह हो, चन्द्र पापग्रह से युक्त हो और शुभ ग्रह से अवलोकित न हो तो शीघ्र मरणकारक होता है ॥१२-१७॥

क्षीणे शशिनि लग्नस्थे पापैः केन्द्राष्टसंस्थितैः।
यो जातो मृत्युमाप्नोति स विप्रेश! न संशयः ॥१८॥
पापयोर्मध्यगश्चन्द्रो लग्नाष्टान्तिमसप्तमः।
अचिरान्मृत्युमाप्नोति यो जातः स शिशुस्तदा ॥१९॥
पापद्वयमध्यगते चन्द्रे लग्नसमाश्रिते।
सप्ताष्टमेन पापेन मात्रा सह मृतः शिशुः ॥२०॥
शनैश्चरार्कभौमेषु रिष्फधर्माष्टमेषु च।
शुभैरवीक्ष्यमाणेषु यो जातो निधनं गतः ॥२१॥
यद्द्रेक्काणे च यामित्रे यस्य स्याद्दारुणो ग्रहः।
क्षीणचन्द्रो विलग्नस्थः सद्यो हरति जीवितम् ॥२२॥
आपोक्लिमस्थिताः सर्वे ग्रहा बलविवर्जिताः।
षण्मासं वा द्विमासं वा तस्यायुः समुदाहृतम् ॥२३॥

क्षीण चन्द्र लग्न में हो और पाप ग्रह केन्द्र तथा अष्टम स्थान में हो तो जातक मृत्यु को प्राप्त होता है। हे विप्रवर ! इसमें संशय नहीं है। दो पापग्रह के मध्य में चन्द्र लग्न में हो अथवा ८, १२, ७ में हो तो जातक शीघ्र मरण को प्राप्त होता है। दो पापग्रह के मध्य में चन्द्र होकर लग्न में स्थित हो और पाप ग्रह सप्तम, अष्टम में हो तो मातासहित जातक की मृत्यु होती है। लग्न से १२, ९, ८ भाव में शनि, रवि, मंगल हो एवं शुभ ग्रह के द्वारा दृष्ट न हो तो मरण होता है। जिसके जन्मसमय में द्रेष्काण अथवा सप्तम भाव में पाप ग्रह हो और क्षीण चन्द्र लग्न में हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है। जिस जातक के जन्मलग्न से आपोक्लिम (२, ५, ८, ११) भाव में सभी ग्रह निर्बल होकर स्थित हों तो उस जातक का २ या ६ महीनों में मरण होता है ॥१८-२३॥

मातृकष्टकथन

त्रिभिः पापग्रहैः सूतौ चन्द्रमा यदि दृश्यते।
मातृनाशो भवेत्तस्य शुभैर्दृष्टे शुभं वदेत् ॥२४॥
धने राहुर्बुधः शुक्रः सौरिः सूर्यो यदा स्थितः।
तस्य मातुर्भवेन्मृत्युर्मृते पितरि जायते ॥२५॥
पापात्सप्तमरन्ध्रस्थे चन्द्रे पापसमन्विते।
बलिभिः पापकैर्दृष्टे जातो भवति मातृहा ॥२६॥

उच्चस्थो वाऽथ नीचस्थः सप्तमस्थो यदा रविः।
पानहीनो भवेद् बाल अजाक्षीरेण जीवति ॥२७॥
चन्द्राच्चतुर्थगः पापो रिपुक्षेत्रे यदा भवेत्।
तदा मातृवधं कुर्यात् केन्द्रे यदि शुभो न चेत् ॥२८॥
द्वादशे रिपुभावे च यदा पापग्रहो भवेत्।
तदा मातुर्भयं विद्याच्चतुर्थे दशमे पितुः ॥२९॥
लग्ने क्रूरो व्यये क्रूरो धने सौम्यस्तथैव च।
सप्तमे भवने क्रूरः परिवारक्षयङ्करः ॥३०॥
लग्नस्थे च गुरौ सौरौ धने राहौ तृतीयगे।
इति चेज्जन्मकाले स्यान् माता तस्य न जीवति ॥३१॥
क्षीणचन्द्रात् त्रिकोणस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः।
माता परित्यजेद् बालं षण्मासाच्च न संशयः ॥३२॥
एकांशकस्थौ मन्दारौ यत्र कुत्र स्थितौ यदा।
शशिकेन्द्रगतौ तौ वा द्विमातृभ्यां न जीवति ॥३३॥

यदि तीन पाप ग्रह चन्द्रमा को देखते हो तो उस जातक की माता मृत्यु को प्राप्त होती है एवं शुभ ग्रह देखते हों तो नहीं मरती है। धन (द्वितीय) भाव में राहु, बुध, शुक्र, शनि एवं सूर्य स्थित हो तो पिता के मरण के अनन्तर जातक का जन्म होता है और उस जातक की माता भी मर जाती है। पाप ग्रहयुक्त होकर चन्द्र, पापग्रह से सप्तम और अष्टम में स्थित हो, बलवान पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक की माता परलोक में जाती है। लग्न से सप्तम स्थान में रवि अपने उच्च अथवा नीच राशि का हो तो वह जातक स्वमाता के दुग्धपान से हीन होता है और बकरी के दुग्ध द्वारा जीवित रहता है। चन्द्र से चतुर्थ स्थान में शत्रुक्षेत्रीय पापग्रह हो और केन्द्र में शुभ ग्रह न हो तो जातक की माता मर जाती है। लग्न से द्वादश, षष्ठ भाव में पापग्रह हो तो माता को भय होता है। इसी प्रकार चतुर्थ, दशम में स्थित पापग्रह पितृकष्टकारक होता है।

लग्न में पापग्रह हो, द्वादश में भी क्रूर ग्रह हो, धनभाव में शुभ ग्रह हो एवं सप्तम में क्रूर ग्रह हो तो परिवार का ही क्षयकारक योग होता है। लग्न में गुरु, द्वितीय में शनि एवं तृतीय में राहु हो तो उस जातक की माता जीवित नहीं रहती।

क्षीण चन्द्र से त्रिकोण में पापग्रह हो, शुभग्रह से हीन हो तो ६ माह के अन्दर उसकी माता जातक को त्याग देती है। एक ही अंश में शनि, भौम होकर जिस किसी राशि में बैठे हों और चन्द्र केन्द्र (१-४-७-१०) में स्थित हो तो दो माता (एक जन्म देने वाली और दूसरी पालन करने वाली) होने पर भी जातक जीवित नहीं रहता है ॥२४-३३॥

पितृ-कष्टकारक योग

लग्ने मन्दो मदे भौमः षष्ठस्थाने च चन्द्रमाः।
इति चेज्जन्मकाले स्यात् पिता तस्य न जीवति ॥३४॥

लग्ने जीवो धने मन्दरविभौमबुधास्तथा।
विवाहसमये तस्य बालस्य म्रियते पिता ॥३५॥

जिस जातक के जन्मसमय में लग्न में शनि, सप्तम में मंगल एवं षष्ठ स्थान में चन्द्र बैठे हों तो जातक का पिता जीवित नहीं रहता है। लग्न में गुरु, धनभाव में शनि, सूर्य, भौम, बुध स्थित हो तो उस बालक का पिता उसके विवाह के समय में मर जाता है ॥३४-३५॥

सूर्यः पापेन संयुक्तो ह्यथ वा पापमध्यगः।
सूर्यात् सप्तमगः पापस्तदा पितृवधो भवेत् ॥३६॥
सप्तमे भवने सूर्यः कर्मस्थो भूमिनन्दनः।
राहुर्व्यये च यस्यैव पिता कष्टेन जीवति ॥३७॥
दशमस्थो यदा भौमः शत्रुक्षेत्रसमाश्रितः।
म्रियते तस्य जातस्य पिता शीघ्रं न संशयः ॥३८॥
रिपुस्थाने यदा चन्द्रो लग्नस्थाने शनैश्चरः।
कुजश्च सप्तमे स्थाने पिता तस्य न जीवति ॥३९॥

जिस जातक के जन्मकाल में सूर्य पापग्रह से युक्त हो अथवा दो पाप ग्रह के मध्य में सूर्य हो या सूर्य से सप्तम स्थान में पापग्रह हो तो उसके पिता का वध हो जाता है। लग्न से सप्तम में सूर्य, दशम में भौम एवं द्वादश में राहु हो तो उस जातक के पिता को कष्ट होता है। शत्रुक्षेत्रीय होकर भौम दशम स्थान में स्थित हो तो जातक के पिता का शीघ्र मरण होता है। लग्न से षष्ठ भाव में चन्द्र हो और लग्न में शनि तथा सप्तम में मंगल हो तो जातक के पिता भी शीघ्र मृत्यु होती है ॥३६-३९॥

भौमांशकस्थिते भानौ शनिना च निरीक्षिते।
प्राग्जन्मनो निवृत्तिः स्यान् मृत्युर्वाऽपि शिशोः पितुः ॥४०॥

सूर्य, मंगल के नवमांश में हो और शनि के द्वारा दृष्ट हो तो जातक का पिता जातक के जन्म से पूर्व ही वैराग्य धारण कर अपना गृह त्याग देता है अथवा मर जाता है ॥४०॥

चतुर्थे दशमे पापौ द्वादशे च यदा स्थितौ।
पितरं मातरं हत्वा देशाद्देशान्तरं व्रजेत् ॥४१॥
राहु-जीवौ रिपुक्षेत्रे लग्ने वाऽथ चतुर्थके।
त्रयोविंशतिमे वर्षे पुत्रस्तातं न पश्यति ॥४२॥

लग्न से चतुर्थ, दशम, द्वादश भाव में पाप ग्रह बैठे हों तो माता-पिता के मर जाने के कारण जातक अपना घर छोड़कर देशान्तर में चला जाता है। राहु-गुरु लग्न षष्ठ लग्न,चतुर्थ भावों में से किसी एक भाव में हो तो जातक के २३वें वर्ष में पिता का मरण हो जाता है ॥४१-४२॥

भानुः पिता च जन्तूनां चन्द्रो माता तथैव च।
पापदृष्टियुतो भानुः पापमध्यगतोऽपि वा ॥४३॥

पित्ररिष्टं विजानीयाच्छिशोर्जातस्य निश्चितम् ।
भानोः षष्टाष्टमर्क्षस्थैः पापैः सौम्यविवर्जितैः ।।
सुखभावगतैर्वापि पित्ररिष्टं विनिर्दिशेत् ।।४४।।

सम्पूर्ण जीवों के पिता सूर्य और माता चन्द्रमा हैं। अतः इन दोनों के शुभाशुभ से ही माता-पिता का शुभाशुभ अवगत करना चाहिए। पापग्रह से युक्त या दृष्ट अथवा पापग्रह के बीच सूर्य हो तो जातक के पिता को कष्ट होता है। सूर्य से ६, ८, ४ में पापग्रह हो और शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो तो पिता को कष्ट होता है ।।४३-४४।।

एवं चन्द्रात् स्थितैः पापैर्मातुः कष्टं विचारयेत् ।
बलाऽबलविवेकेन कष्टं वा मृत्युमादिशेत् ।।४५।।

इसी प्रकार चन्द्रमा से पाप ग्रह हो तो बलाबल विवेक से माता को कष्ट अथवा मरण अवगत करना चाहिए ।।४५।।

।। इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामरिष्टाध्यायः ।।१०।।

अथाऽरिष्टभङ्गाध्यायः ॥११॥

पराशर उवाच

इत्यरिष्टं मया प्रोक्तं तद्भङ्गश्चापि कथ्यते।
यत् समालोक्य जातानां रिष्टाऽरिष्टं वदेद् बुधः॥१॥
एकोऽपि ज्ञार्यशुक्राणां लग्नात् केन्द्रगतो यदि।
अरिष्टं निखिलं हन्ति तिमिरं भास्करो यथा॥२॥
एक एव बली जीवो लग्नस्थोऽरिष्टसञ्चयम्।
हन्ति पापक्षयं भक्त्या प्रणाम इव शूलिनः॥३॥
एक एव विलग्नेशः केन्द्रसंस्थो बलान्वितः।
अरिष्टं निखिलं हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा॥४॥
शुक्लपक्षे क्षपाजन्म लग्ने सौम्यनिरीक्षिते।
विपरीतं कृष्णपक्षे तथारिष्टविनाशनम्॥५॥

पराशर जी बोले हे मैत्रेय! मैंने आपसे अरिष्ट योगों को कहा, अब मैं अरिष्टों के भङ्गकारक योगों को कहता हूँ। शुभाशुभ को सम्यग् रूप से जानकर फलादेश करना चाहिए। लग्न से केन्द्र में बुध, गुरु, शुक्र सभी हों अथवा एक भी हों तो वे सभी अरिष्टों का नाश कर देते हैं, जैसे कि एक सूर्य समस्त अन्धकार का नाश कर देता है। बलयुक्त गुरु लग्न में स्थित हो तो सभी अरिष्ट का नाश कर देता है, जैसे भक्तिपूर्वक शिव जी को प्रणाम करने से ही वे सभी पापों को नष्ट कर देते हैं। लग्नाधीश बलवान होकर अकेला भी केन्द्र में हो तो भी सभी अरिष्ट का नाश कर देता है, जैसे महादेव द्वारा त्रिपुर का नाश किया गया था। शुक्ल पक्ष की रात्रि में जन्म हो, लग्न को शुभ ग्रह द्वारा देखा जाता हो अथवा कृष्ण पक्ष में दिन का जन्म हो और पाप ग्रहों द्वारा लग्न को देखा जाता हो तो सभी प्रकार के अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं॥१-५॥

व्ययस्थाने यदा सूर्यस्तुलालग्ने तु जायते।
जीवेत् स शतवर्षाणि दीर्घायुर्बालको भवेत्॥६॥
गुरुभौमौ यदा युक्तौ गुरुदृष्टोऽथ वा कुजः।
हत्वाऽरिष्टमशेषं च जनन्याः शुभकृद्भवेत्॥७॥
चतुर्थदशमे पापः सौम्यमध्ये यदा भवेत्।
पितुः सौख्यकरो योगः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः॥८॥
सौम्यान्तरगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः।
सद्यो नाशयतेऽरिष्टं तद्भावोत्थफलं न तत्॥९॥

जिस जातक के जन्म में तुला लग्न हो और व्ययस्थान में सूर्य हो तो वह बालक १०० वर्ष तक जीवित रहता है। मंगल यदि गुरु से युक्त हो अथवा दृष्ट हो तो समस्त अरिष्ट का नाश करता है और माता के लिए भी शुभकारक होता है। चतुर्थ-दशम में पाप ग्रह हो, शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण में हो तो यह योग पिता के लिए शुभकारक होता है। शुभ ग्रहों के बीच में पाप ग्रह हों अथवा केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हों तो वे शीघ्र ही समस्त अरिष्टों का नाश करते हैं। उस भाव का अशुभ फल नहीं होता ॥६-१०॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामरिष्टभङ्गाध्यायः ॥११॥

अथ भावविवेकाध्यायः ॥१२॥

मैत्रेय उवाच

अरिष्टं तत्प्रभङ्गं च श्रुतं त्वत्तो मया मुने! ।
कस्माद् भावात् फलं किं किं विचार्यमिति मे वद ॥१॥

मैत्रेय जी कहते हैं कि हे मुने! मैंने अरिष्ट तथा अरिष्टभङ्गाध्याय को सुना। अब किस-किस भाव से क्या-क्या विचार करना चाहिए, यह मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

देहं रूपं च ज्ञानं च वर्णं चैव बलाऽबलम् ।
सुखं दुःखं स्वभावञ्च लग्नभावान्निरीक्षयेत् ॥२॥
धनधान्यं कुटुम्बांश्च मृत्युजालममित्रकम् ।
धातुरत्नादिकं सर्वं धनस्थानान्निरीक्षयेत् ॥३॥
विक्रमं भृत्यभ्रात्रादि चोपदेशप्रयाणकम् ।
पित्रोर्वै मरणं विज्ञो दुश्चिक्याच्च निरीक्षयेत् ॥४॥
वाहनान्यथ बन्धूंश्च मातृसौख्यादिकान्यपि ।
निधिं क्षेत्रं गृहं चापि चतुर्थात् परिचिन्तयेत् ॥५॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय! शरीर, रूप, वर्ण, बलाबल, सुख, दु;ख, स्वभाव—ये सभी लग्नभाव से देखने चाहिए। धन-धान्य, कुटुम्ब, मृत्यु, शत्रु, धातु, रत्नादि—ये सभी विषय द्वितीय भाव से देखने चाहिए। पराक्रम, भृत्य, भाई, उपदेश, यात्रा, माता-पिता का मरण तृतीय भाव से विचार करना चाहिए। वाहन, बन्धु, माता का सुख, निधि, गृह, खेती आदि विषयों का विचार चतुर्थ भाव से करना चाहिए ॥२-५॥

यन्त्र-मन्त्रौ तथा विद्यां बुद्धेश्चैव प्रबन्धकम् ।
पुत्रराज्यापभ्रंशादीन् पश्येत् पुत्रालयाद् बुधः ॥६॥
मातुलान्तकशङ्कानां शत्रूंश्चैव व्रणादिकान् ।
सपत्नीमातरं चापि षष्ठभावान्निरीक्षयेत् ॥७॥
जायामध्वप्रयाणं च वाणिज्यं नष्टवीक्षणम् ।
मरणं च स्वदेहस्य जायाभावान्निरीक्षयेत् ॥८॥
आयू रणं रिपुं चापि दुर्गं मृतधनं तथा ।
गत्यनुकादिकं सर्वं पश्येद्रन्ध्राद्विचक्षणः ॥९॥

यन्त्र, मन्त्र, विद्या, बुद्धि के सहायक, पुत्र, राज्य, हानि—ये सभी पञ्चम भाव से विचार करने चाहिए। मामा की मृत्यु, शङ्का, शत्रु, व्रणादि (फोड़ा फुन्सी, दाद आदि),

सपत्नी, सास आदि का षष्ठ भाव से विचार करना चाहिए। भार्या, यात्रा, वाणिज्य (व्यापार), नष्टदृष्टि, स्वमरण—ये सभी सप्तम भाव से विचार करने चाहिए। आयु, संग्राम, शत्रु, दुर्ग, गत धन और पूर्व एवं अग्रिम जन्म का वृत्तान्त—ये सभी अष्टम भाव से विचार करने चाहिए ।।६-९।।

भाग्यं श्यालं च धर्मं च भ्रातृपत्न्यादिकांस्तथा।
तीर्थयात्रादिकं सर्वं धर्मस्थानान्निरीक्षयेत् ।।१०।।
राज्यं चाकाशवृत्तिं च मानं चैव पितुस्तथा।
प्रवासस्य ऋणस्यापि व्योमस्थानान्निरीक्षणम् ।।११।।
नानावस्तुभवस्यापि पुत्रजायादिकस्य च।
आयं वृद्धिं पशूनां च भवस्थानान्निरीक्षणम् ।।१२।।
व्ययं च वैरिवृत्तान्त-रि:फमन्त्यादिकं तथा।
व्ययाच्चैव हि ज्ञातव्यमिति सर्वत्र धीमता ।।१३।।

भाग्य, शाला, धर्म, भाइयों की स्त्रियाँ, तीर्थयात्रा—ये सभी धर्मस्थान से विचार करने चाहिए। राज्य, आकाशवृत्ति, मान, पिता, विदेशवास एवं ऋण का दशम भाव से विचार करना चाहिए। अनेक प्रकार की वस्तुओं का विचार; पुत्र, स्त्री आदि परिवार का विचार एवं आय, वृद्धि, पशु आदि का विचार एकादश भाव से करना चाहिए। व्यय, शत्रुओं का भेद एवं सभी खर्चसम्बन्धी विचार विद्वान् को द्वादश भाव करना चाहिए ।।१०-१३।।

भावफलों का शुभाऽशुभत्व-कथन

यो यो शुभैर्युतो दृष्टो भावो वा पतिदृष्टयुक्।
युवा प्रबुद्धो राज्यस्थः कुमारो वाऽपि यत्पतिः ।।१४।।
तदीक्षणवशात् तत्तद् भावसौख्यं वदेद् बुधः।
यद्यद् भावपतिर्नष्टस्त्रिकेशाद्यैश्च संयुतः ।।१५।।
भावं न वीक्षते सम्यक् सुप्तो वृद्धो मृतोऽथवा।
पीडितो वाऽस्य भावस्य फलं नष्टं वदेद् ध्रुवम् ।।१६।।

जो भाव शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो और अपने स्वामी से युक्त या दृष्ट हो, युवा आदि शुभ अवस्था में हो तो उस भाव की वृद्धि, जिस भाव के स्वामी वृद्ध अथवा मृत अवस्था में हों और अपने भाव को न देखते हों न ही युक्त हों तो उस भाव का नाश कहना चाहिए ।।१४-१६।।

।। इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां भावविवेकाध्याय: ।।१२।।

अथ तनुभावफलाध्यायः ॥१३॥

सपापो देहपोऽष्टारिव्ययगो देहसौख्यहृत्।
केन्द्रे कोणे स्थितोऽङ्गेशः सदा देहसुखं दिशेत् ॥१॥
लग्नपोऽस्तङ्गतो नीचे शत्रुभे रोगकृद् भवेत्।
शुभाः केन्द्रत्रिकोणस्थाः सर्वरोगहराः स्मृताः ॥२॥

लग्नेश पापग्रह से युक्त हो अथवा लग्न से लग्नेश ६, ८, १२ भाव में हो तो शारीरिक सौख्य नहीं होता। यदि लग्नेश केन्द्र त्रिकोण में हो तो सदा शरीरसुख होता है। यदि लग्नेश अस्त, नीच, शत्रुगृह में हो तो रोगकारक होता है। शुभ ग्रह केन्द्र त्रिकोण में हों तो सभी रोगों को नष्ट कर देते हैं ॥१-२॥

लग्ने चन्द्रेऽथवा क्रूरग्रहैर्दृष्टेऽथवा युते।
शुभदृष्टिविहीने च जन्तोर्देहसुखं न हि ॥३॥
लग्ने सौम्ये सुरूपः स्यात् क्रूरे रूपविवर्जितः।
सौम्यखेटैर्युते दृष्टे लग्ने देहसुखान्वितः ॥४॥

लग्न अथवा चन्द्रमा पर क्रूर ग्रह की दृष्टि हो अथवा पाप ग्रह से युक्त हो तथा शुभग्रह की दृष्टि न हो तो जातक को देहसुख नहीं होता। यदि लग्न में शुभ ग्रह हो तो जातक सुन्दर रूप वाला होता है और लग्न में पाप ग्रह हो तो जातक कुरूप होता है। लग्न सौम्य ग्रह से युक्त हो अथवा दृष्ट हो तो जातक देहसुख से युक्त होता है ॥३-४॥

लग्नेशो ज्ञो गुरुर्वाऽपि शुक्रो वा केन्द्रकोणगः।
दीर्घायुर्धनवान् जातो बुद्धिमान् राजवल्लभः ॥५॥
लग्नेशे चरराशिस्थे शुभग्रहनिरीक्षिते।
कीर्तिश्रीमान् महाभोगी देहसौख्यसमन्वितः ॥६॥
बुधो जीवोऽथवा शुक्रो लग्ने चन्द्रसमन्वितः।
लग्नात् केन्द्रगतो वाऽपि राजलक्षणसंयुतः ॥७॥

लग्नेश बुध, गुरु अथवा शुक्र केन्द्र, त्रिकोण में हो तो जातक दीर्घायु, धनवान, बुद्धिमान और राजा का प्रिय होता है। लग्नाधिप चर राशि में हो और शुभ ग्रह द्वारा देखा जाता हो तो भी जातक यशस्वी, धनी, महाभोगी और शरीरसुख से युक्त होता है। बुध, गुरु अथवा शुक्र लग्न में हो और चन्द्र से युक्त हो अथवा लग्न से केन्द्र में स्थित हो तो जातक राजलक्षण से युक्त होता है ॥५-७॥

ससौरे सकुजे वापि लग्ने मेषे वृषे हरौ।
राश्यंशसदृशे गात्रे स जातो नालवेष्टितः ॥८॥

चतुष्पदगतो भानुः परे वीर्यसमन्विताः ।
द्विस्वभावगता जातौ यमलाविति निर्दिशेत् ॥९॥

जिस जातक का मेष, वृष या सिंह लग्न हो और लग्न में शनि अथवा भौम हो तो लग्न जिस राशि का नवमांश हो, उस राशि का जो अङ्ग हो, उस अङ्ग में नालवेष्टित जन्म लेता है। यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो और शेष ग्रह बलवान होकर द्विस्वभाव राशि में हो तो यमल (जोड़ा) का जन्म हुआ है। ऐसा निर्देश करना चाहिए ॥८-९॥

रवीन्दू एकभावस्थावेकांशकसमन्वितौ ।
त्रिमात्रा च त्रिभिर्मासैः पित्रा भ्रात्रा च पोषितः ॥१०॥
एवं चन्द्राच्च विज्ञेयं फलं जातककोविदैः ।
अथ जातनरस्याङ्गे व्रणचिह्नादिकं ब्रुवे ॥११॥

सूर्य, चन्द्र एक भाव में एक ही नवमांश में स्थित हो तो जातक ३ माताओं के दूध से ३ माह तक पालित होता है, इसके पश्चात् पिता एवं भाई के द्वारा पालित होता है। इसी प्रकार से चन्द्रमा से भी जानना चाहिए। अब मैं जातक के व्रण-चिह्नादि को कहता हूँ।

शिरो नेत्रे तथा कर्णौ नासिके च कपोलकौ ।
हनूर्मुखं च लग्नाद्या तनावाद्यदृकाणके ॥१२॥
मध्यद्रेष्काणगे लग्ने कण्ठोंऽसौ च भुजौ तथा ।
पार्श्वे च हृदये क्रोडे नाभिश्चेति यथाक्रमम् ॥१३॥
वस्तिर्लिङ्गगुदे मुष्कावूरू जानू च जङ्घके ।
पादश्चेत्युदितैर्वाममङ्गं ज्ञेयं तृतीयके ॥१४॥
यस्मिन्नङ्गे स्थितः पापो व्रणं तत्र समादिशेत् ।
नियतं सबुधैः क्रूरैः सौम्यैर्लक्ष्म वदेद् बुधः ॥१५॥

जिस जातक का लग्न प्रथम द्रेष्काण में हो तो लग्न शिर २; १२ नेत्र; ३, ११ कान; ४, १० में हो तो नाक; ५, ९ कपोल; ६, ८ दाढ़ी एवं सप्तम भाव मुख होता है। यदि द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ; २, १२ कन्धा; ३, ११ भुजा; ४, १० पार्श्व; ५, ९ हृदय; ६, ८ पेट एवं ७ नाभि होता है। यदि लग्न तृतीय द्रेष्काण में हो तो लग्न वस्ति; २, १२ लिङ्ग एवं गुदा; ३, ११ अण्डकोश; ४, १० जङ्घा; ५, ९ घुटना; ६, ८ घुटने का नीचला भाग एवं ७ में पैर जानना चाहिए। इस प्रकार लग्न से पीछे का ६ भाव बायाँ अङ्ग और आगे का ६ भाव दाहिना अङ्ग समझना चाहिए। जिस अङ्ग में पाप ग्रह हो उस अङ्ग में व्रण होता है। बुधसहित पापग्रह जिस अंग में हो, उस अंग में निश्चित रूप से व्रण होता है। शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो चिह्नमात्र समझना चाहिए ॥१२-१५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां तनुभावफलाध्यायः ॥१३॥

अथ धनभावफलाध्याय: ॥१४॥

पराशर उवाच

धनभावफलं वच्मि शृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।
धनेशो धनभावस्थः केन्द्रकोणगतोऽपि वा ॥१॥
धनवृद्धिकरो ज्ञेयस्त्रिकस्थो धनहानिकृत् ।
धनदश्च धने सौम्यः पापो धनविनाशकृत् ॥२॥
धनाधिपो गुरुर्यस्य धनभावगतो भवेत् ।
भौमेन सहितो वाऽपि धनवान् स नरो भवेत् ॥३॥
धनेशे लाभभावस्थे लाभेशे वा धनं गते ।
तावुभौ केन्द्रकोणस्थौ धनवान् स नरो भवेत् ॥४॥
धनेशे केन्द्रराशिस्थे लाभेशे तत्त्रिकोणगे ।
गुरुशुक्रयुते दृष्टे धनलाभमुदीरयेत् ॥५॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय ! अब मैं धनभाव का फल कहता हूँ, सुनो। धनेश यदि धनभाव में ही हो अथवा केन्द्र त्रिकोण में हो तो धन की वृद्धि होती है और धनेश यदि त्रिक (६, ८, १२) स्थान में हो तो धन की हानि होती है। धनस्थान में शुभ ग्रह धन देने वाले और पाप ग्रह धननाशकारक होते हैं। जिसका धनेश गुरु होकर धनभाव में ही स्थित हो या भौम के साथ हो तो वह मनुष्य धनवान होता है। धनेश लाभस्थान में हो अथवा लाभेश धनस्थान में हो अथवा लाभेश और धनेश केन्द्र त्रिकोण में हो तो जातक धनाढ्य होता है। धनेश केन्द्र में हो और त्रिकोण में लाभेश हो या गुरु-शुक्र से युक्त अथवा दृष्ट हो तो धनलाभ होता है ॥१-५॥

धनेशो रिपुभावस्थो लाभेशस्तद्गतो यदि ।
धनायौ पापयुक्तौ वा दृष्टौ निर्धन एव सः ॥६॥
धनलाभाधिपावस्तौ पापग्रहसमन्वितौ ।
जन्मप्रभृतिदारिद्र्यं भिक्षान्नं लभते नरः ॥७॥
षष्टेऽष्टमे व्यये वाऽपि धनलाभाधिपौ यदि ।
लाभे कुजो धने राहू राजदण्डाद् धनक्षयः ॥८॥

धनेश और एकादशेश षष्ठ भाव में हो और धन, आय भाव में पाप ग्रह हो अथवा पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है। धनेश और लाभेश अस्त हो या पापग्रह से युक्त हो तो जातक जन्म से ही निर्धन होता है और भिक्षान्न से जीवन-यापन करता है। धनेश और लाभेश यदि ६, ८, १२ में हो, एकादश भाव में भौम हो और द्वितीय में राहु हो तो राजदण्ड से जातक का धननाश होता है ॥६-८॥

लाभे जीवे धने शुक्रे धनेशे शुभसंयुते ।
व्यये च शुभसंयुक्ते धर्मकार्ये धनव्ययः ॥९॥
स्वभोच्चस्थे धनाधीशे जातको जनपोषकः ।
परोपकारी ख्यातश्च विज्ञेयो द्विजसत्तम ! ॥१०॥
स्थिते पारावतांशादौ धनेशे शुभसंयुते ।
तद्गृहे सर्वसम्पत्तिर्विनाऽऽयासेन जायते ॥११॥

एकादश स्थान में गुरु हो, धनस्थान में शुक्र हो, धनेश शुभग्रह से युक्त हो और व्ययभाव में शुभ ग्रह हो तो धार्मिक कार्यों में जातक का धन खर्च होता है। धनेश अपने गृह या अपने उच्च में हो तो जातक जनपालक, परोपकारी और विख्यात होता है। यदि धनेश पारावतांशादि शुभ वर्ग में हो और शुभ ग्रह से युक्त हो तो जातक के घर में अनायास ही समस्त सम्पत्ति का आगमन होता है ॥९-११॥

नेत्रेशे बलसंयुक्ते शोभनाक्षो भवेन्नरः ।
षष्ठाष्टमव्ययस्थे च नेत्रवैकल्यवान् भवेत् ॥१२॥
धनेशे पापसंयुक्ते धने पापसमन्विते ।
पिशुनोऽसत्यवादी च वातव्याधिसमन्वितः ॥१३॥

द्वितीयेश बलवान होकर शुभ ग्रह से युक्त हो तो मनुष्य सुन्दर नेत्र वाला होता है। द्वितीयेश लग्न से ६, ८, १२ में हो तो जातक नेत्ररोगी होता है। धनेश पापग्रह से युक्त हो और धनभाव में भी पापग्रह हो तो जातक चुगुलखोर, झूठ बोलने वाला और वात रोग से युक्त होता है ॥१२-१३॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां धनभावफलाध्यायः ॥१४॥

अथ सहजभावफलाध्यायः ॥१५॥

अथ विक्रमभावस्य फलं वक्ष्यामि भो द्विज! ।
सहजे सौम्ययुग्दृष्टे भ्रातृमान् विक्रमी नरः ॥१॥
स-भौमो भ्रातृभावेशो भ्रातृभावं प्रपश्यति ।
भ्रातृक्षेत्रगतो वाऽपि भ्रातृसौख्यं विनिर्दिशेत् ॥२॥

हे ब्राह्मण ! अब मैं तृतीय भाव के फल को कहता हूँ, सुनो । तृतीयेश शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक भाइयों से युक्त और पराक्रमी होता है । तृतीयेश तथा भौम भ्रातृभाव को देखते हों या भ्रातृभाव में ही स्थित हों तो जातक को सहोदर बन्धुओं का सौख्य उत्तम होता है ॥१-२॥

पापयोगेन तौ पापक्षेत्रयोगेन वा पुनः ।
उत्पाट्य सहजान् सद्यो निहन्तारौ न संशयः ॥३॥
स्त्रीग्रहो भ्रातृभावेशः स्त्रीग्रहो भ्रातृभावगः ।
भगिनी स्यात् तथा भ्राता पुंगृहे पुंग्रहो यदि ॥४॥
मिश्रे मिश्रफलं वाच्यं बलाबलविनिर्णयात् ।
मृतौ कुजतृतीयेशौ सहोदरविनाशकौ ॥५॥
केन्द्रत्रिकोणगे वाऽपि स्वोच्चमित्रस्ववर्गजे ।
कारके सहजेशे वा भ्रातृसौख्यं विनिर्दिशेत् ॥६॥

जिसके जन्माङ्ग में सहजेश और मंगल पापग्रह से युक्त और पापराशि में हों तो शीघ्र ही सहोदर बन्धुओं के नाशकारक होते हैं । तृतीय भाव में स्त्रीग्रह या तृतीय भावेश स्त्रीग्रह हो तो जातक को अधिक बहिन एवं पुरुष राशि या पुरुष ग्रह हो तो अधिक भाई का सुख होता है । यदि मिश्र (स्त्री-पुरुष ग्रह) हो तो भाई और बहिनों का सुख प्राप्त होता है ।

भौम तथा तृतीयेश अष्टम स्थान में हो तो सहोदर भाईयों का विनाशकारक होता है । यदि दोनों केन्द्र त्रिकोण अपने उच्च, अपने मित्र, अपने वर्ग में हों तो जातक को सहोदरों का सुख कहना चाहिए ॥३-६॥

भ्रातृभे बुधसंयुक्ते तदीशे चन्द्रसंयुते ।
कारके मन्दसंयुक्ते भगिन्येकाग्रतो भवेत् ॥७॥
पश्चात् सहोदरोऽप्येकस्तृतीयस्तु मृतो भवेत् ।
कारके राहुसंयुक्ते सहजेशे तु नीचगे ॥८॥
पश्चात् सहोदराभावं पूर्वं तु तत्त्रयं वदेत् ।
भ्रातृस्थानाधिपे केन्द्रे कारके तत्त्रिकोणगे ॥९॥

जीवेन सहिते चोच्चे ज्ञेया द्वादश सोदराः ।
तत्र ज्येष्ठद्वयं तद्वज्जातकाच्च तृतीयकम् ॥१०॥
सप्तमं नवमं चैव द्वादशं च मृतं वदेत् ।
शेषाः सहोदराः षड् वै भवेयुर्दीर्घजीवनाः ॥११॥

भ्रातृस्थान में बुध, तृतीयेश चन्द्र से युक्त हो, भ्रातृकारक ग्रह शनि से युक्त हों तो जातक से पूर्व एक बहिन और बाद में एक भाई होता है तथा तीसरा जन्म लेकर नष्ट हो जाता है। भ्रातृकारक ग्रह राहु से युक्त हो और तृतीयेश अपने नीच राशि का हो तो अपने से छोटे भाई का अभाव और अपने से बड़े ३ सहोदर होते हैं। भ्रातृस्थानाधिप केन्द्र में हो और भ्रातृकारक ग्रह उससे त्रिकोण में यदि गुरु के साथ अपने उच्च राशि का हो तो १२ सहोदर होते हैं। उनमें से जातक से बड़े २ एवं तीसरा, सप्तम, नवम और द्वादश मृत होते हैं तथा शेष ६ सहोदर दीर्घायु होते हैं ॥७-११॥

व्ययेशेन युतो भौमो गुरुणा सहितोऽपि वा ।
भ्रातृभावे स्थिते चन्द्रे सप्तसंख्यास्तु सोदराः ॥१२॥
भ्रातृस्थाने शशियुते केवलं पुंग्रहेक्षिते ।
सहजा भ्रातरो ज्ञेयाः शुक्रयुक्तेक्षितेऽन्यथा ॥१३॥
अग्रे जातं रविर्हन्ति पृष्ठे जातं शनैश्चरः ।
अग्रजं पृष्ठजं हन्ति सहजस्थो धरासुतः ॥१४॥
एतेषां विप्र! योगानां बलाबलविनिर्णयात् ।
भ्रातृणां भगिनीनां वा जातकस्य फलं वदेत् ॥१५॥

यदि द्वादशेश मंगल अथवा गुरु से युक्त हो और तृतीय भाव में चन्द्र स्थित हो तो ७ सहोदर होते हैं। यदि तृतीय भाव में चन्द्रमा हो और उस पर केवल पुरुष ग्रह की दृष्टि हो तो सहोदर भाई और शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो बहिन जान लेना चाहिए।

तृतीय स्थान में रवि हो तो बड़े भाई का, शनि हो तो अपने से छोटे भाई का, मंगल हो तो बड़े-छोटे दोनों भाइयों का नाशकारक होता है, लेकिन भौम तृतीयेश हो तो नाश नहीं होता। हे विप्र! इन योगों के बलाबल को देखकर भाई या बहिन का शुभाशुभ फल अवगत करना चाहिए ॥१२-१५॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सहजभावफलाध्यायः ॥१५॥

अथ सुखभावफलाध्यायः ॥१६॥

पराशर उवाच

उक्तं तृतीयभावस्य फलं संक्षेपतो मया।
सुखभावफलं चाऽथ कथयामि द्विजोत्तम! ॥१॥
सुखेशे सुखभावस्थे लग्नेशे तद्गतेऽपि वा।
शुभदृष्टे च जातस्य पूर्णं गृहसुखं वदेत् ॥२॥
स्वगेहे स्वांशके स्वोच्चे सुखस्थानाधिपो यदि।
भूमियानगृहादीनां सुखं वाद्यभवं तथा ॥३॥
कर्माधिपेन संयुक्ते केन्द्रे कोणे गृहाधिपे।
विचित्रसौधप्राकारैर्मण्डितं तद्गृहं वदेत् ॥४॥
बन्धुस्थानेश्वरे सौम्ये शुभग्रहयुतेक्षिते।
शशिजे लग्नसंयुक्ते बन्धुपूज्यो भवेन्नरः ॥५॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय ! मैंने तृतीय भाव का फल संक्षेप में कहा। अब मैं चतुर्थ भाव को कहता हूँ। चतुर्थेश चतुर्थ भाव में हो, लग्नेश भी सुखभाव में ही हो और शुभ ग्रह द्वारा दृष्ट हो तो जातक को गृहसम्बन्धी सुख उत्तम होता है। चतुर्थ स्थानाधिप स्वगृह, स्वनवमांश, अपने उच्च राशि में स्थित हो तो जातक को भूमि, सवारी, गृहादि सुख से पूर्ण जानना चाहिए और वाद्य-गान आदि से भी उसे सुख प्राप्त होता है। चतुर्थेश दशमेश के साथ होकर केन्द्र त्रिकोण में स्थित हो तो जातक का विशिष्ट श्रेणी का मकान होता है। चतुर्थेश शुभ ग्रह हो अथवा शुभ ग्रह से युत हो या दृष्ट हो, लग्न में बुध हो तो जातक बन्धुओं द्वारा पूज्य (श्रेष्ठ) होता है ॥१-५॥

मातुःस्थाने शुभयुते तदीशे स्वोच्चराशिगे।
कारके बलसंयुक्ते मातुर्दीर्घायुरादिशेत् ॥६॥
सुखेशे केन्द्रभावस्थे तथा केन्द्रस्थितो भृगुः।
शशिजे स्वोच्चराशिस्थे मातुः पूर्णं सुखं वदेत् ॥७॥
सुखे रवियुते मन्दे चन्द्रे भाग्यगते सति।
लाभस्थानगते भौमो गोमहिष्यादिलाभकृत् ॥८॥
चरगेहसमायुक्ते सुखे तद्राशिनायके।
षष्ठे व्यये स्थिते भौमे नरः प्राप्नोति मूकताम् ॥९॥
लग्नस्थानाधिपे सौम्ये सुखेशे नीचराशिगे।
कारके व्ययभावस्थे सुखेशे लाभसङ्गते ॥१०॥
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते वाहनस्य सुखं वदेत्।

वाहने सूर्यसंयुक्ते स्वोच्चे तद्भावनायके ॥११॥
शुक्रेण संयुते वर्षे द्वात्रिंशे वाहनं भवेत्।
कर्मेशेन युते बन्धुनाथे तुङ्गांशसंयुते ॥१२॥
द्विचत्वारिंशके वर्षे नरो वाहनभाग् भवेत्।
लाभेशे सुखराशिस्थे सुखेशे लाभसंयुते ॥१३॥
द्वादशे वत्सरे प्राप्ते जातो वाहनभाग् भवेत्।
शुभं शुभत्वे भावस्य पापत्वे फलमन्यथा ॥१४॥

चतुर्थ भाव में शुभ ग्रह हो और चतुर्थेश उच्च राशि का हो तथा मातृकारक ग्रह बलयुक्त हो तो उस जातक की माता दीर्घायु होती है और उसे मातृसुख उत्तम होता है। चतुर्थेश तथा शुक्र केन्द्र में हो और बुध अपने उच्च राशि में स्थित हो तो जातक माता से पूर्ण सुख प्राप्त करता है। चतुर्थ भाव में सूर्य हो, नवम स्थान में शनि और चन्द्र हो, एकादश स्थान में मंगल हो तो जातक को गाय, भैंस आदि पशुओं से लाभ होता है। चतुर्थ भाव में चरसंज्ञक राशि हो, उसका स्वामी और मंगल षष्ठ, द्वादश में स्थित हो तो वह जातक गूंगा होता है। लग्नेश शुभ ग्रह हो और चतुर्थेश अपनी नीच राशि का हो, चतुर्थ भावकारक ग्रह द्वादश में हो, चतुर्थेश एकादश भाव में हो तो जातक को १२ वें वर्ष में वाहनों का सुख प्राप्त होता है। चतुर्थ भाव में सूर्य हो, चतुर्थेश अपनी उच्च राशि का हो और उसी में शुक्र भी स्थित हो तो जातक को ३२ वें वर्ष में वाहनों का सुख प्राप्त होता है। चतुर्थेश अपने उच्च राशि का होकर दशमेश के साथ हो तो जातक को ४२ वें वर्ष में वाहनों से सुख प्राप्त होता है। एकादशेश चतुर्थ में और चतुर्थेश एकादश भाव में हो तो जातक को १२ वें वर्ष में वाहन से सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार चतुर्थ भाव में शुभग्रह हो तो चतुर्थ भावसम्बन्धी फल शुभ और पापग्रह हो तो चतुर्थ भावसम्बन्धी फल अशुभ जानना चाहिए ॥६-१४॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सुखभावफलाध्यायः ॥१६॥

अथ पञ्चमभावफलाध्यायः ॥१७॥

पराशर उवाच

अथ पञ्चमभावस्य कथयामि फलं द्विज!।
लग्नपे सुतभावस्थे सुतपे च सुते स्थिते ॥१॥
केन्द्रत्रिकोणसंस्थे वा पूर्णं पुत्रसुखं वदेत्।
षष्ठाष्टमव्ययस्थे तु सुताधीशे त्वपुत्रता ॥२॥
सुतेशेऽस्तं गते वाऽपि पापाक्रान्ते च निर्बले।
तदा न जायते पुत्रो जातो वा म्रियते ध्रुवम् ॥३॥
षष्ठस्थाने सुताधीशे लग्नेशे कुजसंयुते।
म्रियते प्रथमापत्यं काकवन्ध्या च गेहिनी ॥४॥
सुताधीशो हि नीचस्थो व्ययषष्ठाष्टमस्थितः।
काकवन्ध्या भवेन्नारी सुते केतुबुधौ यदि ॥५॥
सुतेशो नीचगो यत्र सुतस्थानं न पश्यति।
तत्र सौरिबुधौ स्यातां काकवन्ध्यात्वमाप्नुयात् ॥६॥
भाग्येशो मूर्तिवर्ती चेत् सुतेशो नीचगो यदि।
सुते केतुबुधौ स्यातां सुतं कष्टाद् विनिर्दिशेत् ॥७॥
षष्ठाष्टमव्ययस्थो वा नीचो वा शत्रुराशिगः।
सुतेशश्च सुते तस्य कष्टात् पुत्रं विनिर्दिशेत् ॥८॥

हे द्विज ! अब मैं पञ्चम भाव का फल कहता हूँ, लग्नेश या पञ्चमेश पञ्चम भाव में स्थित हों अथवा केन्द्र त्रिकोण में बैठे हों तो जातक को पूर्ण पुत्रसुख होता है। यदि पञ्चमेश ६,८,१२ भाव में हो तो जातक पुत्ररहित होता है। पञ्चमेश अस्त हो या निर्बल होकर पापाक्रान्त हो तो जातक को पुत्र नहीं होता या पुत्र होकर मर जाता है। पञ्चमेश षष्ठ स्थान में हो और लग्नेश मंगल से युक्त हो तो जातक को एक पुत्र होकर मर जाता है और उसकी स्त्री फिर काकवन्ध्या हो जाती है। पञ्चमेश अपने नीच राशि का होकर ६,८,१२ में स्थित हो तो उस जातक की स्त्री काकवन्ध्या होती है अथवा पुत्रस्थान में बुध और केतु हो तो उसकी स्त्री काकवन्ध्या होती है या पञ्चमेश अपने नीच में होकर पुत्रस्थान को नहीं देखता हो और सुतभाव में शनि-बुध हो तो भी उसकी स्त्री काकवन्ध्या होती है। लग्न में नवमेश हो और पुत्रेश नीच में हो, पञ्चम भाव में केतु-बुध हों तो अत्यधिक कष्ट (धर्माचरण) से पुत्र की प्राप्ति होती है। पुत्रेश ६,८,१२ भाव में हो या शत्रुराशि का हो या नीच राशि में होकर पुत्रस्थान में स्थित हो तो भी जातक को प्रयत्न से पुत्र प्राप्त होता है ॥१-८॥

पुत्रभावे बुधक्षेत्रे मन्दक्षेत्रेऽथवा पुनः ।
मन्दे मान्दियुते दृष्टे तदा दत्तादयः सुताः ॥९॥
रविचन्द्रौ यदैकस्थावेकांशकसमन्वितौ ।
त्रिमातृभिरसौ यद्वा द्विपित्राऽपि च पोषितः ॥१०॥
पञ्चमे षड्ग्रहैर्युक्ते तदीशे व्ययराशिगे ।
लग्नेशेन्दू बलाढ्यौ चेत् तदा दत्तसुतोद्भवः ॥११॥
सुते ज्ञजीवशुक्रैश्च सबलैरवलोकिते ।
भवन्ति बह्वः पुत्राः सुतेशे हि बलान्विते ॥१२॥

पञ्चम भाव बुध (मिथुन, कन्या) का क्षेत्र हो अथवा शनि (मकर, कुम्भ) का क्षेत्र हो और उसमें शनि, मान्दि गुलिक से युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक के दत्तक पुत्र होते हैं। सूर्य, चन्द्र एक राशि में हों और एक ही नवमांश हों तो जातक का तीन माताओं अथवा दो पिता के द्वारा पोषण होता है। पञ्चम भाव में षड्ग्रह योग हो और पञ्चमेश व्ययस्थान में हो, लग्नेश और चन्द्र बलवान हो तो जातक के दत्तक पुत्र होते हैं। पञ्चम भाव में बुध, गुरु, शुक्र हों और पञ्चमेश बलवान होकर उसे देखते हों तो जातक को बहुत पुत्र होते हैं ॥९-१२॥

सुतेशे चन्द्रसंयुक्ते तद्द्रेष्काणगतेऽपि वा ।
तदा हि कन्यकोत्पत्तिः प्रवदेद् दैवचिन्तकः ॥१३॥
सुतेशे चरराशिस्थे राहुणा सहिते विधौ ।
पुत्रस्थानं गते मन्दे परजातं वदेच्छिशुम् ॥१४॥
लग्नादष्टमगे चन्द्रे चन्द्रादष्टमगे गुरौ ।
पापग्रहैर्युते दृष्टे परजातो न संशयः ॥१५॥

पञ्चमेश चन्द्र से युक्त हो और चन्द्र के ही द्रेष्काण में स्थित हो तो जातक को कन्या की प्राप्ति होती है, ऐसा दैवचिन्तक को कहना चाहिए। पुत्रेश चरराशिगत हो और राहु से युक्त चन्द्रमा हो तथा पुत्रभाव में शनि बैठा हो तो जातक परजात होता है। लग्न से अष्टम में चन्द्रमा और चन्द्रमा से अष्टम में गुरु हो और उसमें पापग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो वह जातक परजात होता है; इसमें संशय नहीं है ॥१३-१५॥

पुत्रस्थानाधिपे स्वोच्चे लग्नाद्वा द्वित्रिकोणगे ।
गुरुणा संयुते दृष्टे पुत्रभाग्यमुपैति सः ॥१६॥
त्रिचतुःपापसंयुक्ते सुते सौम्यविवर्जिते ।
सुतेशे नीचराशिस्थे नीचसंस्थो भवेच्छिशुः ॥१७॥

पञ्चमेश अपने उच्च राशि का होकर २, ३, १, ५, ९ स्थान में हो और गुरु से युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक को पूर्ण पुत्रसुख प्राप्त होता है। पञ्चम भाव में ३ अथवा ४ पापग्रह स्थित हों, शुभ ग्रह से हीन हों, पञ्चमेश अपने नीच राशि का हो तो जातक को नीच कर्म करने वाला पुत्र होता है ॥१६-१७॥

पुत्रस्थानं गते जीवे तदीशे भृगुसंयुते।
द्वात्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे वत्सरे पुत्रसम्भवः ॥१८॥
सुतेशे केन्द्रभावस्थे कारकेण समन्विते।
षट्त्रिंशे त्रिंशदब्दे च पुत्रोत्पत्तिं विनिर्दिशेत् ॥१९॥
लग्नाद् भाग्यगते जीवे जीवाद् भाग्यगते भृगौ।
लग्नेशे भृगुयुक्ते वा चत्वारिंशे सुतं वदेत् ॥२०॥
पुत्रस्थानं गते राहौ तदीशे पापसंयुते।
नीचराशिगतो जीवो द्वात्रिंशे पुत्रमृत्युदः ॥२१॥
जीवात् पञ्चमगे पापे लग्नात् पञ्चमगेऽपि च।
षट्त्रिंशे च त्रयस्त्रिंशे चत्वारिंशे सुतक्षयः ॥२२॥
लग्ने मान्दिसमायुक्ते लग्नेशे नीचराशिगे।
षट्पञ्चाशत्तमेऽब्दे च पुत्रशोकसमाकुलः ॥२३॥

पुत्र स्थान में जीव हो और पञ्चमेश शुक्र के साथ हो तो जातक को ३२ या ३३ वर्ष में पुत्र- प्राप्ति का योग होता है। पञ्चमेश केन्द्र में स्थित हो, कारक ग्रह के साथ हो तो ३० या ३६ वर्ष में पुत्र होता है। लग्न से नवम भाव में गुरु हो और गुरु से नवम में शुक्र हो अथवा लग्नेश शुक्र से युक्त हो तो ४० वर्ष में पुत्र होता है। पञ्चम भाव में राहु हो, पञ्चमेश पापग्रह से युक्त हो और गुरु अपनी नीच राशि का हो तो ३२ वर्ष में पुत्र का नाश होता है। गुरु से अथवा लग्न से पञ्चम भाव में पापग्रह हों तो ३३, ३६ या ४० वर्ष में पुत्र का क्षय (मृत्यु) होता है। लग्न में गुलिक हो और लग्नेश अपनी नीच राशि का हो तो उस जातक को ५६वें वर्ष में पुत्रशोक उपस्थित होता है ॥१८-२३॥

चतुर्थे पापसंयुक्ते षष्ठभावे तथैव हि।
सुतेशे परमोच्चस्थे लग्नेशेन समन्विते ॥२४॥
कारके शुभसंयुक्ते दशसंख्यास्तु सूनवः।
परमोच्चगते जीवे धनेशे राहुसंयुते ॥२५॥
भाग्येशे भाग्यसंयुक्ते संख्याता नव सूनवः।
पुत्रभाग्यगते जीवे सुतेशे बलसंयुते ॥२६॥
धनेशे कर्मभावस्थे वसुसंख्यास्तु सूनवः।
पञ्चमात् पञ्चमे मन्दे सुतस्थे च तदीश्वरे ॥२७॥
सूनवः सप्तसंख्याश्च द्विगर्भे यमलौ वदेत्।
वित्तेशे पञ्चमस्थाने सुतस्थे च सुताधिपे ॥२८॥
जायन्ते षट् सुतास्तस्य तेषां च त्रिप्रजामृतिः।
मन्दात् पञ्चमगे जीवे जीवात् पञ्चमगे शनौ ॥२९॥

सुतभे पापसंयुक्ते पुत्रमेकं विनिर्दिशेत्।
पञ्चमे पापयुक्ते वा जीवात् पञ्चमगे शनौ ॥३०॥
पत्न्यन्तरे पुत्रलाभं कलत्रत्रयभाग् भवेत्।
पञ्चमे पापसंयुक्ते जीवात् पञ्चमगे शनौ ॥३१॥
लग्नेशे धनभावस्थे सुतेशो भौमसंयुतः।
जातं जातं शिशुं हन्ति दीर्घायुश्च स्वयं भवेत् ॥३२॥

चतुर्थ स्थान में पापग्रह हो, षष्ठ भाव में भी पापग्रह हो, पञ्चमेश अपने परम उच्च स्थान में लग्नेश के साथ हो, पुत्रकारक ग्रह शुभ ग्रह के साथ हो तो उस जातक के दश पुत्र होते हैं। गुरु अपने परमोच्च में हो, धनेश राहु से युक्त हो, नवमेश नवम भाव में हो तो नौ पुत्र होते हैं। गुरु पञ्चम अथवा नवम भाव में हो, पुत्रेश बलवान हो, धनेश दशम भाव में स्थित हो तो उस जातक के आठ पुत्र होते हैं। पञ्चम से पञ्चम भाव में शनि हो, पञ्चमेश पुत्रस्थान में बैठा हो तो उस जातक के सात पुत्र होते हैं। इन पुत्रों में से दो गर्भों में दो-दो पुत्र (यमल) होते हैं। द्वितीयेश और पञ्चमेश पञ्चम भाव में हों तो ६ पुत्र होते हैं, परन्तु उनमें से ३ मर जाते हैं। शनि से पञ्चम में गुरु हो और गुरु से पञ्चम में शनि हो, पुत्रस्थान पापग्रह से युक्त हो तो १ पुत्र होता है। पञ्चम भाव पापग्रह से युक्त हो अथवा गुरु से पञ्चम में शनि हो तो जातक को दूसरी या तीसरी पत्नी से पुत्र होते हैं। पञ्चम भाव में पापग्रह हो, गुरु से पञ्चम भाव में शनि हो, लग्नेश द्वितीय भाव में हो और पञ्चमेश मंगल से युक्त हो तो उस जातक के पुत्र होकर भी मर जाते हैं, परन्तु वह स्वयं दीर्घायु होता है ॥२४-३२॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पञ्चमभावफलाध्यायः ॥१७॥

अथ षष्ठभावफलाध्यायः ॥१८॥

पराशर उवाच

अथ विप्र! फलं वक्ष्ये षष्ठभावसमुद्भवम्।
देहे रोगव्रणाद्यं तत् श्रूयतामेकचेतसा ॥१॥
षष्ठाधिपः स्वगेहे वा देहे वाऽप्यष्टमे स्थितः।
तदा व्रणो भवेद्देहे षष्ठराशिसमाश्रिते ॥२॥
एवं पित्रादिभावेशास्तत्तत्कारकसंयुताः।
व्रणाधिपयुताश्चापि षष्ठाष्टमयुता यदि ॥३॥
तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम्।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भौमेन ज्ञेन नाभिषु ॥४॥
गुरुणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे।
शशिना राहुणा कुक्षौ केतुना च तथा भवेत् ॥५॥
लग्नाधिपः कुजक्षेत्रे बुधभे यदि संस्थितः।
यत्र कुत्र स्थितो ज्ञेन वीक्षितो मुखरुक्प्रदः ॥६॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय जी ! अब मैं शारीरिक रोग, व्याधि, व्रण आदि के कारक षष्ठ भाव का फल कहता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। षष्ठेश स्वगृह में या लग्न में या अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक के शरीर में व्रण (घाव) होते हैं। षष्ठ भाव में जो राशि हो, उसका जो अंग हो, उस अंग में विशेष व्रण होते हैं। इसी प्रकार पिता आदि भावों के अधिपति षष्ठेश से युक्त होकर ६, ८ भावों से युक्त हो तो पिता आदि अपने सम्बन्धियों को व्रण कहना चाहिए। यदि सूर्य षष्ठ स्थान के अधिपति होकर उक्त स्थान में स्थित हो तो मस्तक में, चन्द्र से मुख में, भौम से कण्ठ में, बुध से नाभि में, गुरु से नासिका में, शुक्र से नयन में, शनि से पैर में एवं राहु अथवा केतु से कुक्षि (पेट) में व्रण (घाव) कहना चाहिए। लग्नेश भौम (१, ८) के क्षेत्र अथवा बुध के क्षेत्र (३, ६) में से किसी भाव में स्थित हो और बुध से दृष्ट हो तो जातक के मुँह में व्रण होते हैं ॥१-६॥

कुष्ठरोगकारक योग

लग्नाधिपौ कुजबुधौ चन्द्रेण यदि संयुतौ।
राहुणा शनिना सार्द्धं कुष्ठं तत्र विनिर्दिशेत् ॥७॥
लग्नाधिपं विना लग्ने स्थितश्चेत्तमसा शशी।
श्वेतकुष्ठं तदा कृष्णकुष्ठं च शनिना सह ॥८॥
कुजेन रक्तकुष्ठं स्यात्तत्तदेवं विचारयेत् ॥८½॥

लग्नेश मंगल या बुध हो और चन्द्र, राहु या शनि से युक्त हो तो जातक को कुष्ठ रोग का प्रकोप रहता है। लग्नेश न हो और चन्द्र लग्न में राहु के साथ स्थित हों तो श्वेत कुष्ठ का योग होता है और शनि के साथ स्थित हो तो कृष्ण कुष्ठ एवं भौम के साथ हो तो रक्त कुष्ठकारक योग होता है ॥७-८½॥

गण्डादिकारकयोग कथन

लग्ने षष्ठाष्टमाधीशौ रविणा यदि संयुतौ ॥९॥
ज्वरगण्डः कुजे ग्रन्थिः शस्त्रव्रणमथापि वा।
बुधेन पित्तं गुरुणा रागाभावं विनिर्दिशेत् ॥१०॥
स्त्रीभिः शुक्रेण शनिना वायुना संयुतो यदि।
गण्डश्चाण्डालतो नाभौ तमःकेतुयुते भयम् ॥११॥
चन्द्रेण गण्डः सलिलैः कफश्लेष्मादिना भवेत्।
एवं पित्रादिभावानां तत्तत्कारकयोगतः ॥१२॥
गण्डं तेषां वदेदेवमूह्यमत्र मनीषिभिः ॥१२½॥

षष्ठेश और अष्टमेश लग्न में सूर्य के साथ युक्त हो तो ज्वरगण्ड, मंगल से युक्त होने पर गठिया वात अथवा शस्त्र से आघात, बुध से युक्त होने पर पित्तसम्बन्धी व्याधि, गुरु से युक्त होने पर रोग का अभाव, शुक्र से युक्त रहने पर पत्नी द्वारा रोग की उत्पत्ति, शनि से युक्त रहने पर वायुसम्बन्धी रोग का प्रकोप, राहु से युक्त हो तो अन्त्यज जाति से आघात एवं केतु से युक्त रहने पर नाभि में व्रण (घाव) होता है। चन्द्र से युक्त होने पर जल से उत्पन्न रोग अथवा कफसम्बन्धी व्याधि कहनी चाहिए। इसी प्रकार पितृ आदि भावों से उक्त योग कारक हो तो पिता आदि परिवार के सदस्यों को भी उक्त रोगसम्बन्धी रोगविचार करना चाहिए ॥९-१२½॥

रोगप्राप्तिकथन

रोगस्थानगते पापे तदीशे पापसंयुते ॥१३॥
राहुणा संयुते मन्दे सर्वदा रोगसंयुतः।
रोगस्थानगते भौमे तदीशे रन्ध्रसंयुते ॥१४॥
षड्वर्षे द्वादशे वर्षे ज्वररोगी भवेन्नरः।
षष्ठस्थानगते जीवे तद्गृहे चन्द्रसंयुते ॥१५॥
द्वाविंशैकोनविंशेऽब्दे कुष्ठरोगं विनिर्दिशेत्।
रोगस्थानं गतो राहुः केन्द्रे मान्दिसमन्विते ॥१६॥
लग्नेशे नाशराशिस्थे षड्विंशे क्षयरोगता।
व्ययेशे रोगराशिस्थे तदीशे व्ययराशिगे ॥१७॥
त्रिंशद्वर्षैकोनवर्षे गुल्मरोगं विनिर्दिशेत्।
रिपुस्थानगते चन्द्रे शनिना संयुते सति ॥१८॥

पञ्चपञ्चाशदब्देषु रक्तकुष्ठं विनिर्दिशेत्।
लग्नेशे लग्नराशिस्थे मन्दे शत्रुसमन्विते ॥१९॥
एकोनषष्टिवर्षे तु वातरोगार्दितो भवेत्।
रन्ध्रेशे रिपुराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंस्थिते ॥२०॥
चन्द्रे षष्ठेशसंयुक्ते वसुवर्षे मृगाद्भयम्।
षष्ठाष्टमगतो राहुस्तस्मादष्टगते शनौ ॥२१॥
जातस्य जन्मतो विप्र! प्रथमे च द्वितीयके।
वत्सरेऽग्निभयं तस्य त्रिवर्षे पक्षिदोषभाक् ॥२२॥
षष्ठाष्टमगते सूर्ये तद्व्यये चन्द्रसंयुते।
पञ्चमे नवमेऽब्दे तु जलभीतिं विनिर्दिशेत् ॥२३॥
अष्टमे मन्दसंयुक्ते तस्माद्वा द्वादशे कुजः।
त्रिंशाब्दे दशमेऽब्दे तु स्फोटकादि विनिर्दिशेत् ॥२४॥
रन्ध्रेशे राहुसंयुक्ते तदंशे रन्ध्रकोणगे।
द्वाविंशेऽष्टादशे वर्षे ग्रन्थिमेहादिपीडनम् ॥२५॥
लाभेशे रिपुभावस्थे रोगेशे लाभराशिगे।
एकत्रिंशत्समे वर्षे शत्रुमूलाद्धनव्ययः ॥२६॥
सुतेशे रिपुभावस्थे षष्ठेशे गुरुसंयुते।
व्ययेशे लग्नभावस्थे तस्य पुत्रो रिपुर्भवेत् ॥२७॥
लग्नेशे षष्ठराशिस्थे तदीशे षष्ठराशिगे।
दशमैकोनविंशेऽब्दे शुनकाद्भीतिरुच्यते ॥२८॥

रोगस्थान में पाप ग्रह हो और रोगेश भी पाप ग्रह से युक्त हो, साथ में राहु और शनि भी युक्त हो तो जातक सदैव रोगी रहता है। रोगस्थान में मंगल हो, षष्ठेश अष्टम भाव में स्थित हो तो ६ वर्ष या १२ वर्ष में मनुष्य को ज्वररोग होता है। षष्ठ स्थान में गुरु और धन या मीन राशि में चन्द्रमा हो तो १९ वर्ष या २२ वर्ष में कुष्ठ रोग का निर्देश कर देना चाहिए। रोगस्थान में राहु हो, केन्द्र मान्दियुक्त हो और लग्नेश अष्टम भाव में हो तो २६वें वर्ष में क्षयरोग होता है। द्वादशेश रोगस्थान में हो और रोगेश व्ययभाव में हो तो २९वें वर्ष या ३०वें वर्ष में गुल्म रोग का प्रकोप होता है। रोगस्थान में शनियुक्त चन्द्रमा हो तो ५५वें वर्ष में रक्तकुष्ठ रोग होता है। लग्नेश लग्न में हो और षष्ठभाव में शनि हो तो ५९ वें वर्ष में वातरोग का निर्देश करना चाहिए। अष्टमेश षष्ठ भाव में हो और व्ययेश लग्न में स्थित हो तथा षष्ठेश से चन्द्रमा युक्त हो तो ८वें वर्ष में मृग (पशु) से भय जानना चाहिए। षष्ठ, अष्टम भाव में राहु हो और उससे अष्टम में शनि हो तो हे विप्र! १-२ वर्ष में अग्निभय और तीसरे वर्ष में पक्षी से भय होता है। षष्ठ, अष्टम भाव में सूर्य हो और उससे व्यय भाव में चन्द्रमा हो तो ५, ९ वर्ष में जल से भय कहना चाहिए। अष्टम में शनि युक्त हो और

उससे द्वादश में भौम हो तो जन्म से १०वें या ३०वें वर्ष में विस्फोट आदि से भय जानना चाहिए। अष्टमेश राहु से युक्त हो और अपने ही नवमांश में होकर अष्टम से त्रिकोण (५, ९) में हो तो १८वें या २२वें वर्ष में गठिया रोग अथवा प्रमेहादि रोग का अनुभव होता है। लाभेश शत्रुभाव में हो और रोगेश एकादश भाव में स्थित हो तो ३१वें वर्ष में शत्रु से धन का अपहरण होता है। पञ्चमेश षष्ठभाव में हो, षष्ठेश गुरु के साथ हो और व्ययेश लग्न भाव में स्थित हो तो उस जातक का अपना पुत्र ही शत्रु होता है। लग्नेश षष्ठभाव में हो और षष्ठेश भी षष्ठ भाव में ही हो तो १०वें और १९वें वर्ष में कुत्ते से भय उपस्थित होता है ॥१३-२८॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां षष्ठभावफलाध्याय: ॥१८॥

अथ जायाभावफलाध्यायः ॥१९॥

पराशर उवाच

जायाभावफलं वक्ष्ये शृणु त्वं द्विजसत्तम! ।
जायाधिपे स्वभे स्वोच्चे स्त्रीसुखं पूर्णमादिशेत् ॥१॥
कलत्रपो विना स्वर्क्षे व्ययषष्ठाष्टमस्थितः ।
रोगिणीं कुरुते नारीं तथा तुङ्गादिकं विना ॥२॥
सप्तमे तु स्थिते शुक्रेऽतीवकामी भवेन्नरः ।
यत्र कुत्र स्थिते पापयुते स्त्रीमरणं भवेत् ॥३॥

हे द्विजोत्तम ! अब मैं सप्तम (जाया) भाव के फल को कहता हूँ, सुनो । यदि सप्तमेश अपनी राशि में, अपने उच्च में हो तो मनुष्य को पूर्ण स्त्रीसुख जान लेना चाहिए। यदि सप्तमेश अपनी राशि का न होकर व्यय, षष्ठ, अष्टम भाव में स्थित हो परन्तु अपने उच्चादि स्थान का न हो तो उस जातक की पत्नी रोगिणी होती है। यदि स्वोच्च, स्वगृह, स्वमूल त्रिकोणादि स्थान में हो तो वह जातक अत्यन्त कामातुर होता है। सप्तमेश पापग्रहों से युक्त होकर कहीं भी स्थित हो तो उस जातक की स्त्री के लिए मरणकारक योग होता है ॥१-३॥

जायाधीशः शुभैर्युक्तो दृष्टो वा बलसंयुतः ।
तदा जातो धनी मानी सुखसौभाग्यसंयुतः ॥४॥
नीचे शत्रुगृहेऽस्ते वा निर्बले च कलत्रपे ।
तस्यापि रोगिणी भार्या बहुभार्यो नरो भवेत् ॥५॥
मन्दभे शुक्रगेहे वा जायाधीशे शुभेक्षिते ।
स्वोच्चगे तु विशेषेण बहुभार्यो नरो भवेत् ॥६॥

सप्तमेश शुभग्रह से युक्त हो या दृष्ट हो और बलयुक्त हो तो जातक धनी, मानी एवं सुख और सौभाग्य से परिपूर्ण होता है। यदि सप्तमेश नीच का हो अथवा शत्रुगृह में हो या अस्त हो और निर्बल हो तो उस जातक की पत्नी रोगिणी होती है और उसे अधिक स्त्रियाँ होती हैं। सप्तमेश यदि शनि (१०-११) की राशि में हो अथवा शुक्र गृह (२, ७) में हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो वह जातक अधिक भार्या वाला होता है; विशेष रूप से सप्तमेश अपने उच्च, गृह, स्ववर्ग में हो तो अधिक स्त्री वाला होता है ॥४-६॥

वन्ध्यासङ्गो मदे भानौ चन्द्रे राशिसमस्त्रियः ।
कुजे रजस्वला सङ्गो वन्ध्यासङ्गश्च कीर्तितः ॥७॥
बुधे वेश्या च हीना च वणिक् स्त्री वा प्रकीर्तिता ।
गुरौ ब्राह्मणभार्या स्याद् गर्भिणीसङ्ग एव च ॥८॥

हीना च पुष्पिणी वाच्या मन्दराहुफणीश्वरैः ।
कुजेऽथ सुस्तनी मन्दे व्याधिदौर्बल्यसंयुता ॥९॥
कठिनोर्ध्वकुचार्ये च शुक्रे स्थूलोत्तमस्तनी ।
पापे द्वादशकामस्थे क्षीणचन्द्रस्तु पञ्चमे ॥१०॥
जातश्च भार्यावश्यः स्यादिति जातिविरोधकृत् ।
जामित्रे मन्दभौमे च तदीशे मन्दभूमिजे ॥११॥
वेश्या वा जारिणी वाऽपि तस्य भार्या न संशयः ।
भौमांशकगते शुक्रे भौमक्षेत्रगतेऽथवा ॥१२॥
भौमयुक्ते च दृष्टे वा भगचुम्बनभाग् भवेत् ।
मन्दांशकगते शुक्रे मन्दक्षेत्रगतेऽपि च ॥१३॥
मन्दयुक्ते च दृष्टे च शिश्नचुम्बनतत्परः ।
दारेशे स्वोच्चराशिस्थे मन्दे शुभसमन्विते ॥१४॥
लग्नेशो बलसंयुक्तः कलत्रस्थानसंयुतः ।
तद्भार्या सद्गुणोपेता पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥१५॥
कलत्रे तत्परौ वाऽपि पापग्रहसमन्विते ।
भार्याहानिं वदेत्तस्य निर्बले च विशेषतः ॥१६॥
षष्ठाष्टमव्ययस्थाने मदेशो दुर्बलो यदि ।
नीचराशिगतो वापि दारनाशं विनिर्दिशेत् ॥१७॥
कलत्रस्थानगे चन्द्रे तदीशे व्ययराशिगे ।
कारको बलहीनश्च दारसौख्यं न विद्यते ॥१८॥

सप्तम भाव में सूर्य हो तो उस जातक की स्त्री वन्ध्या होती है। चन्द्रमा सप्तम में हो तो राशि के स्वभावतुल्य ही उसकी स्त्री का स्वभाव होता है। मंगल हो तो जातक का रजस्वला और वन्ध्या स्त्री से सम्बन्ध होता है। बुध हो तो वेश्या, अन्त्यज जाति या बनियाँ की स्त्री से सम्बन्ध होता है। सप्तमस्थ गुरु हो तो गर्भवती ब्राह्मणी का सङ्ग होता है। शनि, राहु, केतु सप्तम में हो तो नीच जाति या पुष्पिणी (रजस्वला) का संग होता है। सप्तम में मंगल हो तो सुन्दर स्तन वाली का सङ्ग होता है। शनि हो तो रोग से दुर्बल स्त्री का सङ्ग होता है। गुरु सप्तम रहने से कठोर स्तन वाली, शुक्र हो तो स्थूल और सुन्दर स्तन वाली से सम्बन्ध होता है। १२, ७ वें भाव में पाप ग्रह हो और पञ्चम भाव में क्षीण चन्द्रमा हो तो वह जातक अपनी स्त्री के वश में रहता है। सप्तम में शनि-भौम हो या सप्तमेश के साथ शनि-मंगल हों तो उस जातक की स्त्री वेश्या या परपुरुषगामिनी होती है, इसमें सन्देह नहीं है। शुक्र यदि मंगल के नवमांश में हो या भौम के क्षेत्र में हो अथवा मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक अपनी स्त्री की योनि का चुम्बन करने वाला होता है। यदि शुक्र शनि के नवमांश हो या शनि के क्षेत्र में हो अथवा शनि से युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक दूसरे के लिङ्ग का चुम्बन करता है। सप्तमेश अपने उच्च राशि में हो, सप्तम भाव शुभ ग्रह से

युक्त हो, लग्नेश बलयुक्त होकर सप्तम भाव में स्थित हो तो उस जातक स्त्री सुन्दर गुणों से सुसम्पन्न एवं पुत्र-पौत्रों को बढ़ाने वाली होती है। सप्तम भाव में या सप्तमेश के साथ पाप ग्रह हो तो उस जातक की स्त्री का नाश होता है, विशेष ग्रह निर्बल रहने पर होता है। सप्तमेश बलरहित होकर ६, ८, १२ स्थान में स्थित हो अथवा अपनी नीच राशि में हो तो भी उसकी स्त्री का नाश होता है। सप्तम स्थान में चन्द्र हो और सप्तमेश व्ययभाव में बैठा हो, स्त्रीकारक ग्रह बलहीन हो तो दाम्पत्य सुख का अभाव रहता है ॥७-१८॥

अधिक स्त्रीकारक योग

सप्तमेशे स्वनीचस्थे पापर्क्षे पापसंयुते।
सप्तमे क्लीबराश्यंशे द्विभार्यो जातको भवेत् ॥१९॥
कलत्रस्थानगे भौमे शुक्रे जामित्रगे शनौ।
लग्नेशे रन्ध्रराशिस्थे कलत्रत्रयवान् भवेत् ॥२०॥
द्विस्वभावगते शुक्रे स्वोच्चे तद्राशिनायके।
दारेशे बलसंयुक्ते बहुदारसमन्वितः ॥२१॥

सप्तमेश अपनी नीच राशि का हो और पापग्रह की राशि में पापग्रह हो, सप्तम भाव में नपुंसक ग्रह की राशि का नवमांश हो तो उस जातक की दो स्त्रियाँ होती हैं। सप्तम स्थान में मंगल, शुक्र, शनि हो, लग्नेश अष्टम भाव में स्थित हो तो उस जातक की तीन स्त्रियाँ होती हैं। शुक्र द्विस्वभाव राशि में हो और उस द्विस्वभाव राशि का स्वामी अपने उच्च राशि में हो और सप्तमेश बलवान हो तो उस जातक की बहुत-सी स्त्रियाँ होती हैं ॥१९-२१॥

विवाह का समयज्ञान

दारेशे शुभराशिस्थे स्वोच्चस्वर्क्षगतो भृगुः।
पञ्चमे नवमेऽब्दे तु विवाहः प्रायशो भवेत् ॥२२॥
दारस्थानं गते सूर्ये तदीशे भृगुसंयुते।
सप्तमैकादशे वर्षे विवाहः प्रायशो भवेत् ॥२३॥
कुटुम्बस्थानगे शुक्रे दारेशे लाभराशिगे।
दशमे षोडशाऽब्दे च विवाहः प्रायशो भवेत् ॥२४॥
लग्नकेन्द्रगते शुक्रे लग्नेशे मन्दराशिगे।
वत्सरैकादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥२५॥
लग्नात् केन्द्रगते शुक्रे तस्मात् कामगते शनौ।
द्वादशैकोनविंशे च विवाहः प्रायशो भवेत् ॥२६॥
चन्द्राज्जामित्रगे शुक्रे शुक्राज्जामित्रगे शनौ।
वत्सरेऽष्टादशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥२७॥
धनेशे लाभराशिस्थे लग्नेशे कर्मराशिगे।
अब्दे पञ्चदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥२८॥

धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे।
अब्दे त्रयोदशे प्राप्ते विवाहं लभते नरः ॥२९॥

सप्तमेश शुभग्रह की राशि में बैठा हो और शुक्र अपने उच्च राशि का या स्वक्षेत्र में स्थित हो तो उस जातक का प्रायशः ५ वें या ९ वें वर्ष में विवाह योग आता है। सप्तम भाव में सूर्य हो और सप्तमेश शुक्र से युक्त हो तो प्रायः ७ या ११ वें वर्ष में विवाह योग होता है। द्वितीय भाव में शुक्र हो और सप्तमेश एकादश स्थान में बैठा हो तो १० या १६ वें वर्ष में प्रायः जातक का विवाह योग आता है। लग्न या केन्द्र में शुक्र हो और लग्नेश शनि की राशि में स्थित हो तो ११ वें वर्ष में जातक का विवाह योग होता है। लग्न से केन्द्र में शुक्र हो और शुक्र से सप्तम भाव में शनि हो तो प्रायः १९ या २२ वें वर्ष में उस जातक का विवाह योग उपस्थित होता है। चन्द्रमा से सप्तम में शुक्र हो और शुक्र से सप्तम में शनि बैठा हो तो १८ वें वर्ष में जातक विवाह योग प्राप्त करता है। धनेश लाभ स्थान में हो और लग्नेश दशम भाव में स्थित हो तो १५वें वर्ष में जातक का विवाह योग आता है। धनेश लाभस्थान में और लाभेश धन राशि में स्थित हो तो जातक १३ वें वर्ष में विवाह योग प्राप्त करता है ॥२२-२९॥

रन्ध्राज्जामित्रगे शुक्रे तदीशे भौमसंयुते।
द्वाविंशे सप्तविंशेऽब्दे विवाहं लभते नरः ॥३०॥
दारांशकगते लग्ननाथे दारेश्वरे व्यये।
त्रयोविंशे च षड्विंशे विवाहं लभते नरः ॥३१॥
रन्ध्रेशे दारराशिस्थे लग्नांशे भृगुसंयुते।
पञ्चविंशे त्रयस्त्रिंशे विवाहं लभते नरः ॥३२॥
भाग्याद्भाग्यगते शुक्रे तद्द्वये राहुसंयुते।
एकत्रिंशात्त्रयस्त्रिंशे दारलाभं विनिर्दिशेत् ॥३३॥
भाग्याज्जामित्रगे शुक्रे तद्द्यूने दारनायके।
त्रिंशे वा सप्तविंशाब्दे विवाहं लभते नरः ॥३४॥

अष्टम भाव से सप्तम भाव में शुक्र हो और अष्टमेश मंगल के साथ हो तो जातक २२ या २७ वें वर्ष में विवाह योग प्राप्त करता है। लग्नाधिपति सप्तमेश के नवमांश में हो और सप्तमेश द्वादश भाव में स्थित हो तो उस जातक का विवाह २३ या २६ वें वर्ष में होता है। अष्टमेश लग्न के नवमांश में होकर सप्तम भाव में शुक्र के साथ बैठा हो तो २५ या ३३ वें वर्ष में उस जातक का विवाह योग उपस्थित होता है। भाग्यभाव से नवम में शुक्र हो या उन दोनों स्थानों में से किसी एक स्थान में राहु बैठा हो तो ३१ या ३३ वें वर्ष में स्त्रीलाभ का निर्देश करना चाहिए। नवम भाव से सप्तम स्थान में शुक्र हो और शुक्र से सप्तम में सप्तमेश स्थित हो तो जातक २७ या ३० वर्ष में विवाह योग प्राप्त करता है ॥३०-३४॥

स्त्रीनाश का समय

दारेशे नीचराशिस्थे शुक्रे रन्ध्रारिसंयुते।
अष्टादशे त्रयस्त्रिंशे वत्सरे दारनाशनम् ॥३५॥
मदेशे नाशराशिस्थे व्ययेशे मदराशिगे।
तस्य चैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ॥३६॥
कुटुम्बस्थानगो राहुः कलत्रे भौमसंयुते।
पाणिग्रहे च त्रिदिने सर्पदष्टे वधूमृतिः ॥३७॥
रन्ध्रस्थानगते शुक्रे तदीशे सौरिराशिगे।
द्वादशैकोनविंशाब्दे दारनाशं विनिर्दिशेत् ॥३८॥
लग्नेशे नीचराशिस्थे धनेशे निधनं गते।
त्रयोदशे तु सम्प्राप्ते कलत्रस्य मृतिर्भवेत् ॥३९॥

सप्तमेश अपने नीच राशि का हो और ६, ८ में शुक्र बैठा हो तो १८ या ३३ वें वर्ष में स्त्री का नाश होता है। सप्तमेश अष्टम भाव में बैठा हो और व्ययेश सप्तम भाव में स्थित हो तो उस जातक की स्त्री १९ वें वर्ष में नष्ट हो जाती है। द्वितीय भाव में राहु हो और सप्तम भाव में मंगल युक्त हो तो विवाह से ३ दिन में साँप के काटने से स्त्री का स्वर्गवास होता है। अष्टम स्थान में शुक्र हो और अष्टमेश मकर-कुम्भ राशि में हो तो १२ या १९ वें वर्ष में स्त्री का नाश होता है। लग्नेश अपने नीच राशिगत हों और धनेश अष्टम भाव में हो तो १३ वें वर्ष में उस जातक की स्त्री मृत्यु को प्राप्त हो जाती है ॥३५-३९॥

शुक्राज्जामित्रगे चन्द्रे चन्द्राज्जामित्रगे बुधे।
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे प्रथमं दशमाब्दिकम् ॥४०॥
द्वाविंशे च द्वितीयं च त्रयस्त्रिंशे तृतीयकम्।
विवाहं लभते मर्त्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥४१॥
षष्ठे च भवने भौमः सप्तमे राहुसंस्थितिः।
अष्टमे च यदा सौरिस्तस्य भार्या न जीवति ॥४२॥

शुक्र से सप्तम भाव में चन्द्र हो और चन्द्र से सप्तम भाव में बुध हो, अष्टमेश पञ्चम भाव में बैठा हो तो उस जातक का प्रथम विवाह १० वें वर्ष में, दूसरा २२ वें वर्ष में और तीसरा ३३ वें वर्ष में होता है। इसमें सन्देह नहीं है। षष्ठ भाव में मंगल, सप्तम में राहु हो और अष्टम भाव में शनि स्थित हो तो उस जातक की स्त्री जीवित नहीं रहती ॥४०-४२॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां जायाभावफलाध्याय: ॥१९॥

अथायुर्भावफलाध्यायः ॥२०॥

आयुर्भावफलं चाऽथ कथयामि द्विजोत्तम! ।
आयुःस्थानाधिपः केन्द्रे दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥१॥
आयुःस्थानाधिपः पापैः सह तत्रैव संस्थितः ।
करोत्यल्पायुषं जातं लग्नेशोऽप्यत्र संस्थितः ॥२॥
एवं हि शनिना चिन्ता कार्या तर्कैर्विचक्षणैः ।
कर्माधिपेन च तथा चिन्तनं कार्यमायुषः ॥३॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम! अब मैं आयुर्दाय-भावफल को कहता हूँ। आयु:स्थानाधिप केन्द्र में बैठा हो तो जातक को दीर्घायु प्रदान करता है। अष्टमेश पाप ग्रह के साथ रहकर अष्टम भाव में ही स्थित हो तो जातक अल्पायु होता है और लग्नेश अष्टम में हो तो भी अल्पायु होता है। जिस प्रकार अष्टमेश से आयु का विचार किया जाता है उसी प्रकार शनि तथा दशमेश से भी आयु का विचार करना चाहिए ॥१-३॥

षष्ठे व्ययेऽपि षष्ठेशो व्ययाधीशो रिपौ व्यये ।
लग्नेऽष्टमे स्थितो वाऽपि दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥४॥
स्वस्थाने स्वांशके वाऽपि मित्रेशे मित्रमन्दिरे ।
दीर्घायुषं करोत्येव लग्नेशोऽष्टमपः पुनः ॥५॥
लग्नाष्टमपकर्मेशमन्दाः केन्द्रत्रिकोणयोः ।
लाभे वा संस्थितास्तद्वद् दिशेयुर्दीर्घमायुषम् ॥६॥
एवं बहुविधा विद्वान्नायुर्योगाः प्रकीर्तिताः ।
एषु यो बलवांस्तस्याऽनुसारादायुरादिशेत् ॥७॥

षष्ठेश या व्ययेश षष्ठ, व्ययभाव में हों अथवा लग्न, अष्टम भाव में बैठे हों तो दीर्घायु योगकारक होते हैं। लग्नेश या अष्टमेश अपनी राशि में या स्वनवमांश में अपनी मित्र राशि में हों तो दीर्घायुकारक होते हैं। लग्नेश, अष्टमेश, दशमेश और शनि केन्द्र, त्रिकोण में हों अथवा लाभ स्थान में हों तो दीर्घायु योगकारक होते हैं। इस प्रकार अनेक प्रकार से आयुर्दाय का विचार करना चाहिए। इनमें भी जो सब से बलवान हो, उसी के अनुसार आयुर्दाय का विचार करना चाहिए ॥४-७॥

अल्पायुयोगकथन

अष्टमाधिपतौ केन्द्रे लग्नेशे बलवर्जिते ।
विंशद्वर्षाण्यसौ जीवेद् द्वात्रिंशत्परमायुषम् ॥८॥
रन्ध्रेशे पापसंयुक्ते रन्ध्रे पापग्रहैर्युते ।
लग्नेशे दुर्बले जन्तुरल्पायुर्भवति ध्रुवम् ॥९॥

रन्ध्रेशे पापसंयुक्ते रन्ध्रे पापग्रहैर्युते ।
व्यये क्रूरग्रहाक्रान्ते जातमात्रं मृतिर्भवेत् ॥१०॥
केन्द्रत्रिकोणगाः पापाः शुभाः षष्ठाष्टगा यदि ।
लग्ने नीचस्थरन्ध्रेशो जातः सद्यो मृतो भवेत् ॥११॥
पञ्चमे पापसंयुक्ते रन्ध्रेशे पापसंयुते ।
रन्ध्रे पापग्रहैर्युक्ते स्वल्पमायुः प्रजायते ॥१२॥
रन्ध्रेशे रन्ध्रराशिस्थे चन्द्रे पापसमन्विते ।
शुभदृष्टिविहीने च मासान्ते च मृतिर्भवेत् ॥१३॥

अष्टमेश केन्द्र में हो और लग्नेश बलहीन हो तो २० वर्ष से ३२ वर्ष तक उस जातक की परमायु होती है। अष्टमेश अपने नीच राशि का हो और अष्टम भाव पाप ग्रहयुक्त हो तथा लग्नेश दुर्बल हो तो जातक अल्यायु होता है। अष्टमेश पापग्रह युक्त हो और अष्टम तथा व्ययभाव में पापग्रह स्थित हो तो जातक जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। केन्द्र त्रिकोण में पाप ग्रह हों, ६, ८ में शुभ ग्रह हो, अष्टमेश अपने नीच राशि का होकर लग्न में बैठा हो तो जातक का शीघ्र ही मरण होता है। पञ्चम भाव पाप ग्रहयुक्त हो और अष्टमेश पापग्रह से युक्त हो तथा अष्टम भाव पापग्रहयुक्त हो तो जातक अल्पायु होता है। अष्टमेश अष्टमभाव में हो और चन्द्र पापग्रह से युक्त हो, उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक का १ मास में मरण होता है ॥८-१३॥

अधिकायुकारकयोग

लग्नेशे स्वोच्चराशिस्थे चन्द्रे लाभसमन्विते ।
रन्ध्रस्थानगते जीवे दीर्घमायुर्न संशयः ॥१४॥
लग्नेशोऽतिबली दृष्टः केन्द्रसंस्थैः शुभग्रहैः ।
धनैः सर्वगुणैः सार्धं दीर्घमायुः प्रयच्छति ॥१५॥

लग्नेश अपने उच्चराशि में, चन्द्र लाभ स्थान में बैठा हो और अष्टम स्थान में गुरु स्थित हो तो दीर्घायु योग होता है, इसमें सन्देह नहीं है। लग्नेश अत्यन्त बलवान हो एवं केन्द्र स्थित शुभ ग्रहों द्वारा देखा जाता हो तो धन और समस्त गुणों से युक्त दीर्घायुकारक योग होता है ॥१४-१५॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामायुर्भावफलाध्यायः ॥२०॥

अथ भाग्यभावफलाध्याय: ॥२१॥

पराशर उवाच

अथ भाग्यभवं विप्र! फलं वक्ष्ये तवाऽग्रत:।
सबलो भाग्यपे भाग्ये जातो भाग्ययुतो भवेत् ॥१॥
भाग्यस्थानगते जीवे तदीशे केन्द्रसंस्थिते।
लग्नेशे बलसंयुक्ते बहुभाग्ययुतो भवेत् ॥२॥
भाग्येशे बलसंयुक्ते भाग्ये भृगुसमन्विते।
लग्नात् केन्द्रगते जीवे पिता भाग्यसमन्वित: ॥३॥
भाग्यस्थानाद् द्वितीये वा सुखे भौमसमन्विते।
भाग्येशे नीचराशिस्थे पिता निर्धन एव हि ॥४॥
भाग्येशे परमोच्चस्थे भाग्यांशे जीवसंयुते।
लग्नाच्चतुष्टये शुक्रे तत्पिता दीर्घजीवन: ॥५॥
भाग्येशे केन्द्रभावस्थे गुरुणा च निरीक्षिते।
तत्पिता वाहनैर्युक्तो राजा वा तत्समो भवेत् ॥६॥
भाग्येशे कर्मभावस्थे कर्मेशे भाग्यराशिगे।
शुभदृष्टे धनाढ्यश्च कीर्तिमांस्तत्पिता भवेत् ॥७॥

पराशर जी कहते हैं कि हे विप्र ! अब मैं आपके आगे नवम भाव के फल को कहता हूँ। भाग्येश बलयुक्त होकर भाग्यस्थान में ही स्थित हो तो वह जातक परम भाग्यशाली होता है। भाग्यस्थान में गुरु हो और भाग्येश केन्द्र में स्थित हो तथा लग्नेश बलयुक्त हो तो वह जातक अधिक भाग्यवान होता है। बलवान भाग्येश शुक्र के साथ भाग्यस्थान में हो और लग्न से केन्द्र में गुरु बैठे हों तो उस जातक का पिता भाग्यशाली होता है। भाग्यस्थान से द्वितीय अथवा चतुर्थ भाव में भौम हो और भाग्येश अपने नीच राशि का हो तो उस जातक का पिता निर्धन होता है। भाग्येश अपने परमोच्च राशि में हो और भाग्यभाव के नवमांश में गुरु हो तथा लग्न से चतुर्थ में शुक्र हो तो उस जातक का पिता दीर्घायु होता है। भाग्येश केन्द्रभाव में स्थित हो और गुरु के द्वारा दृष्ट हो तो उस जातक का पिता वाहनों से युक्त, राजा या राजा के सदृश होता है। भाग्येश कर्मभाव में हो और कर्मेश भाग्यराशि में स्थित हो एवं शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो उस जातक का पिता धनी एवं यशस्वी होता है ॥१-७॥

पितृभक्तियोगकथन

परमोच्चांशगे सूर्ये भाग्येशे लाभसंस्थिते।
धर्मिष्ठो नृपवात्सल्य: पितृभक्तो भवेन्नर: ॥८॥

लग्नात्त्रिकोणगे सूर्ये भाग्येशे सप्तमस्थिते।
गुरुणा सहिते दृष्टे पितृभक्तिसमन्वितः ॥९॥

सूर्य अपने परमोच्च (मेष १० अंश) पर हो और भाग्येश लाभस्थान में स्थित हो तो जातक धर्मात्मा, राजा का प्रिय और पितृभक्त होता है। लग्न से त्रिकोण में सूर्य हो और सप्तम भाव में भाग्येश हो एवं गुरु से युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक पितृभक्त होता है ॥८-९॥

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे।
द्वात्रिंशात्परतो भाग्यं वाहनं कीर्तिसम्भवः ॥१०॥

भाग्येश धनभाव में हो और धनेश भाग्यस्थान में हो तो उस जातक को ३२ वें वर्ष के अनन्तर भाग्योदय, वाहनसुख एवं यश प्राप्त होता है ॥१०॥

पिता-पुत्र में वैमनश्यता कथन

लग्नेशे भाग्यराशिस्थे षष्ठेशेन समन्विते।
अन्योन्यवैरं ब्रुवते जनकः कुत्सितो भवेत् ॥११॥

यदि लग्नेश भाग्य स्थान में षष्ठेश के साथ हो तो पिता-पुत्र में परस्पर वैर होता है एवं ऐसे जातक का पिता दुष्ट स्वभाव वाला होता है ॥११॥

भिक्षाशनयोगकथन

कर्माधिपेन सहितो विक्रमेशोऽपि निर्बलः।
भाग्यपो नीचमूढस्थो योगो भिक्षाशनप्रदः ॥१२॥

कर्मेश, विक्रमेश एवं भाग्येश निर्बल, नीच तथा अस्तंगत हों तो जातक भिक्षु होता है ॥१२॥

पितृनाशकारकयोग

षष्ठाष्टमव्यये भानू रन्ध्रेशे भाग्यसंयुते।
व्ययेशे लग्नराशिस्थे षष्ठेशे पञ्चमे स्थिते ॥१३॥
जातस्य जननात्पूर्वं जनकस्य मृतिर्भवेत्!
रन्ध्रस्थानगते सूर्ये रन्ध्रेशे भाग्यभावगे ॥१४॥
जातस्य प्रथमाब्दे तु पितुर्मरणमादिशेत्।
व्ययेशे भाग्यराशिस्थे नीचांशे भाग्यनायके ॥१५॥
तृतीये षोडशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत्।
लग्नेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे भानुसंयुते ॥१६॥
द्वितीये द्वादशे वर्षे पितुर्मरणमादिशेत्।
भाग्याद्रन्ध्रगते राहौ भाग्याद् भाग्यगते रवौ ॥१७॥

षोडशेऽष्टादशे वर्षे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
राहुणा सहिते सूर्ये चन्द्राद् भाग्यगते शनौ ॥१८॥
सप्तमैकोनविंशाब्दे तातस्य मरणं ध्रुवम् ।
भाग्येशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे भाग्यराशिगे ॥१९॥
वेदाब्धिमितवर्षाच्च पितुर्मरणमादिशेत् ।
रव्यंशे च स्थिते चन्द्रे लग्नेशे रन्ध्रसंयुते ॥२०॥
पञ्चत्रिंशैकचत्वारिंशद्वर्षे मरणं पितुः ।
पितृस्थानाधिपे सूर्ये मन्दभौमसमन्विते ॥२१॥
पञ्चाशद्वत्सरे प्राप्ते जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
भाग्यात् सप्तमगे सूर्ये भ्रातृसप्तमगस्तमः ॥२२॥
षष्ठेऽब्दे पञ्चविंशाब्दे पितुर्मरणमादिशेत् ।
रन्ध्रजामित्रगे मन्दे मन्दाज्जामित्रगे रवौ ॥२३॥
त्रिंशैकविंशे षड्विंशे जनकस्य मृतिर्भवेत् ।
भाग्येशे नीचराशिस्थे तदीशे भाग्यराशिगे ॥२४॥
षड्विंशेऽब्दे त्रयस्त्रिंशे पितुर्मरणमादिशेत् ।
एवं जातस्य दैवज्ञो फलं ज्ञात्वा विनिर्दिशेत् ॥२५॥

यदि ६, ८, १२ स्थान में सूर्य हो, अष्टमेश भाग्यस्थान में हो, व्ययेश लग्न में एवं षष्ठेश पञ्चम भाव में स्थित हो तो उस जातक के पिता उसके जन्म से पूर्व ही मर जाते हैं। अष्टम स्थान में सूर्य स्थित हो और अष्टमेश भाग्यभाव में बैठा हो तो जातक के जन्म से एक वर्ष के भीतर पिता का मरण होता है। व्ययेश भाग्यभाव में एवं भाग्येश अपने नीच राशि में स्थित हो तो तृतीय अथवा १६ वें वर्ष में पिता का देहान्त होता है। लग्नेश अष्टम भाव में हो और अष्टमेश सूर्य के साथ हो तो द्वितीय या १२ वें वर्ष में पिता का मरण होता है। भाग्यस्थान से अष्टम भाव में राहु हो और भाग्यस्थान से भाग्यभाव में सूर्य स्थित हो तो १६ या १८ वें वर्ष में पिता का नाश होता है। राहु से युक्त सूर्य हो और चन्द्र से नवम भाव में शनि हो तो ७ या १९वें वर्ष में पिता का स्वर्गारोहण होता है। भाग्येश व्ययभाव में स्थित हो और व्ययेश नवम भाव में बैठे हों तो ४४ वें वर्ष में पिता का मरण होता है। सूर्य के नवमांश में चन्द्र हो और लग्नेश अष्टम में स्थित हो तो ३५ या ४१ वें वर्ष में जातक के पिता का मरण होता है। पितृ (दशम) स्थानाधिप सूर्य होकर शनि-मंगल से युक्त हो तो जातक के ५० वाँ वर्ष प्राप्त होने पर उसके पिता का नाश होता है। भाग्य (नवम) स्थान से सप्तम में सूर्य हो और भ्रातृ स्थान से सप्तम में राहु हो तो ६ या २५ वें वर्ष में पिता का नाश होता है। अष्टम से ७ में शनि एवं शनि से ७ में सूर्य हो तो ३०, २१ या २६ वें वर्ष में पिता का नाश होता है। भाग्येश अपनी नीच राशि का हो और उस नीच का अधिपति भाग्यस्थान में स्थित हो तो २६ या ३३ वें वर्ष में पिता का मरण होता है। इस प्रकार से फल ज्ञात करने के उपरान्त ही दैवज्ञ को जातक को निर्देश करना चाहिए ॥१३-२५॥

भाग्योदयसमयकथन

परमोच्चांशगे शुक्रे भाग्येशेन समन्विते।
भ्रातृस्थाने शनियुते बहुभाग्याधिपो भवेत् ॥२६॥
गुरुणा संयुते भाग्ये तदीशे केन्द्रराशिगे।
विंशद्वर्षात् परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ॥२७॥
परमोच्चांशगे सौम्ये भाग्येशदभाग्यराशिगे।
षट्त्रिंशाच्च परं चैव बहुभाग्यं विनिर्दिशेत् ॥२८॥
लग्नेशे भाग्यराशिस्थे भाग्येशे लग्नसंयुते।
गुरुणा संयुते द्यूने धनवाहनलाभकृत् ॥२९॥

शुक्र अपने परमोच्च में भाग्येश के साथ स्थित हो और तृतीय स्थान में शनि हो तो जातक अनेक प्रकार से भाग्यवान होता है। भाग्यस्थान में गुरु हो और भाग्येश केन्द्र में हो तो २० वें वर्ष के पश्चात् जातक भाग्यवान होता है। बुध अपने परमोच्च राशि में स्थित हो और भाग्येश भाग्यस्थान में ही हो तो ३६ वें वर्ष के अनन्तर जातक बहुत भाग्यवान होता है। लग्नेश भाग्य राशि में हो और भाग्येश लग्न से युक्त हो तथा सप्तम भाव में गुरु हो तो धन-वाहन का लाभ कराने वाला होता है ॥२६-२९॥

दुर्भाग्ययोग

भाग्याद्भाग्यगतो राहुस्तदीशे निधनं गते।
भाग्येशे नीचराशिस्थे भाग्यहीनो भवेन्नरः ॥३०॥
भाग्यस्थानगते मन्दे शशिना च समन्विते।
लग्नेशे नीचराशिस्थे भिक्षाशी च नरो भवेत् ॥३१॥

भाग्य भाव से नवम में राहु और भाग्येश अष्टमस्थ हो अथवा अपनी नीच राशि का हो तो वह जातक भाग्यरहित होता है। भाग्य भाव में शनि चन्द्र से युक्त हो, लग्नेश अपनी नीच राशि का हो तो जातक भिक्षा माँग कर अपना जीवन-यापन करता है ॥३०-३१॥

एवं भाग्यफलं विप्र! संक्षेपात् कथितं मया।
लग्नेशभाग्यभावेशस्थित्याऽन्यदपि निर्दिशेत् ॥३२॥

हे द्विजवर! इस प्रकार मैंने संक्षेप में भाग्यफल को कहा है। लग्नेश और भाग्येश के शुभ-अशुभ स्थान-स्थिति के अनुसार पूर्वोक्त फल के अतिरिक्त और भी विशेष फल समझ कर बताना चाहिए ॥३२॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां भाग्यभावफलाध्याय: ॥२०॥

अथ कर्मभावफलाध्यायः ॥२२॥

पराशर उवाच

कर्मभावफलं चाऽथ कथयामि तवाग्रतः ।
शृणु मैत्रेय ! तत्त्वेन ब्रह्मगर्गादिभाषितम् ॥१॥
सबले कर्मभावेशे स्वोच्चे स्वांशे स्वराशिगे ।
जातस्तातसुखेनाढ्यो यशस्वी शुभकर्मकृत् ॥२॥

हे मैत्रेय ! अब मैं आपके सामने कर्मभावफल को कहता हूँ, जिसको ब्रह्मा, गर्गादि महामुनियों ने कहा है। दशमेश बलयुक्त होकर अपने उच्च, अपने नवमांश अथवा अपनी राशि में स्थित हो तो जातक पितृसुखों से युक्त, यशस्वी एवं शुभ कर्म करने वाला होता है ॥१-२॥

कर्माधिपो बलोनश्चेत् कर्मवैकल्यमादिशेत् ।
सैंहिः केन्द्रत्रिकोणस्थो ज्योतिष्टोमादियागकृत् ॥३॥

दशमेश बलहीन हो तो जातक कर्मरहित होता है। राहु यदि केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो तो वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञकारक होता है ॥३॥

कर्मेशे शुभसंयुक्ते शुभस्थानगते तथा ।
राजद्वारे च वाणिज्ये सदा लाभोऽन्यथाऽन्यथा ॥४॥
दशमे पापसंयुक्ते लाभे पापसमन्विते ।
दुष्कृतिं लभते मर्त्यः स्वजनानां विदूषकः ॥५॥
कर्मेशे नाशराशिस्थे राहुणा संयुते तथा ।
जनद्वेषी महामूर्खो दुष्कृतिं लभते नरः ॥६॥
कर्मेशे द्यूनराशिस्थे मन्दभौमसमन्विते ।
द्यूनेशे पापसंयुक्ते शिश्नोदरपरायणः ॥७॥

कर्मेश शुभग्रहों से युक्त हो और शुभ स्थान में गया हो तो जातक को राजा के दरबार से तथा व्यापार से सदा ही लाभ होता है। अन्यथा अर्थात् दशम पापग्रह युक्त हो और लाभभाव में भी पापग्रह हो तो जातक को लाभ नहीं होता; साथ ही वह जातक दुष्कर्म करने वाला एवं अपने परिजन से वैर करने वाला होता है। दशमेश राहु के साथ होकर अष्टम भाव में बैठा हो तो जातक कुकर्मकारक, स्वबान्धव से द्वेष करने वाला और महामूर्ख होता है। कर्मेश सप्तम भाव में स्थित हो तथा मंगल, शनि से युक्त हो और सप्तमेश भी पापग्रह से युक्त हो तो वह जातक कुकर्म करके अपना उदर-पोषण करने वाला होता है ॥५-७॥

शुभयोग

तुङ्गराशिं समाश्रित्य कर्मेशे गुरुसंयुते।
भाग्येशे कर्मराशिस्थे मानैश्वर्यप्रतापवान् ॥८॥
लाभेशे कर्मराशिस्थे कर्मेशे लग्नसंयुते।
तावुभौ केन्द्रगौ वापि सुखजीवनभाग् भवेत् ॥९॥
कर्मेशे बलसंयुक्ते मीने गुरुसमन्विते।
वस्त्राभरणसौख्यादि लभते नात्र संशय: ॥१०॥

कर्मेश अपने उच्चराशि में गुरु के साथ बैठे हों और भाग्येश कर्मस्थान में हो तो जातक मानी, धनी और प्रतापी होता है। लाभेश कर्मस्थान में हो और कर्मेश लग्नभाव में अथवा दोनों केन्द्रभाव में हों तो जातक सुखी जीवन-यापन करने वाला होता है। कर्मेश बलयुक्त होकर मीन राशि में गुरु के साथ स्थित हो तो जातक वस्त्र-आभूषणों से युक्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥८-१०॥

अशुभयोगकथन

लाभस्थानगते सूर्ये राहुभौमसमन्विते।
रविपुत्रेण संयुक्ते कर्मच्छेत्ता भवेन्नर: ॥११॥

एकादश भाव में सूर्य हो और राहु, मंगल शनि से युक्त हो तो वह जातक कर्मनाशक होता है ॥११॥

शुभयोगकथन

मीने जीवे भृगुयुते लग्नेशे बलसंयुते।
स्वोच्चराशिगते चन्द्रे सम्यग् ज्ञानार्थवान् भवेत् ॥१२॥
कर्मेशे लाभराशिस्थे लाभेशे लग्नसंस्थिते।
कर्मराशिस्थिते शुक्रे रत्नवान् स नरो भवेत् ॥१३॥
केन्द्रत्रिकोणगे कर्मनाथे स्वोच्चसमाश्रिते।
गुरुणा सहिते दृष्टे स कर्मसहितो भवेत् ॥१४॥
कर्मेशे लग्नभावस्थे लग्नेशेन समन्विते।
केन्द्रत्रिकोणगे चन्द्रे सत्कर्मनिरतो भवेत् ॥१५॥

यदि बृहस्पति, शुक्र मीन राशि में हो, लग्नेश बलवान हो और चन्द्रमा अपने उच्च में स्थित हो तो जातक ज्ञानी तथा धनवान होता है। कर्मेश लाभस्थान में हो, लाभेश लग्न में हो, १० में शुक्र हो तो वह जातक रत्नों से पूर्ण होता है। अपने उच्चस्थ होकर कर्मेश केन्द्र त्रिकोण में हो और गुरु से युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक क्रियाशील होता है। कर्मेश लग्नेश के साथ होकर लग्न में हो और चन्द्रमा केन्द्र त्रिकोण में स्थित हो तो वह जातक सत्कार्य का सम्पादन करने वाला होता है ॥१२-१५॥

कुकर्मयोग

कर्मस्थानगते मन्दे नीचखेचरसंयुते ।
कर्मांशे पापसंयुक्ते कर्महीनो भवेन्नरः ॥१६॥
कर्मेशे नाशराशिस्थे रन्ध्रेशे कर्मसंस्थिते ।
पापग्रहेण संयुक्ते दुष्कर्मनिरतो भवेत् ॥१७॥
कर्मेशे नीचराशिस्थे कर्मस्थे पापखेचरे ।
कर्मभात्कर्मगे पापे कर्मवैकल्यमादिशेत् ॥१८॥

नीचग्रह के साथ होकर शनि दशम भाव में हो और दशम भाव के नवमांश में पापग्रह हो तो जातक कर्महीन होता है। कर्मेश अष्टम भाव में स्थित हो, अष्टमेश दशम भाव में हो और उसमें पापग्रह हो तो जातक कुकर्म करने वाला होता है। कर्मेश अपने नीच राशि का हो और कर्मभाव में पापग्रह तथा दशम भाव से कर्मस्थान में भी पापग्रह हो तो वह जातक कर्मरहित होता है ॥१६-१८॥

शुभयोग

कर्मस्थानगते चन्द्रे तदीशे तत्त्रिकोणगे ।
लग्नेशे केन्द्रभावस्थे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ॥१९॥
लाभेशे कर्मभावस्थे कर्मेशे बलसंयुते ।
देवेन्द्रगुरुणा दृष्टे सत्कीर्तिसहितो भवेत् ॥२०॥
कर्मस्थानाधिपे भाग्ये लग्नेशे कर्मसंयुते ।
लग्नात् पञ्चमगे चन्द्रे ख्यातनामा नरो भवेत् ॥२१॥
इति कर्मफलं प्रोक्तं संक्षेपेण द्विजोत्तम! ।
लग्नकर्मेशसम्बन्धादूह्यमन्यदपि स्वयम् ॥२२॥

कर्मस्थान में चन्द्रमा हो और दशमेश कर्मस्थान से त्रिकोण में एवं लग्नेश केन्द्र में स्थित हो तो वह जातक सुन्दर कीर्ति वाला होता है। लाभेश कर्मभाव में हो और कर्मेश बलयुक्त हो गुरु के द्वारा अवलोकित हो तो जातक सुकीर्ति वाला होता है। कर्मेश नवम भाव में हो और लग्नेश कर्मस्थान में हो तथा लग्न से पञ्चम भाव में चन्द्रमा हो तो विख्यात सुकीर्ति वाला जातक होता है। हे द्विजवर! इस प्रकार मैंने संक्षेप से कर्मभावफल को कहा। इसी प्रकार लग्नेश और कर्मेश के सम्बन्ध से अन्य शुभाशुभ फलों का भी विचार करना चाहिए ॥१९-२२॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कर्मभावफलाध्यायः ॥२२॥

अथ लाभभावफलाध्यायः ॥२३॥

परशर उवाच

लाभभावफलञ्चाथ कथयामि द्विजोत्तम ! ।
श्रूयतां जातको लोके यच्छुभत्वे सदा सुखी ॥१॥
लाभाधिपो यदा लाभे तिष्ठेत् केन्द्रत्रिकोणयोः ।
बहुलाभं तदा कुर्यादुच्चे सूर्यांशगोऽपि वा ॥२॥
लाभेशे धनराशिस्थे धनेशे केन्द्रसंस्थिते ।
गुरुणा सहिते भावे गुरुलाभं विनिर्दिशेत् ॥३॥
लाभेशे विक्रमे भावे शुभग्रहसमन्विते ।
षट्त्रिंशे वत्सरे प्राप्ते सहस्रद्वयनिष्कभाक् ॥४॥
केन्द्रत्रिकोणगे लाभनाथे शुभसमन्विते ।
चत्वारिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रार्धसुनिष्कभाक् ॥५॥
लाभस्थाने गुरुयुते धने चन्द्रसमन्विते ।
भाग्यस्थानगते शुक्रे षट्सहस्राधिपो भवेत् ॥६॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! अब मैं एकादश भाव के फल को कहता हूँ, जिसके शुभ होने से जातक सदा-सर्वदा सुखी होता है। लाभेश लाभस्थान में हो या केन्द्र त्रिकोण में हो, अस्त होकर भी अपने उच्च राशि का हो तो अधिक लाभकारक होता है। लाभेश धनभाव में हो और धनेश गुरु के साथ केन्द्र में बैठा हो तो अतिशय लाभकारक होता है। लाभेश शुभ ग्रह के साथ तृतीय भाव में स्थित हो तो ३६वें वर्ष में उस जातक को २ हजार निष्क प्राप्त करते हैं। लाभाधिपति केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह के साथ हो तो वह जातक ४०वें वर्ष में ५०० निष्क का लाभ प्राप्त करता है। एकादश में गुरु एवं द्वितीय भाव में चन्द्र युत हों और भाग्यस्थान में शुक्र स्थित हो तो ऐसा जातक ६ हजार निष्क का अधिपति होता है ॥१-६॥

लाभाच्च लाभगे जीवे बुधचन्द्रसमन्विते ।
धनधान्याधिपः श्रीमान् रत्नाद्याभरणैर्युतः ॥७॥
लाभेशे लग्नभावस्थे लग्नेशे लाभसंयुते ।
त्रयस्त्रिंशे तु सम्प्राप्ते सहस्रनिष्कभाग् भवेत् ॥८॥
धनेशे लाभराशिस्थे लाभेशे धनराशिगे ।
विवाहात्परतश्चैव बहुभाग्यं समादिशेत् ॥९॥
भ्रातृपे लाभराशिस्थे लाभेशे भ्रातृसंस्थिते ।
भ्रातृभावाद्धनप्राप्तिर्दिव्याभरणसंयुतः ॥१०॥

लाभभाव से एकादश स्थान में गुरु, बुध, चन्द्र हो तो वह जातक धन-धान्य, रत्न-आभूषणादि से युक्त एवं सर्वमान्य होता है। लाभेश लग्न में हो, लग्नेश लाभ में हो तो ३३ वर्ष प्राप्त होते-होते जातक एक हजार सुवर्ण निष्क का स्वामी होता है। धनेश लाभस्थान में हो और लाभेश धनभाव में हो तो ऐसा जातक विवाह के पश्चात् वहुत भाग्ययुक्त होता है। भ्रातृस्थानाधिप लाभस्थान में हो और लाभेश भ्रातृस्थान भाव में बैठा हो तो जातक को अपने बन्धुओं के द्वारा धन-आभूषणादि की प्राप्ति होती है ॥७-१०॥

लाभेशे नीचभेऽस्ते वा त्रिके पापसमन्विते।
कृते भूरिप्रयत्नेऽपि नैव लाभः कदाचन ॥११॥

लाभेश अपने नीच में हो या अस्त हो या त्रिक (६, ८, १२) स्थान में पापग्रहों के साथ हो तो बहुत यत्न करने पर भी जातक को लाभ नहीं हो पाता ॥११॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां लाभभावफलाध्यायः ॥२३॥

अथ व्ययभावफलाध्यायः ॥२४॥

पराशर उवाच

अथाहं व्ययभावस्य कथयामि फलं द्विज! ।
व्ययेशे शुभसंयुक्ते स्वभे स्वोच्चगतेऽपि वा ॥१॥
व्यये च शुभसंयुक्ते शुभकार्ये व्ययस्तदा ।
चन्द्रो व्ययाधिपो धर्मलाभमन्त्रेषु संस्थितः ॥२॥
स्वोच्चे स्वर्क्षे निजांशे वा लाभधर्मात्मजांशके ।
दिव्यागारादिपर्यङ्को दिव्यगन्धैकभोगवान् ॥३॥
परार्ध्यरमणो दिव्यवस्त्रमाल्यादिभूषणः ।
परार्ध्यसंयुतो विज्ञो दिनानि नयति प्रभुः ॥४॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विज ! अब मैं व्ययभाव के फल को कहता हूँ। द्वादशेश शुभ ग्रह से युक्त हो अथवा अपने राशि या अपनी उच्च राशि का हो और व्यय भाव में भी शुभ ग्रह बैठे हों तो शुभ कार्य में व्यय होता है। चन्द्रमा व्ययाधिपति होकर नवम, एकादश या पञ्चम भाव में हो या अपने उच्च, स्वराशि या अपने नवमांश में हो या ५, ९, ११ भाव के नवमांश में हो तो ऐसा जातक सुन्दर भवन, शय्या एवं गन्धयुक्त वस्तुओं का भोग करने वाला होता है ॥१-४॥

एवं स्वशत्रुनीचांशेऽष्टमांशे वाऽष्टमे रिपौ ।
संस्थितः कुरुते जातं कान्तासुखविवर्जितम् ॥५॥
व्ययाधिक्यपरिक्लान्तं दिव्यभोगनिराकृतम् ।
स हि केन्द्रत्रिकोणस्थः स्वस्त्रियाऽलङ्कृतः स्वयम् ॥६॥
यथा लग्नात् फलं चैतदात्मनः परिकीर्तितम् ।
एवं भ्रात्रादिभावेषु तत्तत्सर्वं विचारयेत् ॥७॥

द्वादशेश अपनी शत्रुराशि में हो या स्वनीच राशि के नवमांश में हो या अष्टमस्थ हो या रिपुभाव में हो या उसके नवमांश में हो तो जातक सुख से हीन एवं अधिक व्ययकारक होने के कारण दुःखी रहता है। व्ययेश केन्द्र त्रिकोण में हो तो जातक समुचित व्ययकारक सुख से युक्त रहता है। जिस प्रकार स्वलग्न के द्वादश भाव से अपना व्ययसम्बन्धी फल कहा गया है, उसी प्रकार भ्रातृ, मातृ, पुत्र आदि स्थानों के द्वादश भाव से भ्रातृ, मातृ, पुत्रादि का व्ययसम्बन्धी फल भी समझ लेना चाहिए ॥५-७॥

दृश्यचक्रार्धगाः खेटाः प्रत्यक्षफलदायकाः ।
अदृश्यार्धगताः खेटाः परोक्षे फलदाः स्मृताः ॥८॥

पूर्वोक्त जो शुभाशुभ फल कहा गया है, वह योगकारक ग्रह दृश्य चक्रार्ध में स्थित हो तो प्रत्यक्ष फलदायक होता है और यदि अदृश्य चक्रार्ध में बैठा हो तो वह परोक्ष रूप से फलप्रद होता है ॥८॥

विशेष—लग्न के भोग्यांशादि से लेकर सप्तम भाव के भुक्त अंशादि तक अदृश्य चक्रार्ध कहा जाता है एवं सप्तम भाव के भोग्यांशादि से लेकर लग्न के भुक्तांश तक दृश्य चक्रार्ध कहा जाता है।

व्ययस्थानगतो राहुर्भौमार्करविसंयुतः।
तदीशेऽप्यर्कसंयुक्तो नरके पतनं भवेत् ॥९॥
व्ययस्थानगते सौम्ये तदीशे स्वोच्चराशिगे।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे मोक्षः स्यान्नात्र संशयः ॥१०॥
व्ययेशे पापसंयुक्ते व्यये पापसमन्विते।
पापग्रहेण सन्दृष्टे देशाद्देशान्तरं गतः ॥११॥
व्ययेशे शुभराशिस्थे व्ययर्क्षे शुभसंयुते।
शुभग्रहेण सन्दृष्टे स्वदेशात् सञ्चरो भवेत् ॥१२॥
व्यये मन्दादिसंयुक्ते भूमिजेन समन्विते।
शुभदृष्टेर्न सम्प्राप्तिः पापमूलाद्धनार्जनम् ॥१३॥
लग्नेशे व्ययराशिस्थे व्ययेशे लग्नसंयुते।
भृगुपुत्रेण संयुक्ते धर्ममूलाद्धनव्ययः ॥१४॥

द्वादश भाव राहु, मंगल, सूर्य से युक्त हो अथवा सूर्य के साथ द्वादशेश हो तो वह जातक नरक में जाता है। व्ययभाव में शुभ ग्रह हो और द्वादशेश अपनी उच्च राशि में स्थित हो एवं शुभग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक मोक्ष को प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है। व्ययेश पापग्रह से युक्त हो और व्ययभाव में पाप ग्रह बैठा हो या पापग्रह के द्वारा देखा जाता हो तो वह जातक देश-देशान्तर में विचरण करने वाला होता है। व्ययेश शुभ राशि में हो और व्ययभाव भी शुभ ग्रह की राशि हो या शुभग्रह के द्वारा युक्त या दृष्ट हो तो वह जातक अपने ही देश में भ्रमण करता है। व्ययभाव में शनि या भौम हो और शुभ ग्रह से न युक्त हो न ही दृष्ट हो तो वह जातक पापकर्म के माध्यम से धनोपार्जन करता है। लग्नेश व्ययराशि में हो, व्ययेश लग्न में हो और शुक्र से युक्त हो तो धार्मिक कार्य में जातक के धन का व्यय होता है ॥९-१४॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां व्ययभावफलाध्यायः ॥२४॥

अथ भावेशफलाध्यायः ॥२५॥

लग्नेशफलकथन

लग्नेशे लग्नगे देहसुखभाक् शुभविक्रमी।
मनस्वी चञ्चलश्चैव द्विभार्या परगोऽपि वा ॥१॥
लग्नेशे धनगे बालो लाभवान् पण्डितः सुखी।
सुशीलो धर्मविन्मानी बहुदारो गुणैर्युतः ॥२॥

लग्नेश लग्न में ही स्थित हो तो जातक हृष्ट-पुष्ट शरीर से युक्त, पराक्रमी, मनस्वी, चञ्चल एवं दो भार्या या अन्य स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला होता है। यदि लग्नेश द्वितीय भाव में हो तो जातक लाभ से युक्त, पण्डित, सुखी, सुन्दर शील वाला, धर्मज्ञाता, मानी, अधिक गुणों से युक्त एवं बहुत स्त्री वाला होता है ॥१-२॥

लग्नेशे सहजे जातः सिंहतुल्यपराक्रमी।
सर्वसम्पद्युतो मानी द्विभार्यो मतिमान् सुखी ॥३॥
लग्नेशे सुखगे बालः पितृमातृसुखान्वितः।
बहुभ्रातृयुतः कामी गुणरूपसमन्वितः ॥४॥
लग्नेशे सुतगे जन्तोः सुतसौख्यं च मध्यमम्।
प्रथमापत्यनाशः स्यान्मानी क्रोधी नृपप्रियः ॥५॥
लग्नेशे षष्ठगे जातो देहसौख्यविवर्जितः।
पापाढ्ये शत्रुतः पीडा सौम्यदृष्टिविवर्जितः ॥६॥
लग्नेशे सप्तमे पापे भार्या तस्य न जीवति।
शुभेऽटनो दरिद्रो वा विरक्तो वा नृपोऽपि वा ॥७॥
लग्नेशेऽष्टमगे जातः सिद्धविद्याविशारदः।
रोगी चौरो महाक्रोधी द्यूती च परदारगः ॥८॥
लग्नेशे भाग्यगे जातो भाग्यवाञ्जनवल्लभः।
विष्णुभक्तः पटुर्वाग्मी दारपुत्रधनैर्युतः ॥९॥
लग्नेशे दशमे जातः पितृसौख्यसमन्वितः।
नृपमान्यो जने ख्यातः स्वार्जितस्वो न संशयः ॥१०॥
लग्नेशे लाभगे जातः सदा लाभसमन्वितः।
सुशीलः ख्यातकीर्तिश्च बहुदारगुणैर्युतः ॥११॥
लग्नेशे व्ययभावस्थे देहसौख्यविवर्जितः।
व्यर्थव्ययी महाक्रोधी शुभदृग्योगवर्जिते ॥१२॥

लग्नेश तृतीय स्थान में स्थित हो तो वह जातक सिंहसदृश पराक्रमी, सभी सम्पत्तियों से परिपूर्ण, मानी, दो पत्नी वाला, बुद्धिमान और सुखी होता है। लग्नेश चतुर्थ भाव में हो तो वह जातक पितृ-मातृसुखों से युक्त, अधिक भाइयों वाला, कामी, सुरूप एवं गुणों से युक्त होता है। लग्नेश पञ्चम भाव में स्थित हो तो वह जातक पुत्रसुख मध्यम, प्रथम सन्ताननाश, मानी, क्रोधी और राजा का प्रिय होता है। लग्नेश षष्ठ भाव में हो तो जातक शारीरिक सुखों से वञ्चित, पाप से युक्त तथा सौम्य ग्रह की दृष्टि न हो तो शत्रु से पीड़ित होता है। लग्नेश सप्तम में हो तथा यदि वह पाप ग्रह हो तो उसकी पत्नी का नाश होता है, यदि शुभ ग्रह हो तो जातक भ्रमण करने वाला, दरिद्र, विरागी या राजा होता है। लग्नेश अष्टम में हो तो जातक सिद्धविद्या का ज्ञाता, रोगी, चोर, महाक्रोधी, जुआरी एवं परस्त्रीगामी होता है। लग्नेश नवम में हो तो जातक भाग्यवान, जनों का प्रिय, विष्णु का भक्त, चतुर वक्ता तथा स्त्री-पुत्र और धन से युक्त होता है। लग्नेश दशम में हो तो जातक पितृसुख से युक्त, राजमान्य, लोगों में विख्यात एवं अपने भुजबलों से धनोपार्जन करने वाला होता है; इसमें सन्देह नहीं है। लग्नेश लाभस्थान में हो तो वह जातक सदा लाभ प्राप्त करने वाला, सुशील, विख्यात यश वाला, बहुत उदार और गुणों से युक्त होता है। लग्नेश व्ययभाव में स्थित हो और वह शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट न हो तो वह जातक शरीरसुख से हीन, व्यर्थ व्ययी और महाक्रोधी होता है; शुभग्रह से युक्त-दृष्ट होने पर ऐसा नहीं होता है ॥३-१२॥

धनेशफल

धनेशे लग्नगे जातः पुत्रवान् धनसंयुतः।
कुटुम्बकण्टकः कामी निष्ठुरः परकार्यकृत् ॥१३॥
धनेशे धनगे जातो धनवान् गर्वसंयुतः।
द्विभार्यो बहुभार्यो वा सुतहीनः प्रजायते ॥१४॥
धनेशे सहजे जातो विक्रमी मतिमान् गुणी।
कामी लोभी शुभाढ्ये च पापाढ्ये देवनिन्दकः ॥१५॥
धनेशे सुखभावस्थे सर्वसम्पत् समन्वितः।
गुरुणा संयुते स्वोच्चे राजतुल्यो नरो भवेत् ॥१६॥
धनेशे सुतभावस्थे जातो धनसमन्वितः।
धनोपार्जनशीलाश्च जायन्ते तत्सुता अपि ॥१७॥
धनेशे रिपुभावस्थे सशुभे शत्रुतो धनम्।
सपापे शत्रुतो हानिर्जङ्घावैकल्यवान् भवेत् ॥१८॥
धनेशे सप्तमे जातः परदाररतो भिषक्।
पापेक्षितयुते तस्य भार्या च व्यभिचारिणी ॥१९॥
धनेशेऽष्टमगे जातो भूरिभूमिधनैर्युतः।
पत्नीसुखं भवेत् स्वल्पं ज्येष्ठभ्रातृसुखं नहि ॥२०॥

धनेशे धर्मभावस्थे धनवानुद्यमी पटुः ।
बाल्ये रोगी सुखी पश्चात् तीर्थधर्मव्रतादिकृत् ॥२१॥
धनेशे कर्मगे जातः कामी मानी च पण्डितः ।
बहुदारधनैर्युक्तः किञ्च पुत्रसुखोज्झितः ॥२२॥
धनेशे लाभभावस्थे सर्वलाभसमन्वितः ।
सदोद्योगयुतो मानी कीर्तिमान् जायते नरः ॥२३॥
धनेशे व्ययभावस्थे साहसी धनवर्जितः ।
परभाग्यरतस्तस्य ज्येष्ठापत्यसुखं नहि ॥२४॥

धनेश लग्न में स्थित हो तो वह जातक पुत्र और धन से युक्त, कुटुम्बियों का विरोधी, कामी, निष्ठुर और दूसरे का कार्य करने वाला होता है। धनेश धनभाव में हो तो जातक धनी, अहंकारी, दो पत्नी या अधिक पत्नी वाला तथा पुत्रहीन होता है। धनेश तृतीय भाव में हो तो वह जातक पराक्रमी, बुद्धिमान, गुणी, कामी एवं शुभ ग्रह से युक्त हो तो लोभी तथा पापग्रह से युक्त हो तो देवताओं की निन्दा करने वाला होता है। धनेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक समस्त सम्पत्ति से युक्त होता है और धनेश यदि गुरु से युक्त अथवा अपनी उच्च राशि का हो तो वह जातक राजा के तुल्य होता है। धनेश पञ्चम भाव में हो तो जातक धनी होता है और उसके पुत्र भी धनोपार्जन करने वाले होते हैं। धनेश षष्ठ भाव में हो और शुभ ग्रह से युक्त हो तो जातक को शत्रु से धन का लाभ होता है, यदि पाप ग्रहयुक्त हो तो शत्रु से धनहानि और उसकी जाँघ कमजोर होती है। धनेश सप्तम में हो तो जातक परस्त्रीगामी एवं वैद्य होता है तथा यदि पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो उस जातक की स्त्री परपुरुषगामिनी होती है। ८ में धनेश हो तो जातक अधिक भूमि और धन से युक्त होता है, उसको स्त्रीसुख स्वल्प और बड़े भाई का सुख नहीं होता है। धनेश नवम भाव में हो तो जातक धनी, उद्यमी, चतुर, बाल्यावस्था में रोगी, पश्चात् सुखी, तीर्थ-व्रत, धर्म करने वाला एवं धार्मिक प्रकृति का होता है। धनेश दशम स्थान में हो तो जातक कामी, मानी, पण्डित, अधिक भार्या वाला एवं धन से युक्त; परन्तु पुत्रसुख से रहित होता है। धनेश लाभस्थान में स्थित हो तो जातक सभी लाभों से युक्त, सदा उद्योगी, मानी एवं यशस्वी होता है। धनेश द्वादश भाव में बैठा हो तो जातक साहसी, धन से हीन तथा दूसरे पर आश्रित रहने वाला होता है एवं उसकी प्रथम सन्तान जीवित नहीं रहती ॥१३-२४॥

तृतीयेश-फल

लग्नगे सहजाधीशे स्वभुजार्जितवित्तवान् ।
सेवाज्ञः साहसी जातो विद्याहीनोऽपि बुद्धिमान् ॥२५॥
द्वितीये सहजाधीशे स्थूलो विक्रमवर्जितः ।
स्वल्पारम्भी सुखी न स्यात् परस्त्रीधनकामुकः ॥२६॥
सहजे सहजाधीशे सहोदरसुखान्वितः ।
धनपुत्रयुतो हृष्टो भुनक्ति सुखमद्भुतम् ॥२७॥

सुखस्थे सहजाधीशे सुखी च धनसंयुतः।
मतिमान् जायते बालो दुष्टभार्यापतिश्च सः ॥२८॥
सुतस्थे सहजाधीशे पुत्रवान् गुणसंयुतः।
भार्या तस्य भवेत् क्रूरा क्रूरग्रहयुतेक्षिते ॥२९॥
षष्ठभावे तृतीयेशे भ्रातृशत्रुर्महाधनी।
मातुलैश्च समं वैरं मातुलानीप्रियो नरः ॥३०॥
सप्तमे सहजाधीशे राजसेवापरो नरः।
बाल्ये दुःखी सुखी चान्ते जायते नाऽत्र संशयः ॥३१॥
अष्टमे सहजाधीशे जातश्चौरो नरो भवेत्।
दासवृत्त्योपजीवी च राजद्वारे मृतिर्भवेत् ॥३२॥
नवमे सहजाधीशे पितुः सुखविवर्जितः।
स्त्रीभिर्भाग्योदयस्तस्य पुत्रादिसुखसंयुतः ॥३३॥
दशमे सहजाधीशे जातः सर्वसुखान्वितः।
स्वभुजार्जितवित्तश्च दुष्टस्त्रीभरणे रतः ॥३४॥
लाभगे सहजाधीशे व्यापारे लाभवान् सदा।
विद्याहीनोऽपि मेधावी साहसी परसेवकः ॥३५॥
व्ययस्थे सहजाधीशे कुकार्ये व्ययकृज्जनः।
पिता तस्य भवेत् क्रूरः स्त्रीभिर्भाग्योदयस्तथा ॥३६॥

तृतीयेश लग्न में बैठा हो तो जातक स्वयं धनरहित होने पर भी बुद्धिमान होता है। सहजेश द्वितीय भाव में हो तो जातक स्थूल शरीर वाला, पराक्रमहीन, थोड़े कार्य आरम्भ करने वाला एवं परस्त्रीगामी होता है। तृतीयेश तृतीय भाव में हो तो जातक अपने सहोदर बन्धु- बान्धवों से सुख प्राप्त करने वाला, धनी, पुत्रयुक्त, प्रसन्न एवं बहुत सुखों का भोग करने वाला होता है। सहजेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक सुखी, धनी एवं बुद्धिमान होता है तथा उसकी भार्या दुष्टा होती है। सहजेश पञ्चम भाव में हो तो जातक पुत्रवान, गुणी और यदि पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो दुष्टा स्त्री का पति होता है। षष्ठ भाव में सहजेश हो तो जातक भाई से शत्रुता करने वाला, अधिक धनवान, मामा से शत्रुताकारक एवं मामी से प्रेम करने वाला होता है। सप्तम में तृतीयेश हो तो जातक राजा का सेवक, बाल्यावस्था में दुःखी एवं अन्तिमावस्था में सुखी होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अष्टम में सहजाधीश हो तो जातक चोर, नौकरी करने वाला एवं राजा के माध्यम से भरण प्राप्त करने वाला होता है। नवम में सहजाधीश हो तो जातक पितृसुख से वञ्चित, स्त्री के माध्यम से भाग्योदय प्राप्त करने वाला और पुत्र-पौत्रादि से युक्त रहता है। सहजेश दशम भाव में बैठे हों तो जातक सभी सुखों से युक्त, अपने पराक्रम से धनोपार्जन करने वाला और दुष्टा स्त्री का भरण-पोषण करने वाला होता है। एकादश भाव में सहजेश हो तो जातक व्यापार से धन प्राप्त करने वाला, विद्यारहित होने पर भी बुद्धिमान, साहसी और दूसरों की सेवा करने वाला होता है।

व्ययभाव में सहजाधीश हो तो जातक कुकार्य में व्यय करने वाला होता है और उसका पिता क्रूर होता है, साथ ही स्त्री के माध्यम से उसका भाग्योदय होता है ॥२५-३६॥

चतुर्थेशफलकथन

सुखेशे लग्नगे जातो विद्यागुणविभूषितः ।
भूमिवाहनसंयुक्तो मातुः सुखसमन्वितः ॥३७॥
सुखेशे धनगे जातो भोगी सर्वधनान्वितः ।
कुटुम्बसहितो मानी साहसी कुहकान्वितः ॥३८॥
सुखेशे सहजे जातो विक्रमी भृत्यसंयुतः ।
उदारोऽरुग् गुणी दाता स्वभुजार्जितवित्तवान् ॥३९॥
सुखेशे सुखभावस्थे मन्त्री सर्वधनान्वितः ।
चतुरः शीलवान् मानी ज्ञानवान् स्त्रीप्रियः सुखी ॥४०॥
सुखेशे पुत्रभावस्थे सुखी सर्वजनप्रियः ।
विष्णुभक्तो गुणी मानी स्वभुजार्जितवित्तवान् ॥४१॥
सुखेशे रिपुभावस्थे मातुः सुखविवर्जितः ।
क्रोधी चौरोऽभिचारी च स्वेच्छाचारश्च दुर्मनाः ॥४२॥
सुखेशे सप्तमे जातो बहुविद्यासमन्वितः ।
पित्रार्जितधनत्यागी सभायां मूकवद् भवेत् ॥४३॥
सुखेशे रन्ध्रभावस्थे गृहादिसुखवर्जितः ।
पित्रोः सुखं भवेदल्पं जातः क्लीबसमो भवेत् ॥४४॥
सुखेशे भाग्यभावस्थे जातः सर्वजनप्रियः ।
देवभक्तो गुणी मानी भवेत् सर्वसुखान्वितः ॥४५॥
सुखेशे कर्मभावस्थे राजमान्यो नरो भवेत् ।
रसायनी महाहृष्टो सुखभोगी जितेन्द्रियः ॥४६॥
सुखेशे लाभगे जातो गुप्तरोगभयान्वितः ।
उदारो गुणवान् दाता परोपकरणे रतः ॥४७॥
सुखेशे व्ययभावस्थे गृहादिसुखवर्जितः ।
जातो दुर्व्यसनी मूढः सदाऽऽलस्यसमन्वितः ॥४८॥

चतुर्थेश लग्न में हो तो जातक विद्या, गुण, भूमि और वाहनों से परिपूर्ण तथा माता से सुखी रहता है। द्वितीय भाव में चतुर्थेश हो तो जातक भोगी, सभी धन-धान्यों से युक्त, अधिक परिवार वाला, मानी, साहसी और मायावी होता है। चतुर्थेश तृतीय भाव में हो तो जातक पराक्रमी, सेवकों से युक्त, उदार, नीरोगी, गुणी, दाता एवं स्वबाहुबल से उपार्जित धन वाला होता है। चतुर्थेश चतुर्थ भाव में हो तो जातक मन्त्री, सभी धन-धान्य से युक्त, चतुर, सुन्दर, शीलवान, मानी, ज्ञानयुक्त, अपनी स्त्री का प्रिय और सुखी होता है। चतुर्थेश पञ्चम

भाव में हो तो जातक सुखी, सभी जनों का प्रिय, विष्णुभक्त, गुणी, मानी एवं स्वभुजबलों से उपार्जित धन वाला होता है। चतुर्थेश षष्ठभाव में हो तो वह जातक मातृसुख से रहित, क्रोधी, चोरी करने वाला, परस्त्रीगामी, स्वतन्त्र और दुष्ट होता है। सप्तम भाव में चतुर्थेश हो तो जातक विद्वान्, पैतृक धन को त्यागने वाला और सभा में गूँगे के समान होता है। अष्टम भाव में चतुर्थाधिपति स्थित हो तो जातक गृहसौख्य से रहित, अल्प मातृ-पितृसुख पाने वाला तथा नपुंसक-सदृश होता है। नवम स्थान में चतुर्थेश हो तो जातक सभी जनों का प्रिय, देवभक्त, गुणी, मानी और सभी सुखों से युक्त होता है। चतुर्थेश दशम भाव में हो तो वह जातक राजा से मान्य, रसायन को जानने वाला, सदैव प्रसन्न हृदय वाला, सुखी और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला होता है। चतुर्थेश एकादश भाव में बैठा हो तो जातक गुप्त रोग वाला, उदार, गुणी, दाता और दूसरे का उपकार करने वाला होता है। चतुर्थेश व्यय भाव में बैठा हो तो वह जातक गृहादि सुखों से रहित, दुर्व्यसनी, मूर्ख एवं आलसी होता है ॥३७-४८॥

पञ्चमेश-फलकथन

सुतेशे लग्नगे जातो विद्वान् पुत्रसुखान्वितः।
कदर्यो वक्रचित्तश्च परद्रव्यापहारकः ॥४९॥
सुतेशे धनगे जातो बहुपुत्रो धनान्वितः।
कुटुम्बपोषको मानी स्त्रीप्रियः सुयशा भुवि ॥५०॥
सुतेशे सहजे भावे जायते सोदरप्रियः।
पिशुनश्च कदर्यश्च स्वकार्यनिरतः सदा ॥५१॥
सुतेशे सुखभावस्थे सुखी मातृसुखान्वितः।
लक्ष्मीयुक्तः सुबुद्धिश्च राज्ञोऽमात्योऽथ वा गुरुः ॥५२॥
सुतेशे सुतभावस्थे शुभाढ्यो पुत्रवान् नरः।
पापाढ्योऽपत्यहीनोऽसौ गुणवान् मित्रवत्सलः ॥५३॥
सुतेशे रिपुभावस्थे पुत्रः शत्रुसमो भवेत्।
मृतापत्योऽथवा जातो दत्तक्रीतसुतोऽथ वा ॥५४॥
सुतेशे सप्तमे मानी सर्वधर्मसमन्वितः।
पुत्रादिसुखयुक्तश्च परोपकरणे रतः ॥५५॥
सुतेशे रन्ध्रभावस्थे स्वल्पपुत्रसुखान्वितः।
कासश्वाससमायुक्तः क्रोधी च सुखवर्जितः ॥५६॥
सुतेशे भाग्यगे पुत्रो भूपो वा तत्समो भवेत्।
स्वयं वा ग्रन्थकर्ता च विख्यातः कुलदीपकः ॥५७॥
सुतेशे राज्यभावस्थे राजयोगो हि जायते।
अनेकसुखभोगी च ख्यातकीर्तिर्नरो भवेत् ॥५८॥
सुतेशे लाभगे जातो विद्यावान् जनवल्लभः।
ग्रन्थकर्ता महादक्षो बहुपुत्रधनान्वितः ॥५९॥

सुतेशे व्ययभावस्थे जातः पुत्रसुखोज्झितः ।
दत्तपुत्रयुतो वाऽसौ क्रीतपुत्रान्वितोऽथ वा ॥६०॥

पञ्चमेश लग्न में स्थित हो तो जातक विद्वान्, पुत्रसुखों से युक्त, कदर्य, कुटिल चित्त वाला और दूसरों का धन अपहरण करने वाला होता है। पञ्चमेश धनभाव में बैठा हो तो जातक अधिक पुत्र वाला, धनी, अपने कुटुम्बों का भरणपोषण करने वाला, मानी, स्त्री का प्रिय एवं भुवन में कीर्ति वाला होता है। पञ्चमेश तृतीय भाव में हो तो जातक अपने सोदर बन्धुओं का प्रिय, चुगलखोर, कृपण और स्वार्थी होता है। सुतेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक सुखी, मातृसुखों से युक्त, लक्ष्मी से युक्त, सुन्दर बुद्धि वाला एवं राजमन्त्री या राजगुरु होता है। पञ्चमेश पञ्चम भाव में हो और शुभ ग्रह से युक्त हो तो जातक पुत्रवान एवं यदि पाप ग्रह से युक्त है तो सन्तानहीन, किन्तु गुणवान और मित्रों का प्रिय होता है। पञ्चमेश षष्ठ भाव में स्थित हो तो जातक की पुत्र से शत्रुता होती है अथवा उसके सन्तान होकर मर जाते हैं या वह दत्तक पुत्र वाला होता है। पुत्रेश सप्तमस्थ हो तो जातक मानी, सभी धर्मों को मानने वाला, पारिवारिक सुख से युक्त और परोपकारी होता है। सुतेश अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक स्वल्प पुत्र वाला या कम पुत्रसुख से युक्त, कास-श्वास रोग से युक्त, क्रोधी और सुख से रहित होता है। सुतेश नवम भाव में हो तो उस जातक का पुत्र राजा अथवा राजासदृश, स्वयं ग्रन्थकार एवं अपने विख्यात कुल में श्रेष्ठ होता है। सुतेश दशम भाव में स्थित हो तो जातक राजा, अनेक प्रकार के सुखों से युक्त एवं यशस्वी होता है। सुतेश के आय में रहने से जातक विद्यावान, जनप्रिय, ग्रन्थकर्ता, कार्यों में दक्ष एवं अधिक पुत्र-धन से युक्त होता है। १२ में सुतेश हो जातक पुत्रसुखरहित एवं दत्तक पुत्र अथवा क्रीत पुत्र वाला होता है ॥४९-६०॥

षष्ठेश-फलकथन

षष्ठेशे लग्नगे जातो रोगवान् कीर्तिसंयुतः ।
आत्मशत्रुर्धनी मानी साहसी गुणवान् नरः ॥६१॥
षष्ठेशे धनभावस्थे साहसी कुलविश्रुतः ।
परदेशी सुखी वक्ता स्वकर्मनिरतः सदा ॥६२॥
षष्ठेशे सहजे जातः क्रोधी विक्रमवर्जितः ।
भ्राता शत्रुसमस्तस्य भृत्यश्चोत्तरदायकः ॥६३॥
षष्ठेशे सुखभावस्थे मातुः सुखविवर्जितः ।
मनस्वी पिशुनो द्वेषी चलचित्तोऽतिवित्तवान् ॥६४॥
षष्ठेशः सुतगो यस्य चलं तस्य धनादिकम् ।
शत्रुता पुत्रमित्रैश्च सुखी स्वार्थी दयान्वितः ॥६५॥
षष्ठेशे रिपुभावस्थे वैरं स्वज्ञातिमण्डलात् ।
अन्यैः सह भवेन् मैत्री सुखं मध्यं धनादिकम् ॥६६॥
षष्ठेशे दारभावस्थे जातो दारसुखोज्झितः ।
कीर्तिमान् गुणवान् मानी साहसी धनसंयुतः ॥६७॥

षष्ठेशेऽष्टमगे जातो रोगी शत्रुर्मनीषिणाम्।
परद्रव्याभिलाषी च परदाररतोऽशुचिः ॥६८॥
षष्ठेशे भाग्यगे जातः काष्ठपाषाणविक्रयी।
व्यवहारे क्वचिद्धानिः क्वचिद्वृद्धिश्च जायते ॥६९॥
षष्ठेशे दशमे भावे मानवः कुलविश्रुतः।
अभक्तश्च पितुर्वक्ता विदेशे च सुखी भवेत् ॥७०॥
षष्ठेशे लाभगे जातः शत्रुतो धनमाप्नुयात्।
गुणवान् साहसी मानी किन्तु पुत्रसुखोज्झितः ॥७१॥
षष्ठेशे व्ययभावस्थे व्यसने व्ययकृत् सदा।
विद्वद्द्वेषी भवेज्जातो जीवहिंसासु तत्परः ॥७२॥

षष्ठेश लग्न में हो तो जातक रोगी, यशयुक्त, आत्मीय सम्बन्धी का शत्रु, धनी, मानी, साहसी और गुणी होता है। षष्ठेश धनभाव में हो तो जातक साहसी, कुल में प्रसिद्ध, परदेशी, सुखी, वक्ता एवं सदैव अपने कार्य में लगने वाला होता है। षष्ठेश तृतीय भाव में हो तो जातक क्रोधी पराक्रमहीन, भाई का शत्रु और क्रूर भृत्य होता है। चतुर्थ में षष्ठेश के रहने पर जातक मातृसुख से हीन, मनस्वी, चुगलखोर, द्वेषी, चञ्चल चित्त वाला और अति धनवान होता है। जिसके षष्ठेश पञ्चम में हों उसके धनादि स्थिर नहीं रहते, पुत्रादि से वैरभाव रहता है तथा स्वयं सुखी, स्वार्थी एवं दया से युक्त रहता है। षष्ठेश षष्ठ में रहने से जातक का अपने बन्धुसमूह से वैरभाव, दूसरे के साथ मैत्री एवं धन आदि से जन्य सुख मध्यम होता है। षष्ठेश सप्तम में हो तो जातक स्त्रीसुख से हीन, कीर्तिमान, गुणी, मानी, साहसी एवं धनयुक्त रहता है। षष्ठेश अष्टम भाव में हो तो जातक रोगी, पण्डितों का वैरी, परधन का लोभी, परस्त्रीगामी और अपवित्र रहता है। षष्ठेश नवम भाव में हो तो जातक काष्ठ-पत्थर को बेचने वाला एवं व्यापार में कहीं हानि तो कहीं लाभ प्राप्त करने वाला होता है। षष्ठेश दशम में हो तो जातक अपने कुल में विख्यात, पिता का अभक्त, वक्ता एवं परदेश में रहने से सुखी होता है। षष्ठेश लाभभाव में हो तो जातक को शत्रु से धन की प्राप्ति, गुणी, साहसी, मानी, परन्तु पुत्रसौख्य से हीन होता है। षष्ठेश व्ययभाव में हो तो जातक व्यसन में खर्च करने वाला, विद्वान् से वैरभाव करने वाला एवं जीवों की हिंसा करने में तत्पर रहने वाला होता है ॥६१-७२॥

सप्तमेश-फलकथन

दारेशे लग्नगे जातः परदारेषु लम्पटः।
दुष्टो विचक्षणोऽधीरो जनो वातरुजान्वितः ॥७३॥
दारेशे धनगे जातो बहुस्त्रीभिः समन्वितः।
दारयोगाद्धनाप्तिश्च दीर्घसूत्री च मानवः ॥७४॥
दारेशे सहजे जातो मृतापत्यो हि मानवः।
कदाचिज्जायते पुत्री यत्नात् पुत्रोऽपि जीवति ॥७५॥
दारेशे सुखभावस्थे जाया नास्य वशे सदा।
स्वयं सत्यप्रियो धीमान् धर्मात्मा दन्तरोगयुक् ॥७६॥

दारेशे पञ्चमे जातो मानी सर्वगुणान्वितः ।
सर्वदा हर्षयुक्तश्च तथा सर्वधनाधिपः ॥७७॥
दारेशे रिपुभावस्थे भार्या तस्य रुजान्विता ।
स्त्रिया सहाऽथ वा वैरं स्वयं क्रोधी सुखोज्झितः ॥७८॥
दारेशे सप्तमे भावे जातो दारसुखान्वितः ।
धीरो विचक्षणो धीमान् केवलं वातरोगवान् ॥७९॥
दारेशे मृत्युभावस्थे जातो दारसुखोज्झितः ।
भार्याऽपि रोगयुक्ताऽस्य दुःशीलाऽपि न चानुगा ॥८०॥
दारेशे धर्मभावस्थे नानास्त्रीभिः समागमः ।
जायाहृतमना जातो बह्वारम्भकरो नरः ॥८१॥
दारेशे कर्मभावस्थे नास्य जाया वशानुगा ।
स्वयं धर्मरतो जातो धनपुत्रादिसंयुतः ॥८२॥
दारेशे लाभभावस्थे दारैरर्थसमागमः ।
पुत्रादिसुखमल्पं च जनः कन्याप्रजो भवेत् ॥८३॥
दारेशे व्ययगे जातो दरिद्रः कृपणोऽपि वा ।
भार्याऽपि व्ययशीलाऽस्य वस्त्राजीवी नरो भवेत् ॥८४॥

सप्तमेश लग्न में हो तो जातक परस्त्री में लम्पट, दुष्ट, चतुर, अधीर और वायुसम्बन्धी रोग से युक्त रहता है । २ में हो तो जातक अधिक स्त्रियों से युक्त, स्त्री के माध्यम से धन प्राप्त करने वाला तथा दीर्घसूत्री मानव होता है । ३ में रहने से उसके सन्तान होकर मृत हो जाते हैं, कदाचित् कन्या भी होती है और यत्न करने पर पुत्र भी जीवित रहता है । ४ में हो तो उसकी स्त्री उसके वश में नहीं रहती, स्वतः वह सत्यवादी, बुद्धिमान, धर्मात्मा और दन्तसम्बन्धी रोग से पीड़ित रहता है । सप्तमेश पञ्चम में स्थित हो तो जातक मानी, सर्वगुणसम्पन्न, सदैव प्रसन्न रहने वाला और सब प्रकार के धन से युक्त रहता है । ६ में हो तो उसकी स्त्री रोगिणी अथवा पत्नी के साथ वैरभाव, स्वयं क्रोधी और सुख से रहित रहता है । ७ में हो तो जातक पत्नीसुख से युक्त, धीर, चतुर, बुद्धिमान; किन्तु वातरोगी होता है । ८ में रहने से जातक दारसुख से हीन एवं उसकी पत्नी व्याधिग्रस्ता, दुष्टा और वश में नहीं रहने वाली होती है । ९ भाव में रहने से जातक अनेक स्त्री से सम्बन्ध रखने वाला, स्त्री में लम्पट एवं बहुत कार्य आरम्भ करने वाला होता है । १० में सप्तमेश स्थित हो तो उसकी स्त्री वश में नहीं रहती, स्वतः वह धर्मात्मा और धन-पुत्र से संयुक्त रहता है । ११ में हो तो पत्नी के माध्यम से धनलाभ, पुत्रसुख अल्प और अधिक कन्या वाला होता है । सप्तमेश द्वादश भाव में हो तो वह जातक स्वयं दरिद्र एवं कञ्जूस होता है और उसकी स्त्री भी अधिक खर्च करने वाली होती है, साथ ही वह वस्त्र के व्यापार से लाभ पाने वाला होता है ॥७३-८४॥

अष्टमेश-फलकथन

अष्टमेशे तनौ जातस्तनुसौख्यविवर्जितः ।
देवानां ब्राह्मणानां च निन्दको व्रणसंयुतः ॥८५॥

अष्टमेशे धने बाहुबलहीनः प्रजायते।
धनं तस्य भवेत् स्वल्पं नष्टं वित्तं न लभ्यते ॥८६॥
रन्ध्रेशे सहजे भावे भ्रातृसौख्यं न जायते।
सालस्यो भृत्यहीनश्च जायते बलवर्जितः ॥८७॥
रन्ध्रेशे सुखभावस्थे मातृहीनो भवेच्छिशुः।
गृहभूमिसुखैर्हीनो मित्रद्रोहो न संशयः ॥८८॥
रन्ध्रेशे सुतभावस्थे जडबुद्धिः प्रजायते।
स्वल्पप्रज्ञो भवेज्जातो दीर्घायुश्च धनान्वितः ॥८९॥
रन्ध्रेशे रिपुभावस्थे शत्रुजेता भवेज्जनः।
रोगयुक्तशरीरश्च बाल्ये सर्पजलाद् भयम् ॥९०॥
रन्ध्रेशे दारभावस्थे तस्य भार्याद्वयं भवेत्।
व्यापारे च भवेद् हानिस्तस्मिन् पापयुते ध्रुवम् ॥९१॥
रन्ध्रेशे मृत्युभावस्थे जातो दीर्घायुषा युतः।
निर्बले मध्यमायुः स्याच्चौरो निन्द्योऽन्यनिन्दकः ॥९२॥
अष्टमेशे तपःस्थाने धर्मद्रोही च नास्तिकः।
दुष्टभार्यापतिश्चैव परद्रव्यापहारकः ॥९३॥
रन्ध्रेशे कर्मभावस्थे पितृसौख्यविवर्जितः।
पिशुनः कर्महीनश्च यदि नैव शुभेक्षिते ॥९४॥
रन्ध्रेशे लाभभावस्थे सपापे धनवर्जितः।
बाल्ये दुःखी सुखी पश्चात् दीर्घायुश्च शुभान्विते ॥९५॥
रन्ध्रेशे व्ययभावस्थे कुकार्ये व्ययकृत् सदा।
अल्पायुश्च भवेज्जातः सपापे च विशेषतः ॥९६॥

अष्टमेश लग्न में हो तो जातक को शारीरिक सौख्य नहीं होता, वह देवता तथा विप्रों का निन्दक और व्रणयुक्त होता है। २ में अष्टमेश के रहने से जातक बाहुबलरहित एवं स्वल्प धन वाला होता है तथा उसका जो कुछ नष्ट होता है, वह उसको पुनः नहीं मिलता है। ३ में रहने से भ्रातृसुखहीन, आलसी, नौकर और स्वबलरहित रहता है। ४ में रहने से माता से हीन, घर जमीन आदि से रहित और मित्र से द्वेष करने वाला होता है। ५ में रहने से जड़ बुद्धि वाला, स्वल्प पुत्र वाला, दीर्घायु और धनी होता है। ६ में रहने से शत्रु पर विजय पाने वाला, रोगयुक्त और बाल्यकाल में उसे सर्प तथा जल का भय रहता है। अष्टमेश सप्तम भाव में हो तो उस जातक की दो स्त्री होती है, सप्तम भाव पाप ग्रह से युक्त हो तो उसको व्यापार में हानि भी होती है। रन्ध्रेश अष्टम भाव में स्थित हो तो जातक दीर्घायु होता है एवं यदि अष्टमेश निर्बल हो तो मध्यमायु, चौर, स्वतः निन्दनीय और परनिन्दक होता है। अष्टमेश नवम भाव में स्थित हो तो वह जातक धर्मद्रोही, नास्तिक, दुष्टा स्त्री वाला एवं पर द्रव्य का अपहरण करने वाला होता है। रन्ध्रेश के दशम भाव में रहने से जातक पितृसुख से हीन एवं यदि शुभ ग्रह

से युक्त या दृष्ट न हो तो चुगलखोर और कर्त्तव्यहीन होता है। अष्टमेश लाभस्थान में स्थित हो एवं पापग्रह से युक्त हो तो जातक धनहीन होता है। यदि शुभ ग्रह युक्त हो तो बाल्यावस्था में दुःखी, पश्चात् सुखी और दीर्घायु होता है। अष्टमेश के द्वादशस्थ रहने से जातक कुकार्य में व्यय करने वाला और पापग्रह से युक्त रहने पर अल्पायु होता है॥८५-९६॥

नवमेश-फलकथन

भाग्येशे लग्नगे जातो भाग्यवान् भूपवन्दितः।
सुशीलश्च सुरूपश्च विद्यावान् जनपूजितः॥९७॥
भाग्येशे धनभावस्थे पण्डितो जनवल्लभः।
जायते धनवान् कामी स्त्रीपुत्रादिसुखान्वितः॥९८॥
भाग्येशे भ्रातृभावस्थे जातो भ्रातृसुखान्वितः।
धनवान् गुणवाँश्चापि रूपशीलसमन्वितः॥९९॥
भाग्येशे तुर्यभावस्थे गृहयानसुखान्वितः।
सर्वसम्पत्तियुक्तश्च मातृभक्तो भवेन्नरः॥१००॥
भाग्येशे सुतभावस्थे सुतभाग्यसमन्वितः।
गुरुभक्तिरतो धीरो धर्मात्मा पण्डितो हरः॥१०१॥
भाग्येशे रिपुभावस्थे स्वल्पभाग्यो भवेन्नरः।
मातुलादिसुखैर्हीनः शत्रुभिः पीडितः सदा॥१०२॥
भाग्येशे दारभावस्थे दारयोगात् सुखोदयः।
गुणवान् कीर्तिमांश्चापि जायते द्विजसत्तमः॥१०३॥
भाग्येशे मृत्युभावस्थे भाग्यहीनो नरो भवेत्।
ज्येष्ठभ्रातृसुखं नैव तस्य जातस्य जायते॥१०४॥
भाग्येशे भाग्यभावस्थे बहुभाग्यसमन्वितः।
गुणसौन्दर्यसम्पन्नो सहजेभ्यः सुखं बहु॥१०५॥
भाग्येशे कर्मभावस्थे जातो राजाऽथ तत्समः।
मन्त्री सेनापतिर्वाऽपि गुणवान् जनपूजितः॥१०६॥
भाग्येशे लाभभावस्थे धनलाभो दिने दिने।
भक्तो गुरुजनानां च गुणवान् पुण्यवानपि॥१०७॥
भाग्येशो व्ययभावस्थो भाग्यहानिकरो नृणाम्।
शुभकार्ये व्ययो नित्यं निर्धनोऽतिथिसङ्गमात्॥१०८॥

भाग्येश लग्न में हो तो जातक भाग्यवान, राजपूज्य, सुन्दर शील, सुन्दर रूप एवं विद्या से युक्त तथा जनपूज्य होता है। भाग्येश धनभाव में बैठा हो तो जातक पण्डित, जनप्रिय, धनी, कामी एवं स्त्री-पुत्रादिजन्य सुख से युक्त होता है। भाग्येश के तृतीय में रहने से जातक भ्रातृसुख से युक्त, धनी, गुणवान और रूप-शील से समन्वित होता है। भाग्येश

चतुर्थ भाव में हो तो जातक गृह-वाहनजन्य सुख से युक्त और सभी सम्पत्तियों से युक्त तथा मातृभक्त होता है। भाग्येश पञ्चमस्थ हो तो जातक पुत्र, भाग्य से युक्त, गुरुभक्त, धीर, धर्मात्मा और पण्डित होता है। भाग्येश के षष्ठ भाव में रहने से जातक अल्प भाग्य वाला, मामा आदि के सुख से हीन और शत्रुओं के द्वारा सदा पीड़ित रहता है। भाग्येश सप्तमस्थ हो तो पत्नी के द्वारा भाग्योदय, गुणी, यशस्वी और विप्रों में श्रेष्ठ होता है। भाग्येश के अष्टमस्थ रहने से जातक भाग्यहीन एवं बड़े भाई के सुख से रहित होता है। भाग्येश भाग्यभाव में स्थित हो तो जातक अत्यन्त भाग्यशाली, गुणी, सौन्दर्य से सम्पन्न और सहोदर बन्धुओं से सुख प्राप्त करने वाला होता है। भाग्येश कर्मभावस्थ हो तो जातक राजा या राजासदृश, मन्त्री या सेनाधिपति, गुणी और जनता में प्रसिद्ध होता है या जनपूज्य होता है। भाग्येश के लाभभाव में रहने से प्रतिदिन धनागम वाला, गुरुजनों का भक्त, सुखी तथा पुण्यवान होता है। भाग्येश के व्यय भाव में रहने से जातक भाग्यहीन, शुभ कार्यों में अधिक व्यय करने वाला और अतिथिसत्कार के कारण निर्धन रहने वाला होता है ॥९७-१०८॥

दशमेश-फलकथन

कर्मेशे लग्नगे जातो विद्वान् ख्यातो धनी कविः।
बाल्ये रोगी सुखी पश्चात् धनवृद्धिर्दिने दिने ॥१०९॥
राज्येशे धनभावस्थे धनवान् गुणसंयुतः।
राजमान्यो वदान्यश्च पित्रादिसुखसंयुतः ॥११०॥
कर्मेशे सहजे जातो भ्रातृभृत्यसुखान्वितः।
विक्रमी गुणसम्पन्नः वाग्मी सत्यरतो नरः ॥१११॥
कर्मेशे सुखभावस्थे सुखी मातृहिते रतः।
यान-भूमि-गृहाधीशो गुणवान् धनवानपि ॥११२॥
कर्मेशे सुतभावस्थे सर्वविद्यासमन्वितः।
सर्वदा हर्षसंयुक्तो धनवान् पुत्रवानपि ॥११३॥
कर्मेशे रिपुभावस्थे पितृसौख्यविवर्जितः।
चतुरोऽपि धनैर्हीनः शत्रुभिः परिपीडितः ॥११४॥
राज्येशे दारभावस्थे जातो दारसुखान्वितः।
मनस्वी गुणवान् वाग्मी सत्यधर्मरतः सदा ॥११५॥
कर्मेशे रन्ध्रभावस्थे कर्महीनो भवेन्नरः।
दीर्घायुरप्यसौ जातः परनिन्दापरायणः ॥११६॥
राज्येशे भाग्यभे जातो राजा राजकुलोद्भवः।
तत्समोऽन्यकुलोत्पन्नो धनपुत्रादिसंयुतः ॥११७॥
कर्मेशे राज्यभावस्थे सर्वकर्मपटुः सुखी।
विक्रमी सत्यवक्ता च गुरुभक्तिरतो नरः ॥११८॥

राज्येशे लाभभावस्थे जातो धनसुतान्वितः ।
हर्षवान् गुणवांश्चापि सत्यवक्ता सदा सुखी ॥११९॥
राज्येशे व्ययभावस्थे तस्य राजगृहे व्ययः ।
शत्रुतोऽपि भयं नित्यं चतुरश्चापि चिन्ततः ॥१२०॥

कर्मेश लग्न में स्थित हो तो जातक विद्वान्, प्रसिद्ध, धनी, कवि, बाल्यावस्था में रोगी, पश्चात् सुखी और प्रतिदिन धनागम वाला होता है। दशमेश के धनभाव में रहने से जातक धनी, गुणों से युक्त, राजमान्य, दाता एवं पिता आदि से होने वाले सुख से युक्त होता है। दशमेश के सहज भाव में रहने से जातक भाई तथा नौकरों से सुखयुक्त होता है; साथ ही पराक्रमी, गुणों से सम्पन्न एवं सत्यवादी होता है। कर्मेश चतुर्थ भाव में स्थित हो तो जातक सुखी, मातृभक्त, वाहन, भूमि, गृहों का अधिपति, गुणी तथा धनी होता है। कर्मेश पञ्चमभाव में हो तो जातक सभी विद्याओं से युक्त, सदैव प्रसन्न रहने वाला, धनी और पुत्रवान होता है। कर्मेश षष्ठ भाव में हो तो जातक पितृसुख से वञ्चित, चतुर होने पर भी धन से हीन एवं शत्रुओं के द्वारा पीड़ित रहता है। राज्येश सप्तम भाव में हो तो जातक भार्यासुख से युक्त, मनस्वी, गुणी, सत्यवादी और सदैव सत्य धर्म में रत रहने वाला होता है। कर्मेश अष्टमस्थ हो तो जातक कर्तव्यहीन एवं दीर्घायु होने पर भी दूसरे की निन्दा करने वाला होता है। राज्येश नवम भाव में हो तो जातक यदि राजकुल में उत्पन्न हो तो राजा एवं अन्य कुल में उत्पन्न हो तो राजतुल्य और धन-पुत्रादि से युक्त होता है। कर्मेश दशम भाव में स्थित हो तो जातक सभी कार्यों में चतुर, सुखी, पराक्रमी, सत्यवादी एवं गुरुभक्त होता है। राज्येश लाभभाव में हो तो जातक धन-पुत्र से युक्त, प्रसन्न, गुणवान, सत्यवादी और सदा सुखी रहता है। राज्येश व्ययभाव बैठा हो तो जातक का राजगृह में व्यय, शत्रु से भय एवं स्वयं चतुर होने पर भी सदा चिन्तित रहता है ॥१०९-१२०॥

एकादशेश फल

लाभेशे लग्नगे जातः सात्त्विको धनवान् सुखी।
समदृष्टिः कविर्वाग्मी सदा लाभसमन्वितः ॥१२१॥
लाभेशे धनभावस्थे जातः सर्वधनान्वितः ।
सर्वसिद्धियुतो दाता धार्मिकश्च सुखी सदा ॥१२२॥
लाभेशे सहजे जातः कुशलः सर्वकर्मसु ।
धनी भ्रातृसुखोपेतः शूलरोगभयं क्वचित् ॥१२३॥
लाभेशे सुखभावस्थे लाभो मातृकुलाद् भवेत् ।
तीर्थयात्राकरो जातो गृहभूमिसुखान्वितः ॥१२४॥
लाभेशे सुतभावस्थे भवन्ति सुखिनः सुताः ।
विद्यावन्तोऽपि सच्छीलाः स्वयं धर्मरतः सुखी ॥१२५॥
लाभेशे रोगभावस्थे जातो रोगसमन्वितः ।
क्रूरबुद्धिः प्रवासी च शत्रुभिः परिपीडितः ॥१२६॥

लाभेशे दारभावस्थे लाभो दारकुलात् सदा।
उदारश्च गुणी कामी जनो भार्यावशानुगः ॥१२७॥
लाभेशे रन्ध्रभावस्थे हानिः कार्येषु जायते।
तस्यायुश्च भवेद्दीर्घं प्रथमे मरणं स्त्रियः ॥१२८॥
लाभेशे भाग्यभावस्थे भाग्यवान् जायते नरः।
चतुरः सत्यवादी च राजपूज्यो धनाधिपः ॥१२९॥
लाभेशे कर्मभावस्थे भूपवन्द्यो गुणान्वितः।
निजधर्मरतो धीमान् सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥१३०॥
लाभेशे लाभभावस्थे लाभः सर्वेषु कर्मसु।
पाण्डित्यं च सुखं तस्य वर्द्धते च दिने दिने ॥१३१॥
लाभेशे व्ययभावस्थे सत्कार्येषु व्ययः सदाः।
कामुको बहुपत्नीको म्लेच्छसंसर्गकारकः ॥१३२॥

लाभेश लग्न में स्थित हो तो वह जातक सात्त्विक प्रकृति वाला, धनवान, सुखी, समदर्शी, कवि, वक्ता और सदैव लाभ से युक्त होता है। लाभेश धनभाव में बैठे हों तो जातक सभी धनों से युक्त, सभी सिद्धियों को प्राप्त करने वाला, दाता, धार्मिक और सदा सुखी रहने वाला होता है। लाभेश तृतीय स्थान में हो तो जातक सभी कार्यों में दक्ष, धनी एवं भाइयों के सुख से युक्त होता है तथा उसे शूल रोग का भय होता है। लाभेश चतुर्थ भाव में हो तो जातक मातृकुल से लाभ पाने वाला, तीर्थों का भ्रमण करने वाला एवं गृह-भूमिसुख से युक्त होता है। लाभेश पञ्चमस्थ हो तो उसके पुत्र सुखी होते हैं एवं स्वयं वह विद्यावान, सुन्दर शील, स्वतः धर्मप्रेमी और सुखी होता है। लग्नेश षष्ठभावस्थ हो तो जातक रोगी, क्रूर बुद्धि, विदेश में रहने वाला होकर शत्रुओं से पीड़ित रहता है। लाभेश सप्तमस्थ हो तो भार्याकुल से सदा लाभ प्राप्त करने वाला, उदार, गुणी, कामी और भार्या के वश रहने वाला होता है। लाभेश अष्टमस्थ हो तो स्वकार्य में हानि, दीर्घायु एवं उसकी प्रथम पत्नी का मरण होता है। लाभेश नवमस्थ हो तो जातक भाग्यवान, चतुर, सत्यवादी, राजपूज्य और धनाधिप होता है। लाभेश कर्मभाव में हो तो जातक राजपूजित, गुणों से युक्त, अपने धर्म में रत रहने वाला, सत्यवक्ता तथा इन्द्रियों को वश में रखने वाला होता है। लाभेश एकादश भाव में स्थित हो तो उसे सभी कार्यों से लाभ, स्वयं पण्डित एवं प्रतिदिन उसके सुख की वृद्धि होती है। लाभेश व्ययस्थान में हो तो जातक सदा सत्कार्य में व्यय करने वाला, कामुक, अधिक पत्नी वाला और म्लेच्छ से सम्बन्ध रखने वाला होता है ॥१२१-१३२॥

व्ययेश-फलकथन

व्ययेशे लग्नगे जातो व्ययशीलो जनो भवेत्।
दुर्बलः कफरोगी च धनविद्याविवर्जितः ॥१३३॥

व्ययेशे धनभावस्थे शुभकार्ये व्ययः सदा।
धार्मिकः प्रियवादी च गुणसौख्यसमन्वितः ॥१३४॥
व्ययेशे सहजे जातो भ्रातृसौख्यविवर्जितः।
भवेदन्यजनद्वेषी स्वशरीरस्य पोषकः ॥१३५॥
व्ययेशे सुखभावस्थे मातुः सुखविवर्जितः।
भूमियानगृहादीनां हानिस्तस्य दिने दिने ॥१३६॥
व्ययेशे सुतभावस्थे सुतविद्याविवर्जितः।
पुत्रार्थे च व्ययस्तस्य तीर्थाटनपरो नरः ॥१३७॥
व्ययेशे रिपुभावस्थे जातः स्वजनवैरकृत्।
क्रोधी पापी च दुःखी च परजायारतो नरः ॥१३८॥
व्ययेशे दारभावस्थे व्ययो दारकृतः सदा।
तस्य भार्यासुखं नैव बालविद्याविवर्जितः ॥१३९॥
व्ययेशे मृत्युभावस्थे जातो लाभान्वितः सदा।
प्रियवाङ् मध्यमायुश्च सम्पूर्णगुणसंयुतः ॥१४०॥
व्ययेशे भाग्यभावस्थे गुरुद्वेषी भवेन्नरः।
मित्रैरपि भवेद्वैरं स्वार्थसाधनतत्परः ॥१४१॥
व्ययेशे राज्यभावस्थे व्ययो राजकुलाद्भवेत्।
पितृतोऽपि सुखं तस्य स्वल्पमेव हि जायते ॥१४२॥
व्ययेशे लाभभावस्थे लाभे हानिः प्रजायते।
परेण रक्षितं द्रव्यं कदाचिल्लभते नरः ॥१४३॥
व्ययेशे व्ययभावस्थे व्ययाधिक्यं हि जायते।
न शरीरसुखं तस्य क्रोधी द्वेषपरो नृणाम् ॥१४४॥

व्ययेश लग्न में हो तो जातक व्यय-(खर्च)-शील, दुर्बल, कफसम्बन्धी व्याधि से युक्त एवं धन तथा विद्या से हीन होता है। व्ययेश धनभाव में हो तो जातक सदा शुभ कार्यों में व्यय करने वाला, धार्मिक, प्रियवादी, गुणी तथा सुखी होता है। व्ययेश तृतीय भाव में स्थित हो तो जातक भाइयों के सुख से वञ्चित, दूसरों से वैरभाव करने वाला तथा अपने शरीर का पोषक होता है। व्ययेश चतुर्थ भाव में हो तो जातक मातृसुख से हीन तथा भूमि, वाहन, गृहादि से भी प्रतिदिन हीन होता रहता है। व्ययेश पञ्चमस्थ हो तो जातक पुत्र तथा विद्या से हीन, पुत्र के लिए व्यय करने वाला एवं तीर्थभ्रमण करने में रत रहने वाला होता है। द्वादशेश षष्ठ भाव में हो तो जातक अपने जनों से वैरभाव करने वाला, क्रोधी, पापी, दुःखी तथा परस्त्रीगामी होता है। व्ययेश के सप्तमस्थ रहने पर जातक स्त्री के लिए सदा व्यय करने वाला, स्त्रीसुख से हीन तथा वह स्वयं भी बल-विद्या से हीन रहता है। व्ययेश के अष्टमस्थ रहने पर जातक सदा लाभ से युक्त रहने वाला, प्रिय वक्ता, मध्यमायु वाला

तथा सभी गुणों से सुसम्पन्न रहने वाला होता है। व्ययेश नवमस्थ हो तो जातक गुरु से द्वेष, मित्र से वैरभाव और अपने कार्यसम्पादन में तत्पर रहता है। व्ययेश दशमस्थ हो तो जातक को राजकुल से व्यय और पितृ सुख भी स्वल्प ही होता है। व्ययेश के द्वादशस्थ होने पर जातक को लाभ में हानि एवं कभी दूसरे के द्वारा रक्षित धन की प्राप्ति होती है। व्ययेश के लाभस्थ होने पर जातक को अधिक व्यय करना पड़ता है और उसको शरीरसुख नहीं होता एवं वह स्वयं क्रोधी तथा द्वेष करने वाला होता है ॥१३३-१४४॥

भावेश के पूर्वोक्त फल में न्यूनाधिक्य कथन

इति ते कथितं विप्र! भावेशानां च यत् फलम्।
बलाऽबलविवेकेन सर्वेषां तत्समादिशेत् ॥१४५॥
द्विराशीशस्य खेटस्य विदित्वोभयथा फलम्।
विरोधे तुल्यफलयोर्द्वयोर्नाशः प्रजायते ॥१४६॥
विभिन्नयोस्तु फलयोर्द्वयोः प्राप्तिर्भवेद् ध्रुवम्।
ग्रहे पूर्णबले पूर्णमर्धमर्धबले फलम् ॥१४७॥
पादं हीनबले खेटे ज्ञेयमित्थं बुधैरिति।
उक्तं भावस्थितानां ते भावेशानां फलं मया ॥१४८॥

हे विप्र! मैंने जो भावेशों का फल कहा है, वह फल ग्रहों के बलाबल का अवलोकन करके बताना चाहिए। जो ग्रह २ भाव का अधिपति हो उसका दोनों भाव के अधिपति के अनुसार फलादेश करना चाहिए, यदि तुल्य फल में विरोध हो तो उस जातक को दोनों फल का अभाव जान लेना चाहिए। भिन्न-भिन्न फल हो तो दोनों फलों की प्राप्ति होती है। भावेश पूर्ण बली हो तो जातक को पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। भावेश के अर्ध बली होने पर अर्ध फल तथा हीन बली होने पर पाद (१/४) फल बताना चाहिए; इस प्रकार विचार करके ही विद्वान् को फलादेश करना चाहिए ॥१४४-१४८॥

उदाहरण—जैसे कन्या लग्न वाले के गुरु चतुर्थेश और सप्तमेश दो भावाधिपति होते हैं। गुरु मान लिया पञ्चमस्थ है तो पूर्वोक्त "दारेशे पञ्चमे जातो ...." इत्यादि और "सुखेशे पुत्रभावस्थे सुखी ...." इत्यादि दोनों फल जान लेना चाहिए। दोनों फल शुभ आता हो तो अत्यन्त शुभ फल और दोनों अशुभ आया हो तो अत्यन्त अशुभ समझना चाहिए। तुल्य फल का विरोध इस प्रकार हुआ कि अपनी स्त्री जब अपने वश नहीं रहती है तो उस स्त्री का वह प्रिय नहीं हो सकता है और दूसरे वाक्य में "सर्वजनप्रिय" आया है; अतः यहाँ पर दोनों वाक्य का परस्पर विरोध हो गया। इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिए।

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां भावेशफलाध्यायः ॥२५॥

अथाऽप्रकाशग्रहफलाध्यायः ॥२६॥

धूमफल

पराशर उवाच

रव्यादिसप्तखेटानां प्रोक्तं भावफलं मया।
अप्रकाशग्रहाणां च फलानि कथयाम्यहम् ॥१॥
शूरो विमलनेत्रांशः सुस्तब्धो निर्घृणः खलः।
मूर्तिस्थे धूमसंज्ञे च गाढरोषो नरः सदा ॥२॥
रोगी धनी तु हीनाङ्गो राज्यापहृतमानसः।
धूमे द्वितीये सम्प्राप्ते मन्दप्रज्ञो नपुंसकः ॥३॥
मतिमान् शौर्यसम्पन्नः इष्टचित्तः प्रियंवदः।
धूमे सहजभावस्थे धनाढ्यो धनवान् भवेत् ॥४॥
कलत्राङ्गपरित्यक्तो नित्यं मनसि दुःखितः।
धूमे चतुर्थे सम्प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थचिन्तकः ॥५॥
स्वल्पापत्यो धनैर्हीनो धूमे पञ्चमसंस्थिते।
गुरुता सर्वभक्षं च सुहृन्मन्त्रविवर्जितः ॥६॥
बलवाञ्छत्रुवधको धूमे च रिपुभावगे।
बहुतेजोयुतः ख्यातः सदा रोगविवर्जितः ॥७॥
निर्धनः सततं कामी परदारेषु कोविदः।
धूमे सप्तमगे जातो निस्तेजाः सर्वदा भवेत् ॥८॥
विक्रमेण परित्यक्तः सोत्साहो सत्यसङ्गरः।
अप्रियो निष्ठुरः स्वार्थी धूमे मृत्युगते सति ॥९॥
सुतसौभाग्यसम्पन्नो धनी मानी दयान्वितः।
धर्मस्थाने स्थिते धूमे धर्मवान् बन्धुवत्सलः ॥१०॥
सुतसौभाग्यसंयुक्तः सन्तोषी मतिमान् सुखी।
कर्मस्थे मानवो नित्यं धूमे सत्यपदस्थितः ॥११॥
धनधान्यहिरण्याढ्यो रूपवांश्च कलान्वितः।
धूमे लाभगते चैव विनीतो गीतकोविदः ॥१२॥
पतितः पापकर्मा च धूमे द्वादशसङ्गते।
परदारेषु संसक्तो व्यसनी निर्घृणः शठः ॥१३॥

पराशर कहते हैं कि हे मैत्रेय ! मैंने भावेशानुसार सूर्यादि सात ग्रहों का फल कहा। अब मैं धूम आदि अप्रकाश ग्रहों का फल कहता हूँ। यदि लग्न में धूम ग्रह हो तो जातक

शूर, निर्मल दृष्टि वाला, स्तब्ध, निर्घृण, मूर्ख और अधिक क्रोधी होता है। धूम द्वितीय भाव में प्राप्त हो तो जातक रोगयुक्त, धनी, अङ्गरहित, राज्य से हृत मानस वाला, मन्द बुद्धि और नपुंसक (वीर्यहीन) होता है। तृतीय में धूम हो तो जातक बुद्धिमान्, शूरवीर, परोपकारी, प्रिय बोलने वाला और धनी होता है। चतुर्थ में धूम हो तो जातक पत्नी से त्यक्त होने के कारण मन में सदैव दुःखी रहता है एवं सभी शास्त्रों का चिन्तक (विचार, मनन, अध्ययन, करने वाला) होता है। पञ्चम में धूम स्थित हो तो जातक अल्प सन्तान वाला, धन से हीन, गुरुतायुक्त, सर्वभक्षी और मित्रों के विचार से विमुख रहता है। धूम षष्ठस्थ हो तो जातक बलवान, शत्रु को पराजित करने वाला, अधिक तेजस्वी, विख्यात और सदैव रोगहीन रहता है। धूम सप्तमस्थ हो तो जातक धनहीन, निरन्तर कामी, परस्त्रीगामी, पण्डित; परन्तु वर्चस्वहीन होता है। धूम के अष्टमस्थ रहने पर जातक पराक्रमहीन, उत्साही, सत्यमार्गावलम्बनकारक, अप्रियवादी, निष्ठुर और स्वार्थी होता है। धर्मभाव में धूम हो तो जातक पुत्रवान, सौभाग्ययुक्त, धनी, मानी, दयायुक्त, धर्मात्मा और बन्धु-प्रिय होता है। कर्मस्थ धूम हो तो जातक पुत्र तथा सौभाग्ययुक्त, सन्तोषी, बुद्धिमान, सुखी और सदैव सत्य मार्ग पर स्थित रहने वाला होता है। धूम के एकादश भाव में रहने पर जातक धन-धान्य-सुवर्ण से युक्त, रूपयुक्त, कलाविद, नम्र और संगीत का ज्ञाता होता है। द्वादश में धूम स्थित हो तो जातक पतित, पाप कर्माचरण करने वाला, दूसरे की स्त्री से सम्पर्क रखने वाला, व्यसनी, निर्दयी और शठ होता है ॥१-१३॥

पातफल

लग्ने पाते च सम्प्राप्ते जातको दुःखपीडितः।
क्रूरो घातकरो मूर्खो द्वेषी बन्धुजनस्य च ॥१४॥
जिह्मोऽतिपित्तवान् भोगी धनस्थे पातसंज्ञके।
निर्घृणश्चाऽकृतज्ञश्च दुष्टात्मा पापकृत्तथा ॥१५॥
स्थिरप्रज्ञो रणी दाता धनाढ्यो राजवल्लभः।
सम्प्राप्ते सहजे पाते सेनाधीशो भवेन्नरः ॥१६॥
बन्धव्याधिसमायुक्तः सुतसौभाग्यवर्जितः।
चतुर्थगो यदा पातस्तदा स्यान्मनुजश्च सः ॥१७॥
दरिद्रो रूपसंयुक्तः पाते पञ्चमगे सति।
कफपित्तानिलैर्युक्तो निष्ठुरो निरपत्रपः ॥१८॥
शत्रुहन्ता सुपुष्टश्च सर्वास्त्राणां च चालकः।
कलासु निपुणः शान्तः पाते शत्रुगते सति ॥१९॥
धनदारसुतैस्त्यक्तः स्त्रीजितो दुःखसंयुतः।
पाते कलत्रगे कामी निर्लज्जः परसौहृदः ॥२०॥
विकलाक्षो विरूपश्च दुर्भगो द्विजनिन्दकः।
मृत्युस्थाने स्थिते पाते रक्तपीडापरिप्लुतः ॥२१॥

बहुव्यापारको नित्यं बहुमित्रो बहुश्रुतः ।
धर्मभे पातखेटे च स्त्रीप्रियश्च प्रियंवदः ॥२२॥
सश्रीको धर्मकृच्छान्तो धर्मकार्येषु कोविदः ।
कर्मस्थे पातसंज्ञे हि महाप्राज्ञो विचक्षणः ॥२३॥
प्रभूतधनवान् मानी सत्यवादी दृढव्रतः ।
अश्वाढ्यो गीतसंसक्तः पाते लाभगते सति ॥२४॥
कोपी च बहुकर्माढ्यो व्यङ्गो धर्मस्य दूषकः ।
व्ययस्थाने गते पाते विद्वेषी निजबन्धुषु ॥२५॥

लग्न में पात स्थित हो तो जातक दु:ख से पीड़ित, क्रूर, घातक, मूर्ख और बन्धुजन से द्वेष करने वाला होता है। धनभाव में पात गया हो तो जातक कुटिल, पित्त-प्रकृति, भोगी, निर्घृणी, कृतघ्न, दुष्ट और पापी होता है। सहजभाव में पात प्राप्त हो तो जातक निश्चल बुद्धि वाला, योद्धा, दाता, धन से युक्त, राजप्रिय और सेनाधिपति होता है। चतुर्थ में पात स्थित होने पर जातक बन्धन-रोग से युक्त एवं पुत्र तथा सौभाग्य से हीन होता है। पञ्चम स्थान में पात रहने पर जातक दरिद्र, रूपवान, कफ-पित्त-वायु से पीड़ित, निष्ठुर तथा निर्लज्ज होता है। पात शत्रुभावस्थ हो तो जातक शत्रु को मारने वाला, पुष्ट देह वाला, सभी अस्त्रों का ज्ञाता, कलाओं में दक्ष तथा शान्त प्रकृति का होता है। पात के सप्तमस्थ रहने पर जातक धन, भार्या, पुत्र से त्यक्त, स्त्री के वश में रहने वाला, दु:खी, लज्जाहीन और शत्रु को आनन्द देने वाला होता हैं। अष्टम में पात हो तो जातक विकल नेत्र वाला, विरूप, भाग्यहीन, ब्राह्मणनिन्दक और रक्तपीड़ा से समन्वित होता है। धर्मस्थ पात हो तो जातक अधिक व्यापार करने वाला, अधिक मित्र वाला, बहुत विषय का ज्ञाता, स्त्री का प्रिय और प्रिय वक्ता होता है। कर्मस्थ पात हो तो जातक सम्पत्ति से युक्त, धार्मिक, शान्त, धर्मों का ज्ञाता और महान् बुद्धिमान होता है। पात लाभगत हो तो जातक अधिक धनवान, मानी, सत्यवादी, दृढ़ प्रतिज्ञ, घोड़ा से युक्त और गायक होता है। व्यय भाव में पात रहने पर जातक क्रोधी, बहुत कार्य करने वाला, अङ्गरहित, धर्म की निन्दा करने वाला और अपने बन्धुओं से वैरभाव रखने वाला होता है ॥१४-२५॥

परिधिफल

विद्वान् सत्यरतः शान्तो धनवान् पुत्रवाञ्छुचिः ।
परिधौ तनुगे दाता जायते गुरुवत्सलः ॥२६॥
ईश्वरो रूपवान् भोगी सुखी धर्मपरायणः ।
धनस्थे परिधौ जातः प्रभुर्भवति मानवः ॥२७॥
स्त्रीवल्लभः सुरूपाङ्गो देवस्वजनसङ्गतः ।
तृतीये परिधौ भृत्यो गुरुभक्तिसमन्वितः ॥२८॥
परिधौ सुखभावस्थे विस्मितं त्वरिमङ्गलम् ।
अक्रूरं त्वथ सम्पूर्णं कुरुते गीतकोविदम् ॥२९॥

लक्ष्मीवान् शीलवान् कान्तः प्रियवान् धर्मवत्सलः ।
पञ्चमे परिधौ जातः स्त्रीणां भवति वल्लभः ॥३०॥
व्यक्तोऽर्थपुत्रवान् भोगी सर्वसत्त्वहिते रतः ।
परिधौ रिपुभावस्थे शत्रुहा जायते नरः ॥३१॥
स्वल्पापत्यः सुखैर्हीनो मन्दप्रज्ञः सुनिष्ठुरः ।
परिधौ द्यूनभावस्थे स्त्रीणां व्याधिश्च जायते ॥३२॥
अध्यात्मचिन्तकः शान्तो दृढकायो दृढव्रतः ।
धर्मवांश्च ससत्त्वश्च परिधौ रन्ध्रसंस्थिते ॥३३॥
पुत्रान्वितः सुखी कान्तो धनाढ्यो लौल्यवर्जितः ।
परिधौ धर्मगे मानी स्वल्पसन्तुष्टमानसः ॥३४॥
कलाभिज्ञस्तथा भोगी दृढकायो ह्यमत्सरः ।
परिधौ दशमे प्राप्ते सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥३५॥
स्त्रीभोगी गुणवांश्चैव मतिमान् स्वजनप्रियः ।
लाभगे परिधौ जातो मन्दाग्निरुपपद्यते ॥३६॥
व्ययस्थे परिधौ जातो व्ययकृत् मानवः सदा ।
दुःखभाग् दुष्टबुद्धिश्च गुरुनिन्दापरायणः ॥३७॥

यदि परिधि लग्न में स्थित हो तो जातक विद्वान्, सत्य में रत रहने वाला, शान्त, धनवान, पुत्रवान, पवित्र, दाता और गुरुभक्त होता है। परिधि धनभाव में गया हो तो जातक रूपयुक्त, भोगी, सुखी, धार्मिक और सबका स्वामी होता है। तृतीय भाव में परिधि हो तो जातक पत्नी का प्रिय, सुन्दर रूप तथा अङ्ग वाला, देवता तथा स्वजनभक्त, सेवक और गुरु का भक्त होता है। चतुर्थ में परिधि हो तो जातक विस्मित, शत्रु के लिए मंगलकारक, सहृदयी और संगीतज्ञ होता है। ५ में परिधि हो तो लक्ष्मीयुक्त, सुशील, सुन्दर, प्रिय वक्ता, धर्म-प्रेमी और स्त्री का प्रिय होता है। ६ में परिधि के रहने से विख्यात, धनी, पुत्रवान, भोगी, सभी प्राणियों के प्रति दया रखने वाला तथा शत्रु को जीतने वाला होता है। ७ में रहने से स्वल्प सन्तान वाला, सुख से हीन, मन्द बुद्धि वाला, स्वयं अत्यन्त निष्ठुर तथा उसकी स्त्री रोगिणी होती है। ८ वें स्थान में परिधि हो तो जातक अध्यात्मवादी, शान्त, मजबूत देह वाला और अपनी प्रतिज्ञा में दृढ रहने वाला, धर्मात्मा तथा बलयुक्त होता है। ९ में परिधि के रहने से सन्तान से युक्त, सुखी, सुन्दर, धन से युक्त, चञ्चलता से हीन, मानी और थोड़े में ही सन्तुष्ट रहने वाला होता है। १० में हो तो जातक कलाविज्ञ, भोगी, मजबूत शरीर वाला, सरल स्वभाव वाला और सभी शास्त्रों में पारंगत होता है। ११ रहने से स्त्री से सुखी, गुणी, बुद्धिमान, अपने जनों का प्रिय तथा मन्दाग्निरूपी व्याधि से युक्त रहता है। १२ वें भाव में परिधि हो तो जातक अधिक व्यय करने वाला, दुःखी, दुष्ट बुद्धि वाला और अपने गुरु की निन्दा करने वाला होता है ॥२६-३७॥

चापफल

धनधान्यहिरण्याढ्यः कृतज्ञः सम्मतः सताम्।
सर्वदोषपरित्यक्तश्चापे तनुगते नरः ॥३८॥
प्रियंवदः प्रगल्भाढ्यो विनीतो विद्ययाऽन्वितः।
धनस्थे चापखेटे च रूपवान् धर्मतत्परः ॥३९॥
कृपणोऽतिकलाभिज्ञश्चौर्यकर्मरतः सदा।
सहजे धनुषि प्राप्ते हीनाङ्गो गतसौहृदः ॥४०॥
सुखी गोधनधान्याद्यै राजसन्मानपूजितः।
कार्मुके सुखसंस्थे तु नीरोगो ननु जायते ॥४१॥
रुचिमान् दीर्घदर्शी च देवभक्तः प्रियंवदः।
चापे पञ्चमगे जातो विवृद्धः सर्वकर्मसु ॥४२॥
शत्रुहन्ताऽतिधूर्तश्च सुखी प्रीतिरुचिः शुचिः।
षष्ठस्थानगते चापे सर्वकर्मसमृद्धिभाक् ॥४३॥
ईश्वरो गुणसम्पूर्णः शास्त्रविद्धार्मिकः प्रियः।
चापे सप्तमभावस्थे भवतीति न संशयः ॥४४॥
परकर्मरतः क्रूरः परदारपरायणः।
अष्टमस्थानगे चापे जायते विकलाङ्गकः ॥४५॥
तपस्वी व्रतचर्यासु निरतो विद्ययाऽधिकः।
धर्मस्थे जायते चापे मानवो लोकविश्रुतः ॥४६॥
बहुपुत्रधनैश्वर्यो गोमहिष्यादिमान् भवेत्।
कर्मभे चापसंयुक्ते जायते लोकविश्रुतः ॥४७॥
लाभगे चापखेटे च लाभयुक्तो भवेन्नरः।
नीरोगो दृढकोपाग्निर्मन्त्रस्त्रीपरमास्त्रवित् ॥४८॥
खलोऽतिमानी दुर्बुद्धिर्निर्लज्जो व्ययसंस्थिते।
चापे परस्त्रीसंयुक्तो जायते निर्धनः सदा ॥४९॥

यदि लग्न में चाप हो तो जातक धन-धान्य-सोना से युक्त, कृतज्ञ, सज्जन से सम्पर्क करने वाला और सभी दोषों से हीन होता है। धनस्थ चाप हो तो जातक प्रियवादी, चतुर, विनम्र, विद्या से युक्त, सुन्दर तथा धर्म में तत्पर रहता है। यदि चाप तृतीय में हो तो जातक कञ्जूस, कलाओं का ज्ञाता, चौर कार्य में रत रहने वाला, अङ्गरहित और मैत्रीभाव से रहित होता है। यदि चतुर्थ में चाप बैठा हो तो जातक सुखी, गो-धन-धान्यादि से युक्त, राजा से पूजित एवं नीरोग होता है। चाप पञ्चमस्थ हो तो जातक सुन्दर, दूरदर्शी, देवभक्त, प्रियवादी एवं सभी कार्यों में निपुण होता है। षष्ठ भावस्थ चाप हो तो जातक शत्रु को जीतने वाला, अत्यन्त धूर्त (ठग), सुखी, प्रेमी, पवित्र और सभी कार्यों में लाभ प्राप्त करने

वाला होता है। सप्तमस्थ चाप रहने पर जातक धनी, गुणी, सभी शास्त्रों का ज्ञाता, धार्मिक और सबका प्रिय होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अष्टमस्थ चाप रहने पर जातक दूसरे का कार्य करने वाला, क्रूर, परस्त्रीगामी और अङ्गहीन होता है। धर्मस्थान में चाप हो तो जातक तपस्वी, व्रताचरण करने वाला, अधिक विनययुक्त और लोक ख्याति प्राप्त करता है। कर्मस्थ चाप रहने पर जातक बहुत पुत्र, धन, ऐश्वर्य से युक्त, गौ, भैंस आदि पशुओं से युक्त और विख्यात होता है। लाभस्थ चाप हो तो जातक लाभयुक्त, नीरोग, अधिक क्रोधी, मन्त्रज्ञ, स्त्रीप्रिय और अस्त्रज्ञाता होता है। व्यय भाव में चाप के रहने पर जातक मूर्ख, अभिमानी, दुष्ट बुद्धि, निर्लज्ज, परस्त्री से सम्पर्क रखने वाला और सदैव धन से हीन होता है ॥३८-४९॥

केतुफल

कुशलः सर्वविद्यासु सुखी वाङ्निपुणः प्रियः।
तनौ शिखिनि सञ्जातः सर्वकामान्वितो भवेत् ॥५०॥
वक्ता प्रियंवदः कान्तो धनस्थानगते ध्वजे।
काव्यकृत् पण्डितो मानी विनीतो वाहनान्वितः ॥५१॥
कदर्यः क्रूरकर्ता च कृशाङ्गो धनवर्जितः।
सहजस्थे तु शिखिनि तीव्ररोगी प्रजायते ॥५२॥
रूपवान् गुणसम्पन्नः सात्त्विकोऽपि श्रुतिप्रियः।
सुखसंस्थे तु शिखिनि सदा भवति सौख्यभाक् ॥५३॥
सुखी भोगी कलाविच्च पञ्चमस्थानगे ध्वजे।
युक्तिज्ञो मतिमान् वाग्मी गुरुभक्तिसमन्वितः ॥५४॥
मातृपक्षक्षयकरः शत्रुहा बहुबान्धवः।
रिपुस्थाने ध्वजे प्राप्ते शूरः कान्तो विचक्षणः ॥५५॥
द्यूतक्रीडाष्वभिरतः कामी भोगसमन्वितः।
ध्वजे तु सप्तमस्थाने वेश्यासु कृतसौहृदः ॥५६॥
नीचकर्मरतः पापो निर्लज्जो निन्दकः सदा।
मृत्युस्थाने ध्वजे प्राप्ते गतस्त्र्यपरपक्षकः ॥५७॥
लिङ्गधारी प्रसन्नात्मा सर्वभूतहिते रतः।
धर्मभे शिखिनि प्राप्ते धर्मकार्येषु कोविदः ॥५८॥
सुखसौभाग्यसम्पन्नः कामिनीनां च वल्लभः।
दाता द्विजैः समायुक्तः कर्मस्थे शिखिनि द्विजः ॥५९॥
नित्यलाभः सुधर्मी च लाभे शिखिनि पूजितः।
धनाढ्यः सुभगः शूरः सुयज्ञश्चाति कोविदः ॥६०॥
पापकर्मरतः शूरः श्रद्धाहीनोऽघृणो नरः।
परदाररतो रौद्रः शिखिनि व्ययगे सति ॥६१॥

यदि लग्न में केतु बैठा हो तो जातक सभी विद्याओं में कुशल, सुखी, वाचाल शक्ति से युक्त, जनों का प्रिय और सभी कार्यों से युक्त होता है। यदि द्वितीयस्थ केतु हो तो जातक बोलने में चतुर, मधुरभाषी, सुन्दर, काव्यकर्ता, पण्डित, मानी, नम्र और वाहनों से युक्त होता है। केतु तृतीय में हो तो जातक कृपण, क्रूर कार्य करने वाला, दुबला-पतला, धन से हीन और असाध्य रोग से पीड़ित रहता है। केतु चतुर्थ में हो तो जातक रूप तथा गुण से सम्पन्न, सात्त्विक प्रकृति वाला, वेदों में निष्ठा रखने वाला और सदैव सुखी रहता है। पञ्चमस्थ केतु हो तो जातक सुखी, भोगी, कलाओं का ज्ञाता, युक्तियों का ज्ञाता, बुद्धिमान, बोलने वाला और गुरु को मानने वाला होता है। षष्ठस्थ केतु रहने पर जातक मातृकुल का नाशकारक, शत्रु को मारने वाला, अधिक भाइयों वाला, शूर-वीर, सुन्दर और विलक्षण होता है। सप्तमस्थ केतु हो तो जातक जुआ खेलने में चतुर, कामी, भोगी और वेश्याओं से सम्पर्क रखने वाला होता है। अष्टम भाव में केतु स्थित हो तो जातक नीच कार्य करने वाला, पापी, लज्जाहीन, दूसरे की निन्दा करने वाला और परस्त्रीगामी होता है। नवमस्थ केतु रहने पर जातक गेरुआ वस्त्र धारण करने वाला, प्रसन्न हृदय, सभी जीवों से प्रेम रखने वाला और धार्मिक कार्यों में दक्षता वाला होता है। दशमस्थ केतु रहने पर जातक सुख और सौभाग्य से युक्त, स्त्रियों का प्रिय, दानी और विप्रों के साथ रहने वाला होता है। लाभस्थ केतु हो तो जातक सदा लाभ पाने वाला, धार्मिक, धनी, सुन्दर, वीर, महान् और बुद्धिमान होता है। व्यय भाव में केतु के रहने पर जातक पापकर्मकर्ता, शूर, श्रद्धा और दया से हीन, परस्त्रीगामी तथा क्रूर होता है ॥५०-६१॥

गुलिकफल

रोगार्त्तः सततं कामी पापात्माधिगतः शठः।
तनुस्थे गुलिके जातः खलभावोऽतिदुःखितः ॥६२॥
विकृतो दुःखितः क्षुद्रो व्यसनी च गतत्रपः।
धनस्थे गुलिके जाते निःस्वो भवति मानवः ॥६३॥
चार्वङ्गो ग्रामपः पुण्यसंयुक्तः सज्जनप्रियः।
सहजे गुलिके जातो मानवो राजपूजितः ॥६४॥
रोगी सुखपरित्यक्तः सदा भवति पापकृत्।
गुलिके सुखभावस्थे वातपित्ताधिको भवेत् ॥६५॥
विस्तुतिर्विधनोऽल्पायुर्द्वेषी क्षुद्रो नपुंसकः।
गुलिके सुतभावस्थे स्त्रीजितो नास्तिको भवेत् ॥६६॥
वीतशत्रुः सुपुष्टाङ्गो रिपुस्थाने यमात्मजे।
सुदीप्तः सम्मतः स्त्रीणां सोत्साहः सुदृढो हितः ॥६७॥
स्त्रीजितः पापकृज्जारः कृशाङ्गो गतसौहृदः।
जीवितः स्त्रीधनेनैव गुलिके सप्तमस्थिते ॥६८॥

क्षुधालुर्दुखितः क्रूरस्तीक्ष्णरोषोऽतिनिर्घृणः ।
रन्ध्रगे गुलिके निःस्वो जायते गुणवर्जितः ॥६९॥
बहुक्लेशः कृशतनुर्दुष्टकर्मातिनिर्घृणः ।
गुलिके धर्मगे मन्दः पिशुनो बहिराकृतिः ॥७०॥
पुत्रान्वितः सुखी भोक्ता देवाग्न्यर्चनवत्सलः ।
दशमे गुलिके जातो योगधर्माश्रितः सुखी ॥७१॥
सुस्त्री-भोगी प्रजाध्यक्षो बन्धूनां च हिते रतः ।
लाभस्थे गुलिके जातो नीचाङ्गः सार्वभौमकः ॥७२॥
नीचकर्माश्रितः पापो हीनाङ्गो दुर्भगोऽलसः ।
व्ययगे गुलिके जातो नीचेषु कुरुते रतिम् ॥७३॥

लग्न में गुलिक स्थित हो तो जातक निरन्तर रोगी, कामी, पापी, शठ, दुष्ट स्वभाव वाला और अत्यन्त दुःखी होता है। धनभाव में गुलिक के रहने पर जातक विकृताङ्ग, दुःखी, क्षुद्र, व्यसनी, लज्जाहीन और धनहीन होता है। तृतीय भाव में गुलिक बैठा हो तो वह सुरूप, ग्राम का अधिपति, पुण्य से युक्त, सज्जनों का प्रिय और राजा से पूजित होता है। सुखभावस्थ गुलिक रहने पर जातक रोगी, सुख से रहित, सदैव पापकार्य करने वाला एवं वात तथा पित्तसम्बन्धी व्याधि से युक्त होता है। पञ्चमस्थ गुलिक हो तो जातक निन्दाकारक, धनहीन, अल्पायु, द्वेषी, क्षुद्र, नपुंसक, स्त्री के वश में रहने वाला और नास्तिक होता है। षष्ठ भाव में गुलिक के रहने पर जातक शत्रुहीन, मजबूत देह वाला, तेजस्वी, भार्यानुकूल चलने वाला, उत्साही और लोककल्याण में रत रहता है। गुलिक सप्तम में स्थित हो तो जातक स्त्री के धन से जीवित रहने वाला, स्त्री का वशी, पापकर्मकारक, कृश देह वाला और मैत्री से हीन होता है। अष्टमस्थ गुलिक हो तो जातक भूख से पीड़ित, दुःखी, क्रूर, उग्र रोष वाला, निर्दय, निर्धन और गुणरहित होता है। गुलिक धर्मभाव में स्थित हो तो जातक अधिक कष्ट वाला, दुर्बल शरीर वाला, दुष्ट कर्मी, निर्दय, मन्द प्रकृति वाला और चुगुलखोर होता है। दशमस्थ गुलिक हो तो जातक पुत्रयुक्त, सुखी, भोगी, देवार्चक, अग्निहोत्री, योगी और सुखी होता है। लाभस्थ गुलिक हो तो जातक सुन्दर स्त्री वाला, भोगी, लोगों का स्वामी, बन्धुओं के कल्याण में लगने वाला, छोटा शरीर वाला और सभी का मान्य होता है। व्यय भाव में गुलिक के रहने पर जातक नीच कार्य करने वाला, पापी, अङ्गरहित, भाग्यहीन, आलसी और नीच व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाला होता है ॥६२-७३॥

प्राणपदफल

लग्ने प्राणपदे क्षीणो रोगी भवति मानवः ।
मूकोन्मत्तो जडाङ्गस्तु हीनाङ्गो दुःखितः कृशः ॥७४॥
बहुधान्यो बहुधनो बहुभृत्यो बहुप्रजः ।
धनस्थानस्थिते प्राणे सुभगो जायते नरः ॥७५॥

हिंस्रो गर्वसमायुक्तो निष्ठुरोऽतिमलिम्लुचः ।
तृतीयगे प्राणपदे गुरुभक्तिविवर्जितः ॥७६॥
सुखस्थे तु सुखी कान्तः सुहृद्रामासु वल्लभः ।
गुरौ परायणः शीतः प्राणे वै सत्यतत्परः ॥७७॥
सुखभाक् सुक्रियोपेतस्त्वपचारदयान्वितः ।
पञ्चमस्थे प्राणपदे सर्वकामसमन्वितः ॥७८॥
बन्धुशत्रुवशस्तीक्ष्णो मन्दाग्निर्निर्दयः खलः ।
षष्ठे प्राणपदे रोगी वित्तपोऽल्पायुरेव च ॥७९॥
ईर्ष्यालुः सततं कामी तीव्ररौद्रवपुर्नरः ।
सप्तमस्थे प्राणपदे दुराराध्यः कुबुद्धिमान् ॥८०॥
रोगसन्तापिताङ्गश्च प्राणपादेऽष्टमे सति ।
पीडितः पार्थिवैर्दुःखैर्भृत्यबन्धुसुतोद्भवैः ॥८१॥
पुत्रवान् धनसम्पन्नः सुभगः प्रियदर्शनः ।
प्राणे धर्मस्थिते भृत्यः सदाऽदुष्टो विचक्षणः ॥८२॥
वीर्यवान् मतिमान् दक्षो नृपकार्येषु कोविदः ।
दशमे वै प्राणपदे देवार्चनपरायणः ॥८३॥
विख्यातो गुणवान् प्राज्ञो भोगी धनसमन्वितः ।
लाभस्थानस्थिते प्राणे गौराङ्गो मातृवत्सलः ॥८४॥
क्षुद्रो दुष्टस्तु हीनाङ्गो विद्वेषी द्विजबन्धुषु ।
व्यये प्राणे नेत्ररोगी काणो वा जायते नरः ॥८५॥

प्राणपद लग्नगत हो तो जातक कृश, रोगी, गूंगा, पागल, जड, अङ्गहीन, दुःखी और दुर्बल होता है। २ में हो तो जातक अधिक धान्ययुक्त, अधिक धनी, बहुत नौकरों से युक्त, अधिक सन्तान वाला और सुन्दर होता है। ३ में प्राणपद रहने पर जातक हिंसाकारक, अहङ्कारयुक्त, निष्ठुर, मलिन और गुरु के प्रति निष्ठा से हीन होता है। ४ में प्राणपद स्थित हो तो जातक सुखी, सुन्दर, मित्र तथा स्त्रियों का प्रिय, गुरु में निष्ठा रखने वाला, कोमल और सत्यवादी होता है। ५ में प्राणपद रहने पर जातक सुखी, सुन्दर कार्य करने वाला, उपकारी, दयायुक्त और सभी कार्यों का कर्ता होता है। षष्ठस्थ प्राणपद रहने पर जातक बन्धु तथा वैरी के वश में रहने वाला, उग्र, मन्दाग्नियुक्त, निर्दयी, मूर्ख, रोगी, धनी और अल्पायु होता है। ७ में प्राणपद हो तो जातक ईर्ष्या से युक्त, निरन्तर कामी, उग्र, भयङ्कर देह वाला, सबसे अप्रसन्न और कुबुद्धि वाला होता है। अष्टमस्थ प्राणपद रहने पर जातक रोग से चिन्तित एवं अंग, राजा, नौकर, बन्धु एवं पुत्रों के कारण उत्पन्न दुःख से सदैव पीड़ित रहता है। प्राणपद धर्मस्थ हो तो जातक पुत्रवान, धन से युक्त, सुन्दर, देखने में प्रिय, नौकरी करने वाला, सरल स्वभाव और विलक्षण बुद्धि से युक्त होता है।

दशम में प्राणपद रहने पर जातक वीर्यवान, बुद्धिमान, राजकार्य में निपुण, कवि और देवपूजन में रत रहने वाला होता है। लाभभाव में प्राणपद रहने पर जातक विख्यात, गुणी, बुद्धिमान, भोगी, धन से युक्त, गौर वर्ण और माता का प्रिय होता है। प्राणपद द्वादश में स्थित हो तो जातक क्षुद्र, दुष्ट, अङ्गहीन, ब्राह्मण तथा अपने बन्धुओं का द्वेषी, नेत्ररोगी एवं एक आँख वाला होता है ॥७४-८५॥

इत्यप्रकाशखेटानां फलान्युक्तानि भूसुर ! ।
तथा यानि प्रकाशानां सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥८६॥
तानि स्थितिवशात्तेषां स्फुटदृष्टिवशात्तथा ।
बलाऽबलविवेकेन वक्तव्यानि शरीरिणाम् ॥८७॥

इस प्रकार धूम से प्राणपदपर्यन्त अप्रकाश ग्रहों के भावफल को मैंने आपसे कहा। इन अप्रकाश ग्रहों के भावफल को विचार करके सूर्यादि प्रकाशग्रहों के भावफल को बताना चाहिए अर्थात् अप्रकाश ग्रह तथा प्रकाश ग्रह—दोनों शुभ हों तो अत्यन्त शुभ फल होगा, दोनों (अप्रकाश-प्रकाश) ग्रह अशुभ हों तो अत्यन्त अशुभ एवं एक शुभ और दूसरा अशुभ हो तो मध्यम भाव होगा। इस प्रकार शुभ-अशुभ का विचार कर, बलाबल का विचार करते हुए फलादेश करना चाहिए।

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामप्रकाशग्रहफलाध्यायः ॥२६॥

अथ ग्रहस्फुटदृष्टिकथनाध्यायः ॥२७॥

मैत्रेय उवाच

भगवन्! कतिधा दृष्टिर्बलं कतिविधं तथा।
इति मे संशयो जातस्तं भवान् छेत्तुमर्हति ॥१॥

मैत्रेय जी कहते हैं कि हे भगवन्! आपने कहा है कि ग्रहों की स्पष्ट दृष्टि और बलाबल के अनुसार फल बताना चाहिए। ऐसी स्थिति में दृष्टि कितने प्रकार की है और बल कितने प्रकार के होते हैं ? इस संशय को दूर करने में आप ही समर्थ हैं, अतः कृपा कर मेरे इस सन्देह को दूर करें ॥१॥

पराशर उवाच

एका राशिवशाद् दृष्टिः पूर्वमुक्ता च या द्विज!।
अन्या खेटस्वभावोत्था स्फुटा तां कथयाम्यहम् ॥२॥
त्रिदशे च त्रिकोणे च चतुरस्रे च सप्तमे।
पादवृद्ध्या प्रपश्यन्ति प्रयच्छन्ति फलं तथा ॥३॥
पूर्णं च सप्तमं सर्वे शनि-जीव-कुजाः पुनः।
विशेषतश्च त्रिदश-त्रिकोण-चतुरष्टमान् ॥४॥
इति सामान्यतः पूर्वैराचार्यैः प्रतिपादिता।
स्फुटान्तरवशाद्या च दृष्टिः साऽतिस्फुटा यथा ॥५॥

पराशर जी बोले कि हे मैत्रेय! मैंने एक दृष्टि राशि के अनुसार कही है, लेकिन दूसरी स्पष्ट ग्रहों की दृष्टि होती है, जिसको स्पष्ट बताता हूँ। ग्रह अपने-अपने स्थित स्थान से ३, १० स्थान का एक चरण से; ५, ९ का दो चरण से; ४, ८ स्थान का ३ चरण से और ७ स्थान का ४ चरण से अवलोकन करते हैं। इसमें भी शनि ३, १० को; गुरु ५, ९ को; भौम ४, ८ को पूर्ण (४ चरण) दृष्टि से देखते हैं। इस प्रकार से दृष्टि जाननी चाहिए। अन्य स्थान में ग्रह के स्थित रहने पर स्पष्ट अन्तर करके अनुपात द्वारा जो दृष्टि होती है, वह स्पष्ट दृष्टि कही जाती है ॥१-५॥

दृष्टिचक्र

ग्रह	एकपाद दृष्टि	द्विपाद दृष्टि	त्रिपाद दृष्टि	पूर्ण दृष्टि
सू.	३।१०	५।९	४।८	७
चं.	३।१०	५।९	४।८	७
मं.	३।१०	५।९	०।०	४।७।८
बु.	३।१०	५।९	४।८	७
बृ.	३।१०	०।०	४।८	५।७।९

ग्रह	एकपाद दृष्टि	द्विपाद दृष्टि	त्रिपाद दृष्टि	पूर्ण दृष्टि
शु.	३।१०	५।९	४।८	७
श.	०।०	५।९	४।८	३।७।१०
रा.	३।१०	५।९	४।८	७
के.	३।१०	५।९	४।८	७

दृष्टिसाधन

दृश्याद् विशोध्य द्रष्टारं षड्राशिभ्योऽधिकान्तरम्।
दिग्भ्यः संशोध्य तद्भागा विभक्ता दृक् स्फुटा भवेत्॥६॥
पञ्चाधिके विना राशिं भागा द्विघ्नाश्च दृक् स्फुटा।
वेदाधिके त्यजेद् भूताद् भागा दृष्टिः त्रिभाधिके॥७॥
विशोध्यार्णवतो द्वाभ्यां लब्धं त्रिंशद्युतं च दृक्।
द्व्यधिके तु विना राशिं भागास्तिथियुतास्तथा॥८॥
रूपाधिके विना राशिं भागाद्व्याप्ताश्च दृग् भवेत्॥८½॥

जो ग्रह देखता हैं, उसको द्रष्टा कहा जाता है और जिसको देखता है उसे दृश्य कहा जाता है। ग्रहों का स्पष्ट दृष्टिसाधन करना अभीष्ट हो तो द्रष्टा (स्पष्ट राश्यादि) को दृश्य में हीन कर यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो १० राशि में घटाकर शेष को अंशात्मक बनाकर २ का भाग देकर जो लब्धी हो, वह स्पष्ट दृष्टि होती है। यदि द्रष्टा तथा दृश्यान्तर ५ राशि से अधिक हो तो राशि का त्याग कर केवल अंशादि को २ से गुणा करने पर स्पष्ट दृष्टि होती है। यदि द्रष्टा-दृश्यान्तर ४ राशि से अधिक हो तो ५ राशि में घटाकर शेष दृष्टि होती है। यदि द्रष्टा-दृश्यान्तर ३ राशि से अधिक हो तो ४ राशि में घटाकर २ का भाग देकर ३० युक्त करने पर दृष्टि होती है। अन्तर २ से अधिक हो तो राशि को छोड़कर केवल अंशादि में १५ जोड़ने पर दृष्टि होती है। यदि अन्तर १ से अधिक हो तो राशि को छोड़कर अंशादि में २ से भाग देने पर स्पष्ट दृष्टि होती है। (यदि द्रष्टा और दृश्यान्तर १० राशि से अधिक और एक राशि से स्वल्प हो तो वहाँ पर स्पष्ट दृष्टि शून्य होती है)।

उदाहरण—लग्न से द्वादश भावपर्यन्त सूर्य की स्पष्ट दृष्टि अभीष्ट हो तो सूर्य द्रष्टा और लग्न से द्वादश भाव दृश्य हुए। पूर्व सिद्ध स्पष्ट ग्रह और द्वादश भावों को देखें। स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ को लग्न ३।२५।९।४५ में घटाने से शेष ०।५।५।२० यह राशि से अल्प है, इसीलिए लग्न पर सूर्य की स्पष्ट दृष्टि ० शून्य हुई। द्वितीय भाव ४।२४।२२।३१।२० में सूर्य ३।२०।४।२५ घटाने से १।४।१८।६।२० शेष रहा; यह एक राशि से अधिक है, अतः राशि को छोड़ कर अंशों का आधा २।९।३।१० यह द्वितीय भाव में सूर्य की स्पष्ट दृष्टि हुई। तृतीय भाव में ५।२३।३५।१७।४० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाने से २।३।३०।५२।४० शेष रहा, यह २ राशि से अधिक है; अतः राशि को छोड़कर अंश में १५ जोड़ने पर १७।३।३०।५२।४० तृतीय भाव पर सूर्य की स्पष्ट दृष्टि हुई। चतुर्थ भाव ६।२२।४८।४ में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाने से शेष ३।२।४३।३९ रहा, जो कि ३

राशि से अधिक है; अतः ४-३।२।४३।३९ = ०।२७।१६।२१ शेष रहा, इसका आधा ०।१३।३८।१० में ३० जोड़ने से ४३।३८।१० हुआ, यही स्पष्ट दृष्टि हुई। इसी प्रकार पञ्चम भाव ७।२३।३५।१७।४० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाने से ४।३।५२।४० को ५ राशि में घटाने से २६।२९।७।२० स्पष्ट दृष्टि हुई। षष्ठ भाव ८।२४।२२।३१।२० सूर्य को घटाने से ५।४।१८।६।२० यह ५ राशि से अधिक है; अतः राशि को छोड़कर अंशादि को दुगुना करने से स्पष्ट दृष्टि ८।३६।१२।४० हुई। सप्तम भाव ९।२५।९।४५ सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाने से ६।५।५।२० शेष रहा, यह ६ राशि से अधिक है; अतः १० में घटाकर ३।५४।५४।४० इसके अंशादि की आधी ७२।२७।२० स्पष्ट दृष्टि हुई। अष्टम भाव १०।२४।२२।३१।२० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाया तो ७।४।१८।६।२० शेष रहा, यह ७ राशि से अधिक है, अतः १० राशि में घटाया तो २।२५।४१।५३।४० अंशात्मक बनाकर २ का भाग दिया तो ४२।५०।५६ स्पष्ट दृष्टि हुई। नवम भाव ११।२३।३५।१७।४० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाया तो ८।३।३०।५२।४० शेष रहा, यह ८ राशि से अधिक है; अतः १० राशि में घटाकर अंशात्मक करके २ का भाग दिया तो २८।१४।३३ स्पष्ट दृष्टि हुई। दशम भाव ०।२२।४८।४ में सूर्य ४।२०।४।२५ को घटाया तो ९।२।४३।३९ शेष रहा, इसके ९ से अधिक होने के कारण १० राशि में घटाकर अंशात्मक बनाकर २ का भाग दिया तो १३।३८।१० स्पष्ट दृष्टि हुई। एकादश भाव १।२३।३५।१७।४० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाया तो १०।३।३०।५२।४० शेष रहा, यह १० राशि से अधिक है, अतः स्पष्ट दृष्टि शून्य हुई। द्वादश भाव २।२४।२२।३१।२० में सूर्य ३।२०।४।२५ को घटाया तो ११।४।१८।६।२० शेष रहा, इसके १० से अधिक होने के कारण स्पष्ट दृष्टि शून्य हो गई। इसी प्रकार चन्द्र, भौमादि सभी ग्रहों का दृष्टिसाधन करना चाहिए।

शनि की दृष्टि में विशेषता

एवं राश्यादिके शेषे शनौ द्रष्टरि भो द्विज ! ॥९॥
एकभे नवभे भागा भुक्ता भोग्या द्विसङ्गुणाः।
द्विभेंऽशार्धोनिताः षष्टिरष्टभे खाग्नियुग् लवाः ॥१०॥

यदि द्रष्टा शनि हो और दृश्य के साथ अन्तर करने पर राशिस्थान में एक हो तो उसका जो भुक्तांश हो उसको दो से गुणा करने पर स्पष्ट दृष्टि होती है, इसी प्रकार ९ राशि हो तो उसका जो भोग्यांश है, उसे द्विगुणित करने पर स्पष्ट दृष्टि होगी। यदि राशि दो हो तो भुक्तांश को २ से भाग देकर ६० में घटाने पर तथा ८ राशि हो तो भुक्तांश को ३० में जोड़ने से स्पष्ट दृष्टि होती है ॥९-१०॥

मंगल की दृष्टि में विशेषता

त्रिसप्तभे तु भौमस्य षष्टिरत्र लवोनिता।
सार्धांशास्तिथिसंयुक्ता द्विभे रूपं सदाऽङ्गभे ॥११॥

भौम को दृश्य में घटाने से राशिस्थान में ३ अथवा ७ हो तो भुक्तांश को ६० हीन

करने से, यदि २ राशि हो तो भुक्तांश को ड्योढा करके १५ में योग करने से तथा ६ राशि शेष हो तो पूर्ण बल होता है ॥११॥

गुरु की दृष्टि में विशेषता

त्रिसप्तभे तु जीवस्य भागार्धं शर-वेद-युक् ।
द्विगुणैस्तु लवैश्शोनाः खरसाश्चतुरष्टभे ॥१२॥

गुरु को अभीष्ट दृश्य में से घटाने से यदि ३, ७ राशि शेष रहे तो भुक्तांशों के आधे में ४५ जोड़ने से एवं ४ या ८ शेष बचे तो भुक्तांशों को ६० में घटाने से स्पष्ट दृष्टि होती है। अन्य राशि शेष रहने पर पूर्व की तरह दृष्टिसाधन करना चाहिए ॥१२॥

एवं रव्यादिखेटानां स्फुटा दृष्टिः प्रजायते ।
तद्वशादेव भावानां जातकस्य फलं वदेत् ॥१३॥

इस प्रकार से सूर्यादि ग्रहों का दृष्टिसाधन किया जाता है। इस दृष्टि के अनुसार ही जातक के भावों का फल कहना चाहिए ॥१२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ग्रहस्फुटदृष्टिकथनाध्यायः ॥२७॥

अथ स्पष्टबलाध्यायः ॥२८॥

पराशर उवाच

अथ स्पष्टबलं वक्ष्ये स्थानकालादिसम्भवम्।
नीचोनं खचरं भार्धाधिकं चक्राद् विशोधयेत्॥१॥
भागीकृत्य त्रिभिर्भक्तं लब्धमुच्चबलं भवेत्।
स्वत्रिकोण-स्वगेहाधिमित्र-मित्र-समारिषु ॥२॥
अधिशत्रुगृहे चापि स्थितानां क्रमशो बलम्।
भूताब्धयः खाग्नि-नखास्तिथ्यो दश युगाः कराः॥३॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय ! अब मैं ग्रहों के स्थान, कालादि के बल को कहता हूँ। उच्च बल-साधनार्थ राश्यादि स्पष्ट ग्रहों में अपने राश्यादि नीच को घटा कर शेष ६ राशि से स्वल्प हो तो उसी को, यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो उसको चक्र (१२ राशि) में घटाकर शेष को अंशात्मक बनाकर ३ का भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो, वह कलादि उच्च बल होता है। ग्रह अपने त्रिकोण में हो तो ४५, स्वगृह में ३०, अपने अधिमित्र में हो तो २०, अपने मित्रगृह में हो तो १५, समगृह में हो तो १०, शत्रुस्थान में हो तो ४, अपने अधिशत्रु गृह में ग्रह हो तो २ बल वाला होता है॥१-३॥

उदाहरण—सूर्य नीच राश्यादि ६।१०।०।० है और स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ है। अतः पूर्वोक्त नियम के अनुसार सूर्य ३।२०।४।२५ में सूर्य के नीच ६।१०।०।० को घटाया तो ९।१०।४।२५ शेष रहा; इसे ६ राशि से अधिक होने के कारण १२ राशि में घटाया तो प्राप्त २।१९।५५।३५ को अंशात्मक बनाया तो ७९।५५।३५ हुआ, इसमें ३ का भाग दिया तो २६।३८।३१ यह कलादि उच्च बल हुआ। इसी प्रकार सभी ग्रहों का उच्च बल साधन करना चाहिए।

एवं होरादृकाणाद्रि-भागाङ्क-द्वादशांशजम्।
त्रिंशांशजं तदैक्यञ्च सप्तवर्गसमुद्भवम्॥४॥

इसी प्रकार होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, द्वादशांश एवं त्रिंशांश के बल बनाकर सबका योग सप्तवर्गज बल कहा जाता है॥४॥

युग्मायुग्मभांश बल

शुक्रेन्दू समभांशेऽन्ये विषमेऽङ्घ्रिमितं बलम्॥५$\frac{1}{2}$॥

शुक्र और चन्द्रमा समराशि एवं सम नवमांश में तथा दूसरे ग्रह विषम राशि तथा विषम नवमांश में अङ्घ्रि (एक चरण १/४) १५ कला बल प्रदान करते हैं॥५$\frac{1}{2}$॥

केन्द्रादि बल

केन्द्रादिषु स्थिताः खेटाः पूर्णाऽर्धाङ्घ्रिमितं क्रमात् ।।५।।

केन्द्र में स्थित ग्रह पूर्ण ६० कला, पणकर में स्थित ३० एवं आपोक्लिम में १ चरण (१५ कला) बल देते हैं ।।५।।

द्रेष्काणबल

आद्यमध्यावसानेषु द्रेष्काणेषु स्थिताः क्रमात् ।
पुंनपुंसकयोषाख्या दद्युरङ्घ्रिमितं बलम् ।।६।।

पुरुष ग्रह (सूर्य, भौम, गुरु) प्रथम (१°-१०° तक) द्रेष्काण में, नपुंसक ग्रह (बुध, शनि) द्वितीय (११°-२०° तक) द्रेष्काण में तथा स्त्रीग्रह (शुक्र, चन्द्र) तृतीय (२१°-३०° तक) द्रेष्काण में चतुर्थांश (१५ कला) बल देते हैं। इससे भिन्न द्रेष्काण में बलाभाव जानना चाहिए ।।६।।

दिग्बल-कथन

सूर्यात् कुजात् सुखं जीवाज्ज्ञाच्चाऽस्तं लग्नमार्कितः ।
दशमं च भृगोश्चन्द्रात् प्रोज्झ्य षड्भाधिके सति ।।७।।
चक्राद् विशोध्य तद्भागास्त्रिभिर्भक्ताश्च दिग्बलम् ।।७½।।

स्पष्ट सूर्य और भौम में चतुर्थ भाव को, गुरु तथा बुध में सप्तम भाव को, लग्न में शनि, शुक्र तथा चन्द्र से दशम भाव को घटाकर शेष ६ राशि से स्वल्प हो तो उसी को, शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर उसको अंशात्मक बनाकर ३ का भाग देने पर ग्रहों का दिग्बल होता है ।।७।।

कालबल

इष्टावधि निशीथात्तून्नतं त्रिंशच्च्युतं नतम् ।।८।।
चन्द्रभौम-शनीनां च नतं द्विघ्नं कलादिकम् ।
षष्टिशुद्धं तदन्येषां सदा रूपं बुधस्य हि ।।९।।

मध्यरात्रि तथा स्वेष्ट काल का जो अन्तराल हो, वह उन्नत काल कहलाता है। उन्नत काल को ३० में घटाने पर नतकाल होता है। घट्यादि नतकाल को दो से गुणा करने पर चन्द्र-भौम-शनि का बल होता है और उसको ६० में घटाने पर सूर्य, गुरु और शुक्र का नतोन्नत बल होता है। बुध का सदैव एक (पूर्ण ६० कला) बल होता है ।।८-९।।

पक्षबल-कथन

अथ पक्षबलं वक्ष्ये सूर्यं चन्द्राद् विशोध्य च ।
षड्भाधिके विशोध्यार्काद् भागीकृत्य त्रिभिर्भजेत् ।।१०।।
पक्षजं बलमिन्दुज्ञशुक्रेज्यानां तु षष्टितः ।
विशोध्य तद्बलं ज्ञेयं पापानां पक्षसम्भवम् ।।११।।

अब मैं पक्षबल को कहता हूँ। सूर्य को चन्द्रमा में घटाकर शेष ६ राशि से अल्प हो तो उसी को, शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर शेष को अंशात्मक बनाकर ३ का भाग देने से चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र का पक्षबल होता है और उसी को ६० में घटाने से जो शेष हो, वह पापग्रहों (भौम, शनि, सूर्य) का पक्षबल होता है ॥१०-११॥

दिन-रात्रि-त्रिभागबल-कथन

दिनत्र्यंशेषु सौम्यार्क-शनीनां निट्त्रिभागके।
चन्द्रशुक्रकुजानां च बलं पूर्णं सदा गुरोः ॥१२॥

दिनमान को ३ से भाग देने पर दिन का प्रथम भाग होता है, उसको २ तथा ३ से गुणा करने पर द्वितीय तथा तृतीय भाग होते हैं। प्रथम भाग में बुध का, द्वितीय भाग में सूर्य का एवं तृतीय भाग में शनि का पूर्ण बल (६० कला) होता है। इसी प्रकार रात्रि का ३ भाग बनाकर प्रथम भाग में चन्द्र का, द्वितीय भाग में शुक्र का और तृतीय भाग में भौम का पूर्ण बल (६०) होता है। गुरु का सदा ही रूप (६०) पूर्ण बल होता है ॥१२॥

वर्ष-मास-दिन-होरा तथा नैसर्गिक बलकथन

वर्ष-मास-दिनेशानां तिथ्यस्त्रिंशच्छरार्णवाः।
होरेशस्य बलं षष्टिरुक्तं नैसर्गिकं पुरा ॥१३॥

वर्षेश का १५, मासेश का ३०, दिनेश का ४५ और होरेश का ६० बल होता है। नैसर्गिक बल पूर्वोक्त ग्रहस्वरूपाध्याय में कहा गया है ॥१३॥

नैसर्गिक स्पष्टबलकथन

तन्मानं सप्तहृत्षष्टिरेकाद्येकोत्तरैर्हता।
शमंबुगुशुचंरादिखेटानां क्रमतो द्विज! ॥१४॥

६० कला में सात का भाग देने से जो लब्धि हो उसको १,२,३,४,५,६ और ७ से गुणा करने पर क्रम से शनि, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र और सूर्य के स्पष्ट नैसर्गिक बल प्राप्त होते हैं ॥१४॥

उदाहरण—जैसे ६० कला में ७ का भाग दिया तो लब्धि कलादि ८।३४।१७ हुए, इसको १ से गुणा करने पर प्राप्त ८।३४।१७ शनि का नैसर्गिक बल हुआ। ८।३४।१७ को २ से गुणा किया तो भौम का १७।९।३४ हुआ। ८।३४।१७ को ३ से गुणा करने पर २५।४२।५१ बुध का नैसर्गिक बल हुआ। इसी प्रकार आगे अन्य ग्रहों का भी नैसर्गिक बल होता है ॥१४॥

अयनबल

पञ्चाब्धयः सुराः सूर्याः खण्डकांशाः क्रमादमी।
सायनग्रहदो राशितुल्यखण्डयुतिश्च सा ॥१५॥

भागादिकहतादेष्यात् त्रिंशल्लब्धयुता लवाः ।
स्वमृणं तुलमेषादौ शनीन्द्वोश्च त्रिराशिषु ॥१६॥
तथाऽऽरार्केज्यशुक्राणां व्यस्तं ज्ञस्य सदा धनम् ।
तद्भागाश्च त्रिभिर्भक्ता ज्ञेयमायनजं बलम् ॥१७॥

अयन-बलसाधनार्थ ४५, ३३, १२—ये तीन खण्ड हैं। स्पष्ट ग्रह में अयनांश जोड़कर सायन ग्रह बनाया, उसको भुज बनाकर, भुज में राशितुल्य खण्डों का योग करे। फिर अंशादि का अग्रिम खण्ड से गुणा कर ३० का भाग देकर जो लब्धि हो, उसको पूर्वोक्त योग में जोड़े और उसको अंशादि समझकर यदि वह ३० से अधिक हो तो राश्यादि बना लेना चाहिए। शनि तथा चन्द्र तुलादि ६ राशि में हो तो ३ राशि में जोड़ना चाहिए और मेषादि ६ राशि में हो तो पूर्वोक्त फल को ३ राशि में घटाना चाहिए। सूर्य, मंगल, गुरु, शुक्र हो तो विपरीत करना चाहिए अर्थात् मेषादि ६ राशि में ३ में धन, तुलादि ६ राशि में सायन ग्रह हो तो ३ राशि में ऋण करे। बुध हो तो ३ राशि में सदैव योग करे। इस प्रकार जोड़-घटाकर जो राश्यादि हो जाय उसको अंशात्मक बनाकर ३ का भाग देने से लब्धि ग्रहों का अयनबल होता है ॥१५-१७॥

उदाहरण—यथा सूर्य ३।२०।४।२५ है, इसमें अयनांश २३।४५।५० जोड़ने से प्राप्त ४।१३।५०।१५ सायन सूर्य हुआ। इसका भुज १।१६।९।४५ है, इसमें राशि १ है; अत: प्रथम खण्ड ४५ हुआ। अंशादि १६।९।४५ को अग्रिम खण्ड ३३ से गुणा कर ३० का भाग दिया तो लब्धि अंशादि १५।१३।१६ को ४५ में जोड़ने से ६०।१३।१६ हुआ। इसको राश्यादि बनाने से २।०।१३।१६ हुआ, इसको सायन सूर्य मेषादि में है, अत: ३ राशि में जोड़ने से ५।०।१३।१६ हुआ, इसको अंशात्मक बनाकर ३ का भाग दिया तो लब्धि ५०।४।२५ सूर्य का अयनबल हुआ। इसी प्रकार से सभी ग्रहों का अयनबल-साधन करना चाहिए।

बल में विशेषता

यद्रवेरायनं वीर्यं चेष्टाख्यं तावदेव हि ।
विधोः पक्षबलं यावत् तावच्चेष्टाबलं स्मृतम् ॥१८॥

सूर्य का जितना अयनबल होता है, उतना ही चेष्टाबल होता है और चन्द्रमा का जितना पक्षबल होता है, उतना ही उसका चेष्टाबल होता है; ऐसा कहा गया है ॥१८॥

दृग्बल-कथन

पापदृक्पादहीनं तच्छुभदृक्पादयुक् तथा ।
बलैक्यं ज्ञेज्यदृग्युक्तमेवं खेटबलं भवेत् ॥१९॥

ग्रह पर पापग्रह की दृष्टि हो तो दृष्टियोग के चतुर्थांश बलैक्य में घटाने से एवं ग्रह पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो दृष्टि-योग के चतुर्थांश बलैक्य में जोड़ने से ग्रहों का बल होता है ॥१९॥

अथ ताराग्रहाणां तु युद्ध्यतोश्च द्वयोर्मिथः ।
बलान्तरं विजेतुः स्वं निर्जितस्य बले त्वृणम् ॥२०॥

ताराग्रहों (भौमादि ५ ग्रह) में राश्यंश तुल्य हो तो युद्ध कहलाता है। जिन दो ग्रहों में युद्ध का लक्षण घटित हो तो उन दोनों के षड्बलैक्य का अन्तर करके उस अन्तर को विजेता ग्रह के बल में जोड़ने से तथा पराजित ग्रह के बल में घटाने से स्पष्ट बल होता है ॥२०॥

ग्रहों का गति-भेद और गति-बल संस्कार

वक्रानुवक्रा विकला मन्दा मन्दतरा समा ।
चरा चाऽतिचरा चेति ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥२१॥
षष्टिर्वक्रगते वीर्यमनुवक्रगतेर्दलम् ।
पादो विकलभुक्तेः स्यात् तथा मध्यगतेर्दलम् ॥२२॥
पादो मन्दगतेस्तस्य दलं मन्दतरस्य हि ।
चरभुक्तेस्तु पादोनं दलं स्यादतिचारिणः ॥२३॥

ग्रहों की गति का आठ भेद कहा गया है—१ वक्रा, २ अनुवक्रा, ३ विकला, ४ मन्दा, ५ मन्दतरा, ६ समा; ७ चरा और ८ अतिचरा। वक्रगति ग्रह का ६०, अतिवक्र का ३०, विकल गति ग्रह का १५, मध्यगति ग्रह का ३०, मन्द गति ग्रहों का १५, मन्दतर गति ग्रहों का ७।३०, चर गति ग्रहों का ४५ एवं अतिचारी ग्रहों का ३० बल होता है। इस प्रकार ग्रहों की गति के अनुसार गतिबल का भी संस्कार करके स्पष्ट बल बनाना चाहिए ॥२१-२३॥

चेष्टाकेन्द्र और भौमादि ग्रहों के चेष्टाबल

मध्यमस्फुटयोगार्धहीनं स्वस्वचलोच्चकम् ।
षड्भाधिकं च्युतं चक्राच्चेष्टाकेन्द्रं स्मृतं कुजात् ॥२४॥
भागीकृतं त्रिभिर्भक्तं लब्धं चेष्टाबलं त्विति ।
स्थानदिक्कालदृक्चेष्टानिसर्गोत्थं च षड्विधम् ॥२५॥

मध्यम तथा स्पष्ट ग्रहयोग के आधे को अपने-अपने शीघ्रोच्च में घटाने से भौमादि ५ ग्रहों के चेष्टाकेन्द्र होते हैं। यदि वह ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर उसको अंशादि बनाकर ३ से भाग देने पर जो लब्धि हो, उसे चेष्टाबल कहा जाता है। ग्रहों के स्थानबल, दिग्बल, कालबल, दृग्बल, चेष्टाबल और निसर्गबल—ये ६ प्रकार के बल होते हैं ॥२४-२५॥

भाव-बलसाधन

एवं ग्रहबलं प्रोक्तमथ भावबलं शृणु ।
कन्यायुग्मतुलाकुम्भचापाद्यार्धाच्च सप्तमम् ॥२६॥

गोऽजसिंहमृगाद्यार्ध-चापान्त्यार्धात् सुखं त्यजेत्।
कर्कवृश्चिकतो लग्नं मृगान्त्यार्धाज्झषाच्च खम् ॥२७॥
शोध्यमङ्गाधिकं चक्राच्च्युतं भागीकृतं त्रिहृत्।
सद्दृष्टिपादयुक् पापदृष्टिपादविवर्जितम् ॥२८॥
ज्ञेज्यदृष्टियुतं तच्च स्वस्वस्वामिबलान्वितम्।
इति भावबलं स्पष्टं सामान्यं च पुरोदितम् ॥२९॥

इस प्रकार ग्रहबल को मैंने कहा। अब मैं भावों का स्पष्ट बल-साधन प्रकार कहता हूँ। जिस भाव का बल जानना हो उसमें यदि कन्या, मिथुन, तुला, कुम्भ अथवा धन का पूर्वार्ध हो तो उसमें सप्तम भाव को घटाने से; यदि वृष, मेष, सिंह, मकर का पूर्वार्ध या धन का उत्तरार्ध हो तो उसमें चतुर्थ भाव को घटाने से एवं यदि कर्कट, वृश्चिक हो तो लग्न को घटाने से तथा यदि मकर का उत्तरार्ध अथवा मीन हो तो उसमें दशम भाव को घटाकर शेष को अंशादि बनाकर ३ का भाग देने से लब्धि भाव का बल होता है। यदि घटाने पर शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाना चाहिए। तदनन्तर अंशादि बनाकर ३ का भाग देने से लब्धि भाव का बल होता है। जिस भाव का बल-साधन कर रहे हों, उस भाव में शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो उसके चतुर्थांश और जोड़ देना चाहिए, यदि पाप ग्रह की दृष्टि हो तो उसका चतुर्थांश घटा देना चाहिए और बुध, गुरु की उस भाव पर दृष्टि हो तो सम्पूर्ण जोड़कर उसमें अपने स्वामी का बल युक्त करने पर उस भाव का स्पष्ट बल होता है। सामान्य बल पहले ही कह दिया गया है ॥२६-२९॥

भावबल में विशेषता

बुधेज्ययुक्तभावस्य बलमेकेन संयुतम्।
मन्दाररवियुक्तस्य बलमेकेन वर्जितम् ॥३०॥
दिने शीर्षोदयो भावः सन्ध्यायामुभयोदयः।
निशि पृष्ठोदयाख्यश्च दद्यात् पादमितं बलम् ॥३१॥

जिस भाव में बुध, गुरु युक्त हो, उस भाव के बलैक्य में १ (६० कला) जोड़ना चाहिए। जिस भाव में शनि, भौम और रवि युक्त हो तो उस भाव के बलैक्य में ६० कला घटाना चाहिए। दिन का इष्ट काल हो तो शीर्षोदयी राशि के भाव, सन्ध्या का इष्टकाल हो तो उभयोदयी राशि के भाव, रात्रि का इष्टकाल हो तो पृष्ठोदयी राशि के भाव के बलैक्य में एक चरण बल और युक्त करना चाहिए ॥३०-३१॥

षड्बलैक्य में बलभेद

अङ्काग्नयोऽङ्गरामाश्च खाग्नयो नेत्रसागराः।
नवाग्नयः सुरास्त्रिंशद् दशसंगुणिताः क्रमात् ॥३२॥
रव्यादीनां बलैक्यं चेत् तदा सुबलिनो मताः।
अधिकं पूर्णमेव स्यात् बलं चेद्बलिनो द्विज! ॥३३॥

इस प्रकार सूर्यादि ग्रहों के षड्बलैक्य यदि क्रम से सूर्य ३९०, चन्द्र ३६०, भौम ३००, बुध ४२०, गुरु ३९०, शुक्र ३३० एवं शनि ३००—इतने बलैक्य हों तो सुबली होते हैं। इससे अधिक बलैक्य हो तो पूर्ण बली, स्वल्प रहने से मध्य बली और सर्वाल्प होने पर अल्प बली अनुपात के द्वारा अवगत करना चाहिए ॥३२-३३॥

उसी को अब पृथक्-पृथक् कहते हैं—

गुरुसौम्यरवीणां तु भूतषट्केन्दवो द्विज!।
पञ्चाग्नयः खभूतानि करभूमिसुधाकराः ॥३४॥
खाग्नयश्च क्रमात्स्थान-दिक्-चेष्टा-समयाऽयने।
सितेन्द्वोस्त्र्यग्निचन्द्राश्च खेषवः खाग्नयः शतम् ॥३५॥
चत्वारिंशत् कला भौम-मन्दयोः षण्णव क्रमात्।
त्रिंशत् खवेदाः सप्ताङ्गा नखाश्चेत्युदिता द्विज! ॥३६॥

गुरु, बुध और सूर्य के स्थानबल, दिग्बल, चेष्टाबल, कालबल और अयनबल क्रम से १६५, ३५, ५०, ११२, ३० हों तो वे सुबली होते हैं। इसी प्रकार शुक्र, चन्द्र १३३, ५०, ३०, १००, ४० हो तो सुबली एवं भौम, शनि ९६, ३०, ४०, ६७, २० हों तो सुबली होते हैं ॥३५-३६॥

स्पष्ट बल चक्रन्यास

ग्रहा:	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
षड्बलैक्ये कलादिषु बलाङ्का:	३९०	३६०	३००	४३०	३९०	३३०	३००
स्थानबले कलादिषु बलाङ्का:	१६५	१३३	९६	१६५	१६५	१३३	९६
दिग्बले कलादिषु बलाङ्का:	३५	५०	३०	३५	३५	५०	३०
चेष्टाबले कलादिषु बलाङ्का:	५०	३०	४०	५०	५०	३०	४०
कालबले कलादिषु बलाङ्का:	११२	१००	६७	११२	११२	१००	६७
अयनबले कलादिषु बलाङ्का:	३०	४०	२०	३०	३०	४०	२०

भावफलप्रद ग्रह

एवं कृत्वा बलैक्यञ्च ततश्चिन्त्यं फलं द्विज!।
भावस्थानग्रहैः प्रोक्तयोगे ये योगहेतवः ॥३७॥
तेषां मध्ये बली कर्ता स एवाऽस्य फलप्रदः।
योगेष्वाप्तेषु बहुषु नीतिरेवं प्रकीर्तिता ॥३८॥

इस प्रकार ग्रहों का बलैक्य बनाकर उनके अनुसार फलादेश करना चाहिए। पूर्व में जो भाव, स्थान एवं ग्रहों के माध्यम से योग कहा गया है, उस भाव के योगकारक ग्रहों में जिसका सबसे बलाधिक्य हो वही ग्रह अपने स्वभावानुसार जातक को शुभाशुभ फल देता है। जो अनेक योगकारक ग्रह हैं, उनमें से जो ग्रह अधिक बलवान हो वही अपना फल प्रदान करता है, यही शास्त्र का नियम है।

जैसे—पुत्रकारक ग्रह पुत्रभाव में हों और कुछ ग्रह पुत्रविनाशकारक भी बैठे हों तो वहाँ उनका अलग-अलग बलैक्य-साधन करके जिसका अधिक बल हो, उसी के अनुसार फल जान लेना चाहिए ॥३७-३८॥

फलादेशाधिकारी

गणितेषु प्रवीणो यः शब्दशास्त्रे कृतश्रमः ।
न्यायविद् बुद्धिमान् देशदिक्कालज्ञो जितेन्द्रियः ॥३९॥
ऊहापोह-पटुर्होरा-स्कन्धश्रवण-सम्मतः ।
मैत्रेय! सत्यतां याति तस्य वाक्यं न संशयः ॥४०॥

जो गणित शास्त्र में दक्ष हो, व्याकरण शास्त्र में परिश्रम किया हो, न्यायविद् हो, बुद्धिमान हो, देश-दिशा-काल का ज्ञाता हो, जितेन्द्रिय हो, तर्क-वितर्क करने में प्रवीण हो, जातकशास्त्र का सम्यक् श्रवण-मनन किया हो, उसी का फलादेश सत्य सिद्ध होता है; इसमें सन्देह नहीं है ॥३९-४०॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां स्पष्टबलाध्यायः ॥२८॥

अथेष्टकष्टाध्यायः ॥२९॥

पराशर उवाच

अथ चेष्टमनिष्टं च ग्रहाणां कथयाम्यहम्।
यद्वशाच्च प्रयच्छन्ति शुभाऽशुभदशाफलम् ॥१॥

पराशर कहते हैं कि हे मैत्रेय ! अब मैं ग्रहों के इष्ट एवं अनिष्ट फल को कहता हूँ, जिसके माध्यम से ग्रह भाव तथा दशा के शुभ-अशुभ फल प्रदान करते हैं ॥१॥

उच्चरश्मिकथन

स्वनीचोनो ग्रहः शोध्यः षड्भाधिक्ये भमण्डलात्।
सैको राशिर्भवेदुच्च-रश्मिर्द्विघ्नांशसंयुतः ॥२॥

ग्रहों को अपने-अपने नीच में घटाकर शेष ६ राशि से कम हो तो उसी की, शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर शेष राशिसंख्या में एक जोड़कर अंशादि को द्विगुणित करने से ग्रहों की उच्च रश्मि होती है ॥२॥

उदाहरण—जैसे सूर्य ३।२०।४।२५ है और सूर्यनीच ६।१०।०।० है। सूर्य में सूर्यनीच घटाया तो ७।१०।४।२५ शेष रहा, यह ६ राशि से अधिक है, अतः १२ राशि में घटाया तो ४।१९।५५।३५ शेष रहा, राशि ४ में १ जोड़ा तो ५ हुआ। अंशादि को दूना किया तो ३९।५१।१० हुआ, राशि मिलाया तो ५।३९।५१।१० सूर्य की उच्च रश्मि हुई। इसी प्रकार अन्य सभी ग्रहों का भी करना चाहिए।

चेष्टारश्मिसाधन

चेष्टाकेन्द्राच्च तद्रश्मिं साधयेदुच्चरश्मिवत्।
चेष्टाकेन्द्रं कुजादीनां पूर्वमुक्तं मया द्विज ! ॥३॥
सायनार्कस्त्रिभोऽर्कस्य व्यर्केन्दुश्च विधोस्तथा।
चेष्टाकेन्द्रं रसाल्पं तच्चक्राच्छोध्यं रसाधिके ॥४॥

जिस तरह उच्च रश्मिसाधन किया गया है, उसी तरह चेष्टाकेन्द्र से चेष्टारश्मि-साधन करना चाहिए। भौमादि ग्रहों का चेष्टाकेन्द्र पूर्व में ही कहा गया है। सायन सूर्य में ३ राशि जोड़ने से सूर्य का चेष्टाकेन्द्र होता है और चन्द्र में सूर्य को हीन करने से चन्द्रमा का चेष्टाकेन्द्र होता है। चेष्टाकेन्द्र ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटाकर शेष राशि में १ जोड़कर एवं अंशादि को दूना करने से चेष्टारश्मि होती है ॥३-४॥

उदाहरण—सूर्य ३।२०।४।२५ में अयनांश २३।४५।५० युक्त करने पर ४।१३।५०।१५ सायन सूर्य हुआ, इसमें ३ राशि जोड़ने से ७।१३।५०।१५ सूर्य का चेष्टाकेन्द्र हुआ। यह ६ राशि से अधिक है, अतः १२ राशि में हीन किया तो ४।१६।९।४५

हुआ, राशि ४ में १ युक्त किया तो ५ हुआ, अंशादि १६।९।४५ को दूना किया तो ३२।१९।३० हुआ; अतः राश्यादि ५।३२।१९।३० सूर्य की चेष्टारश्मि हुई। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी साधन करना चाहिए।

शुभाऽशुभ रश्मिकथन

चेष्टोच्चरश्मियोगार्धं शुभरश्मिः प्रकीर्त्यते।
अष्टभ्यश्च विशुद्धोऽसावशुभाख्यश्च कथ्यते ॥५॥

चेष्टारश्मि तथा उच्च रश्मि दोनों का योग करके आधे को शुभ रश्मि कहा जाता है और शुभ रश्मि को ८ में घटाकर शेष अशुभ रश्मि कहलाती है ॥५॥

उदाहरण—पूर्वसाधित सूर्य के उच्च रश्मि ५।३९।५१।१० तथा चेष्टारश्मि ५।३२।१९।३० के योग ११।१२।१०।४० का आधा ५।३६।५।२० सूर्य की शुभ रश्मि हुई, इसको ८ में घटाने से ५।२३।५४।४० हुआ, जो कि सूर्य की अशुभ रश्मि हुई।

रश्मि से इष्टकष्टसाधन

उच्चचेष्टाकरान् व्येकान् दिग्भिर्हत्वा तु योजयेत्।
तदर्धमिष्टसंज्ञं स्यात् कष्टं तत्षष्टिश्च्युतम् ॥६॥

पूर्वसाधित उच्च रश्मि तथा चेष्टा रश्मि दोनों में एक-एक घटाकर दोनों को १० से गुणा कर दोनों को योग कर आधा करे तो इष्ट (शुभ) होता है और शुभ को ६० में घटाने से शेष कष्ट होता है ॥६॥

उदाहरण—सूर्य की उच्च रश्मि ५।३९।५१।१० में एक घटाया तो ४।३९।५१।१० हुआ, इसको १० से गुणा किया तो ४६।३८।३१।४० हुआ एवं सूर्य की चेष्टा रश्मि ५।३२।१९।३० में एक घटाया तो ४।३२।१९।३० हुआ, इसको १० से गुणा किया तो ४५।२३।१५।० हुआ, दोनों का योग ९२।१।४६।४० हुआ, इसको आधा किया तो ४६।०।५३।२० हुआ, स्वल्पान्तर से दो अङ्क लिया तो ४६।१ हुआ, यह सूर्य का इष्ट हुआ। इसको ६० में घटाने से १३।५९ हुआ, यह सूर्य का कष्ट हुआ ॥६॥

उच्चादि स्थानवश सप्तवर्गज शुभाऽशुभ-साधन

स्वोच्चे मूलत्रिकोणे च स्वभेऽधिसुहृदीष्टभे।
समभे शत्रुभे चाधिशत्रुभे नीचभे क्रमात् ॥७॥
षष्टिरिष्वब्धयस्त्रिंशदाकृतिस्तिथयो गजाः।
चत्वारो द्वौ च शून्यं च शुभमेतत्फलं गृहे ॥८॥
षष्टितः पतितं चैतच्छेषं स्यादशुभं गृहे।
तदर्धमन्यवर्गेषु ज्ञेयं विप्र! शुभाऽशुभम् ॥९॥

ग्रह अपने उच्च में हो तो ६०, स्वमूल त्रिकोण में रहने से ४५, स्वगृह में स्थित हो तो ३०, अधिमित्र में रहने से २२, स्वमित्र राशि में रहने से १५, समराशि में रहने से

८, शत्रुराशि में ४, अधिशत्रु में २ एवं नीच में ०—इस प्रकार शुभ गृहाङ्क होता है। इनको ६० में घटाने से जो शेष हो वह अशुभ गृहाङ्क होता है। इसी प्रकार होरा आदि षड्वर्ग में जो अङ्क हो उसे आधा करके रखना चाहिए॥७-९॥

उच्चादि स्थान में शुभाऽशुभ विचार

पञ्चस्विष्टफलं चाद्यात् समं षष्ठे ततः परम्।
अशुभं त्रिषु विज्ञेयमिति शास्त्रेषु निश्चितम्॥१०॥

उच्चादि पाँच स्थानों में स्थित ग्रह शुभ, षष्ठ में सम एवं शेष तीन स्थानों में अशुभ होता है, ऐसा शास्त्रों में निश्चित किया गया है अर्थात् कोई भी ग्रह उच्च, मूल त्रिकोण, स्वगृह, अधिमित्र और मित्र—इन ५ स्थानों में शुभ, सम स्थान में सम, अधिशत्रु, शत्रु एवं नीच ३ स्थान स्थित ग्रह अशुभ होता है॥१०॥

दिग्बलादि में शुभाऽशुभत्व-कथन

दिग्बलं दिक्फलं तस्य तथा दिनफलं भवेत्।
तयोः फलं शुभं प्रोक्तमशुभं षष्टितश्च्युतम्॥११॥
शुभेऽधिके शुभं ज्ञेयमशुभं त्वशुभेऽधिके।
दशाफलं नभोगस्य तथा भावफलं द्विज!॥१२॥

दिग्बल को ही दिक्फल, दिनबल को ही दिनफल होता है। उनका जितना बल है वह शुभ फल होता है, उसको ६० में घटाने से जो शेष हो वह अशुभ होता है। यदि शुभ अधिक हो तो उस ग्रह का दशाफल तथा भावफल शुभ होता है एवं अशुभ अधिक होने पर दशाफल तथा भावफल अशुभ जानना चाहिए॥११-१२॥

पुनः शुभाशुभत्व-कथन

बलैः षड्भिः समेधित्वा बलैक्येन भजेत् पृथक्।
तत्तद्बलफलानि स्युरशुभानि शुभानि च॥१३॥
शुभपापफलाभ्यां च हन्याद् दृष्टिं बलं तथा।
दृष्टी ते शुभपापाख्ये बले स्यातां तदाह्वये॥१४॥

पूर्वोक्त होरादि वर्ग के फल को बल से पृथक्-पृथक् गुणा करके उसके योग में षड्बलैक्य से भाग दें तो जो लब्धि हो वह शुभ तथा अशुभ होता है। स्वकीय शुभ तथा अशुभ फल से अपनी-अपनी दृष्टि तथा अपने-अपने बल को गुणा करने पर क्रम से शुभ दृष्टि तथा अशुभ दृष्टि एवं शुभ बल तथा अशुभ बल होता है॥१३-१४॥

ग्रह तथा भावफल में विशेषता

भावानां च फले प्रोक्ते पतीनां च फले उभे।
राशौ शुभे नभोगश्चेत् भावसाधनसम्भवम्॥१५॥

फलं तस्य शुभे युञ्ज्यादशुभे वर्जयेत्तथा।
पापश्चेदन्यथा चैवं बले दृष्ट्यां तथैव च ॥१६॥
युञ्ज्यादुच्चादिगे खेटे फलं नीचादिगे त्यजेत्।
एवं शुभाऽशुभं ज्ञात्वा जातकस्य फलं वदेत् ॥१७॥
अष्टवर्गफलं चैवं स्थाने च करणेऽन्यथा।
राशिद्वयगते भावे तद्राश्यधिपतेः क्रिया ॥१८॥
स्थानाधिकेन भावेन भावलाभः प्रकीर्तितः।
तत्समाने च तद्भावे तदानीं स्थानदान् ग्रहान् ॥१९॥
संयोज्य स्थानसंख्याया दलमेतत्समं फलम्।
एवं सखेटभावानां फलं ज्ञेयं शुभाऽशुभम् ॥२०॥

जिस प्रकार ग्रह के शुभ और अशुभ फल होते हैं उसी प्रकार भावों के फल भी शुभ और अशुभ होते हैं। भाव का फल तथा भावेश का फल दोनों के फल युक्त करने से स्पष्ट फल होता है। भाव में शुभ ग्रह स्थित हो तो भाव के फल का शुभ फल में योग करने से और अशुभ फल में हीन करने से वास्तविक शुभ और अशुभ फल होता है। यदि भाव में अशुभ ग्रह स्थित हो तो अशुभ फल में जोड़ने से और शुभ फल में हीन करने से शुभ और अशुभ फल होता है। इसी तरह दृष्टि और बल में भी करना चाहिए तथा ग्रह स्व उच्चादि स्थान में बैठा हो तो भी फल को शुभ फल में योग और अशुभ फल में हीन करने से शुभ-अशुभ फल होता है। यदि नीचादि स्थान में ग्रह हो तो विपरीत कार्य करना चाहिए। अष्टक वर्ग में भी अधिक शुभ में योग और अधिक अशुभ में हीन करना चाहिए। यदि एक भाव में दो ग्रह स्थित हो तो, दोनों राशियों के अधिपतियों के अनुरूप कार्य करना चाहिए तथा उक्त दोनों राशियों में जिसमें अधिक शुभ हो उस भाव का फल लाभदायक होता है। यदि दोनों राशियों में अशुभ अधिक हो तो दोनों ग्रहों के फलयोग का आधा फल होता है। इस प्रकार जातक का शुभाशुभ विचार कर जातक का फल कहना चाहिए ॥१५-२०॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामिष्टकष्टाध्यायः ॥२९॥

अथ पदाध्यायः ॥३०॥

पराशर उवाच

कथयाम्यथ भावानां खेटानां च पदं द्विज ! ।
तद्विशेषफलं ज्ञातुं यथोक्तं प्राङ्महर्षिभिः ॥१॥
लग्नाद् यावत्तिथे राशौ तिष्ठेल्लग्नेश्वरः क्रमात् ।
ततस्तावत्तिथे राशौ लग्नस्य पदमुच्यते ॥२॥
सर्वेषामपि भावानां ज्ञेयमेवं पदं द्विज ! ।
तनुभावपदं तत्र बुधा मुख्यपदं विदुः ॥३॥

पराशर कहते हैं कि हे मैत्रेय ! अब मैं भावों और ग्रहों के विशेष फल जानने के लिए लग्नादि भावों के पद को कहता हूँ, जिसको प्राचीन महर्षियों ने कहा है। लग्न से जितने राशि पर लग्नेश बैठा हो, उतनी ही संख्या पर लग्नेश से जो राशि हो, वह लग्न का पद कहा जाता है। इसी प्रकार सभी भावों का पद जानना चाहिए अर्थात् जिस भाव का पद जानना अभीष्ट हो, उस भाव से उस भाव का अधिपति जितने राशि पर हो, उस भाव के अधिपति से उतनी ही संख्या में जो राशि हो, वह उस भाव का पद कहा जाता है। इन पदों में मुख्य लग्न का ही पद होता है। अतः 'पद' शब्द से विद्वान् लोग लग्नपद समझते हैं ॥१-३॥

पदसाधन में विशेषता

स्वस्थानं सप्तमं नैवं पदं भवितुमर्हति ।
तस्मिन् पदत्वे विज्ञेयं मध्यं तुर्यं क्रमात् पदम् ॥४॥
यथा तुर्यस्थिते नाथे तुर्यमेव पदं भवेत् ।
सप्तमे च स्थिते नाथे विज्ञेयं दशमं पदम् ॥५॥

पूर्वोक्त प्रकार से पदसाधन करने पर स्वस्थान या सप्तम राशि पद नहीं होता। अतः उक्त विधि से पदसाधन करने पर अपना स्थान ही पद होता हो तो उस स्थिति में दशम को पद मानना चाहिए एवं सप्तम पद होता हो तो ऐसी स्थिति में चतुर्थ भाव को पद जानना चाहिए। यदि चतुर्थ स्थान में स्वामी स्थित हो तो उससे चतुर्थ-सप्तम भाव में पद होता है। ऐसी स्थिति में चतुर्थ भाव को ही पद जानना चाहिए। यदि स्वामी सप्तम भाव में हो तो उससे सप्तम अपना ही स्थान होगा, अतः ऐसी स्थिति में दशम भाव को पद जानना चाहिए ॥४-५॥

ग्रहों के पदकथन

यस्माद् यावत्तिथे राशौ खेटात्तद्भवनं द्विज ! ।
ततस्तावत्तिथं राशिं खेटारूढं प्रचक्षते ॥६॥

द्विनाथद्विभयोरेवं विज्ञेयं सबलावधि।
विगणय्य पदं विप्र! ततस्तस्य फलं वदेत्॥७॥

जिस ग्रह से उसका गृह जितनी राशि आगे हो उससे उतने ही आगे उस ग्रह का पद होता है एवं जिस राशि के दो अधिपति हों या जिस ग्रह के दो गृह हों, उसका अधिक बलवान स्वामी तथा अधिक बलयुक्त राशि तक गणना करके पद अवगत करना चाहिए। इस प्रकार शुभाशुभ का ज्ञान कर जातक का फलादेश करना चाहिए॥६-७॥

पदाऽश्रित फलकथन

अथाऽहं पदमाश्रित्य फलं किञ्चिद् ब्रुवे द्विज!।
पदादेकादशे स्थाने ग्रहैर्युक्तेऽथ वेक्षिते॥८॥
धनवान् जायते बालस्तथा सुखसमन्वितः।
शुभयोगात् सुमार्गेण धनाप्तिः पापतोऽन्यथा॥९॥

हे मैत्रेय! अब मैं पद से सम्बन्धित कुछ भावों के फल कहता हूँ। पद से एकादश भाव में ग्रहों का योग हो या दृष्टि हो तो वह जातक सुख से युक्त एवं धनवान होता है। यदि शुभ ग्रहों का योग हो तो सुमार्ग से और पापग्रहों का योग हो तो कुमार्ग से जातक को धन प्राप्त होता है॥८-९॥

मिश्रैर्मिश्रफलं ज्ञेयं स्वोच्चमित्रादिगेहगैः।
बहुधा जायते लाभो बहुधा च सुखागमः॥१०॥
पदाल्लाभगृहं यस्य पश्यन्ति सकला ग्रहाः।
राजा वा राजतुल्यो वा स जातो नात्र संशयः॥११॥
पदाल्लाभगृहं पश्येद् व्ययं कश्चिन्न पश्यति।
अविघ्नेन तदा लाभो जायते द्विजसत्तम!॥१२॥
ग्रहदृग्योगबाहुल्ये पदादेकादशे द्विज!।
सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे॥१३॥
शुभग्रहार्गले विप्र! तत्राऽप्युच्चग्रहार्गले।
शुभेन स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्यादिगेन वा॥१४॥
जातस्य भाग्यप्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम्।
उक्तयोगेषु चेत् खेटो द्वादशं नैव पश्यति॥१५॥

हे द्विज! यदि पद से एकादश भाव में मिश्रित ग्रहों का योग हो तो मिश्रित फल होता है। अर्थात् पद से ११ भाव में शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के ग्रहों का योग हो तो सुमार्ग तथा कुमार्ग दोनों प्रकार से धनलाभ होता है। यदि वह ग्रह अपने उच्च, मित्रादि का हो तो सुमार्ग से बहुत प्रकार से धनलाभ और सुखागम होता है। यदि पद से ११ भाव में सभी ग्रहों की संयुक्त दृष्टि हो और १२ में किसी की भी दृष्टि न हो तो वह जातक राजा अथवा राजतुल्य होता है और सदा विघ्नरहित धन प्राप्त करता है। हे विप्र! पद से एकादश में जितने अधिक

ग्रह का योग हो उतना ही अधिक लाभ, अर्गला योग सहित हो तो और अधिक लाभ, अर्गला योगकारक शुभ ग्रह हो तो और अधिक लाभ, वह शुभ ग्रह अपने उच्च का हो तो और शुभकारक, यदि ११ भाव अपने शुभ ग्रह का स्वामी हो और दृष्ट हो तो एवं इसमें भी लग्न, भाग्य, शुभग्रह स्वामी होकर उसके द्वारा अवलोकित हो तो और अधिक लाभकारक होता है। इस प्रकार के योगों में यदि द्वादश भाव में ग्रहों का योग न हो तो उत्तरोत्तर भाग्य की प्रबलता होती है। यदि द्वादश में ग्रहयोग हो तो उक्त योगों में कमी आ जाती है ॥१०-१५॥

पद से द्वादश भावफल

पदस्थानाद् व्यये विप्र! शुभपापयुतेक्षिते।
व्ययबाहुल्यमित्येवं विशेषोपार्जनात् सदा ॥१६॥
शुभग्रहे सुमार्गेण कुमार्गात् पापखेचरे।
मिश्रे मिश्रफलं वाच्यमेवं लाभोऽपि लाभगे ॥१७॥
पदारूढाद् व्यये शुक्र-भानु-स्वर्भानुभिर्युते।
राजमूलाद् व्ययो वाच्यश्चन्द्रदृष्ट्या विशेषतः ॥१८॥
पदारूढाद् व्यये सौम्ये शुभखेटयुतेक्षिते।
ज्ञातिमध्ये व्ययो नित्यं पापदृक् कलहाद् व्ययः ॥१९॥
पदाद् व्यये सुराचार्ये वीक्षिते चान्यखेचरैः।
करमूलाद् व्ययो वाच्यः स्वस्यैव द्विजसत्तम! ॥२०॥
आरूढाद् द्वादशे सौरे धरापुत्रेण संयुते।
अन्यग्रहेक्षिते विप्र! भ्रातृवर्गाद् धनव्ययः ॥२१॥
आरूढाद् द्वादशे स्थाने ये योगाः कथिता यथा।
लाभभावे च ते योगा लाभयोगकरास्तथा ॥२२॥

पद से व्यय स्थान शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो तो व्यय अधिक होता है तथा वह धन सुमार्ग से उपार्जित होता है एवं व्यय भाव में पाप ग्रह युक्त तथा दृष्ट हो तो कुकर्म में व्यय अधिक होता है तथा ऐसा धन कुमार्ग से अर्जित होता है। मिश्रित (शुभ, अशुभ) ग्रह हो तो मिश्रित फल होता है, इसी तरह लाभ में रहने पर भी जानना चाहिए। पद से व्ययभाव में शुक्र, सूर्य अथवा राहु स्थित हो एवं चन्द्रमा की विशेष दृष्टि हो तो राजा के द्वारा धन का नाश होता है। १२ भाव में यदि बुध हो और वह शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो स्वजातियों के द्वारा धन व्यय होता है। यदि पापग्रह के द्वारा दृष्ट हो तो झगड़े के माध्यम से धन का व्यय होता है। पद से व्यय भाव में गुरु स्थित हो और अन्य ग्रहों के द्वारा दृष्ट हो तो अपने ही हाथ से धन का व्यय होता है। पदस्थान से व्यय भाव में शनि हो और मंगल से युक्त हो, साथ ही अन्य ग्रहों के द्वारा दृष्ट हो तो अपने ही भाइयों से धन का नाश होता है। पद से द्वादश स्थान में जो योग कहा गया है उसी प्रकार लाभस्थान में भी उस ग्रह से धनागम का योग जानना चाहिए ॥१६-२२॥

पद द्वारा सप्तम भावफल

आरूढाद् सप्तमे राहुरथवा संस्थितः शिखी।
कुक्षिव्यथायुतो बालः शिखिना पीडितोऽथ वा॥२३॥
आरूढात् सप्तमे केतुः पापखेटयुतेक्षितः।
साहसी श्वेतकेशी च वृद्धलिङ्गी भवेन्नरः॥२४॥
पदात्तु सप्तमे स्थाने गुरु–शुक्र–निशाकराः।
त्रयो द्वयमथैकोऽपि लक्ष्मीवान् जायते जनः॥२५॥
स्वतुङ्गे सप्तमे खेटः शुभो वाऽप्यशुभः पदात्।
श्रीमान् सोऽपि भवेन्नूनं सत्कीर्तिसहितो द्विज!॥२६॥
ये योगाः सप्तमे स्थाने पदाच्च कथिता मया।
चिन्त्यास्तथैव ते योगा द्वितीयेऽपि सदा द्विज!॥२७॥

पद स्थान से सप्तम भाव में राहु अथवा केतु बैठें हो तो जातक पेटसम्बन्धी व्याधियुक्त होता है। पद से सप्तमस्थ केतु हो और पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक साहसी, सफेद बाल वाला एवं लिङ्ग वृद्धि वाला होता है। पद से सप्तमस्थ गुरु, शुक्र, चन्द्र ये तीनों या दो अथवा एक ही स्थित हो तो जातक लक्ष्मीयुक्त होता है। पद से सप्तम में अपने उच्च का शुभ ग्रह अथवा पाप ग्रह अपने उच्चगत का हो तो जातक सुन्दर यशयुक्त एवं श्रीमान् होता है। हे विप्र! पद से सप्तम स्थान में जिस ग्रह का जैसा फल है, पद से द्वितीय स्थान में भी उस ग्रह का वैसा ही फल जानना चाहिए॥२३-२७॥

उच्चस्थो रौहिणेयो वा जीवो वा शुक्र एव वा।
एको बली धनगतः श्रियं दिशति देहिनः॥२८॥
ये योगाश्च पदे लग्ने यथावद् गदिता मया।
ते योगाः कारकांशेऽपि विज्ञेया बाधवर्जिताः॥२९॥

कोई भी ग्रह स्वोच्चस्थ अथवा बुध, गुरु, शुक्र में से कोई एक ग्रह भी बली होकर द्वितीय भाव में हो तो जातक धनवान होता है। जिस तरह पद या लग्न से भावों का फल कहा गया है, उसी प्रकार आत्मकारकांश से भी फल जानना चाहिए॥२८-२९॥

आरूढाद् वित्तभे सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत्।
सर्वज्ञो यदि वा स स्यात् कविर्वादी च भार्गवे॥३०॥
आरूढाद् केन्द्रकोणेषु स्थिते द्वारपदे द्विज!।
लग्नजायापदे वापि सबलग्रहसंयुते॥३१॥
श्रीमांश्च जायते नूनं देशे विख्यातिमान् भवेत्।
षष्ठेऽष्टमे व्ययस्थाने जातो दारपदेऽधनः॥३२॥
पदे तत्सप्तमे वापि केन्द्रे वृद्धौ त्रिकोणके।
सुवीर्यः संस्थितः खेटः भार्याभर्तृसुखप्रदः॥३३॥

पदाद्दारपदे चैवं केन्द्रे कोणे च संस्थिते।
द्वयोर्मैत्री भवेन्नूनं त्रिके वैरं न संशयः ॥३४॥
एवं लग्नपदाद् विप्र! तनयादिपदे स्थिते।
मित्रेऽमित्रे विजानीयाल्लाभालाभौ विचक्षणः ॥३५॥
लग्नदारपदे विप्र! मिथः केन्द्रगते यदि।
त्रिलाभयोस्त्रिकोणे वा तदा राजा धराधिपः ॥३६॥
एवं लग्नपदादेव धनादिपदतो द्विज!।
स्थानद्वयं समालोक्य जातकस्य फलं वदेत् ॥३७॥

आरूढ (पद) से द्वितीय भाव में शुभ ग्रह हो तो वह जातक सार्वभौम राजा या सर्ववित् होता है। यदि द्वितीय स्थान में भार्गव (शुक्र) हो तो कवि या वक्ता होता है। पद से केन्द्र (१, ४, ७, १०) एवं त्रिकोण (९, ५) में सप्तम का पद बैठा हो अथवा उभय पद बलयुक्त ग्रहों से युक्त हो तो जातक निश्चय ही धनवान तथा देश-विदेश में प्रसिद्ध होता है। यदि पद से षष्ठ, अष्टम और व्ययभाव में सप्तम का पद हो तो जातक धनहीन होता है। यदि पद में या पद से ७, केन्द्र, त्रिकोण, ११ भावों में अत्यन्त बलवान ग्रह हों तो जातक कलत्रादि सुख से समन्वित होता है। पद से सप्तम का पद यदि केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो तो दोनों स्त्री-पुरुष में परस्पर मैत्री होती है। यदि पद से त्रिक (६, ८, १२) में सप्तम पद हो तो दोनों में परस्पर वैरभाव रहता है। हे महर्षि! इसी प्रकार पद से पुत्र, मातृ, पितृ आदि के पद भी केन्द्रं-त्रिकोणादि में स्थित हों तो पुत्रादि से मैत्री और यदि त्रिक स्थान में पड़ें तो शत्रुता जाननी चाहिए। साथ ही जिसका पद लग्नपद से केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो तो उस भाव की वृद्धि एवं त्रिक स्थान में पड़े तो उस भाव की हानि होती है। हे मैत्रेय! लग्न तथा सप्तम के पद आपस में केन्द्र-त्रिकोण, ३, ११ में पड़ें तो जातक भूमीश अर्थात् राजा होता है। इस प्रकार उभय पदों को देखकर धनादि भावों के फल समझना चाहिए ॥३०-३७॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पदाध्याय: ।३०॥

अथोपपदाध्यायः ॥३१॥

पराशर उवाच

अथोपपदमाश्रित्य कथयामि फलं द्विज ! ।
यच्छुभत्वे भवेन्नृणां पुत्रदारादिजं सुखम् ॥१॥
तनुभावपदं विप्र ! प्रधानं पदमुच्यते ।
तनोरनुचराद्यत् स्यादुपारूढं तदुच्यते ॥२॥
तदेवोपपदं नाम तथा गौणपदं स्मृतम् ।
शुभखेटगृहे तस्मिन् शुभग्रहयुतेक्षिते ॥३॥
पुत्रदारसुखं पूर्णं जायते द्विजसत्तम ! ।
पापग्रहयुते तत्र पापभे पापवीक्षिते ॥४॥
प्रव्राजको भवेज्जातो दारहीनोऽथ वा नरः ।
शुभदृग्योगतो नैव योगोऽयं दारनाशकः ॥५॥
रविर्नैवात्र पापः स्यात् स्वोच्चमित्रस्वभस्थितः ।
नीचशत्रुगृहस्थश्चेत्तदाऽसौ पाप एव हि ॥६॥

हे द्विज ! अब मैं उपपद के फल कहता हूँ, जिसके शुभ रहने पर पुत्र-भार्यादि सुख होते हैं। हे विप्र ! पूर्वकथित लग्न का जो पद है, वह प्रधान पद है। तनुभाव का जो पुत्र-भाव का पद है, वह उपपद कहा जाता है। यही उपपद गौणपद भी कहा जाता है। उसमें शुभ ग्रह की दृष्टि हो या शुभ ग्रहयुक्त हो तो जातक को पुत्र-भार्याजन्य सुख-शान्ति होती है। गौण पद पाप ग्रह की राशि हो, पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो जातक संन्यासी या पत्नीहीन होता है। परन्तु यदि उसमें शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो जातक पत्नीहीन नहीं होता। सूर्य के अपने उच्च राशि में या मित्र गृह में रहने से उसको पाप ग्रह नहीं माना जाता, लेकिन वही यदि अपने नीच या शत्रु की राशि में स्थित हो तो पाप ग्रह ही माना जाता है ॥१-६॥

शुभग्रहाणां दृष्टिश्चेदुपारूढाद् द्वितीयके ।
शुभर्क्षे शुभयुक्ते च पूर्वोक्तं हि फलं स्मृतम् ॥७॥
उपारूढाद् द्वितीयं च नीचांशे नीचखेटयुक् ।
क्रूरग्रहसमायुक्तं जातको दारहा भवेत् ॥८॥
स्वोच्चांशे स्वोच्चसंस्थे वा तुङ्गदृष्टिवशात्तथा ।
भवन्ति बहवो दारा रूपलक्षणसंयुताः ॥९॥
उपारूढे द्वितीये वा मिथुने संस्थिते सति ।
तत्र जातनरो विप्र ! बहुदारयुतो भवेत् ॥१०॥

उपारूढे द्वितीयेऽपि स्वस्वामिग्रहसंयुते।
स्वर्क्षगे तत्पतौ वापि यत्र कुत्रापि भूसुर! ॥११॥
यस्य जन्मनि योगोऽयं स नरो द्विजसत्तम!।
उत्तरायुषि निर्दारो भवत्येव न संशयः ॥१२॥

उपपद से द्वितीय भाव शुभ ग्रहों के द्वारा अवलोकित हो या शुभ ग्रह का गृह हो अथवा शुभ ग्रहों से युक्त हो तो पूर्वोक्त (भार्या-पुत्र-सौख्य) फल जानना चाहिए। उपपद से द्वितीय स्थान नीच नवांश, नीच ग्रहों से युक्त या पाप ग्रहों का योग हो तो जातक की स्त्री का नाश होता है। यदि उपपद से द्वितीय में उच्च ग्रह हों या उच्च स्थित ग्रह की दृष्टि हो या उच्च का नवमांश हो तो जातक की रूप-गुणों से सुसम्पन्न बहुत पत्नियाँ होती हैं। उपपद से द्वितीय स्थान में मिथुन राशि हो तो भी बहुत पत्नी का योग होता है। उपपद में या उससे द्वितीय में उसका स्वामी स्थित हो अथवा अन्यत्र भी उसका स्वामी अपनी राशि में बैठा हो तो उत्तरायुषि (वृद्धावस्था) में वह जातक पत्नीहीन हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥७-१२॥

स्वराशौ संस्थितेऽप्येवं नित्याख्ये दारकारके।
उत्तरायुषि निर्दारो भवत्येव न संशयः ॥१३॥
उपारूढपतिः स्वोच्चे स्थिरस्त्रीकारकोऽथ वा।
सुकुलाद् दारलाभः स्यान्नीचस्थे तु विपर्ययात् ॥१४॥
उपारूढे द्वितीये वा शुभसम्बन्धतो द्विज!।
जातस्य सुन्दरी भार्या भव्या रूपगुणान्विता ॥१५॥

सप्तमेश नित्य पत्नीकारक ग्रह होते हैं, यदि वे भी स्वगृह में स्थित हों तो उस जातक की स्त्री उसकी वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त होती है। उपपद अथवा स्थिर स्त्रीकारक ग्रह अपनी उच्च राशि में बैठे हैं तो उस जातक को उत्तम वंश से पत्नी का लाभ होता है और यदि नीच में हो तो नीच कुल से स्त्री का लाभ होता है एवं उपपद अथवा उससे द्वितीय भाव में शुभ ग्रह का सम्बन्ध हो तो उस जातक की स्त्री सुन्दरी तथा वनिता-गुणों से सुसम्पन्न होती है ॥१३-१५॥

उपारूढाद् द्वितीये च शनिराहू स्थितौ यदि।
अपवादात् स्त्रियस्त्यागो नाशो वा जायते द्विज ॥१६॥
उपारूढे द्वितीये वा शिखिशुक्रौ यदा स्थितौ।
रक्तप्रदररोगार्ता जायते तस्य भामिनी ॥१७॥
बुध-केतू स्थितौ तत्र तदाऽस्थिस्त्रावसंयुता।
तत्रस्थाः शनिराह्वर्कास्तदाऽस्थिज्वरसंयुता ॥१८॥
स्थूलाङ्गी बुधराहुभ्यां तत्रस्थाभ्यां द्विजोत्तम!।
बुधक्षेत्रे कुजार्की चेन्नासिकारोगसंयुता ॥१९॥

कुजक्षेत्रेऽप्येवमेव फलं ज्ञेयं द्विजोत्तम ! ।
बृहस्पतिशनी तत्र कर्णनेत्ररुजान्विता ॥२०॥
तत्रान्यगेहगौ विप्र ! बुधभौमौ स्थितौ यदा ।
यदा स्वर्भानु-देवेज्यौ भार्या दन्तरुजान्विता ॥२१॥
शनिराहू शनिक्षेत्रे पङ्गुर्वातरुजान्विता ।
शुभदृग्योगतो नेति फलं ज्ञेयं विपश्चिता ॥२२॥

उपपद से द्वितीय स्थान में शनि-राहु बैठे हों तो उस जातक को अपवाद के कारण स्त्री-त्याग करना पड़ता है अथवा उसकी स्त्री मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। उपपद से द्वितीय में केतु-शुक्र स्थित हों तो उस जातक की स्त्री रक्तप्रदर से पीड़ित रहती है। बुध-केतु बैठे हों तो अस्थि (हड्डी) का स्राव होता है, यदि शनि-राहु-सूर्य हो तो अस्थि-ज्वर होता है एवं यदि बुध-राहु हो तो पत्नी स्थूल देह वाली होती है। बुध क्षेत्र (मिथुन-कन्या) में शनि-भौम हो तो नासिका रोगयुक्त एवं भौम क्षेत्र (१, ८) में भी नासिका रोगयुक्त होती है। गुरु-शनि हो तो कर्ण तथा नेत्र में रोगयुक्ता होती है। यदि उपपद से द्वितीय स्थान में स्वगृह से भिन्न राशि का बुध-भौम हो या राहु केतु हों तो उस जातक स्त्री दन्तरोग से युक्त होती है। उपपद या उससे द्वितीय में शनि क्षेत्र (मकर, कुम्भ) हो और उसमें शनि-राहु हो तो उस जातक की स्त्री पङ्गु अथवा वायुसम्बन्धित रोग से युक्त होती है। इन पापयोगों में शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट होने पर उक्त अशुभ फल नहीं होता अर्थात् शुभ फल ही प्राप्त होता है ॥१६-२२॥

लग्नात् पदादुपारूढात् यो राशिः सप्तमो द्विज ! ।
तस्मात्तत्स्वामिनः खेटात् तदंशाच्च द्विजोत्तम ! ॥२३॥
एवमेव फलं ज्ञेयमित्याहुर्नारदादयः ॥२३½॥

हे द्विज ! इस प्रकार लग्न से, पद से और उपपद से जो सप्तम राशि हो, उससे, उसके अधिपति से एवं उसके नवमांश से भी फल अवगत करना चाहिए—ऐसा नारदादि महर्षियों ने कहा है ॥२३-२४½॥

उक्तेभ्यो नवमे विप्र ! शनिचन्द्रबुधा यदि ॥२४॥
अपुत्रता तथाऽर्केज्यराहुभिर्बहुपुत्रता ।
चन्द्रेणैकसुतस्तत्र मिश्रैः पुत्रो विलम्बतः ॥२५॥
रवीज्यराहुयोगेन पुत्रो वीर्यप्रतापवान् ।
प्रचण्डविजयो विप्र ! रिपुनिग्रहकारकः ॥२६॥
उक्तस्थाने कुजार्किभ्यां पुत्रहीनः प्रजायते ।
दत्तपुत्रयुतो वापि सहोत्थसुतवान् भवेत् ॥२७॥
तत्रस्थे विषमे राशौ बहुपुत्रयुतो नरः ।
स्वल्पापत्यः समे राशौ जायते द्विजसत्तम ! ॥२८॥

पूर्वोक्त भावों से नवम स्थान में शनि, चन्द्र, बुध स्थित हो तो वह जातक सन्तति से रहित होता है। यदि सूर्य, गुरु, राहु हों तो अधिक पुत्र वाला होता है। चन्द्र हो तो एक पुत्र वाला होता है और मिश्रित (अनेक) ग्रह हों तो विलम्ब से पुत्र होता है। रवि-गुरु-राहु के योग से जो पुत्र होता है वह बली और प्रतापी तथा विजयी एवं शत्रुओं का दमन करने वाला होता है। नवम में भौम-शनि हो तो सन्तानहीन अथवा दत्तक पुत्र वाला अथवा अपने सहोदर भाइयों के पुत्र से पुत्रवान होता है। नवम स्थान में विषम राशि हो तो अधिक पुत्री वाला एवं यदि सम राशि हो तो स्वल्प पुत्रवान होता है॥२४-२८॥

सिंहे चोपपदे विप्र! निशानाथयुतेक्षिते।
अल्पप्रजोऽथ कन्यायां जातः कन्याप्रजो भवेत्॥२९॥
सुतभावनवांशाच्च स्थिरसन्ततिकारकात्।
एवं त्रिंशांशकुण्डल्यामपि योगं विचिन्तयेत्॥३०॥

उपपद सिंह राशि में हो और चन्द्रमा से युक्त या दृष्ट हो तो जातक स्वल्प पुत्र वाला एवं कन्या में हो तो अधिक कन्या वाला होता है। इसी प्रकार पञ्चम भाव नवमांश के द्वारा भी विचार करना चाहिए। साथ ही जिस प्रकार जन्मकुण्डली से विचार कहा गया है उसी प्रकार त्रिंशांश कुण्डली से भी विचार करना चाहिए॥२९-३०॥

शशिराहू त्रिलाभस्थौ पदाद् भ्रातुर्विनाशकौ।
ज्येष्ठस्यैकादशे तत्र कनिष्ठस्य तृतीयके॥३१॥
दैत्येज्ये तत्र गर्भस्य नाशो व्यवहितस्य च।
लग्ने वापि पदे रन्ध्रे दैत्याचार्ययुतेक्षिते॥३२॥
तथैव फलमित्याहुर्निर्विशङ्कं मुनीश्वराः!।
तृतीयलाभयोर्विप्र! चन्द्रेज्यबुधमङ्गलाः॥३३॥
बहवो भ्रातरस्तस्य बलवन्तः प्रतापिनः।
शन्यारसंयुते दृष्टे तृतीयैकादशे द्विज!॥३४॥
कनिष्ठज्येष्ठयोर्नाशो विज्ञेयो द्विजसत्तम!।
शनिरेको यदा विप्र! लाभगो वा तृतीयगः॥३५॥
तदा स्वमात्रशेषः स्यादन्ये नश्यन्ति सोदराः।
तृतीये लाभगे केतौ बहुलं भगिनीसुखम्॥३६॥

पद से तृतीय स्थान में शनि-राहु हों तो छोटे भाई के नाशकारक होते हैं, एकादश में हों तो बड़े भाई का नाशकारक होते हैं। शुक्र हो तो अपने से व्यवहित मातृगर्भ का नाश होता है। लग्न, पद या उससे अष्टम में शुक्रयुक्त हो या शुक्र की दृष्टि हो तो भी उक्त फल होता है। यदि तृतीय-एकादश में चन्द्र, गुरु, बुध, भौम हो तो अधिक भाई होते हैं और बड़े प्रतापी होते हैं। शनि-भौम तृतीय-एकादश में युक्त हों या दृष्ट हों तो भाइयों का नाश होता है अर्थात् शनि के द्वारा छोटे भाई और भौम के द्वारा बड़े भाई का नाश समझना

चाहिए। शनि केवल एकादश या तृतीय में हो तो वह जातक शेष रहता है अर्थात् बच जाता है और उसके बड़े एवं छोटे भाइयों का नाश हो जाता है। ३, ११ में केतु हो तो जातक को अधिक बहनें होती हैं ॥३१-३६॥

आरूढात् षष्ठभावस्थे पापाख्ये शुभवर्जिते।
शुभसम्बन्धरहिते चौरो भवति जातकः ॥३७॥
सप्तमे द्वादशे स्थाने सैंहिकेययुतेक्षिते।
ज्ञानवाँश्च भवेद् बालो बहुभाग्ययुतो द्विज! ॥३८॥
आरूढे संस्थिते सौम्ये सर्वदेशाधिपो भवेत्।
सर्वज्ञस्तत्र देवेज्ये कविर्वादी च भार्गवे ॥३९॥
उपारूढात् पदाद् वापि धनस्थे शुभखेचरे।
सर्वद्रव्याधिपो धीमाञ्जायते द्विजसत्तम! ॥४०॥
उपारूढाद्धनाधीशे द्वितीयभवनस्थिते।
पापखेचरसंयुक्ते चौरो भवति निश्चितम् ॥४१॥

आरुढ (पद) से षष्ठ भाव में पाप ग्रह हो और शुभ ग्रह न हो, न तो शुभ ग्रह की दृष्टि ही हो तो जातक चोर होता है। सप्तम या द्वादश में राहु हो या राहु द्वारा दृष्ट हो तो जातक ज्ञानी और बहुत भाग्यवान होता है। पदस्थान में बुध स्थित हो तो वह सभी देशों का अधिपति होता है। गुरु हो तो सभी वस्तुओं का ज्ञाता एवं शुक्र के रहने से कवि तथा वादी होता है। उपपद से या पद से द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हो तो जातक सभी द्रव्यों का स्वामी और बुद्धिमान होता है। उपपद से द्वितीय स्थानाधिप द्वितीय भाव में ही बैठे हों और पाप ग्रह से युक्त हों तो जातक चोर होता है ॥३७-४१॥

तत्सप्तमगृहाधीशाद् राहौ धनगते द्विज!।
दंष्ट्रावान् जायते बालः स्तब्धवाक् केतुखेचरे ॥४२॥
शनैश्चरे कुरूपः स्यात् सप्तमेशाद् द्वितीयगे।
मिश्रग्रहसमायुक्ते फलं मिश्रं समादिशेत् ॥४३॥

उपपद से सप्तमेश जो हो और वह जहाँ स्थित हो, वहाँ से द्वितीय स्थान में राहु हो तो जातक दंष्ट्रावान (बड़े दाँत वाला) होता है। केतु हो तो अस्पष्ट बोलने वाला, वह भी रुक-रुक कर और शनि हो तो कुरूप होता है। मिश्रित ग्रह हों तो मिश्र फल प्राप्त होता है ॥४२-४३॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामुपपदाध्यायः ॥३१॥

अथाऽर्गलाध्यायः ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

भगवन्! याऽर्गला प्रोक्ता शुभदा भवताधुना।
तामहं श्रोतुमिच्छामि सलक्षणफलां मुने! ॥१॥

मैत्रेय जी कहते हैं कि हे भगवन्! पहले आपने जो अर्गला से शुभ फल कहा था, उसके लक्षण तथा फलों को मैं सुनना चाहता हूँ॥१॥

पराशर उवाच

मैत्रेय! सार्गला नाम यया भावफलं दृढम्।
स्थिरं खेटफलं च स्यात् साऽधुना कथ्यते मया॥२॥
चतुर्थे च धने लाभे ग्रहे ज्ञेया तदर्गला।
तद्बाधकाः क्रमात् खेटा व्योमरिष्फतृतीयगाः॥३॥
निर्बला न्यूनसंख्या वा बाधका नैव सम्मताः।
तृतीये त्र्यधिकाः पापा यत्र मैत्रेय! बाधकाः॥४॥
तत्रापि चार्गला ज्ञेया विपरीता द्विजोत्तम!।
तथापि खेटभावानां फलमर्गलितं विदुः॥५॥
पञ्चमं चार्गलास्थानं नवमं तद्विरोधकृत्।
तमोग्रहभवा सा च व्यत्ययाज् ज्ञायते द्विज!॥६॥
एकग्रहा कनिष्ठा सा द्विग्रहा मध्यमा स्मृता।
अर्गला द्व्यधिकोत्पन्ना मुनिभिः कथितोत्तमा॥७॥
राशितो ग्रहतश्चापि विज्ञेया द्विविधाऽर्गला।
निर्बाधका सुफलदा विफला च सबाधका॥८॥
यत्र राशौ स्थितः खेटस्तस्य पाकान्तरं यदा।
तस्मिन् काले फलं ज्ञेयं निर्विशङ्कं द्विजोत्तम!॥९॥

पराशर जी कहते हैं कि हे मैत्रेय! जिस ग्रह के माध्यम से ग्रहफल या भाव का फल स्थिर होता है, उस योग को अर्गला कहते हैं, उसको ही अब मैं आपसे कहता हूँ। यदि भाव या ग्रह से ४, २, ११ भाव में ग्रह स्थित हो तो उससे अर्गला योग होता है। इन तीनों अर्गला स्थान के क्रम से १०, १२, ३ अवरोधक स्थान हैं। अत: इन स्थानों में ग्रह हो तो अर्गला योग का अवरोध होता है। परन्तु अर्गलाकारक ग्रह से बाधक स्थान में स्थित ग्रह बलहीन हों या अल्प संख्या हो तो अवरोध नहीं होता। तृतीयस्थ पाप ग्रह ३ या ३ से अधिक हों तो अर्गला योग का अवरोध नहीं होता। उससे भी फलाधिक्य होता है। इसी प्रकार पञ्चम स्थान

अर्गला और नवम स्थान को उसका बाधक स्थान जानना चाहिए। राहु-केतु का योग विपरीत होता है अर्थात् राहु-केतु के सदैव वक्र गति वाले होने के कारण अर्गला स्थान और बाधक स्थान उल्टा होता है। एक ग्रह से कनिष्ठ, २ से मध्यम एवं ३ या ३ से अधिक ग्रह से निर्मित अर्गला योग श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार राशि और ग्रह से अर्गला का विचार करना चाहिए। अवरोधहीन अर्गला ही फलप्रद होती है एवं अवरोधयुक्त अर्गला निष्फल होती है। राशि या ग्रह से निर्मित अर्गला योग या उसकी दशा में ही उसका पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥२-९॥

अर्गलां प्रतिबन्धं च प्रथमांघ्रिचतुर्थयोः।
द्वित्र्यङ्घ्र्योश्च मिथो विप्र! चिन्तयेदिति मे मतम् ॥१०॥

हे द्विज! पूर्वोक्त अर्गलायोग तथा अवरोधक योग भी राशि के प्रथम चरण में स्थित ग्रह को चतुर्थ चरण-स्थित ग्रह के साथ एवं द्वितीय चरणनिष्ठ ग्रह को तृतीय चरण-स्थित ग्रह से परस्पर योग ही बाधक होता है ॥१०॥

अर्गला के फल

पदे लग्ने मदे वापि निराभासार्गला यदा।
तदा जातोऽतिविख्यातो बहुभाग्ययुतो भवेत् ॥११॥
यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेत् शुभार्गले।
तेन द्रष्ट्रेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्प्यते ॥१२॥
सार्गले च धने विप्र! धनधान्यसमन्वितः।
तृतीये सोदरादीनां सुखमुक्तं मनीषिभिः ॥१३॥
चतुर्थे सार्गले गेहपशु-बन्धुकुलैर्युतः।
पञ्चमे पुत्रपौत्रादिसंयुतो बुद्धिमान्नरः ॥१४॥
षष्ठे रिपुभयं कामे धनदारसुखं बहु।
अष्टमे जायते कष्टं धर्मे भाग्योदयो भवेत् ॥१५॥
दशमे राजसम्मानं लाभे लाभसमन्वितः।
सार्गले च व्यये विप्र! व्ययाधिक्यं प्रजायते ॥१६॥
शुभग्रहार्गलायां तु सौख्यं बहुविधं भवेत्।
मध्यं पापार्गलायां च मिश्रायामपि चोत्तमम् ॥१७॥
लग्नपञ्चमभाग्येषु सार्गलेषु द्विजोत्तम!।
जातश्च जायते राजा भाग्यवान् नात्र संशयः ॥१८॥

पद, लग्न अथवा इनसे सप्तम में अवरोधरहित अर्गला योग हो तो वह जातक जगत् में प्रसिद्ध और भाग्यवान होता है। साथ ही जिस ग्रह से अर्गला स्थान में पाप या शुभग्रह बैठे हों तथा उसके बाधक न हों और उस ग्रह द्वारा लग्न को देखा जाता हो तो जातक भाग्ययुक्त, रोगरहित एवं सुखी होता है। धनस्थान में अर्गला हो तो जातक धन-

धान्य से युक्त होता है एवं तृतीय में सोदर बन्धु-बान्धव का सुख मुनियों ने कहा है। चतुर्थ में अर्गला हो तो गृह, पशु एवं बन्धुओं से युक्त होता है। पञ्चमस्थ अर्गला हो तो पुत्र-पौत्रों से युक्त बुद्धिमान होता है। षष्ठ में शत्रुभय, सप्तम में धन एवं दारा से सुख तथा अष्टम स्थान में अर्गला हो तो कष्ट होता है। नवम में भाग्योदय होता है, दशम में राजसम्मान, एकादश में लाभ और द्वादश भाव में अर्गला हो तो अधिक व्यय होता है। अत: ६।८।१२ भाव में अर्गला योग अशुभ, अन्यत्र शुभ तथा उनमें भी १, ५, ९ भावों की अर्गला अत्यन्त शुभ होती है। साथ ही शुभ फलदायक ग्रह से आगे अर्गला योग हो तो शुभ और पाप फलदायक ग्रह से अर्गला योग हो तो अशुभ जानना चाहिए ॥११-१८॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामर्गलाध्याय: ॥३२॥

अथ कारकाध्यायः ॥३३॥

पराशर उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि ग्रहानात्मादिकारकान्।
सप्त रव्यादिशन्यन्तान् राह्वन्तान् वाऽष्टसंख्यकान्॥१॥
अंशैः समौ ग्रहौ द्वौ चेद् राह्वन्तान् चिन्तयेत्तदा।
सप्तैव कारकानेवं केचिदष्टौ प्रचक्षते॥२॥
आत्मा सूर्यादिखेटानां मध्ये ह्यंशाधिको ग्रहः।
अंशसाम्ये कलाधिक्यात् तत्साम्ये विकलाधिकः॥३॥
बुधै राशिकलाधिक्याद् ग्राह्यो नैवात्मकारकः।
अंशाधिकः कारकः स्यादल्पभागोऽन्त्यकारकः॥४॥
मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखेटः स एव हि।
विलोमगमनाद्राहोरंशाः शोध्याः खवह्नितः॥५॥
अंशक्रमादधोऽधस्थाश्चाराख्याः कारका इति।
आत्माख्यकारकस्तेषु प्रधानं कथ्यते द्विज!॥६॥
स एव जातकाधीशो विज्ञेयो द्विजसत्तम!।
यथा भूमौ प्रसिद्धोऽस्ति नराणां क्षितिपालकः॥७॥
सर्ववार्ताधिकारी च बन्धकृन्मोक्षकृत्तथा॥८॥

हे द्विज! अब मैं रवि से शनिपर्यन्त ७ ग्रहों के कारक को कहता हूँ। कुछ लोग राहुपर्यन्त ८ ग्रह कारक मानते हैं, तो कुछ लोग कहते हैं कि दो ग्रहों के अंशादि तुल्य होने पर राहु को लेना चाहिए। सूर्यादि ग्रहों में राशि छोड़कर सर्वाधिक अंश जिस ग्रह का होगा वही आत्मकारक ग्रह होगा। दो ग्रहों में अंश तुल्य हो तो अधिक कला वाले को आत्मकारक मानना चाहिए और कला में समता हो तो अधिक विकला वाले को आत्मकारक मानना चाहिए। इसी प्रकार सर्वाल्प अंश वाला ग्रह अन्त्यकारक और मध्य अंश वाला ग्रह मध्यकारक कहा जाता है, इसी को उपखेट भी कहा जाता है। राहु के कारक के विचार में उसको ३० अंश में घटाकर विचार करना चाहिए; क्योंकि राहु सदैव वक्र गति से चलता है। इस प्रकार से कारकों को जानना चाहिए। उन कारकों में आत्मकारक प्रधान होता है और वही जातक का अधिपति होता है। जैसे राजा मनुष्यों के सभी विषयों का अधिपति होता है, उसी प्रकार आत्मकारक ग्रह भी अपने स्वभाव के अनुरूप जातक को फल प्रदान करता है॥१-८॥

यथा राजाज्ञया विप्र! पुत्रामात्यादयो जनाः।
समर्था लोककार्येषु तथैवाऽन्येऽपि कारकाः॥९॥

आत्मानुकूलमेवात्र भवन्ति फलदायकाः ।
प्रतिकूले यथा भूपे सर्वेऽमात्यादयो द्विज ! ॥१०॥
कार्यं कर्तुं मनुष्याणां न समर्था भवन्ति हि ।
तथाऽऽत्मकारके क्रूरे नाऽन्ये स्वशुभदायकः ॥११॥
अनुकूले नृपे यद्वत् सर्वेऽमात्यादयो द्विज ! ।
नाशुभं कुर्वते तद्वन्नान्ये स्वाऽशुभदायकः ॥१२॥

हे विप्र ! जैसे राजा की आज्ञा से मन्त्री आदि सभी लोग लोककार्य करते हैं उसी तरह आत्मकारक ग्रह के अनुकूल रहने पर ही अन्य कारकग्रह फल देते हैं, आत्मकारक ग्रह के प्रतिकूल रहने पर वे फल देने में असमर्थ होते हैं। आत्मकारक ग्रह अशुभ हो तो अन्य शुभ ग्रह भी अपने फल को नहीं दे सकते तथा आत्मकारक शुभ हो तो क्रूर ग्रह भी अपने अशुभ फल को प्रदान करने में असमर्थ होते हैं ॥९-१२॥

अन्य कारकलक्षण

आत्मकारकभागेभ्यो न्यूनांशोऽमात्यकारकः ।
तस्मान्न्यूनांशको भ्राता तन्न्यूनो मातृसंज्ञकः ॥१३॥
तन्न्यूनांशः पिता तस्मादल्पांशः पुत्रकारकः ।
पुत्रान्न्यूनांशको ज्ञातिर्ज्ञातेर्न्यूनांशको हि यः ॥१४॥
स दारकारको ज्ञेयो निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ! ।
चराख्यकारका एते ब्राह्मणा कथिताः पुरा ॥१५॥
मातृकारकमेवाऽन्ये वदन्ति सुतकारकम् ।
द्वौ ग्रहौ भागतुल्यौ चेज्जायेतां यस्य जन्मनि ॥१६॥
तदग्रकारकस्यैवं लोपो ज्ञेयो द्विजोत्तम ।
स्थिरकारकवशात्तस्य फलं ज्ञेयं शुभाऽशुभम् ॥१७॥

आत्मकारक से स्वल्प अंश वाला ग्रह अमात्य (राजमन्त्री) कारक होता है, इससे न्यूनांश भ्राता, उससे स्वल्पांश माता, उससे स्वल्पांश पिता, उससे स्वल्पांश पुत्र, उससे कम अंश वाला ज्ञाति और उससे न्यूनांश स्त्रीकारक होता है। ये चरकारक ब्रह्मा जी ने कहे हैं। कुछ लोग मातृकारक एवं पुत्रकारक को एक ही मानते हैं। यदि दो ग्रहों के अंशादि तुल्य हों तो वे दोनों से एक ही कारक मानते हैं और उससे अग्रिम कारक का लोप हो जाता है। ऐसी स्थिति में उस (लोप) के फलाफल का विचार स्थिर कारक से करना चाहिए ॥१३-१७॥

अधुना सम्प्रवक्ष्यामि स्थिराख्यान् कारकग्रहान् ।
स पितृकारको ज्ञेयो यो बली रविशुक्रयोः ॥१८॥
चन्द्रारयोर्बली खेटो मातृकारक उच्यते ।
भौमतो भगिनी श्यालः कनीयान् जननीत्यपि ॥१९॥

बुधान्मातृसजातीया मातुलाद्याश्च बान्धवाः।
गुरोः पितामहः शुक्रात् पतिः पुत्रः शनैश्चरात् ॥२०॥
विप्रान्तेवासिनः पत्नी पितरौ श्वशुरौ तथा।
मातामहादयश्चिन्त्या एते च स्थिरकारकाः ॥२१॥

अब मैं स्थिर कारक ग्रहों को कहता हूँ। रवि-शुक्र में जो बली हो, वह पितृकारक होता है एवं चन्द्र-भौम में जो बली हो, वह मातृकारक होता है। भौम से बहिन, साला, छोटे भाई तथा माता का भी विचार करना चाहिए। बुध से चाची, मौसी, मामा, बान्धव आदि का विचार करना चाहिए। गुरु से पितामह, शुक्र से स्वामी और शनि से पुत्रों का विचार किया जाता है। ग्रहान्त में रहने वाले केतु से स्त्री, माता, पिता, सास, ससुर, मातामह, मातामही आदि का विचार करना चाहिए। ये सभी स्थिर कारक होते हैं ॥१८-२१॥

अथाऽहं कारकान् वक्ष्ये खेटभाववशाद् द्विज!।
रवितः पुण्यभे तातश्चन्द्रान्माता चतुर्थके ॥२२॥
कुजात्तृतीयतो भ्राता बुधात् षष्ठे च मातुलः।
देवेज्यात् पञ्चमात् पुत्रो दाराः शुक्राच्च सप्तमे ॥२३॥
मन्दादष्टमतो मृत्युः पित्रादीनां विचिन्तयेत्।
इति सर्वं विचार्यैव बुधस्तत्तत् फलं वदेत् ॥२४॥

हे विप्र! अब मैं भाववशात् ग्रहों के कारक को कहता हूँ। सूर्य से नवम भाव पिता, चन्द्र से चतुर्थ भाव माता, भौम से तृतीय भाव भाई, बुध से षष्ठ भाव मातुल (मामा); गुरु से पञ्चम भाव पुत्र, शुक्र से सप्तम भाव स्त्री और शनि से अष्टम भाव पिता की मृत्यु—इस प्रकार विचार कर विद्वान् को शुभाशुभ फल का आदेश करना चाहिए ॥२२-२४॥

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि प्रसङ्गाद्योगकरकान्।
खेटान् जन्मनि जातस्य मिथः स्थितिवशाद् द्विज! ॥२५॥
स्वर्क्षे स्वोच्चे च मित्रर्क्षे मिथः केन्द्रगता ग्रहाः।
ते सर्वे कारकास्तेषु कर्मगस्तु विशेषतः ॥२६॥
यथा लग्ने सुखे कामे स्वर्क्षोच्चस्था ग्रहा द्विज!।
भवन्ति कारकाख्यास्ते विशेषेण च खे स्थिताः ॥२७॥
स्वमित्रोच्चर्क्षगो हेतुरन्योऽन्यं यदि केन्द्रगः।
सुहृत् तद्गुणसम्पन्नः सोऽपि कारक उच्यते ॥२८॥
नीचान्वयेऽपि यो जातः विद्यमाने च कारके।
सोऽपि राजसमो विप्र! धनवान् सुखसंयुतः ॥२९॥
राजवंशसमुत्पन्नो राजा भवति निश्चयात्।
एवं कुलानुसारेण कारकेभ्यः फलं वदेत् ॥३०॥

हे विप्र ! प्रसङ्गवश अब मैं योगकारक ग्रहों को कहता हूँ। जातक के जन्मकालिक स्थितिवश अनेक फल होते हैं; जैसे ग्रह अपनी राशि का हो या अपने उच्च का हो या अपने मित्र राशि का हो या अपने मूल त्रिकोण का हो और केन्द्रगत हो तो वे ग्रह शुभकारक होते हैं। लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव में अपने उच्चादि शुभ स्थान में यदि ग्रह स्थित हों तो वे योगकारक होते हैं। दशमस्थ ग्रह विशेष योगकारक होते हैं। लग्न से केन्द्रस्थ होना ही शुभ फलदायक नहीं है, अपितु ग्रह अपने-अपने उच्च स्वभवनादि में होकर किसी भाव में भी आपस में केन्द्रस्थ हों तो भी योगकारक माने जाते हैं। जिस जातक के जन्म-समय में इस प्रकार के योगकारक ग्रह हों तो वह जातक नीच वंश में उत्पन्न होकर भी राजा के तुल्य धनवान और सुखी होता है एवं राजकुल में उत्पन्न हो तो अवश्य ही राजा होता है। इस प्रकार योगकारक ग्रह तथा वंश के अनुसार अनुपात से शुभाशुभ फल का आदेश करना चाहिए ॥२५-३०॥

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि विशेषं भावकारकान्।
जनस्य जन्मलग्नं यत् तद् विन्द्यादात्मकारकम् ॥३१॥
धनभावं विजानीयात् दारकारकमेव हि।
एकादशेऽग्रजातस्य तृतीये तु कनीयसः ॥३२॥
सुते सुतं विजानीयात् पत्नीं सप्तमभावतः।
सुतभावे ग्रहो यः स्यात् सोऽपि कारक उच्यते ॥३३॥

अब मैं विशेष भावकारकों को कहता हूँ। जातक का जो जन्मलग्न हो वह आत्मकारक होता है। धनभाव को स्त्रीकारक भाव जानना चाहिए, एकादश ज्येष्ठ भाई का कारक होता है, तृतीय भाव कनिष्ठ (छोटा) भाई का और पञ्चम पुत्रभाव का कारक होता है। पुत्रस्थान में जो ग्रह निष्ठ हो वह भी पुत्रकारक होता है। सप्तम भाव से भी पत्नीकारक भाव जानना चाहिए ॥३१-३३॥

लग्नादि भावों के कारक ग्रह

सूर्यो गुरुः कुजः सोमो गुरुर्भौमः सितः शनिः।
गुरुश्चन्द्रसुतो जीवो मन्दश्च भावकारकाः ॥३४॥

सूर्य लग्नभाव का कारक, गुरु धनभाव का कारक एवं तृतीयभाव मंगलकारक होता है। इसी प्रकार चन्द्र, गुरु, मंगल, शुक्र, शनि, गुरु, बुध, गुरु, शनि—ये सभी ग्रह क्रम से चतुर्थ भाव से द्वादश भावपर्यन्त कारक ग्रह होते हैं ॥३४॥

भावों का विशेष शुभाशुभत्व

पुनस्तन्वादयो भावाः स्थाप्यास्तेषां शुभाऽशुभम्।
लाभस्तृतीयो रन्ध्रश्च शत्रुसंज्ञधनव्ययाः ॥३५॥
एते भावाः समाख्याताः क्रूराख्या द्विजसत्तम!।
एषां योगेन यो भावस्तस्य हानिः प्रजायते ॥३६॥

भावा भद्राश्च केन्द्राख्याः कोणाख्यौ द्विजसत्तम ! ।
एषां संयोगमात्रेण ह्यशुभोऽपि शुभो भवेत् ॥३७॥

लग्नादि द्वादश भाव स्पष्ट करके स्थापित करे। उसमें ११, ३, ८, ६, २, १२ भाव क्रूर (अशुभ) संज्ञक होते हैं। इनके सम्मिश्रण से जो भाव बने वह जिस भाव में पड़े, उस भाव की हानि होती है। केन्द्र (१, ४, ७, १०), कोण (५, ८)—ये भाव भद्र (कल्याणदायक) हैं यानी शुभ हैं, इनके योग से जो भाव बने वह जिस भाव में पड़े वह अशुभ होने पर भी शुभकारक होता है ॥३५-३७॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कारकाध्यायः ॥३३॥

अथ कारकांशफलाध्यायः ॥३४॥

कारकांशफल

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि कारकांशफलं द्विज ! ।
मेषादि-राशिगे स्वांशे यथावद् ब्रह्मभाषितम् ॥१॥
गृहे मूषक-मार्जारा मेषांशे ह्यात्मकारके ।
सदा भयप्रदा विप्र ! पापयुक्ते विशेषतः ॥२॥
वृषांशकगते स्वस्मिन् सुखदाश्च चतुष्पदाः ।
मिथुनांशगते तस्मिन् कण्ड्वादिव्याधिसम्भवः ॥३॥
कर्कांशे च जलाद् भीतिः सिंहांशे श्वपदाद् भयम् ।
कण्डूः स्थौल्यञ्च कन्यांशे तथा वह्निकणाद् भयम् ॥४॥
तुलांशे च वणिग् जातो वस्त्रादिनिर्मितौ पटुः ।
अल्यंशे सर्पतो भीतिः पीडा मातुः पयोधरे ॥५॥
धनुरंशे क्रमादुच्चात् पतनं वाहनादपि ।
मकरांशे जलोद्भूतैर्जन्तुभिः खेचरस्तथा ॥६॥
शङ्ख-मुक्ता-प्रवालाद्यैर्लाभो भवति निश्चितः ।
कुम्भांशे च तडागादि-कारको जायते जनः ॥७॥
मीनांशे कारके जातो मुक्तिभाग् द्विजसत्तम ! ।
नाऽशुभं शुभसंदृष्टे न शुभं पापवीक्षिते ॥८॥

हे द्विज ! ब्रह्माजी ने जैसा मेषादि राशियों का फल कहा है, वैसा ही अब मैं आत्मकारक ग्रह के मेषादि राशियों का नवमांश फल कहता हूँ। यदि आत्मकारक ग्रह मेष के नवमांश में हो तो जातक के घर में चूहे और बिल्ली का उपद्रव होता है। पापयुक्त हो तो विशेष उपद्रव होता है। आत्मकारक ग्रह वृष के नवमांश में हो तो चतुष्पदों से सुख प्राप्त होता है, मिथुन के नवमांश में स्थित हो तो खुजली आदि व्याधि से भय होता है, कर्क के नवमांश में हो तो जल से भय होता है, सिंह के नवमांश में हो तो हिंसा करने वाले जन्तु से भय होता है, कन्या के नवमांश में हो तो खुजली, स्थूलता और अग्निभय होता है, तुला में हो तो जातक वस्त्रादि के निर्माण में चतुर और व्यापारी होता है, वृश्चिक में हो तो सर्प से भय और माता के स्तन में पीड़ा होती है। धन में हो तो वाहनादि से अथवा उच्च स्थान से गिरने का भय होता है। आत्मकारक ग्रह मकर के नवमांश में हो तो जल, जन्तु (मत्स्य, शश), शङ्ख-मुक्ता, प्रवालादि से तथा पक्षियों से लाभ होता है। कुम्भांश में हो तो तड़ाग, कूप आदि निर्माण करने वाला होता है, मीनांश में आत्मकारक ग्रह हो तो जातक मुक्तिभागी होता है। इनमें शुभ ग्रह से अवलोकित हो तो अशुभ फल का नाश और पाप ग्रह की दृष्टि हो तो शुभ फल का नाश होता है ॥१-८॥

कारकांशे शुभे विप्र ! लग्नांशे च शुभग्रहे ।
शुभसंवीक्षिते जातो राजा भवति निश्चितः ॥९॥
स्वांशाच्छुभग्रहाः केन्द्रे कोणे वा पापवर्जितः ।
धन-विद्यायुतो जातो मिश्रैर्मिश्रफलं वदेत् ॥१०॥
उपग्रहे च विप्रेन्द्र ! स्वोच्च-स्वर्क्ष-शुभर्क्षगे ।
पापदृग्-रहिते चाऽन्त्ये कैवल्यं तस्य निर्दिशेत् ॥११॥

हे विप्र ! आत्मकारक ग्रह के नवमांश में तथा लग्न के नवमांश में शुभ ग्रह निष्ठ हो और शुभ ग्रह से अवलोकित हो (अर्थात् क्रूर ग्रह से दृष्ट न हो) तो जातक निश्चय ही राजा होता है। अपने आत्मकारक ग्रह के नवमांश से केन्द्र-त्रिकोण में शुभ ग्रह हो, पाप ग्रह से रहित हो तो जातक धनी और विद्वान होता है। मिश्रित (शुभ और अशुभ) ग्रह हो तो मिश्रित फल होता है। हे विप्रेन्द्र ! पूर्वकथित उपग्रह (मध्यांश) यदि अपने उच्च का हो, अपने गृह का हो या अपने उच्च का हो या शुभ राशि में हो और उस पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक मुक्ति का भागी होता है—ऐसा निर्देश करना चाहिए ॥९-११॥

चन्द्राऽऽरभृगुवर्गस्थे कारके पारदारिकः ।
विपर्यस्थेऽन्यथा ज्ञेयं फलं सर्वं विचक्षणैः ॥१२॥

यदि चन्द्र, भौम या शुक्र के षड्वर्ग में आत्मकारक ग्रह निष्ठ हो तो जातक परस्त्री-गामी होता है। उक्त स्थिति से अन्यथा (विपरीत) हो तो फल भी अन्यथा (विपरीत) ही समझना चाहिए ॥१२॥

कारकांशस्थित ग्रहफल

कारकांशे रवौ जातो राजकार्यपरो द्विज ! ।
पूर्णेन्दौ भोगवान् विद्वान् शुक्रदृष्टे विशेषतः ॥१३॥
स्वांशे बलयुते भौमे जातः कुन्तायुधी भवेत् ।
वह्निजीवी नरो वाऽपि रसवादी च जायते ॥१४॥
बुधे बलयुते स्वांशे कलाशिल्पविचक्षणः ।
वाणिज्यकुशलश्चापि बुद्धिविद्यासमन्वितः ॥१५॥
सुकर्मा ज्ञाननिष्ठश्च वेदवित् स्वांशगे गुरौ ।
शुक्रे शतेन्द्रियः कामी राजकीयो भवेन्नरः ॥१६॥
शनौ स्वांशगते जातः स्वकुलोचितकर्मकृत् ।
राहौ चौरश्च धानुष्को जातो वा लोहयन्त्रकृत् ॥१७॥
विषवैद्योऽथवा विप्र ! जायते नात्र संशयः ।
व्यवहारी गजादीनां केतौ चौरश्च जायते ॥१८॥

हे द्विज ! आत्मकारक के नवमांश में सूर्य हो तो जातक राजकीय कार्य करने वाला

और पूर्ण चन्द्रमा हो तो भोग करने वाला तथा विद्वान् होता है। शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो जातक विशेष भोगी और विद्वान् होता है। आत्मकारक के नवमांश में अपने बलयुक्त भौम हो तो जातक भाला रखने वाला, अग्नि से जीवन-यापन करने वाला और रसज्ञ (रस का ज्ञाता) होता है। बलयुक्त बुध कारकांश में हो तो जातक कला को जानने वाला और शिल्पविद्या में दक्ष होता है। गुरु हो तो सुकर्म (यज्ञादि कार्य) करने वाला और ज्ञानी होता है तथा वेद को जानने वाला होता है। शुक्र हो तो जातक सौ वर्ष जीवित रहने वाला, कामी एवं राजपुरुष होता है। शनि हो तो अपने कुलानुरूप कार्य करने वाला होता है। राहु हो तो चोर, धनुष धारण करने वाला, लौहयन्त्रकर्ता तथा विषवैद्य होता है। इसमें सन्देह नहीं है। केतु में हो तो जातक हाथियों का व्यवहार करने वाला तथा चोर होता है ॥१३-१८॥

विशेष फल

रविराहू यदा स्वांशे सर्पाद् भीतिः प्रजायते।
शुभदृष्टौ भयं नैव पापदृष्टौ मृतिर्भवेत् ॥१९॥
शुभषड्वर्गसंयुक्तौ विषवैद्यो भवेत् तदा।
भौमेक्षिते कारकांशे भानुस्वर्भानुसंयुते ॥२०॥
अन्यग्रहा न पश्यन्ति स्ववेश्मपरदाहकः।
तस्मिन् बुधेक्षिते चापि वह्निदो नैव जायते ॥२१॥
पापर्क्षे गुरुणा दृष्टे समीपगृहदाहकः।
शुक्रदृष्टे तु विप्रेन्द्र! गृहदाहो न जायते ॥२२॥

यदि कारकांश में सूर्य तथा राहुयुक्त हो तो सर्प का भय होता है। यदि शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो सर्प का भय नष्ट होता है और पापग्रह से दृष्ट हो तो सर्प के माध्यम से मरण होता है। यदि उक्त योग में केवल शुभ ग्रह का षड् वर्ग हो तो जातक विषवैद्य होता है। कारकांश में रवि-राहु युक्त हो एवं मंगल से दृष्ट हो, अन्य ग्रह से दृष्ट नहीं हो तो जातक अपना घर या दूसरे का घर जलाने वाला होता है। बुध से दृष्ट रहने पर गृहदाहक नहीं होता है। पाप ग्रह के षड् वर्ग में हो और गुरु से अवलोकित हो तो जातक स्वगृहसहित समीप के गृह को भी जलाने वाला होता है। हे विप्रेन्द्र! शुक्र द्वारा अवलोकित रहने पर दाहक नहीं होता ॥१९-२२॥

गुलिकेन युते स्वांशे पूर्णचन्द्रेण वीक्षिते।
चौरैर्हृतधनो जातः स्वयं चौरोऽथवा भवेत् ॥२३॥
ग्रहादृष्टे सगुलिके विषदो वा विषैर्हतः।
बुधदृष्टे बृहद्बीजो जायते नाऽत्र संशयः ॥२४॥

आत्मकारकांश में गुलिक हो और पूर्ण चन्द्र से दृष्ट हो तो जातक का धन चोर ले जाता है अथवा जातक स्वयं चोर होता है। अन्य ग्रह से दृष्ट न हो तो दूसरे को विष देने वाला या स्वयं विषपान से मरने वाला होता है। उस पर बुध की दृष्टि हो तो जातक बड़े अण्डकोश वाला होता है ॥२३-२४॥

सकेतौ कारकांशे च पापदृष्टे द्विजोत्तम! ।
जातस्य कर्णरोगो वा कर्णच्छेदः प्रजायते ॥२५॥
भृगुपुत्रेक्षिते तस्मिन् दीक्षितो जायते जनः ।
बुधार्किदृष्टे निर्वीर्यो जायते मानवो ध्रुवम् ॥२६॥
बुधशुक्रेक्षिते तस्मिन् दासीपुत्रः प्रजायते ।
पुनर्भवासुतो वाऽपि जायते नाऽत्र संशयः ॥२७॥
तपस्वी शनिना दृष्टे जातः प्रेष्योऽथवा भवेत् ।
शनिमात्रेक्षिते तस्मिन् जातः संन्यासिवेषवान् ॥२८॥

केतुयुक्त कारकांश पाप ग्रह से दृष्ट हो तो जातक कर्णरोगी अथवा कर्णछेद वाला होता है। शुक्र से दृष्ट हो तो जातक दीक्षित होता है। बुध-शनि से अवलोकित हो तो जातक वीर्यरहित होता है। बुध-शुक्र से दृष्ट हो तो जातक दासीपुत्र अथवा पुनर्भवा स्त्री का पुत्र होता है। शनि से दृष्ट हो तो जातक तपस्वी अथवा नौकर होता है। केवल शनि से अवलोकित रहने पर जातक संन्यासी का वेष धारण करने वाला होता है ॥२५-२८॥

रविशुक्रेक्षिते तस्मिन् राजप्रेष्यो जनो भवेत् ।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कारकांशफलं द्विज! ॥२९॥

केतुयुक्त कारकांश सूर्य और शुक्र से दृष्ट हो तो जातक राजपुरुष होता है। इस प्रकार आत्मकारक नवमांश का फल संक्षेप में कहा गया है ॥२९॥

कारकांश से द्वितीय भाव का फल

स्वांशाद्धने च शुक्रारवर्गे स्यात् पारदारिकः ।
तयोर्दृग्योगतो ज्ञेयमिदमामरणं फलम् ॥३०॥
केतौ तत्प्रतिबन्धः स्याद् गुरौ तु स्त्रैण एव सः ।
राहौ चाऽर्थनिवृत्तिः स्यात् कारकांशाद् द्वितीयगे ॥३१॥

कारकांश से द्वितीय भाव में शुक्र तथा मंगल का षड् वर्ग हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है। उक्त दोनों (शुक्र-मंगल) की दृष्टि द्वितीय भाव पर हो तो जातक जीवन भर परस्त्री के साथ रहने वाला होता है। उसमें केतु निष्ठ हो तो उक्त फल में प्रतिबन्ध होता है। कारकांश से द्वितीय भाव में गुरु रहने पर भी जातक स्त्री में आसक्त होता है। कारकांश से द्वितीय भाव में राहु हो तो स्त्री के कारण जातक के धन का नाश होता है ॥३०-३१॥

तृतीय भाव का फल

स्वांशात् तृतीयगे पापे जातः शूरः प्रतापवान् ।
तस्मिन् शुभग्रहे जातः कातरो नात्र संशयः ॥३२॥

कारकांश से तृतीय भाव में पाप ग्रह हो तो जातक शूर और प्रतापी होता है, लेकिन यदि शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक कातर (करने वाला) होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥३२॥

कारकांश से चतुर्थ भावफल

स्वांशाच्चतुर्थभावे तु चन्द्रशुक्रयुतेक्षिते।
तत्र वा स्वोच्चगे खेटे जातः प्रासादवान् भवेत्॥३३॥
शनिराहुयुते तस्मिन् जातस्य च शिलागृहम्।
ऐष्टिकं कुज-केतुभ्यां गुरुणा दारवं गृहम्॥३४॥
तार्णं तु रविणा प्रोक्तं जातस्य भवनं द्विज!।
चन्द्रे त्वनावृते देशे पत्नीयोगः प्रजायते॥३५॥

कारकांश से चतुर्थ भाव में चन्द्र शुक्र से युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक का प्रासाद (पक्का मकान) होता है। यदि उच्चस्थ हो तो जातक राजमहलसदृश भवन वाला होता है। उसमें शनि, राहु का योग हो तो शिला का गृह, मंगल-केतु का योग रहने पर ईटें का गृह, गुरु निष्ठ हो तो लकड़ी का गृह एवं रवि से युक्त हो तो तृण का गृह होता है। कारकांश से चतुर्थ भाव में चन्द्र के रहने से आवरणरहित स्थान में पत्नी के साथ जातक का समागम होता है॥३३-३५॥

पञ्चम स्थान का फल

पञ्चमे कुजराहुभ्यां क्षयरोगस्य सम्भवः।
रात्रिनाथेन दृष्टाभ्यां निश्चयेन प्रजायते॥३६॥
कुजदृष्टौ तु जातस्य पिटकादिगदो भवेत्।
केतुदृष्टौ तु ग्रहणी जलरोगोऽथवा द्विज!॥३७॥
सराहुगुलिके तत्र भयं क्षुद्रविषोद्भवम्।
बुधे परमहंसश्च लगुडी वा प्रजायते॥३८॥
रवौ खड्गधरो जातः कुजे कुन्तायुधी भवेत्।
शनौ धनुर्धरो ज्ञेयो राहौ च लोहयन्त्रवान्॥३९॥
केतौ च घटिकायन्त्री मानवो जायते द्विज!।
भार्गवे तु कविर्वाग्मी काव्यज्ञो जायते जनः॥४०॥

कारकांश से पञ्चम भाव में मंगल तथा राहु स्थित हो तो जातक को क्षयरोग की सम्भावना होती है। यदि उक्त स्थान में उक्त योग हो और उसके चन्द्रमा से अवलोकित रहने पर निश्चय ही क्षयरोग होता है। मंगल के द्वारा दृष्ट हो तो पिड़की आदि रोग का भय रहता है। केतु से दृष्ट होने पर जातक को ग्रहणी अथवा जलोदर रोग होता है। राहुयुक्त गुलिक हो तो जातक को क्षुद्र विष का भय रहता है। बुध से दृष्ट होने पर जातक परमहंस दण्डी होता है। सूर्य हो तो खड्गधारी, मंगल हो तो भाला रखने वाला, शनि हो तो धनुष रखने वाला, राहु से लोहयन्त्रकर्ता, केतु से धटीयन्त्रकर्ता, शुक्र पञ्चमस्थ हो तो कवि, वक्ता एवं काव्यवेत्ता जातक होता है॥३६-४०॥

कारकांश तथा उससे पञ्चम में विशेषता

स्वांशे तत्पञ्चमे वाऽपि चन्द्रेज्याभ्यां च ग्रन्थकृत्।
शुक्रेण किञ्चिदूनोऽसौ ततोऽप्यल्पो बुधेन च॥४१॥

गुरुणा केवलेनैव सर्वविद् ग्रन्थकृत्तथा।
वेदवेदान्तविच्चापि न वाग्मी शाब्दिकोऽपि सन् ॥४२॥
नैयायिकः कुजेनासौ ज्ञेन मीमांसकस्तथा।
सभाजडस्तु शनिना गीतज्ञो रविणा स्मृतः ॥४३॥
चन्द्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञश्च गायकः।
केतुना गणितज्ञोऽसौ राहुणाऽपि तथैव च ॥४४॥
सम्प्रदायस्य सिद्धिः स्याद् गुरुसम्बन्धतो द्विज!।
स्वांशाद् द्वितीयतः केचित् फलमेवं वदन्ति हि ॥४५॥

आत्मकारक या उससे पञ्चम भाव में चन्द्र और गुरु स्थित हो तो जातक ग्रन्थकर्त्ता होता है। शुक्र हो तो उससे थोड़ा कम तथा बुध रहने पर उससे भी कुछ कम ग्रन्थकर्ता होता है। केवल गुरु से ही सर्वज्ञाता, ग्रन्थकर्ता, वेद-वेदान्तों को जानने वाला एवं शब्दशास्त्र का ज्ञाता होता है, परन्तु अधिक वक्ता नहीं होता। मंगल हो तो जातक नैयायिक, बुध हो तो मीमांसक, शनि हो तो सभा में जड (मूक), रवि रहने पर गीतज्ञ (गीत को जानने वाला), चन्द्र से सांख्य, योग, साहित्य का ज्ञाता और गायक होता है। हे द्विज ! यदि इन योगों में गुरु का सम्बन्ध हो तो उसे सम्प्रदाय की सिद्धि प्राप्त होती है। कुछ आचार्य आत्मकारकांश से द्वितीय स्थान से भी उक्त फलों को कहते हैं ॥४१-४५॥

षष्ठ भाव-फल

स्वांशात् षष्ठगते पापे कर्षको जायते जनः।
शुभग्रहेऽलसश्चेति तृतीयेऽपि फलं स्मृतम् ॥४६॥

आत्मकारकांश से षष्ठ स्थान में पापग्रह बैठे हों तो जातक कृषि कार्य करने वाला और शुभ ग्रह बैठे हों तो आलसी होता है। तृतीय भाव से भी इन फलों का विचार करना चाहिए ॥४६॥

सप्तम भाव-फल

द्यूने चन्द्रगुरू यस्य भार्या तस्याऽतिसुन्दरी।
तत्र कामवती शुक्रे बुधे चैव कलावती ॥४७॥
रवौ च स्वकुले गुप्ता शनौ चापि वयोऽधिका।
तपस्विनी रुजाढ्या वा राहौ च विधवा स्मृता ॥४८॥

आत्मकारकांश से सप्तम भाव में चन्द्रमा और गुरु बैठे हों तो जातक की पत्नी अति सुन्दरी होती है। सप्तम में शुक्र हो तो वह कामवती (कामुकता वाली) और बुध हो तो कलावती होती है। सूर्य हो तो उसकी स्त्री अपने वंश में रक्षिता होती है। शनि हो तो वय में अधिक, तपस्विनी, रोगयुक्ता एवं राहु के सप्तमस्थ रहने पर जातक का विधवा पत्नी के साथ संग होता है ॥४७-४८॥

कारकांश से अष्टम भाव-फल

शुभस्वामियुते रन्ध्रे स्वांशाद् दीर्घायुरुच्यते ।
पापेक्षितयुतेऽल्पायुर्मध्यायुर्मिश्रदृग्युते ॥४९॥

कारकांश से अष्टम भाव में शुभ ग्रह और अपने स्वामी से युत या दृष्ट हो तो जातक दीर्घायु होता है। पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक अल्पायु और मिश्रित (शुभ, पाप) ग्रह से युत-दृष्ट होने पर मध्यमयायु होता है ॥४९॥

कारकांश से नवम भाव-फल

कारकांशाच्च नवमे शुभग्रहयुतेक्षिते ।
सत्यवादी गुरौ भक्तः स्वधर्मनिरतो नरः ॥५०॥
स्वांशाच्च नवमे भावे पापग्रहयुतेक्षिते ।
स्वधर्मनिरतो बाल्ये मिथ्यावादी च वार्धके ॥५१॥
नवमे कारकांशाच्च शनि-राहुयुतेक्षिते ।
गुरुद्रोही भवेद् बालः शास्त्रेषु विमुखो नरः ॥५२॥
कारकांशाच्च नवमे गुरुभानुयुतेक्षिते ।
तदाऽपि गुरुद्रोही स्यात् गुरुवाक्यं न मन्यते ॥५३॥
कारकांशाच्च नवमे शुक्रभौमयुतेक्षिते ।
षड्वर्गादिकयोगे तु मरणं पारदारिकम् ॥५४॥
कारकांशाच्च नवमे ज्ञेन्दुयुक्तेक्षिते द्विज ! ।
परस्त्रीसङ्गमाद् बालो बन्धको भवति ध्रुवम् ॥५५॥
नवमे केवलेनैव गुरुणा च युतेक्षिते ।
स्त्रीलोलुपो भवेज्जातो विषयी चैव जायते ॥५६॥

कारकांश से नवम भाव में शुभ ग्रह युत हो या दृष्ट हो तो जातक सत्यवादी एवं अपने कुलानुसार धर्माचरण करने वाला होता है। पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक बाल्यावस्था में स्वधर्माचरण करने वाला; परन्तु वृद्धावस्था में स्वधर्म का त्याग कर मिथ्यावादी होता है। शनि, राहु युत या दृष्ट हो तो जातक गुरुद्रोही और मूर्ख होता है। नवम में गुरु तथा रवि युत या दृष्ट हो तो भी जातक गुरुद्रोही और गुरुवाक्य को नहीं मानता है। कारकांश से नवम में शुक्र या भौम युत हो तो या इनके द्वारा दृष्ट हो या इन्हीं के षड् वर्ग से युक्त हो तो जातक का परस्त्री के कारण मरण होता है। कारकांश से नवम में बुध तथा चन्द्रमा से युत हो या दृष्ट हो तो जातक दूसरे की स्त्री के साथ समागम करने के कारण बन्धक होता है। नवम भाव में केवल गुरु के द्वारा युत या दृष्ट हो तो जातक विषय-वासना का भोगी और स्त्री में आसक्त रहने वाला होता है ॥५०-५६॥

कारकांश से दशम भाव-फल

कारकांशाच्च दशमे शुभखेटयुतेक्षिते ।
स्थिरवित्तो भवेद् बालो गम्भीरो बलबुद्धिमान् ॥५७॥
दशमे कारकांशाच्च पापखेटयुतेक्षिते ।
व्यापारे जायते हानिः पितृसौख्येन वर्जितः ॥५८॥
दशमे कारकांशाच्च बुधशुक्रयुतेक्षिते ।
व्यापारे बहुलाभश्च महत्कर्मकरो नरः ॥५९॥
कारकांशाच्च दशमे रविचन्द्रयुतेक्षिते ।
गुरुदृष्टयुते विप्र! जातको राज्यभाग् भवेत् ॥६०॥

कारकांश से दशम भाव में शुभग्रह बैठे हों तो जातक स्थिर, धनवान, बल तथा बुद्धि से युक्त और गम्भीर होता है। यदि पाप ग्रह से युत या अवलोकित हो तो व्यापार में हानि तथा पितृसुख से रहित होता है। कारकांश से दशम में बुध शुक्र से युत या दोनों से दृष्ट हो तो व्यापार में बहुत लाभ और बड़े-बड़े कार्य को सम्पन्न करने वाला होता है। कारकांश से दशम में सूर्य-चन्द्र युत हो और गुरु से दृष्ट हो तो जातक राजा होता है ॥५७-६०॥

कारकांश से एकादश भाव-फल

स्वांशादेकादशे स्थाने शुभखेटयुतेक्षिते ।
भ्रातृसौख्ययुतो बालः सर्वकार्येषु लाभकृत् ॥६१॥
एकादशे सपापे तु कुमार्गाल्लाभकृन्नरः ।
विख्यातो विक्रमी चैव जायते नाऽत्र संशयः ॥६२॥

कारकांश से एकादश भाव में शुभ ग्रह से युत हो या शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो जातक भ्रातृसौख्य से सम्पन्न होता है और सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करता है। एकादश भाव में पाप ग्रह युत हो या दृष्ट हो तो जातक कुमार्ग से लाभ प्राप्त करता है और विख्यात तथा पराक्रमी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥६१-६२॥

कारकांश से द्वादश भाव-फल

कारकांशाद् व्ययस्थाने सद्ग्रहे सद्व्ययो भवेत् ।
असद्व्ययोऽशुभे ज्ञेयो ग्रहाभावे च सत्फलम् ॥६३॥
कारकांशाद् व्ययस्थाने स्वभोच्चस्थे शुभग्रहे ।
सद्गतिर्जायते तस्य शुभलोकमवाप्नुयात् ॥६४॥
कारकांशाद् व्यये केतौ शुभखेटयुतेक्षिते ।
तदा तु जायते मुक्तिः सायुज्यपदमाप्नुयात् ॥६५॥
मेषे धनुषि वा केतौ कारकांशाद् व्यये स्थिते ।
शुभखेटेन सन्दृष्टे सायुज्यपदमाप्नुयात् ॥६६॥

व्यये च केवले केतौ परयुक्तेक्षितेऽपि वा।
न तदा जायते मुक्तिः शुभलोकं न पश्यति ॥६७॥
रविणा संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते।
शिवभक्तिर्भवेत्तस्य निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥६८॥
चन्द्रेण संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते।
गौर्यां भक्तिर्भवेत्तस्य शक्तिको जायते नरः ॥६९॥
शुक्रेण संयुते केतौ कारकांशाद् व्ययस्थिते।
लक्ष्म्यां सञ्जायते भक्तिर्जातकोऽसौ समृद्धिमान् ॥७०॥
कुजेन संयुते केतौ स्कन्दभक्तो भवेन्नरः।
वैष्णवो बुधसौरिभ्यां गुरुणा शिवभक्तिमान् ॥७१॥
राहुणा तामसीं दुर्गां सेवते क्षुद्रदेवताम्।
भक्तिः स्कन्देऽथ हेरम्बे शिखिना केवलेन वा ॥७२॥
कारकांशाद् व्यये सौरिः पापराशौ यदा भवेत्।
तदाऽपि क्षुद्रदेवस्य भक्तिस्तस्य न संशयः ॥७३॥
पापर्क्षेऽपि शनौ शुक्रे तदाऽपि क्षुद्रसेवकः।
अमात्यकारकात् षष्ठेऽप्येवमेव फलं वदेत् ॥७४॥

आत्मकारकांश नवमांश से द्वादश भाव में शुभग्रह स्थित हो या दृष्ट हो तो जातक सत्कार्य में व्यय करने वाला होता है। द्वादश भाव में पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक असत्कार्य में व्यय करने वाला और अन्त में अधोगति को प्राप्त करने वाला होता है। यदि ग्रहरहित हो तो शुभ फल ही प्राप्त करता है। कारकांश से द्वादश भाव में अपने उच्च का शुभग्रह हो तो जातक शुभ (स्वर्गादि) लोक को प्राप्त करता है। द्वादश में केतु हो और शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक सायुज्य मोक्ष को प्राप्त करता है। कारकांश से व्यय भाव में मेष या धनु का केतु हो और वह शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो भी जातक सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है। व्ययभाव में केवल केतु हो और पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो जातक को शुभ लोक की प्राप्ति नहीं होती। हे द्विजोत्तम! यदि रवि से युक्त केतु व्ययभाव में स्थित हो तो जातक के लिए शिवभक्तिकारक होता है। चन्द्रमा से युत हो तो गौरी, शुक्र से युत हो तो लक्ष्मी, भौम से युत हो तो कार्तिकेय, बुध-शनि से युत हो तो विष्णु, गुरु से युत हो तो शिव एवं राहु से युत हो तो तामसी दुर्गा तथा क्षुद्र देवता में जातक की भक्ति होती है। केवल केतु से युत रहने पर जातक स्कन्द तथा हेरम्ब का भक्त होता है। कारकांश से व्ययभाव में शनि या पाप ग्रह बैठे हों तो जातक क्षुद्र देवता का भक्त होता है; इसमें सन्देह नहीं है। शनि तथा शुक्र के पापराशि में रहने पर भी जातक क्षुद्र देवता का भक्त होता है। आत्म-कारकांश से षष्ठ भाव से भी उक्त फल का विचार करना चाहिए ॥६३-७४॥

कारकांश से विशेष फल

कारकांशात् त्रिकोणस्थे पापखेटद्वये द्विज ! ।
मानवो मन्त्र-तन्त्रज्ञो जायते नाऽत्र संशयः ॥७५॥
पापेन वीक्षिते तत्र जातो निग्राहको भवेत् ।
शुभैर्निरीक्षिते तस्मिन् नरोऽनुग्राहको भवेत् ॥७६॥

कारकांश से त्रिकोण (५, ९) स्थान में दो पापग्रह बैठे हों तो जातक मन्त्र-तन्त्र का ज्ञाता होता है, इसमें सन्देह नहीं है। उसमें भी पाप ग्रह से अवलोकित हो तो जातक निग्रह (दण्ड) कारक होता है और शुभ ग्रह से अवलोकित रहने पर जातक अनुग्रह करने वाला होता है ॥७५-७६॥

शुक्रदृष्टे विधौ स्वांशे रसवादी भवेन्नरः ।
बुधदृष्टे च सद्वैद्यः सर्वरोगहरो भवेत् ॥७७॥
शुक्रदृष्टे सुखे चन्द्रे पाण्डुश्वित्री भवेन्नरः ।
भौमदृष्टे महारोगी रक्तपित्तार्दितो भवेत् ॥७८॥
केतुदृष्टे सुखे चन्द्रे नीलकुष्ठो प्रजायते ।
चतुर्थे पञ्चमे वाऽपि स्थितौ राहु-कुजौ यदि ॥७९॥
क्षयरोगो भवेत्तस्य चन्द्रदृष्टौ तु निश्चितः ।
स्वांशात् सुखे सुते वाऽपि केवलः संस्थितः कुजः ॥८०॥
पिटकादिर्भवेत्तस्य तदा रोगो न संशयः ।
ग्रहणी जलरोगो वा तत्र केतौ स्थिते सति ॥८१॥
स्वर्भानुगुलिकौ तत्र विषवैद्यो विषार्दितः ।
स्वांशकात् पञ्चमे भावे केवले संस्थिते शनौ ॥८२॥
धनुर्विद्याविदो जाता भवन्त्यत्र न संशयः ।
केतौ च केवले तत्र घटिकायन्त्रकारकः ॥८३॥
बुधे परमहंसो वा दण्डी भवति मानवः ।
लोहयन्त्री तथा राहौ रवौ खड्गधरो भवेत् ॥८४॥
केवले च कुजे तत्र जातः कुन्तास्त्रधारकः ।
स्वांशे वा पञ्चमे स्वांशाच्चन्द्रेज्यौ संस्थितौ तदा ॥८५॥
ग्रन्थकर्ता भवेज्जातः सर्वविद्याविशारदः ।
तत्र दैत्यगुरौ किञ्चिदूनग्रन्थकरो भवेत् ॥८६॥
बुधे तत्र ततोऽप्यूनग्रन्थकर्ता प्रजायते ॥८६½॥

आत्मकारक नवमांश में चन्द्रमा हो और उसमें शुक्र से अवलोकित हो तो जातक रसशास्त्र को जानने वाला और बनाने वाला होता है। उस पर बुध की दृष्टि हो तो जातक

उच्च कोटि का वैद्य होता है। यदि आत्मकारकांश से चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा स्थित हो और उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो जातक श्वेत कुष्ठ रोग से पीड़ित होता है। मंगल द्वारा अवलोकित हो तो रक्त-पित्त से महारोगी, चतुर्थ भाव में स्थित चन्द्रमा पर केतु से दृष्ट हो तो नीलकुष्ठी, चतुर्थ या पञ्चम में राहु-मंगल हो तो क्षयरोगी और यदि चन्द्रमा से अवलोकित हो तो निश्चित रूप से क्षय रोग से ग्रस्त होता है। कारकांश से चतुर्थ, पञ्चम में केवल भौम हो तो जातक को पिड़की रोग होता है, इसमें सन्देह नहीं है। यदि केवल केतु स्थित हो तो उसे संग्रहणी या जलोदर रोग होता है। राहु तथा गुलिक स्थित हो तो विष से पीड़ित या विषवैद्य होता है। कारकांश से पञ्चम भाव में शनि हो तो जातक धनुर्विद्या में दक्ष, केवल केतु हो तो घड़ी बनाने वाला एवं बुध हो तो परमहंस या दण्ड़ी होता है। राहु हो तो जातक लौहयन्त्रकारक और रवि हो तो खड्गधारी होता है। केवल भौम हो तो जातक भाला रखने वाला होता हैं। आत्मकारकांश अथवा उससे पञ्चम भाव में चन्द्रमा एवं गुरु स्थित हों तो जातक ग्रन्थकर्त्ता के साथ-साथ समस्त क्रियाओं का ज्ञाता होता है; लेकिन यदि उक्त स्थान में ही शुक्र स्थित होता चन्द्रमा एवं गुरु के फल से किञ्चित् न्यून और बुध हो तो शुक्र से भी किञ्चित् न्यून फलभागी होता है अर्थात् शुक्र एवं बुध की उपस्थिति में अपेक्षया कम ग्रन्थकर्त्ता एवं कम क्रियाओं का ज्ञाता होता है ॥७७-८६$\frac{१}{२}$॥

पञ्चम भाव में पुनः विशेष फल

तत्र शुक्रे कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च प्रजायते ॥८७॥
सर्वविद् ग्रन्थिको जीवे न वाग्मी च सभादिषु।
शब्दज्ञश्च विशेषेण वेदवेदान्तवित्तथा ॥८८॥
सभाजडो भवेद् बाल उक्तस्थानगते शनौ।
मीमांसको भवेन्नूनमुक्तस्थानगते बुधे ॥८९॥
स्वांशे वा पञ्चमे भौमे जातो नैयायिको भवेत्।
चन्द्रे च सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञश्च गायकः ॥९०॥
रवौ वेदान्तविच्चैव गीतज्ञश्च प्रजायते।
केतौ च गणितज्ञः स्याज्ज्योतिःशास्त्रविशारदः ॥९१॥
सम्प्रदायस्य संसिद्धिर्गुरुसम्बन्धतो भवेत्।
द्वितीये च तृतीये च स्वांशादेवं विचारयेत् ॥९२॥
भावे सूक्ष्मफलं ज्ञात्वा जातकस्य फलं वदेत् ॥९२$\frac{१}{२}$॥

आत्मकारकांश या उससे पञ्चम भाव में शुक्र स्थित हो तो जातक कवि, वाचाल और काव्य को जानने वाला होता है। यदि गुरु हो तो जातक सभी विषयों का ज्ञाता, ग्रन्थकर्ता, व्याकरण का विशेष ज्ञाता एवं वेद-वेदान्त को जानने वाला होने पर भी सभा में अधिक नहीं बोल पाता। उक्त स्थान में बुध हो तो जातक मीमांसक होता है। कारकांश से पञ्चम भौम हो तो जातक नैयायिक होता है, चन्द्र हो तो सांख्य-योग का ज्ञाता होता है

और साहित्य का ज्ञाता तथा गायक होता है, रवि हो तो वेदान्त गाने वाला, केतु हो तो ज्योतिष शास्त्र में अग्रगण्य और ज्योतिष का ज्ञाता होता है। उक्त स्थान में गुरु से सम्बन्ध हो तो जातक को सम्प्रदाय की सिद्धि प्राप्त होती है। इसी प्रकार द्वितीय तथा तृतीय भाव से भी उक्त फल का विचार करना चाहिए। सूक्ष्म फल जानकर ही जातक के शुभाशुभ फल का आदेश करना चाहिए ॥८७-९२½॥

केतौ स्वांशाद् द्वितीये वा तृतीये स्तब्धवाग् भवेत् ॥९३॥
पापदृष्टे विशेषेण मानवो वक्तुमक्षमः ॥९३½॥

आत्मकारकांश से द्वितीय भाव या तृतीय भाव में केतु स्थित हो तो जातक बोलने में असमर्थ होता है। यदि पाप ग्रह से दृष्ट हो तो जातक विशेष प्रकार से अक्षम होता है ॥९३½॥

केमद्रुम योग

स्वांशाल्लग्नात् पदाद् वाऽपि द्वितीयाष्टमभावयोः ॥९४॥
केमद्रुमः पापसाम्ये चन्द्रदृष्टौ विशेषतः।
अत्राऽध्याये च ये योगाः सफलाः कथिता मया ॥९५॥
योगकर्तृदशायान्ते ज्ञेयाः सर्वे फलप्रदाः।
एवं दशाप्रदाद्राशेर्द्वितीयाष्टमयोर्द्विज ! ॥९६॥
ग्रहसाम्ये च विज्ञेयो योगः केमद्रुमोऽशुभः।
दशाप्रारम्भसमये सलग्नान् साधयेद् ग्रहान् ॥९७॥
ज्ञेयस्तत्रापि योगोऽयं पापसाम्येऽथ रन्ध्रयोः।
एवं तन्वादिभावानां सूर्यादीनां नभःसदाम् ॥९८॥
तत्तत्स्थित्यनुसारेण फलं वाच्यं विपश्चिता।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कारकांशफलं मया ॥९९॥

हे द्विज ! आत्मकारक नवमांश से या लग्न से या पद से द्वितीय-अष्टम भाव में तुल्य पापग्रह हो तो केमद्रुमनामक योग होता है। यदि चन्द्रमा से अवलोकित हो तो विशेष अशुभकारक योग होता है। इस अध्याय में जो योग बताये गये हैं, उनके फल तत् तत् राशि और ग्रह की दशा में प्राप्त होते हैं। दशारम्भ समय में स्पष्ट ग्रह और लग्नादि द्वादश भाव स्पष्ट करना चाहिए। यदि जन्मकालसदृश ही योग बनता हो तो पूर्ण फल प्राप्त होता है; अन्यथा स्वल्प फल होता है। ज्योतिषियों को तत् तत् स्थिति के अनुरूप ही शुभाशुभ फल बताना चाहिए। इस प्रकार मैंने कारकांश का फल संक्षिप्त रूप में बतलाया है ॥९४-९९॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कारकांशफलाध्यायः ॥३४॥

अथ योगकारकाध्यायः ॥३५॥

पराशर उवाच

कारकांशवशादेवं फलं प्रोक्तं मया द्विज ! ।
अथ भावाधिपत्येन ग्रहयोगफलं शृणु ॥१॥
केन्द्राधिपतयः सौम्या न दिशन्ति शुभं फलम् ।
क्रूरा नैवाऽशुभं कुर्युः शुभदाश्च त्रिकोणपाः ॥२॥
लग्नं केन्द्रत्रिकोणत्वाद् विशेषेण शुभप्रदम् ।
पञ्चमं नवमं चैव विशेषधनमुच्यते ॥३॥
सप्तमं दशमं चैव विशेषसुखमुच्यते ।
त्रिषडायाधिपाः सर्वे ग्रहाः पापफलाः स्मृता ॥४॥
व्ययद्वितीयरन्ध्रेशाः साहचर्यात् फलप्रदाः ।
स्थानान्तरानुरोधात्ते प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ॥५॥
तत्र भाग्यव्ययेशत्वाद्रन्ध्रेशो न शुभप्रदः ।
त्रिमदायाधिपत्येऽथो कोणपत्वे तु सत्फलः ॥६॥
उक्तेष्वेषु बली योगो निर्बलस्य प्रबाधकः ।
न रन्ध्रेशत्वदोषोऽत्र सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत् ॥७॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विज ! पूर्व में मैंने कारकांश से फल कहा । अब मैं ज्ञान के आधिपत्य से ग्रहों के योगजन्य फल कहता हूँ; सूनो । यदि शुभ ग्रह (पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) केन्द्र के स्वामी होते हैं तो वे शुभ फल को नहीं देते और पाप ग्रह (रवि, शनि, भौम) केन्द्रपति होते हैं तो वे भी पापफल को नहीं देते हैं; लेकिन पूर्वोक्त समस्त (शुभ या पाप) ग्रह त्रिकोण के अधिपति होते हैं तो शुभ फल ही प्रदान करते हैं। लग्न केन्द्र तथा त्रिकोण दोनों कहलाता है, अतः वह शुभ स्थान है, इसीलिए उसका स्वामी शुभ फलकारक होता है। पञ्चम तथा नवम भाव विशेष धनकारक तथा सप्तम, दशम भाव विशेष सुखकारक कहलाते हैं। ३, ६, ११ भावों के अधिपति होने से सभी ग्रह पापफलदायक होते हैं। २, १२, ८ भावों के स्वामी होने से सभी ग्रह साहचर्य से (जैसे ग्रह के साथ रहते हैं वैसे) फल देते हैं और ये ग्रह अपने-अपने गुणों में उत्तरोत्तर बली होते हैं। अर्थात् ४ से ७, ७ से १०; इसी प्रकार १ से ५, ५ से ९, ३ से ६, ६ से ११, १२ से २ एवं २ से ८ बली स्थान होते हैं। इनमें भाग्य (नवम) के व्ययाधिप होने के कारण अष्टमेश अशुभ फलकारक होता है। यदि वह अष्टमेश ३, ७, ११ स्थान का भी अधिपति हो तो विशेष अशुभप्रद होता है। यदि वह (अष्टमेश) त्रिकोण (१. ५, ९) स्थान का भी स्वामी हो तो शुभ फलकारक होता है। इस कारण से सूर्य-चन्द्रमा के अष्टमेशत्व होने का विशेष

दोष नहीं है; क्योंकि सूर्य-चन्द्रमा दो स्थान के स्वामी नहीं होते; बल्कि उनका एक-एक स्थान ही निर्धारित है। पूर्वोक्त स्थानों में प्रबल स्थान का स्वामी अपने से निर्बल स्थान के स्वामी के फल का अवरोधक होकर अपना ही फल प्रदान करता है ॥१-७॥

निम्न चक्र से स्पष्ट है—

१	५	९	शुभफलकारक स्थान
४	७	१०	शुभाशुभहीन स्थान
३	६	११	अशुभफलदायक स्थान
१२	२	८	साहचर्यवश फलदायक
अल्प बली स्थान	मध्य बली स्थान	पूर्ण बली स्थान	

स्वाभाविक शुभ और अशुभ ग्रह एवं बलाऽबल

गुरुशुक्रौ शुभौ प्रोक्तौ चन्द्रो मध्यम उच्यते।
उदासीनो बुधः ख्यातः पापा रव्यार्किभूमिजाः ॥८॥
पूर्णेन्दुज्ञेज्यशुक्राश्च प्रबला उत्तरोत्तरम्।
क्षीणेन्द्वर्कार्किभूपुत्राः प्रबलाश्च यथोत्तरम् ॥९॥
केन्द्राधिपत्यदोषो यः शुभानां कथितो हि सः।
चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणां प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम् ॥१०॥

बृहस्पति तथा शुक्र ये दोनों ग्रह स्वाभाविक रूप से शुभ ग्रह हैं। चन्द्रमा मध्यम (शुभ तथा अशुभ) ग्रह है एवं बुध उदासीन है। सूर्य, शनि, मंगल स्वभाव से क्रूर ग्रह हैं। इन ग्रहों में पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र उत्तरोत्तर प्रबल बली होते हैं तथा क्षीण चन्द्रमा, रवि, शनि और मंगल उत्तरोत्तर बली (क्रूर) हैं। शुभ ग्रहों में जो केन्द्राधिपत्य दोष कहा गया है, उनमें क्रम से चन्द्रमा, बुध, गुरु एवं शुक्र उत्तरोत्तर प्रबल दोषकारक होते हैं ॥८-१०॥

राज्यसुखादि योगकारक

केन्द्रकोणपती स्यातां परस्परगृहोपगौ।
एकभे द्वौ स्थितौ वाऽपि ह्येकभेऽन्यतरः स्थितः ॥११॥
पूर्णदृष्ट्येक्षितौ वाऽपि मिथो योगकरौ तदा।
योगेऽस्मिन् जायते भूपो विख्यातो वा जनो भवेत् ॥१२॥

केन्द्राधिपति और कोणाधिपति—ये दोनों यदि परस्पर स्थान में बैठे हों या दोनों मिलकर एक स्थान में स्थित हों या अन्य किसी एक स्थान में हों अथवा दोनों एक-दूसरे को परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो योगकारक होते हैं। ऐसे योग में जिस जातक का जन्म हो वह भूप (राजा) अथवा विख्यात (विद्वान्) मनुष्य होता है अर्थात् ऐसे योग में समुत्पन्न व्यक्ति विद्वान्, प्रसिद्ध एवं प्रतिभाशाली होता है ॥११-१२॥

विशेष

कोणेशत्वे यदैकस्य केन्द्रेशत्वं च जायते।
केन्द्रे कोणे स्थितो वाऽसौ विशेषाद्योगकारकः ॥१३॥

केन्द्राधिपति तथा त्रिकोणाधिपति एक ही ग्रह होकर केन्द्र या त्रिकोण में बैठा हो तो विशेष योगकारक होता है ॥१३॥

पुनः विशेष

केन्द्रेशत्वेन पापानां या प्रोक्ता शुभकारिता।
सा त्रिकोणाधिपत्येऽपि न केन्द्रेशत्वमात्रतः ॥१४॥

पापग्रह के केन्द्राधिपति होने पर जो शुभ फल कहा गया है वह त्रिकोणाधिपति के रहने पर भी प्राप्त होता है; केवल केन्द्राधिपति मात्र से शुभ फल नहीं प्राप्त होता। अर्थात् केन्द्राधिपति होने से केवल पापत्व का नाश होता है, लेकिन कोणाधिपति भी हो तभी पापत्व का नाश होकर शुभत्व प्रदान करने की क्षमता होती है ॥१४॥

पुनः विशेष

केन्द्रकोणाधिपावेव पापस्थानाधिपौ यदा।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥१५॥

केन्द्र त्रिकोणाधिपति होकर पापस्थलाधिपति भी हो तो उन दोनों के सम्बन्धमात्र से शुभ नहीं होता, बल्कि केवल उच्चादि स्थान में स्थित हो तभी योगकारक होता है ॥१५॥

राहु-केतु में विशेषता

यद्भावेशयुतौ वाऽपि यद्यद्भावसमागतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ॥१६॥

राहु और केतु—ये दोनों जिस भावेश के साथ रहते हैं अथवा जिस-जिस भाव में रहते हैं; उसी भावेश या भाव के अनुसार फल प्रदान करने में सक्षम होते हैं ॥१६॥

राहु-केतु में योगकारिता

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणाढ्यौ दृष्टौ वा योगकारकौ ॥१७॥

यदि राहु तथा केतु केन्द्र, त्रिकोण में स्थित हो और केन्द्र त्रिकोणपति से युत या दृष्ट हो तो ये भी योगकारक होते हैं ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

कस्मिंल्लग्ने प्रजातस्य के ग्रहा योगकारकाः।
के चाऽशुभप्रदाः खेटा कृपया वद मे मुने ॥१८॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुने! आपने जो पूर्वोक्त योग कहा है तदनुरूप किस लग्न में

कौन-कौन ग्रह योगकारक हैं और कौन–कौन ग्रह अशुभकारक हैं, ये सभी कृपा करके मुझे स्पष्ट करने का कष्ट करें ॥१८॥

मेषादि द्वादश लग्नों में उत्पन्न मनुष्यों के शुभाशुभ ग्रह

पराशर उवाच

यथा पृष्टं त्वया विप्र! तथोदाहरणं ब्रुवे।
रन्ध्रेशत्वेऽपि भूपुत्रो भवेच्छुभसहायवान् ॥१९॥
मन्दसौम्यसिताः पापाः शुभौ गुरुदिवाकरौ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः ॥२०॥
पारतन्त्र्येण जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम्।
शुक्रः साक्षान्निहन्ता स्यान्मारकत्वेन लक्षितः ॥२१॥
मन्दादयोऽपि हन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः।
मेषलग्नोद्भवस्यैवं फलं ज्ञेयं द्विजोत्तम! ॥२२॥

महर्षि पराशर ने कहा, हे विप्र ! जैसा आपने पूछा है वैसा अब मैं उदाहरण के द्वारा बतलाता हूँ। मेष लग्न में समुत्पन्न व्यक्तियों के लिए भौम अष्टमेश होने पर भी (लग्नेश होने के कारण) अशुभ फल नहीं देता अर्थात् शुभ फलदायक ग्रह का ही सहायक होता है, यानी शुभकारक ग्रह की दशा एवं स्वकीय अन्तर्दशा में शुभ फल को बढ़ाने में सहायक ही होता है। पाप ग्रह की दशा में पाप फल कम करता है। शनि, बुध और शुक्र तीनों पाप फलदायक होते हैं। सूर्य और गुरु शुभ फलकारक होते हैं। शनि, गुरु केवल योगमात्र से ही शुभ फलदायक नहीं हो सकता। गुरु पारतन्त्र्य (दूसरे पाप ग्रह के सम्बन्ध होने से) निश्चित रूप से पाप फलदायक होते हैं। मुख्य रूप से शुक्र मारक होता है। शनि आदि क्रूर ग्रह भी पापी होते हैं। इसलिए मारकेश (शुक्र) से सम्बन्ध होने पर शनि एवं बुध भी मारक होते हैं। इस प्रकार मेष लग्न में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का फल समझना चाहिए ॥१९-२२॥

पूर्वोक्त श्लोकों को देखने से स्पष्ट होता है कि मेष लग्न में अष्टमेश भौम होता है (जो चक्र में स्पष्ट है); वह अशुभ कहा गया है। परन्तु यदि कोण (१,५, ९) केन्द्राधिपति न हो तब यहाँ लग्नपति होने के कारण भौम शुभ फलकारक ही हुआ। यह भौम प्रत्यक्ष शुभदायक न होकर, शुभ फल का सहायक होता है। शनि केन्द्र (१०) का स्वामी होता है, अतः एक तरफ से तो पापत्व नष्ट हो गया; परन्तु दूसरी तरफ शनि ११ का स्वामी भी होता है, अतः शनि पापी ही रह गया। बुध ३।६ का स्वामी होता है, ३।६ स्थान पाप स्थान है, अतः बुध पापी हुआ। सूर्य त्रिकोण का स्वामी है; अतः शुभ है। गुरु व्ययेश और त्रिकोणेश (९) भी है। त्रिकोणेश

२ १२
३ १ ११
४ १०
५ ७ ९
६ ८

होना शुभ है, परन्तु व्ययेश होना शुभ नहीं है। यदि व्ययेश और पाप ग्रह का साहचर्य (सहयोग) होगा तो पाप फल ही देगा। इसी प्रकार से वृषादि लग्नों का भी जान लेना चाहिए।

वृष लग्नोत्पन्न जातक के शुभाशुभ फल

जीवशुक्रेन्दवः पापाः शुभौ शनिदिवाकरौ।
राजयोगकरः सौरिर्बुधस्त्वल्पशुभप्रदः ॥२३॥
जीवादयो कुजश्चापि सन्ति मारकलक्षणाः।
वृषलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥२४॥

वृष लग्न में उत्पन्न जातक के लिए गुरु, शुक्र, चन्द्र—ये ग्रह पाप फलदायक होते हैं। शनि तथा सूर्य शुभ फलप्रद, शनि राजयोगकारक, बुध स्वल्प शुभप्रद तथा गुरु, शुक्र और मंगल ग्रह मारक होते हैं ॥२३-२४॥

मिथुन लग्न में उत्पन्न जातक का फल

भौमजीवारुणाः पापाः एक एव कविः शुभः।
शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा ॥२५॥
शशी मुख्यनिहन्ताऽसौ साहचर्याच्च पाकदः।
द्वन्द्वलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि पण्डितैः ॥२६॥

मिथुन लग्न में उत्पन्न जातक के लिए भौम, बृहस्पति और सूर्य पाप फलदायक एवं शुक्र शुभ फलदायक है। शनि नवमाधिप होता है; फिर भी गुरु के साथ योग होने से मेष लग्न के सदृश फलदायक होता है अर्थात् पूर्ण फलद नहीं होता। चन्द्रमा मुख्य निहन्ता (मारक) होता है। इस प्रकार विचार कर पण्डितों को फल बताना चाहिए ॥२५-२६॥

कर्क लग्नोत्पन्न जातक का शुभाशुभ फल

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुतेज्येन्दवः शुभाः।
पूर्णयोगकरः साक्षान्मङ्गलो मङ्गलप्रदः ॥२७॥
निहन्ताऽर्कसुतोऽर्कस्तु साहचर्यात् फलप्रदः।
कर्कलग्नोद्भवस्यैवं फलं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥२८॥

कर्क लग्न में उत्पन्न जातक के लिए शुक्र, बुध पाप फलदायक एवं भौम, गुरु, चन्द्र शुभप्रद होते हैं। इनमें से मङ्गल पूर्णयोगकारक है, अतः मङ्गलदायक है। शनि पूर्ण मारक होता है और सूर्य साहचर्य से फलदायक होता है ॥२७-२८॥

सिंह लग्न में उत्पन्न जातक का शुभाशुभ फल

सौम्यशुक्रार्कजाः पापाः कुजेज्यार्काः शुभावहाः।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः ॥२९॥
मारकस्तु शनिश्चन्द्रः साहचर्यात् फलप्रदः।
सिंहलग्ने प्रजातस्य फलं ज्ञेयं विपश्चिता ॥३०॥

सिंह लग्न में समुत्पन्न जातक के लिए बुध, शुक्र, शनि पाप फलदायक एवं भौम, गुरु और सूर्य शुभ फलदायक होते हैं। परन्तु गुरु और शुक्र सम्बन्धमात्र से शुभ फलदायक नहीं होता। शनि मारक होता है और चन्द्रमा साहचर्य से शुभाशुभ फल को प्रदान करने वाला होता है ॥२९-३०॥

कन्या लग्न में उत्पन्न जातक का शुभाशुभ फल

कुजजीवेन्दवः पापा बुध-शुक्रौ शुभावहौ।
भार्गवेन्दुसुतावेव भवेतां योगकारकौ ॥३१॥
मारकोऽपि कविः सूर्यः साहचर्यफलप्रदः।
कन्यालग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥३२॥

कन्या लग्न में उत्पन्न जातक के लिए भौम, बृहस्पति एवं चन्द्रमा पापफलप्रद तथा बुध-शुक्र शुभ फलप्रद और शुक्र, बुध योगकारक होते हैं। शुक्र मारक भी है एवं सूर्य साहचर्य से शुभाशुभ फलदायक होता है। इस प्रकार विचार कर विद्वान् को फल कहना चाहिए ॥३१-३२॥

तुलालग्न में उत्पन्न जातक का शुभाशुभ फल

जीवार्कभूसुताः पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्रतत्सुतौ ॥३३॥
कुजो निहन्ति जीवाद्याः पापा मारकलक्षणाः।
शुक्रः समः फलान्येवं विज्ञेयानि तुलोद्भवे ॥३४॥

तुला लग्न में जन्म लेने वालों के लिए बृहस्पति, सूर्य, भौम पाप फलदायक एवं शनि, बुध शुभ फलदायक होते हैं। चन्द्रमा तथा बुध—दोनों ग्रह राजयोगप्रद होते हैं। भौम मारक तथा गुरु आदि पाप ग्रह भी मारक लक्षण वाले होते हैं, लेकिन शुक्र सम होता है ॥३३-३४॥

वृश्चिक लग्न में उत्पन्न जातक का फल

सितज्ञशनयः पापाः शुभौ गुरुनिशाकरौ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥३५॥
कुजः समः सिताद्याश्च पापा मारकलक्षणाः।
एवं फलं च विज्ञेयं वृश्चिकोदयजन्मनः ॥३६॥

वृश्चिक लग्न में उत्पन्न जातक के लिए शुक्र, बुध, शनि पाप फलदायक, गुरु और चन्द्र शुभकारक एवं सूर्य-चन्द्रमा योगकारक होते हैं। भौम सम एवं शुक्र आदि पापी ग्रह मारक लक्षण वाले होते हैं। इस प्रकार फल जानकर कहना चाहिए ॥३५-३६॥

धनु लग्न में समुत्पन्न जातक का फल

एक एव कविः पापः शुभौ भौमदिवाकरौ।

योगो भास्करसौम्याभ्यां निहन्ता भास्करात्मजः ॥३७॥
गुरुः समफलः ख्यातः शुक्रो मारकलक्षणः ।
धनुर्लग्नोद्भवस्यैवं फलं ज्ञेयं विपश्चिता ॥३८॥

धन लग्न में उत्पन्न होने वाले के लिए शुक्र पाप फलदायक एवं भौम, सूर्य शुभकारक तथा सूर्य और बुध—ये दोनों ग्रह योगकारक और शनि मारक होता है। बृहस्पति सम फलदायक एवं शुक्र मारक लक्षण वाला होता है। ऐसा फल विद्वानों को जानना चाहिए ॥३७-३८॥

मकर लग्न में उत्पन्न जातक का फल

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
मन्दः स्वयं न हन्ता स्याद् घ्नन्ति पापाः कुजादयः ॥३९॥
सूर्यः समफलः प्रोक्तः कविरेकः सुयोगकृत् ।
मृगलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥४०॥

मकर लग्न में समुत्पन्न जातकों को भौम, गुरु, चन्द्रमा पाप फलप्रद शुक्र एवं बुध शुभ फलप्रद होता है। इनके लिए शनि (लग्नाधिप होने के कारण) स्वयं मारक नहीं होता; बल्कि भौमादि पाप ग्रह मारक होते हैं। सूर्य सम फलकारक तथा शुक्र सुयोगकारक होता है। इस प्रकार विद्वानों को फल कहना चाहिए ॥३९-४०॥

कुम्भ लग्नोत्पन्न जातक का फल

जीव-चन्द्र-कुजाः पापाः शुक्रसूर्यात्मजौ शुभौ ।
राजयोगकरो ज्ञेयः कविरेव बृहस्पतिः ॥४१॥
सूर्यो भौमश्च हन्तारो बुधो मध्यफलः स्मृतः ।
कुम्भलग्नोद्भवस्यैव फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥४२॥

गुरु, चन्द्रमा, भौम पाप फलप्रद एवं शुक्र, शनि शुभ फलदायक तथा एकमात्र शुक्र राजयोगकारक होता है। इनके लिए गुरु, सूर्य एवं भौम मारक और बुध मध्यफलदायक होता है; इस प्रकार कुम्भ लग्न में उत्पन्न जातक का फल विद्वानों को कहना चाहिए ॥४१-४२॥

मीन लग्नोत्पन्न जातक का फल

मन्दशुक्रांशुमत्सौम्याः पापा भौमविधू शुभौ ।
महीसुतगुरू योगकारकौ च महीसुतः ॥४३॥
मारकोऽपि न हन्ताऽसौ मन्दज्ञौ मारकौ स्मृतौ ।
मीनलग्नोद्भवस्यैवं फलानि परिचिन्तयेत् ॥४४॥

मीन लग्न में उत्पन्न जातक के लिए शनि, शुक्र, सूर्य एवं बुध पाप फलदायक; भौम, चन्द्रमा शुभकारक एवं भौम-गुरु योगकारक होता है। साथ ही भौम मारक होने पर

भी इनके लिए स्वयं मारक नहीं होता, बल्कि शनि, बुध मारक होते हैं। इस प्रकार मीन लग्न में समुत्पन्न जातक का फल-चिन्तन करना चाहिए ।।४३-४४।।

एवं भावाधिपत्येन जन्मलग्नवशादिह ।
शुभत्वमशुभत्वं च ग्रहाणां प्रतिपादितम् ।।४५।।
अन्यानपि पुनर्योगान् नाभसादीन् विचिन्त्य वै ।
देहिनां च फलं वाच्यं प्रवक्ष्यामि च तानहम् ।।४६।।

इस प्रकार जन्मलग्न के द्वारा और भावाधिप के अनुसार ग्रहों के शुभत्व तथा अशुभत्व को मैंने प्रतिपादित किया है। इससे भिन्न नाभस आदि योग देखकर भी प्राणियों के शुभाशुभत्व फल का निरूपण करना चाहिए। अब मैं आगे उन्हीं (नाभस) योगों को कहता हूँ ।।४५-४६।।

।। इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां योगकारकाध्यायः ।।३५।।

अथ नाभसयोगाध्यायः ॥३६॥

पराशर उवाच

अधुना नाभसा योगाः कथ्यन्ते द्विजसत्तम !।
द्वात्रिंशत् तत्प्रभेदास्तु शतघ्नाष्टादशोन्मिताः ॥१॥
आश्रयाख्यास्त्रयो योगा दलसंज्ञं द्वयं ततः।
आकृतिर्विंशतिः संख्याः सप्त योगाः प्रकीर्तिताः ॥२॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! अब मैं नाभस योग को कहता हूँ। उसके ३२ भेद एवं १८०० प्रभेद हैं। उन ३२ भेदों में से ३ आश्रययोग हैं, २ दलयोग हैं, २० आकृतियोग हैं एवं ७ संख्यायोग कहे गये हैं ॥१-२॥

नाभस योगों के नाम

रज्जुश्च मुसलश्चैव नलश्चेत्याश्रयास्त्रयः।
मालाख्यः सर्पसंज्ञश्च दलयोगौ प्रकीर्तितौ ॥३॥
गदाख्यः शकटाख्यश्च शृङ्गाटक-विहङ्गमौ।
हल-वज्र-यवाश्चैव कमलं वापियूपकौ ॥४॥
शर-शक्ति-दण्ड-नौका-कूट-च्छत्र-धनूंषि च।
अर्धचन्द्रस्तु चक्रं च समुद्रश्चेति विंशतिः ॥५॥
संख्याख्या-वल्लकी-दाम-पाश-केदार-शूलकाः।
युगो गोलश्च सप्तैते युक्ता दन्तमिता द्विज ! ॥६॥

नाभस के ३२ भेदों में से रज्जु, मुसल तथा नल—ये ३ आश्रय योग हैं। माला एवं सर्प—ये दो दलयोग कहे गये हैं। गदा, शकट, शृङ्गाटक, विहङ्गम (पक्षी), हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र एवं समुद्र—ये २० आकृतियोग कहे गये हैं। बल्लकी, दाम, पाश, केदार, शूल, युग और गोल—ये ७ संख्यायोग कहे गये हैं। इस प्रकार ये सभी ३२ नाभस योग कहलाते हैं ॥३-६॥

आश्रययोग के लक्षण

सर्वैश्चरे स्थितै रज्जुः स्थिरस्थैर्मुसलः स्मृतः।
नलाख्यो द्विस्वभावस्थैराश्रयाख्या इमे स्मृताः ॥७॥

समस्त ग्रह चर (१, ४, ७, १०) राशि में बैठे हों तो **रज्जु** नामक योग होता है। सभी ग्रह स्थिर (२, ५, ८, ११) राशि में स्थित हों तो **मुसल** नामक योग होता है और सभी ग्रह द्विस्वभाव (३, ६, ९, १२) राशि में हों तो **नल** नामक योग होता है। ये सब चरादि राशियों के आश्रित होने के कारण **आश्रययोग** कहलाते हैं ॥७॥

दलयोग के लक्षण

केन्द्रत्रयगतैः सौम्यैः पापैर्वा दलसंज्ञकौ ।
क्रमान्मालाभुजङ्गाख्यौ शुभाऽशुभफलप्रदौ ॥८॥

३ केन्द्र में समस्त शुभ ग्रह हों या ३ केन्द्र में समस्त पाप ग्रह हों तो क्रम से वे माला एवं सर्प योगनामक **दलयोग** कहलाते हैं। ये योग शुभ और अशुभ फलदायक होते हैं ॥८॥

विशेष— केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञजीवैः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम् ।
सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ ॥

इस वादरायण के वचनानुसार बुध, गुरु, शुक्र—ये तीनों यदि तीन केन्द्र में हों तथा पाप ग्रह केन्द्र से अन्यत्र हो तभी **माला योग** होता है। इसी प्रकार रवि, शनि तथा भौम—ये ३ केन्द्र में हों और शुभ ग्रह केन्द्र से अन्य स्थानों में हो तभी **सर्पयोग** कहलाता है।

आकृति योगों के लक्षण

आसन्नकेन्द्रद्वयगैः सर्वैर्योगो गदाह्वयः ।
शकटं लग्नजायास्थैः खाम्बुगैर्विहगः स्मृतः ॥९॥
योगः शृङ्गाटकं नाम लग्नात्मजतपःस्थितैः ।
अन्यस्थानात् त्रिकोणस्थैः सर्वैर्योगो हलाभिधः ॥१०॥
लग्नजायास्थितैः सौम्यैः पापाख्यैः खाम्बुसंस्थितैः ।
योगो वज्राभिधः प्रोक्तः विपरीतस्थितैर्यवः ॥११॥

समीपस्थ दो केन्द्र में सभी ग्रह बैठे हों तो **गदा** नामक योग होता है। लग्न तथा सप्तम में समस्त ग्रह हों तो **शकट** नामक योग होता है। चतुर्थ तथा दशम स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **विहग** (पक्षी) नामक योग होता है। यदि लग्न से त्रिकोण (१, ५, ९) स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **शृङ्गाटक** योग होता है। लग्न से भिन्न स्थान से त्रिकोण (२, ६, १० अथवा ३, ७, ११ वाँ, इस प्रकार से किसी तीन स्थान) में सभी ग्रह बैठे हों तो **हल** नामक योग होता है। लग्न, सप्तम में सभी शुभ ग्रह बैठे हों एवं चतुर्थ दशम में सभी पाप ग्रह बैठे हों तो **वज्र** नामक योग होता है। विपरीत होकर बैठे हों तो **यव** नामक योग होता है ॥९-११॥

कमल तथा वापी योग के लक्षण

सर्वकेन्द्रगतैः सर्वैर्मिश्रैः कमलसंज्ञकः ।
केन्द्रादन्यत्रगैः सर्वैर्योगो वापीसमाह्वयः ॥१२॥

यदि सभी ग्रह चारो केन्द्र में ही स्थित हों तो **कमल** नामक योग होता है। यदि सभी ग्रह केन्द्र से भिन्न स्थानों (पणफर तथा आपोक्लिम) में ही बैठे हों तो **वापी** नामक योग होता है ॥१२॥

यूप, शर, शक्ति और दण्डयोगों के लक्षण

यूपो लग्नाच्चतुर्भस्थैः शरस्तुर्याच्चतुर्भगैः ।
शक्तिर्मदाच्चतुर्भस्थैर्दण्डो मध्याच्चतुर्भगैः ॥१३॥

लग्न से लगातार ४ स्थानों में सभी ग्रह बैठे हों तो **यूप** नामक योग होता है। चतुर्थ से ४ स्थान में सभी ग्रह बैठे हों तो **शर** और सप्तम से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **शक्ति** नामक योग होता है। दशम स्थान से ४ स्थान में सभी ग्रह हों तो **दण्ड** नामक योग होता है ॥१३॥

नौका-कूट-छत्र और चाप योगों के लक्षण

लग्नात् सप्तमगैर्नौका कूटस्तुर्याच्च सप्तमैः ।
छत्राख्यः सप्तमादेवं चापं मध्याद् भसप्तगैः ॥१४॥

लग्न से लगातार ७ सात स्थान में सभी ग्रह हों तो **नौका** नामक योग होता है। चतुर्थ स्थान से सात स्थान में सभी ग्रह स्थित हों तो **कूट** नामक योग होता है। सप्तम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह स्थित हों तो **छत्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार दशम स्थान से सात स्थानों में सभी ग्रह बैठे हों तो **चाप** नामक योग होता है ॥१४॥

चक्र एवं समुद्रयोग के लक्षण

लग्नादेकान्तरस्थैश्च षड्भगैश्चक्रमुच्यते ।
धनादेकान्तरस्थैस्तु समुद्रः षड्गृहाश्रितैः ॥१५॥

लग्न से प्रारम्भ कर एकान्तर से ६ स्थानों (अर्थात् १,३,५,७,९,११) में सभी ग्रह स्थित हों तो **चक्र** नामक योग होता है। इसी प्रकार धन (द्वितीय) भाव से एकान्तर स्थानों (अर्थात् २,४,६,८,१०,१२) में सभी ग्रह विद्यमान हों तो **समुद्र** नामक योग होता है। ये २० योग अपनी-अपनी आकृति के अनुरूप होने के कारण **आकृति योग** कहे गये हैं।

सात संख्यक योगों के लक्षण

एकराशिस्थितैर्गोलो युगाख्यो द्विभसंस्थितैः ।
शूलस्तु त्रिभगैः प्रोक्तः केदारस्तु चतुर्भगैः ॥१६॥
पञ्चराशिस्थितैः पाशो दामाख्यः षड्गृहाश्रितैः ।
वीणा सप्तभगैः सर्वैर्विहायान्यानुदीरितान् ॥१७॥

सभी ग्रह एक राशि में स्थित हों तो **गोलयोग**, २ राशि में सभी ग्रह हों तो **युग-योग**, ३ राशि में सभी ग्रह के रहने पर **शूलयोग**, ४ राशि में सभी ग्रह स्थित हों तो **केदारयोग**, ५ राशि में सभी ग्रह हों तो **पाशयोग**, ६ राशि में सभी ग्रह रहने पर **दामयोग** और ७ राशि में सभी हों तो **वीणा** नामक योग होता है। इससे पूर्व कथित योग के लक्षण न हों तभी इन योगों को जानना चाहिए। यदि पूर्वोक्त लक्षण हों तो पूर्वकथित योग ही जानना चाहिए ॥१६-१७॥

पूर्वोक्त ३ २ योगों के शुभाशुभ फल

रज्जु— **अटनप्रियाः सुरूपाः परदेशस्वास्थ्यभागिनो मनुजाः ।**
क्रूराः खलस्वभावा रज्जुप्रभवाः सदा कथिताः ॥१८॥

मुसल— **मानज्ञानधनाद्यैर्युक्ता भूपप्रियाः ख्याताः ।**
बहुपुत्राः स्थिरचित्ता मुसलमुत्था भवन्ति नराः ॥१९॥

नल— **न्यूनातिरिक्तदेहा धनसञ्चयभागिनोऽतिनिपुणाश्च ।**
बन्धुहिताश्च सुरूपा नलयोगे सम्प्रसूयन्ते ॥२०॥

रज्जु योग में उत्पन्न जातक भ्रमणप्रिय, सुन्दर रूप वाला, परदेश में जाने से स्वास्थ्य लाभ करने वाला, क्रोधी और दुष्ट स्वभाव वाला होता है। **मुसल योग** में उत्पन्न पुरुष मानी, ज्ञानी, धनादि से युक्त, राजमान्य, विख्यात, अधिक पुत्र वाला और स्थिर स्वभाव वाला होता है। **नल योग** में समुत्पन्न जातक कम या अधिक देह वाला, धन संग्रह करने वाला, अत्यन्त चतुर, बन्धुओं का प्रिय और सुन्दर रूप वाला होता है ॥१८-२०॥

माला— **नित्यं सुखप्रधाना वाहनवस्त्रान्नभोगसम्पन्नाः ।**
कान्ताः सुबहुस्त्रीका मालायां सम्प्रसूताः स्युः ॥२१॥

सर्प— **विषमाः क्रूरा निःस्वा नित्यं दुःखार्दिताः सुदीनाश्च ।**
परभक्षपाननिरताः सर्पप्रभवा भवन्ति नराः ॥२२॥

माला योग में उत्पन्न जातक नित्य सुख भोगने वाला, वाहन, वस्त्र, अन्नादि के भोग से सम्पन्न, सुन्दर और अधिक पत्नी वाला होता है। **सर्प योग** में उत्पन्न जातक विषम प्रकृति वाला, क्रूर, धनहीन, नित्य दुःखी, दीन और दूसरों से अन्न मांगकर खाने वाला होता है ॥२१-२२॥

गदा— **सततोद्युक्तार्थवशा यज्वानः शास्त्रगेयकुशलाश्च ।**
धनकनकरत्नसम्पत्संयुक्ता मानवा गदायां तु ॥२३॥

शकट— **रोगार्ताः कुनखा मूर्खाः शकटानुजीविनो निःस्वा ।**
मित्रस्वजनविहीनाः शकटे जाता भवन्ति नराः ॥२४॥

पक्षी— **भ्रमणरुचयो विकृष्टा दूताः सुरतानुजीविना धृष्टाः ।**
कलहप्रियाश्च नित्यं विहगे योगे सदा जाताः ॥२५॥

शृङ्गा— **प्रियकलहाः समरसहाः सुखिनो नृपतेः प्रियाः शुभकलत्राः ।**
आढ्या युवतिद्वेष्याः शृङ्गाटकसम्भवा मनुजाः ॥२६॥

गदा योग में उत्पन्न जातक सदा धनोपार्जन में रत, यज्ञकारक, शास्त्र एवं सङ्गीत में दक्ष, धन, सुवर्ण एवं रत्नादि धातुओं से युक्त होता है। **शकट योग** में उत्पन्न जातक रोग से पीड़ित, कुनखी, मूर्ख, गाड़ी से जीविका सञ्चालन करने वाला, निर्धन एवं मित्रादि स्वजनों से हीन होता है। **पक्षी योग** में उत्पन्न जातक भ्रमणकारी, परतन्त्र, दूत, सुरत से

प्राप्त जीविका वाला, ढीठ तथा कलहप्रिय होता है। **शृङ्ग योग** में समुत्पन्न जातक कलहकारक, युद्धकारक, सुखी, राजा का प्रिय, मनोहर पत्नी वाला, धनी और स्त्री का द्वेषी होता है ॥२३-२६॥

हल— **बह्वाशिनो दरिद्राः कृषीबला दुःखिताश्च सोद्वेगाः ।**
बन्धुसुहृद्भिः शक्ताः प्रेष्या हलसंज्ञके सदा पुरुषाः ॥२७॥

वज्र— **आद्यन्तवयः सुखिनः नराः सुभगा निरीहाश्च ।**
भाग्यविहीना वज्रे जाताः खला विरुद्धाश्च ॥२८॥

यव— **व्रतनियममङ्गलपरा वयसो मध्ये सुखार्थपुत्रयुताः ।**
दातारः स्थिरचित्ता यवयोगभवाः सदा पुरुषाः ॥२९॥

कमल—**विभवगणाढ्याः पुरुषाः स्थिरायुषो विपुलकीर्तयः शुद्धाः ।**
शुभशतकाः पृथ्वीशाः कमलभवा मानवा नित्यम् ॥३०॥

वापी— **निधिकरणे निपुणधियः स्थिरार्थसुखसंयुतः सुतयुताश्च ।**
नयनसुखसम्प्रहृष्टा वापीयोगेन राजानः ॥३१॥

यूप— **आत्मविदिज्यानिरतः स्त्रिया युतः सत्त्वसम्पन्नः ।**
व्रतनियमरतमनुष्यो यूपे जातो विशिष्टश्च ॥३२॥

शर— **इषुकाराः बन्धनपाः मृगयाधनसेविताश्च मांसादाः ।**
हिंस्राः कुशिल्पकाराः शरयोगे मानवाः प्रसूयन्ते ॥३३॥

शक्ति— **धनरहितविफलदुःखितनीचालसाश्चिरायुषः पुरुषाः ।**
संग्रामबुद्धिनिपुणाः शक्त्यां जाताः स्थिराः शुभगाः ॥३४॥

दण्ड— **हतपुत्रदारनिःस्वाः सर्वत्र च निर्घृणाः स्वजनबाह्याः ।**
दुःखितनीचप्रेष्या दण्डप्रभवा भवन्ति नराः ॥३५॥

अधिक भोजन करने वाला, दरिद्र, कृषक, दुःखी, चिन्ताकुल, मित्र एवं बन्धुओं से युत और नौकर—ऐसा जातक **हलयोग** में उत्पन्न होता है। **वज्र योग** में उत्पन्न जातक बाल्य तथा वृद्धावस्था में सुखी, शूर, सुन्दर, निःस्पृह, भाग्यहीन, दुष्ट एवं दूसरों से वैरभार करने वाला होता है। **यव योग** में उत्पन्न जातक व्रत, नियम एवं अन्य मंगल कृत्य में रत, मध्यमावस्था में सुखी, धन, पुत्रों से युक्त, दानी तथा स्थिर चित्तवाला होता है। **कमल योग** में उत्पन्न जातक धनी, गुणों से युक्त, दीर्घायु, विख्यात कीर्ति वाला, शुद्ध, सैकड़ों शुभ कार्य करने वाला एवं राजा होता है। **वापी योग** में उत्पन्न पुरुष धनसंग्रह करने में निपुण, स्थिर धन एवं सुखों से युक्त, पुत्रों से युक्त, नाटक-नृत्यादि को देखने में सुखी और राजा होता है। **यूप योग** में समुत्पन्न जातक आत्मा का ज्ञाता, यज्ञकर्ता, स्त्री से युक्त, बलवान, व्रत-नियम में रत रहने वाला और विशिष्ट पुरुष होता है। **शर योग** में उत्पन्न जातक बाण बनाने वाला, कारागार का स्वामी, शिकार के माध्यम से धन प्राप्त करने वाला, मांसभक्षी, हिंसक और कुकर्म करने वाला होता है। **शक्ति योग** में समुत्पन्न मनुष्य

अर्थहीन एवं फलहीन जीवन वाला, दु:खी, नीच, आलसी, दीर्घायु, युद्धकारक, स्थिर चित्त वाला एवं सुन्दर होता है। **दण्ड योग** में उत्पन्न जातक, पुत्र, स्त्री और धन से वंचित, निर्दयी, स्वजनों से परित्यक्त, दु:खी, नीच और नौकर होता है ॥२७-३५॥

नौका— **सलिलोपजीविविभवाः बह्वाशाः ख्यातकीर्तयो दुष्टाः ।**
कृपणा मलिना लुब्धा नौसञ्जाताः खलाः पुरुषाः ॥३६॥

कूट— **अनृतकथनबन्धपा निष्किञ्चनाः शठाः क्रूराः ।**
कूटसमुत्था नित्यं भवन्ति गिरिदुर्गवासिनो मनुजाः ॥३७॥

छत्र— **स्वजनाश्रयो दयावान्नानानृपवल्लभः प्रकृष्टमतिः ।**
प्रथमेऽन्त्ये वयसि नरः सुखवान् दीर्घायुरातपत्री स्यात् ॥

चाप— **आनृतिकगुप्तपालाश्चौराः कितवाश्च कानने निरताः ।**
कार्मुकयोगे जाता भाग्यविहीनाः शुभा वयोमध्ये ॥३९॥

अर्धचन्द्र— **सेनापतयः सर्वे कान्तशरीरा नृपप्रिया बलिनः ।**
मणिकनकभूषणायुता भवन्ति योगेऽर्धचन्द्राख्ये ॥४०॥

चक्र— **प्रणताऽऽशेषनराधिप-किरीटरत्नप्रभा-स्फुरितपादः।**
भवति नरेन्द्रो मनुजश्चक्रे यो जायते योगे ॥४१॥

समुद्र— **बहुरत्नधनसमृद्धा भोगयुता धनजनप्रियाः ससुताः ।**
उदधिसमुत्थाः पुरुषाः स्थिरविभवाः साधुशीलाश्च ॥४२॥

नौका योग में उत्पन्न जातक जलोत्पन्न (मोती, शंख आदि) वस्तुओं से जीविका चलाने वाला, धनी, महत्त्वाकांक्षी, विख्यात कीर्ति वाला, दुष्ट, कंजूस, मलिन और लोभी होता है। **कूट योग** में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, जेल का अधिकारी, दरिद्र, शठ, क्रूर, कूटज्ञ तथा पर्वत या दुर्ग में रहने वाला होता है। **छत्र योग** में उत्पन्न मनुष्य अपने जनों का आश्रित, दयालु, अनेक राजाओं का मान्य, उत्तम बुद्धि से युक्त, प्रथम तथा अन्तिमावस्था में सुखी, दीर्घायु तथा आतपत्री होता है। **चाप योग** में उत्पन्न मनुष्य मिथ्यावादी, गुह्यपाल (जेलर), चोर, धूर्त, जंगलचारी, भाग्यरहित एवं मध्य अवस्था में सुखी होता है। **अर्धचन्द्र योग** में समुत्पन्न मनुष्य सेनापति, सुन्दर शरीर, राजा का प्रिय, बलवान एवं मणि-सुवर्णादि भूषणों से युक्त होता है। **चक्र योग** में उत्पन्न जातक अशेष (सम्पूर्ण) राजाओं से वन्दित हैं चरण जिनके, ऐसा चक्रवर्ती राजा होता है। **समुद्र योग** में उत्पन्न मनुष्य समधिक रत्नादि से परिपूर्ण, भोगवान, जनों का प्रिय, पुत्रयुक्त, स्थिर सम्पत्ति वाला और सुन्दर शील वाला होता है ॥३६-४२॥

वीणा— **प्रियगीतनृत्यवाद्या निपुणाः सुखिनश्च धनवन्तः ।**
नेतारो बहुभृत्या वीणायां कीर्तिताः पुरुषाः ॥४३॥

दाम— **दाम्नि सुजनोपकारी नयधनयुक्तो महेश्वरः ख्यातः ।**
बहुसुतरत्नसमृद्धो धीरो जायेत विद्वांश्च ॥४४॥

पाश— **पाशे बन्धनभाजः कार्ये दक्षाः प्रपञ्चकाराश्च ।**
बहुभाषिणो विशीला बहुभृत्याः सम्प्रतानाश्च ॥४५॥
केदार—**सुबहूनामुपयोज्याः कृषीबलाः सत्यवादिनः सुखिनः ।**
केदारे सम्भूताश्चलस्वभावा धनैर्युक्ताः ॥४६॥
शूल— **तीक्ष्णालसधनहीना हिंस्राः सुबहिष्कृता महाशूराः ।**
संग्रामे लब्धयशा शूले योगे भवन्ति नराः ॥४७॥
युग— **पाखण्डवादिनो वा धनरहिता वा बहिष्कृता लोके ।**
सुतमातृधर्मरहिता युगयोगे ये नरा जाताः ॥४८॥
गोल— **बलसंयुक्ता विधना विद्याविज्ञानवर्जिता मलिनाः ।**
नित्यं दुःखितदीना गोले योगे भवन्ति नराः ॥४९॥
सर्वास्वपि दशास्वेते भवेयुः फलदायिनः ।
प्राणिनामिति विज्ञेयाः प्रवदन्ति तवाग्रजाः ॥५०॥

वीणा योग में उत्पन्न मनुष्य गाने तथा नाचने में एवं बजाने में प्रेम रखने वाला तथा निपुण, सुखी, धनी, नेता और अधिक नौकर वाला होता है। **दाम योग** में उत्पन्न मनुष्य दूसरे का कल्याण करने वाला, नीति के द्वारा धनोपार्जन करने वाला, अधिक ऐश्वर्यवान, विख्यात, पुत्ररत्नादि से युक्त, धीर तथा विद्वान् होता है। **पाश योग** में उत्पन्न जातक कारागार का भागी, कार्य में दक्ष, प्रपञ्ची, अधिक वक्ता, शीलरहित, अधिक नौकर वाला और अधिक परिजन वाला होता है। **केदार योग** में उत्पन्न जातक सबों का उपकार करने वाला, कृषि कार्यकारक, सच बोलने वाला, सुखी, चञ्चल स्वभाव वाला और धनवान होता है। **शूल योग** में उत्पन्न जातक तीक्ष्ण स्वभाव वाला, आलसी, धनहीन, हिंसक, समाज से बहिष्कृत, अत्यन्त वीर एवं युद्ध में यश प्राप्त करने वाला होता है। **युग योग** में उत्पन्न जातक पाखण्डी, धनहीन, समाज से बहिष्कृत एवं पुत्र, माता, पिता तथा धर्म से हीन होता है। **गोल योग** में उत्पन्न जातक बलवान, धनहीन, विद्या तथा विज्ञान से हीन, मलिन, सदैव दुःखी एवं दीन होता है। पूर्वोक्त फल तत् तत् ग्रहों की दशा में प्राणियों को प्राप्त होता है—ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥४३-५०॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां नाभसयोगाध्यायः ॥३६॥

अथ विविधयोगाध्यायः ॥३७॥

शुभ एवं अशुभ योग

लग्ने शुभयुते योगः शुभः पापयुतेऽशुभः ।
व्ययस्वगैः शुभैः पापैः क्रमाद्योगौ शुभाऽशुभौ ॥१॥

लग्न शुभ ग्रहों से युक्त हो तो शुभ योग एवं लग्न केवल पाप ग्रहों से युक्त हो तो अशुभ योग होता है। यदि लग्न में ग्रह न हो एवं द्वितीय तथा द्वादश में शुभ ग्रह हों तो शुभ योग और द्वितीय-द्वादश में केवल पाप ग्रह हों तो अशुभ योग होता है ॥१॥

शुभाशुभ योग के फल

शुभयोगोद्भवो वाग्मी रूपशीलगुणान्वितः ।
पापयोगोद्भवः कामी पापकर्मा परार्थयुक् ॥२॥

शुभ योग में उत्पन्न जातक वाचाल तथा रूप, शील एवं गुणों से युक्त होता है। अशुभ योग में उत्पन्न जातक कामी, पापकर्मी तथा दूसरे के धन को अपहरण करने वाला होता है ॥२॥

गजकेशरी योग

केन्द्रे देवगुरौ लग्नाच्चन्द्राद्वा शुभदृग्युते ।
नीचास्तारिगृहैर्हीने योगोऽयं गजकेशरी ॥३॥
गजकेसरिसञ्जातस्तेजस्वी धनवान् भवेत् ।
मेधावी गुणसम्पन्नो राजप्रियकरो नरः ॥४॥

लग्न या चन्द्रमा से केन्द्र में गुरु हो और केवल शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तथा गुरु नीच, अस्त या शत्रुगृही न हो तो **गजकेशरी** नामक योग होता है। इस गजकेशरी योग में जिस जातक का जन्म होता है, वह जातक तेजस्वी, धनवान, मेधावी, सभी गुणों से सम्पन्न एवं राजप्रिय होता है ॥३-४॥

अमल कीर्तियोग

दशमेऽङ्गात्तथा चन्द्रात् केवलैश्च शुभैर्युते ।
स योगोऽमलकीर्त्याख्यः कीर्तिराचन्द्रतारकी ॥५॥
राजपूज्यो महाभोगी दाता बन्धुजनप्रियः ।
परोपकारी धर्मात्मा गुणाढ्योऽमलकीर्तिजः ॥६॥

लग्न या चन्द्रमा से दशम भाव में केवल शुभग्रह बैठे हों तो **अमलकीर्ति** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक जब तक चन्द्र, तारायें रहते हैं तब तक कीर्ति युक्त

होता है और राजपूज्य, महाभोगी, दाता, बन्धुजनों का प्रिय, परोपकारी, धर्मात्मा, गुणी तथा सुन्दर यश से युक्त होता है ॥५-६॥

पर्वतयोग

सप्तमे चाऽष्टमे शुद्धे शुभग्रहयुतेऽथवा ।
केन्द्रेषु शुभयुक्तेषु योगः पर्वतसंज्ञकः ॥७॥
भाग्यवान् पर्वतोत्पन्नः वाग्मी दाता च शास्त्रवित् ।
हास्यप्रियो यशस्वी च तेजस्वी पुरनायकः ॥८॥

सप्तम-अष्टम भाव में कोई ग्रह विद्यमान न हो अथवा केवल शुभ ग्रह हो तथा समस्त शुभ ग्रह केन्द्र में बैठे हों तो **पर्वत** नामक योग होता है। पर्वत योग में समुत्पन्न जातक भाग्यवान, वक्ता, शास्त्रज्ञाता, हास्यप्रिय, यशस्वी, तेजवान और नगराधिपति होता है ॥७-८॥

काहल योग

सुखेशेज्यौ मिथः केन्द्रगतौ बलिनि लग्नपे ।
काहलो वा स्वभोच्चस्थे सुखेशे कर्मपान्विते ॥९॥
ओजस्वी साहसी धूर्तश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
यत्किञ्चिद् ग्रामनाथश्च काहले जायते नरः ॥१०॥

लग्नाधिपति बलयुक्त हो, सुखेश और गुरु परस्पर केन्द्रगत हों अथवा सुखेश और कर्मेश एक साथ होकर अपने उच्च, स्वराशि में हों तो दोनों तरह से **काहल** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक ओजस्वी, साहसी, धूर्त, चतुर, बली और कुछ गाँवों का अधिपति होता है ॥९-१०॥

चामरयोग

लग्नेशे तुङ्गगे केन्द्रे गुरुदृष्टे तु चामरः ।
शुभद्वये विलग्ने वा नवमे दशमे मदे ॥११॥

लग्नाधिपति अपने उच्च का होकर केन्द्र में हो और उस पर गुरु की दृष्टि हो अथवा दो शुभ ग्रह लग्न, नवम, दशम या सप्तम में बैठे हों तो **चामर** नामक योग होता है ॥११॥

चामरयोग का फल

राजा वा राजपूज्यो वा चिरजीवी च पण्डितः ।
वाग्मी सर्वकलाविद्वा चामरे जायते जनः ॥१२॥

चामर योग में उत्पन्न मनुष्य राजा या राजपूज्य, दीर्घायु, पण्डित, वक्ता और समस्त कलाओं का ज्ञाता होता है ॥१२॥

शङ्खयोग

सबले लग्नपे पुत्र-षष्ठपौ केन्द्रगौ मिथः।
शङ्खो वा लग्नकर्मेशौ चरे बलिनि भाग्यपे ॥१३॥
धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तो दयालुः पुण्यवान् सुधीः।
पुण्यकर्मा चिरञ्जीवी शङ्खयोगोद्भवो नरः ॥१४॥

लग्नेश बलवान हो और पञ्चमेश तथा षष्ठेश परस्पर केन्द्र में स्थित हों अथवा भाग्येश बलयुक्त हो और लग्नेश तथा दशमेश चर राशि में बैठे हों तो **शङ्ख** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री, पुत्र से युक्त, दयालु, पुण्यात्मा, बुद्धिमान, पुण्यकर्मी और चिरंजीवी होता है ॥१३-१४॥

भेरी योग

सबले भाग्यपे भेरी खगैः स्वान्त्योदयास्तगैः।
सबले भाग्यपे वाऽसौ केन्द्रे शुक्रेज्यलग्नपैः ॥१५॥

भाग्येश बली हो और २, १२, १, ७ भावों में सभी ग्रह बैठे हों अथवा भाग्येश बली हो और शुक्र, गुरु तथा लग्नाधिपति केन्द्र में हों तो **भेरी** नामक योग होता है ॥१५॥

भेरी योग का फल

धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तो भूपः कीर्तिगुणान्वितः।
आचारवान् सुखी भोगी भेरीयोगे जनो भवेत् ॥१६॥

भेरी योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री एवं पुत्र से युक्त, राजा, यशस्वी, गुणी, आचारवान्, सुखी और भोगी होता है ॥१६॥

मृदंगयोग

सबले लग्नपे खेटाः केन्द्रे कोणे स्वभोच्चगाः।
मृदङ्गयोगो जातोऽत्र भूपो वा तत्समः सुखी ॥१७॥

लग्नेश बलयुक्त हो और अपने उच्च या स्वराशि में हो तथा अन्य ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में हों तो **मृदङ्ग** नामक योग होता है। इसमें उत्पन्न जातक सुखी एवं राजा या राजसदृश होता है ॥१७॥

श्रीनाथयोग

कामेशे कर्मगे तुङ्गे कर्मेशे भाग्यपान्विते।
योगः श्रीनाथसंज्ञोऽत्र जातः शक्रसमो नृपः ॥१८॥

सप्तमेश दशम में स्वोच्च का होकर बैठा हो और कर्मेश नवमेश से युक्त हो तो **श्रीनाथ** नामक योग होता है। इसमें उत्पन्न जातक इन्द्र के तुल्य राजा होता है ॥१८॥

शारदयोग

कर्मेशे सुतगे केन्द्रे बुधेऽर्के सबले स्वभे।
चन्द्रात् कोणे गुरौ ज्ञे वा कुजे लाभे च शारदः ॥१९॥
धनस्त्रीपुत्रसंयुक्तः सुखी विद्वान् नृपप्रियः।
तपस्वी धर्मसंयुक्तः शारदे जायते जनः ॥२०॥

कर्मेश पञ्चम भाव में हो, बुध केन्द्र में हो और बलयुक्त सूर्य स्वराशि (५) में हो, अथवा चन्द्रमा से कोण (५, ९) में गुरु या बुध हो, आय में भौम हो तो **शारद** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक धन, स्त्री, पुत्रादि से युक्त, सुखी, विद्वान्, राजा का प्रिय, तपस्वी और धार्मिक होता है ॥१९-२०॥

मत्स्ययोग

धर्मलग्नगते सौम्ये पञ्चमे सदसद्युते।
पापे च चतुरस्रस्थे योगोऽयं मत्स्यसंज्ञकः ॥२१॥

धर्म तथा लग्न में शुभ ग्रह बैठे हों, पञ्चम में शुभ, अशुभ ग्रह बैठे हों, ४, ८ भाव में पाप ग्रह बैठे हों तो **मत्स्य** नामक योग होता है ॥२१॥

मत्स्ययोग का फल

कालज्ञः करुणामूर्तिर्गुणधीबलरूपवान्।
यशोविद्यातपस्वी च मत्स्ययोगे हि जायते ॥२२॥

मत्स्य योग में उत्पन्न जातक काल को जानने वाला, करुणा का प्रतिरूप, गुण, बल, रूप, यश, विद्या और तपस्या से युक्त होता है ॥२२॥

कूर्मयोग

पुत्रारिमदगाः सौम्याः स्वभोच्चसुहृदंशगाः।
त्रिलाभोदयगाः पापाः कूर्मयोगः स्वभोच्चगाः ॥२३॥
कूर्मयोगे जनो भूपो धीरो धर्मगुणान्वितः।
कीर्तिमानुपकारी च सुखी मानवनायकः ॥२४॥

शुभ ग्रह ५, ६, ७ में हो और पाप ग्रह ३, ११, १ भाव में, अपने-अपने उच्च, अपनी राशि में बैठे हों तो **कूर्मयोग** होता है। कूर्म योग में उत्पन्न मानव राजा, धीर, धर्मात्मा, गुणी, कीर्तियुक्त, उपकारी, सुखी और मनुष्यों का नायक (नेता) होता है ॥२३-२४॥

खड्ग योग

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यभावगे।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोगः स कथ्यते ॥२५॥

खड्गयोगे समुत्पन्नो धनभाग्यसुखान्वितः ।
शास्त्रज्ञो बुद्धिवीर्याढ्यः कृतज्ञः कुशलो नरः ॥२६॥

भाग्येश धनभाव में हो और धनेश नवम भाव में हो तथा लग्नेश केन्द्र-त्रिकोण में बैठा हो, तो **खड्गयोग** होता है। खड्ग योग में उत्पन्न जातक धन, भाग्य-सुखों से युक्त, शास्त्रज्ञाता, बुद्धि तथा बल से युक्त, कृतज्ञ और कुशल मानव होता है ॥२५-२६॥

लक्ष्मी योग

केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे वा स्वभोच्चगे ।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मीयोगः प्रकीर्त्यते ॥२७॥
सुरूपो गुणवान् भूपो बहुपुत्रधनान्वितः ।
यशस्वी धर्मसम्पन्नो लक्ष्मीयोगे जनो भवेत् ॥२८॥

लग्नेश बलवान हो और भाग्येश अपने मूल त्रिकोण या अपने उच्च अथवा स्वगृह में होकर केन्द्र में बैठा हो तो **लक्ष्मी** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक सुन्दर, गुणी, राजा, बहुत पुत्र एवं धन से समन्वित, यशस्वी और धर्मात्मा होता है ॥२७-२८॥

कुसुमयोग

लग्ने स्थिरे भृगौ केन्द्रे चन्द्रे कोणे शुभान्विते ।
मानस्थानगते सौरे योगोऽयं कुसुमाभिधः ॥२९॥
भूपो वा भूपतुल्यो वा दाता भोगी सुखी जनः ।
कुलमुख्यो गुणी विद्वान् जायते कुसुमाह्वये ॥३०॥

स्थिर राशि का लग्न हो, शुक्र केन्द्र में और चन्द्रमा त्रिकोण में शुभ ग्रह से युक्त हो और दशम भाव में शनि बैठा हो तो **कुसुम** योग होता है। इसमें उत्पन्न मानव राजा या राजा के समान, दाता, भोगी, सुखी, वंश में उत्तम, गुणी और विद्वान् होता है ॥२९-३०॥

कलानिधियोग

द्वितीये पञ्चमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते ।
क्षेत्रे तयोर्वा सम्प्राप्ते योगः स च कलानिधिः ॥३१॥
कलानिधिसमुत्पन्नो गुणवान् भूपवन्दितः ।
रोगहीनः सुखी जातो धनविद्यासमन्वितः ॥३२॥

द्वितीय या पञ्चम भाव में गुरु हो और बुध शुक्र से युत या दृष्ट हो अथवा बुध शुक्र के क्षेत्र में स्थित हो तो **कलानिधि** योग होता है। इस योग में जन्म लेने वाले मनुष्य गुणी, राजपूज्य, नीरोग, सुखी, धनाढ्य और विद्या से सम्पन्न होते हैं ॥३१-३२॥

कल्पद्रुमयोग

लग्नेश-तद्गतर्क्षेश-तद्भर्क्षेश-तदंशपाः ।
केन्द्रे कोणे स्वतुङ्गे वा योगः कल्पद्रुमो मतः ॥३३॥

सर्वैश्वर्ययुतो भूपो धर्मात्मा बलसंयुतः ।
युद्धप्रियो दयालुश्च पारिजाते नरो भवेत् ॥३४॥

लग्नाधिप तथा लग्नेशनिष्ठ राशि का स्वामी, पुनः वह जिस राशि में हो उसका स्वामी और उसका नवमांशपति—ये सभी केन्द्र-त्रिकोण में अथवा अपने-अपने उच्च में बैठे हों तो **कल्पद्रुम** नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न जातक समस्त सम्पत्ति से युक्त, राजा, धर्मात्मा, बली, समरप्रिय और दयालु होता है ॥३३-३४॥

हरि-हर ब्रह्म-योग

स्वान्त्याष्टस्थैर्द्वितीयेशाद् हरियोगः शुभग्रहैः ।
कामेशाद् बन्धुधर्माष्टस्थितैः सौम्यैर्हराभिधः ॥३५॥
लग्नेशाद् बन्धुकर्माय-स्थितैर्ब्रह्माह्वयः स्मृतः ।
एषु जातः सुखी विद्वान् धनपुत्रादिसंयुतः ॥३६॥

धनाधिप से २, ८, १२ में शुभ ग्रह हों तो **हरि** योग होता है। सप्तमेश से ४, ९, ८ स्थान में शुभ ग्रह बैठे हों तो **हर** योग होता है। लग्नेश से ४, १०, ११ भाव में शुभ ग्रह हो तो **ब्रह्म** योग होता है। पूर्वोक्त तीनों योगों में उत्पन्न जातक सुखी, विद्वान् एवं धन-पुत्रादि से परिपूर्ण होता है ॥३५-३६॥

लग्नाधियोग

लग्नान्मदाष्टगैः सौम्यैः पापदृग्योगवर्जितैः ।
योगो लग्नाधियोगोऽस्मिन् महात्मा शास्त्रवित्सुखी ॥३७॥

लग्न से ७, ८ भाव में शुभ ग्रह बैठे हों और उन पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो तथा युति भी न हो तो **लग्नाधि** योग होता है। इसमें जन्म लेने वाला मनुष्य महात्मा, शास्त्रज्ञाता और सुखी होता है ॥३७॥

पारिजातादि वर्गस्थित लग्नेश फल

लग्नपे पारिजातस्थे सुखी वर्गोत्तमे ह्यरुक् ।
गोपुरे धनधान्याढ्या भूपः सिंहासने स्थिते ॥३८॥
विद्वान् पारावते श्रीमान् देवलोके सवाहनः ।
ऐरावतस्थिते जातो विख्यातो भूपवन्दितः ॥३९॥

लग्नेश पारिजातादि योग में बैठे हों तो जातक सुखी, अपने वर्गोत्तम में हों तो नीरोग, गोपुरांश में रहने पर धन-धान्य से परिपूर्ण, सिंहासन में हो तो राजा, पारावत में लग्नेश हो तो विद्वान्, देवलोक में हो तो श्रीमान् एवं ऐरावतांश में लग्नेश हो तो विख्यात और राजमान्य होता है ॥३८-३९॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां विविधयोगाध्यायः ॥३७॥

अथ चन्द्रयोगाध्यायः ॥३८॥

अल्पमध्यमोत्तम योग

सहस्ररश्मितश्चन्द्रे कण्टकादिगते क्रमात् ।
धनधीनैपुणादीनि न्यूनमध्योत्तमानि हि ॥१॥

सूर्य से चन्द्रमा यदि केन्द्र (१,४,७,१०) में हो तो जातक को धन, बुद्धिमत्ता, यश आदि स्वल्प होता है; पणकर (२,५,८,११ भाव) में हो तो मध्यम एवं यदि आपोक्लिम (३, ६,९,१२ भाव) में हो तो जातक को धन, बुद्धि, कौशलता आदि उत्तम कोटि के होते हैं ॥१॥

शुभ तथा अशुभ योग

स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च दिवसे शशी ।
गुरुणा दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः ॥२॥
स्वांशे वा स्वाधिमित्रांशे स्थितश्च शशभृन्निशि ।
शुक्रेण दृश्यते तत्र जातो धनसुखान्वितः ॥३॥
एतद्विपर्ययस्थे च शुक्रेज्यानवलोकिते ।
जायतेऽल्पधनी बालो योगेऽस्मिन्निर्धनोऽथवा ॥४॥

जातक का जन्म दिन में हो और चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवमांश में हो तथा उस पर गुरु की दृष्टि हो तो जातक धनवान और सुखी होता है । रात्रि का जन्म हो और चन्द्रमा अपने या अधिमित्र के नवमांश में स्थित हो, उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो जातक धनी और सुखी होता है । इससे विपरीत हो और शुक्र से दृष्ट न हो तो जातक अल्प धनी या निर्धन होता है ॥२-४॥

अधियोग

चन्द्राद्रन्ध्रारिकामस्थैः सौम्यैः स्यादधियोगकः ।
तत्र राजा च मन्त्री च सेनानीश्च बलक्रमात् ॥५॥

चन्द्रमा से ८, ६, ७ भाव में शुभ ग्रह स्थित हों तो अधियोग होता है । उसमें जन्म लेने वाला जातक ग्रहों के बलाबलानुसार राजा, मन्त्री अथवा सेनानायक होता है ॥५॥

उत्तम-मध्यम-अल्प धनयोग

चन्द्राद् वृद्धिगतैः सर्वैः शुभैर्जातो महाधनी ।
द्वाभ्यां मध्यधनो जात एकेनाऽल्पधनो भवेत् ॥६॥

चन्द्रमा से वृद्धि (३, ६, १०, ११) स्थान में समस्त शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक महाधनी होता है । दो शुभ ग्रह हों तो मध्य धनी और एक शुभ ग्रह हो तो जातक अल्प धनी होता है ॥६॥

सुनफा-अनफा तथा दुरधरा योग

चन्द्रात् स्वान्त्योभयस्थे हि ग्रहे सूर्यं विना क्रमात्।
सुनफाख्योऽनफाख्यश्च योगो दुरधराह्वयः ॥७॥

सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह चन्द्रमा से द्वितीय भाव में हों तो सुनफा, द्वादश भाव में ग्रह हों तो अनफा और दोनों स्थान में ग्रह स्थित हों तो दुरधरानामक योग होता है ॥७॥

सुनफा-अनफा दुरधरा योगफल

राजा वा राजतुल्यो वा धीधनख्यातिमाञ्जनः।
स्वभुजार्जितवित्तश्च सुनफायोगसम्भवः ॥८॥
भूपोऽगदशरीरश्च शीलवान् ख्यातकीर्तिमान्।
सुरूपश्चाऽनफाजातो सुखैः सर्वैः समन्वितः ॥९॥
उत्पन्नसुखभुग् दाता धनवाहनसंयुतः।
सद्भृत्यो जायते नूनं जनो दुरधराभवः ॥१०॥

सुनफा योग में उत्पन्न जातक राजा या राजतुल्य, मतिमान, धनी, विख्यात एवं अपने बाहुबल से उपार्जित धन से युक्त होता है। अनफा योग में उत्पन्न पुरुष राजा, गद (रोग) से हीन, सुशील, विख्यात, कीर्तियुक्त, सुन्दर तथा समस्त सुख से युक्त होता है। दुरधरा नामक योग में जन्म लेने वाला जातक सुखी, दाता, धन-वाहनादि से परिपूर्ण एवं कुशल नौकर वाला होता है ॥८-१०॥

केमद्रुम योग

चन्द्रादाद्यधनाऽन्त्यस्थो विना भानुं न चेद् ग्रहः।
कश्चित् स्याद्वा विना चन्द्रं लग्नात् केन्द्रगतोऽथ वा ॥११॥
योगः केमद्रुमो नाम तत्र जातोऽतिगर्हितः।
बुद्धिविद्याविहीनश्च दरिद्रापत्तिसंयुतः ॥१२॥

चन्द्रमा के साथ या चन्द्रमा से २, १२ भाव में सूर्य को छोड़कर अन्य ग्रह न हों अथवा लग्न से केन्द्र में चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ग्रह न हों तो तो केमद्रुम नामक योग होता है। इसमें जन्म लेने वाला जातक अत्यन्त निन्दित, बुद्धि-विद्या से हीन, दरिद्र और आपत्ति से युक्त होता है ॥११-१२॥

चन्द्रयोग में विशेषता

अन्ययोगफलं हन्ति चन्द्रयोगो विशेषतः।
स्वफलं प्रददातीति बुधो यत्नाद् विचिन्तयेत् ॥१३॥

पूर्वोक्त शुभाशुभ चन्द्रजन्य योग अन्य योगों का नाश करके अपना फल देता है। इसीलिए विद्वानों को यत्नपूर्वक सर्वप्रथम इस योग को देखना चाहिए ॥१३॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां चन्द्रयोगाध्याय: ॥३८॥

अथ सूर्ययोगाध्यायः ॥३९॥

वेशि-वोशि-उभयचारी योग

सूर्यात् स्वान्त्योभयस्थैश्च विना चन्द्रं कुजादिभिः ।
वेशि-वोशिसमाख्यौ च तथोभयचरः क्रमात् ॥१॥

चन्द्रमा को छोड़कर भौमादि ५ ग्रह सूर्य से द्वितीय भाव में हों तो वेशि योग, द्वादश भाव में हों तो वोशि योग और दोनों (२।१२) भाव में भौमादि ग्रह बैठे हों तो उभयचारी योग होता है ॥१॥

वेशि आदि योग का फल

समदृक् सत्यवाङ्मर्त्यो दीर्घकायोऽलसस्तथा ।
सुखभागल्पवित्तोऽपि वेशियोगसमुद्भवः ॥२॥
वोशौ च निपुणो दाता यशोविद्याबलान्वितः ।
तथोभयचरे जातो भूपो वा तत्समः सुखी ॥३॥
शुभग्रहभवे योगे फलमेवं विचिन्तयेत् ।
पापग्रहसमुत्पन्ने योगे तु फलमन्यथा ॥४॥

वोशि योग में उत्पन्न जातक समदृष्टि, सत्यवादी, स्थूल शरीर, आलसी, सुखी एवं स्वल्प वित्त वाला होता है। वोशि योग में उत्पन्न जातक कार्यों में दक्ष, दाता, यशस्वी तथा विद्या एवं बल से युक्त होता है। उभयचारी योग में उत्पन्न जातक राजा या राजा के तुल्य तथा सुखी होता है। ये समस्त योग शुभ ग्रह से बने हों तो शुभ फल होता है और अशुभ ग्रह से निर्मित हों तो अन्यथा (यशुभ) फल होता है ॥२-४॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सूर्ययोगाध्यायः ॥३९॥

अथ राजयोगाध्यायः ॥४०॥

पराशर उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगान् द्विजोत्तम ! ।
येषां विज्ञानमात्रेण राजपूज्यो जनो भवेत् ॥१॥
ये योगाः शम्भुना प्रोक्ताः पुरा शैलसुताग्रतः ।
तेषां सारमहं वक्ष्ये तवाग्रे द्विजनन्दन ! ॥२॥
चिन्तयेत् कारकांशे वा जनुर्लग्नेऽथ वा द्विज ! ।
राजयोगकरौ द्वौ द्वौ स्फुटौ खेटौ प्रयत्नतः ॥३॥
आत्मकारकपुत्राभ्यां योगमेकं प्रकल्पयेत् ।
तनुपञ्चमनाथाभ्यां तथैव द्विजसत्तम ! ॥४॥
लग्न-पुत्रेशयोरात्मपुत्रकारकयोर्द्वयोः ।
सम्बन्धात् पूर्णमर्धं वा पादं वीर्यानुसारतः ॥५॥

पराशर जी कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! अब मैं अनेक प्रकार के राजयोग कहता हूँ; जिसके ज्ञान से पंडित लोग भी राजपूज्य हो जाते हैं। हे द्विजनन्दन ! जिस राजयोग को पूर्व में पार्वती के समर्क्ष भगवान् शिव जी ने कहा था, उसके सारभाग को तुम्हारे समक्ष मैं कहता हूँ। कारकांश तथा जन्मलग्न—इन दोनों से योग का विचार करना चाहिए। प्रथम आत्मकारक तथा पुत्रकारक एवं दूसरा लग्नेश और पञ्चमेश—इन दोनों के परस्पर सम्बन्ध और बलाबल के अनुरूप पूर्ण, आधा या पाद (चतुर्थांश) योगफल जानना चाहिए ॥१-५॥

महाराज योग

लग्नेशे पञ्चमे भावे पञ्चमेशे च लग्नके ।
पुत्रात्मकारकौ विप्र ! लग्ने च पञ्चमे स्थिते ॥६॥
स्वोच्चे स्वांशे स्वभे वाऽपि शुभग्रहनिरीक्षिते ।
महाराजाख्ययोगोऽत्र जातः ख्यातः सुखान्वितः ॥७॥

हे विप्र ! लग्नेश पञ्चम भाव में हो और पञ्चमेश लग्न में हो एवं आत्मकारक तथा पुत्रकारक दोनों लग्न या पञ्चम में अपनी उच्च राशि का होकर या अपने नवमांश में होकर शुभ ग्रह के द्वारा अवलोकित हों तो यह महाराजनामक योग होता है। इसमें जन्म लेने वाला जातक विख्यात और सुख से युक्त होता है ॥६-७॥

राजयोग

भाग्येशः कारको लग्ने पञ्चमे सप्तमेऽपि वा ।
राजयोगप्रदातारौ शुभखेटयुतेक्षितौ ॥८॥

लग्नेशात् कारकाच्चापि धने तुर्ये च पञ्चमे।
शुभखेटयुते भावे जातो राजा भवेद् ध्रुवम् ॥९॥
तृतीये षष्ठमे ताभ्यां पापग्रहयुतेक्षिते।
जातो राजा भवेदेवं मिश्रे मिश्रफलं वदेत् ॥१०॥

भाग्येश तथा आत्मकारक दोनों लग्न, ५, ७ भाव में हों, शुभग्रह से दृष्ट या युत हों तो वे राजयोगकारक होते हैं। लग्नेश या कारक से द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम शुभ ग्रह हों तो जातक निश्चय ही राजा होता है अथवा लग्न एवं कारक से ३, ६ भाव में केवल पाप ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो भी राजयोगकारक होता है। लग्न या कारक से ३, ६ भाव में मिश्रित (शुभ, पाप ग्रह) ग्रह बैठे हों तो मिश्रित (धनवान) फल होता है ॥८-१०॥

स्वांशे वा पञ्चमे शुक्रे जीवेन्दुयुतवीक्षिते।
लग्ने लग्नपदे वाऽपि राजवर्गो भवेन्नरः ॥११॥

कारकांश या उससे पञ्चम भाव में शुक्र हो अथवा लग्न में या लग्नपद में शुक्र हो और उस पर गुरु तथा चन्द्रमा की दृष्टि हो अथवा योग हो तो वह राजा का सम्बन्धी होता है ॥११॥

जन्माङ्गे कालहोराङ्गे कलाङ्गे येन केनचित्।
एकग्रहेण सन्दृष्टे त्रितये राजभाग् जनः ॥१२॥

जन्मलग्न, होरालग्न या घटी लग्न में किसी एक ग्रह की दृष्टि हो तो जातक राजयोग का भागी होता है ॥१२॥

लग्नषड्वर्गके चैवमेकखेटयुतेक्षिते।
राजयोगो भवत्येव निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥१३॥
पूर्णदृष्टे पूर्णयोगमर्धदृष्टेऽर्धमेव च।
पापदृष्टे पादयोगमिति ज्ञेयं क्रमात् फलम् ॥१४॥

हे द्विजोत्तम! लग्न के षड्वर्ग (होरा, द्रेष्काण, नवमांश आदि) किसी एक ही ग्रह से युक्त या दृष्ट हों तो भी राजयोग होता है। योगदृष्टि के अनुरूप पूर्ण, आधा या चतुर्थांश फल जानना चाहिए ॥१३-१४॥

लग्नत्रये स्वभोच्चस्थे खेटे राजा भवेद् ध्रुवम्।
यद्वा लग्ने दृकाणेंऽशे स्वोच्चखेटयुते द्विज! ॥१५॥

जन्मलग्न, होरालग्न तथा घटी लग्न तीनों में उच्चस्थ ग्रह हो अथवा लग्न, द्रेष्काण एवं लग्न के नवमांश—इन तीनों में उच्चस्थ ग्रह हों तो भी राजयोग होता है ॥१५॥

पदे शुभे स-चन्द्रे च धने देवगुरौ तथा।
स्वोच्चस्थ-खेटसन्दृष्टे राजयोगो न संशयः ॥१६॥

पद में चन्द्रसहित शुभ ग्रह हो, द्वितीय भाव में गुरु बैठा हो और उन पर उच्च स्थित ग्रह की दृष्टि हो तो वह राजयोगकारक होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥१६॥

शुभे लग्ने शुभे त्वर्थे तृतीये पापखेचरे।
चतुर्थे च शुभे प्राप्ते राजा वा तत्समोऽपि वा ॥१७॥
स्वोच्चस्थो हरिणाङ्को वा जीवो वा शुक्र एव वा।
बुधो वा धनभावस्थः श्रियं दिशति देहिनः ॥१८॥
षष्ठेऽष्टमे तृतीये वा स्व-स्वनीचगता ग्रहाः।
लग्नं पश्येत् स्वभोच्चस्थो लग्नपो राज्ययोगदः ॥१९॥
षष्ठाऽष्टमव्ययाधीशा नीचस्था रिपुभेऽस्तगाः।
स्वोच्च-स्वभग-लग्नेशा लग्नं पश्यंश्च राज्यदः ॥२०॥
स्वोच्चस्वभस्थराज्येशो लग्नं पश्यंश्च राज्यदः।
शुभाः केन्द्रस्थिता वाऽपि राज्यदा नाऽत्र संशयः ॥२१॥

लग्न तथा द्वितीय भाव में शुभ ग्रह हो, तृतीय भाव में पाप ग्रह हो और चतुर्थ भाव में शुभ ग्रह बैठे हों तो यह योग राजयोगकारक होता है। इसमें उत्पन्न जातक राजा या राजतुल्य होता है। चन्द्रमा, गुरु, शुक्र, बुध अपने उच्चस्थ होकर धनभाव में एक भी ग्रह बैठे हों तो राजयोग होता है। अपनी-अपनी नीच राशि का होकर ६, ८, ३ भाव में बैठे हों और लग्नेश अपनी उच्च राशि का होकर लग्न को देखता हो तो भी राजयोगकारक होता है। षष्ठेश, अष्टमेश और व्ययेश अपनी नीच राशि में हो या शत्रुगृह में अथवा अस्त हो और लग्नेश अपनी उच्च राशि या अपने गृह का होकर लग्न को देखता हो तो राजयोगकारक होता है। सभी शुभ ग्रह केन्द्र में बैठे हों और राज्येश अपनी उच्च राशि या स्वगृह में होकर लग्न को देखता हो तो राजयोगकारक होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥१७-२१॥

शुभराशौ शुभांशे च कारको धनवान् भवेत्।
तदंशकेन्द्रेषु शुभे नूनं राजा प्रजायते ॥२२॥
लग्नारूढं दारपदं मिथः केन्द्रं स्थितं यदि।
त्रिलाभे वा त्रिकोणे वा तदा राजा न संशयः ॥२३॥
भावहोराघटीसंज्ञलग्नानि च प्रपश्यति।
स्वोच्चग्रहो राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा ॥२४॥
राशेर्द्रेष्काणतोंऽशाच्च राशेरंशादथापि वा।
यद्वा राशिदृकाणाभ्यां लग्नद्रष्टा तु योगदः ॥२५॥
पदे स्वोच्चखगाक्रान्ते चन्द्राक्रान्ते विशेषतः।
क्रान्ते च गुरु-शुक्राभ्यां केनाप्युच्चग्रहेण वा ॥२६॥

दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः ।
शुभारूढे पदे चन्द्रे धने देवगुरौ तथा ॥२७॥

आत्मकारक ग्रह शुभ राशि में हो या शुभ ग्रह के नवमांश में बैठा हो तो जातक धनवान होता है। कारकांश से केन्द्र में शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक राजा होता है। लग्न का पद तथा सप्तम का पद परस्पर केन्द्र में स्थित हो या ३, ११ भाव में हो या ५, ९ भाव में बैठा हो तो अवश्य राजा होता है। भावलग्न, होरालग्न और घटी लग्न को उच्च राशिस्थ ग्रह देखते हों तो राजयोग होता है। दो लग्न की राशि या तीनों लग्न की राशि, द्रेष्काण, नवमांश अथवा राशि एवं नवमांश अथवा राशि और द्रेष्काण को एक भी ग्रह देखता हो तो राजयोगकारक होता है। लग्न का पद या चन्द्रमा के साथ उच्चस्थ ग्रह का योग हो और उसमें गुरु-शुक्र युक्त हो या किसी उच्चस्थ ग्रह का योग हो तो अवश्य राजयोग होता है। लग्नपद में शुभ ग्रह चन्द्र स्थित हो और उससे द्वितीय भाव में गुरु बैठा हो तो भी राजयोगकारक होता है ॥२२-२७॥

दुःस्थानेशोऽपि नीचस्थो यदि लग्नं प्रपश्यति ।
तदाऽपि राजयोगः स्यादिति ज्ञेयं द्विजोत्तम ! ॥२८॥
चतुर्थ-दशमार्थाय-पतिदृष्टे वलग्नभे ।
पदाल्लाभे तु शुक्रेण दृष्टेऽप्यारूढभे शुभे ॥२९॥
राजा वा तत्समो वापि जातको जायते ध्रुवम् ।
षष्ठाष्टमगते नीचे लग्नं पश्यति वा तथा ॥३०॥
तृतीयलाभगे नीचे लग्नं पश्यति वा तथा ।
लग्नांशकेन्द्रेषु शुभे निग्रहानुग्रहक्षमः ॥३१॥

हे द्विजोत्तम ! दुष्ट (६,८,१२) स्थान के स्थानाधिपति अपनी नीच राशि का होकर लग्न को देखता हो तो भी राजयोग होता है। यदि ४,१०,२,११ भावों के अधिपति लग्न को देखते हों, पद से ११ स्थान में शुक्र की दृष्टि हो और पद में शुभ ग्रह हो तो जातक राजा या राजसमान होता है। ६,८,३,११ स्थान में अपने नीच राशिस्थ ग्रह लग्न का अवलोकन करते हों तो राजयोग होता है। लग्न के नवमांशपति शुभ ग्रह होकर केन्द्र में स्थित हो तो जातक निग्रह और अनुग्रह करने में सक्षम राजा होता है ॥२८-३१॥

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि राजयोगादिकं परम् ।
ग्रहाणां स्थानभेदेन दृष्टियोगवशात् फलम् ॥३२॥
तपःस्थानाधिपो मन्त्री मन्त्राधीशो विशेषतः ।
उभावन्योन्यसंदृष्टौ जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥३३॥
यत्र कुत्रापि संयुक्तौ तौ वापि समसप्तमौ ।
राजवंशभवो बालो राजा भवति निश्चितम् ॥३४॥

अब मैं ग्रहों के स्थानभेद, दृष्टिभेद और योगभेद के अनुसार राजयोग कहता हूँ।

नवम-स्थानाधिपति मन्त्री होता है, पञ्चमेश तो विशेष प्रकार से मन्त्री होता है। ये दोनों आपस में एक-दूसरे को देखते हों, किसी भी स्थान में दोनों एक साथ बैठे हों अथवा परस्पर सप्तम स्थान में स्थित हों तो राजयोगकारक होते हैं। राजवंश में उत्पन्न जातक तो निश्चित रूप से राजा होता है ॥३२-३४॥

वाहनेशस्तथा माने मानेशो वाहने स्थितः।
बुद्धिधर्माधिपाभ्यां तु दृष्टश्चेदिह राज्यभाक् ॥३५॥
सुतकर्म-सुहृल्लग्ननाथा धर्मपसंयुताः।
यस्य जन्मनि भूपोऽसौ कीर्त्या ख्यातो दिगन्तरे ॥३६॥
सुखकर्माधिपौ वापि मन्त्रिनाथेन संयुतौ।
धर्मनाथेन वा युक्तौ जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥३७॥
सुतेशे धर्मनाथेन युते लग्नेश्वरेण वा।
लग्ने सुखेऽथवा माने स्थिते जातो नृपो भवेत् ॥३८॥
धर्मस्थाने स्थिते जीवे स्वगृहे भृगुसंयुते।
पञ्चमाधिपयुक्ते वा जातश्चेदिह राज्यभाक् ॥३९॥
दिनार्धाच्च निशार्धाच्च परं सार्धद्विनाडिका।
शुभा वेला तदुत्पन्नो राजा स्यात्तत्समोऽपि वा ॥४०॥

चतुर्थेश दशम में हो और दशमेश चतुर्थ भाव में हो एवं उस पर पञ्चमेश या नवमेश की दृष्टि हो तो जातक राजा होता है। ५, १०, ४, १ स्थानों के अधिपति या इनमें से एक भी धर्मेश के साथ हों तो जातक सभी दिशाओं में विख्यात राजा होता है। सुखेश या कर्मेश यदि पञ्चमेश अथवा नवमेश के साथ युक्त हों तो जातक राजा होता है। सुतेश धर्माधिपति से युक्त हो या लग्नेश के साथ युक्त होकर लग्न, चतुर्थ या दशम भाव में बैठा हो तो जातक राजा होता है। शुक्र से युक्त होकर गुरु अपने गृह का होकर धर्मस्थान में बैठा हो अथवा पञ्चमेश से युक्त हो तो जातक राजा होता है। मध्याह्न और मध्य रात्रि के अनन्तर ढ़ाई घटी शुभ वेला होती है। इसमें जन्म लेने वाला जातक राजा या राजतुल्य होता है ॥३५-४०॥

चन्द्रः कविं कविश्चन्द्रमन्योऽन्यं त्रिभवस्थितः।
मिथः पश्यति वा क्वापि राजयोग उदाहृतः ॥४१॥

चन्द्रमा, शुक्र ३, ११ भाव में अन्योन्य स्थित हो अथवा कहीं पर भी हो और परस्पर दृष्ट हो तो जातक का राजयोग कहा गया है ॥४१॥

चन्द्रे वर्गोत्तमांशस्थे सबले चतुरादिभिः।
ग्रहैर्दृष्टे च यो जातः स राजा भवति ध्रुवम् ॥४२॥
उत्तमांशगते लग्ने चन्द्रान्यैश्चतुरादिभिः।
ग्रहैर्दृष्टेऽपि यो जातः सोऽपि भूमिपतिर्भवेत् ॥४३॥

यदि बलयुक्त चन्द्रमा अपने वर्गोत्तम नवमांश में हो और उस पर ४, ५, ६ आदि ग्रहों के द्वारा अवलोकित हो तो ऐसे योग में जन्म लेने वाला जातक निश्चित रूप से राजा होता है। यदि लग्न उत्तमांश में हो और चन्द्र को छोड़कर अन्य ४ या अधिक ग्रहों से देखा जाता हो तो वह जातक राजा होता है ॥४२-४३॥

त्र्यल्पैरुच्चस्थितैः खेटे राजा राजकुलोद्भवः।
अन्यवंशभवस्तत्र राजतुल्यो धनैर्युतः ॥४४॥
चतुर्भिः पञ्चभिर्वाऽपि खेटैः स्वोच्चत्रिकोणगैः।
हीनवंशभवश्चापि राजा भवति निश्चितः ॥४५॥
षड्भिरुच्चगतैः खेटैश्चक्रवर्तित्वमाप्नुयात्।
एवं बहुविधा राज-योगा ज्ञेया द्विजोत्तम! ॥४६॥
एको गुरुर्भृगुर्वापि बुधो वा स्वोच्चसंस्थितः।
शुभग्रहयुते केन्द्रे राजा वा तत्समो भवेत् ॥४७॥
केन्द्रस्थितैः शुभैः सर्वैः पापैश्च त्रिषडायगैः।
हीनवंशोऽपि यो जातः स राजा भवति ध्रुवम् ॥४८॥

यदि तीन ग्रह से अल्प ग्रह उच्च में स्थित हो तो राजवंश में उत्पन्न जातक राजा होता है एवं अन्य वंश में उत्पन्न जातक राजतुल्य धनी होता है। ४ या ५ ग्रह उच्च में या मूल त्रिकोण में बैठे हों तो हीन वंशोत्पन्न जातक भी राजा होता है। यदि जातक के ६ ग्रह उच्च में स्थित हों तो वह चक्रवर्ती राजा होता है। इस प्रकार ग्रहों के शुभ स्थान की स्थिति के अनुसार अनेक प्रकार के राजयोग होते हैं। गुरु, शुक्र या बुध में से एक भी ग्रह अपने उच्च स्थान में स्थित हों और शुभ ग्रह केन्द्र में बैठे हों तो जातक राजा या राजतुल्य होता है। समस्त शुभ ग्रह केन्द्र (१, ४, ७, १०) में बैठे हों और सभी पाप ग्रह ३, ६, ११ में बैठे हों तो हीन वंश में उत्पन्न जातक भी निश्चित रूप से राजा होता है ॥४४-४८॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां राजयोगाध्याय: ॥४०॥

अथ राजसम्बन्धयोगाध्यायः ॥४१॥

राज्यनाथे जनुर्लग्नादमात्येशयुतेक्षिते ।
अमात्यकारकेणापि प्रधानत्वं नृपालये ॥१॥
लाभेशवीक्षिते लाभे पापदृग्योगवर्जिते ।
राज्यभावे तदा विप्र! प्रधानत्वं नृपालये ॥२॥
अमात्यकारकेणापि कारकेन्द्रेण संयुते ।
तीव्रबुद्धियुतो बालो राजमन्त्री भवेद् ध्रुवम् ॥३॥
अमात्यकारके विप्र! सबले शुभसंयुते ।
स्वक्षेत्रे स्वोच्चगे वापि राजमन्त्री भवेद् ध्रुवम् ॥४॥
अमात्यकारके लग्ने पञ्चमे नवमेऽपि वा ।
राजमन्त्री भवेद् बालो विख्यातो नाऽत्र संशयः ॥५॥
आत्मकारकतः केन्द्रे कोणे वाऽमात्यकारके ।
तदा राजकृपायुक्तो जातो राजाश्रितः सुखी ॥६॥
कारकाच्च तथा रूढात् लग्नाच्च द्विजसत्तमे ।
तृतीये षष्ठमे पापैः सेनाधीशः प्रजायते ॥७॥
कारके केन्द्रकोणेषु स्वतुङ्गे वा स्वभे स्थिते ।
भाग्यपेन युते दृष्टे राजमन्त्री भवेद् ध्रुवम् ॥८॥
कारके जन्मराशीशे लग्नगे शुभसंयुते ।
मन्त्रित्वे मुख्ययोगोऽयं वार्धके नाऽत्र संशयः ॥९॥

जन्मकालिक लग्न से दशमाधिप यदि अमात्यकारक राशीश या पञ्चमेश तथा अमात्यकारक से युक्त या दृष्ट हो तो उस जातक का राजभवन में मुख्य स्थान होता है, अर्थात् वह राजमन्त्री होता है। आयभाव में आयेश की दृष्टि हो और राज्यभाव में पाप ग्रहों की दृष्टि या युति न हो तो जातक राजमन्त्री होता है। अमात्यकारक आत्मकारक के साथ युत हो तो ऐसा जातक तीक्ष्ण बुद्धि वाला राजमन्त्री होता है। हे विप्र! अमात्यकारक ग्रह बली शुभ ग्रह से युत होकर अपने गृह या अपने उच्च राशि में हो तो निश्चित रूप से जातक राजमन्त्री होता है। अमात्यकारक ग्रह लग्न, पञ्चम या नवम में स्थित हो तो जातक विख्यात राजमन्त्री होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। आत्मकारक ग्रह से केन्द्र (१,४,७,१०) एवं कोण (५,९) में अमात्यकारक ग्रह हो तो जातक राजा का कृपापात्र होकर राजाश्रित एवं सुखी होता है। हे द्विजोत्तम! आत्मकारक से, पद से या लग्न से तृतीय, षष्ठ में सभी पाप ग्रह बैठे हों तो जातक सेना का स्वामी होता है। आत्मकारक ग्रह अपनी राशि का या उच्चस्थ होकर केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो और उसपर भाग्येश की दृष्टि

हो अथवा युति हो तो जातक निश्चय ही राजमन्त्री होता है। आत्मकारक जन्मराशीश होकर शुभग्रह के साथ लग्न में बैठा हो तो जातक वृद्धावस्था में राजमन्त्री होता है। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥५-९॥

कारके शुभसंयुक्ते पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
दशमे नवमे वाऽपि धनं राजाश्रयाद् भवेत् ॥१०॥
भाग्यभावपदे लग्ने कारके नवमेऽपि वा।
राजसम्बन्धयोगोऽयं निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥११॥
लाभेशे लाभभावस्थे पापदृष्टिविवर्जिते।
कारके शुभसंयुक्ते लाभास्तस्य नृपालयात् ॥१२॥
लग्नेशे राज्यभावस्थे राज्येशे लग्नसंस्थिते।
प्रबलो राजसम्बन्धयोगोऽयं परिकीर्तितः ॥१३॥

शुभ ग्रह से युक्त कारक ग्रह ५, ७, १० या ९ भाव में स्थित हो तो जातक को राजा के आश्रय से धन प्राप्त होता है। नवम भाव का पद लग्न में हो या आत्मकारक ग्रह नवम भाव में हो तो हे द्विजोत्तम! जातक का राजसम्बन्ध योग होता है। लाभेश एकादश भाव में हो, पापग्रह की दृष्टि न हो और आत्मकारक शुभ ग्रह का साथ हो तो उस जातक को राज्याश्रय से धन प्राप्त होता है। लग्नेश दशम भाव में हो और दशमेश लग्न में हो तो प्रबल राजसम्बन्ध योग होता है ॥१०-१३॥

कारकात् तुर्यभावस्थौ सितेन्दू द्विजसत्तम!।
यस्य जन्मनि जातोऽयं राजचिह्नेन संयुतः ॥१४॥
लग्नेशे कारके वाऽपि पञ्चमेशेन संयुते।
केन्द्रे कोणे स्थिते तस्मिन् राजमित्रं भवेन्नरः ॥१५॥

हे द्विजसत्तम! आत्मकारक से चतुर्थ भाव में शुक्र, चन्द्रमा हो तो जातक राजचिह्नों से युक्त होता है। पञ्चमेश लग्नेश या कारक से युक्त होकर केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो तो वह जातक राजा का मित्र होता है ॥१४-१५॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां राजसम्बन्धयोगाध्यायः ॥४१॥

अथ विशेषधनयोगाध्यायः ॥४२॥

पराशर उवाच

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि धनयोगं विशेषतः ।
यस्मिन् योगे समुत्पन्नो निश्चितो धनवान् भवेत् ॥१॥
पञ्चमे भृगुजक्षेत्रे तस्मिन् शुक्रेण संयुते ।
लाभे भौमेन संयुक्ते बहुद्रव्यस्य नायकः ॥२॥
पञ्चमे तु बुधक्षेत्रे तस्मिन् बुधयुते सति ।
चन्द्रे भौमे गुरौ लाभे बहुद्रव्यस्य नायकः ॥३॥
पञ्चमे च रविक्षेत्रे तस्मिन् रवियुते सति ।
लाभे शनीन्दुजीवाढ्ये बहुद्रव्यस्य नायकः ॥४॥
पञ्चमे तु शनिक्षेत्रे तस्मिन् शनियुते सति ।
लाभे रवीन्दुसंयुक्ते बहुद्रव्यस्य नायकः ॥५॥
पञ्चमे तु गुरुक्षेत्रे तस्मिन् गुरुयुते सति ।
लाभे चन्द्रसुते जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥६॥
पञ्चमे तु कुजक्षेत्रे तस्मिन् कुजयुते सति ।
लाभस्थे भृगुपुत्रे तु बहुद्रव्यस्य नायकः ॥७॥
पञ्चमे तु शशिक्षेत्रे तस्मिन् शशियुते सति ।
शनौ लाभस्थिते जातो बहुद्रव्यस्य नायकः ॥८॥

पराशर जी कहते हैं कि हे विप्र ! अब मैं विशेष प्रकार के धनयोग को कहता हूँ, जिसमें जन्म लेने वाला जातक निश्चित रूप से धनवान होता है । पञ्चम भाव में शुक्र (२,७) की राशि हो और उसमें शुक्र बैठा हो तथा एकादश भाव में भौम हो तो जातक बहुत धनवान होता है । पञ्चम में बुध (३,६) की राशि हो और उसमें बुध बैठा हो तथा लाभस्थान में चन्द्र, भौम और गुरु बैठे हों तो जातक अधिक धन से युक्त होता है । पञ्चम में रवि (५) की राशि हो और उसमें रवि बैठा हो, एकादश भाव में शनि, चन्द्रमा, गुरु से युक्त हो तो जातक अधिक धनवान होता है । पञ्चम में शनि (१०, ११) का क्षेत्र हो और उसमें शनि बैठा हो तथा एकादश भाव में रवि, चन्द्रमा बैठे हों तो जातक महा धनवान होता है । पञ्चम में गुरु (९,१२) की राशि हो और उसमें गुरु स्थित हो, साथ ही लाभभाव में बुध हो तो जातक बहुत धन का स्वामी होता है । पञ्चम मंगल (१,८) की राशि हो और उसमें भौम बैठा हो, साथ ही लाभ भाव में शुक्र बैठा हो तो जातक अधिक धनी होता है । पञ्चम में चन्द्रमा (४) की राशि हो और उसमें चन्द्रमा हो तथा लाभ में शनि हो तो जातक अधिक धनाढ्य होता है ॥१-८॥

अन्य धनाढ्य योग

भानुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भानुयुते पुनः ।
भौमेन गुरुणा युक्ते दृष्टे जातो युतो धनैः ॥९॥

चन्द्रक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् चन्द्रयुते सति।
बुधेन गुरुणा युक्ते दृष्टे जातो धनी भवेत् ॥१०॥
भौमक्षेत्रे गते लग्ने तस्मिन् भौमेन संयुते।
सौम्यशुक्रार्कजैर्युक्ते दृष्टे श्रीमान्नरो भवेत् ॥११॥
बुधक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् बुधयुते सति।
शनिजीवयुते दृष्टे जातो धनयुतो भवेत् ॥१२॥
गुरुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् गुरुयुते सति।
बुधभौमयुते दृष्टे जायते धनवान्नरः ॥१३॥
भृगुक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् भृगुयुते सति।
शनिसौम्ययुते दृष्टे यो जातः स धनी भवेत् ॥१४॥
शनिक्षेत्रगते लग्ने तस्मिन् शनियुते सति।
भौमेन गुरुणा युक्ते दृष्टे जातो धनैर्युतः ॥१५॥

लग्न सूर्य (५) की राशि में हो और उसमें सूर्य बैठा हो, भौम, गुरु से लग्न में युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक महा धनी होता है। लग्न चन्द्र (४) क्षेत्रगत हो और उसमें चन्द्र युक्त हो तथा लग्न में बुध, गुरु युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक धनाढ्य होता है। भौम क्षेत्र-(१,८)-गत लग्न हो और उसमें भौम स्थित हो तथा लग्न में बुध, शुक्र, शनि से युक्त या दृष्ट हो तो जातक धनवान होता है। बुध क्षेत्र-(३, ६)-गत लग्न हो और उसमें बुध बैठा हो तथा लग्न में शनि गुरु से युक्त या दृष्ट हो तो जातक के लिए धनवान बनने का योग होता है। गुरु क्षेत्र-(९, १२)-गत लग्न हो और उसमें गुरु हो तथा लग्न में बुध और मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो ऐसा जातक धन से युक्त होता है। शुक्र क्षेत्र-(२, ७)-गत लग्न हो और उसमें शुक्र युक्त हो तथा लग्न में शनि बुध से युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक धनवान होता है। शनि क्षेत्र-(१०, ११)-गत लग्न हो और उसमें शनि हो तथा लग्न में भौम और गुरु से युक्त हो या दृष्ट हो तो जातक धनवान होता है ॥९-१५॥

अन्य धनयोग और धनप्राप्ति-समय

धनदौ धर्मधीनाथौ ये वा ताभ्यां युता ग्रहाः।
तेऽपि स्व-स्वदशाकाले धनदा नाऽत्र संशयः ॥१६॥
ग्रहाणामुक्तयोगेषु क्रूरसौम्यविभागतः।
बलाबलविवेकेन फलमूह्यं विचक्षणैः ॥१७॥

नवमेश और पञ्चमेश विशेष धनदायक होते हैं। अतः इन दोनों से युक्त जो भी ग्रह हों वे भी अपनी-अपनी दशा में धनदायक होते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चहिए। पूर्वोक्त योगों में ग्रहों की क्रूरता और सौम्यता के अनुसार क्रूर कार्य से या सौम्य कार्य से धनागम जानना चाहिए। यहाँ ग्रहों के बलाबल के अनुरूप अधिक या कम धनागम समझना चाहिए ॥१६-१७॥

पारिजातादि वर्गगत केन्द्राधिप का फल

केन्द्रेशः पारिजातस्थस्तदा दाता भवेन्नरः।
उत्तमे ह्युत्तमो दाता गोपुरे पुरुषत्वयुक् ॥१८॥

सिंहासने भवेन्मान्यः शूरः पारावतांशके।
सभाध्यक्षो देवलोके ब्रह्मलोके मुनिर्मतः।
ऐरावतांशके तुष्टो दिग्योगो नैव जायते॥१९॥

केन्द्राधिप यदि पारिजात अंश में स्थित हो तो जातक दाता, उत्तम वर्ग में हो तो श्रेष्ठ दाता, गोपुर अंश में हो तो पुरुषत्व से युक्त एवं सिंहासन अंश में हो तो मान्य होता है। केन्द्रेश पारावतांश में हो तो जातक शूर, देवलोक वर्ग में हो तो सभापति, ब्रह्मलोक अंश में केन्द्रेश के होने पर मुनि एवं ऐरावत अंश में हो तो जातक सदैव सन्तुष्ट रहता है, वह कभी भी दु:खी नहीं होता॥१८-१९॥

पारिजातादिगत पञ्चमेश फल

पारिजाते सुताधीशे विद्या चैव कुलोचिता।
उत्तमे चोत्तमा ज्ञेया गोपुरे भुवनाङ्किता॥२०॥
सिंहासने तथा वाच्या साचिव्येन समन्विता।
पारावते च विज्ञेया ब्रह्मविद्या द्विजोत्तम!॥२१॥
सुतेशे देवलोकस्थे कर्मयोगश्च जायते।
उपासना ब्रह्मलोके भक्तिस्त्वैरावतांशके॥२२॥

यदि पञ्चमेश पारिजात अंश में हो तो उस जातक को कुलोचित विद्या प्राप्त होती है। वर्गोत्तम अंश में रहने पर उत्तम विद्या, गोपुर अंश में भुवन में विख्यात, सिंहासन अंश में हो तो राजमन्त्री, पारावत अंश में पञ्चमेश हो तो ब्रह्मवेत्ता, देवलोक अंश में कर्मयोगी, ब्रह्मलोक अंश में ईश्वर का उपासक एवं ऐरावत अंश में पञ्चमेश रहने पर जातक ईश्वर का भक्त होता है॥२०-२२॥

पारिजातादिगत नवमेश फल

धर्मेशे पारिजातस्थे तीर्थकृत्त्वत्र जन्मनि।
पूर्वजन्मन्यपि ज्ञेयस्तीर्थकृच्चोत्तमांशके॥२३॥
गोपुरे मखकर्ता च परे चैवाऽत्र जन्मनि।
सिंहासने भवेद् वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥२४॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य ब्रह्मैकपदमाश्रितः।
पारावते च परमो हंसश्चैवात्र जन्मनि॥२५॥
लगुडी वा त्रिदण्डो स्याद्देवलोके न संशयः।
ब्रह्मलोके शक्रपदं याति कृत्वाऽश्वमेधकम्॥२६॥
ऐरावते तु धर्मात्मा स्वयं धर्मो भविष्यति।
श्रीरामः कुन्तिपुत्राद्यो यथा जातो द्विजोत्तम!॥२७॥

यदि धर्मेश पारिजात वर्ग में हो तो जातक इस जन्म में तीर्थाटन करने वाला होता है। वर्गोत्तम वर्ग में हो तो जातक अनेक जन्म से तीर्थ करने वाला होता है। गोपुर अंश

में हो तो इस जन्म में यज्ञ करने वाला होता है। सिंहासन वर्ग में हो तो जातक वीर और जितेन्द्रिय, सत्यवादी तथा सभी धर्मों को छोड़कर केवल ब्रह्म का उपासक होता है। पारावत में हो तो जातक परमहंस, देवलोक में हो तो दण्डी या त्रिदण्डी एवं ब्रह्मलोक में धर्मेश स्थित हो तो अश्वमेधादि यज्ञ करके इन्द्रपद प्राप्त करने वाला होता है। ऐरावत अंश में धर्मेश के रहने पर जातक स्वयं धर्मावतार (धर्मस्वरूप) होता है, जैसे राम-युधिष्ठिर आदि हुए हैं ॥२३-२७॥

पारिजातादिगत योगकारक ग्रहफल

विष्णुस्थानं च केन्द्रं स्याल्लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणकम्।
तदीशयोश्च सम्बन्धाद्राजयोगः पुरादितः ॥२८॥
पारिजाते स्थितौ तौ चेन् नृपो लोकानुरक्षकः।
उत्तमे चोत्तमे भूपो गजवाजिरथादिमान् ॥२९॥
गोपुरे नृपशार्दूलः पूजितांघ्रिर्नृपैर्भवेत्।
सिंहासने चक्रवर्ती सर्वभूमिप्रपालकः ॥३०॥
अस्मिन् योगे हरिश्चन्द्रो मनुश्चैवोत्तमस्तथा।
बलिर्वैश्वानरो जातस्तथाऽन्ये चक्रवर्तिनः ॥३१॥
वर्तमानयुगे जातस्तथा राजा युधिष्ठिरः।
भविता शालिवाहाद्यस्तथैव द्विजसत्तम! ॥३२॥
पारावतांशकेऽप्येवं जाता मन्वादयस्तथा।
विष्णोः सर्वेऽवताराश्च जायन्ते देवलोकके ॥३३॥
ब्रह्मलोके तु ब्रह्माद्या जायन्ते विश्वपालकाः।
ऐरावतांशके जातः पूर्वं स्वायम्भुवो मनुः ॥३४॥

केन्द्र (१, ४, ७, १०) विष्णु के स्थान हैं एवं त्रिकोण (१, ५, ९) लक्ष्मी के स्थान हैं। अतः पूर्व में दोनों के सम्बन्ध से राजयोग कहा गया है। केन्द्राधिप और कर्मेश दोनों यदि पारिजात अंश में हों तो जातक प्रजारक्षक राजा होता है। वर्गोत्तम अंश में दोनों हों तो जातक हाथी, घोड़े, रथों से युक्त उत्तम राजा होता है। गोपुर अंश में दोनों रहें तो जातक राजाओं से पूजित हैं चरण जिनके, ऐसा राजा होता है। सिंहासन में दोनों हो तो जातक समस्त भूमि का पालक चक्रवर्ती राजा होता है। ऐसे योग में राजा हरिश्चन्द्र, उत्तमज मनु आदि हुए हैं एवं बली, वैश्वीनर आदि चक्रवर्ती राजा हुए हैं। वर्तमान युग में भी युधिष्ठिर और आगे शालिवाहन शक होने वाले हैं। पारावतांश में मनु आदि एवं देवलोक अंश में सभी विष्णु के अवतार हुए हैं। ब्रह्मलोक अंश में दोनों (केन्द्रेश-त्रिकोणेश) हों तो ब्रह्मादि विश्वपालक होते हैं। ऐरावतांश में योगकारक रहने से पहले स्वयं आदि मनु हुए हैं ॥२८-३४॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां विशेषधनयोगाध्यायः ॥४२॥

अथ दारिद्र्ययोगाध्यायः ॥४३॥

मैत्रेय उवाच

बहवो धनदा योगा श्रुतास्त्वत्तो मया मुने ! ।
दरिद्रजन्मदान् योगान् कृपया कथय प्रभो ! ॥१॥

मैत्रेय ने कहा कि हे मुने ! आपके द्वारा कथित बहुत से धनदायक योगों को मैंने सुना । इसलिए अब हे प्रभो ! कृपा करके दारिद्र्य योगों को मुझसे कहिये ॥१॥

पराशर उवाच

लग्नेशे च व्ययस्थाने व्ययेशे लग्नमागते ।
मारकेशयुते दृष्टे निर्धनो जायते नरः ॥२॥
लग्नेशे षष्ठभावस्थे षष्ठेशे लग्नमागते ।
मारकेशन युग्दृष्टे धनहीनः प्रजायते ॥३॥
लग्नेन्दू केतुसंयुक्तौ लग्नपे निधनं गते ।
मारकेशयुते दृष्टे जातो वै निर्धनो भवेत् ॥४॥
षष्ठाष्टमव्ययगते लग्नपे पापसंयुते ।
धनेशे रिपुभे नीचे राजवंश्योऽपि निर्धनः ॥५॥
त्रिकेशेन समायुक्ते पापदृष्टे विलग्नपे ।
शनियुक्तेऽथवा सौम्यैरदृष्टे निर्धनो नरः ॥६॥
मन्त्रेशो धर्मनाथश्च क्रमात् षष्ठव्ययस्थितौ ।
दृष्टौ चेन्मारकेशेन निर्धनो जायते नरः ॥७॥

पराशर बोले कि लग्नेश व्यय भाव में हो और व्ययेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है । लग्नेश षष्ठ में हो और षष्ठेश लग्न में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक धनहीन होता है । लग्न या चन्द्रमा केतु से युत हो और लग्नेश अष्टम में हो तथा मारकेश से युत या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है । लग्नेश ६, ८, १२ भाव में हो, पाप ग्रह से युक्त हो तथा धनेश अपनी नीच राशि का हो या शत्रुभाव में हो तो जातक राजवंश में उत्पन्न होने पर भी निर्धन होता है । त्रिक (६, ८, १२) स्थान के स्वामी से युक्त तथा शनि से युक्त लग्नेश हो, पाप ग्रह से दृष्ट एवं शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है । पञ्चमेश षष्ठ में एवं नवमेश व्यय भाव में हो और मारकेश से दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है ॥२-७॥

पापग्रहे लग्नगते राज्यधर्माधिपौ विना ।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो भवेत् ॥८॥

त्रिकेशा यत्र भावस्था तद्भावेशास्त्रिकस्थिताः।
पापदृष्टयुता बालो दुःखाक्रान्तश्च निर्धनः ॥९॥
चन्द्राक्रान्तनवांशेशो मारकेशयुतो यदि।
मारकस्थानगो वाऽपि जातोऽत्र निर्धनो नरः ॥१०॥
लग्नेशलग्नभागेशौ रिष्फरन्ध्रारिगौ यदि।
मारकेशयुतौ दृष्टौ जातोऽसौ निर्धनो नरः ॥११॥
शुभस्थानगताः पापाः पापस्थानगताः शुभाः।
निर्धनो जायते बालो भोजनेन प्रपीडितः ॥१२॥
कोणेशदृष्टिहीना ये त्रिकेशैः संयुता ग्रहाः।
ते सर्वे स्वदशाकाले धनहानिकराः स्मृताः ॥१३॥
कारकाद् वा विलग्नाद् वा रन्ध्रे रिष्फे द्विजोत्तम!।
कारकाङ्गपयोर्दृष्ट्या धनहीनः प्रजायते ॥१४॥

दशमेश और नवमेश को छोड़कर अन्य पाप ग्रह लग्नगत हों तथा मारकेश से युक्त या दृष्ट हों तो जातक निर्धन होता है। त्रिक (६, ८, १२) स्थान के स्वामी जिस भाव में हों और उन भावों के स्वामी ६, ८, १२ भाव में बैठे हों तथा पाप ग्रह से युत या दृष्ट हों तो जातक दुःखों से आक्रान्त एवं निर्धन होता है। चन्द्राक्रान्त नवमांश का स्वामी यदि मारकेश से युत या मारक स्थानगत हो तो जातक निर्धन होता है। लग्नेश तथा लग्न का नवमांशपति दोनों ६, ८, १२ में मारकेश के साथ हो या दृष्ट हो तो जातक निर्धन होता है। शुभग्रह की राशि में पाप ग्रह और पाप ग्रह की राशि में शुभ ग्रह बैठे हों तो जातक भोजन से भी पीड़ित रहता है और निर्धन होता है। जो ग्रह त्रिकोणेश की दृष्टि से हीन हो और ६, ८, १२ के स्वामी से युक्त हो उस ग्रह की दशा या अन्तर्दशा-काल में धन की हानि होती है। आत्मकारक से या लग्न से ८, १२ भाव में आत्मकारक और लग्नेश की दृष्टि हो तो भी जातक धनहीन (दरिद्र) होता है ॥८-१४॥

कारकेशो व्ययं स्वस्मात् लग्नेशो लग्नतो व्ययम्।
वीक्षते चेत्तदा बालो व्ययशीलो भवेद् ध्रुवम् ॥१५॥

आत्मकारक राशि का स्वामी कारक से द्वादश भाव को एवं लग्नेश लग्न से द्वादश भाव को देखते हों तो जातक अधिक खर्च करने वाला होता है ॥१५॥

अथ दारिद्र्ययोगांस्तु कथयामि सभङ्गकान्।
धनसंस्थौ तु भौमार्की कथितौ धननाशकौ ॥१६॥
बुधेक्षितौ महावित्तं कुरुते नात्र संशयः।
निःस्वतां कुरुते तत्र रविर्नित्यं यमेक्षितः ॥१७॥
महाधनयुतं ख्यातं शन्यदृष्टः करोत्यसौ।
शनिश्चापि रवेर्दृष्ट्या फलमेवं प्रयच्छति ॥१८॥

अब मैं दारिद्र्यभङ्ग योग को कहता हूँ। धनभाव में भौम-शनि हों तो धननाशक योग होता है; परन्तु यदि उन पर बुध की दृष्टि हो तो जातक महाधनी होता है—इसमें कोई सन्देह नहीं है। धनभाव में रवि हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो जातक निर्धन होता है; किन्तु यदि शनि की दृष्टि नहीं हो तो जातक महाधनी होता है। धनभाव में शनि हो और उस पर सूर्य की दृष्टि रहे तो जातक निर्धन होता है, परन्तु रवि की दृष्टि न हो तो जातक महाधनी होता है ॥१६-१८॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां दारिद्र्ययोगाध्यायः ॥४३॥

अथायुर्दायाध्यायः ॥४४॥

मैत्रेय उवाच

धनाधनाख्ययोगौ च कथितौ भवता मुने! ।
नराणामायुषो ज्ञानं कथयस्व महामते! ॥१॥

मैत्रेय बोले—हे मुने! आपने धन तथा अधन का योग बताया। अब प्राणियों के आयुर्दाय का ज्ञान कैसे हो? उसे आप स्पष्ट करने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

साध पृष्टं त्वया विप्र! जनानां च हितेच्छया ।
कथयाम्यायुषो ज्ञानं दुर्ज्ञेयं यत् सुरैरपि ॥२॥
आयुर्ज्ञानविभेदास्तु बहुभिर्बहुधोदिताः ।
तेषां सारांशमादाय प्रवदामि तवाऽग्रतः ॥३॥
स्वोच्चनीचादि-संस्थित्या ग्रहा आयुःप्रदायकाः ।
स्वस्ववीर्यवशेनैवं नक्षत्राणि च राशयः ॥४॥
पिण्डायुः प्रथमं तत्र ग्रहस्थितिवशादहम् ।
कथयामि द्विजश्रेष्ठ! शृणुष्वेकाग्रमानसः ॥५॥
क्रमात् सूर्यादिखेटेषु स्वस्वोच्चस्थानगेष्विह ।
नन्देन्दवस्तत्त्वमितास्तिथयोऽर्काः शरेन्दवः ॥६॥
प्रकृत्यो विंशतिश्चाब्दा आयुः पिण्डाः प्रकीर्तिताः ।
नीचगेष्वेतदर्धञ्च ज्ञेयं मध्येऽनुपाततः ॥७॥
स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भादूनो भमण्डलात् ।
स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः ॥८॥

पराशर बोले—हे मैत्रेय! आपने लोगों के हित की इच्छा से अच्छा प्रश्न किया है। आयुर्दाय का वास्तविक ज्ञान तो देवों के लिए भी कठिन है। आयुर्दाय के विषय में बहुत से प्राचीन महर्षियों ने बहुत प्रकार से कहे हैं। उन सबके सारांश रूप में आपके सम्मुख मैं आयुर्दाय का ज्ञान कहता हूँ। प्रथम तो सूर्यादि ग्रह अपने-अपने उच्च-नीचादि स्थान में बैठकर तदनुरूप आयुप्रद होते हैं। अश्विन्यादि नक्षत्र तथा मेषादि राशि भी अपने-अपने बलानुसार आयुर्दायी होते हैं। हे द्विजवर! मैं पहले ग्रहाधिपतिवश पिण्डायु को आपसे कहता हूँ, एकाग्र मन से सुनो। जैसे सूर्य आदि सभी ग्रह अपने-अपने उच्च राशि में स्थित हों तो क्रम से १९, २५, १५, १२, १५, २१ और २० वर्ष आयुपिण्ड होते हैं। यदि सूर्यादि ग्रह अपनी नीच राशि में बैठे हों तो पूर्वकथित पिण्डायु का आधा एवं मध्य में स्थित हों तो अनुपात से वर्षादि पिण्डायु जानना चाहिए। जैसे जिस ग्रह का आयुर्दाय-साधन

करना हो, उस ग्रह के स्पष्ट राश्यादि में अपने उच्च राश्यादि को घटाकर शेष यदि ६ राशि से अधिक बचे तो उसी को तथा यदि घटाने पर शेष ६ राशि से अल्प रहे तो उसको १२ में घटाकर शेष राश्यादि को अपने पूर्वकथित पिण्डायु से गुणा करके विकला से राशिपर्यन्त वर्णन करने पर जो भगणादि हो वही उस ग्रह का वर्षादि आयुर्दाय होता है ॥२-८॥

उदाहरण—पूर्वसाधित स्पष्ट सूर्य ३।२०।४।२५ में सूर्य के उच्च राश्यादि ०।१०।०।० को घटाने से शेष राश्यादि ३।१०।४।२५ होता है, यह ६ राशि से अल्प है। अतः १२ राशि में घटाने पर शेष राश्यादि ८।१९।५५।३५ रहा, इस शेष को सूर्य के उच्च पठित पिण्ड १९ से गुणा करने से १५२।३६१।१०४५।६६५ विकला से राशि तक सवर्णन करने पर भगणादि १३।८।१८।३६।५ यह वर्षादि सूर्य का आयुर्दाय हुआ। इसी प्रकार सभी ग्रहों का आयुर्दाय साधन करना चाहिए।

विशेष

अस्तगस्तु हरेत् स्वार्धं विना शुक्रशनैश्चरौ।
वक्रचारं विना त्र्यंशं शत्रुराशौ हरेद् ग्रहः ॥९॥

शुक्र-शनि को छोड़कर जो अन्य ग्रह सूर्य-सान्निध्य से अस्त हुआ हो, उस ग्रह के पूर्वसाधित पिण्डायु का आधा ह्रास (कम) हो जाता है। वक्रगति ग्रहों को छोड़कर अन्य ग्रह यदि शत्रुगृह में हों तो पूर्वसाधित पिण्डायु का तृतीयांश ह्रास (कम) हो जाता है, वक्री ग्रह का शत्रु राशि में रहने पर भी ह्रास नहीं होता ॥९॥

चक्रार्धहानि

सर्वार्धत्रिचतुःपञ्चषष्ठभागं क्रमाद् ग्रहः।
व्ययाद्वामं स्थितः पापो हरेत् सौम्यश्च तद्दलम् ॥१०॥
एकभे तु बहुष्वेको हरेत् स्वांशं बली ग्रहः।
नाऽत्र क्षीणस्य चन्द्रस्य पापत्वं मुनिभिः स्मृतम् ॥११॥

द्वादश भाव से व्युत्क्रम (विपरीत) क्रम से अर्थात् १२, ११, १०, ९, ८, ७—इन ६ भावों में स्थित पाप ग्रह क्रम से अपने आयुर्दाय के समस्त, आधा, तृतीयांश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश का अपहरण करता है। यदि उक्त स्थानों में शुभ ग्रह बैठे हों तो द्वादश में आधा, एकादश में चतुर्थांश, दशम में षष्ठांश, नवम में अष्टमांश, अष्टम में दशमांश और सप्तम में द्वादशांश का ह्रास होता है। यदि एक ही भाव में अनेक ग्रह बैठे हों तो उनमें से जो ग्रह सबसे बली हो उसी के उक्त अंश का ह्रास होता है, सभी ग्रहों का नहीं होता। इस आयुर्दाय प्रकरण में क्षीण चन्द्र को मुनियों ने पाप ग्रह नहीं माना है अर्थात् क्षीण चन्द्रमा को भी शुभ ग्रह ही समझना चाहिए ॥१०-११॥

पापग्रहयुक्त लग्न में हानि

लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुषा।
भाज्या मण्डललिप्ताभिर्लब्धं वर्षादि शोधयेत् ॥१२॥

स्वायुषो लग्नगे सूर्ये मङ्गले च शनैश्चरे।
तदर्धं शुभसंदृष्टे पातयेत् द्विजसत्तम! ॥१३॥

यदि लग्न में सूर्य, मंगल, शनि में से कोई पाप ग्रह बैठा हो तो लग्न के अंशों को कला बनाकर लग्नस्थ प्रत्येक पाप ग्रह के आयुर्दाय से गुणा कर गुणनफल में २१६०० का भाग देने से जो लब्ध वर्षादि होंगे, उसको स्वकीय पूर्वसिद्ध आयुर्दाय में घटाने से जो शेष हो, वही तत्तत् ग्रहों का स्पष्ट आयुर्दाय होता है। यदि लग्न शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो पूर्वागत वर्षादि लब्धि को आधा ही घटाना चाहिए॥१२-१३॥

लग्नायुर्दाय

लग्नराशिसमाश्चाब्दा भागाद्यैरनुपाततः।
मासादिका इतीच्छन्ति लग्नायुः केऽपि कोविदाः॥१४॥
लग्नदायोंऽशतुल्यः स्यादन्तरे चाऽनुपाततः।
तत्पतौ बलसंयुक्ते राशितुल्यं च भाधिपे॥१५॥

कुछ प्राचीन आचार्यों के मत से लग्न में जितनी राशियाँ भुक्त हुई हैं उतने वर्ष और अंश से अनुपात से मासादि अर्थात् ३० अंशों में १२ मास तो लग्न के भुक्तांशादि में क्या ? लब्धि मासादि होंगे। पूर्व के वर्ष मिलाने पर लग्न का स्पष्ट वर्षादि आयुर्दाय होता है। परन्तु वस्तुत: लग्न का नवमांशपति बली हो तो नवमांशतुल्य एवं यदि लग्नराशि का स्वामी बली हो तो राशिसमान वर्ष लेना चाहिए। यदि लग्न की राशि और नवमांशपति दोनों बली हों तो दोनों का आयुर्दाय बनाकर युक्त करने पर स्पष्ट लग्न का आयुर्दाय होता है॥१४-१५॥

निसर्गायुर्दाय

अथ विप्र! निसर्गायुः खेटानां कथयाम्यहम्।
चन्द्रारज्ञसितेज्यार्कशनीनां क्रमशोऽब्दकाः॥१६॥
एकद्व्यङ्कनखा धृत्यः कृतिः पञ्चाशदेव हि।
जन्मकालात् क्रमाज् ज्ञेया दशाश्चैता निसर्गजाः॥१७॥

हे विप्र! अब मैं ग्रहों के निसर्गायु को कहता हूँ। जन्मकाल से प्रारम्भ कर क्रम से चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, गुरु, सूर्य, शनि के वर्ष १, २, ९, २०, १८, २० और ५० वर्ष—ये निसर्ग आयुर्दाय होते हैं अर्थात् चन्द्रमा का १ वर्ष, भौम का २, बुध का ९, शुक्र का २०, गुरु का १८, सूर्य का २० तथा शनि का ५० वर्ष निसर्ग आयुर्दाय होता है। यही उनकी नैसर्गिक दशा भी कही जाती है॥१६-१७॥

अंशायुर्दाय

अथांऽशायुः सलग्नानां खेटानां कथयाम्यहम्।
नवांशराशितुल्यानि खेटो वर्षाणि यच्छति॥१८॥

भादिं खगं खगैः सूर्यैर्हत्वा तद्भगणादिकम्।
कृत्वाऽर्कशेषितं ज्ञेयमब्दाद्यंशायुषः स्फुटम्॥१९॥

अब मैं लग्न और ग्रहों के अंशायुर्दाय को कहता हूँ। ग्रह जितनी राशि के नवमांश पर रहता है उतना ही वर्ष अंशायुर्दाय होता है। स्पष्ट ग्रह को ९ से गुणा कर पुनः १२ से गुणा करे और गुणनफल को सवर्णन करके भगणादि बना लेना चाहिए। भगण १२ से अधिक आने पर १२ से भाग देकर शेष लेना चाहिए, इस प्रकार भगणादितुल्य वर्षादि उस ग्रह का स्पष्ट अंशायुर्दाय होता है॥१८-१९॥

पिण्डायुरिव तत्रापि हानिं कुर्याद् विचक्षणः।
अत्राऽपरो विशेषोऽपि कैश्चिद् विज्ञैरुदाहृतः॥२०॥
साधितायुः खगे स्वोच्चे स्वर्क्षे वा त्रिगुणं स्मृतम्।
द्विगुणं स्वनवांशस्थे स्वद्रेष्काणे तथोत्तमे॥२१॥
उभयत्र गते खेटे कार्यं त्रिगुणमेव हि।
हानिद्वयेऽर्धहानिः स्यादित्यायुः प्रस्फुटं नृणाम्॥२२॥

इस अंशायुर्दाय में भी पिण्डायु के समान ही अस्त ग्रह में आधा तथा शत्रुगृहगत ग्रह हो तो तृतीयांश एवं द्वादशादि चक्रार्ध हानि प्राप्त हो तो चक्रार्ध हानि भी करना चाहिए। कुछ आचार्य इस अंशायुर्दाय में और भी विशेष संस्कार करते हुए कहते हैं कि यदि ग्रह अपने उच्च राशि में हो या अपनी राशि में बैठा हो तो पूर्वसाधित अंशायुर्दाय को त्रिगुणित करना चाहिए। यदि ग्रह अपने नवमांश में या अपने द्रेष्काण में हो तो पूर्वसिद्ध अंशायुर्दाय को द्विगुणित करना चाहिए। यदि ग्रह को त्रिगुणित और द्विगुणित दोनों प्राप्त हो तो केवल त्रिगुणित ही करना चाहिए। इसी प्रकार आधा, तृतीयांशादि प्राप्त हो तो वहाँ पर केवल अर्धहानि मात्र करना चाहिए। इस प्रकार मनुष्यों की स्पष्ट वर्षादि आयु होती है॥२०-२२॥

एवं संसाध्य चान्येषां हन्यात् स्व-स्वपरायुषा।
नृणां परायुषा भक्त्वा तेषामायुः स्फुटं भवेत्॥२३॥

इसी प्रकार अन्य प्राणियों का भी आयुर्दाय-साधन करके उसको तत्तत् प्राणियों के परमायु प्रमाण से गुणा कर मनुष्य के परमायु प्रमाण से भाग देने से जो लब्ध वर्षादि हो, उससे उन-उन प्राणियों का स्पष्ट आयुर्दाय जान लेना चाहिए॥२३॥

विभिन्न प्राणियों के परमायुःप्रमाण

अथायुः परमं वक्ष्ये नानाजातिसमुद्भवम्।
अनन्तसंख्यं देवानामृषीणां च द्विजोत्तम!॥२४॥
गृध्रोलूक-शुकध्वांक्ष-सर्पाणां च सहस्रकम्।
श्येन-वानर-भल्लूक-मण्डूकानां शतत्रयम्॥२५॥
पञ्चाशदुत्तरशतं राक्षसानां प्रकीर्तितम्।
नराणां कुञ्जराणां च विंशोत्तरशतं तथा॥२६॥

द्वात्रिंशद् घोटकानाञ्च पञ्चविंशत् खरोष्ट्रयोः ।
वृषाणां महिषाणां च चतुर्विंशतिवत्सरम् ॥२७॥
विंशत्यायुर्मयूराणां छागादीनां च षोडश ।
हंसानां पञ्चनव च पिकानां द्वादशाब्दकाः ॥२८॥
शुनां पारावतानां च कुक्कुटानां समाष्टकम् ।
बुद्बुदाद्यण्डजानां च परायुः सप्त वत्सराः ॥२९॥

अब मैं विविध योनियों में उत्पन्न विभिन्न प्राणियों के परमायु को कहता हूँ। हे द्विजोत्तम ! देवताओं और ऋषियों के परमायु तो अनन्त (सर्वाधिक) वर्ष होते हैं। गीध, उल्लू, शुक, काक तथा सर्प की परम आयु एक हजार वर्ष; बाज, भल्लूक, मेढक की परम आयु ३०० वर्ष; राक्षसों की १५० वर्ष; मानव और हाथियों की १२० वर्ष; घोड़ों की ३२ वर्ष; गदहे और ऊँटों की परम आयु २५ वर्ष; बैल और भैंस की २४ वर्ष; मयूर की २० वर्ष; बकरे और भेंड़ की १६ वर्ष; हंस की १४ वर्ष; कोयल की १२ वर्ष; कुत्ता, कबूतर और मुर्गे की ८ वर्ष तथा बुलबुल आदि पक्षियों की ७ वर्ष परम आयु होती है ॥२४-२९॥

उदाहरण—बैल का स्पष्ट आयुर्दाय सिद्ध करना है तो उसके जन्मलग्न और जन्मकालिक ग्रहों से मनुष्य के आयुर्दाय-साधन की तरह आयुर्दाय वर्षादि ४०।९।२०।२५।१५ को बैल के परमायु प्रमाण २४ वर्ष से गुणा कर गुणनफल में मनुष्य की परम आयु १२० वर्ष से भाग दिया तो लब्ध वर्षादि ८।१९।४।१०।६ हुआ; यही बैल का स्पष्ट आयुर्दाय हुआ। इसी विधि से अन्य (प्रत्येक) प्राणियों का भी आयुर्दाय बनाना चाहिए ॥२४-२९॥

यदेतदधुना प्रोक्तं त्रिधायुर्द्विजसत्तम ! ।
तेषु किञ्च कदा ग्राह्यमिति ते कथयाम्यहम् ॥३०॥
विलग्नपे बलोपेते शुभदृष्टेंऽशसम्भवम् ।
रवौ पिण्डोद्भवग्राह्यं चन्द्रे नैसर्गिकं तथा ॥३१॥

हे द्विजसत्तम ! मैंने जो ३ प्रकार का आयुर्दाय कहा है, उन आयुर्दायों में कौन-सा आयुर्दाय कब लेना चाहिए, उसे अब मैं कहता हूँ। लग्नेश, रवि और चन्द्रमा—इन तीनों में यदि लग्नेश सर्वाधिक बली हो तो अंशायु, रवि बली हो तो पिण्डायु और चन्द्रमा सर्वाधिक बली हो तो निसर्गायु लेना चाहिए ॥३०-३१॥

बलसाम्ये द्वयोर्योगदलमायुः प्रकीर्तितम् ।
त्रयाणां त्रियुतेस्त्र्यंशसमं ज्ञेयं द्विजोत्तम ! ॥३२॥

यदि दो ग्रहों के बल तुल्य हों तो दोनों आयुर्दाय का योग करके उसका आधा लेना चाहिए। यदि तीन ग्रहों के बल समान हों तो तीनों (लग्नेश, रवि, चन्द्र) के आयुर्दाय का योग करके उसका तृतीयांश लेना चाहिए ॥३२॥

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि शृणु त्वं द्विजसत्तम ! ।
कैश्चिल्लग्नाष्टमेशाभ्यां मन्देन्दुभ्यां तथैव च ॥३३॥

लग्नहोराविलग्नाभ्यां स्फुटमायुः प्रकीर्तितम् ।
आदौ लग्नाष्टमेशाभ्यां योगमेकं विचिन्तयेत् ॥३४॥
द्वितीयं मन्दचन्द्राभ्यां योगं पश्येद् द्विजोत्तम ! ।
लग्नहोराविलग्नाभ्यां तृतीयं परिचिन्तयेत् ॥३५॥
चरराशौ स्थितौ द्वौ चेत्तदा दीर्घमुदाहृतम् ।
एकः स्थिरेऽपरो द्वन्द्वे दीर्घमायुस्तथापि हि ॥३६॥
एकश्चरे स्थिरेऽन्यश्चेत् तदा मध्यमुदाहृतम् ।
द्वौ वा द्वन्द्वे स्थितौ विप्र ! मध्यमायुस्तथापि च ॥३७॥
एकश्चरेऽपरो द्वन्द्वे द्वौ वा स्थिरगतौ तदा ।
जातकस्य तदाऽल्पायुर्ज्ञेयमेवं द्विजोत्तम ! ॥३८॥
योगत्रयेण योगाभ्यां सिद्धं यद् ग्राह्यमेव तत् ।
योगत्रयविसंवादे लग्नहोराविलग्नतः ॥३९॥
लग्ने वा सप्तमे चन्द्रे ग्राह्यं मन्देन्दुतस्तदा ।
ह्रासो वृद्धिश्च कक्ष्याया विचिन्त्या सर्वदा बुधैः ॥४०॥

हे द्विजसत्तम ! अब मैं आयुर्दाय-साधन की अन्य विधि को कहता हूँ, आप सुनिये । कितने ही प्राचीन आचार्यों ने लग्नेश तथा अष्टमेश के माध्यम से, शनि और चन्द्रमा के माध्यम से एवं लग्न और होरालग्न के माध्यम से स्पष्ट आयुर्दाय-साधन किये हैं। जैसे लग्नेश-अष्टमेश से एक योग, शनि और चन्द्रमा से दूसरा योग एवं लग्न और होरालग्न से तीसरा योग विचार करना चाहिए। दोनों चर राशि में हों तो जातक दीर्घायु होता है। एक स्थिर राशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो भी दीर्घायु होता है एवं एक चर राशि में और दूसरा स्थिर राशि में हो तो मध्यमायु होता है। हे विप्र ! दोनों द्विस्वभाव राशि में बैठे हों तो भी मध्यमायु होता है। एक चर राशि में और दूसरा द्विस्वभाव राशि में स्थित हो तो अल्पायु होता है या दोनों स्थिर राशि में बैठे हों तो भी अल्पायु ही जानना चाहिए। इस प्रकार तीनों योगों का अवलोकन कर तीनों से या दो योगों से जो आयु सिद्ध हो, उसी का ग्रहण करना चाहिए। यदि तीनों योगों में भिन्नता आ जाय तो लग्न और होरालग्न से निष्पन्न आयु का ग्रहण करना चाहिए, परन्तु यदि लग्न या सप्तम में चन्द्रमा हो तो शनि और चन्द्रमा से उत्पन्न आयुर्दाय को ही ग्रहण करना चाहिए। विद्वानों को हानि और वृद्धि का विचार करके स्पष्ट आयुर्दाय का निर्धारण करना चाहिए ॥३३-४०॥

दीर्घायुयोग

दीर्घे योगत्रेणैवं नखचन्द्रसमाब्दकाः ।
योगद्वयेन वस्वाशा योगैकेन रसाङ्कका: ॥४१॥

यदि तीनों प्रकार से दीर्घायु प्राप्त हो तो १२० वर्ष, यदि दो प्रकार से दीर्घायु प्राप्त हो तो १०८ वर्ष और यदि एक प्रकार दीर्घायु योग बनता हो तो ९६ वर्ष आयुर्दाय जानना चाहिए ॥४१॥

मध्यमायुयोग

मध्ये योगत्रयेणैकं खाष्टतुल्याब्दकाः स्मृताः ।
द्व्यगा योगद्वयेनाऽत्र योगैकेनाब्धिषण्मिताः ॥४२॥

यदि तीनों प्रकार से मध्यमायु योग प्राप्त हो तो ८० वर्ष, यदि दो प्रकार से मध्यमायु प्राप्त हो तो ७२ वर्ष और यदि एक प्रकार से मध्यमायु प्राप्त हो तो ६४ वर्ष आयुर्दाय जानना चांहिए ॥४२॥

अल्पायुयोग

अल्पे योगत्रयेणाऽत्र द्वाविंशन्मितवत्सराः ।
योगद्वयेन षट्त्रिंशत् योगैकेन च खाब्धयः ॥४३॥
एवं दीर्घसमाल्पेषु खाब्धयो रसवह्नयः ।
खण्डा दन्तमितास्तेभ्यः स्फुटमायुः प्रसाधयेत् ॥४४॥

यदि तीनों प्रकार से अल्पायु प्राप्त हो तो ३२ वर्ष, दो प्रकार से अल्पायु योग प्राप्त हो तो ३६ वर्ष और एक प्रकार से अल्पायु योग प्राप्त हो तो ४० वर्ष आयुर्दाय जानना चाहिए। इस प्रकार प्राप्त दीर्घादि आयु में ४०, ३६ एवं ३२ खण्ड के माध्यम से स्पष्ट आयु का साधन करना चाहिए ॥४३-४४॥

आयुःस्पष्टीकरण

पूर्णं राश्यादिगे चान्ते हानिर्मध्येऽनुपाततः ।
योगकारकखेटांशयोगस्तत्संख्यया हृतः ॥४५॥
लब्धांशास्तु यथाप्राप्तखण्डघ्नास्त्रिंशतोद्धृताः ।
लब्धवर्षादिभिर्हीनं प्राप्तायुः प्रस्फुटं भवेत् ॥४६॥

पूर्वोक्त योगकारक ग्रह राशि के आरम्भ में हो तो पूर्णायु और राश्यन्त में हो तो खण्डसमान हानि होती है। यदि योगकारक ग्रह राशि के मध्य में हो तो अनुपात से हानि का ज्ञान करना चाहिए। जैसे जितने योगकारक ग्रह हैं उनके अंशों का योग करके योग में योगकारक ग्रहसंख्या से भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो, उसको प्राप्त खण्ड से गुणा कर गुणनफल में ३० का भाग देकर लब्ध वर्षादि को प्राप्त आयुर्दाय की वर्षसंख्या में शोधन करने से जो शेष हो, वह स्पष्ट आयुर्दाय हो जाता है ॥४५-४६॥

स्पष्टार्थ चक्र

दीर्घायु	योगत्रये १२०	योगद्वये १०८	एकयोगे ९६
मध्यायु	योगत्रये ८०	योगद्वये ७२	एकयोगे ६४
अल्पायु	एकयोगे ४०	योगद्वये ३६	योगत्रये ३२
खण्ड	४०	३६	३२

विशेष

योगहेतौ शनौ कक्ष्याह्रासोऽन्यैर्वृद्धिरुच्यते।
न स्वर्क्षतुङ्गे नो वा पापमात्रयुतेक्षिते ॥४७॥

पूर्वकथित दीर्घादि योगकारक ग्रहों में यदि शनि योगकारक ग्रह हो तो कक्ष्या का ह्रास होता है, परन्तु कोई-कोई आचार्य शनि का योगकारक हो तो कक्ष्या की वृद्धि भी मानते हैं। यदि शनि अपने गृह (१०, ११) में हो या अपनी उच्च राशि में हो तो कक्ष्या की ह्रास या वृद्धि नहीं होती तथा शनि केवल पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो भी कक्ष्या की ह्रास तथा वृद्धि नहीं होती है ॥४७॥

लग्नसप्तमगे जीवे शुभमात्रयुतेक्षिते।
कथितस्यायुषो विप्र! कक्ष्यावृद्धिः प्रजायते ॥४८॥

हे विप्र! लग्न में या सप्तम भाव में गुरु बैठे हों तथा मात्र शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हों तो कथित आयु की कक्ष्या-वृद्धि हो जाती है ॥४८॥

कक्षा-ह्रास-वृद्धि लक्षण

अनायुश्चेद् भवेदल्पमल्पान्मध्यं प्रजायते।
मध्यमाज्जायते दीर्घं दीर्घायुश्चेत्ततोऽधिकम् ॥४९॥
योगहेतौ गुरावेवं कक्ष्यावृद्धेश्च लक्षणम्।
एतस्माद् वैपरीत्येन कक्ष्याह्रासः शनौ भवेत् ॥५०॥

हे द्विजोत्तम! यदि कक्ष्या-वृद्धि योग हो तो अनायु में स्वल्पायु, स्वल्पायु में मध्यमायु, मध्यमायु में दीर्घायु और दीर्घायु में उससे भी अधिक आयु जानना चाहिए। इस प्रकार गुरु का योग होने पर कक्ष्या-वृद्धि जाननी चाहिए। शनि का योग होने पर इससे विपरीत यानी अमितायु में दीर्घायु, दीर्घायु में मध्यमायु, मध्यमायु में अल्पायु, अल्पायु में हीनायु—इस प्रकार कक्ष्या का ह्रास जानना चाहिए। फिर इसी के अनुरूप आयुर्दाय का निर्धारण करना चाहिए ॥४९-५०॥

मैत्रेय उवाच

आयुषो बहुधा भेदाः कथिता भवताऽधुना।
कतिधा सा कदाऽनायुरमितायुः कदा भवेत् ॥५१॥

मैत्रेय ने कहा कि हे प्रभो! आपने बहुत प्रकार के आयुर्दाय के भेद बता दिये, वह सब कितने प्रकार के हैं और कब कैसे योग में अनायु तथा कैसे योग में अमितायु योग होता है, उसे भी कहने की कृपा करें ॥५१॥

पराशर उवाच

बालारिष्टं योगरिष्टमल्पं मध्यञ्च दीर्घकम्।
दिव्यं चैवाऽमितं चैवं सप्तधायुः प्रकीर्तितम् ॥५२॥

पराशर जी ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! बालारिष्ट, योगारिष्ट, मध्य, अल्प, दीर्घ, दिव्य और अमित—इस तरह सात प्रकार के आयुर्दाय होते हैं ।।५२।।

बालारिष्टे समा अष्टौ योगारिष्टे च विंशतिः ।
द्वात्रिंशद् वत्सरा अल्पे चतुष्षष्टिस्तु मध्यमे ।।५३।।
विंशाधिकशतं दीर्घे दिव्ये वर्षसहस्रकम् ।
तदूर्ध्वममितं पुण्यैरमितैराप्यते जनैः ।।५४।।

हे द्विजसत्तम ! बालारिष्ट में ८ वर्ष, योगारिष्ट में २० वर्ष, अल्पायु में ३२ वर्ष, मध्यमायु में ६४ वर्ष, दीघायु में १२० वर्ष और दिव्यायु में १००० वर्ष की आयु होती है । इससे भी अधिक अमितायु में जानना चाहिए, जो मात्र अमित पुण्यकर्ता को प्राप्त होता है ।।५३-५४।।

अमितायुयोग

चन्द्रेज्यौ च कुलीराङ्गे ज्ञसितौ केन्द्रसंस्थितौ ।
अन्ये त्र्यायारिगाः खेटा अमितायुस्तदा भवेत् ।।५५।।

कर्कट लग्न में जन्म हो और उसमें चन्द्र, गुरु बैठे हों; बुध, शुक्र केन्द्र में हों तथा अन्य ग्रह ३, ६, ११ भावों में बैठे हों तो अमित आयुर्दाय जानना चाहिए ।।५५।।

दिव्य आयुयोग

सौम्याः केन्द्रत्रिकोणस्थाः पापास्त्र्यायारिगास्तथा ।
शुभराशौ स्थिते रन्ध्रे दिव्यमायुस्तदा भवेत् ।।५६।।

समस्त शुभ ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों और समस्त पाप ग्रह ३, ६, ११ भावों में बैठे हों तथा अष्टम भाव में शुभ ग्रह की राशि हो तो दिव्यायु योग होता है ।।५६।।

युगान्तादियोग

गोपुरांशे गुरौ केन्द्रे शुक्रे पारावतांशके ।
त्रिकोणे कर्कटे लग्ने युगान्तायुस्तदा द्विज ! ।।५७।।

गुरु अपने गोपुरांश (स्वकीय चतुर्वर्ग) में रहकर केन्द्र में स्थित हो, शुक्र अपने पारावतांश (स्वकीय षड्वर्ग) में रहकर त्रिकोण में स्थित हो एवं कर्कट लग्न में जन्म हो तो युगान्तपर्यन्त आयुर्दाय होता है ।।५७।।

मुनितुल्यायुयोग

देवलोकांशके मन्दे कुजे पारावतांशके ।
गुरौ सिंहासनांशेऽङ्गे जातो मुनिसमो भवेत् ।।५८।।

यदि शनि अपने देवलोकांश (स्वकीय सप्तवर्ग) में हो, मंगल अपने पारावतांश (स्वकीय षड्वर्ग) में हो और गुरु अपने सिंहासनांश (स्वकीय पञ्चवर्ग) में रहकर लग्न में बैठा हो तो जातक मुनितुल्य आयु वाला या स्वयं मुनि होता है ।।५८।।

पूर्णायुयोग

सुयोगैर्वर्धते ह्यायुः कुयोगैर्हीयते तथा ।
अतो योगानहं वक्ष्ये पूर्णमध्याल्पकारकान् ॥५९॥
केन्द्रे शुभग्रहैर्युक्ते लग्नेशे च शुभान्विते ।
सन्दृष्टे गुरुणा वाऽपि पूर्णमायुस्तदा भवेत् ॥६०॥
केन्द्रस्थिते विलग्नेशे गुरुशुक्रसमन्विते ।
ताभ्यां निरीक्षिते वाऽपि पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६१॥
उच्चस्थितैस्त्रिभिः खेटैर्लग्नरन्ध्रेशसंयुतैः ।
अष्टमे पापहीने च पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६२॥
अष्टमस्थैस्त्रिभिः खेटैः स्वोच्चमित्रस्ववर्गगैः ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते दीर्घमायुस्तदा भवेत् ॥६३॥
स्वभोच्चस्थेन केनापि नभोगेन समन्वितः ।
अष्टमेशः शनिर्वापि दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६४॥
त्रिषडायगतैः पापैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः ।
लग्नेशे बलसंयुक्ते दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६५॥
षट्सप्तरन्ध्रभावेषु शुभखेटयुतेषु च ।
त्रिभवेषु च पापेषु पूर्णमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६६॥
शत्रुव्ययगताः पापा लग्नेशो यदि केन्द्रगः ।
रविमित्रं च रन्ध्रेशः पूर्णमायुस्तथापि हि ॥६७॥
आयुःस्थानस्थिताः पापाः कर्मेशः स्वोच्चगो यदा ।
तथापि दीर्घमायुः स्याद् विज्ञेयं द्विजसत्तम ! ॥६८॥
द्विस्वभावगृहे लग्ने लग्नेशे केन्द्रसंस्थिते ।
स्वोच्चराशित्रिकोणे वा दीर्घमायुर्विनिर्दिशेत् ॥६९॥
द्विस्वभावगृहे लग्ने लग्नेशाद् बलसंयुतात् ।
द्वौ पापौ यदि केन्द्रस्थौ दीर्घमायुस्तदा भवेत् ॥७०॥

गणित से निष्पन्न आयुर्दाय भी ग्रहजन्य सुयोगों से बढ़ जाता है और ग्रहजन्य कुयोगों से घट जाता है; अत: अब उन योगों को कहता हूँ। समस्त शुभ ग्रह केन्द्र में बैठे हों और लग्नेश शुभ ग्रह से युक्त हो तथा गुरु के द्वारा दृष्ट हो तो पूर्णायुकारक योग होता है। लग्नेश केन्द्र में हो तथा गुरु शुक्र से युत या दृष्ट हो तो पूर्णायु योगकारक होता है। लग्नेश तथा अष्टमेशसहित तीन ग्रह अपने उच्च में स्थित हों और अष्टम भाव में पाप ग्रह नहीं हो तो पूर्णायु योगकारक होता है। स्वोच्च, स्वमित्र, स्ववर्ग में स्थित होकर तीन ग्रह अष्टम भाव में बैठे हों और लग्नेश बलयुक्त हो तो पूर्णायुकारक योग होता है। अपने उच्च का या स्वराशि का किसी भी ग्रह के साथ अष्टमेश अथवा शनि युक्त हो तो भी पूर्णायु

योगकारक होता है। ३, ६, ११ भावों में पाप ग्रह हो तथा केन्द्र त्रिकोण में शुभ ग्रह हो और लग्नेश बलवान हो तो दीर्घायु का निर्देश करना चाहिए। ६, ७, ८ भावों में शुभ ग्रह युत हों और ३, ११ भावों में पाप ग्रह बैठे हों तो पूर्णायु योगकारक होते हैं। ६, १२ में पाप ग्रह हों तथां लग्नेश केन्द्रगत हो और अष्टमेश सूर्य का मित्र हो तो पूर्णायुयोगकारक होता है। अष्टम भाव में पाप ग्रह बैठे हों और कर्मेश अपने उच्च में हो तो पूर्णायुयोगकारक होता है। द्विस्वभाव राशि का लग्न हो, लग्नेश केन्द्र में हो या अपने उच्च या स्वगृह या त्रिकोण में हो तो पूर्णायु योगकारक होता है। द्विस्वभावगत लग्न हो और बलवान लग्नेश से दो पाप ग्रह यदि केन्द्र में हो तो भी पूर्णायुयोगकारक होता है ॥५९-७०॥

लग्नाष्टमेशयोर्मध्ये यः खेटः प्रबलो भवेत्।
तस्मिन् केन्द्रगते दीर्घं मध्यं पणफरस्थिते ॥७१॥
आपोक्लिमे स्थिते स्वल्पमायुर्भवति निश्चितम्।
लग्नेशे च रवेर्मित्रे दीर्घमायुं समे समम् ॥७२॥
शत्रौ स्वल्पं वदेदित्थमष्टमेशादपि स्मृतम्।
मित्रमध्याऽरिभावस्थे तस्मिन्नेवं फलं वदेत् ॥७३॥

लग्नेश और अष्टमेश में जो ग्रह बलवान हो वह केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणकर में हो तो मध्यमायु एवं आपोक्लीम में हो तो अल्प आयुर्दाय योग होता है। यदि लग्नेश रवि का मित्र हो तो दीर्घायु, सम हो तो मध्यमायु और लग्नेश रवि का शत्रु हो तो अल्पायु योगकारक होता है। लग्नेश के सदृश ही अष्टमेश से भी उक्त प्रकार से फल जानना चाहिए। लग्नेश तथा अष्टमेश अपने मित्र राशि में हों तो जातक को दीर्घायु, सम राशि में रहने पर मध्यमायु और शत्रुराशि में रहने पर अल्पायु जानना चाहिए ॥७१-७३॥

अल्पायुयोग

सहजाधीशभूपुत्रौ द्वौ रन्ध्रेशशनैश्चरौ।
अस्तौ वा पापदृग्युक्तौ स्वल्पमायुः प्रच्छयतः ॥७४॥
षष्ठेऽष्टमे व्यये वाऽपि लग्नेशे पापसंयुते।
स्वल्पायुरनपत्यो वा शुभदृग्योगवर्जिते ॥७५॥
चतुष्टयगते पापे शुभदृष्टिविवर्जिते।
बलहीने विलग्नेशे स्वल्पमायुर्विनिर्दिशेत् ॥७६॥
व्ययार्थौ पापसंयुक्तौ शुभदृग्योगवर्जितौ।
स्वल्पमायुस्तदा ज्ञेयं निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥७७॥
लग्नरन्ध्रेशयोरेवं दुःस्थयोर्बलहीनयोः।
स्वल्पमायुर्बुधैर्ज्ञेयं मिश्रयोगाच्च मध्यगम् ॥७८॥

तृतीय-स्थानाधिपति और मंगल—ये दोनों या अष्टमेश तथा शनि—ये दोनों ग्रह अस्त हों या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हों तो अल्पायु योग होता है। यदि लग्नेश पाप ग्रह

से युक्त होकर ६, ८, १२ भावों में बैठा हो और शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो जातक अल्पायु या सन्तानहीन होता है। यदि केन्द्र में पाप ग्रह हो, शुभ ग्रह की दृष्टि न हो और लग्नेश बलरहित हो तो जातक अल्पायु होता है। २-१२ भाव में पाप ग्रह हो और शुभ ग्रह की दृष्टि या योग न हो तो भी जातक अल्पायु होता है। इसी प्रकार लग्नेश, अष्टमेश दोनों ग्रह अस्त-नीचादि-गत हों और निर्बल हों तो अल्पायु योग होता है। मिश्रित योग से मिश्रित फल जानना चाहिए ।।७४-७८।।

।। इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामायुर्दायाध्यायः ।।४४।।

अथ मारकभेदाध्यायः ॥४५॥

मैत्रेय उवाच

बहुधाऽऽयुर्भवा योगाः कथिता भवताऽधुना ।
नृणां मारकभेदाश्च कथ्यन्तां कृपया मुने ! ॥१॥

मैत्रेय ने कहा हे महामुने ! इस समय तक आपने अनेक प्रकार के आयुर्दाय योग को कहा, अब आप मनुष्यों के मारक ग्रहों के भेद को बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

तृतीयमष्टमस्थानमायुःस्थानं द्वयं द्विज ! ।
मारकं तद्व्ययस्थानं द्वितीयं सप्तमं तथा ॥२॥
तत्रापि सप्तमस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम् ।
तयोरीशौ तत्र गताः पापिनस्तेन संयुताः ॥३॥
ये खेटाः पापिनस्ते च सर्वे मारकसंज्ञकाः ।
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम् ॥४॥
अल्प-मध्यम-पूर्णायुः प्रमाणमिह योगजम् ।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां मारकं परिचिन्तयेत् ॥५॥

पराशर ने कहा कि हे द्विज ! प्राणियों के तृतीय तथा अष्टम स्थान आयुस्थान होते हैं। इन दोनों के व्यय स्थान, द्वितीय तथा सप्तम भाव मारक स्थान होते हैं। उन दोनों मारक स्थानों में द्वितीय स्थान प्रबल मारक स्थान होता है। उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों के तथा उन (सप्तम, द्वितीय) स्थानों में रहने वाले पाप ग्रह, द्वितीयेश तथा सप्तमेश के साथ रहने वाले पाप ग्रह—ये सभी मारक-संज्ञक होते हैं। उन्हीं ग्रहों की दशा या अन्तर्दशा में अल्प, मध्य, पूर्णायु आयुर्दाय के अनुरूप मृत्यु की सम्भावना होती है। अत एव पहले योगज के अनुसार अल्प, मध्य, दीर्घ आदि आयुर्दाय का ज्ञान करके तदनन्तर मारक का विचार करना चाहिए ॥२-५॥

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः ।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च ॥६॥
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित् ।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ॥७॥

गणित से समुत्पन्न आयुर्दाय के योगानुसार प्राणियों को पूर्वकथित मारक का समय उपलब्ध न हो तो व्ययेश के सम्बन्धी शुभ ग्रह की दशा में भी मरण होता है एवं अष्टमेश की दशा में या केवल पाप ग्रह की दशा में भी कभी-कभी मरण होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त मारकेश के अभाव में प्राणियों के मरण का विचार विद्वानों को कल्पना द्वारा करना चाहिए ॥६-७॥

सत्यपि स्वेन सम्बन्धे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसम्बन्धे मारकः पापभुक्तिषु ॥८॥

मारक-कारक ग्रह अपने सम्बन्धी होने पर भी शुभ ग्रह की अन्तर्दशा में नहीं मारता, परन्तु अपने से सम्बन्धित न होने पर भी पापग्रह की अन्तर्दशा में मृत्युदायक होता है ॥८॥

मारकग्रहसम्बन्धान्निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्यत्र न संशयः ॥९॥

यदि शनि पाप फलप्रद हो और मारकेश के साथ उसका सम्बन्ध (दृष्ट, युतादि) हो तो सभी मारक-कारक ग्रहों को हटाकर स्वतः मारक होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥९॥

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि द्विज! मारकलक्षणम्।
त्रिविधाश्चायुषो योगाः स्वल्पायुर्ममध्यमोत्तमाः ॥१०॥
द्वात्रिंशत् पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततः परम्।
चतुष्षष्ट्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम् ॥११॥
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं ज्ञातव्यं द्विजसत्तम!।
जनैर्विंशतिवर्षान्तमायुर्ज्ञातुं न शक्यते ॥१२॥
जप-होम-चिकित्साद्यैर्बालरक्षां हि कारयेत्।
म्रियन्ते पितृदोषैश्च केचिन्मातृग्रहैरपि ॥१३॥
केचित् स्वारिष्टयोगाच्च त्रिविधा बालमृत्यवः।
ततः परं नृणामायुर्गणयेद् द्विजसत्तम! ॥१४॥

हे द्विज! और भी मारक ग्रह के लक्षण कहता हूँ। पूर्व में जो अल्पायु, मध्यमायु और पूर्णायु—यह तीन प्रकार का आयुर्दाय बताया गया है, उनमें ३२ वर्ष से पूर्व अल्पायु, तदनन्तर ६४ वर्षपर्यन्त मध्यमायु और उसके बाद १०० वर्ष तक दीर्घायु तथा १०० वर्ष से ऊपर उत्तमायु जानना चाहिए। २० वर्ष तक जातकों के आयुर्दाय का निर्धारण करना कठिन होता है। अतः जन्म से २० वर्ष तक पापग्रहों से रक्षा हेतु जप-होम, चिकित्सादि द्वारा जातक की रक्षा करनी चाहिए। २० वर्ष तक कोई पिता के दोष से, कोई माता के दोष से, कोई अपने पूर्वार्जित कुकर्म से उत्पन्न अरिष्ट योगों से मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अतः बाल्यावस्था में मरण के तीन कारण होते हैं। इसलिए २० वर्ष के बाद ही आयुर्दाय का गणित करके आयु का निर्धारण करना चाहिए ॥१०-१४॥

अथाऽन्यदपि वक्ष्यामि नृणां मारकलक्षणम्।
अल्पायुर्योगजातस्य विपद्भे च मृतिर्भवेत् ॥१५॥
मध्यायुर्योगजस्यैवं प्रत्यरौ च मृतिर्भवेत्।
दीर्घायुर्योगजातस्य वधभे तु मृतिर्भवेत् ॥१६॥
द्वाविंशत्र्यंशपश्चैव तथा वैनाशिकाधिपः।

विपत्तारा-प्रत्यरीशा वधभेशस्तथैव च ॥१७॥
आद्यन्तपौ च विज्ञेयौ चन्द्राक्रान्तगृहाद् द्विज ! ।
मारकौ पापखेटौ तौ शुभौ चेद्रोगदौ स्मृतौ ॥१८॥
षष्ठाधिपदशायां च नृणां निधनसम्भवः ।
षष्ठाष्टरिष्फनाथानामपहारे मृतिर्भवेत् ॥१९॥
मारका बहवः खेटा यदि वीर्यसमन्विताः ।
तत्तद्दशान्तरे विप्र ! रोगकष्टादिसम्भवः ॥२०॥
उक्ता ये मारकास्तेषु प्रबलो मुख्यमारकः ।
तदवस्थानुसारेण मृतिं वा कष्टमादिशेत् ॥२१॥

हे द्विज ! और भी मारक के लक्षण कहता हूँ। अल्पायु योग में जन्म लेने वाले जातक का विपत्ति नामक तारा में, मध्यमायु वालों को प्रत्यरि नामक तारा में और दीर्घायु योग में जन्म लेने वालों को वध नामक तारा में मरण की सम्भावना कहनी चाहिए। लग्न के द्रेष्काण से २२ वाँ जो द्रेष्काण हो, उसका जो स्वामी हो उसमें, वैनाशिक नक्षत्र (अपने जन्मनक्षत्र से २३ वाँ नक्षत्र) का स्वामी एवं विपत्, प्रत्यरी, वध ताराओं के स्वामी, चन्द्रमा जिस राशि में हो, उससे द्वितीय तथा द्वादश स्थान के स्वामी, दोनों पापी ग्रह हों तो ये सब मारक-कारक होते हैं। यदि दोनों शुभ ग्रह हों तो रोगकारक होते हैं। षष्ठेश की दशा में भी मरण की सम्भावना होती है। मारकेश की महादशा में षष्ठेश, अष्टमेश तथा द्वादशेश की अन्तर्दशा में भी मृत्यु की सम्भावना रहती है। यदि बहुत मारक-कारक ग्रह हों तो उनमें जो ग्रह सर्वाधिक बलयुक्त हो उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण या रोगादि कष्टकारक समय का प्रादुर्भाव होता है। उक्त मारकेश कारक ग्रहों में सबसे बली ग्रह ही मुख्य मारक होता है। अतः उस ग्रह की अवस्था के अनुरूप जातक का मरण या कष्टदायक समय का भय जानना चाहिए ॥१५-२१॥

राहु-केतु का मारकत्वविवेचन

राहुश्चेदथवा केतुर्लग्ने कामेऽष्टमे व्यये ।
मारकेशान्मदे वाऽपि मारकेशेन संयुतः ॥२२॥
मारकः स च विज्ञेयः स्वदशान्तर्दशास्वपि ।
मकरे वृश्चिके जन्म राहुस्तस्य मृतिप्रदः ॥२३॥
षष्ठाऽष्टरिष्फगो राहुस्तद्दाये कष्टदो भवेत् ।
शुभग्रहयुतो दृष्टो न तदा कष्टकृन्मतः ॥२४॥

राहु अथवा केतु लग्न में, सप्तम, अष्टम या द्वादश भाव में हो अथवा मारकेश से सप्तम में हो या मारकेश से युक्त हो तो वह भी मारक होता है। अतः उसकी दशा या अन्तर्दशा में मरण का भय होता है। मकर और वृश्चिक लग्न में जन्म लेने वालों के लिए राहु मारक होता है। उसकी दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु की सम्भावना होती है। षष्ठ,

अष्टम, द्वादश में राहु स्थित हो तो उसकी दशा में कष्टदायक होता है। यदि उस पर शुभ ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट न हो तो कष्टकारक नहीं होता ॥२२-२४॥

तृतीय स्थान से मरणकारण-कथन

लग्नात्तृतीयभावे तु बलिना रविणा युते।
राजहेतोश्च मरणं तस्य ज्ञेयं द्विजोत्तम! ॥२५॥
तृतीये चेन्दुना युक्ते दृष्टे वा यक्ष्मणा मृतिः।
कुजेन व्रणशस्त्राग्नि-दाहाद्यैर्मरणं भवेत् ॥२६॥
तृतीये शनि-राहुभ्यां युक्ते दृष्टेऽपि वा द्विज!।
विषार्तितो मृतिर्वाच्या जलाद्वा वह्निपीडनात् ॥२७॥
गर्तादुच्चात् प्रपतनाद् बन्धनाद् वा मृतिर्भवेत्।
तृतीये चन्द्रमान्दिभ्यां युक्ते वा वीक्षिते द्विज! ॥२८॥
कृमिकुष्ठादिना तस्य मरणं भवति ध्रुवम्।
तृतीये बुधसंयुक्ते वीक्षिते वापि तेन च ॥२९॥
ज्वरेण मरणं तस्य विज्ञेयं द्विजसत्तम!।
तृतीये गुरुणा युक्ते दृष्टे शोफादिना मृतिः ॥३०॥
तृतीये भृगुयुग्दृष्टे मेहरोगेण तन्मृतिः।
बहुखेटयुते तस्मिन् बहुरोगभवा मृतिः ॥३१॥

लग्न से तृतीय भाव बलवान रवि से युत हो तो राजा के कारण से उसकी मृत्यु होती है। तृतीय भाव चन्द्रमा से युत या दृष्ट हो तो यक्ष्म (क्षय) रोग से उसकी मृत्यु होती है। यदि तृतीय भाव मंगल से युक्त या दृष्ट हो तो व्रण (घाव) या अग्नि से, तृतीय में शनि, राहु से युत या दृष्ट हो तो विष से या जल से अथवा अग्निपीड़ा से या गड्ढे में गिरकर या उच्च स्थान से गिरकर या बन्धन से उसकी मृत्यु हो जाती है। तृतीय भाव में चन्द्रमा और मान्दि (गुलिक) युक्त हो या दृष्ट हो तो कीड़े से अथवा कुष्ठादि रोग से, तृतीय भाव में बुध से युक्त हो या दृष्ट हो तो ज्वर से, तृतीय भाव में गुरु से युक्त या दृष्ट हो तो शोफ आदि रोग से, तृतीय भाव में शुक्र से युक्त या दृष्ट हो तो प्रमेह रोग से उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि तृतीय भाव में बहुत ग्रहों के योग अथवा दृष्टि हो तो उन सभी ग्रहों के कारणों से उस जातक की मृत्यु जाननी चाहिए ॥२५-३१॥

मरण का स्थान-कथन

तृतीये च शुभैर्युक्ते शुभदेशे मृतिर्भवेत्।
पापैश्च कीकटे देशे मिश्रैर्मिश्रस्थले मृतिः ॥३२॥

यदि तृतीय भाव शुभ ग्रह से युत अथवा दृष्ट हो तो शुभ स्थान (काशी आदि पुण्य तीर्थों) में मरण होता है। यदि तृतीय भाव पापी ग्रहों से युक्त हो या दृष्ट हो तो अशुभ

स्थान में मरण होता है। शुभ तथा अशुभ दोनों ग्रह तृतीय भाव में बैठे हों या देखते हों तो मध्यम स्थान में उस जातक का देहावसान होता है ॥३२॥

ज्ञानाज्ञानपूर्वक मरणयोग

तृतीये गुरुशुक्राभ्यां युक्ते ज्ञानेन वै मृतिः।
अज्ञानेनाऽन्यखेटैश्च मृतिर्ज्ञेया द्विजोत्तम! ॥३३॥

तृतीय भाव गुरु-शुक्र युक्त हो तो वह जातक ज्ञानपूर्वक मरता है। हे द्विजोत्तम! अन्य ग्रह तृतीय भाव में स्थित हों तो जातक का अज्ञानपूर्वक मरण होता है ॥३३॥

मरण देशज्ञान

चरराशौ तृतीयस्थे परदेशे मृतिर्भवेत्।
स्थिरराशौ स्वगेहे च द्विस्वभावे पथि द्विज! ॥३४॥

तृतीय भाव में चर राशि हो तो परदेश में मरण होता है। स्थिर राशि हो तो स्वदेश में एवं द्विस्वभाव राशि हो तो मार्ग में मरण कहना चाहिए ॥३४॥

अष्टमस्थ ग्रह से मृत्यु का कारण-ज्ञान

लग्नादष्टमभावाच्च निमित्तं कथितं बुधैः।
सूर्येऽष्टमेऽग्नितो मृत्युश्चन्द्रे मृत्युर्जलेन च ॥३५॥
शस्त्राद् भौमे ज्वराज्ज्ञे च गुरौ रोगात् क्षुधा भृगौ।
पिपासया शनौ मृत्युर्विज्ञेयो द्विजसत्तम! ॥३६॥

लग्न से अष्टम भाव में सूर्य स्थित हो तो अग्नि के माध्यम से उसकी मृत्यु विद्वानों ने कही है। अष्टम चन्द्र हो तो जल से, अष्टम मंगल हो तो शस्त्र से, अष्टम बुध हो तो ज्वर से, अष्टमस्थ गुरु हो तो रोग से, शुक्र हो तो क्षुधा से और अष्टम शनि हो तो प्यास से उस जातक की मृत्यु हो जाती है ॥३५-३६॥

तीर्थातीर्थ में मरण-कथन

अष्टमे शुभदृग्युक्ते धर्मपे च शुभैर्युते।
तीर्थे मृतिस्तदा ज्ञेया पापाख्यैरन्यथा मृतिः ॥३७॥

अष्टम भाव शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो और धर्मेश शुभ ग्रह से युत हो तो वह जातक किसी तीर्थ में देह-त्याग करता है। अष्टम पापग्रह से युत, दृष्ट हो और धर्मेश पापग्रह से युत हो तो तीर्थ से अन्यत्र मरण कहना चाहिए ॥३७॥

शवपरिणाम

अग्न्यम्बु मिश्रभत्र्यंशैर्ज्ञेयो मृत्युर्गृहाश्रितैः।
परिणामः शवस्याऽत्र भस्मसंक्लेदशोषकैः ॥३८॥
व्यालवर्गदृकाणैस्तु विडम्बो भवति ध्रुवम्।

शवस्य स्वश्रृगालाद्यैर्गृध्रकाकादिपक्षिभिः ॥३९॥

लग्न से अष्टम स्थान में अग्नि तत्त्व वाले ग्रह का द्रेष्काण हो अर्थात् अशुभ ग्रह का द्रेष्काण हो तो जातक का शव अग्नि में जलाया जाता है। जलचर वाले ग्रह का द्रेष्काण हो तो जल में फेंका जाता है। मिश्र (शुभ तथा अशुभ) का द्रेष्काण रहने से जातक का शव सूख जाता है। यदि व्याल (सर्प) द्रेष्काण हो तो कुक्कुर, शृगालादि हिंसक जन्तुओं से या कौवा आदि पक्षियों से चञ्चु द्वारा चोंच से नोचकर शव का भक्षण किया जाता है ॥३८-३९॥

व्याल द्रेष्काणकथन

कर्कटे मध्यमोऽन्त्यश्च वृश्चिकाद्यद्वितीयकौ।
मीनेऽन्तिमस्त्रिभागैश्च व्यालवर्गाः प्रकीर्तिताः ॥४०॥

कर्कट राशि के द्वितीय तथा तृतीय द्रेष्काण, वृश्चिक राशि के प्रथम तथा द्वितीय द्रेष्काण एवं मीन राशि के तृतीय द्रेष्काण को व्याल वर्ग (सर्प द्रेष्काण) कहते हैं ॥४०॥

पूर्वजन्म-योनि और स्थान-कथन

रविचन्द्रबलाक्रान्तं त्र्यंशनाथे गुरौ जनः।
देवलोकात् समायातो विज्ञेयो द्विजसत्तम! ॥४१॥
शुक्रेन्द्वोः पितृलोकात्तु मर्त्याच्च रविभौमयोः।
बुधाऽऽर्क्योर्नरकादेवं जन्मकालाद्वदेत् सुधीः ॥४२॥

रवि और चन्द्रमा में जो बली हो वह ग्रह यदि गुरु के द्रेष्काण में हो तो जातक देवलोक से आया है अर्थात् वह इससे पूर्वजन्म में देवलोक में रहता था, ऐसा जानना चाहिए। यदि शुक्र या चन्द्रमा के द्रेष्काण में हो तो वह पितृलोक (चन्द्रलोक) से आया है। इसी प्रकार रवि-भौम के द्रेष्काण में मर्त्यलोक से एवं बुध या शनि के द्रेष्काण में हो तो वह जातक नरक से आया है, ऐसा जानना चाहिए ॥४१-४२॥

मरण के अनन्तर गन्तव्य स्थान

गुरुश्चन्द्रसितौ सूर्यभौमौ ज्ञार्की यथाक्रमम्।
देवेन्दुभूम्यधोलोकान् नयन्त्यस्तारिरन्ध्रगाः ॥४३॥

लग्न से ७, ६, ८ भावों में गुरु गया हो तो देवलोक में जातक जाता है एवं उक्त स्थानों में चन्द्रमा-शुक्र हो तो जातक चन्द्रलोक (पितृलोक) में जाता है तथा सूर्य-मंगल हो तो मर्त्य (भूलोक) में और बुध-शनि उक्त भावों में स्थित हो तो अधोलोक (नरक) में मरण के अनन्तर जातक जाता है। उक्त स्थानों में अधिक ग्रह बैठे हों तो जो ग्रह सर्वाधिक बली हो, वह ग्रह जिस लोक का कारक हो, उसी लोक में मरण के बाद जातक जाता है ॥४३॥

अथ तत्र ग्रहाभावे रन्ध्रारित्र्यंशनाथयोः।
यो बली स निजं लोके नयत्यन्ते द्विजोत्तम! ॥४४॥

हे द्विजोत्तम ! यदि ६।७।८ भावों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठ और अष्टम भाव के द्रेष्काणाधिप में जो ग्रह बली हो, उस ग्रह के लोक में मरण के पश्चात् जीव चला जाता है ।।४४।।

तस्य स्वोच्चादिसंस्थित्या वरमध्याऽधमाः क्रमात् ।
तत्तल्लोकेऽपि सञ्जाता विज्ञेया द्विजसत्तम ! ।।४५।।

हे द्विजसत्तम ! पूर्वकथित भावों में पूर्वोक्त ग्रह की उच्चादि स्थितिवश उस लोक में भी जीव को उत्तम, मध्यम एवं अधम पंक्ति में जानना चाहिए । अर्थात् उच्चस्थ ग्रह हो तो देव आदि लोकों में वह जीव श्रेष्ठ, नीच में हो तो नीच श्रेणी का और मध्य में ग्रह हो तो मध्यम श्रेणी का होता है ।।४५।।

अन्यान् मारकभेदांश्च राशिग्रहकृतान् द्विज ! ।
दशाध्यायप्रसङ्गेषु कथयिष्यामि सुव्रत ! ।।४६।।

हे द्विज ! अन्य जो ग्रह तथा राशि के माध्यम से मारक भेद हैं, उन सभी को दशाध्याय-प्रसङ्ग में कहूँगा ।।४६।।

।। इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां मारकभेदाध्यायः ।।४५।।

अथ ग्रहावस्थाध्यायः ॥४६॥

मैत्रेय उवाच

अवस्थावशतः प्रोक्तं ग्रहाणां यत् फलं मुने! ।
का साऽवस्था मुनिश्रेष्ठ! कतिधा चेति कथ्यताम् ॥१॥

मैत्रेय ने कहा कि हे मुनिश्रेष्ठ! आपने जो ग्रहों के अवस्थानुसार फल बताने को कहा है, वह अवस्था कैसी होती है और कितने प्रकार की होती है? उसे मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

अवस्थाः विविधाः सन्ति ग्रहाणां द्विजसत्तम! ।
सारभूताश्च यास्तासु बालाद्यास्ताः वदाम्यहम् ॥२॥

पराशर जी ने कहा कि हे द्विजसत्तम ! ग्रहों की अवस्थायें अनेक प्रकार की कही गयी हैं। उन अवस्थाओं में मुख्य सारभूत बालादि अवस्थायें हैं; उन्हें मैं कहता हूँ ॥२॥

बालादि अवस्था

क्रमाद् बालः कुमारोऽथ युवा वृद्धस्तथा मृतः ।
षडंशैरसमे खेटः समे ज्ञेयो विपर्ययात् ॥३॥

विषम राशियों में ६-६ अंशों से क्रम से बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत—ये पाँच अवस्थायें होती हैं। अर्थात् विषम राशि में प्रथम ६ अंश तक बाल, बाद के १२ अंश तक कुमार, बाद के १८ अंश तक युवा, बाद के २४ अंश तक वृद्ध और इसके पश्चात् ३० अंश तक मृत अवस्था होती है। सम राशियों में इसके विपरीत यानी प्रथम ६ अंश तक मृत, इसके बाद १२ अंशों तक वृद्ध, अनन्तर १८ अंशों तक युवा, २४ अंशों तक कुमार और इसके बाद ३० अंशों तक बाल—इस प्रकार से ग्रहों की अवस्थायें होती हैं ॥३॥

अवस्थाफल-विचार

फलं पादमितं बाले फलार्धं च कुमारके ।
यूनि पूर्णं फलं ज्ञेयं वृद्धे किञ्चित् मृते च खम् ॥४॥

ग्रह बाल्यावस्था में हो तो १ चरण फल, कुमारावस्था में २ चरण फल, युवावस्था में पूर्ण फल, वृद्धावस्था में ग्रह हो तो अत्यन्त अल्प फल एवं मृतावस्था में ग्रह हो तो फलाभाव होता है ॥४॥

जाग्रदादि अवस्था

स्वभोच्चयोः समसुहृद्भयोः शत्रुभनीचयोः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्या अवस्था नामदृक्फलाः ॥५॥

ग्रह अपनी राशि या अपने उच्चस्थ हो तो जाग्रदवस्था, अपने मित्रगृह में या समगृह में ग्रह बैठा हो तो स्वप्नावस्था एवं अपने शत्रुगृह में या अपनी नीच राशि में ग्रह बैठा हो तो सुषुप्ति नामक अवस्था होती है। इन अवस्थाओं के फल नामसदृश ही जानना चाहिए ॥५॥

जागरे च फलं पूर्णं स्वप्ने मध्यफलं तथा।
सुषुप्तौ तु फलं शून्यं विज्ञेयं द्विजसत्तम! ॥६॥

जाग्रत् अवस्था में पूर्ण फल, स्वप्नावस्था में मध्य फल और सुषुप्ति अवस्था में शून्य फल प्राप्त होता है ॥६॥

दीप्तादि अवस्था

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽथ दुःखितः।
विकलश्च खलः कोऽपीत्यवस्था नवधाऽपराः ॥७॥

दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, दीन, दुःखी, विकल, खल और क्रोधी—इस प्रकार ग्रहों की नौ प्रकार की अवस्थायें होती हैं ॥७॥

दीप्तादि अवस्था का लक्षण

स्वोच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वर्क्षे स्वस्थोऽधिमित्रभे।
मुदितो मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ॥८॥
शत्रुभे दुःखितः प्रोक्तो विकलः पापसंयुतः।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः ॥९॥
यादृशो जन्मकाले यः खेटो यद्भावगो भवेत्।
तादृशं तस्य भावस्य फलमूह्यं द्विजोत्तम! ॥१०॥

ग्रह अपने उच्च राशि में हो तो दीप्त, स्वराशिस्थ हो तो स्वस्थ, अपने अधिमित्र की राशि में मुदित, मित्रराशि में शान्त, समराशि में दीन, शत्रुराशि में दुःखी, पाप ग्रह के साथ में हो तो विकल, पाप ग्रह की राशि में खल और सूर्य के साथ रहने पर क्रोधी माना जाता है। इस प्रकार ग्रहों की ९ प्रकार की अवस्थायें होती हैं। जन्मकाल में ग्रह जिस अवस्था में हो, उसी के अनुरूप उस भाव का शुभ या अशुभ फल जानना चाहिए ॥८-१०॥

लज्जितादि अवस्था

लज्जितो गर्वितश्चैव क्षुधितस्तृषितस्तथा।
मुदितः क्षोभितश्चैव ग्रहभावाः प्रकीर्तिताः ॥११॥
पुत्रगेहगतः खेटो राहुकेतुयुतोऽथवा।
रविमन्दकुजैर्युक्तो लज्जितो ग्रह उच्यते ॥१२॥
तुङ्गस्थानगतो वाऽपि त्रिकोणेऽपि भवेत्पुनः।
गर्वितः सोऽपि गदितो निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥१३॥

शत्रुगेही शत्रुयुक्तो रिपुदृष्टो भवेद्यदि ।
क्षुधितः स च विज्ञेयः शनियुक्तो यथा तथा ॥१४॥
जलराशौ स्थितः खेटः शत्रुणा चाऽवलोकितः ।
शुभग्रहा न पश्यन्ति तृषितः स उदाहृतः ॥१५॥
मित्रगेही मित्रयुक्तो मित्रेण च विलोकितः ।
गुरुणा सहितो यश्च मुदितः स प्रकीर्तितः ॥१६॥
रविणा सहितो यश्च पापाः पश्यन्ति सर्वथा ।
क्षोभितं तं विजानीयाच्छत्रुणा यदि वीक्षितः ॥१७॥
येषु येषु च भावेषु ग्रहास्तिष्ठन्ति सर्वथा ।
क्षुधितः क्षोभितो वापि तद्भावफलनाशनः ॥१८॥

ग्रहों की लज्जित, गर्वित, क्षुधित, तृषित, मुदित और क्षोभित—ये ६ अवस्थायें होती हैं। ग्रह यदि पुत्र की राशि में हो तथा राहु, केतु, सूर्य, शनि भौम में से किसी से युक्त हो तो वह ग्रह लज्जित कहा जाता है। ग्रह अपने उच्चस्थ हो या अपने मूल त्रिकोण में स्थित हो तो वह ग्रह गर्वित होता है। यदि ग्रह शत्रुगृह में हो, शत्रु से युत या दृष्ट हो तथा शनि से युत हो तो वह क्षुधित कहलाता है। यदि ग्रह जलचर राशि में हो और अपने शत्रुग्रह से देखा जाता हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट न हो तो वह ग्रह तृषित कहा गया है। मित्रगृह में ग्रह हो और मित्र से युक्त या दृष्ट हो या गुरु से युक्त अथवा दृष्ट हो तो मुदित कहा जाता है। रवि से युक्त हो और पापी ग्रहों से देखा जाता हो या अपने शत्रु से अवलोकित हो तो वह ग्रह क्षोभित कहलाता है। जन्मसमय में क्षुधित और क्षोभित ग्रह जिस-जिस भाव में रहते हैं, उस-उस भाव के फल का नाश करते हैं ॥११-१८॥

एवं क्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु पण्डितैः ।
बलाऽबलविचारेण वक्तव्यः फलनिर्णयः ॥१९॥
अन्योन्यं च मुदा युक्तं फलं मिश्रं वदेत्पुनः ।
बलहीने तदा हानिः सबले च महाफलम् ॥२०॥
कर्मस्थाने स्थितो यस्य लज्जितस्तृषितस्तथा ।
क्षुधितः क्षोभितो वापि स नरो दुःखभाजनम् ॥२१॥
सुतस्थाने भवेद्यस्य लज्जितो ग्रह एव च ।
सुतनाशो भवेत्तस्य एकस्तिष्ठति सर्वदा ॥२२॥
क्षोभितस्तृषितश्चैव सप्तमे यस्य वा भवेत् ।
म्रियते तस्य नारी च सत्यमाहुर्द्विजोत्तम ! ॥२३॥

इसी प्रकार से पण्डितों को ग्रहों के बलाबल के अनुरूप सभी भावों का फल जानना चाहिए। यदि दोनों प्रकार के ग्रह बैठे हों तो मिश्रित फल समझना चाहिए। यदि ग्रह बलहीन हो तो फल में ह्रास और बली हो तो अधिक फल जानना चाहिए। जिस जातक

के कर्मस्थान में लज्जित, तृषित, क्षुधित अथवा क्षोभित ग्रह बैठे हों, वह जातक दु:खी होता है। लज्जित आदि ग्रह पुत्रभाव में बैठे हों तो जातक के पुत्रों का नाश होता है या उसको केवल एक पुत्र शेष रहता है। हे द्विजोत्तम ! जिस जातक के सप्तम भाव में क्षोभित या तृषित ग्रह हो उसकी स्त्री मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। यह सत्य है ॥१०-२३॥

गर्वितादि अवस्था-फल

नवालयारामसुखं नृपत्वं कलापटुत्वं विदधाति पुंसाम्।
सदार्थलाभं व्यवहारवृद्धिं फलं विशेषादिह गर्वितस्य ॥२४॥
भवति मुदितयोगे वासशाला विशाला
विमलवसनभूषाभूमियोषासु सौख्यम्।
स्वजनजनविलासो भूमिपागारवासो
रिपुनिवहविनाशो बुद्धिविद्याविकासः ॥२५॥
दिशति लज्जितभाववशाद्रतिं विगतराममतिं विमतिक्षयम्।
सुतगदागमनं गमनं वृथा कलिकथाभिरुचिं न रुचिं शुभे ॥२६॥
संक्षोभितस्यापि फलं विशेषाद्दरिद्रजातं कुमतिं च कष्टम्।
करोति वित्तक्षयमंघ्रिबाधां धनाप्तिबाधामवनीशकोपात् ॥२७॥
क्षुधितखगवशाद् वै शोकमोहादिपातः
परिजनपरितापादाधिभीत्या कृशत्वम्।
कलिरपि रिपुलोकैरर्थबाधा नराणा-
मखिलबलनिरोधो बुद्धिरोधो विषादात् ॥२८॥
तृषितखगभवे स्यादङ्गनासङ्गमध्ये
भवति गदविकारो दुष्टकार्याधिकारः।
निजजन-परिवादादर्थहानिः कृशत्वं
खलकृतपरितापो मानहानिः सदैव ॥२९॥

जातक को **गर्वित** ग्रह की महादशा में नवीन घर, बगीचा, सुख, राज्य, कला में अग्रगण्य, सदा धन की प्राप्ति और व्यापार में वृद्धि होती है। **मुदित** ग्रह की दशा में विशाल गृह, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भूमि, स्त्री से सुख, स्वजनों से प्रेम, राजमहल में निवास, शत्रु का नाश और विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि होती है। **लज्जित** ग्रह की दशा में नास्तिक मति, कुमति, पुत्र को पीड़ा, व्यर्थ भ्रमण, कलह से प्रेम और धर्म में अरुचि होती है। **क्षोभित** ग्रह की दशा में जातक को दरिद्रता, कुमति, कष्ट, धननाश, पैर में पीड़ा एवं राजा के कोप से धनप्राप्ति में अवरोध उपस्थित होता है। **क्षुधित** ग्रह की दशा में जातक को शोक, मोह, स्वजनों के पीड़ा से मानसिक व्यथा, शरीर में कृशता, शत्रु से झगड़ा, धननाश एवं बल की हानि तथा विषाद के कारण बुद्धि कुण्ठित हो जाती है। **तृषित** ग्रह की महादशा में जातक को स्वभार्या में रोगभय, खराब कार्यों में प्रवृत्ति, अपने ही बन्धु-बान्धवों से विवाद के कारण धनहानि, शरीर में दुर्बलता, दुष्टों से सन्ताप एवं मानहानि होती है ॥२४-२९॥

शयनादि अवस्था-कथन

शयनं चोपवेशं च नेत्रपाणिप्रकाशनम्।
गमनागमनं चाऽथ सभायां वसतिं तथा॥३०॥
आगमं भोजनं चैव नृत्यं लिप्सां च कौतुकम्।
निद्रां ग्रहाणां चेष्टां च कथयामि तवाग्रतः॥३१॥
यस्मिन्नृक्षे भवेत् खेटस्तेन तं परिपूरयेत्।
पुनरंशेन सम्पूर्य स्वनक्षत्रं नियोजयेत्॥३२॥
यातदण्डं तथा लग्नमेकीकृत्य सदा पुनः।
रविभिस्तु हरेद् भागं शेषं कार्ये नियोजयेत्॥३३॥
नाक्षत्रिक-दशारीत्या पुनः पूरणमाचरेत्।
नामाद्यस्वरसंख्याढ्यं हर्तव्यं रविभिस्ततः॥३४॥
रवौ पञ्च तथा देयाश्चन्द्रे दद्याद् द्वयं तथा।
कुजे द्वयं च संयुक्तं बुधे त्रीणि नियोजयेत्॥३५॥
गुरौ बाणाः प्रदेयाश्च त्रयं दद्याच्च भार्गवे।
शनौ त्रयमथो देयं राहौ दद्याच्चतुष्टयम्॥३६॥
त्रिभिर्भक्तं च शेषाङ्कैः सा पुनस्त्रिविधा स्मृता।
दृष्टिश्चेष्टा विचेष्टा च तत्फलं कथयाम्यहम्॥३७॥

अब आपके समक्ष शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि, प्रकाशन, गमन, आगमन, सभावास, आगम, भोजन, नृत्यलिप्सा, कौतुक, निद्रा—इन अवस्थाओं को और उनकी चेष्टा को कहता हूँ। जिस नक्षत्र में ग्रह हो उस नक्षत्र-(अश्विनी से लेकर)-संख्या को ग्रहसंख्या से गुणा करके उस गुणनफल से ग्रहनिष्ठ नवमांश संख्या को गुणा करे। उसमें वर्तमान नक्षत्र-संख्या (चन्द्र नक्षत्र), इष्ट घटी संख्या और लग्नसंख्या जोड़े तथा उस योगफल में १२ से भाग देकर जो शेष हो, उससे क्रम से शयनादि अवस्था जाननी चाहिए। पुन: उस अवस्था के माध्यम से चेष्टा जानने के लिए, पूर्वोक्त शेषाङ्क (अवस्था-संख्या) को उसी से गुणा करके उस गुणनफल में नाम के प्रथमाक्षर सम्बन्धी स्वराङ्क जोड़कर १२ से भाग देकर जो शेष हो, उसमें ग्रह के ध्रुवाङ्क जोड़े। ग्रहों का ध्रुवाङ्क इस प्रकार हैं—रवि के ५, चन्द्रमा के २, मंगल के २, बुध के ३, गुरु के ५, शुक्र के ३, शनि के ३, राहु के ४ जोड़कर ३ का भाग देकर जो शेषाङ्क हो उससे १ शेष रहे तो दृष्टि, २ शेष में चेष्टा और ३ शेष में विचेष्टा जानना चाहिए। यहाँ पर ३ का भाग दे रहे हैं, अत: ३ शेष नहीं रह सकता, इसलिए शून्य शेष के स्थान में ३ शेष जानना चाहिए।

उदाहरण—यथा सूर्य राश्यादि ३।२०।४।२५ है; सूर्य अश्लेषा के द्वितीय चरण में है, अत: ९ × १ = ९, सातवें नवमांश है, ९ × ७ = ६३; इसमें जन्मनक्षत्र मघा की संख्या १० तथा जन्मेष्ट काल १५ घटी एवं जन्मलग्न संख्या ९—इन तीनों को जोड़ने

६३ + १० + १५ + ९ = ९७ हुआ; इसमें १२ का भाग देने से शेष १ रहा, अतः शयन अवस्था हुई। इससे ज्ञात हुआ कि सूर्य 'शयन' अवस्था में है। फिर शेष १ को शेष १ से गुणा करने पर १ हुआ। फिर जातक के पुकारनाम (राजन) के आद्याक्षर का स्वरांक ४ जोड़कर उसमें १२ का भाग दिया तो ५ शेष रहा, इसमें रवि के ध्रुवांक ५ को जोड़कर ३ का भाग देने से १ शेष रहा, अतः प्रथम 'दृष्टि' अवस्था हुई। इसी प्रकार सभी ग्रहों की अवस्था जानकर उस अवस्था के अनुरूप ही शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

इस उदाहरण में जो नामाक्षर का स्वरांक लिया गया है, वह चक्र निम्नवत् है—

स्वरांकचक्र

१	२	३	४	५
अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह

इस चक्र के अनुसार नामाक्षर के प्रथम अक्षर से स्वर का अंक जान लेना चाहिए ॥३०-३७॥

दृष्टि आदि के फल

दृष्टौ मध्यफलं ज्ञेयं चेष्टायां विपुलं फलम्।
विचेष्टायां फलं स्वल्पमेवं दृष्टिफलं विदुः ॥३८॥
शुभाऽशुभं ग्रहाणां च समीक्ष्याऽथ बलाऽबलम्।
तुङ्गस्थाने विशेषेण बलं ज्ञेयं तथा बुधैः ॥३९॥

वक्ष्यमाण कथित दृष्टि में अवस्थाफल मध्यम, चेष्टा में कथित फल विपुल (पूर्ण) तथा विचेष्टा में कथित फल स्वल्प होता है। ग्रहों के बलाबल तथा शुभाशुभ देखकर ही विद्वानों को फलादेश करना चाहिए एवं अपने उच्च स्थान में विशेष बल जानना चाहिए ॥३८-३९॥

सूर्य की अवस्थाओं के फल

मन्दाग्निरोगो बहुधा नराणां स्थूलत्वमङ्घ्रेरपि पित्तकोपः।
व्रणं गुदे शूलमुरःप्रदेशे यदोष्णभानुः शयनं प्रयातः ॥४०॥
दरिद्रताभारविहारशाली विवादविद्याभिरतो नरः स्यात्।
कठोरचित्तः खलु नष्टवित्तः सूर्यो यदा चेदुपवेशनस्थः ॥४१॥
नरः सदानन्दधरो विवेकी परोपकारी बलवित्तयुक्तः।
महासुखी राजकृपाभिमानी दिवाधिनाथो यदि नेत्रपाणौ ॥४२॥

उदारचित्तः परिपूर्णचितः सभासु वक्ता बहुपुण्यकर्ता ।
महाबली सुन्दररूपशाली प्रकाशने जन्मनि पद्मिनीशे ॥४३॥
प्रवासशाली किल दुःखभागी सदालसी धीधनवर्जितश्च ।
भयातुरः कोपपरो विशेषाद्दिवाधिनाथे गमने मनुष्यः ॥४४॥
परदाररतो जनतारहितो बहुधागमने गमनाभिरुचिः ।
खलताकुशलो मलिनो दिवसाधिपतौ मनुजः कुमतिः कृपणः ॥४५॥
सभागते हिते नरः परोपकारतत्परः
सदार्थरत्नपूरितो दिवाकरे गुणाकरः ।
वसुन्धरानवाम्बरालयान्वितो महाबली
विचित्रमित्रवत्सलः कृपाकलाधरः परः ॥४६॥
क्षोभितो रिपुगणैः सदा नरश्चञ्चलः खलमतिः कृशस्तथा ।
धमकर्मरहितो मदोद्धतश्चागमे दिनपतौ यदा तदा ॥४७॥
सदाङ्गसन्धि-वेदनापराङ्गना धनक्षयो
बलक्षयः पदे पदे यदा तदा हि भोजने ।
असत्यता शिरोव्यथा तथा वृथान्नभोजनं
रवावसत्कथारतिः कुमार्गगामिनी मतिः ॥४८॥
विज्ञलोकैः सदा मण्डितः पण्डितः काव्यविद्यानवद्यप्रलापान्वितः ।
राजपूज्यो धरामण्डले सर्वदा नृत्यलिप्सागते पद्मिनीनायके ॥४९॥
सर्वदानन्दधर्ता जनो ज्ञानवान् यज्ञकर्ता धराधीशसद्मस्थितः ।
पद्मबन्धावरातेर्भयं स्वाननः काव्यविद्याप्रलापी मुदा कौतुके ॥५०॥
निद्राभरारक्तनिभे भवेतां निद्रागते लोचनपद्मयुग्मे ।
रवौ विदेशे वसतिर्जनस्य कलत्रहानिः कतिधार्थनाशः ॥५१॥

सूर्य यदि **शयनावस्था** में स्थित हो तो जातक को मन्दाग्नि रोग, पैर में स्थूलता, पित्त का प्रकोप, गुदा में व्रण (घाव) एवं हृदय में शूलरोग का प्रकोप होता है। **उपवेशनावस्था** में सूर्य हो तो जातक दरिद्र, भारवाही, बहसकारक, विद्या में रत, कठोर हृदय और धन का विनाश करने वाला होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में हो तो मनुष्य सदैव आनन्दित, विवेकी, परोपकारी, बल तथा वित्तयुक्त, महासुखी और राजा का कृपापात्र होता है। यदि **प्रकाशन** अवस्था में सूर्य हो तो जातक उदार हृदय वाला, धनी, वाचाल, अधिक पुण्यकर्ता, महाबली और सुन्दर रूप वाला होता है। **गमन** अवस्था में सूर्य रहने पर जातक विदेशवासी, दुःखी, सदा आलसी, बुद्धि तथा धन से हीन, भययुत और क्रोधी होता है। सूर्य के **आगमन** अवस्था में रहने पर जातक परस्त्री में रत, स्वजन से रहित, सदैव भ्रमणकारी, धूर्तताई में कुशल, मलिन, कुबुद्धि और कञ्जूस होता है। **सभावास** अवस्था में सूर्य के रहने पर जातक परहितकारक, परोपकार में तत्पर, सदैव धन-रत्न से परिपूर्ण, गुणी, पृथ्वी पर नवीन वस्त्र-गृह से युत से युत, महाबली,

विचित्र, मित्रप्रेमी, दयालु और कलाकार होता है। **आगम** अवस्था में सदैव शत्रुओं से दु:खी, चञ्चल, दुष्ट, दुर्बल, धर्म-कर्म से हीन और मद से उन्मत्त होता है। यदि सूर्य **भोजन** अवस्था में हो तो जातक की शरीरसन्धि में सदैव पीड़ा, परस्त्री संपर्क से धननाश, बल में कमी, झूठ बोलने वाला, शिर में पीड़ा, कुअन्न भोजन और कुमार्ग में चलने वाला होता है। **नृत्यलिप्सा** अवस्था में सूर्य स्थित हो तो जातक सदैव विद्वज्जनों से सम्मानित, पण्डित, काव्य-विद्याओं का मर्मज्ञ और पृथ्वीमण्डल में राजपूज्य होता है। **कौतुक** अवस्था में सूर्य के रहने पर जातक सदैव आनन्द-हर्षयुक्त, ज्ञानी, यज्ञकर्ता, राजभवन में रहने वाला, शत्रु से भयभीत, सुरूप और काव्य विद्या में रत रहने वाला होता है। **निद्रावस्था** में सूर्य के रहने पर उस जातक की आँख सदैव निद्रा से युक्त रहती है, वह विदेश में रहने वाला होता है एवं उसको पत्नी की हानि तथा अनेक प्रकार से उसके धन का नाश होता है ॥४०-५१॥

चन्द्रमा अवस्था-फल

जनु:काले क्षपानाथे शयनं चेदुपागते।
मानी शीतप्रधानश्च कामी वित्तविनाशक: ॥५२॥
रोगार्दितो मन्दमतिर्विशेषाद्वित्तेन हीनो मनुज: कठोर:।
अकार्यकारी परवित्तहारी क्षपाकरे चेदुपवेशनस्थे ॥५३॥
नेत्रपाणौ क्षपानाथे महारोगी नरो भवेत्।
अनल्पजल्पको धूर्त: कुकर्मनिरत: सदा ॥५४॥
यदा राकानाथे गतवति विकाशं च जनने
विकाश: संसारे विमलगुणराशेरवनिपात्।
नवाशामाला स्यात् करितुरगलक्ष्म्या परिवृता
विभूषा योषाभि: सुखमनुदिनं तीर्थगमनम् ॥५५॥
सितेतरे पापरतो निशाकरे विशेषत: क्रूरतरो नरो भवेत्।
सदाक्षिरोगै: परिपीड्यमानो बलक्षपक्षे गमने भयातुर: ॥५६॥
विधावागमने मानी पादरोगी नरो भवेत्।
गुप्तपापरतो दीनो मतितोषविवर्जित: ॥५७॥
सकलजनवदान्यो राजराजेन्द्रमान्यो
रतिपतिसमकान्ति: शान्तिकृत्कामिनीनाम्।
सपदि सदसि याते चारुबिम्बे शशाङ्के
भवति परम-रीति-प्रीतिविज्ञो गुणज्ञ: ॥५८॥
विधावागमके मर्त्यो वाचालो धर्मपूरित:।
कृष्णपक्षे द्विभार्य: स्याद्रोगी दुष्टतरो हठी ॥५९॥
भोजने जनुषि पूर्णचन्द्रमा मानयानजनतासुखं नृणाम्।
आतनोति वनितासुतासुखं सर्वमव न सितेतरे शुभम् ॥६०॥

नृत्यलिप्सागते चन्द्रे सबले बलवान्नरः ।
गीतज्ञो हि रसज्ञश्च कृष्णे पापकरो भवेत् ।।६१।।
कौतुकभवनं गतवति चन्द्रे भवति नृपत्वं वा धनपत्वम् ।
कामकलासु सदा कुशलत्वं वारवधूरतिरमणपटुत्वम् ।।६२।।
निद्रागते जन्मनि मानवानां कलाधरे जीवयुते महत्त्वम् ।
हीनेऽङ्गनासञ्चितवित्तनाशः शिवालये रौति विचित्रमुच्चैः ।।६३।।

जन्म समय में चन्द्र **शयनावस्था** में हो तो जातक मानी, शीतल स्वभाव वाला, कामी और धननाशकारक होता है। **उपवेशन** अवस्था में चन्द्रमा के रहने पर जातक रोगयुत, मन्द बुद्धि, विशेष धन से रहित, कठोर, कुकर्मकारक एवं दूसरे के धन का हरण करने वाला होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में चन्द्र के रहने पर जातक महारोगी, बकवादी, धूर्त एवं कुकर्म में रत रहने वाला होता है। यदि चन्द्रमा **प्रकाश** अवस्था में स्थित हो तो जातक संसार में विकाशकारक, स्वच्छ गुणों से युत, राजा से धन प्राप्त करने वाला, हाथी, घोड़े आदि वाहनों से परिपूर्ण, धन, आभूषण, वस्त्रादि से युत, प्रतिदिन स्त्री से सुखी एवं तीर्थ में भ्रमण करने वाला होता है। **गमन** अवस्था में चन्द्र हो और विशेष करके कृष्ण पक्ष का जन्म हो तो जातक पापी, क्रोधी, सदैव नेत्ररोग से पीड़ित और शुक्ल पक्ष में हो तो डरपोक होता है। यदि चन्द्रमा **आगमन** अवस्था में हो तो जातक मानी, पैर में रोगयुत, गुप्त पाप करने वाला, दीन बुद्धि और सन्तोषरहित होता है। **सभा** अवस्था में चन्द्र के रहने पर जातक सभी जनों में श्रेष्ठ, राजमान्य, अधिक सुन्दर, स्त्रियों को आनन्द देने वाला, सबसे प्रेमभाव रखने वाला और गुणज्ञ होता है। यदि चन्द्र **आगम** अवस्था में हो तो जातक वाचाल शक्तियुक्त और धार्मिक एवं यदि कृष्ण पक्ष में हो तो दो भार्या वाला, रोगी, दुष्ट और हठी होता है। **भोजन** अवस्था में पूर्ण चन्द्रमा हो तो जातक मानी, वाहनयुत, जनों को आनन्दित करने वाला एवं कलत्र-पुत्रों से सुखी होता है। यह सभी फल शुक्ल पक्ष में कहे गये हैं; परन्तु कृष्ण पक्ष में शुभ फल नहीं होता। बलवान चन्द्र यदि **नृत्यलिप्सा** अवस्था में हो तो जातक बली और गीतज्ञ तथा रसज्ञ होता है। कृष्ण पक्ष में पापकारक होता है। **कौतुक** अवस्था में चन्द्रमा रहने पर जातक राजा या राजसदृश धनवान, कामकलाओं में चतुर एवं वेश्याओं में रमण करने में पटु होता है। यदि चन्द्रमा **निद्रा** अवस्था में स्थित हो और गुरु से युत हो तो मानवों में श्रेष्ठ होता है। यदि गुरु युत न हो और क्षीण हो तो जातक की भार्या और एकत्रित धन का नाश होता है तथा उसके घर में शृगाली विचित्र शब्दों से रोती है।।५२-६३।।

भौम अवस्था-फल

शयने वसुधापुत्रे व्रणयुक्तो जनो भवेत् ।
बहुना कण्डुना युक्तो दद्रुणा च विशेषतः ।।६४।।
बली सदा पापरतो नरः स्यादसत्यवादी नितरां प्रगल्भः ।
धनेन पूर्णो निजधर्महीनो धरासुतश्चेदुपवेशनस्थः ।।६५।।

यदा भूमिसुतो लग्ने नेत्रपाणिमुपागतः ।
दरिद्रता तदा पुंसामन्यभे नगरेशता ॥६६॥
प्रकाशो गुणस्यापि वासः प्रकाशे धराधीशभर्तुः सदा मानवृद्धिः ।
सुते भूसुते पुत्रकान्ताावियोगो भवेद्राहुणा दारुणो वा निपातः ॥६७॥
गमने गमनं कुरुतेऽनुदिनं व्रणजालभयं वनिताकलहः ।
बहुदद्रुककण्डुभयं बहुधा वसुधातनयो वसुहानिकरः ॥६८॥
आगमने गुणशाली मणिमाली वा करालकरवाली ।
गजहन्ता रिपुहन्ता परिजनसन्तापहारको भौमे ॥६९॥
तुङ्गे युद्धकलाकलापकुशलो धर्मध्वजो वित्तपः
कोणे भूमिसुते सभामुपगते विद्याविहीनः पुमान् ।
अन्तेऽपत्यकलत्रमित्ररहितः प्रोक्तेतरस्थानगे-
ऽवश्यं राजसभाबुधो बहुधनी मानी च दानी जनः ॥७०॥
आगमे भवति भूमिजे जनो धर्मकर्मरहितो गदातुरः ।
कर्णमूलगुरुशूलरोगवानेव कातरमतिः कुसङ्गमी ॥७१॥
भोजने मिष्टभोजी च जनने सबले कुजे ।
नीचकर्मकरो नित्यं मनुजो मानवर्जितः ॥७२॥
नृत्यलिप्सागते भूसुते जन्मिनामिन्दिराराशिरायाति भूमीपतेः ।
स्वर्णरत्नप्रवालैः सदा मण्डिता वासशाला नराणां भवेत्सर्वदा ॥७३॥
कौतुकी भवति कौतुके कुजे मित्रपुत्रपरिपूरितो जनः ।
उच्चगे नृपतिगेहमण्डितः पूजितो गुणवरैर्गुणाकरैः ॥७४॥
निद्रावस्थां गते भौमे क्रोधी धीधनवर्जितः ।
धूर्तो धर्मपरिभ्रष्टो मनुष्यो गदपीडितः ॥७५॥

यदि भौम **शयन** अवस्था में हो तो जातक व्रण (घाव) से युत एवं बहुत खुजली तथा दाद से पीड़ित रहता है। **उपवेशन** अवस्था में भौम हो तो जातक बली, सदा पापकर्म में रत, झूठ बोलने वाला, ढीठ, धनी और स्वधर्म से रहित होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में होकर भौम लग्न में बैठा हो तो जातक दरिद्र एवं अन्य भाव में हो तो नगरप्रमुख होता है। **प्रकाश** अवस्था में मंगल हो तो जातक गुण का पात्र तथा राजा से सम्मान, मान और आदर प्राप्त करता है। पञ्चमस्थ मंगल हो तो पुत्र-कलत्र से वियोग और राहु से योग हो तो उसका महापतन होता है। **गमन** अवस्था में मंगल हो तो जातक प्रतिदिन भ्रमण करने वाला, व्रण का भय, पत्नी से झगड़ा, दाद, खुजली और धन की हानि होती है। मंगल के **आगमन** अवस्था में रहने पर जातक गुणयुत, मणिरत्नयुत, तीक्ष्ण शस्त्र रखने वाला, गजसदृश बली, शत्रु-नाशकर्ता एवं अपने आश्रित जनों के सन्ताप का हरण करने वाला होता है। यदि भौम **सभा** अवस्था में रहकर अपने उच्च राशिस्थ हो तो जातक युद्धकलाओं में निपुण, धर्म में अग्रगण्य और धनी होता है। यदि त्रिकोण में मंगल हो तो जातक विद्या

से हीन, व्यय में स्त्री-पुत्र-मित्ररहित, अन्य स्थानों में राजसभाश्रेष्ठ, धनी, मानी और दानी होता है। **आगम** अवस्था में मंगल स्थित हो तो जातक नास्तिक, धर्म-कर्मरहित, कर्णशूल आदि रोग से युत, कातर बुद्धि वाला और कुसङ्ग करने वाला होता है। **भोजना**वस्था में मंगल के रहने पर जातक मिष्टान्नभोजी होता है। यदि बलरहित मंगल हो तो जातक नीच कर्मकारक और मानरहित होता है। **नृत्यलिप्सावस्था** में राजा से अतुल धन प्राप्त करने वाला होता है एवं उसके गृह में सभी प्रकार के रत्न, सोना, प्रवाल आदि सम्पत्ति होती है। यदि मंगल **कौतुक** अवस्था में हो तो जातक कौतुक करने वाला एवं मित्र-पुत्रादि से परिपूर्ण होता है। यदि भौम उच्चस्थ हो तो जातक राजा तथा गुणज्ञ व्यक्तियों से मान्य होता है। **निद्रावस्था** में भौम हो तो जातक क्रोधी, बुद्धि और धन से हीन, धूर्त्त, धर्म से च्युत और रोगों से पीड़ित रहता है ॥६४-७५॥

बुध अवस्था-फल

क्षुधातुरो भवेदङ्गे खञ्जो गुञ्जानिभेक्षणः ।
अन्यभे लम्पटो धूर्तो मनुजः शयने बुधे ॥७६॥
शशाङ्कपुत्रे जनुरङ्गगेहे यदोपवेशे गुणराशिपूर्णः ।
पापेक्षिते पापयुते दरिद्रो हिते शुभे वित्तसुखी मनुष्यः ॥७७॥
विद्याविवेकरहितो हिततोषहीनो मानी जनो भवति चन्द्रसुतेक्षिपाणौ ।
पुत्रालये सुतकलत्रसुखेन हीनः कन्याप्रजा नृपतिगेहबुधो वरार्थः ॥७८॥
दाता दयालुः खलु पुण्यकर्ता विकाशने चन्द्रसुते मनुष्यः ।
अनेकविद्यार्णवपारगन्ता विवेकपूर्णः खलवर्गहन्ता ॥७९॥
गमनागमने भवतो गमने बहुधा वसुधाधिपतेर्भवने ।
भवनं च विचित्रमलं रमया विदि नुश्च जनुःसमये नितराम् ॥८०॥
सपदि विदि जनानामुच्चगे जन्मकाले
सदसि धनसमृद्धिः सर्वदा पुण्यवृद्धिः ।
धनपतिसमता वा भूपता मन्त्रिता वा
हरिहरपदभक्तिः सात्त्विकी मुक्तिलब्धिः ॥८१॥
आगमे जनुषि जन्मिनां यदा चन्द्रजे भवति हीनसेवया ।
अर्थसिद्धिरपि पुत्रयुग्मता बालिका भवति मानदायिका ॥८२॥
भोजने चन्द्रजे जन्मकाले यदा जन्मिनामर्थहानिः सदा वादतः ।
राजभीत्या कृशत्वं चलत्वं मतेरङ्गसङ्गो न जाया न मायासुखम् ॥८३॥
नृत्यलिप्सागते चन्द्रजे मानवो मानयानप्रवालव्रजैः संयुतः ।
मित्रपुत्रप्रतापैः सभापण्डितः पापभे वारवामारतो लम्पटः ॥८४॥
कौतुके चन्द्रजे जन्मकाले नृणामङ्गभे गीतविद्याऽनवद्या भवेत् ।
सप्तमे नैधने वारवध्वा रतिः पुण्यभे पुण्ययुक्ता मतिः सद्गतिः ॥८५॥

निद्राश्रिते चन्द्रसुते न निद्रासुखं सदा व्याधिसमाधियोगः ।
सहोत्थवैकल्यमनल्पतापो निजेन वादो धनमाननाशः ॥८६॥

यदि बुध **शयन** अवस्था में रहकर लग्न में हो तो जातक भूख से पीड़ित, भ्रमण में असमर्थ एवं गुञ्जासदृश आँख वाला होता है तथा अन्य भाव में हो तो परस्त्रीगामी और धूर्त होता है। **उपवेशन** अवस्था में हो और लग्न में हो तो अपने गुणसमूह से पूर्ण होता है; पापग्रह से युत या दृष्ट बुध हो तो जातक निर्धन एवं शुभ ग्रह से या मित्र ग्रह से युत-दृष्ट हो तो धनवान होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में बुध हो तो विद्या और विवेक से हीन, मित्रता से रहित एवं मानी होता है। यदि पुत्रस्थान में बुध हो तो पुत्र-कलत्र सुख से हीन, अधिक कन्या सन्तान वाला एवं राजगृह से धन-लाभ करने वाला होता है। **प्रकाश** अवस्था में बुध के रहने पर जातक दान करने वाला, दयालु, पुण्यकर्ता, अनेक प्रकार की विद्या का ज्ञाता, विवेकी और दुष्टों को दबाने वाला होता है। **गमन** अवस्था में बुध हो तो जातक राजभवन में आने-जाने वाला होता है और उसका गृह लक्ष्मी से पूर्ण और विचित्र होता है। यदि बुध अपने उच्चस्थ राशि में हो तो धनवृद्धि, पुण्यवृद्धि, राजा के तुल्य अथवा राजा या मन्त्री, विष्णु और शिव में भक्ति रखने वाला, सात्त्विक प्रकृति और अन्त में मोक्षपद प्राप्त करने वाला होता है। **आगम** अवस्था में बुध हो तो जातक नीच की सेवा से धनोपार्जन करने वाला, दो पुत्र वाला होता है तथा उसे प्रतिष्ठा देने वाली एक कन्या भी होती है। **भोजन** अवस्था में बुध हो तो सदैव वाद-विवाद से धन की हानि, राजभय, दुर्बल, चञ्चल होता है तथा उसे स्त्री और ऐश्वर्य का सुख नहीं होता है। **नृत्यलिप्सा** अवस्था में बुध हो तो जातक मान, वाहन, रत्न, मित्र, पुत्र-प्रताप से युत और सभाप्रमुख होता है। यदि बुध पाप राशि में स्थित हो तो जातक वेश्या से सम्पर्ककारक और लम्पट होता है। **कौतुक** अवस्था में होकर बुध लग्न में बैठा हो तो जातक गायन विद्या में निपुण होता है। ७,८ में हो तो वेश्यागामी एवं ९ में पुण्यात्मा, बुद्धिमान और सद्गति प्राप्त करने वाला होता है। **निद्रावस्था** में बुध हो तो जातक को निद्रा से सुख, व्याधि, समाधि योग से युत, सहोदररहित, अत्यधिक ताप एवं स्वजनों से वाद-विवाद के कारण धन-मान का नाश होता है॥७६-८६॥

गुरु की अवस्थाओं का फल

वचसामधिपे तु जनुःसमये शयने बलवानपि हीनरवः ।
अतिगौरतनुः खलु दीर्घहनुः सुतरामरिभीतियुतो मनुजः ॥८७॥
उपवेशं गतवति यदि जीवे वाचालो बहुगर्वपरीतः ।
क्षोणीपति-रिपुजान-परितप्तः पदजङ्घास्यकरव्रणयुक्तः ॥८८॥
नेत्रपाणिं गते देवराजार्चिते रोगयुक्तो वियुक्तो वरार्थश्रिया ।
गीतनृत्यप्रियः कामुकः सर्वदा गौरवर्णो विवर्णोद्भवप्रीतियुक् ॥८९॥
गुणानामानन्दं विमलसुखकन्दं वितनुते
सदा तेजःपुञ्जं व्रजपतिनिकुञ्जं प्रतिगमम् ।
प्रकाशं चेदुच्चे द्रुतमुपगतो वासवगुरु-
र्गुरुत्वं लोकानां धनपतिसमत्वं तनुभृताम् ॥९०॥

साहसी भवति मानवः सदा मित्रवर्गसुखपूरितो मुदा ।
पण्डितो विविधवित्तमण्डितो वेदविद्यादि गुरौ गमं गते ॥९१॥
आगमने जनता वरजाया यस्य जनुःसमये हरिमाया ।
मुञ्चति नालमिहालयमद्ध्वा देवगुरौ परितः परबिद्ध्वा ॥९२॥
सुरगुरु-समवक्ता शुभ्रमुक्ताफलाढ्यः
सहसि सपदि पूर्णो वित्तमाणिक्यमानः ।
गज-तुरग-रथाढ्यो देवताधीशपूज्यो
जनुषि विविधविद्यागर्वितो मानवः स्यात् ॥९३॥
नानावाहनमानयानपटलीसौख्यं गुरावागमे
भृत्यापत्यकलत्रमित्रजसुखं विद्याऽनवद्या भवेत् ।
क्षोणीपालसमानतानवरतं चाऽतीव हृद्या मतिः
काव्यानन्दरतिः सदा हितगतिः सर्वत्र मानोन्नतिः ॥९४॥
भोजने भवति देवतागुरौ यस्य तस्य सततं सुभोजनम् ।
नैव मुञ्चति रमालयं तदा वाजिवारणरथैश्च मण्डितम् ॥९५॥
नृत्यलिप्सागते राजमानी धनी देवताधीशवन्द्यः सदा धर्मवित् ।
तन्त्रविज्ञो बुधैर्मण्डितः पण्डितः शब्दविद्यानवद्यो हि सद्यो जनः ॥९६॥
कुतूहली सकौतुके महाधनी जनः सदा
निजान्वये च भास्करः कृपाकलाधरः सुखी ।
निलिम्पराजपूजिते सुतेन भूनयेन वा
युतो महाबली धराधिपेन्द्रसद्मपण्डितः ॥९७॥
गुरौ निद्रागते यस्य मूर्खता सर्वकर्मणि ।
दरिद्रतापरिक्रान्तं भवनं पुण्यवर्जितम् ॥९८॥

यदि गुरु जन्मकाल में **शयन** अवस्था में हो तो जातक बलयुत होने पर भी कम बोलने वाला, अत्यन्त गौर वर्ण वाला, लम्बी दाढ़ी वाला और निरन्तर शत्रुभय से युत रहता है। यदि गुरु **उपवेशन** अवस्था में हो तो जातक वक्ता, अत्यन्त गर्व करने वाला, राजा और रिपु (शत्रु) से परितप्त, पैर, जँघा, मुख और हाथ में व्रण से युक्त होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में गुरु के रहने पर जातक रोगयुक्त, श्रेष्ठ-सम्पत्ति से विमुख, गान और नृत्य का प्रिय, कामवासनायुत, गौर वर्ण और अन्य वर्गों से सम्बन्ध रखने वाला होता है। **प्रकाश** अवस्था में गुरु हो तो गुणों से आनन्दित, सुन्दर सुख से युत, तेजस्वी एवं व्रजपतिनिकुञ्ज (कृष्ण भगवान् के धाम) यानी वृन्दावन जाने वाला होता है। यदि गुरु उच्चस्थ हो तो जगत् में मान्य और कुबेर के समान धनवान होता है। यदि गुरु **गमनावस्था** में हो तो जातक साहसी, मित्र और सुख से परिपूर्ण, प्रसन्न, पण्डित, विविध धन-सम्पत्ति से युत और वेद का ज्ञाता होता है। यदि गुरु **आगमन** अवस्था में हो तो उसके गृह में अनेक मान्य जन का आगमन, सुन्दर स्त्री और लक्ष्मी सदैव अपना निवास स्थान बनाती है। **सभावस्था** में गुरु

के रहने पर जातक गुरु के सदृश वाचाल, श्वेत मुक्ता-माणिक्य आदि रत्नों से परिपूर्ण, हाथी, घोड़े, रथादि वाहनों से युक्त और अनेक विद्या का ज्ञाता होता है। यदि गुरु **आगम** अवस्था में हो तो जातक को नौकर, पुत्र, कलत्र, मित्र, मान तथा अनेक वाहनों का सुख होता है और वह उत्तम विद्या का ज्ञाता, राजा के समान श्रेष्ठ बुद्धि वाला, प्रसन्न, काव्यानन्द में रत रहने वाला, सन्मार्ग में चलने वाला एवं सर्वत्र मान प्राप्त करने वाला होता है। **भोजन** अवस्था में गुरु हो तो उसे सदैव सुन्दर भोजन मिलता है और उसके गृह में लक्ष्मी अपना घर बनाती है तथा घोड़े, हाथी, रथों से उस का घर सुशोभित होता है। यदि गुरु **नृत्यलिप्सावस्था** में हो तो जातक राजमान्य, धनी, धर्मज्ञाता, तन्त्रविद्, पण्डितों में श्रेष्ठ एवं शब्दविद्या में निपुण होता है। गुरु के **कौतुकावस्था** में रहने पर जातक कुतूहली, महाधनी, अपने कुल में सूर्य के समान, कृपालु, कला का ज्ञाता, सुखी, पुत्र-भूमि-नीति से युक्त, महाबली एवं राजभवन में रहने वाला राजपण्डित होता है। यदि **निद्रावस्था** में गुरु हो तो जातक सभी कार्यों में मूर्ख, दरिद्रता से पीड़ित और पुण्यकर्म से रहित होता है ॥८७-९८॥

शुक्र की अवस्थाओं का फल

जनो बलीयानपि दन्तरोगी भृगौ महारोषसमन्वितः स्यात्।
धनेन हीनः शयनं प्रयाते वाराङ्गनासङ्गमलम्पटश्च ॥९९॥
यदि भवेदुशना उपवेशने नवमणिव्रजकाञ्चनभूषणः।
सुखमजस्रमरिक्षय आदरादवनिपादपि मानसमुन्नतिः ॥१००॥
नेत्रपाणिं गते लग्नगेहे कवौ सप्तमे मानभे यस्य तस्य ध्रुवम्।
नेत्रपाते निपातो धनानामलं चान्यभे वासशाला विशाला भवेत् ॥१०१॥
स्वालये तुङ्गभे मित्रभे भार्गवे तुङ्गमातङ्गलीलाकलापी जनः।
भूपतेस्तुल्य एव प्रकाशं गते काव्यविद्याकलाकौतुकी गीतवित् ॥१०२॥
गमने जनने शुक्रे तस्य माता न जीवति।
आधियोगो वियोगश्च जनानामरिभीतितः ॥१०३॥
आगमनं भृगुपुत्रे गतवति वित्तेश्वरो मनुजः।
सत्तीर्थभ्रमशाली नित्योत्साही करांघ्रिरोगी च ॥१०४॥
अनायासेनालं सपदि महसा याति सहसा
प्रगल्भत्वं राज्ञः सदसि गुणविज्ञः किल कवौ।
सभायामायाते रिपुनिवहहन्ता धनपतेः
समत्वं वा दाता बलतुरगगन्ता नरवरः ॥१०५॥
आगमे भार्गवे नागमो जन्मिनामर्थराशेररतिरतीव क्षतिः।
पुत्रपातो निपातो जनानामपि व्याधिभीतिः प्रिया भागहानिर्भवेत् ॥१०६॥
क्षुधातुरो व्याधिनिपीडितः स्यादनेकधारातिभयार्हितश्च।
कवौ यदा भोजनगे युवत्या महाधनी पण्डितमण्डितश्च ॥१०७॥

काव्यविद्यानवद्या च हृद्या मतिः सर्वदा नृत्यलिप्सागते भार्गवे ।
शङ्ख-वीणा-मृदङ्गादिगानध्वनि-व्रातनैपुण्यमेतस्य वित्तोन्नतिः ॥१०८॥
कौतुकभवनं गतवति शुक्रे शक्रेशत्वं सदसि महत्त्वम् ।
हृद्या विद्या भवति च पुंसः पद्मा निवसति सद्मरतः ॥१०९॥
परसेवारतो नित्यं निद्रामुपगते कवौ ।
परनिन्दापरो वीरो वाचालो भ्रमते महीम् ॥११०॥

यदि शुक्र **शयन** अवस्था में हो तो जातक बलवान होता हुआ भी दन्तरोगी, क्रोधकारक, धनहीन एवं वेश्यासंसर्ग से लम्पट होता है। यदि शुक्र **उपवेशन** अवस्था में हो तो नवीन मणि, वज्र, सोना, आभूषण से सुख, निरन्तर शत्रु का क्षय, राजा से आदर और मान की वृद्धि होती है। **नेत्रपाणि** अवस्था में रहकर शुक्र लग्न, सप्तम, दशम में हो तो शीघ्र ही धनागम होता है एवं अन्य भाव में शुक्र हो तो अपना निवासगृह विशाल होता है। शुक्र **प्रकाश** अवस्था में होकर अपने गृह में, उच्च में, मित्रगृह में हो तो जातक मदोन्मत्त हाथी के सदृश बलशाली, राजा के समान धनी, विद्या तथा संगीत में पारंगत होता है। **गमन** अवस्था में शुक्र हो तो उसके माता की मृत्यु होती है एवं मन में अशान्ति, स्वजनवियोग और शत्रु से भय होता है। **आगमन** अवस्था में शुक्र हो तो जातक धनी, सत्तीर्थ में भ्रमण करने वाला, सदैव उत्साही एवं हाथ और पैर में रोगयुक्त होता है। **सभावस्था** में शुक्र हो तो जातक अपने प्रताप से राजदरबार में चतुर, गुणी, शत्रु का नाश करने वाला, धनाधिप, दाता एवं हाथी-घोड़े की सवारी पर चलने वाला होता है। **आगम** अवस्था में शुक्र हो तो जातक अर्थलाभ से हीन, शत्रु से हानि, पुत्रादि सन्तान तथा स्वजन से वियोग, रोगभय एवं उसे स्त्रीजन्य सुख की हानि होती है। शुक्र यदि **भोजनावस्था** में हो तो भूख से पीड़ित, रोग का प्रकोप एवं शत्रुओं से अनेक प्रकार से परेशानी होती है। यदि शुक्र कन्या राशि में स्थित हो तो महाधनी और पण्डितों का आश्रय होता है। **नृत्यलिप्सा** अवस्था में शुक्र के रहने पर जातक काव्यकर्ता, प्रसन्न बुद्धि, शंख, वीणा, मृदंग आदि बाजा बजाने में दक्ष एवं वित्त (धन) की बढ़ोत्तरी करने वाला होता है। **कौतुक** अवस्था में शुक्र रहे तो इन्द्रसदृश पराक्रमी, सभा में वाचाल शक्ति से युक्त, श्रेष्ठ विद्या का ज्ञाता और उसके घर में सदा लक्ष्मी का निवास होता है। **निद्रावस्था** में शुक्र रहे तो जातक अन्य की सेवा करने वाला, दूसरे की निन्दा करने वाला, वीर, वातूनी तथा पृथ्वी पर भ्रमण करने वाला होता है ॥९९-११०॥

शनि की अवस्थाओं के फल

क्षुत्पिपासापरिक्रान्तो विश्रान्तः शयने शनौ ।
वयसि प्रथमे रोगी ततो भाग्यवतां वरः ॥१११॥
भानोः सुते चेदुपवेशनस्थे करालकारातिजनानुतप्ताः ।
अपायशाली खलु दद्रुमाली नरोऽभिमानी नृपदण्डयुक्तः ॥११२॥
नयनपाणिगते रविनन्दने परमया रमया रमयायुतः ।
नृपतितो हिततो मतितोषकृद्बहुकलाकलितो विमलोक्तिकृत् ॥११३॥

नानागुणग्रामधनाधिशाली सदा नरो बुद्धिविनोदमाली ।
प्रकाशने भानुसुते सुभानुः कृपानुरक्तो हरपादभक्तः ॥११४॥
महाधनी नन्दननन्दितः स्यादपायकारी रिपुभूमिहारी ।
गमे शनौ पण्डितराजभावं धरापतेरायतने प्रयाति ॥११५॥
आगमने गर्दभपदयुक्तः पुत्रकलत्रसुखेन विमुक्तः ।
भानुसुते भ्रमते भुवि नित्यं दीनमना विजनाश्रयभावम् ॥११६॥
रत्नावलीकाञ्चनमौक्तिकानां व्रातेन नित्यं व्रजति प्रमोदम् ।
समागते भानुसुते नितान्तं नयेन पूर्णो मनुजो महौजाः ॥११७॥
आगमे गदसमागमो नृणामब्जबन्धुतनये यदा तदा ।
मन्दमेव गमनं धरापतेर्याचनाविरहिता मतिः सदा ॥११८॥
सङ्गते जनुषि भानुनन्दने भोजनं भवति भोजनं रसैः ।
संयुतं नयनमन्दता ततो मोहतापपरितापिता मतिः ॥११९॥
नृत्यलिप्सागते मन्दे धर्मात्मा वित्तपूरितः ।
राजपूज्यो नरो धीरो महावीरो रणाङ्गणे ॥१२०॥
भवति कौतुकभावमुपागते रविसुते वसुधावसुपूरितः ।
अतिसुखी सुमुखीसुखपूरितः कवितयामलया कलया नरः ॥१२१॥
निद्रागते वासरनाथपुत्रे धनी सदा चारुगुणैरुपेतः ।
पराक्रमी चण्डविपक्षहन्ता सुवारकान्तारतिरीतिविज्ञः ॥१२२॥

यदि शनि **शयन** अवस्था में हो तो जातक प्रथम (बाल्य) अवस्था में भूख-प्यास से दुःखी और श्रान्त तथा रोगी रहता है एवं वृद्धावस्था में भाग्यवान होता है। शनि के **उपवेशन** अवस्था में रहने पर ज़ातक प्रबल शत्रु से संतप्त, व्यर्थ व्यय करने वाला, दाद-खुजली से युक्त, अभिमानी तथा राजदण्ड भोगने वाला होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में शनि के रहने पर जातक सुन्दर पत्नी और लक्ष्मी से युक्त, राजा तथा अपने हितचिन्तकों से उपकृत, बहुत कलाओं का ज्ञाता तथा हितकारक वचन बोलने वाला होता है। **प्रकाश** अवस्था में शनि स्थित हो तो अनेक प्रकार के गुण, धन और बुद्धि से युक्त, कृपालु एवं हर (शिव) का भक्त होता है। **गमन** अवस्था में शनि के रहने पर जातक महाधनी, पुत्रों से आनन्दित, व्ययकारक, शत्रु की भूमि का हरण करने वाला एवं राजभवन का पण्डित होता है। **आगमन** अवस्था में शनि के रहने पर जातक गदहे का पद प्राप्त करने वाला, पुत्र-स्त्रीसुख से हीन, दीन एवं आश्रयहीन होकर पृथ्वी पर भ्रमण करता है। **सभा** अवस्था में शनि के रहने पर रत्न, सोना, मोती आदि रत्नों से आनन्दित, नीतिज्ञ एवं महाधनी होता है। **आगम** अवस्था में शनि के रहने पर रोग की वृद्धि, मन्दमति एवं राजदरबार से आर्थिक वृद्धि करने की मति से हीन होता है। यदि शनि **भोजन** अवस्था में हो उसे सरस भोजन, नेत्रज्योति में कमी एवं मोह से बुद्धि में चञ्चलता प्राप्त होती है। **नृत्यलिप्सा** अवस्था में धार्मिक, धन से परिपूर्ण, राजपूज्य, धीर

धीर एवं समर में महावीर होता है। **कौतुक** अवस्था में शनि के रहने पर जातक पृथ्वी और धन से युक्त, अत्यन्त सुखी, सुशील स्त्री के सुख से पूर्ण, कवि और कला का ज्ञाता होता है। यदि शनि **निद्रावस्था** में हो तो जातक धनी, सुन्दर गुण से युक्त, पराक्रमी, प्रचण्ड शत्रु को परास्त करने वाला और वेश्या में रत रहने वाला होता है ॥११९-१२२॥

राहु की अवस्थाओं का फल

यदागमो जन्मनि यस्य राहौ क्लेशाधिकत्वं शयनं प्रयाते।
वृषेऽथ युग्मेऽपि च कन्यकायामजे समाजो धनधान्यराशेः ॥१२३॥
उपवेशनमिह गतवति राहौ दद्रुगदेन जनः परितप्तः।
राजसमाजयुतो बहुमानी वित्तसुखेन सदा रहितः स्यात् ॥१२४॥
नेत्रपाणावगौ नेत्रे भवतो रोगपीडिते।
दुष्टव्यालारिचौराणां भयं तस्य धनक्षयः ॥१२५॥
प्रकाशने शुभासने स्थितिः कृतिः शुभा नृणां
धनोन्नतिर्गुणोन्नतिः सदा विदामगाविह।
धराधिपाधिकारिता यशोलता ततो भवे-
न्नवीननीरदाकृतिर्विदेशतो महोन्नतिः ॥१२६॥
गमने च यदा राहौ बहुसन्तानवान्नरः।
पण्डितो धनवान् दाता राजपूज्यो नरो भवेत् ॥१२७॥
राहावागमने क्रोधी सदा धीधनवर्जितः।
कुटिलः कृपणः कामी नरो भवति सर्वथा ॥१२८॥
सभागतो यदा राहुः पण्डितः कृपणो नरः।
नानागुणपरिक्रान्तो वित्तसौख्यसमन्वितः ॥१२९॥
चेदगावागमं यस्य याते तदा व्याकुलत्वं सदारातिभीत्या भयम्।
महद् बन्धुवादो जनानां निपातो भवेद्वित्तहानिः शठत्वं कृशत्वम् ॥१३०॥
भोजने भोजनेनालं विकलो मनुजो भवेत्।
मन्दबुद्धिः क्रियाभीरुः स्त्रीपुत्रसुखवर्जितः ॥१३१॥
नृत्यलिप्सागते राहौ महाव्याधिविवर्द्धनम्।
नेत्ररोगी रिपोर्भीतिर्धनधर्मक्षयो नृणाम् ॥१३२॥
कौतुके च यदा राहौ स्थानहीनो नरो भवेत्।
परदाररतो नित्यं परवित्तापहारकः ॥१३३॥
निद्रावस्थां गते राहौ गुणग्रामयुतो नरः।
कान्तासन्तानवान् धीरो गर्वितो बहुवित्तवान् ॥१३४॥

यदि राहु **शयनावस्था** में हो तो जातक अधिक क्लेश से परेशान होता है। यदि राहु वृष, मिथुन, कन्या, मेषस्थ होकर **शयनावस्था** में हो तो जातक धन-धान्य से सुसम्पन्न

होता है। यदि राहु **उपवेशन** अवस्था में हो तो जातक दाद रोग से पीड़ित रहता है एवं राजभवन में मान्य होने पर भी उसकी आर्थिक स्थिति कमजोर रहती है। **नेत्रपाणि** अवस्था में राहु के रहने पर जातक नेत्ररोग से पीड़ित होता है, साथ ही उसे दुष्ट, शत्रु, चोर का भय और धन का नाश होता है। **प्रकाश** अवस्था में राहु के रहने पर जातक सुन्दर आसन, सुयश, धन तथा गुण की उन्नति, राजा से अधिकारप्राप्त, प्रतिष्ठा, नूतन मेघसदृश आकृति वाला एवं विदेश से उन्नति करने वाला होता है। **गमनावस्था** में राहु के रहने पर जातक अधिक प्रजा (सन्तान) वाला, पण्डित, धनी, दाता एवं राजपूज्य होता है। राहु के **आगमन** अवस्था में रहने पर जातक क्रोधी, सदैव बुद्धि एवं धन से वर्जित, कुटिल, कञ्जूस और कामी होता है। **सभावस्था** में राहु हो तो जातक पण्डित, कञ्जूस, अनेक गुणों से परिपूर्ण और धनसौख्य से युत रहता है। **आगम** में राहु हो तो जातक को व्याकुलता, शत्रुओं का भय, बन्धु-बान्धव से वाद-विवाद, स्वजन की हानि, धननाश, शठ और दुर्बल होता है। **भोजनावस्था** में राहु रहने पर जातक भोजन से विकल, मन्द बुद्धि, कार्य-सम्पादन में दीर्घसूत्री एवं स्त्री-पुत्रजन्य सुख से हीन होता है। **नृत्यलिप्सावस्था** में राहु के रहने पर जातक को महारोग वृद्धि का भय, नेत्ररोग, शत्रुभय तथा धन एवं धर्म की हानि होती है। **कौतुक** अवस्था में राहु हो तो जातक स्थानहीन, दूसरे की स्त्री में रत एवं सदैव दूसरे के धन का अपहरण करने वाला होता है। **निद्रावस्था** में राहु हो तो जातक गुणी, पुत्र-कलत्रादि सुख से युक्त, धीर, गर्वयुक्त और धन से परिपूर्ण होता है ॥१२३-१३४॥

केतु की अवस्थाओं के फल

मेषे वृषेऽथ वा युग्मे कन्यायां शयनं गते।
केतौ धनसमृद्धिः स्यादन्यभे रोगवर्धनम् ॥१३५॥
उपवेशं गते केतौ दद्रुरोगविवर्द्धनम्।
अरिवातनृपव्यालचौरशङ्का समन्ततः ॥१३६॥
नेत्रपाणिं गते केतौ नेत्ररोगः प्रजायते।
दुष्टसर्पादिभीतिश्च रिपुराजकुलादपि ॥१३७॥
केतौ प्रकाशने संज्ञे धनवान् धार्मिकः सदा।
नित्यं प्रवासी चोत्साही सात्त्विको राजसेवकः ॥१३८॥
गमेच्छायां भवेत् केतुर्बहुपुत्रो महाधनः।
पण्डितो गुणवान् दाता जायते च नरोत्तमः ॥१३९॥
आगमे च यदा केतुर्नानारोगो धनक्षयः।
दन्तघाती महारोगी पिशुनः परनिन्दकः ॥१४०॥
सभावस्थां गते केतौ वाचालो बहुगर्वितः।
कृपणो लम्पटश्चैव धूर्तविद्याविशारदः ॥१४१॥
यदागमे भवेत्केतुः केतुः स्यात्पापकर्मणाम्।
बन्धुवादरतो दुष्टो रिपुरोगनिपीडितः ॥१४२॥

भोजने तु जनो नित्यं क्षुधया परिपीडितः।
दरिद्रो रोगसन्तप्तः केतौ भ्रमति मेदिनीम्॥१४३॥
नृत्यलिप्साङ्गते केतौ व्याधिना विकलो भवेत्।
बुद्बुदाक्षो दुराधर्षो धूर्तोऽनर्थकरो नरः॥१४४॥
कौतुकी कौतुके केतौ नटवामारतिप्रियः।
स्थानभ्रष्टो दुराचारी दरिद्रो भ्रमते महीम्॥१४५॥
निद्रावस्थां गते केतौ धनधान्यसुखं महत्।
नानागुणविनोदेन कालो गच्छति जन्मिनाम्॥१४६॥

यदि केतु मेष, वृष, मिथुन, कन्या राशिस्थ होकर **शयनावस्था** में हो तो जातक धनवान होता है एवं अन्य राशियों में हो तो रोगकारक होता है। **उपवेशन** अवस्था में केतु हो तो वह दाद-खुजली रोगवर्द्धक होता है, साथ ही शत्रु, वात, राजा, सर्प एवं चौर का भय जातक को चारो तरफ से होता है। **नेत्रपाणि** अवस्था में केतु हो तो नेत्ररोग, दुष्ट, सर्प, शत्रु और राजकुल से भी भय होता है। केतु **प्रकाश** अवस्था में हो तो जातक धनवान, धार्मिक, विदेश में रहने वाला, उत्साही, सात्त्विक और राजा का सेवक होता है। यदि केतु **गमनावस्था** में रहे तो अधिक पुत्र वाला, महाधनी, पण्डित, गुणवान, दाता और उत्तम मनुष्य होता है। **आगमन** अवस्था में केतु के रहने पर विभिन्न रोग, धननाश, दन्तरोग, महारोग, चुगलखोर और दूसरे की निन्दा करने वाला जातक होता है। **सभावस्था** में केतु के रहने पर जातक वाचाल, अभिमानी, कञ्जूस, लम्पट और ठगविद्या का ज्ञाता होता है। **आगम** अवस्था में केतु के रहने पर जातक पापियों का प्रमुख, बन्धु-बान्धव से विवाद करने वाला, दुष्ट एवं शत्रु और रोग से पीड़ित होता है। **भोजनावस्था** में केतु के रहने पर जातक भूख से सदैव पीड़ित, दरिद्र, रोगयुक्त एवं पृथ्वी पर भ्रमण करने वाला होता है। **नृत्यलिप्सावस्था** में केतु हो तो जातक रोग से व्याकुल, आँख में बुद्-बुद्रोग, किसी के कथन को न धारण करने वाला, धूर्त और अनर्थकारी होता है। **कौतुकावस्था** में केतु हो तो जातक कौतुकी, वेश्या में रत रहने वाला, स्थान से च्युत, दुराचारी और दरिद्र होकर पृथ्वी पर घूमने वाला होता है। **निद्रा** में केतु हो तो जातक धन-धान्यजन्य महती सुख वाला एवं विभिन्न प्रकार के गुणों को मनन करते हुए समय व्यतीत करने वाला होता है॥१३५-१४६॥

ग्रहावस्थानुरूप भावों का शुभाशुभत्व-कथन

शयने द्विज! भावेषु यत्र तिष्ठन्ति सद्ग्रहाः।
नित्यं तस्य शुभज्ञानं निर्विशङ्कं वदेद् बुधः॥१४७॥
भोजने येषु भावेषु पापास्तिष्ठन्ति सर्वथा।
तदा सर्वविनाशेऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा॥१४८॥
निद्रायां च यदा पापो जायास्थाने शुभं वदेत्।
यदि पापग्रहैर्दृष्टो न शुभं च कदाचन॥१४९॥

सुतस्थाने स्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा।
तदा शुभं भवेत्तस्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१५०॥
मृत्युस्थानस्थितः पापो निद्रायां शयनेऽपि वा।
तदा तस्याऽपमृत्युः स्याद्राजतः परतस्तथा ॥१५१॥
शुभग्रहैर्यदा युक्तः शुभैर्वा यदि वीक्षितः।
तदा तु मरणं तस्य गङ्गादौ च विशेषतः ॥१५२॥
कर्मस्थाने यदा पापः शयने भोजनेऽपि वा।
तदा कर्मविपाकः स्यान्नानादुःखप्रदायकः ॥१५३॥
दशमस्थो निशानाथः कौतुके च प्रकाशने।
तदैव राजयोगः स्यान्निर्विशङ्कं द्विजोत्तम ॥१५४॥
बलाऽबलविचारेण ज्ञातव्यञ्च शुभाऽशुभम्।
एवं क्रमेण बोद्धव्यं सर्वभावेषु बुद्धिमान् ॥१५५॥

हे द्विज ! जन्मसमय में **शयनावस्था** में स्थित शुभ ग्रह जिस भाव में हों उस भाव का शुभ फल शङ्कारहित होकर पण्डितों को जानना चाहिए। **भोजनावस्था** में स्थित पाप ग्रह जिस भाव में बैठे हों उस भाव का फल हानि जानना चाहिए। यदि पाप ग्रह **निद्रावस्था** में रहकर सप्तम भाव में हों तो शुभ फल प्राप्त होता है, परन्तु पाप ग्रह से दृष्ट हो तो शुभ फल नहीं होता। पञ्चम भाव में स्थित **निद्रा** या **शयन** अवस्था में पाप ग्रह हों तो शुभ फल होता है। **निद्रा, शयन** अवस्था में रहकर अष्टम भाव में पाप ग्रह बैठे हों तो उस जातक की राजा से या शत्रु से अपमृत्यु होती है। यदि शुभ ग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो उस जातक का गङ्गादि पवित्र तीर्थस्थानों में मरण होता है। **शयन, भोजनावस्था** में स्थित पाप ग्रह दशम भाव में हों तो जातक को पूर्वजन्मोपार्जित कर्मों के कारण विभिन्न दुःख भोगना पड़ता है। **चन्द्र, कौतुक** या **प्रकाशावस्था** में रहकर दशम भाव में बैठे हों तो जातक को निश्चय ही राजयोग होता है। इस प्रकार बलाबल, शुभाऽशुभ का विचार कर सभी भावों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए ॥१४७-१५५॥

॥ इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ग्रहावस्थाफलाध्यायः ॥४६॥

अथ दशाध्यायः ॥४७॥

मैत्रेय उवाच

सर्वज्ञोऽसि महर्षे! त्वं कृपया दीनवत्सल!।
दशाः कतिविधाः सन्ति? तन्मे कथय तत्त्वतः ॥१॥

मैत्रेय ने कहा कि हे महामुने! आप सर्वज्ञ हैं और दीनवत्सल हैं; अतः कृपा करके दशा कितने प्रकार के होते हैं—यह मुझे बतलाने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र! लोकानुग्रहकारिणा।
कथयामि तवाग्रेऽहं दशाभेदाननेकशः ॥२॥
दशाः बहुविधास्तासु मुख्या विंशोत्तरी मता।
कैश्चिदष्टोत्तरी कैश्चित् कथिता षोडशोत्तरी ॥३॥
द्वादशाब्दोत्तरी विप्र! दशा पञ्चोत्तरी तथा।
दशा शतसमा तद्वत् चतुराशीतिवत्सरा ॥४॥
द्विसप्ततिसमा षष्टिसमा षट्त्रिंशवत्सरा।
नक्षत्राधारिकाश्चैताः कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥५॥

महामुनि पराशर ने कहा कि हे विप्र! आपने लोककल्याणकारी अनेक दशाभेदों के विषय में जो प्रश्न किया, वह अत्यन्त उत्तम है; इसलिए आपके समक्ष उन दशाभेदों को कहता हूँ। दशा के भेद तो अनेक हैं, लेकिन उनमें भी मुख्य दशा विंशोत्तरीय है, जो सर्वसाधारण के लिए हितकारी है। अन्य ने अष्टोत्तरी, किसी ने षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पञ्चोत्तरी, शताब्दि, चतुरशीतिसमा, द्विसप्ततिसमा, षष्टिसमा, षट्त्रिंशत्समा—ये सभी जन्मनक्षत्राधारित दशायें कही हैं ॥२-५॥

अथ कालदशा चक्रदशा प्रोक्ता मुनीश्वरैः।
कालचक्रदशा चाऽन्या मान्या सर्वदशासु या ॥६॥
दशाऽथ चरपर्याया स्थिराख्या च दशा द्विज!।
केन्द्राद्या च दशा ज्ञेया कारकादिग्रहोद्भवा ॥७॥
ब्रह्मग्रहाश्रितर्क्षाद्या दशा प्रोक्ता तु केनचित्।
माण्डूकी च दशा नाम तथा शूलदशा स्मृता ॥८॥
योगार्धजदशा विप्र! दृग्दशा च ततः परम्।
त्रिकोणाख्या दशा नाम तथा राशिदशा स्मृता ॥९॥
पञ्चस्वरदशा विप्र! विज्ञेया योगिनीदशा।
दशा पैण्डी तथांशी च नैसर्गिकदशा तथा ॥१०॥

अष्टवर्गदशा सन्ध्या-दशा पाचकसंज्ञिका।
अन्यास्तारादशाद्याश्च न सर्वाः सर्वसम्मताः ॥११॥

हे द्विज ! किसी के मत से कालदशा और चक्रदशा मुनीश्वरों ने कहा है तथा सभी दशाओं में मान्य कालचक्र दशा कही गयी है। इनके अतिरिक्त चरदशा, स्थिरदशा, केन्द्रदशा, कारकदशा एवं ब्रह्मग्रहदशा भी कही गई है। किसी ने मण्डूकदशा, शूलदशा, योगार्धदशा, दृग्दशा, त्रिकोणदशा, राशिदशा, पञ्चस्वरदशा, योगिनीदशा, पिण्ड़दशा, नैसर्गिक दशा, अष्टवर्ग दशा, सन्ध्या दशा, पाचक दशा एवं अन्य तारादि विभिन्न दशाभेद कहे हैं; परञ्च सभी दशायें सर्वसम्मत नहीं हैं अर्थात् व्यवहारोपयोगी नहीं हैं ॥६-११॥

विंशोत्तरी दशा-साधन प्रकार

कृत्तिकातः समारभ्य त्रिरावृत्त्य दशाधिपाः।
आ-चं-कु-रा-गु-श-बु-के-शुपूर्वा विहगाः क्रमात् ॥१२॥
वह्निभाज्जन्मभं यावद् या संख्या नवतष्टिता।
शेषाद्दशाधिपो ज्ञेयस्तमारभ्य दशां नयेत् ॥१३॥
विंशोत्तरशतं पूर्णमायुः पूर्वमुदाहृतम्।
कलौ विंशोत्तरी तस्माद् दशा मुख्या द्विजोत्तम ! ॥१४॥

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके क्रम से सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र—ये तीन आवृत्ति में दशाधिकारी होते हैं। कृत्तिका नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिन कर जो संख्या हो, उसमें ९ का भाग दें; शेष तुल्य पूर्वोक्त दशा-क्रम से दशाधिप होते हैं। कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ करके पूर्वकथित दशाक्रम से ग्रहों की दशा लगानी चाहिए। कलियुग में १२० वर्ष की पूर्णायु बताई गई है। अत: अन्य दशाओं की अपेक्षा विंशोत्तरी दशा ही प्रमुख मानी जातीं है ॥१२-१४॥

नक्षत्रों से दशाबोधक चक्र

दशेश	आ.	चं.	कु.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०
नक्षत्र	कृ. उ.फा. उ.षा.	रो. ह. श्र.	मृ. चि. ध.	आ. स्वा. श.	पु. वि. पू.भा.	पुष्य अ. उ.भा.	श्ले, ज्ये. रे.	म. मू. अश्वि.	पू.फा. पू.षा. भ.

रव्यादि ग्रहों के दशावर्ष

दशासमाः क्रमादेषां षड् दशाऽश्वा गजेन्दवः।
नृपालाः नवचन्द्राश्च नगचन्द्रा नगा नखाः ॥१५॥

सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष संख्या क्रम से ये हैं—६।१०।७।१८।१६।१९।१७।७।२०। ये सभी पूर्वकथित चक्र से स्पष्ट हैं ॥१५॥

जन्मकालिक दशा का भुक्त-भोग्य साधन

दशामानं भयातघ्नं भभोगेन हृतं फलम्।
दशाया भुक्तवर्षाद्यं भोग्यं मानाद् विशोधितम्॥१६॥

जन्मसमय में पूर्वकथित नियमानुसार जिस ग्रह की महादशा हो, उस ग्रह की वर्षसंख्या से भयात् को गुणा करे और उसमें भभोग से भाग देने से पर वर्षादि लब्धि प्राप्त होती है, वही उस ग्रह के भुक्त वर्षादि होते हैं। उसको दशा वर्षसंख्या में घटाने से भोग्य वर्षादि स्पष्ट होते हैं।

उदाहरण—सं. २०४९ कार्तिक शुक्ल १० तिथि बुध में जन्म है। स्पष्ट सूर्य ६।१८।१।४ शतभिषा के दो चरण भयात् १९।१५ भभोग ६६।३२, पलात्मक भयात् ११५५, भभोग पलात्मक ३९९२ है। पलमय भयात् ११५५ को राहु दशावर्ष १८ से गुणा करने पर २०७९० हुआ, इसमें पलात्मक भभोग ३९९२ से भाग देने पर भुक्त वर्षादि ५।२।१४।५१ होता है; इसको दशावर्ष १८ में घटाने पर राहु भोग्य वर्षादि १२।९।१५।९ होता है।

महादशाचक्र

रा.भु.	रा.भो.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ग्रह
५	१२	१६	१९	१७	७	२०	६	१०	७	वर्ष
२	९									मास
१४	१५									दिन
५१	९									घटी
२०४९	२०६२	२०७८	२०९७	२११४	२१२१	२१४१	२१४७	२१५७	२१६४	संवत्
६	४	४	४	४	४	४	४	४	४	सू.रा.
१८	३	३	३	३	३	३	३	३	३	सू.अं.
१	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	सू.क.

अष्टोत्तरी साधन-प्रकार

लग्नेशात् केन्द्रकोणस्थे राहौ लग्नं विना स्थिते।
अष्टोत्तरी दशा विप्र! विज्ञेया रौद्रभादितः॥१७॥
चतुष्कं त्रितयं तस्मात् चतुष्कं त्रितयं पुनः।
एवं स्वजन्मभं यावद् विगणय्य यथाक्रमम्॥१८॥
सूर्यश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः।
एते दशाधिपा विप्र! ज्ञेयाः केतुं विना ग्रहाः॥१९॥
रसाः पञ्चेन्दवो नागाः सप्तचन्द्राश्च खेन्दवः।
गोऽब्जाः सूर्याः कुनेत्राश्च रव्यादीनां दशासमाः॥२०॥

यदि लग्नाधिप से राहु लग्न को छोड़कर अन्य केन्द्र-त्रिकोणस्थान में बैठा हो तो अष्टोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिए, ऐसा कुछ प्राचीनाचार्यों का मत है। उस अष्टोत्तरी में

आर्द्रा से ४ नक्षत्राधिप सूर्य, अनन्तर के ३ नक्षत्र चन्द्र, पश्चात् के ४ नक्षत्र भौम, उसके बाद ३ नक्षत्र बुध, अनन्तर के ४ नक्षत्र शनि, उसके पश्चात् ३ नक्षत्र गुरु, पुन: ४ नक्षत्र राहु, उसके बाद ३ नक्षत्र शुक्र—इस प्रकार गिनकर अपना जन्मनक्षत्र जिस ग्रह में पड़े, वही प्रारम्भकालिक जन्मदशा होगी। दशावर्ष रवि का ६, चन्द्र का १५, भौम का ८, बुध का १७, शनि का १०, गुरु का १९, राहु का १२ वर्ष और शुक्र का २१ वर्ष है। इस प्रकार केतु को छोड़कर शेष ८ ग्रह ही दशाधिपति होते हैं ॥१७-२०॥

अष्टोत्तरी दशाबोधक चक्र

दशाधिप	सू.	चं.	मं.	बु.	श.	गु.	रा.	शु.
दशावर्ष	६	१५	८	१७	१०	१९	१२	२१
नक्षत्र	आ. पुन पुष्य श्ले.	म पू.फा. उ.फा.	ह. चि. स्वा. वि.	अनु. ज्ये. मू.	पू.षा. उ.षा. अभि. श्र.	ध. श. पू.भा.	उ.भा. रे अ. भ.	कृ. रो. मृ.

दशानयनप्रकार

दशाब्दांघ्रिश्च पापानां शुभानां त्र्यंश एव हि।
एकैकभे दशामानं विज्ञेयं द्विजसत्तम! ॥२१॥
ततस्तद्यातभोगाभ्यां भुक्तं भोग्यं च साधयेत्।
विंशोत्तरीवदेवात्र ततस्तत्फलमादिशेत् ॥२२॥

पूर्वकथित जो ग्रहों की दशावर्षसंख्या कही गयी है, उसमें से पाप ग्रहों के दशामान के चतुर्थांश एक-एक नक्षत्र में दशावर्ष होते हैं। शुभ ग्रहों में तृतीयांश एक-एक नक्षत्र में दशामान होते हैं। इस प्रकार अपने जन्मनक्षत्र में जो दशा हो और उसका जो भी दशामान उत्पन्न हो उस पर से भयात्, भभोग के माध्यम से विंशोत्तरी के अनुरूप दशा का भुक्त-भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए ॥२१-२२॥

विशेष—यदि उत्तराषाढा में जन्म हो तो उत्तराषाढा के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरणों का योग करके उसको भभोग मानकर दशा का भुक्त-भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए एवं उत्तराषाढा के चतुर्थ चरण में या श्रवण के १५ वें भाग के प्रारम्भ काल में जन्म हो तो उत्तराषाढा के चतुर्थ चरण तथा श्रवण के १५ वें भाग का योग करके जो हो, उसे भभोग मान कर दशा का भुक्त-भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए। यदि श्रवण में जन्म हो तो १५ वाँ भाग श्रवण के भभोग में घटाकर शेष को भभोग मानकर दशा का भुक्त-भोग्य वर्षादि साधन करना चाहिए। उत्तरषाढा के चतुर्थ चरण और श्रवण का १५ वाँ भाग मिला करके अभिजित् नामक नक्षत्र होता है।

उदाहरण—जैसे उत्तरषाढा का सम्पूर्ण मान ६०।१६ है यथा भयात् २०।८ है तो उत्तरषाढा के द्वितीय चरण में जन्म हुआ। उत्तरषाढा के कुल भोग मान ६०।१६ में इसके चतुर्थांश १५।४ को घटाने से ४५।१२ होता है, यही भभोग हुआ तथा २०।८ भयात्

हुआ। उत्तरषाढा शनि का द्वितीय नक्षत्र है। उसका मान ३० माह है, क्योंकि शनि के ४ नक्षत्र में १० वर्ष (१२० माह) हैं तो १ नक्षत्र में क्या ? इस प्रकार ३० माह आता है, अतः इस ३० माह से विंशोत्तरी दशानयनवत् भयात् २०।८ पलात्मक १२०८ को ३० माह से गुणा किया तो ३६२४० हुआ; इसमें पलात्मक २७१२ भभोग से भाग देने से लब्ध मासादि १३।१०।५३ यह भुक्त हुआ, इसको ३० में घटाने से लब्ध मासादि शनि का १६।१९।७ भोग्य हुआ, इसमें अभिजित् तथा श्रवण नक्षत्र के ३०-३० माह जोड़ने से मासादि ७६।१९।७ हुए, पुनः इसको वर्षादि बनाने से ६।४।१९।७ हुआ, यह अष्टोत्तरी दशा में शनि का भोग्य वर्षादि हुआ।

इसके अनुरूप अष्टोत्तरी दशा चक्र

श.	बृ.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.		दशाधिप
६	१९	१२	२१	६	१५	८	१७		वर्ष
४									मास
१९									दिन
७									घटी
२०४९	२०५५	२०७४	२०८६	२१०७	२११३	२१२८	२१३६	२१५३	संवत्
४	९	९	९	९	९	९	९	९	सू.रा.
१८	७	७	७	७	७	७	७	७	सू.अं.
१५	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	सू.क.

कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्लपक्षे तथा निशि।
तदा ह्यष्टोत्तरी चिन्त्या फलार्थञ्च विशेषतः ॥२३॥

कृष्ण पक्ष में दिन में एवं शुक्ल पक्ष में रात्रि का जन्म हो तो विशेष फल ज्ञान हेतु अष्टोत्तरी दशा का विचार करना चाहिए ॥२३॥

विशेष—उत्तरषाढा, अभिजित् और श्रवण में जन्म हो तभी पूर्व प्रकार से दशा का भुक्त-भोग्य का विचार करना है। इन नक्षत्रों से भिन्न नक्षत्रों में पूर्ण भभोग पर से ही दशा-साधन करना चाहिए। अष्टोत्तरी तथा षष्टिहायनी दशा में ही अभिजित् नक्षत्र का ग्रहण किया जाता है; अन्य दशाओं में नहीं। इसका ध्यान रखना चाहिए।

उत्तरषाढा से भिन्न नक्षत्र शतभिषा का भुक्त-भोग्य का उदाहरण विंशोत्तरी में दिया गया है। उसी नक्षत्र का उदाहरण अष्टोत्तरी में भी दिया जा रहा है। भयात् १९।१५, भभोग ६६।३२ शतभिषा के द्वितीय चरण में जन्म है। शतभिषा गुरु का दूसरा नक्षत्र है। गुरु का १९ वर्ष है, अतः १९ × १२ ÷ ३ = ७६ माह एक नक्षत्र का मान हुआ। अतः १९।१५ भयात्, पलमय ११५५, ११५५ × ७६ = ८७७८० हुआ, इसको पलमय ३९९२ भभोग से भाग दिया तो लब्ध २१।२९।४० भुक्त मासादि हुआ, इसको ७६ माह में घटाया तो शतभिषा नक्षत्र का ५४।०।२० भोग्य मासादि हुए, इसमें पूर्व भाद्रपद का ७६ मास जोड़कर वर्षादि बना दिया तो १०।१०।०।२० भोग्य वर्षादि हुए।

अष्टोत्तरी दशा चक्र

वृ.	रा.	शु.	सू.	चं.	मं.	बु.	श.		दशाधीश
१०	१२	२१	६	१५	८	१७	१०		वर्ष
१०									मास
०									दिन
२०									घटी
२०४९	२०६०	२०७२	२०९३	२०९९	२११४	२१२२	२१३९	२१४९	संवत्
६	४	४	४	४	४	४	४	४	सू.रा.
१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	सू.अं.
१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	सू.क.

इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों का भी दशानयन करना चाहिए।

षोडशोत्तरीदशानयन

चन्द्रहोरागते कृष्णे सूर्यहोरागते सिते।
लग्ने नृणां फलज्ञप्त्यै विचिन्त्या षोडशोत्तरी॥२४॥
पुष्यभाज्जन्मभं यावद् या संख्या गजतष्टिता।
रविभौमो गुरुर्मन्दः केतुश्चन्द्रो बुधो भृगुः॥२५॥
इति क्रमाद् दशाधीशाः ज्ञेया राहुं विना ग्रहाः।
रुद्राद्येकोत्तराः संख्या धृत्यन्तं वत्सराः क्रमात्॥२६॥

यदि कृष्ण पक्ष में लग्न-चन्द्रमा की होरा में हो और शुक्ल पक्ष में लग्न सूर्यहोरा में हो तो जातक के शुभाशुभ फल-ज्ञान हेतु षोडशोत्तरी दशा ग्रहण करनी चाहिए। पुष्य नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर आठ का भाग देकर एकादि शेष में क्रम से रवि, भौम, गुरु, शनि, केतु, चंन्द्र, बुध, भृगु—ये ८ ग्रह दशाधिप होते हैं। इस दशा में राहु का ग्रहण नहीं किया जाता। इनके दशावर्षमान ११ से एकोत्तर वृद्धि करके १८ तक अर्थात् ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८—ये क्रम से जानने चाहिए।

षोडशोत्तरी दशाचक्र

सू.	मं.	वृ.	श.	के.	चं.	बु.	शु.	दशेश
११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	वर्ष
पु.	श्ले.	म	पू.	उ.	ह.	चि.	स्वा.	नक्षत्र
वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	
श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	
मृ.	आ.	पुन	×	×	×	×	×	

उदाहरण—मानो शतभिषा जन्मनक्षत्र है, उसका भयात् १९।१५ एवं भभोग ६६।३२ है, तो जन्मसमय में दशाधिकारी सूर्य हुआ। पलात्मक ११५५ भयात् को दशा सूर्य वर्ष ११

से गुणा किया तो १२७०५ हुआ; इसमें पलमय ३९९२ भभोग से भाग देकर भुक्त वर्षादि ३।२।५।४४ को सूर्य के वर्षमान ११ में घटाने से भोग्य-वर्षादि ७।९।२४।१६ हुए।

षोडशोत्तरी दशा चक्र

सू.	मं.	गु.	श.	के.	चं.	बु.	शु.		दशेश
७	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८		वर्ष
९									मास
२४									दिन
१६									घटी
२०४९	२०५७	२०६९	२०८२	२०९६	२१११	२१२७	२१४४	२१६२	संवत्
४	२	२	२	२	२	२	२	२	सू.रा.
१८	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	सू.अं.
१५	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३१	सू.क.

द्वादशोत्तरी दशा

शुक्रांशके प्रजातस्य विचिन्त्या द्वादशोत्तरी।
जन्मभात् पौष्णभं यावत् संख्या हि वसुतष्टिता ॥२७॥
सूर्यो गुरुः शिखी ज्ञोऽगुः कुजो मन्दो निशाकरः।
विना शुक्रं दशाधीशा द्विचयात् सप्ततः समाः ॥२८॥

जिस जातक का जन्म शुक्र के नवमांश में हो तो उसको द्वादशोत्तरी दशा विशेष फलदायी होती है। अपने जन्मनक्षत्र से रेवती तक गिनकर उसमें आठ से भाग देने पर एकादि शेष से क्रम से सूर्य, गुरु, केतु, बुध, राहु, मंगल, शनि, चन्द्र—ये आठ दशाधिप होते हैं। इस द्वादशोत्तरी दशा में शुक्र की दशा नहीं होती। इन ग्रहों के दशावर्ष सात से दो-दो की वृद्धि करके होते हैं अर्थात् ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१ वर्ष क्रम से होते हैं ॥२७-२८॥

द्वादशोत्तरी दशाज्ञानचक्र

सू.	बृ.	के.	बु.	रा.	मं.	श.	चं.	ग्रह
७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	वर्ष
रे.	उ.भा.	पू.भा.	श.	ध.	श्र.	उ.षा.	पू.षा.	नक्षत्र
मू.	ज्ये.	अनु.	वि.	स्वा.	चि.	ह.	उ.फा.	
पू.फा.	म.	श्ले.	पु.	पुन.	आ.	मृ.	रो.	
कृ.	भ.	अश्वि.						

उदाहरण—विंशोत्तरी दशा सदृश ही होता है। जैसे जन्मनक्षत्र शतभिषा है। अत: द्वादशोत्तरी दशा में बुध में जाता है। भयात् १९।१५ पलमय ११५५ को बुध वर्षमान १३ से गुणा किया तो १५०५० हुआ, इसमें भभोग पलात्मक ३९९२ से भाग दिया तो लब्धि भुक्त वर्षादि ३।९।४।३ हुए, इसको १३ में घटाने पर भोग्य वर्षादि ९।२।२५।५७ हुए।

द्वादशोत्तरी दशाचक्र

बु.	रा.	मं.	श.	चं.	सू.	वृ.	के.		ग्रह
९	१५	१७	१९	२१	७	९	११		वर्ष
२									मास
२५									दिन
५७									घटी
२०४९	२०५८	२०७३	२०९०	२१०९	२१३०	२१३७	२१४६	२१५७	संवत्
४	७	७	७	७	७	७	७	७	सू.रा.
१८	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	सू.अं.
१५	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	सू.क

पञ्चोत्तरी दशानयनप्रकार

निजार्कांशगते कर्कलग्ने पञ्चोत्तरी मता।
मित्रर्क्षाज्जन्मभं यावत् संख्या सप्तविभाजिता ॥२९॥
एकादिशेषे विज्ञेयाः क्रमात् सप्त दशाधिपाः।
रविर्ज्ञोऽर्कसुतो भौमः शुक्रश्चन्द्रो बृहस्पतिः ॥३०॥
एकोत्तराच्च विज्ञेया द्वादशाद्याः क्रमात्समाः।
धृत्यन्ताः सप्तखेटानां राहु-केतू विना द्विज! ॥३१॥

हे द्विज ! जिस जातक का कर्कट लग्न में उसी के द्वादशांश में जन्म हो उस जातक के लिए पञ्चोत्तरी दशा विशेष फलप्रद होती है। अनुराधा से जन्मकालिक नक्षत्र तक गिने और उसमें सात का भाग देकर एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, चन्द्र और गुरु दशाधिकारी होते हैं। इसमें राहु-केतु नहीं लिया जाता। इनके वर्षमान एकोत्तर वृद्धि से १२ से १८ तक होते हैं, अर्थात् १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ क्रम से सूर्यादि ग्रहों के दशावर्ष होते हैं ॥२९-३१॥

पञ्चोत्तरीदशा-ज्ञानचक्र

सू.	बु.	श.	मं.	शु.	चं.	वृ.	ग्रह
१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	वर्ष
अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	श्र.	ध.	नक्षत्र
श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	अ.	भ.	कृ.	
रो.	मृ.	आ.	पुन.	पु.	श्ले.	म.	
पू.फा	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.		

उदाहरण—जन्मनक्षत्र शतभिषा है। भयात् १९।१५, भभोग पलमय ३९९२, सूर्य ४।१८°।१५′ है, तो उक्त चक्रानुसार सूर्य की महादशा में जन्म है; अतः पलमय भयात् ११५५ को सूर्यवर्ष १२ से गुणा किया तो १३६८० हुआ; इसमें पलमय भभोग ३९९२ से भाग दिया तो वर्षादि भुक्तमान ३।५।३।४० हुआ, इसको सूर्य-दशामान १२ में घटाया तो ८।६।२६।२० सूर्य का भोग्य-वर्षादि मान हुआ ॥२९-३१॥

पञ्चोत्तरीदशाचक्र

सू.	बु.	श.	मं.	शु.	चं.	वृ.		दशेश
८	१३	१४	१५	१६	१७	१८		वर्ष
६								मास
२६								दिन
२०								घटी
२०४९	२०५७	२०७०	२०८४	२०९९	२११५	२१३२	२१५०	संवत्
४	११	११	११	११	११	११	११	सू.रा.
१८	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	सू.अं.
१५	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३५	सू.क.

इसी प्रकार अन्य दशाओं का भी साधन करना चाहिए।

शताब्दिका दशासाधन

वर्गोत्तमगते लग्ने दशा चिन्त्या शताब्दिका।
पौष्णभाज्जन्मपर्यन्तं गणयेत् सप्तभिर्भजेत् ॥३२॥
शेषाङ्के रवितो ज्ञेया दशा शतसमाह्वया।
रविश्चन्द्रो भृगुर्ज्ञश्च जीवो भौमः शनिस्तथा ॥३३॥
क्रमादेते दशाधीशा बाणा बाणा दिशो दश।
नखा नखाः खरामाश्च समा ज्ञेया द्विजोत्तम! ॥३४॥

जिस जातक का वर्गोत्तम नवमांशस्थ लग्न हो तो उसे शताब्दिका दशा लगानी चाहिए। रेवती नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर सात का भाग देकर एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, शुक्र, बुध, गुरु, भौम और शनि दशेश होते हैं; इनके वर्षमान क्रमशः ५, ५, १०, १०, २०, २०, ३० होते हैं ॥३२-३४॥

शताब्दिदशा-ज्ञानार्थ चक्र

सू.	चं.	शु.	बु.	वृ.	मं.	श.	ग्रह
५	५	१०	१०	२०	२०	३०	वर्ष
रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	नक्षत्र
पुन.	पु.	श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	
चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	
उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.		

उदाहरण—जन्म नक्षत्र शतभिषा है, भयात् १९।१५, भभोग पलमय ३९९२ पलमय भयात् ११५५, उक्त चक्रानुसार बुध में जन्म होने के कारण बुध दशावर्ष १० से गुणा किया तो ११५५० हुआ, इसमें पलमय भभोग ३९९२ से भाग दिया तो लब्धि भुक्त वर्षादि २।१०।२१।३५ हुए, इसको बुध दशावर्ष १० में घटाने पर ७।१।८।२५ भोग्य वर्षादि हुए ॥३२-३४॥

शताब्दिका महादशाचक्र

बु.	वृ.	मं.	श.	सू.	चं.	शु.		ग्रह
७	२०	२०	३०	५	५	१०		वर्ष
१								मास
८								दिन
२५								घटी
२०४९	२०५६	२०७६	२०९६	२१२६	२१३१	२१३६	२१४६	संवत्
४	५	५	५	५	५	५	५	सू.रा.
१८	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२६	सू.अं.
१५	४०	४०	४०	४०	४०	४०	४०	सू.कं.

इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी साधन करना चाहिए ।।३२-३४।।

चतुरशीतिसमा महादशासाधन

कर्मेशे कर्मगे ज्ञेया चतुराशीतिका दशा ।
पवनाज्जन्मभं यावत् या संख्या सप्तभाजिता ।।३५।।
शेषे रवीन्दु-भौम-ज्ञा गुरु-शुक्र-शनैश्चराः ।
दशाधीशाः क्रमादेषां ज्ञेया द्वादशवत्सराः ।।३६।।

जिस जातक के जन्मसमय में दशमाधिप दशम में ही बैठे हों तो उसके लिए चतुरशीतिसमा दशा फलदायक होती है। स्वाती नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर सात का भाग देकर एकादि शेष में क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि दशाधिप होते हैं। इनके वर्षमान १२-१२ वर्ष होते हैं ।।३५-३६।।

चतुरशीतिसमा दशाबोधक चक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	ग्रह
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	वर्ष
स्वा	वि.	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	नक्षत्र
श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	अ.	
भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	पु.	
श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.		

उदाहरण—जन्मनक्षत्र शतभिषा है। पलमय भयात् ११५५, पलमय भभोग ३९९२, उक्त चक्रानुसार मंगल में जन्म है, भौम वर्षमान १२ से पलमय भयात् ११५५ को गुना किया तो १३८६० हुआ, इसमें पलमय भभोग ३९९२ से भाग दिया तो भौम की भुक्त ३।५।१९।५४ वर्षादि हुए। इसको भौम दशामान १२ में घटाने पर ८।६।१०।६ भौम के भोग्य वर्षादि मान हुए ।।३५-३६।।

चतुरशीतिसमा महादशाचक्र

मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	सू.	चं.		ग्रह
८	१२	१२	१२	१२	१२	१२		वर्ष
६								मास
१०								दिन
६								घटी
२०४९	२०५७	२०६९	२०८१	२०९३	२१०५	२११७	२११९	संवत्
४	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	सू.रा.
१८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२८	सू.अं.
१५	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२१	सू.क.

इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी साधन करना चाहिए ॥३५-३६॥

द्विसप्ततिसमा दशानयनप्रकार

मूलाज्जन्मर्क्षपर्यन्तं गणयेदष्टभिर्भजेत् ।
शेषाद्दशाधिपा ज्ञेया अष्टौ रव्यादय: क्रमात् ॥३७॥
नव वर्षाणि सर्वेषा विकेतूनां नभःसदाम् ।
लग्नेशे सप्तमे यस्य लग्ने वा सप्तमाधिपे ॥३८॥
चिन्तनीया दशा तस्य द्विसप्ततिसमाह्वया ।
विंशोत्तरीवदत्राऽपि भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ॥३९॥

मूल नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर उसमें आठ का भाग देने पर एकादि शेष में सूर्यादि ग्रह दशाधिप होते हैं। इस द्विसप्ततिसमा दशा में केतु की दशा नहीं होती। इनके दशावर्षमान ९-९ होते हैं। दशा का भुक्त-भोग्य वर्षादि विंशोत्तरी के समान ही होता है। जिस जातक के लग्न में सप्तमेश या सप्तम में लग्नेश हों, उनके लिए यह द्विसप्ततिसमा महादशा विशेष फलप्रद होती है ॥३७-३९॥

द्विसप्ततिसमा दशाबोधकचक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.	ग्रह
९	९	९	९	९	९	९	९	वर्ष
मू.	पू.षा	उ.षा.	श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	नक्षत्र
रे.	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	
पु.	श्ले.	म.	पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	
वि.	अनु.	ज्ये.						

उदाहरण—जन्मनक्षत्र शतभिषा है, उक्त चक्रानुसार शुक्र की महादशा में जन्म है, शुक्र दशावर्ष ९ से पलमय भयात् ११५५ को गुणा किया तो १०३९५ हुआ। इसमें पलमय भभोग ३९९२ से भाग दिया तो भुक्त वर्षादि २।७।७।२५ हुए, इसको शुक्र दशावर्ष ९ में घटाया तो भोग्यवर्षादि ६।४।२२।३५ हुए ॥३७-३९॥

द्विसप्ततिसमा महादशाचक्र

शु.	श.	रा.	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.		ग्रह
६	९	९	९	९	९	९	९		वर्ष
४									मास
२२									दिन
३५									घटी
२०४९	२०५५	२०६४	२०७३	२०८२	२०९१	२१००	२१०९	२११८	संवत्
४	९	९	९	९	९	९	९	९	सू.रा.
१८	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	सू.अं.
१५	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५०	सू.क.

इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों का भी भुक्त–भोग्य साधन करना चाहिए ।।३७-३९।।

षष्टिहायनी दशा-साधन

यदार्को लग्नराशिस्थश्चिन्त्या षष्टिसमा तथा ।
दास्रात् त्रयं चतुष्कं च त्रयं चेति पुनः पुनः ।।४०।।
गुर्वर्कभूसुतानां च दशा दश दशाब्दकाः ।
ततः शशिज्ञशुक्रार्कपुत्रागूनां रसाब्दकाः ।।४१।।

जिस जातक के जन्मलग्न में सूर्य स्थित हो उस जातक के लिए षष्टिसमा दशा विशेष फलप्रद होती है । अश्विनी से ३ नक्षत्र, फिर ४ नक्षत्र, पुनः ३ नक्षत्र, फिर ४ नक्षत्र, इसके पश्चात् ३ नक्षत्र, फिर ४ नक्षत्र, पुनः ३ नक्षत्र, पुनः ४ नक्षत्र होते हैं । इनके अधिपति क्रम से गुरु, सूर्य, मंगल, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि और राहु होते हैं । इनके दशावर्ष आरम्भ के तीन ग्रहों के १०-१० वर्ष होते हैं । इसके पश्चात् के ५ ग्रहों के ६-६ वर्ष होते हैं ।।४०-४१।।

षष्टिसमा दशाबोधकचक्र

गु.	सू.	मं.	चं.	बु.	शु.	श.	रा.	दशेश
१०	१०	१०	६	६	६	६	६	वर्ष
अ.	रो.	पुष्य	पू.फा.	स्वा.	ज्ये.	अ.	श.	नक्षत्र
भ.	मृ.	श्ले.	उ.फा	वि.	मू.	श्र.	पू.भा.	
कृ.	आ. पु.	म.	ह. चि.	अनु.	पू.षा. उ.षा.	ध.	उ.भा. रे.	

उदाहरण—षष्टिसमा दशा में भुक्त-भोग्य वर्षादि-साधन अष्टोत्तरी दशा के समान ही करना चाहिए । जैसे जन्मनक्षत्र शतभिषा है, तो उक्त चक्रानुसार राहु का प्रथम नक्षत्र है, राहु में चार नक्षत्र हैं, राहु का वर्ष ६ अर्थात् १२ × ६ = ७२ माह हैं, ४ ÷ ७२ = १८ माह एक नक्षत्र का वर्षमान है । अतः पलमय भयात् ११५५ को १८ माह से गुणा कर पलमय भभोग ३९९२ से भाग दिया तो भुक्त मासादि ५।६।१४ हुए। इसको १८ में घटाया तो १२।२३।४६ भोग्य मासादि हुए, इसमें अग्रिम तीन नक्षत्रों के वर्षमान १८ × ३ = ५४ जोड़कर वर्षादि ५।६।२३।४६ बनाया तो राहु की भोग्य दशा हुई ।।४०-४१।।

षष्टिसमा महादशाचक्र

श.	वृ.	सू.	मं.	चं.	बु.	शु.	श.		ग्रह
५	१०	१०	१०	६	६	६	६		वर्ष
६									मास
२३									दिन
४६									घटी
२०४९	२०५४	२०६४	२०७४	२०८४	२०९०	२०९६	२१०२	२१०८	संबत्
४	११	११	११	११	११	११	११	११	सू.रा.
१८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	सू.अं.
१५	१	१	१	१	१	१	१	१	सू.कं.

षट्त्रिंशत्समा दशा-साधन

श्रवणाज्जन्मभं यावत् संख्या वसुविभाजिता।
शेषे चन्द्र-रवीज्यार-बुधार्कि-भृगु-राहवः ॥४२॥
क्रमाद्दशाधिपास्तेषामेकाद्येकोत्तराः समा।
लग्ने दिनेऽर्कहोरायां चन्द्रहोरागते निशि ॥४३॥

श्रवण नक्षत्र से जन्मनक्षत्र तक गिनकर उसमें आठ का भाग देकर एकादि शेष में क्रमशः चन्द्र, सूर्य, गुरु, मंगल, बुध, शनि, शुक्र और राहु दशेश होते हैं। इनके क्रम से १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ दशावर्षमान होते हैं। जिस जातक का दिन में जन्म हो और लग्न में सूर्य की होरा हो अथवा रात्रि में जन्म हो और चन्द्र की होरा में लग्न हो तो उस जातक के लिए षट्त्रिंशत्समा दशा लगानी चाहिए ॥४२-४३॥

षट्त्रिंशत्समा दशाबोधकचक्र

चं.	सू.	बृ.	मं.	बु.	श.	शु.	रा.	दशेश
१	२	३	४	५	६	७	८	वर्ष
श्र.	ध.	श.	पू.भा.	उ.भा.	रे.	अ.	भ.	नक्षत्र
कृ.	रो.	मृ.	आ.	पुन.	पु.	श्ले.	म.	
पू.फा.	उ.फा.	ह.	चि.	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये.	
मू.	पू.षा.	उ.षा						

उदाहरण—जन्मनक्षत्र शतभिषा है। उक्त चक्रानुसार गुरु में जन्म है। गुरु का दशा वर्षमान ३ वर्ष है, इससे पलात्मक भयात् ११५५ को गुणा किया तो ३४६५ हुआ। इसको पलात्मक भभोग ३९९२ से भाग दिया तो भुक्त वर्षादि ०।१०।१२।२८ हुए। इसको पूर्ण गुरु वर्ष मान ३ में घटाया तो २।१।१७।३२ भोग्य वर्षादि हुए।

षटत्रिंशत्समा दशाचक्र

वृ.	मं.	बु.	श.	शु.	रा.	चं.	सू.		ग्रह
२	४	५	६	७	८	१	२		वर्ष
१									मास

वृ.	मं.	बु.	श.	शु.	रा.	चं.	सू.		ग्रह
१७									दिन
३२									घटी
२०४९	२०५१	२०५५	२०६०	२०६६	२०७३	२०८१	२०८२	२०८४	संवत्
४	६	६	६	६	६	६	६	६	सू.रा.
१८	५	५	५	५	५	५	५	५	सू.अं.
१५	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४७	सू.क.

इसी प्रकार अन्य दशाओं का भी साधन करना चाहिए।

कालदशा साधन-प्रकार

सूर्यस्याऽर्धास्ततः पूर्वं परस्तादुदयादपि।
पञ्च पञ्च घटी सन्ध्या दशनाडी प्रकीर्तिता ॥४४॥
सन्ध्याद्वयञ्च विंशत्या नाडिकाभिः प्रकीर्तितम्।
दिनस्य विंशतिर्घट्यः पूर्णसंज्ञा उदाहृताः ॥४५॥
निशाया मुग्धसंज्ञाश्च घटिका विंशतिश्च याः।
सूर्योदये च या सन्ध्या खण्डाख्या दशनाडिका ॥४६॥
अस्तकाले च या सन्ध्या सुधाख्या दशनाडिका।
पूर्णमुग्धघटीमाने द्विगुणो तिथिभिर्भजेत् ॥४७॥
तथा खण्डसुधा घट्यो चतुर्घ्ने तिथिभिर्भजेत्।
लब्धं वर्षादिकं मानं सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥४८॥
एकादि-संख्यया निघ्नं दशामानं पृथक् क्रमात्।
राहुकेतुयुतानां च नवानां कालसंज्ञकम् ॥४९॥

अर्धास्त सूर्यविम्ब से पूर्व तथा पश्चात् ५-५ घटी अर्थात् १० घटी सायंसन्ध्या होती है एवं अर्धोदित सूर्यविम्ब से पूर्व ५ घटी एवं पर ५ घटी—इस प्रकार १० घटी प्रातः-सन्ध्या होती है, दोनों सन्ध्या २० घटी होती है। दिन की २० घटी पूर्णसंज्ञक कही गई है और रात्रि की २० घटी मुग्धसंज्ञक बताई गई है। सूर्योदयकालिक १० घटी सन्ध्या खण्ड और अस्तकालिक १० घटी सन्ध्या सुधासंज्ञक है। यदि पूर्ण या मुग्ध में जातक का जन्म हो तो पूर्ण या मुग्ध को दो से गुणा कर १५ का भाग दे, यदि खण्ड या सुधा में जन्म हो तो खण्ड या सुधा को चार से गुणा कर १५ का भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ से गुणा करने पर क्रमशः सूर्यादि नवग्रहों के दशावर्ष-मान होते हैं। इस दशा में राहु-केतु सहित नवग्रहों का ही ग्रहण करना चाहिए ॥४३-४९॥

उदाहरण—मानो किसी का इष्ट घटी २।१५ है। यह उदयकालिक सन्ध्या के अन्तर्गत है, अतः गत घटी ७।१५ को ४ से गुणा किया तो २९।० हुआ; इसमें १५ का भाग देने से लब्ध वर्षादि १।११।६।० हुए। इसको १, २, ३ इत्यादि ९ पर्यन्त गुणा करने पर क्रम से १।११।६।०, ३।१०।१२।०, ५।९।१८।०, ७।८।२४।०, ९।८।०।०,

११।७।६।०, १३।६।१२।०, १५।५।१८।० एवं १७।४।२४।० सूर्यादि नवग्रहों के वर्षमान हुए ॥४४-४९॥

अथ कालदशाचक्र

सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.	के.		दशेश
१	३	५	७	९	११	१३	१५	१७		वर्ष
११	१०	९	८	८	७	६	५	४		माह
६	१२	१८	२४	०	६	१२	१८	२४		दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०		घटी
२०४९	२०५१	२०५५	२०६०	२०६८	२०७८	२०८९	२१०३	२११८	२१३६	संवत्
४	३	२	११	८	४	११	६	११	४	सू.रा.
१८	२४	६	२४	१८	१८	२४	६	२४	१८	सू.अं.
१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	सू.क.

इसी प्रकार अन्य समयों का भी कालदशा ज्ञात करना चाहिए।

चक्रदशासाधन

रात्रौ लग्नाश्रिताद्राशेर्दिने लग्नेश्वराश्रितात्।
सन्ध्यायां वित्तभावस्थान्नेया चक्रदशा बुधैः ॥५०॥
दश वर्षाणि राशीनामेकैकस्य दशामितिः।
क्रमाच्चक्रस्थितानाञ्च विज्ञातव्या द्विजोत्तम! ॥५१॥

हे द्विजोत्तम ! यदि रात्रि में जन्म हो तो लग्नाश्रित राशि से क्रमशः द्वादश राशियों की दशा होती है एवं रात्रि का जन्म हो तो लग्नाधिपनिष्ठ राशि से, सन्ध्याकाल में जन्म हो तो द्वितीय भावस्थ राशि से क्रमशः द्वादश राशियों की दशा होती है। आकाश चक्र-निष्ठ राशियों की दशा होने के कारण इसको 'चक्रदशा' नाम से कहा जाता है ॥५०-५१॥

उदाहरण—जातक का जन्म सन्ध्याकाल में है, इसलिए द्वितीय भावस्थ सिंह राशि है, अतः सिंह से आरम्भ कर क्रमशः १२ राशियों की महादशा हुई ॥५०-५१॥

चक्रदशा

सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
२०५९	२०६९	२०७९	२०८९	२०९९	२१०९	२११९	२१२९	२१३९	२१४९	२१५९	२१६९
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८

इति चक्रदशा समाप्ता

अथ कालचक्रदशाध्याय: ॥४८॥

पराशर उवाच

अथाऽहं शङ्करं नत्वा कालचक्रदशां ब्रुवे।
पार्वत्यै कथिता पूर्वं सादरं या पिनाकिना ॥१॥
तस्या: सारं समुद्धृत्य तवाऽग्रे द्विजनन्दन!।
शुभाऽशुभं मनुष्याणां यथा जानन्ति पण्डिता: ॥२॥

पराशर मुनि ने कहा कि हे द्विजनन्दन! अब मैं श्री सदाशिव भगवान् शंकर को नमन करके कालचक्रदशा को कहता हूँ, जिसे पूर्व में शंकर जी ने माता पार्वती को कहा है, उसका सारांश आपके समक्ष कहता हूँ। जिससे पण्डितजन मनुष्यों के शुभाशुभ फल को जानते हैं ॥१-२॥

द्वादशारं लिखेच्चक्रं तिर्यगूर्ध्वसमानकम्।
गृहा द्वादश जायन्ते सव्येऽसव्ये द्विधा द्विज! ॥३॥
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु राशीन् मेषादिकान् लिखेत्।
एवं द्वादशराश्याख्यं कालचक्रमुदीरितम् ॥४॥

तिर्यग् और खड़ी रेखाओं से १२-१२ कोष्ठक वाले सव्य तथा अपसव्यनामक दो चक्र लिखकर उनमें दूसरे कोष्ठक से मेषादि राशियाँ स्थापित करे। उनमें वक्ष्यमाण प्रकार से नक्षत्रादि को अंकित करे। यही द्वादश राश्यात्मक कालचक्रदशा कही जाती है ॥३-४॥

पूर्वकथित चक्र में नक्षत्रन्यासप्रकार कथन

अश्विन्यादित्रयं सव्यमार्गे चक्रे व्यवस्थितम्।
रोहिण्यादित्रयं चैवमपसव्ये व्यवस्थितम् ॥५॥
एवमृक्षविभागं हि कृत्वा चक्रं समुद्धरेत्।
अश्विन्यदिति-हस्तर्क्षं मूलप्रोष्ठपदाभिधा: ॥६॥
वह्नि-वातादि-विश्वर्क्ष-रेवत्य: सव्यतारक:।
एतद्दशोडुपादानामश्विन्यादौ च वीक्षयेत् ॥७॥

अश्विन्यादि तीन नक्षत्र सव्य चक्र में और उससे आगे अर्थात् रोहिणी से ३ नक्षत्र असव्य चक्र में, पुन: पुनर्वसु से ३ नक्षत्र सव्य में और मघा से ३ असव्य में, हस्त से ३ नक्षत्र सव्य में और विशाखा से ३ नक्षत्र असव्य में, मूल से ३ नक्षत्र सव्य में और श्रवण से ३ नक्षत्र असव्य में तथा पूर्वभाद्र से ३ नक्षत्र सव्य चक्र में स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार नक्षत्रविभाजन करके दोनों चक्रों में से सव्य चक्र में १५ नक्षत्र और असव्य चक्र में १२ नक्षत्र होते हैं। अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वभाद्रपद, कृत्तिका, अश्लेषा, स्वाती,

उत्तरषाढा और रेवती—इन सव्य चक्रस्थ नक्षत्रों को अश्विनी के चरणसदृश ही देखना चाहिए ॥५-७॥

देह-जीव आदि का प्रकार

देहजीवौ कथं वीक्ष्यौ नक्षत्राणां पदेषु च।
विशदं तत्प्रकारं च मैत्रेय! कथयाम्यहम् ॥८॥

हे मैत्रेय ! अब मैं नक्षत्रों के चरण में जीव-देह का विचार कैसे किया जाता है ? उसका विस्तृत प्रकार बतलाता हूँ ॥८॥

देहजीवौ मेषचापौ दास्राद्यचरणस्य च।
मेषाद्याश्चापपर्यन्तं राशिपाश्च दशाधिपाः ॥९॥

दास्र (अश्विनी) नक्षत्र के प्रथम चरम में मेष देह तथा धन जीवसंज्ञक होता है, मेष से धन राशिपर्यन्त की राशियाँ तथा इनके पति क्रमशः दशाधिकारी होते हैं ॥९॥

मृगयुग्मे देहजीवौ द्वितीयचरणे स्मृतौ।
क्रमात् मिथुनपर्यन्तं राशिपाश्च दशाधिपाः ॥१०॥
(देहजीवौ नक्रयुग्मौ दिगीशार्काष्टभूधराः।
षड्वेदशरलोकाश्च राशिपाश्च दशाधिपाः ॥)

अश्विनी के द्वितीय चरण में मकर देह और मिथुन जीवसंज्ञक है तथा मकर, कुम्भ, मीन, वृश्चिक, तुला, कन्या, कर्क, सिंह और मिथुन—इन ९ राशियों के स्वामी दशेश होते हैं ॥१०॥

दास्रादिदशताराणां तृतीयचरणे द्विज!।
गौर्देहो मिथुनं जीवो द्व्येकार्केशदशाङ्कपाः ॥११॥
क्ष्वक्षिरामर्क्षनाथाश्च दशाधिपतयः क्रमात् ॥११½॥

अश्विन्यादि दश नक्षत्रों के तृतीय चरण में वृष देह और मिथुन जीवसंज्ञक हैं। २,१, १२,११,१०,९,१,२,३—इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशाधिकारी होते हैं ॥११॥

अश्विन्यादिदशोडूनां चतुर्थचरणे तथा ॥१२॥
कर्कमीनौ देहजीवौ कर्कादिनवराशिपाः।
दशाधीशाश्च विज्ञेया नवैते द्विजसत्तम! ॥१३॥

अश्विन्यादि १० नक्षत्रों के चतुर्थ चरण में कर्क देह और मीन जीवसंज्ञक हो जाता है। क्रम से कर्क से ९ राशि तक की राशियों के स्वामी दशेश होते हैं ॥१२-१३॥

भरण्यादि ५ नक्षत्रों में देह-जीवविभाजन

यमेज्यचित्रातोयर्क्षाऽहिर्बुध्न्याः सव्यतारकाः।
एतत्पञ्चोडुपादानां भरण्यादौ विचिन्तयेत् ॥१४॥

याम्यप्रथमपादस्य देहजीवावलिर्झषः ।
नागागर्तु-पयोधीषु-रामाक्षीष्वङ्गभेश्वराः ॥१५॥
याम्यद्वितीयपादस्य देहजीवौ घटाङ्गने ।
रुद्रदिङ्नन्द-चन्द्राक्षि-रामाब्धीष्वङ्गभेश्वराः ॥१६॥
याम्यतृतीयपादस्य देहजीवौ तुलाङ्गने ।
सप्ताष्टाङ्कदिगीशार्क–गजाद्रिरसभेश्वराः ॥१७॥
कर्को देहो धनुर्जीवो याम्यतुर्यपदे द्विज ! ।
वेदबाणाग्निनेत्रेन्दु-सूर्येशाशाङ्कभेश्वराः ॥१८॥

भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा और उत्तरभाद्रपद—ये ५ नक्षत्र सव्य चक्रस्थ भरण्यादि नक्षत्र कहे जाते हैं। इन ५ नक्षत्रों के चरणों में भरणी के समान ही देह और जीव जानना चाहिए। जैसे भरणी के प्रथम चरण में वृश्चिक देह और मीन जीव होता है तथा ८, ७, ६, ४, ५, ३, २, १, १२—इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं। भरणी के द्वितीय चरण में कुम्भ देह और कन्या जीवसंज्ञक हैं; इनमें क्रम से ११, १०, ९, १, २, ३, ४, ५, ६—इन राशियों के स्वामी दशेश होते हैं। भरणी के तृतीय चरण में तुला देह और कन्या जीवसंज्ञक है तथा ७, ८, ९, १०, ११, १२, ८, ७, ६—इन राशियों के स्वामी क्रम से दशेश होते हैं। भरणी के चतुर्थ चरण में कर्क देह और धन जीवसंज्ञक है। ४, ५, ३, २, १, १२, ११, १० और ९—इन राशियों के स्वामी क्रम से दशाधिकारी होते हैं ॥१४-१८॥

सव्यमेवं विजानीयादसव्यं कथयाम्यहम् ।
द्वादशारं लिखेच्चक्रं पूर्ववद् द्विजसत्तम ! ॥१९॥
द्वितीयादिषु कोष्ठेषु वृश्चिकाद् व्यस्तमालिखेत् ।
रोहिणी च मघा द्वीशः कर्णश्चेति चतुष्टयम् ॥२०॥
उक्तं चाऽसव्यनक्षत्रं पूर्वाचार्यैर्द्विजोत्तम ! ।
एतद् वेदोडुपादानां रोहिणीवन्निरीक्षयेत् ॥२१॥

इस प्रकार सव्य चक्र को बताकर अब मैं असव्य चक्र को कहता हूँ। पूर्वोक्त सव्य चक्र के सदृश ही द्वादश-कोष्ठ वाला चक्र बनाकर उसके द्वितीयादि कोष्ठ में वृश्चिक से विपरीत (वृ. तु. कं. सिं. क. मि. इत्यादि) राशियों को क्रम से स्थापित करे। उसमें रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण नक्षत्र में देह-जीव आदि रोहिणी के तुल्य ही जानना चाहिए ॥१९-२१॥

रोहिण्यादि ४ नक्षत्रों में देह-जीवादि कथन

रोहिण्यादिपदे देह-जीवौ कर्किधनुर्धरौ ।
नव-दिग्रुद्र-सूर्येन्दु-नेत्राग्नीष्वब्धि-भेश्वराः ॥२२॥
धातृद्वितीयचरणे देहजीवौ तुलस्त्रियौ ।
अङ्गागवसु-सूर्येश-दिनङ्क-वसुजूकपाः ॥२३॥

तृतीयचरणे ब्राह्मे देहजीवौ घटाङ्गने ।
षड्बाणाब्धिगुणाक्षीन्दु-नन्ददिग्रुद्रभेश्वराः ॥२४॥
रोहिण्यन्तपदे देह-जीवावलिझषौ स्मृतौ ।
सूर्येन्दु-द्विगुणेष्वब्धि-तर्कशैलाष्ट-भेश्वराः ॥२५॥

रोहिणी के प्रथम चरण में कर्क देह और धनु जीवसंज्ञक है तथा ९, १०, ११, १२, १, २, ३, ५, ४—इन राशियों के स्वामी क्रम से दशेश होते हैं। रोहिणी के द्वितीय चरण में तुला देह और कन्या जीव है तथा ६, ७, ८, १२, ११, १०, ९, ८, ८—इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशाधिप होते हैं। रोहिणी के तृतीय चरण में कुम्भ देह और कन्या जीवसंज्ञक है तथा ६, ५, ४, ३, २, १, ९, १०, ११—इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं। रोहिणी के चतुर्थ चरण में वृश्चिक देह और मीन जीवसंज्ञक है तथा १२, १, २, ३, ५, ४, ६, ७, ८—इन राशियों के अधिपति क्रमशः दशापति होते हैं ॥२२-२५॥

मृगशीर्षादि आठ अपसव्य नक्षत्र में देह-जीवादि कथन

चान्द्र-रौद्र-भगार्यम्ण-मित्रेन्द्र-वसुवारुणम् ।
एतत्ताराष्टकं विज्ञैर्विज्ञेयं चान्द्रवत् क्रमात् ॥२६॥
कर्को देहो झषो जीवो मृगाद्यचरणे द्विज ! ।
व्यस्तान्मीनादि-कर्कान्त-राशिपाश्च दशाधिपाः ॥२७॥
गौर्देहो मिथुनं जीवो द्वितीयचरणे मृगे ।
त्रिद्व्येकाङ्क-दिगीशार्क-चन्द्राक्षि-भवनाधिपाः ॥२८॥
देहजीवौ नक्रयुग्मे तृतीयचरणे मृगे ।
त्रिबाणाब्धि-रसागाष्ट-सूर्येश-दशमेश्वराः ॥२९॥
मेषो देहो धनुर्जीवो चतुर्थचरणे मृगे ।
व्यस्ताच्चापादि-मेषान्त-राशिपाश्च दशाधिपाः ॥३०॥

मृगशीर्ष, आर्द्रा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा और शतभिषा—इन आठ अपसव्य नक्षत्रों के चरणों में मृगशीर्ष नक्षत्र के एकादि चरण के अनुसार ही देह-जीव आर्द्रादि सात नक्षत्रों में जानना चाहिए। मृगशीर्ष के प्रथम चरण में कर्क देह और मीन जीवसंज्ञक है तथा मीन से उत्क्रम कर्क तक अर्थात् १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४—इन राशियों के स्वामी क्रमशः दशेश होते हैं। मृगशिरा के द्वितीय चरण में वृष देह और मिथुन जीवसंज्ञक है तथा ३, २, १, ९, १०, ११, १२ १, २—इन राशियों के अधिपति क्रमशः दशेश होते हैं। मृगशिरा के तृतीय चरण में मकर देहसंज्ञक और मिथुन जीव है तथा ३, ५, ४, ६, ७, ८, १२, ११, १०—इन राशियों के स्वामी क्रम से दशाधिप होते हैं। मृगशीर्ष के चतुर्थ चरण में मेष देह और धनु जीवसंज्ञक है तथा धनु से विपरीत मेष तक की राशियों के स्वामी दशेश होते हैं ॥२६-३०॥

पराशर उवाच

अपसव्यगणे त्वेवं देहजीवदशादिकम् ।
पार्वत्यै शम्भुना प्रोक्तमिदानीं कथितं मया ॥३१॥

इस प्रकार अपसव्य नक्षत्रों के देह और जीव को मैंने कहा, जैसा कि पूर्व में श्रीशिव जी ने माता पार्वती से कहा था ॥३१॥

मैत्रेय उवाच

केषां च कति वर्षाणि दशेशानां महामुने ! ।
दशाया भुक्तभोग्याद्यं तदारम्भं प्रचक्ष्व मे ॥३२॥

मैत्रेय ने कहा कि हे महामुने ! पूर्वकथित दशाधिपति के कितने प्रमाण दशावर्ष हैं और वे दशायें कब से प्रारम्भ होती हैं तथा उनके भुक्त-भोग्य वर्षादि कैसे जाने जाते हैं, इसका प्रकार मुझे बतलाने की कृपा करें ॥३२॥

पराशर उवाच

भूतैकविंशगिरयो नवदिक्षोडशाब्धयः ।
सूर्यादीनां दशाब्दाः स्यू राशीनां स्वामिनो वशात् ॥३३॥

पराशर मुनि ने कहा कि ५, २१, ७, ९, १०, १६ और ४—ये सूर्यादि ग्रहों के वर्षमान हैं। पूर्व में जिन राशियों को कहा गया है, उन राशियों के वर्षप्रमाण उनके स्वामी के वर्ष से अवगत करना चाहिए। इसका ज्ञान निम्न चक्र से करना चाहिए ॥३३॥

स्फुटज्ञानार्थ चक्र

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म	कु.	मी.
स्वामी	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	वृ.	श.	श.	वृ.
वर्षप्रमाण	७	१६	९	२१	५	९	१६	७	१०	४	४	१०

दशारम्भप्रकार

नरस्य जन्मकाले वा प्रश्नकाले यदंशकः ।
तदादि-नवराशीनामब्दास्तस्यायुरुच्यते ॥३४॥
सम्पूर्णायुर्भवेदादावर्धमंशस्य मध्यके ।
अशान्ते परमं कष्टमित्याहुरपरे बुधाः ॥३५॥

जिस जातक के जन्मकाल या प्रश्नकाल में जिस नक्षत्र का जो अंश (चरण) हो उसी से प्रारम्भ करके ९ राशियों के जितने वर्ष होते हैं, उतने ही उस जातक की आयु होती है। कुछ आचार्यों का मत है कि चरणप्रारम्भ में पूर्णायु, चरण के मध्य में मध्यमायु और चरण के अन्त में जन्म होने से अल्पायु या मरणसमान कष्ट भोग कर जातक जीवित रहता है ॥३४-३५॥

नक्षत्र नवमांश जात कथन

ज्ञात्वैवं स्फुटसिद्धान्तं राश्यंशं गणयेद् बुधः ।
अनुपातेन वक्ष्यामि तदुपायमतः परम् ॥३६॥
गततारास्त्रिभिर्भक्ताः शेषं चैव चतुर्गुणम् ।
वर्तमानपदेनाढ्यं राशीनामंशको भवेत् ॥३७॥

इस प्रकार स्पष्ट सिद्धान्त को जानकर राशि, अंश आदि नक्षत्र के चरण को जानना चाहिए। उसका उपाय–अनुपात से आनयन करने की विधि कहता हूँ। अश्विन्यादिगत नक्षत्रसंख्या को ३ से भाग देकर शेष को ४ से गुणा करे, उसमें जन्मकालिक नक्षत्र की वर्तमान चरण संख्या जोड़ दे। जो संख्या हो, उसे मेषादि राशि का क्रमशः नवमांश जानना चाहिए ॥

उदाहरण—मानो किसी का जन्म मघा के तृतीय चरण में है तो गत नक्षत्र (आश्लेषा) संख्या ९ में ३ का भाग देकर शेष ० को ४ से गुणा कर उसमें वर्तमान मघा के ३ चरण की संख्या युत करने से ३ संख्या हुई, अतः मेष से ३ मिथुन राशि का नवमांश हुआ ॥३६-३७॥

विशेष—एक नक्षत्र में ४ चरण होते हैं, एक चरण में एक नवमांश है, अतः ३ नक्षत्र में १२ नवमांश होंगे। इसलिए गत नक्षत्र संख्या को ३ से भाग देकर लब्धि छोड़कर शेष को ४ से गुणा कर वर्तमान नक्षत्र के जन्मकालिक समय का चरणसंख्या जोड़ा जाता है, ऐसा करने पर मेषादि से वर्तमान नवमांश संख्या उत्पन्न होती है ॥३६-३७॥

कालचक्रस्थ राशियों के वर्षयोग

मेषे शतं वृषेऽक्षाष्टौ मिथुने त्रिगजाः समाः ।
कर्कटेऽङ्गजाः प्रोक्तास्तावन्तस्तत्त्रिकोणयोः ॥३८॥

कालचक्रस्थ राशियों में मेषांश १००, वृषांश ८५, मिथुनांश ८३ एवं कर्कटांश ८६ वर्षयोग होते हैं। इन राशियों से प्रत्येक में पञ्चम तथा नवम में भी उतने ही वर्षयोग होते हैं, जो निम्न चक्रावलोकन से स्पष्ट ज्ञात होगा ॥३८॥

स्पष्टबोधक चक्र

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	राशि
१००	८५	८३	८६	१००	८५	८३	८६	१००	८५	८३	८६	वर्षयोग

कालचक्रमहादशारम्भ-साधन

जनो यत्रांशके जातो गतनाडीपलादिभिः ।
तदंशस्य हताः स्वाब्दाः पञ्चभूमिविभाजिताः ॥३९॥
एवं महादशारम्भो भवेदंशाद्यथा क्रमात् ।
गणयेन्नवपर्यन्तं तत्तदायुः प्रकीर्तितम् ॥४०॥

जिस चरण में जातक का जन्म हो, उस चरण के गत घटीपल से दशावर्ष को गुणा कर उसमें १५ का भाग देने पर लब्ध वर्षादि भुक्त होते हैं, उसको वर्तमान दशावर्ष में हीन करने पर शेष भोग्य-वर्षादि होंगे। उसी राशि से आरम्भ कर महादशा लगानी चाहिए, उस राशि से ९ राशि तक उसकी महादशा होगी एवं उन सबों का वर्षयोग ही उस जातक का पूर्णायु होगा ॥३९-४०॥

उदाहरण—शतभिषा नक्षत्र के द्वितीय चरण में किसी का जन्म है। भयात् १९।१५, भभोग ६६।३२ है। शतभिषा असव्य नक्षत्र है। इसके देहाधिप शुक्र एवं जीवाधीश बुध हैं। भभोग ६६।३२ का चतुर्थांश १६।३८ होता है, यह एक चरण का मान हुआ। भयात् १९।१५ द्वितीय चरण में है; अत: १९।१५–१६।३८ = २।३७। यह शतभिषा के द्वितीय चरण के गत घटीपल हुए। पूर्ण दशावर्ष ८३ है, अत: गत घट्यादि २।३७ को ८३ से गुणा करने पर २१७।११ हुआ, इसमें १५ का भाग देने पर १४।५।१८ भुक्त वर्षादि हुए। शतभिषा असव्य नक्षत्र है, अत: जीव से देह तक गणना होगी। द्वितीय चरण में जन्म होने के कारण जीव मिथुन एवं देह वृष है। अत: भुक्त वर्षादि १४।५।१८ में मिथुन वर्षमान ९ घटाया तो ५।५।१८ हुआ। यह वृष का भुक्त हुआ। वृष-वर्षमान १६ वर्ष में ५।५।१८ घटाया तो शेष १०।६।१२ वृष के भोग्य वर्ष हुए। स्पष्ट हेतु असव्य चक्र का अवलोकन करना चाहिए। भोग्य वर्षादि के पश्चात् विंशोत्तरी दशा के समान दशा लगानी चाहिए ॥३९-४०॥

कालचक्र महादशा

शु.	मं.	वृ.	श.	श.	वृ.	मं.	शु.	बु.		दशेश
वृष	मेष	धन	मकर	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन		राशि
१०	७	१०	४	७	१०	७	१६	९		वर्ष
६										मास
१२										दिन
२०४९	२०५९	२०६६	२०७६	२०८०	२०८७	२०९७	२१०४	२१२०	२१२९	संवत्
४	११	११	११	११	११	११	११	११	११	
१८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	सूर्य:
१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	

विशेष—यहाँ भभोग को ६० मानकर उसका चतुर्थांश १५ से भाग देकर दशा का भुक्त-भोग्य निकाला गया है। यह विधि स्थूल होती है, यह विधि उसी स्थिति में वास्तविक होगी, जहाँ भभोग ६० घटी है, भभोग के ६० घटी से न्यूनाधिक होने पर दशा के भुक्त-भोग्य वर्षादि स्थूल होंगे। वास्तविक तो यह होगा कि भभोग के चतुर्थांश से भाग दिया जाय।

सव्य काल दशाचक्र

सव्य नक्षत्र	सव्य नक्षत्र १,२,३,७,८,९,१३,१४,१५,१९,२०,२१,२५,२६,२७													
	च.	देहा.	देह								जीव	जीवा.	दशा.	अंश
अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, मूल, पूर्वाभाद्रपदा	१	मं.	मे.७	वृ.१६	मि.९	क.२१	सिं.५	क.९	तु.१६	वृ.७	ध.१०	गु.	१००	मेषांश
	२	श.	म.४	कुं.४	मी१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	क.२१	सिं.५	मि.९	बु.	८५	वृषांश
	३	शु.	वृ.१६	मे.७	मी१०	कुं.४	म.४	ध.१०	मे.७	वृ.१६	मि.९	बु.	८३	मिथु.
	४	चं.	क.२१	सिं.५	कं.९	तु.१६	वृ.७	ध.१०	म.४	कुं.४	मी.१०	गु.	८६	कर्कांश
भरणी, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा	१	मं.	वृ.७	तु.१६	कं.९	क.२१	सिं.५	मि.९	वृ.१६	मे.७	मी.१०	गु.	१००	सिंहाश
	२	श.	कुं.४	म.४	ध.१०	मे.७	वृ.१६	मि.९	क.२१	सिं.५	कं.९	बु.	८५	कन्यांश
	३	शु.	तु.१६	वृ.७	ध.१०	म.४	कुं.४	मी१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	बु.	८३	तुलांश
	४	च.	क.२१	सिं.५	मि.९	वृ.१६	मे.७	मी१०	कुं.४	म.४	ध.१०	गु.	८६	वृ.अं.
कृत्तिका, आश्लेषा, स्वाती, उत्तराषाढ़ा, रेवती	१	मं.	मे.७	वृ.१६	मि.९	क.२१	सिं.५	के.९	तु.१६	वृ.७	ध.१०	गु.	१००	धनुरंश
	२	श.	म.४	कुं.४	मी१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	क.२१	सिं.५	मि.९	बु.	८५	मकरांश
	३	शु.	वृ.१६	मे.७	मी१०	कुं.४	म.४	ध.१०	मे.७	वृ.१६	मि.९	बु.	८३	कुम्भांश
	४	च.	क.२१	सिं.५	कं.९	तु.१६	वृ.७	ध.१०	म.४	कुं.४	मी.१०	गु.	८६	मीनांश

असव्य काल दशाचक्र

असव्य नक्षत्र	असव्य नक्षत्र ४,५,६,१०,११,१२,१६,१७,१८,२२,२३,२४													
	च.	जीवेश	जीव.								देह	देहश	दशा.	अंश
रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवण	१	गु.	ध.१०	म.४	कुं.४	मी.१०	मे.७	वृ.१६	मि.९	सिं.५	क.२१	चं.	८६	वृ.अं.
	२	बु.	कं.९	तु.१६	वृ.७	मी.१०	कुं.४	म.४	ध.१०	वृ.७	तु.१६	शु.	८३	तुलांश
	३	बु.	कं.९	सिं.५	क.२१	मि.९	वृ.१६	मे.७	ध.१०	म.४	कुं.४	श.	८५	कन्यांश
	४	गु.	मी.१०	मे.७	वृ.१६	मि.९	सिं.५	क.२१	कं.९	तु.१६	वृ.७	मं.	१००	सिंहांश
मृगशिरा, पू.फा. अनुराधा, धनिष्ठा	१	गु.	मी.१०	कुं.४	म.४	ध.१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	सिं.५	क.२१	चं.	८६	कर्कांश
	२	बु.	मि.९	वृ.१६	मे.७	ध.१०	म.४	कुं.४	मी.१०	मे.७	वृ.१६	शु.	८३	मि.अं.
	३	बु.	मि.९	सिं.५	क.२१	कं.९	तु.१६	वृ.७	मी.१०	कुं.४	म.४	श.	८५	वृषांश
	४	गु.	ध.१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	सिं.५	क.२१	मि.९	वृ.१६	मे.७	मं.	१००	मेषांश
आर्द्रा, उ.फा., ज्येष्ठा, शतभिषा	१	गु.	मी.१०	कुं.४	म.४	ध.१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	सिं.५	क.२१	चं.	८६	मीनांश
	२	बु.	मि.९	वृ.१६	मे.७	ध.१०	म.४	कुं.४	मी.१०	मे.७	वृ.१६	शु.	८३	कुम्भांश
	३	बु.	मि.९	सिं.५	क.२१	कं.९	तु.१६	वृ.७	मी.१०	कुं.४	म.४	श.	८५	मकरांश
	४	गु.	ध.१०	वृ.७	तु.१६	कं.९	सिं.५	क.२१	मि.९	वृ.१६	मे.७	मं.	१००	धनुरंश

वास्तविक भुक्त-भोग्यवर्षाद्यानयन

पदस्य भुक्तघट्याद्यै: स्वाब्दमानं हतं तत: ।
भभोगांघ्रिहृतं भुक्तं भोग्यं मानाद् विशोधितम् ॥४१॥

जन्मकालिक नक्षत्र के चरण की भुक्त घटी को दशा-वर्ष से गुणा कर भभोग के चतुर्थांश से भाग देने से लब्धि भुक्त वर्षादि होंगे एवं उनको दशावर्ष में घटाने पर भोग्य वर्षादि होंगे ।

अन्य प्रकार से स्पष्टानयन

चन्द्राङ्कांशकला भुक्ताः स्वाब्दमानहता हृताः ।
द्विशत्या भुक्तवर्षाद्यं ज्ञेयं भोग्यं ततो बुधैः ॥४२॥

चन्द्रमा जिस नवमांश में हो, उसकी भुक्त कला को अपने दशा-वर्ष से गुणा कर उसमें २०० से भाग देने पर जो लब्धि प्राप्त हो, वह भुक्त वर्षादि होगा और इसे वर्षसंख्या में हीन करने से भोग्य वर्षादि होते हैं ॥४२॥

उदाहरण—मानो किसी का जन्मकालिक स्पष्ट चन्द्र ४।७°।१५' है । इसकी कला ७६३५ में एक नक्षत्र कला ८०० का भाग देने से लब्धगत नक्षत्र सं. ९ (अश्लेषा) शेष ४३५ वर्तमान मघा की भुक्त कला हुई । १ चरण (नवमांश) में २०० कलायें होती हैं, अतः भुक्त कला ४३५ में २०० का भाग दिया; लब्ध गत चरण २ वर्तमान चरण ३ की भुक्त कला ३५ को वर्षमान ८५ से गुणा कर २९७५ हुआ, इसमें २०० का भाग देकर लब्ध भुक्त वर्षादि १४।९।२७ हुए । मघा असव्य नक्षत्र है; मघा के ३ चरण की जीवादि देहपर्यन्त गणना होगी, जीव कन्या, देह कुम्भ है । अतः (कन्या ९+सिं ५)=१४ को भुक्त वर्षादि में घटाने पर ०।९।२७ शेष रहा, यह कर्क का भुक्त हुआ, इसको कर्क के मान २१ वर्ष में घटाया तो २०।२।३ शेष रहा । यह कर्क के भोग्य वर्षादि हुए । असव्य कालचक्र में देखने से स्पष्ट बोध होगा ॥४२॥

कालचक्र महादशा

कर्क	मिथुन	वृष	मेष	धनु	मकर	कुम्भ	कन्या	सिंह		राशि
चं.	बु.	शु.	मं.	वृ.	श.	श.	बु.	सू.		दशेश
२०	९	१६	७	१०	४	४	९	५		वर्ष
२										मास
३										दिन
२०४९	२०६९	२०७८	२०८४	२०९१	२१०१	२१०५	२१०९	२११८	२१२३	संवत्
७	९	९	९	९	९	९	९	९	९	सूर्य
१५	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	

देह-जीवगणना-प्रकार

सव्याख्ये प्रथमांशो यः स देह इति कथ्यते ।
अन्त्यांशो जीवसंज्ञः स्याद् विलोममपसव्यके ॥४३॥
देहादिं गणयेत् सव्ये जीवादिमपसव्यके ।
एवं विज्ञाय दैवज्ञस्ततस्तत्फलमादिशेत् ॥४४॥

सव्यसंज्ञक नक्षत्रों में प्रथम अंश देह कहा जाता है और अन्तिम अंश जीवनामक होता है । असव्यसंज्ञक नक्षत्रों में इसका उल्टा होता है अर्थात् प्रथम अंश जीव और अन्तिम अंश देह होता है । इसलिए सव्य में देहादि एवं असव्य में जीवादि गणना करके तदनुरूप ही ज्योतिषियों को फलादेश करना चाहिए ॥४३-४४॥

कालचक्र में गति में विविधता कथन

कालचक्रगतिः प्रोक्ता त्रिधा पूर्वमहर्षिभिः ।
मण्डूकाख्या गतिश्चैका मर्कटीसंज्ञकाऽपरा ॥४५॥
सिंहावलोकनाख्या च तृतीया परिकीर्तिता ।
उत्प्लुत्य गमनं विज्ञा मण्डूकाख्यं प्रचक्षते ॥४६॥
पृष्टतो गमनं नाम मर्कटीसंज्ञकं तथा ।
बाणाच्च नवपर्यन्तं गतिः सिंहावलोकनम् ॥४७॥

प्राचीन महर्षियों द्वारा कालचक्र में राशियों की तीन प्रकार की गतियाँ प्रतिपादित की गई हैं—१. मण्डूकी, २. मर्कटी और ३. सिंहावलोकन। एक राशि को लाँघकर अग्रिम राशि में जाना मण्डूकी गति कहलाती है, अपने से पृष्ठ में (पीछे की ओर) जाना मर्कटी और ५ से ९ या ९ से ५ राशि में जाना सिंहावलोकन नामक गति कहलाती है ॥४५-४७॥

उदाहरण

कन्या-कर्कटयोः सिंहयुग्मयोर्मण्डुकी गतिः ।
कर्किकेसरिणोरेवं कथ्यते मर्कटी गतिः ॥४८॥
मीन-वृश्चिकयोश्चापमेषयोः सैंहिकी गतिः ।
इति सञ्चिन्त्य विज्ञेयं कालचक्रदशाफलम् ॥४९॥

कन्या से कर्कट तथा सिंह से मिथुन में आना मण्डूकी गति है, कर्क से सिंह में जाना मर्कटी गति है एवं मीन से वृश्चिक या मेष से धन में जाना सिंहावलोकन गति है। इस प्रकार विचार कर कालचक्रदशा में फल का निरूपण करना चाहिए ॥४८-४९॥

गति के माध्यम से दशाफल

मण्डूकगतिकाले हि सव्ये बन्धुजने भयम् ।
पित्रोर्वा विष-शस्त्राग्नि-ज्वर-चोरादिजं भयम् ॥५०॥
केसरीयुग्ममण्डूके मातुर्मरणमादिशेत् ।
स्वमृतिं राजभीतिं वा सन्निपातभयं वदेत् ॥५१॥

सव्य चक्रस्थित मण्डूक गति वाले दशा में बन्धु-बान्धवों को भय, माता-पिता आदि पूज्य जनों को कष्ट एवं विष, शस्त्र, अग्नि, ज्वर, चोर, अपने विपक्ष आदि का भय होता है। सिंह से मिथुन वाली मण्डूक की दशा में माता का देहावसान अथवा अपना स्वर्गवास या राजभय अथवा सन्निपातनामक रोग का आक्रमण होता है ॥५०-५१॥

मर्कटीगमने सव्ये धन-धान्य-पशुक्षयः ।
पितुर्मरणमालस्यं तत्समानां च वा मृतिः ॥५२॥

सव्य चक्रस्थित मर्कटी-गमन दशा में धन-धान्य का नाश और पशुक्षय एवं पिता अथवा पिता के समान पूज्य जन का मरण और आलस्य होता है ॥५२॥

सव्ये सिंहावलोके तु पशुभीतिर्भवेन्नृणाम् ।
सुहृत्स्नेहादिनाशश्च समानजनपीडनम् ॥५३॥
पतनं वापि कूपादौ विषशस्त्राग्निजं भयम् ।
वाहनात् पतनं वापि ज्वरार्तिः स्थाननाशनम् ॥५४॥

सव्य चक्रस्थित सिंहावलोकन गति वाले दशा में जातक को पशुभय, मित्रों से स्नेह का नाश, अपने समान जनों को पीड़ा, कूप में पतन या अन्य सवारियों से पतन (गिरना), विष, शस्त्र, अग्निभय, ज्वर रोग और स्थान से पतन का भय उपस्थित होता है ॥५३-५४॥

मण्डूकगमने वामे स्त्री-सुतादि-प्रपीडनम् ।
ज्वरं च श्वापदाद् भीतिं वदेद् विज्ञः पदच्युतिम् ॥५५॥
मर्कटीगमने वाऽपि जलभीतिं पदच्युतिम् ।
पितुर्नाशं नृपक्रोधं दुर्गारण्याटनं वदेत् ॥५६॥
सिंहावलोकने वामे पदभ्रंशः पितुर्मृतिः ।
तत्समानमृतिर्वाऽपि फलमेवं विचिन्तयेत् ॥५७॥

असव्य चक्रस्थित मण्डूक गति वाली राशियों की दशा में जातक के पत्नी, पुत्र आदि को पीड़ा, ज्वररोग का प्रकोप, श्वपदों से भय एवं पद का नाश होता है। असव्य चक्रस्थ मर्कटी वाली राशियों की दशा में जल का भय, पदनाश, पिता को कष्ट या मरण, राजभय एवं भयंकर जंगल में भ्रमण होता है। सिंहावलोकन वाली गति की दशा में पदनाश एवं पितृमरण अथवा पितृसमान पूज्य जनों का मरण होता है ॥५५-५७॥

विशेष फल कथन

मीनात्तु वृश्चिके याते ज्वरो भवति निश्चितः ।
कन्यातः कर्कटे याते भ्रातृबन्धुविनाशनम् ॥५८॥
सिंहात्तु मिथुने याते स्त्रिया व्याधिर्भवेद् ध्रुवम् ।
कर्कटाच्च हरौ याते वधो भवति देहिनाम् ॥५९॥
पितृबन्धुमृतिं विद्याच्चापान् मेषे गते पुनः ।
भयं पापखगैर्युक्ते शुभखेटयुते शुभम् ॥६०॥

मीन से अग्रिम वृश्चिक राशि प्राप्त हो तो उस दशा में जातक को ज्वररोग, कन्या से कर्कट में प्राप्त हो तो भाई और बन्धु-बान्धव का नाश, सिंह से मिथुन में प्राप्त हो तो उस जातक की स्त्री रोगयुत एवं कर्क से सिंह राशि में प्राप्त हो तो मरण होता है। इसी प्रकार धनु से मेष में आ जाय तो पिता के भाई (चाचा) आदि का मरण होता है। सामान्यतया ग्रह से युक्त राशि की दशा में अशुभकारक एवं शुभ ग्रह से युत राशि की दशा में शुभ फलकारक होता है ॥५८-६०॥

और विशेष फल

शुभं वाऽप्यशुभं वापि कालचक्रदशाफलम् ।
राशिदिग्भागतो वापि पूर्वादिदिङ्नभश्चरात् ॥६१॥
तद्दिग्विभागे वक्तव्यं तद्दशासमये नृणाम् ।
यथोपदेशमार्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम ! ॥६२॥

हे द्विजसत्तम ! कालचक्र दशा में शुभ या अशुभ फल राशि और ग्रहों की दिशा से जानना चाहिए। इन फलों को निम्न श्लोकों द्वारा बताया जा रहा है ॥६१-६२॥

कन्यातः कर्कटे याते पूर्वभागे महत्फलम् ।
उत्तरं देशमाश्रित्य शुभा यात्रा भविष्यति ॥६३॥
सिंहात्तु मिथुने याते पूर्वभागं विवर्जयेत् ।
कार्यान्तेऽपि च नैर्ऋत्यां सुखं यात्रा भविष्यति ॥६४॥
कर्कटात् सिंहभे याते कार्यहानिश्च दक्षिणे ।
दक्षिणां दिशमाश्रित्य प्रत्यगागमनं भवेत् ॥६५॥
मीनात्तु वृश्चिके याते उदग्गच्छति सङ्कटम् ।
चापाच्च मकरे याते सङ्कटं जायते ध्रुवम् ॥६६॥
चापान्मेषे तु यात्रायां व्याधिर्बन्धो मृतिर्भवेत् ।
वृश्चिके तु सुखं सम्पत् स्त्रीप्राप्तिश्च द्विजोत्तम ! ॥६७॥
सिंहाच्च कर्कटे याते पश्चिमां वर्जयेद्दिशम् ।
शुभयोगे शुभं ब्रूयादशुभे त्वशुभं फलम् ॥६८॥

कन्या से कर्कट में प्रवेश करते समय पूर्व देश में शुभ फलदायक होता है और उत्तर दिशा की यात्रा भी शुभ फलप्रद होती है। इन दो दिशाओं से भिन्न दिशा में यात्रा करना असन्तोषप्रद होता है। सिंह से मिथुन में जाते समय पूर्व दिशा की यात्रा वर्जित है, कार्यान्त तक नैर्ऋत्य दिशा की यात्रा शुभदायिका होती है। कर्कट से सिंह राशि में जाते समय दक्षिण दिशा से सम्बन्धित कार्यों की हानि होती है एवं दक्षिण दिशा से परिवर्तित होकर पश्चिम दिशा में जाना पड़ता है। मीन से वृश्चिक राशि में प्रवेश करते समय उत्तर दिशा की यात्रा कष्टदायक होती है एवं धनु से मकर राशि में प्रवेश करते समय भी यात्रा कष्टप्रद होती है। धनु से मेष में प्रवेश के समय रोग, बन्धन या मरण होता है एवं वृश्चिक में जाते समय सुख, सम्पत्ति एवं स्त्री की प्राप्ति होती है। सिंह से कर्कट में प्रवेश के समय पश्चिम दिशा को छोड़ देना चाहिए। फिर भी शुभ ग्रह का योग हो तो शुभ और अशुभ ग्रह का योग होने पर अशुभ फल प्राप्त होता है ॥६३-६८॥

कालचक्रांश फल-कथन

शूरश्चौरश्च मेषांशे लक्ष्मीवांश्च वृषांशके ।
मिथुनांशे भवेज्ज्ञानी कर्कांशे नृपतिर्भवेत् ॥६९॥

सिंहांशे राजमान्यश्च कन्यांशे पण्डितो भवेत्।
तुलांशे राजमन्त्री स्याद् वृश्चिकांशे च निर्धनः ॥७०॥
चापांशे ज्ञानसम्पन्नो मकरांशे च पापकृत्।
कुम्भांशे च वणिक्कर्मा मीनांशे धनधान्यवान् ॥७१॥

पूर्वोक्त काल दशाचक्र के अनुसार जिस जातक का जन्म मेषांश में हो वह शूरवीर और चोर होता है। वृषांश में हो तो धनी, मिथुनांश में ज्ञानी, कर्कांश में राजा, सिंहांश में राजपूज्य एवं कन्यांश में पण्डित होता है। तुलांश में राजमन्त्री, वृश्चिकांश में धनहीन, धन्वंश में ज्ञानयुत, मकरांश में पापकारक, कुम्भांश में व्यापारकारक और मीनांश में धन-धान्य से परिपूर्ण होता है ॥६९-७१॥

देह तथा जीवस्थ ग्रह-फल

देहो जीवोऽथवा युक्तो रविभौमार्किराहुभिः।
एकैकयोगे मृत्युः स्याद् बहुयोगे तु का कथा ॥७२॥
क्रूरैर्युक्ते तनौ रोगं जीवे युक्ते महद् भयम्।
आधी रोगो भवेद् द्वाभ्यामपमृत्युस्त्रिभिर्भवेत् ॥७३॥
चतुर्भिर्मृतिमापन्नो देहे जीवेऽशुभैर्युते।
युगपद्देहजीवौ च क्रूरग्रहयुतौ तदा ॥७४॥
राजचोरादिभीतिश्च मृतिश्चापि न संशयः।
वह्निबाधा रवौ ज्ञेया क्षीणेन्दौ च जलाद् भयम् ॥७५॥
कुजे शस्त्रकृता पीडा वायुबाधा बुधे भवेत्।
गुल्मबाधा शनौ ज्ञेया राहौ केतौ विषाद् भयम् ॥७६॥
देह-जीवगृहे यातो बुधो जीवोऽथवा भृगुः।
सुखसम्पत्कराः सर्वे रोग-शोक-विनाशनाः ॥७७॥
मिश्रग्रहैश्च संयुक्ते मिश्रं फलमवाप्नुयात् ॥७७$\frac{1}{2}$॥

जिस जातक के जन्मसमय में देह अथवा जीव में सूर्य, भौम, शनि, राहु में से एक भी ग्रह युत हो तो मरण होता है; फिर यदि दो या तीन युत हों तो कहना ही क्या ? अर्थात् अत्यन्त खराब होता है। देह में क्रूर ग्रह हो तो रोग एवं जीव में पाप ग्रह रहने से अधिक भय होता है। दो पाप ग्रह युत हो तो आधि रोग, ३ पाप ग्रह युत होने पर अपमृत्यु एवं ४ ग्रह युत हो तो मरण होता है। यदि दोनों (देह + जीव) में पाप ग्रह युत हो तो राजा तथा चोर से भय और स्वयं का मरण होता है। देह अथवा जीव में सूर्य हो तो अग्निबाधा, क्षीण चन्द्र हो तो जलभय, भौम हो तो शस्त्रपीड़ा, बुध हो तो वायुबाधा, शनि से गुल्म रोग एवं राहु-केतु हो तो विष से भय रहता है। देह या जीव में बुध या गुरु, शुक्र बैठे हों तो सुख-सम्पत्ति देने वाले होते हैं एवं रोग, शोक, दरिद्रता का नाश करते हैं। यदि मिश्रित (शुभ + अशुभ) ग्रह हों तो मिश्र फल प्राप्त होता है ॥७२-७७$\frac{1}{2}$॥

पापक्षेत्रदशाकाले देहजीवौ तु दुःखितौ ।
शुभक्षेत्रदशाकाले शुभं भवति निश्चितम् ॥७८॥
शुभयुक्ताशुभक्षेत्रदशा मिश्रफला स्मृता ।
क्रूरयुक्तशुभक्षेत्रदशा मिश्रफला तथा ॥७९॥

यदि पाप ग्रह की राशियों के दशासमय में देह तथा जीव दुःखयुत रहते हैं तो शुभ ग्रह की राशियों के दशासमय में देह तथा जीव को शुभ प्राप्त होता है। अशुभ ग्रह की राशियों का दशाकाल हो और उसमें शुभ ग्रह युत हो या शुभ ग्रह की राशि के दशासमय में उस राशि में पाप ग्रह युत हो तो जातक को मिश्र फल प्राप्त होता है ॥७८-७९॥

लग्न से व्ययभावस्थ राशियों की चक्रदशा में फल-निरूपण

पराशर उवाच

जनानां जन्मकाले तु यो राशिस्तनुभावगः ।
तस्य चक्रदशाकाले देहारोग्यं सुखं महत् ॥८०॥
शुभे पूर्णसुखं पापे देहे रोगादिसम्भवः ।
स्वोच्चादिगतखेटाढ्ये राज्य-मानधनाप्तयः ॥८१॥

जन्मसमय में जो लग्न हो उस राशि की कालचक्रदशा के समय में दैहिक सुख, आरोग्य और महत् सुख की प्राप्ति होती है। लग्नगत राशि में शुभ रहने पर पूर्ण सुख और पाप ग्रह रहने पर रोगादि सम्भव रहते हैं। उस लग्न में उच्च, मित्रादि वर्गस्थ ग्रह युत हों तो राज्य, मान और धन की प्राप्ति होती है ॥८०-८१॥

धनभावे च यो राशिस्तस्य चक्रदशा यदा ।
तदा सुभोजनं पुत्रस्त्रीसुखं च धनाप्तयः ॥८२॥
विद्याप्तिर्वाक्पटुत्वं च सुगोष्ठ्या कालयापनम् ।
शुभर्क्षे फलमेवं स्यात् पापभे फलमन्यथा ॥८३॥

लग्न से द्वितीय भाव में जो राशि हो, उस राशि की कालचक्रदशा के समय में जातक को सुन्दर भोजन, पुत्र, स्त्री, धन, विद्या एवं वाचाल शक्ति की प्राप्ति होती है और सुगोष्ठी द्वारा उसका समय व्यतीत होता है। द्वितीय भाव में शुभ राशि हो तो पूर्ण फल और अशुभ राशि हो तो अन्यथा (उल्टा) फल जानना चाहिए ॥८२-८३॥

तृतीयभावराशेस्तु कालचक्रदशा यदा ।
तदा भ्रातृसुखं शौर्यं धैर्यं चापि महत्सुखम् ॥८४॥
स्वर्णाभरणवस्त्राप्तिः सम्मानं राजसंसदि ।
शुभर्क्षे फलमेवं स्यात् पापर्क्षे फलमन्यथा ॥८५॥

तृतीय भावस्थ राशि की कालचक्रदशा में दशा आने पर जातक को भ्रातृसुख, शौर्य, धैर्य, अत्यन्त सुख, सुवर्ण आदि आभूषण एवं वस्त्रादि की प्राप्ति और राजसभा में

सम्मान की प्राप्ति होती है। तृतीय में शुभ राशि हो तो पूर्ण शुभ और पाप राशि हो तो विपरीत फल जानना चाहिए ॥८४-८५॥

सुखभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा बन्धुसुखं भूमि-गृह-राज्य-सुखाप्तयः ॥८६॥
आरोग्यमर्थलाभश्च वस्त्रवाहनजं सुखम्।
शुभर्क्षे शोभनं ज्ञेयं पापभे फलमन्यथा ॥८७॥

चतुर्थ भावस्थ राशि की कालचक्र दशा प्राप्त होने पर जातक बन्धुसुख, भूमि, गृह, राज्य और सुख प्राप्त करता है तथा नीरोग, धनलाभ, वस्त्र तथा वाहनजन्य सुखों की प्राप्ति होती है। शुभ राशि हो तो शुभ और पाप राशि हो तो अशुभ फल जानना चाहिए ॥८६-८७॥

सुतभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
सुतस्त्रीराज्यसौख्याप्तिरारोग्यं मित्रसङ्गमः ॥८८॥
विद्याबुद्धियशोलाभो धैर्यं च विक्रमोदयः।
शुभराशौ शुभं पूर्णं पापर्क्षे फलमन्यथा ॥८९॥

लग्न से पञ्चमस्थ राशि की कालचक्रदशा प्राप्त होने पर जातक को पुत्र, पत्नी, राज्य-सुख एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है; साथ ही मित्र से मिलन एवं विद्या, बुद्धि, यश-लाभ करता है तथा उसके धैर्य, पराक्रम का अभ्युदय होता है। शुभ राशि पञ्चमस्थ हो तो पूर्ण शुभ फल और अशुभ राशि रहने पर अशुभ फल प्राप्त होता है ॥८८-८९॥

रिपुभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा चोरादिभूपाग्निविषशस्त्रभयं महत् ॥९०॥
प्रमेह-गुल्म-पाण्ड्वादि–रोगाणामपि सम्भवः।
पापर्क्षे फलमेवं स्यात् शुभर्क्षे मिश्रमादिशेत् ॥९१॥

षष्ठभावस्थ राशि की कालचक्रदशा में जातक को चोर, राजा, अग्नि, विष एवं शस्त्र- जन्य भय होता है और प्रमेह, गुल्म, पाण्डु आदि रोग का होना भी सम्भव रहता है। षष्ठ भात में पाप ग्रह की राशि हो तो ऐसा फल होता है, लेकिन यदि शुभ ग्रह की राशि हो तो मिश्र फल जानना चाहिए ॥९०-९१॥

जायाभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा पाणिग्रहः पत्नी-पुत्रलाभादिकं सुखम् ॥९२॥
कृषि-गो-धन-वस्त्राप्तिर्नृपपूजा महद्यशः।
शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च तद्दलम् ॥९३॥

सप्तमस्थ राशि की कालचक्र दशा प्राप्त होने पर जातक को पाणिग्रहण (विवाह), पुत्र-कलत्रादिजन्य सुख, कृषि, गो, धन, कपड़ा आदि का लाभ, राजसम्मान एवं यश की

प्राप्ति होती है। सप्तमस्थ शुभ राशि हो तो पूर्ण फल एवं पाप राशि हो तो अर्ध फल जानना चाहिए ॥९२-९३॥

मृत्युभावस्थितर्क्षस्य कालचक्रदशा तदा।
स्थाननाशं महद् दुःखं बन्धुनाशं धनक्षयम् ॥९४॥
दारिद्र्यमन्नविद्वेषमरिभीतिं च निर्दिशेत्।
पापराशौ फलं पूर्णं शुभराशौ च तद्दलम् ॥९५॥

अष्टम भावस्थ राशि की कालचक्रदशा में स्थाननाश, अत्यन्त दुःख, सोदर बन्धु का नाश, धनक्षय, दरिद्रता, अन्नाभाव, शत्रुभय इत्यादि की प्राप्ति होती है। पापराशि हो तो पूर्ण फल एवं शुभराशि हो तो तदर्ध फल प्राप्त होता है ॥९४-९५॥

धर्मभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
तदा पुत्र-कलत्रार्थ-कृषि-गेहसुखं वदेत् ॥९६॥
सत्कर्म-धर्म-संसिद्धं महज्जनपरिग्रहम्।
शुभराशौ शुभं पूर्णं पापराशौ च तद्दलम् ॥९७॥

धर्म-स्थानस्थित राशि की कालचक्रदशा में जातक को पुत्र, कलत्र, धन, कृषि एवं गृहादि सुख की प्राप्ति होती है और शुभ कार्य, धर्म का अभ्युदय एवं मान्य जनों की सहानुभूति होती है। शुभ राशि हो तो पूर्ण फल और पाप राशि हो तो आधे फल की प्राप्ति होती है ॥९६-९७॥

कर्मभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
राज्याप्तिर्भूपसम्मानं पुत्रदारादिजं सुखम् ॥९८॥
सत्कर्मफलमैश्वर्यं सद्गोष्ठ्या कालयापनम्।
शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च मिश्रितम् ॥९९॥

दशम भावस्थ राशि की कालचक्रदशा में जातक को राज्यप्राप्ति, राजा से सम्मान, पुत्र- कलत्र सुख, शुभ कार्य सम्पन्न, ऐश्वर्य प्राप्ति एवं सुन्दर कथा-वार्ताओं से उसका समय व्यतीत होता है। शुभ राशि हो तो पूर्ण फल एवं पाप राशि रहने पर मिश्रित फल होता है ॥९८-९९॥

लाभभावस्थितर्क्षस्य कालचक्रदशा यदा।
पुत्रस्त्रीबन्धुसौख्याप्तिर्भूपप्रीतिर्महत्सुखम् ॥१००॥
धनवस्त्राप्तिरारोग्यं सतां सङ्गश्च जायते।
शुभराशौ फलं पूर्णं पापराशौ च खण्डितम् ॥१०१॥

एकादशस्थ राशि की कालचक्रदशा में पुत्र, पत्नी, बन्धु-बान्धव से सुख, राजकृपा, अधिक सुख, धन-वस्त्रादि की प्राप्ति, नीरोगता और सज्जनों से सम्पर्क होता है। शुभ राशि में पूर्ण फल और पाप राशि में खण्डित फल होता है ॥१००-१०१॥

व्ययभावगतर्क्षस्य कालचक्रदशा तदा।
उद्योगभङ्गमालस्यं देहपीडां पदच्युतिम् ॥१०२॥
दारिद्र्यं कर्मवैफल्यं तथा व्यर्थव्ययं वदेत्।
पापराशौ फलं त्वेवं शुभराशौ च तद्दलम् ॥१०३॥

व्यय-स्थानस्थित राशि की कालचक्रदशा में उद्योग का नाश, आलस्य, शारीरिक पीड़ा, स्थाननाश, दरिद्रता, कार्यविफलता एवं अनावश्यक व्यय होता है। पाप राशि द्वादशस्थ हो तो उपर्युक्त फल और शुभ राशि हो तो जातक किञ्चित् शुभ फल प्राप्त करता है ॥१०३-१०४॥

चरदशासाधन

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भानां चरदशां ब्रुवे।
तस्मात्तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः ॥१०४॥
मेषादि—त्रित्रिभैर्ज्ञेयं पदमोजपदे क्रमात्।
दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमात् समे ॥१०५॥

अब मैं प्रथम (लग्न) भाव से द्वादश भाव तक की चर दशा कहता हूँ। चर दशानयन में राशि से अपने स्वामी तक गिनने से जो संख्या हो, उतने ही दशावर्ष होते हैं अर्थात्–लग्न से लग्नेश तक, धनभाव से धनेश तक, तृतीय भाव से तृतीयेश तक इत्यादि से द्वादश भाव से द्वादशेश तक क्रम से गिनने में जो संख्या प्राप्त हो, उतने ही दशावर्षमान होते हैं। मेष से तीन-तीन राशियों का एक पद होता है, अतः द्वादश राशियों में चार पद होते हैं (मेष, वृष, मिथुन—प्रथम पद; कर्क, सिंह, कन्या—द्वितीय पद; तुला, वृश्चिक, धन—तृतीय पद एवं मकर, कुम्भ, मीन—चतुर्थ पद)। इन पदों में से विषम पद में पूर्वकथित रीति से दशावर्ष जानना चाहिए और सम (२,४) पद में उत्क्रम से गिनकर दशावर्ष का ज्ञान करना चाहिए ॥१०४-१०५॥

दो राशि के अधिपति में विशेषता

वृश्चिकाधिपतौ द्वौ च केतु-भौमौ स्मृतौ द्विज!।
शनि-राहू च कुम्भस्य स्वामिनौ परिकीर्तितौ ॥१०६॥

केतु एवं भौम दोनों वृश्चिक राशि के स्वामी हैं तथा शनि एवं राहु कुम्भ राशि के अधिपति कहे गये हैं ॥१०६॥

दो राशियों की दशा-ज्ञान प्रकार

द्विनाथक्षेत्रयोरत्र क्रियते निर्णयोऽधुना।
द्वावेवाधिपती विप्र! युक्तौ स्वर्क्षे स्थितौ यदि ॥१०७॥
वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकादि चिन्तयेत्।
एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थितः ॥१०८॥

तदाऽन्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत्।
द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत् तयोर्मध्ये च यो बली ॥१०९॥
तत एव दशा ग्राह्या क्रमाद् वोत्क्रमतो द्विज!।
बलस्याऽत्र विचारे स्यादग्रहात् सग्रहो बली ॥११०॥
द्वावेव सग्रहौ तौ चेद् बली तत्राधिकग्रहः।
ग्रहयोगसमानत्वे ज्ञेयं राशिबलाद् बलम् ॥१११॥
ज्ञेयाश्चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमतो बलशालिनः।
राशिसत्त्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ॥११२॥
एकः स्वोच्चगतश्चाऽन्यः परत्र यदि संस्थितः।
गृह्णीयादुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥११३॥
उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं च निक्षिपेत्।
तथैव नीचखेटस्य वर्षमेकं विशोधयेत् ॥११४॥
एवं सर्वं समालोच्य जातकस्य फलं वदेत् ॥११५॥

अब दो स्वामी वाले राशियों के वर्षज्ञान का निर्णय करता हूँ। यदि दोनों स्वामी एकत्र होकर अपने ही स्थान (राशि) में बैठे हों तो १२ वर्षमान होता है। यदि ऐसा न होकर अलग-अलग हों तो १-२ इत्यादि स्वामीपर्यन्त गिनने पर जो संख्या उपलब्ध हो, उतने ही वर्ष जानना चाहिए। यदि दो स्वामियों में से एक अपने स्थान (गृह) में हो और दूसरा स्वामी अन्य राशि में स्थित हो तो अन्य राशिस्थ ग्रह तक गिनकर वर्ष का निर्धारण करना चाहिएं। यदि दोनों स्वामी ग्रह अन्यत्र (स्वगृह छोड़कर) भिन्न-भिन्न स्थानों में बैठे हों तो उनमें जो अधिक बली हो, वहाँ तक गिनकर वर्षमान का निर्धारण करना चाहिए। यहाँ बल-विचार में ग्रहरहित (अकेले) से ग्रहसहित (अन्य ग्रह भी साथ में हो) स्वामी बलवान होता है। यदि दोनों स्वामी ग्रहयुक्त हों तो अधिक ग्रहयुक्त वाला स्वामी बलवान होता है। यदि ग्रहयोग भी तुल्य हो तो राशिबल से बली जानना चाहिए। राशि-बलविचार में चर से स्थिर राशि एवं स्थिर से द्विस्वभाव वाली राशियाँ बलवान होती हैं। यदि बल में भी समानता हो तो स्वराशि से स्वामीपर्यन्त गिनने पर जिस स्वामी की संख्या अधिक हो उसी को दशावर्षमान जानना चाहिए। एक अपने उच्चस्थ तथा दूसरा अधिक ग्रहयोग के साथ अन्य स्थान में बैठा हो तो उच्चस्थ ग्रह तक का ही ग्रहण करना चाहिए। उच्चस्थ ग्रह के वर्षमान में एक जोड़कर और नीचस्थ ग्रह के वर्षमान में एक घटाकर ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार पूर्ण विचार कर जातक की दशा लगाकर सम्पूर्ण शुभाशुभ फल का निरूपण करना चाहिए ॥१०७-११५॥

चर दशासाधन

क्रमादुत्क्रमतो वाऽपि धर्मभावपदक्रमात्।
लग्नराशिं समारभ्य विज्ञश्चरदशां नयेत् ॥११६॥

लग्न से नवम भाव में विषमपदीय राशि हो तो क्रम से एवं नवम भाव में समपदीय राशि हो तो उत्क्रम से लग्न से आरम्भ करके लग्नादि द्वादश राशियों की दशा होती है।

उदाहरण—मानो संवत् २०५४ चैत्र शुक्ल १३ तिथौ रवौ सूर्योदयादिष्टम् ४५।२५ में किसी का जन्म है। उसका भयात् १६।५, भभोग ६५।२०, हस्त नक्षत्र के प्रथम चरण में जन्म है।

जन्मकालिक स्पष्टग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.	ल.
०	५	४	०	९	०	११	५	११	८
६	१३	२०	१०	२६	१२	१७	३	३	१६
५०	१५	२८	३७	४	५८	७	२०	२०	४२
१४	०	४९	२४	१८	३६	८	३१	३१	०

जन्मलग्न चक्र

लग्न कुण्डली में—लग्न से नवम सिंह राशि है, जो समपदीय है, अत: लग्न (धन) से आरम्भ कर उत्क्रम से धन्वादि द्वादश राशियों की दशा होगी। धन राशि विषम-पदीय है, अत: क्रम से धनाधिप गुरु तक गिनने पर १ वर्ष मिला। मकर राशि समपदीय है, अत: मकर राशि से उसके स्वामी शनि तक उत्क्रम से गिनने पर १० वर्ष मिला। कुम्भ राशि के स्वामी केतु और शनि हैं, केतु ग्रहयुक्त तथा अधिक वर्ष होने के कारण बली है। कुम्भ राशि समपदीय है, अत: कुम्भ से उत्क्रम से मीन तक गिनने पर ११ वर्ष मिला। मीन राशि समपदीय है, अत: मीन के अधिपति गुरु तक उत्क्रम से गिनने पर २ वर्ष मिला। मेष राशि विषमपदीय है, अत: मेष से मेषाधिप मंगल तक क्रम से गिनने पर ४ वर्ष मिला। वृष विषमपदीय राशि है, अत: क्रम से वृष के अधिपति शुक्र तक गिनने पर ११ वर्ष मिला। मिथुन राशि विषमपदीय है, अत: क्रम से मिथुन के अधिपति बुध तक गिनने पर १० वर्ष मिला। कर्क राशि समपदीय है; अत: कर्क से चन्द्र तक उत्क्रम से गिनने पर १० वर्ष मिला। सिंह राशि समपदीय है, अत: सिंह से सिंह के अधिपति सूर्य तक उत्क्रम से गिनने पर ४ वर्ष मिला। कन्या राशि के समपदीय होने के कारण कन्या से कन्या के अधिपति बुध तक उत्क्रम से गिनने पर ५ वर्ष मिला। तुला राशि विषमपदीय है, अत: तुला से तुला के स्वामी शुक्र तक क्रम से गिनने पर ६ वर्ष मिला। वृश्चिक राशि विषमपदीय है और वृश्चिक के अधिपति केतु-मंगल हैं, केतु ग्रहयुक्त होने के कारण बली है; अत: वृश्चिक राशि से क्रम से केतु तक गिनने पर ४ वर्ष मिला। इस प्रकार धन्वादि द्वादश राशियों के वर्ष हुए। यहाँ पर केवल अन्तर राशि

का वर्षमात्र ग्रहण किया गया है, सूक्ष्मार्थी जन को अंशादि के द्वारा अनुपात से मासादि का भी साधन करना चाहिए। प्राचीन आचार्यों ने पूर्ण वर्षमान ही ग्रहण किया है। इस विषय में प्राचीन आचार्यों का निर्देशन भी है—

स्वर्क्षसंस्थितखेटस्य वर्षाणि द्वादशैव हि।
धनस्थे चैकवर्षं हि तृतीये वत्सरद्वयम्॥
वर्षत्रयं चतुर्थे च चतुर्वर्षाणि पञ्चमे।
षष्ठके पञ्चवर्षाणि षड्वर्षाणि च सप्तमे॥
अष्टमे सप्तवर्षाणि नवमेऽष्टसमाः स्मृताः।
दशमे नववर्षाणि दशवर्षाणि लाभगे॥
व्ययस्थे भाधिपे रुद्रवर्षाणि च दशा द्विज!।
एवं लग्नादिराशीनां दशावर्षाणि कल्पयेत्॥

पूर्वोक्तानुसार चरदशाचक्र

राशि	ध.	वृ.	तु.	कं	सिं	क.	मि.	वृ.	मे.	मी.	कुं	म.
वर्ष	१	४	६	५	४	१०	१०	११	४	२	११	१०
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०५५	२०५९	२०६५	२०७०	२०७४	२०८४	२०९४	२१०५	२१०९	२१११	२१२२	२१३२
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

इस चक्र में पूर्ण समय के अनन्तर पुनः धनु आदि उत्क्रम से चर दशा प्रारम्भ होगी॥११६॥

स्थिरदशाक्रमनिरूपण

पराशर उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि स्थिरसंज्ञां दशा द्विज!।
चरे सप्त स्थिरे चाऽष्टौ द्वन्द्वे तत्र समाः स्मृताः॥११७॥
स्थिरत्वाच्च दशाब्दानां स्थिराख्येति निगद्यते।
ब्रह्मखेटाश्रितर्क्षादिर्दशेयं परिवर्तते॥११८॥

पराशर ने कहा कि अब मैं स्थिरसंज्ञक दशा को कहता हूँ। चरसंज्ञक राशियों में ७ वर्ष, स्थिरसंज्ञक राशियों में ८ वर्ष एवं द्विस्वभावनामक राशियों में ९ वर्ष दशामान कहा गया है। इनको दशावर्ष स्थिर होने के कारण स्थिरदशा कहा गया है। ब्रह्मनिष्ठ राशि से आरम्भ कर द्वादश राशियों की दशा होती है। विषम में क्रम से और सम में उत्क्रम से यह दशा जाननी चाहिए॥११७-११८॥

मैत्रेय उवाच

योऽसौ ब्रह्मग्रहः प्रोक्तः कथं स ज्ञायते मुने! ।
इति स्पष्टतरं ब्रूहि कृपाऽस्ति यदि ते मयि ॥११९॥

मैत्रेय ने कहा कि आपने जो ब्रह्मग्रह कहा है, वह ब्रह्मग्रह किस प्रकार ज्ञात किया जाय, इसे स्पष्ट रूप से निरूपित करने की कृपा करें ॥११९॥

पराशर उवाच

षष्ठाष्टव्ययनाथेषु यो बली विषमर्क्षगः ।
पृष्ठस्थितो भवेद् ब्रह्मा बलिनो लग्नजाययोः ॥१२०॥
कारकादष्टमेशो वा ब्रह्माऽप्यष्टमभावगः ।
शनौ पाते च ब्रह्मत्वे ब्रह्मा तत्षष्ठखेचरः ॥१२१॥
बहवो लक्षणाक्रान्ता ज्ञेयस्तेष्वधिकांशकः ।
अंशसाम्ये बलाधिक्याद् विज्ञेयो ब्रह्मखेचरः ॥१२२॥

पराशर ने कहा कि हे द्विज ! षष्ठ, अष्टम एवं द्वादश भावों के स्वामी में जो बली हो, या लग्न-सप्तम में जो ग्रह बली हो एवं विषम में उससे पीछे हो वह ग्रह ब्रह्मग्रह कहा जाता है, साथ ही अष्टम भावस्थ ग्रह या अष्टमेश भी ब्रह्मग्रह होता है। इसी प्रकार शनि और पात (राहु-केतु) में भी ब्रह्मत्व प्राप्त हो तो ब्रह्मग्रह होता है। अधिक ग्रह में ब्रह्मग्रह का लक्षण उपस्थित हो तो उनमें अधिक अंश वाले ग्रह को ब्रह्मग्रह समझना चाहिए। अंशों में तुल्यता रहने पर उनमें से जो ग्रह बली हो उसे ब्रह्मग्रह समझना चाहिए ॥११९-१२२॥

अष्टमाधिप अष्टमस्थ हो तो वही ब्रह्मग्रह होता है, अष्टम में अन्य ग्रह बैठे हों तो वे भी ब्रह्मग्रह होते हैं। यदि अष्टम में कोई ग्रह नहीं है तो लग्न, सप्तमस्थ ग्रह में जो बलयुक्त हो उसके पश्चात् ६ राशि के अन्तर्गत विषम राशिस्थित ग्रह ब्रह्मग्रह होता है। अधिक ग्रह में ब्रह्मा का लक्षण उपस्थित रहने पर उनमें अधिक अंश वाले को ब्रह्मा जान लेना चाहिए। राहु के अंश को ३० में शोधित कर ब्रह्म का ज्ञान करना चाहिए।

उदाहरण—प्रकृत प्रकरण के ही श्लोक ११६ के साथ कथित स्पष्ट ग्रह एवं जन्मकुण्डली का अवलोकन करें।

यहाँ पर सर्वाधिक अंश वाला गुरु है, जो आत्मकारक हुआ, उससे कम अंश वाला मंगल अमात्यकारक, उससे न्यून अंश वाला शनि भ्रातृकारक, उससे कम अंश वाला लग्न मातृकारक, उससे न्यून अंश वाला चन्द्रमा पितृकारक, उससे कम अंश वाला शुक्र पुत्रकारक, उससे कम अंश वाला बुध ज्ञातिकारक और उससे न्यून अंश वाला सूर्य स्त्रीकारक है ॥११९-१२२॥

स्पष्टकारक चक्र

आत्मा	अमात्य	भ्राता	माता	पिता	पुत्र	ज्ञाति	स्त्री
गुरु	मंगल	शनि	लग्न	चन्द्र	शुक्र	बुध	सूर्य

यहाँ पर द्वादशेश मंगल धर्म भाव में सिंह विषम राशि पर बैठा है और मंगल को गुरु ३ चरण से देख रहा है। शुक्र-बुध शुभ ग्रह भी मंगल को २ चरण से देख रहे हैं। इस प्रकार गुरु, शुक्र, बुध सभी शुभ ग्रह व्ययेश मंगल को देख रहे हैं और मंगल के विषम सिंह राशि में भी रहने के कारण मंगल को ब्रह्मत्व प्राप्त है। अतः ब्रह्मग्रहाश्रित सिंह से क्रम से सिंहादि १२ राशियों की स्थिर दशा होगी।

वृ. १०
८
११
९
७
के.श. १२
रा. ६ चं.
बु. १ शु.
३
५ मं.
२
४

जन्मकुण्डली

स्थिरदशा चक्र

	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.	मे	वृ.	मि	क.
वर्ष	८	९	७	८	९	७	८	९	७	८	९	७
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०६२	२०७१	२०७८	२०८६	२०९५	२१०२	२११०	२११९	२१२६	२१३४	२१४३	२१५०
सूर्य ० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६

योगार्धदशानयन

योगार्धे च दशामानं द्वयोर्योगार्धसम्मितम्।
लग्नसप्तमप्राण्यादिर्दशेयं च प्रवर्तते ॥१२३॥

चर दशा तथा स्थिर दशावर्ष का योग करके उनके आधे के तुल्य वर्षप्रमाण मानकर जो दशा लगाई जाती है, वह योगार्ध दशा कही जाती है। लग्न, सप्तम दोनों में जो बलवान हो उससे प्रारम्भ करके विषम में क्रम से और सम में उत्क्रम से द्वादश राशियों की दशा होती है।

उदाहरण—यहाँ पर लग्नेश गुरु और सप्तमेश बुध हैं, लग्नेश गुरु की लग्न पर दृष्टि नहीं है। सप्तमेश बुध की सप्तम भाव पर एक चरण दृष्टि है, अतः लग्नेश से सप्तमेश बली है। सप्तम भाव में विषम मिथुन राशि है। इसलिए सप्तमस्थ मिथुन राशि से क्रम से १२ राशियों की दशा होगी। दशावर्ष चरदशा स्थिर दशा वर्ष के योगार्ध के तुल्य होते हैं। जैसे मेष का चर वर्ष ४,

१० वृ.
८
११
९
७
श. १२ के.
चं. ६ रा.
शु. १ सू. बु.
३
५ मं.
२
४

जन्मकुण्डली

स्थिर वर्ष ७, अत: दोनों का योग ११ हुआ, इसका आधा ५ वर्ष ६ माह हुआ। वृष का चर वर्ष ११, स्थिर वर्ष ८, दोनों का योग १९ हुआ, जिसका आधा ९ वर्ष ६ माह हुआ। इसी तरह आगे भी जानना चाहिए, जो कि निम्न चक्र से स्पष्ट है—

वर्षज्ञानार्थ योगार्धचक्र

दशेश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	
चर वर्ष	४	११	१०	१०	४	५	६	४	१	१०	११	२	
स्थिर वर्ष	७	८	९	७	८	९	७	८	९	७	८	९	
योगार्ध	५	९	९	८	६	७	६	६	५	८	९	५	वर्ष
	६	६	६	६	०	०	६	०	०	६	६	६	माह

योगार्धदशाचक्र

दशेश	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.
वर्ष	९	८	६	७	६	६	५	८	९	५	५	९
मास	६	६	०	०	६	०	०	६	६	६	६	६
संवत् २०५४	२०६४	२०७२	२०७८	२०८५	२०९२	२०९८	२१०३	२१११	२१२१	२१२६	२१३२	२१४१
सूर्य ६	०	६	६	६	०	०	०	६	०	६	०	६
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

केन्द्रादि दशासाधन प्रकार

लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवान् भवेत्।
ततः केन्द्रादिसंस्थानां राशीनाञ्च बलक्रमात्॥१२४॥
कारकादपि राशीनां खेटानां चैवमेव हि।
दशाब्दाश्चरवज्ज्ञेयाः खेटानां च स्वभावधि॥१२५॥

लग्न तथा सप्तमस्थ राशियों में जो बली राशि हो, उससे केन्द्रस्थ स्थिर राशियों की दशा होती है। बली लग्न या सप्तम स्थान में विषम राशि हो तो क्रम से और समराशि हो तो उत्क्रम से केन्द्र, पणकर, आपोक्लिमस्थ राशियों की बल-क्रम से दशा होती है। इसी प्रकार आत्मकारक से भी दशा लगानी चाहिए। यहाँ पर दशावर्ष चरदशा के सदृश ही जानना चाहिए॥१२४-१२५॥

वृ. १०
८
११
९
७
श.के. १२
चं. ६ रा.
शु. १सू. बु.
३
५ मं.
२
४

जन्मकुण्डली

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में लग्न, धन तथा सप्तम मिथुन राशियों में मिथुन बलवान है, अत: प्रारम्भ में मिथुन की दशा होगी और उसके बाद कन्या, धन, मीन में से बलक्रम से धन, कन्या एवं मीन की दशा होगी। इसके बाद पणफरस्थित मकर, मेष, कर्क, तुला राशियों में से बलक्रम से मकर, कर्क, तुला, मेष राशियों की दशा होगी। इसके अनन्तर आपोक्लिमस्थ कुम्भ, वृष, सिंह, वृश्चिक राशियों में बलानुसार कुम्भ, वृश्चिक, वृष, सिंह राशियों की दशा होगी। दशावर्ष पूर्वोक्त चर दशावर्ष ही समझना चाहिए।

केन्द्रादि दशाचक्र

दशेश	मिथुन	धन	कन्या	मीन	मकर	कर्क	तुला	मेष	कुम्भ	वृश्चिक	वृष	सिंह
वर्ष	१०	१	५	२	१०	१०	६	४	११	४	११	४
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०६४	२०६५	२०७०	२०७२	२०८२	२०९२	२०९८	२१०२	२११३	२११७	२१२८	२१३२
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

दो राशि के अधिपति ग्रहों का वर्ष-ज्ञान प्रकार

द्विराश्यधिप-खेटस्य　　गणयेदुभयावधि।
उभयोरधिका संख्या कारकस्य दशा समा: ॥१२६॥

जिन ग्रहों की दो राशियाँ हैं, उनमें दोनों स्थान तक गिनकर, जिस स्थान पर अधिक संख्या हो, उतने ही वर्ष दशामान ग्रहण करना चाहिए ॥१२६॥

कारकदशाप्रकार

आत्मकारकमारभ्य　कारकाख्यदशा　क्रमात्।
लग्नात् कारकपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदु: ॥१२७॥

आत्मकारक से प्रारम्भ करके क्रम से आठो कारक ग्रहों की दशा कारकदशा कही जाती है। लग्न से कारक ग्रहपर्यन्त जो संख्या हो, उतनी ही संख्या में कारक ग्रह का दशावर्ष होगा ॥१२७॥

उदाहरण—यहाँ आत्मकारक गुरु लग्न से द्वितीय में है, अत: दोनों का अन्तर १ है; इसलिए आत्मकारक गुरु १ वर्ष मिला, अमात्यकारक मंगल लग्न से धर्म भाव में है तो दोनों का अन्तर ८ वर्ष मिला, भ्राताकारक शनि लग्न से चतुर्थ भाव में है; अत: दोनों का अन्तर ३ वर्ष मिला; मातृकारक लग्न है; अत: स्वगृही होने के कारण १२ वर्ष मिला। इसी प्रकार पितृकारक चन्द्रमा ९ वर्ष, पुत्रकारक शुक्र ४ वर्ष, ज्ञातिकारक बुध ४ वर्ष एवं स्त्रीकारक सूर्य ४ वर्ष मिला। इस प्रकार कारक दशा में आठो कारकों के दशावर्ष होते हैं ॥१२७॥

कारकदशाचक्र

दशेश	आत्मा	अमात्य	भ्राता	माता	पिता	पुत्र	ज्ञाति	स्त्री
	गुरु	मंगल	शनि	लग्न	चन्द्र	शुक्र	बुध	सूर्य
वर्ष	१	८	३	१२	९	४	४	४
संवत् २०५४	२०५५	२०६३	२०६६	२०७८	२०८७	२०९१	२०९५	२०९९
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६

मण्डूक दशाज्ञान

मण्डूकापरपर्याया त्रिकूटाख्यदशा द्विज ! ।
लग्नसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवान् भवेत् ॥१२८॥
ततः क्रमेणौजराशौ समे नेया तथोत्क्रमात् ।
त्रिकूटानां च विज्ञेयाः स्थिरवच्च दशा समाः ॥१२९॥

इस मण्डूक दशा के ज्ञान का प्रकार यह है कि लग्न सप्तम में जो राशि बली हो, उस राशि से यदि विषम है तो क्रम से और सम हो तो उत्क्रम से ४ चर राशि, ४ स्थिर राशि एवं ४ द्विस्वभाव राशि की मण्डूकनामक दशा होती है। इसमें दशावर्षप्रमाण स्थिर दशावर्ष ही होते हैं ॥१२८-१२९॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में लग्न सप्तम में है और सप्तमस्थ मिथुन विषम राशि बलवान है, विषम होने के कारण क्रम से ही दशाक्रम होगा। मिथुन राशि द्विस्वभाव है, अतः पहले मिथुनादि द्विस्वभाव राशियों की, फिर चर राशियों की, तदनन्तर स्थिर राशियों की मण्डूक दशा होगी। दशावर्ष चर राशियों की ७ वर्ष, स्थिर राशियों की ८ वर्ष तथा द्विस्वभाव राशियों की ९ वर्ष के सदृश जानने चाहिए।

मण्डूक दशाचक्र

दशेश	मि.	कं.	ध	मी	मे	क	तु	म	वृ	सिं	वृश्चि.	कुं.
वर्ष	९	९	९	९	७	७	७	७	८	८	८	८
संवत् २०५४	२०६३	२०७२	२०८१	२०९०	२०९७	२१०४	२१११	२११८	२१२६	२१३४	२१४२	२१५०
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

निधनविचार में शूल दशाक्रम

निर्याणस्य विचारार्थं कैश्चिच्छूलदशा स्मृता ।
लग्नसप्तमतो मृत्यूभयोर्यो बलवान् भवेत् ॥१३०॥
तदादिर्विषमे विप्र ! क्रमादुत्क्रमतः समे ।
दशाब्दाः स्थिरवत्तत्र बलिमारकभे मृतिः ॥१३१॥

मरण या मरणासन्न कष्ट का ज्ञान करने के लिए किसी आचार्य ने शूलदशा कही है। लग्न से अष्टम और सप्तम से अष्टम अर्थात् द्वितीय, यानी अष्टम-द्वितीय भावस्थ राशियों में जो बली हो, उस राशि से आरम्भ कर विषम में क्रम से और सम राशि में उत्क्रम से १२ राशियों की शूलदशा होती है। इसमें वर्षमान स्थिर दशा के तुल्य होता है। बली मारक राशि की दशा में मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट का होता है ॥१३०-१३१॥

उदाहरण—पूर्व दर्शित जन्म कुण्डली का अवलोकन करें। यहाँ पर द्वितीय, अष्टम भाव में ग्रहयुक्त होने के कारण द्वितीयस्थ मकर राशि बली है। मकर समराशि है, अत: मकर से उत्क्रम से मकरादि १२ राशियों की शूलदशा होगी। दशावर्ष स्थिरवत् होंगे ॥१३०-१३१॥

शूल दशाचक्र

दशेश	मकर	धन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ
वर्ष	७	९	८	७	९	८	७	९	८	७	९	८
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०६१	२०७०	२०७८	२०८५	२०९४	२१०२	२१०९	२११८	२१२६	२१३३	२१४२	२१५०
सूर्य ०	०	०	०	०	०.	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

त्रिकोण दशा

जन्मलग्नत्रिकोणेषु यो राशिर्बलवान् भवेत्।
तमारभ्य नयेद् धीमान् चरपर्यायवद् दशाम् ॥१३२॥
क्रमादुत्क्रमतो ग्राह्यं त्रिकोणं विषमे समे।
त्रिकोणाख्या दशा प्रोक्ता समा नाथावसानका: ॥१३३॥

जन्म लग्न से त्रिकोण (प्रथम, पञ्चम. नवम) स्थानों के राशियों में जो सर्वाधिक बलवान राशि हो, उसी राशि से विषम राशि हो तो क्रम से एवं बली राशि सम हो तो उत्क्रम से चर दशा के तुल्य त्रिकोण दशा ग्रहण करनी चाहिए। दशा वर्ष अपने स्वामी तक की संख्यातुल्य समझने चाहिए। त्रिकोण (१-५-९) राशियों की दशा होने के कारण यह त्रिकोण दशा कही जाती है ॥१३२-१३३॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में लग्न, पञ्चम, नवम में क्रमश: धन, मेष, सिंह राशि हैं। इन तीनों राशियों में मेष राशि में अधिक ग्रह होने के कारण मेष राशि बलवान है, साथ ही मेष विषम भी है; अत: मेष से क्रम से मेष, सिंह, धन राशियों की, पुन: वृष, कन्या, मकर की, इसके बाद मिथुन, तुला, कुम्भ राशियों की, फिर कर्क, वृश्चिक, मीन राशियों की त्रिकोण दशा होगी। दशावर्ष पूर्वदर्शित चरदशानुसार रख कर त्रिकोण दशा लगानी चाहिए ॥१३२-१३३॥

त्रिकोण दशाचक्र

दशेश	मेष	सिंह	धन	वृष	कन्या	मंगल	मिथुन	तुला	कुम्भ	कर्क	वृश्चिक	मीन
वर्ष	४	४	१	११	५	१०	१०	६	११	१०	४	२
संवत् २०५४	२०५८	२०६२	२०६३	२०७४	२०७९	२०८९	२०९९	२१०५	२११६	२१२६	२१३०	२१३२
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

दृग्दशा

लग्नाद् धर्मस्य तद्दृष्टराशीनां च दशास्ततः।
दशमस्य च तद्दृष्टराशीनां च नयेत् पुनः ॥१३४॥
एकादशस्य तद्दृष्टराशीनां स्थिरवत् समाः।
प्रवृत्ता दृग्वशाद्यस्माद् दृग्दशेयं ततः स्मृताः ॥१३५॥
चरे व्युत्क्रमतो ग्राह्या दृग्योग्याः स्थिरभे क्रमात्।
विषमे क्रमतो द्वन्द्वे राशयो व्युत्क्रमात् समे ॥१३६॥

लग्न से नवमस्थ राशि की, पुन उससे दृष्ट राशियों की, इसके बाद दशम राशि की, फिर उससे दृष्ट राशियों की, फिर एकादश राशि की और पुनः एकादश राशि द्वारा अवलोकित राशियों की दशा होती है। यह दशा दृष्टि द्वारा प्रवृत्त होने के कारण दृग्दशा कही जाती है। उक्त नवम, दशम, एकादशस्थ रशियाँ चर, स्थिर एवं द्विस्वभाव के होती हैं। चर रहने पर उत्क्रम से एवं स्थिर हो तो क्रम से दृष्टि योग्य राशि ग्रहण करनी चाहिए। द्विस्वभाव होने पर यदि द्विस्वभाव राशि विषम हो तो क्रम से और सम हो तो उत्क्रम से दृष्टि योग्य राशियाँ ग्रहण की जाती हैं। आशय यह है कि दृष्टिविचार में सबसे नजदीक स्थित राशि से ही प्रारम्भ कर दृष्ट राशियों को लेना चाहिए। इस प्रकार चर में पृष्ठस्थ, स्थिर में अग्रिमस्थ और द्विस्वभाव में दोनों के पार्श्व में तुल्य स्थान पर रहने के कारण विषम रहे तो क्रम से एवं सम राशि रहे तो उत्क्रम से दृष्ट राशि होती है। यहाँ पर दशावर्ष स्थिर दशानुसार ग्रहण किया जाता है ॥१३४-१३६॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में नवम भाव में सिंह राशि है और सिंह स्थिर राशि है; अतः क्रमगणना से सिंह की दशा एवं तत्पश्चात् सिंह से दृष्ट मेष, तुला, मकर राशियों की दशा होगी। फिर दशमस्थ कन्या राशि द्विस्वभाव है; अतः सम राशि में रहने के कारण उत्क्रम से कन्या, फिर कन्या द्वारा अवलोकित मीन, धन, मिथुन राशियों की दशा होगी। इसके बाद एकादशस्थ तुला राशि है और तुला चर राशि है; अतः उत्क्रम से तुला की, पुनः तुला द्वारा दृष्ट कुम्भ, सिंह एवं वृष राशियों की दशा होगी। दशावर्ष स्थिर दशानुसार ग्रहण किया जाता है ॥१३४-१३६॥

दृग्दशाचक्र

दशेश	सिंह	मेष	तुला	मकर	कन्या	मीन	धनु	मिथुन	वृश्चिक	कुम्भ	कर्क	वृष
दशा वर्ष	८	७	७	७	९	९	९	९	८	८	७	८
संवत् २०५४	२०६२	२०६९	२०७६	२०८३	२०९२	२१०१	२११०	२११९	२१२७	२१३५	२१४२	२१५०
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

लग्नादि राशिदशा

ऋक्षे लग्नादिराशीनां दशा राशिदशा स्मृता।
भयातं रविभिर्निघ्नं भभोगविहृतं फलम् ॥१३७॥
राश्याद्यं लग्नराश्यादौ योज्यं द्वादशशेषितम्।
तदारभ्य क्रमादोजे दशा ज्ञेयोत्क्रमात् समे ॥१३८॥

प्रत्येक नक्षत्र में १२ राशियों की दशा होती है, राशिमाध्यम से दशा के प्रवृत्त होने के कारण राशिदशा कही जाती है। भयात् को १२ से गुणन करके भभोग से भाग देकर लब्धि राश्यादि को स्पष्ट लग्न में जोड़े, फिर १२ से तष्टित करने पर जो राशि उत्पन्न हो, उसी राशि से आरम्भ कर राशि विषम हो तो क्रमगणना से और सम हो तो उत्क्रम से १२ राशियों की दशा होगी। दशावर्षप्रमाण स्थिर दशानुसार ग्रहण करना चाहिए ॥१३७-१३८॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित लग्नकुण्डली में संवत् २०५४ चैत्र शुक्ल १३ तिथौ रवौ सूर्योदयादिष्टं ४५।२५ में जन्म, भयात् १६।५, भभोग ६५।२०, हस्त के प्रथम चरण में है। स्पष्ट लग्न राश्यादि ८।१६।४२।० है। पलात्मक भयात् ९६५, पलात्मक भभोग ३९२०, पलमय भयात् को १२ से गुणा किया तो ११५८० हुआ, इसमें पलमय भभोग ३९२० से भाग दिया तो राश्यादि २।२८।३७।२१ मिली, इसमें लग्न राश्यादि ८।१६।४२।० योग करके १२ से तष्टित करने पर ११।१५।१९।२१ ही राश्यादि हुई। अत: मीन राशि हुई। मीन राशि के सम होने के कारण मीन से आरम्भ कर उत्क्रम गणना से १२ राशियों की राशिदशा होगी। यहाँ दशावर्षप्रमाण स्थिर दशानुसार ग्रहण करना चाहिए ॥१३७-१३८॥

राशिदशा का भुक्त-भोग्यानयन प्रकार

दशाब्दा भुक्तभागघ्ना त्रिंशता विहृता: फलम्।
भुक्तं वर्षादिकं ज्ञेयं भोग्यं मानाद् विशोधितम् ॥१३९॥

पूर्वसिद्ध प्रथम दशा राशि के भुक्तांश को दशावर्षप्रमाण से गुणा कर ३० का भाग देने पर लब्ध वर्षादि दशा का भुक्त वर्षादि होगा। भुक्त वर्षादि को दशा वर्ष प्रमाण में घटाने पर शेष दशा के भोग्य वर्षादि होते हैं ॥१३९॥

जैसे–मीन प्रथम दशा की भुक्तांश १५।१९।२१ को मीन दशा वर्ष ९ से गुणा कर

३० का भाग देने से लब्ध भुक्त वर्षादि ४।६।५।४८ हुए, इसको प्रथम दशा वर्ष ९ में घटाने पर शेष प्रथम दशा के भोग्य दशा वर्षादि ४।५।२४।१२ हुए।

राश्यादि दशाचक्र

दशेश	मीन	कुम्भ	मंगल	धनु	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	वृष	मेष
वर्ष	४	८	७	९	८	७	९	८	७	९	८	७
मा.	६											
दि.	६											
संवत् २०५४	२०५८	२०६६	२०७३	२०८२	२०९०	२०९७	२१०६	२११४	२१२१	२१३०	२१३८	२१४५
सूर्य ०	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२

पञ्चस्वरदशा

अकारादीन् स्वरान् पञ्च प्रथमं विन्यसेत् क्रमात्।
कादिहान्ताँल्लिखेद् वर्णान् स्वराधो ङञणोज्झितान् ॥१४०॥
तिर्यक् पंक्तिक्रमेणैव पञ्च-पञ्च विभागतः।
न प्रोक्त ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते न हि ॥१४१॥
चेद् भवन्ति तदा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमात्।
यत्र स्वरे स्वनामाद्यवर्णः स्यात् तत्स्वरादयः ॥१४२॥
क्रमात् पञ्च दशाधीशाः द्वादशद्वादशाब्दकाः।
स्वराणां च क्रमाज् ज्ञेयाः दशास्वन्तर्दशादयः ॥१४३॥

प्रथम पंक्ति में 'अ इ उ ए ओ'—ये पाँच स्वर लिखें, साथ ही ङ, ञ, ण—इन व्यञ्जनों को छोड़कर क से ह तक के वर्ण को पाँच-पाँच पंक्ति में ६ लाईन में लिखें। ङ, ञ, ण अक्षर नाम के प्रारम्भ में नहीं देखे जाते, इसलिए इनको छोड़ दिया जाता है। यदि कदाचित् किसी के नामाद्य अक्षर ङ आ जाय तो ङ के स्थान में ग, ञ के स्थान में ज तथा ण के स्थान पर डकार का ग्रहण करके दशा लगानी चाहिए। इस प्रकार जिस स्वर के नीचे स्वनामाद्याक्षर मिले उसी स्वर से आरम्भ कर क्रम से पाँच स्वरों की दशा होती है। यहाँ दशा वर्ष १२- १२ जानना चाहिए। एक स्वर की महादशा में पाँचों स्वरों की अन्तर्दशा भी जाननी चाहिए ॥१४०-१४३॥

पञ्चस्वरचक्र

अ	इ	उ	ए	ओ	स्वर
क	ख	ग	घ	च	वर्ण
छ	ज	झ	ट	ठ	
ड	ढ	त	थ	द	
ध	न	प	फ	ब	
भ	म	य	र	ल	
व	श	ष	स	ह	
१२	१२	१२	१२	१२	वर्ष

उदाहरण—पूर्वदर्शित उदाहरण में हस्त के प्रथम चरण में है। हस्त का प्रथम चरणाक्षर 'पू' है, अतः पवर्ग में पड़ा, पवर्ग में उ स्वर पड़ा, अतः उकारादि पाँचों स्वरों की पञ्च-स्वर दशा होगी।

पञ्च स्वर दशाचक्र

दशेश	उ	ए	ओ	अ	इ
वर्ष	१२	१२	१२	१२	१२
संवत् २०५४	२०६६	२०७८	२०९०	२१०२	२११४
सूर्य ०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६

योगिनी दशानिरूपण

पराशर उवाच

पूर्वमेव मया प्रोक्ता वर्णदाख्या दशा द्विज!।
इदानीं शम्भुना प्रोक्ता कथ्यते योगिनी दशा ॥१४४॥
मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा।
उल्का सिद्धा संकटा च योगिन्योऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥१४५॥
मङ्गलातोऽभवच्चन्द्रः पिङ्गलातो दिवाकरः।
धन्यातो देवपूज्योऽभूद् भ्रामरीतोऽभवत् कुजः ॥१४६॥
भद्रिकातो बुधो जातस्तथोल्कातः शनैश्चरः।
सिद्धातो भार्गवी जातः संकटातस्तमोऽभवत् ॥१४७॥
जन्मर्क्षं च त्रिभिर्युक्तं वसुभिर्भागमाहरेत्।
एकादिशेषे विज्ञेया योगिन्यो मङ्गलादिका ॥१४८॥
एकाद्येकोत्तरा ज्ञेयाः क्रमादासां दशासमाः।
नक्षत्रयातभोगाभ्यां भुक्तं भोग्यं च साधयेत् ॥१४९॥

पराशर बोले कि हे द्विज ! मैंने वर्णद नामक दशा पूर्व में ही कह दी है। इस समय मैं योगिनी दशा को कहता हूँ, जिसको स्वयं महादेव जी ने कहा था। १ मंगला, २ पिङ्गला, ३ धान्या, ४ भ्रामरी, ५ भद्रिका, ६ उल्का, ७ सिद्धा, ८ संकटा—ये आठ योगिनी दशा कही गई हैं। मंगला से चन्द्रमा, पिङ्गला से सूर्य, धान्या से गुरु, भ्रामरी से मंगल, भद्रिका से बुध, उल्का से शनि, सिद्धा से शुक्र और संकटा से राहु की उत्पत्ति है। जन्मनक्षत्र संख्या में ३ जोड़कर ८ का भाग देने पर एकादि शेष से मङ्गलादि योगिनी दशायें होती हैं। मंगलादि योगिनी दशावर्ष एकादि वर्ष जानना चाहिए अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ क्रम से वर्ष जानना चाहिए। जन्मकालिक भयात् भभोग के द्वारा दशा के भुक्त, भोग्य वर्षादि का साधन करना चाहिए ॥१४४-१४९॥

उदाहरण—जन्मनक्षत्र हस्त के प्रथम चरण में है, अत: जन्मनक्षत्र से १३ + ३ = १६। इसमें आठ का भाग दिया तो शेष ० शून्य रहा अर्थात् ८ हुआ, अत: आठवीं संकटा की दशा में जन्म हुआ, संकटा के वर्षमान ८ है। हस्त नक्षत्र भयात् १६।५ भभोग ६५।२० प्रथम चरण में जन्म है। पलमय भयात् ९६५ को आठ से गुणन कर पलमय भभोग ३९२० से भाग दिया, लब्ध भुक्त वर्षादि १।११।१९ को ८ में घटाने पर ६।०।११ भोग्य वर्षादि सिद्ध हुए।

योगिनी दशा चक्र

दशेश	संकटा	मंगला	पिंगला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा
वर्ष ६	६	१	२	३	४	५	६	७
०	०	०						
११	११							
संवत् २०५४	२०६०	२०६१	२०६३	२०६६	२०७०	२०७५	२०८१	२०८८
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७

पिण्ड अंश निसर्ग दशा-प्रकार

येषां यदायुः संप्रोक्तं पैण्डमांसं निसर्गजम्।
तत्तत् तेषां दशा ज्ञेया पैण्डी, चांशी निसर्गजा ॥१५०॥
बली लग्नार्कचन्द्राणां यस्तस्य प्रथमा दशा।
तत्केन्द्रादिगतानां च ज्ञेयाः बलवशात्ततः ॥१५१॥

जिस ग्रह की पिण्डायु, अंशायु निसर्गायु सिद्ध हो उस ग्रह की उतनी ही पिण्डदशा, अंशदशा, निसर्गदशा जाननी चाहिए। दशा का प्रकार यह है कि लग्न, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनों में जो सर्वाधिक बली हो, पहले उसकी दशा, इसके बाद केन्द्रगत ग्रहों की दशा, फिर पणफर स्थित ग्रहों की दशा और अन्त में आपोक्लिमस्थ ग्रहों की दशा होगी। इस प्रकार लग्न-सहित आठों की दशा बलक्रम से होगी। इसी प्रकार अन्तर्दशा भी जाननी चाहिए ॥१५०-१५१॥

वृ. १०
८
११
९
७
श. १२ के.
रा. ६ चं.
सू. १ बु. शु.
३
५ मं.
२
४

जन्मकुण्डली

उदाहरण—यहाँ पर लग्न, सूर्य, चन्द्रमा में स्वोच्च रहने के कारण सूर्य बली है, अत: पहले सूर्य की दशा हुई। इसके बाद केन्द्रस्थ लग्न, शनि, चन्द्रमा में से चन्द्रमा स्वमित्र राशि बुध के गृह में बैठा है; अत: द्वितीय दशेश चन्द्रमा हुआ। शनि स्व-समग्रह

गुरु के गृह में रहने से तृतीय दशेश शनि हुआ, इसके बाद लग्न की दशा हुई। इसके बाद पणफरस्थ गुरु, बुध, शुक्र ग्रहों में से बल क्रम से बुध, शुक्र की दशा हुई, फिर स्व नीचस्थ गुरु की दशा हुई। आपोक्लिमस्थ मंगल की दशा हुई ॥१५०-१५१॥

अष्टवर्गबलेनैषां फलानि परिचिन्तयेत्।
अष्टवर्गदशाश्चैता: कथिता: पूर्वसूरिभि: ॥१५२।

अष्ट वर्गों के बलाबल को देख कर इन दशाओं का शुभाशुभ फलादेश करना चाहिए। ये ही दशायें अष्टवर्ग दशा के नाम से विख्यात हैं ॥१५२॥

सन्ध्या दशा

परायुर्द्वादशो भागस्तस्य सन्ध्या प्रकीर्तिता।
तन्मिता लग्नभादीनां क्रमात् सन्ध्यादशा स्मृता ॥१५३॥

परमायु १२० वर्ष माना गया है, उसका द्वादशांश १० वर्ष आयुर्दाय की सन्ध्या दशा होती है। लग्नादि क्रम से सभी राशि की सन्ध्या दशा होगी ॥१५३॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में धन लग्न है। अत: धन से आरम्भ कर १२ राशियों की क्रम से दशा होगी। इनका वर्षप्रमाण १२ ÷ १२० = १० वर्ष होगा।

सन्ध्या दशाचक्र

दशेश	धनु	मंगल	कुम्भ	मीन	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला
वर्ष	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
संवत् २०५४	२०६४	२०७४	२०८४	२०९४	२१०४	२११४	२१२४	२१३४	२१४४	२१५४	२१६४
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

सन्ध्या दशा में पाचक दशा प्रकार

सन्ध्या रसगुणा कार्या चन्द्रवह्निहृता फलम्।
संस्थाप्यं प्रथमे कोष्ठे तदर्धं त्रिषु विन्यसेत् ॥१५४॥
त्रिभागं वसुकोष्ठेषु विन्यस्य तत्फलं वदेत्।
एवं द्वादशभावेषु पाचकानि प्रकल्पयेत् ॥१५५॥

सन्ध्या दशा वर्ष को ६ से गुणा कर ३१ का भाग देकर लब्धि वर्षादि को प्रथम कोष्ठ में रखें, फिर इसके आधे का अग्रिम ३ कोष्ठ में न्यास करे। पुन: इससे आगे के ८ कोष्ठ में पूर्व लब्धफल का तृतीयांश न्यास कर शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए। इस प्रकार १२ भावों में प्रत्येक भाव में सन्ध्या दशा में पाचक दशा होती है ॥१५४-१५५॥

उदाहरण—पूर्वदर्शित सन्ध्या दशा वर्ष १० को ६ से गुणा कर ३१ का भाग देने पर १।११।६ लब्ध वर्षादि प्रथम कोष्ठ में रक्खा, इसके आधे ०।११।१८ वर्षादि अग्रिम

३ कोष्ठ में, फिर लब्धि का तृतीयांश ०।७।२२ वर्षादि को अग्रस्थ ८ कोष्ठ में रखने से सन्ध्या दशा में पाचक दशा हुई। सन्ध्या दशा के धनादि होने के कारण धन में पाचक दशा हुई।

धन राशि में पाचक दशा चक्र

दशेश	ध.	म.	कुं	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.
वर्ष	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	११	११	११	११	७	७	७	७	७	७	७	७
दिन	६	१८	१८	१८	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२
संवत् २०५४	२०५५	२०५६	२०५७	२०५८	२०५९	२०६०	२०६०	२०६१	२०६२	२०६२	२०६३	२०६४
सूर्य ०	११	११	१०	१०	५	१	९	५	०	८	४	०
६	१२	०	१८	६	२८	२०	१२	४	२६	१८	१०	२

तारा दशा

विंशोत्तरीदशेवाऽत्र कैश्चित् तारादशा स्मृता।
आचंकुरागुशबुकेश्वरदिस्थानेषु तारकाः ॥१५६॥
जन्म-सम्पत्-विपत्-क्षेम-प्रत्यरिः साधको वधः।
मैत्रं परममैत्रं च केन्द्रस्थबलिनो ग्रहात् ॥१५७॥
ज्ञेया तारादशा विप्र! नामतुल्यफलप्रदा।
कस्य केन्द्रे स्थितः खेटो दशेयं तस्य कीर्तिता ॥१५८॥

हे विप्र! विंशोत्तरीय दशा के समान ही किसी आचार्य ने तारा दशा भी मानी है। तारा दशा केन्द्रस्थ बली ग्रह से आरम्भ कर आ. चं. भौ. रा. वृ. श. बु. के.शु. के अनुरूप चलती है। जन्म, संपत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र और अतिमैत्र—ये नौ तारे हैं। दशा वर्ष विंशोत्तरी के अनुरूप हैं और ये स्वनामानुसार फल प्रदान करते हैं।

उदाहरण—पूर्वदर्शित कुण्डली में केन्द्रस्थ चन्द्रमा स्वमित्रगृही होने के कारण केन्द्रस्थ अन्य ग्रहों की अपेक्षा बलवान है। अतः चन्द्रादि (संपत्) तारा दशा हुई ॥१५६-१५८॥

तारा दशाचक्र

दशेश	चं.	मं.	रा.	वृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.
वर्ष	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	६
तारा	संवत्	विपत्	क्षेम	प्रत्यरि	साधक	वध	मैत्र	अ. मै	जन्म
संवत् २०५४	२०६४	२०७१	२०८९	२१०५	२१२४	२१४१	२१४८	२१६८	२१७४
सूर्य ०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

इति ते कथिता विप्र ! दशाभेदा अनेकधा।
एतदन्तर्दशाभेदान् कथयिष्यामि चाग्रतः ॥१५९॥

हे विप्र ! मैंने इस प्रकार विभिन्न प्रकार के दशाभेदों को कह दिया है। अब आगे इन विभिन्न दशाभेदों के अन्तर्दशा-भेदों को भी कहूँगा ॥१५९॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कालचक्रदशाध्याय: ॥४८॥

अथ दशाफलाध्यायः ॥४९॥

मैत्रेय उवाच

श्रुताश्च बहुधा भेदा दशानां च मया मुने ! ।
फलं च कीदृशं तासां कृपया मे तदुच्यताम् ? ॥१॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुने ! मैंने बहुत-सी दशाओं के भेद सुने, अब इन बहुत-सी दशाओं का फल कैसा होता है ? यह भी मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

साधारणं विशिष्टञ्च दशानां द्विविधं फलम् ।
ग्रहाणां च स्वभावेन स्थानस्थितिवशेन च ॥२॥

पराशर ने कहा—हे महानुभाव ! ग्रहों के स्वभाववश एवं स्थानादिवश साधारण तथा विशिष्ट—दो प्रकार के दशाफल होते हैं ॥२॥

ग्रहवीर्यानुसारेण फलं ज्ञेयं दशासु च ।
आद्यद्रेष्काणगे खेटे दशारम्भे फलं वदेत् ॥३॥
दशामध्ये फलं वाच्यं मध्यद्रेष्काणगे खगे ।
अन्ते फलं तृतीयस्थे व्यस्तं खेटे च वक्रगे ॥४॥

अपने बल के अनुसार ही ग्रहों के दशाफल होते हैं। यदि ग्रह प्रथम द्रेष्काण में हो तो दशा के प्रारम्भ में ही वह फल प्रदान करता है, द्वितीय में, मध्य में और तृतीय द्रेष्काण में ग्रह हो तो दशा के अन्त में शुभाशुभ फल प्रदान करता है। यदि ग्रह वक्री हो तो विपरीत फल प्रदान करता है अर्थात् तृतीय द्रेष्काण में आदि में, प्रथम द्रेष्काणस्थ ग्रह रहने पर अन्त में और द्वितीय द्रेष्काण में स्थित ग्रह हो तो दशा के मध्य में शुभाशुभ फल प्रदान करता है। राहु और केतु सदैव वक्री रहते हैं; अतः उनका फल सदैव विपरीत जानना चाहिए ॥३-४॥

विशेष—एक राशि में ३० अंश होते हैं और द्रेष्काण तीन होते हैं, अतः एक द्रेष्काण १० अंश का होता है। १ अंश से १० अंश तक प्रथम द्रेष्काण, ११ अंश से २० अंश तक द्वितीय द्रेष्काण और २१ से ३० अंश तक तृतीय द्रेष्काण जानना चाहिए।

जिस किसी राशि के प्रथम द्रेष्काण में ग्रह हो तो उसी राशि का, द्वितीय द्रेष्काण में उस राशि से पंञ्चम राशि का और तृतीय द्रेष्काण में उस राशि से नवम राशि का द्रेष्काण होता है।

द्रेष्काणचक्र

मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं	मी.	अंश
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१०
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	२०
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	३०

दशारम्भे दशाधीशे लग्नगे शुभदृग्युते ।
स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा शुभं तस्य दशाफलम् ॥५॥
षष्ठाऽष्टमव्ययस्थे च नीचास्तरिपुभस्थिते ।
अशुभं तत्फलं चाऽथ ब्रुवे सप्तदशाफलम् ॥६॥

दशारम्भ में दशाधिपति यदि लग्न में हो, अपने उच्च में या स्वगृह में अपने मित्रग्रह की राशि में, शुभ ग्रह के द्वारा दृष्ट हो या युत हो तो उसका दशाफल शुभ होता है। यदि ६, ८, १२ भाव में नीच अथवा शत्रुराशि का हो तो उसका फल अशुभ होता है ॥५-६॥

विंशोत्तरीयमत से रवि-दशाफल

मूलत्रिकोणे स्वक्षेत्रे स्वोच्चे वा परमोच्चगे ।
केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे भाग्यकर्माधिपैर्युते ॥७॥
सूर्ये बलसमायुक्ते निजवर्गबलैर्युते ।
तस्मिन्दाये महत् सौख्यं धनलाभादिकं शुभम् ॥८॥
अत्यन्तं राजसन्मानमश्वान्दोल्यादिकं सुखम् ।
सुताधिपसमायुक्ते पुत्रलाभं च विन्दति ॥९॥
धनेशस्य च सम्बन्धे गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ।
वाहनाधिपसम्बन्धे वाहनत्रयलाभकृत् ॥१०॥
नृपालतुष्टिर्वित्ताढ्यः सेनाधीशः सुखो नरः ! ।
बलवाहनलाभश्च दशायां बलिनो रवेः ॥११॥

यदि सूर्य जन्मसमय में अपने मूल त्रिकोण में, अपने क्षेत्र (सिंह) में, अपने उच्च में, अपने परमोच्च (मे. १० अंश) में, केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में, भाग्येश-कर्मेश के साथ में, निज वर्ग में बलवान होकर बैठा हो तो उसकी दशा में धनलाभ, अधिक सुख, राज-सम्मानादि की प्राप्ति होती है। सन्तानेश के साथ हो तो पुत्रलाभ, धनेश के साथ सूर्य हो तो हाथी आदि धनों का लाभ और वाहनेश के साथ हो तो वाहन का लाभ कराता है। ऐसा जातक राजा की अनुकम्पा से धनाढ्य होकर सेनानायक बनकर सुखी होता है। इस प्रकार बलयुत रवि की महादशा में बल, वाहन और धन का लाभ होता है ॥७-११॥

नीचे षडष्टके रिःफे दुर्बले पापसंयुते ।
राहुकेतुसमायुक्ते दुःस्थानाधिपसंयुते ॥१२॥

तस्मिन्दाये महापीडा धन-धान्य-विनाशकृत्।
राजकोपः प्रवासश्च राजदण्डो धनक्षयः ॥१३॥
ज्वरपीडा यशोहानिर्बन्धुमित्रविरोधकृत्।
पितृक्षयभयं चैव गृहे त्वशुभमेव च ॥१४॥
पितृवर्गे मनस्तापं जनद्वेषं च विन्दति।
शुभदृष्टियुते सूर्ये मध्ये तस्मिन् क्वचित्सुखम्॥
पापग्रहेण सन्दृष्टे वदेत् पापफलं बुधः ॥१५॥

यदि जातक के जन्मसमय में सूर्य अपने नीच (तुला) राशि का हो, ६, ८, १२ भाव में निर्बल पाप ग्रहों से युत हो या राहु-केतु से युत हो या दुःस्थान (६, ८, १२) के अधिपति से युत हो तो सूर्य की महादशा में महान् कष्ट, धन-धान्य का विनाश, राजक्रोध, प्रवास, राजदण्ड, धनक्षय, ज्वरपीड़ा, अपयश, स्वबन्धुओं से वैमनश्यता, पितृकष्ट, भय, घर में अशुभ, चाचा को कष्ट, मानसिक अशान्ति और अकारण जनों से द्वेष होता है। यदि सूर्य के पूर्वोक्त नीचादि स्थानों में रहने पर भी उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो कभी-कभी बीच-बीच में सुख भी होता है। यदि केवल पाप ग्रहों की ही दृष्टि हो तो सदैव पाप फल ही कहना चाहिए ॥१२-१५॥

चन्द्रफल

एवं सूर्यफलं विप्र! संक्षेपादुदितं मया।
विंशोत्तरीमतेनाऽथ ब्रुवे चन्द्रदशाफलम् ॥१६॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
शुभग्रहेण संयुक्ते पूर्णे चन्द्रे बलैर्युते ॥१७॥
कर्मभाग्याधिपैर्युक्ते वाहनेशबलैर्युते।
आद्यन्तैश्वर्य-सौभाग्य-धन-धान्यादिलाभकृत् ॥१८॥
गृहे तु शुभकार्याणि वाहनं राजदर्शनम्।
यत्नकार्यार्थसिद्धिः स्याद् गृहे लक्ष्मीकटाक्षकृत् ॥१९॥
मित्रप्रभुवशाद् भाग्यं राज्यलाभं महत्सुखम्।
अश्वान्दोल्यादिलाभं च श्वेतवस्त्रादिकं लभेत् ॥२०॥
पुत्रलाभादिसन्तोषं गृहगोधनसङ्कुलम्।
धनस्थानगते चन्द्रे तुङ्गे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥२१॥
अनेकधनलाभं च भाग्यवृद्धिर्महत्सुखम्।
निक्षेपराजसन्मानं विद्यालाभं च विन्दति ॥२२॥

हे विप्र! मैंने संक्षेप में सूर्यदशा का फल बताया; अब मैं विंशोत्तरीय मत से चन्द्रदशा का फल कहता हूँ। जन्मकाल में यदि चन्द्रमा अपने उच्च राशि का हो या अपने

क्षेत्र (कर्क) में हो, केन्द्र, ११, त्रिकोण में हो और पूर्ण बली चन्द्र शुभ ग्रहों से युत हो, ४, ९, १० भावों के स्वामी से युक्त हो तो उसकी महादशा में प्रारम्भ से अन्त तक धन-धान्य, सौभाग्यादि की वृद्धि, घर में मांगलिक कार्य, वाहनसुख, राजदर्शन, यत्न से कार्य-सिद्धि, घर में धनागम, मित्रों के द्वारा भाग्योदय, राज्यलाभ, सुख, वाहनप्राप्ति एवं धन और वस्त्रादि का लाभ होता है। जातक पुत्रलाभ, मानसिक शान्ति एवं घर में गौओं द्वारा सुशोभित होता है। चन्द्रमा द्वितीय भाव में अपने उच्च या स्वगृहगत हो तो अनेक प्रकार से धनलाभ, भाग्यवृद्धि, राजसम्मान तथा विद्या का लाभ होता है ॥१६-२२॥

नीचे वा क्षीणचन्द्रे वा धनहानिर्भविष्यति।
दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते क्वचित्सौख्यं क्वचिद्धनम् ॥२३॥
दुर्बले पापसंयुक्ते देहजाड्यं मनोरुजम्।
भृत्यपीडा वित्तहानिर्मातृवर्गजनाद्वधः ॥२४॥
षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे दुर्बले पापसंयुते।
राजद्वेषो मनोदुःखं धन-धान्यादिनाशनम् ॥२५॥
मातृक्लेशं मनस्तापं देहजाड्यं मनोरुजम्।
दुःस्थे चन्द्रे बलैर्युक्ते क्वचिल्लाभं क्वचित्सुखम् ॥
देहजाड्यं क्वचिच्चैव शान्त्या तत्र शुभं दिशेत् ॥२६॥

चन्द्रमा अपने नीच का हो या क्षीण हो तो धन की हानि होती है। बलयुत चन्द्र तृतीय भाव में हो तो कभी-कभी सुख और धन की प्राप्ति होती है। निर्बल चन्द्र पाप ग्रह से युत होकर तृतीय में हो तो जड़ता, मानसिक रोग, नौकरों से पीड़ा, धनहानि और माता या मामा से कष्ट होता है। दुर्बल चन्द्र पाप ग्रह से युत होकर ६, ८, १२ स्थान में बैठा हो तो राजद्वेष, मानसिक दुःख, धन-धान्यादि का विनाश, मातृकष्ट, पश्चात्ताप, शरीर की जड़ता एवं मनोव्यथा होती है। बलयुत चन्द्र के दुःस्थान में रहने से बीच-बीच में कभी-कभी लाभ और सुख भी होता है। अशुभकारक रहने पर शान्ति करने से शुभ का निर्देश करना चाहिए ॥२३-२६॥

भौम-दशाफल

स्वभोच्चादिगतस्यैवं नीचशत्रुभगस्य च।
ब्रवीमि भूमिपुत्रस्य शुभाऽशुभदशाफलम् ॥२७॥
परमोच्चगते भौमे स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे।
स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥२८॥
सम्पूर्णबलसंयुक्ते शुभदृष्टे शुभांशके।
राज्यलाभं भूमिलाभं धनधान्यादिलाभकृत् ॥२९॥
आधिक्यं राजसम्मानं वाहनाम्बरभूषणम्।
विदेशे स्थानलाभं च सोदराणां सुखं लभेत् ॥३०॥

केन्द्रे गते सदा भौमे दुश्चिक्ये बलसंयुते।
पराक्रमाद्वित्तलाभो युद्धे शत्रुञ्जयो भवेत् ॥३१॥
कलत्रपुत्रविभवं राजसम्मानमेव च।
दशादौ सुखमाप्नोति दशान्ते कष्टमादिशेत् ॥३२॥

अब मैं अपने उच्चादिगत तथा नीचादि-गत मंगल का शुभाशुभ फल कहता हूँ। मंगल अपने परमोच्च में हो, अपने उच्च में हो या अपने मूल त्रिकोण में हो, स्वगृह में हो या केन्द्रत्रिकोण में हो, लाभभाव में हो, धनभाव में हो, पूर्ण बलयुत हो, शुभ ग्रहों से अवलोकित हो, शुभ नवमांश में हो तो राज्यलाभ, भूमिप्राप्ति, धन-धान्यादि का लाभ, राजसम्मान, वाहन, वस्त्र, आभूषणादि का लाभ, प्रवास में भी स्थानलाभ और सहोदर बन्धु-सौख्य होता है। यदि मंगल बलयुत होकर केन्द्र या तृतीय भाव में हो तो पराक्रम से धनलाभ, युद्ध में शत्रु की पराजय, स्त्री-पुत्रादि का सुख और राजसम्मान प्राप्त होता है, परन्तु भौम दशा के अन्त में सामान्य कष्ट भी होता है ॥२७-३२॥

नीचादिदुष्टभावस्थे भौमे बलविवर्जिते।
पापयुक्ते पापदृष्टे सा दशा नेष्टदायिका ॥३३॥

भौम अपने नीचादि दुष्ट भाव में निर्बल होकर बैठा हो या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी दशा में धन-धान्य का विनाश, कष्ट आदि अशुभ फल जानना चाहिए ॥३३॥

एवं राहोश्च केतोश्च कथयामि गृहादिकम्।
तयोर्दशाफलज्ञप्त्यै तवाऽग्रे द्विजनन्दन! ॥३४॥
राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुङ्गसंज्ञकम्।
मूलत्रिकोणकं ज्ञेयं युग्मं चापं क्रमेण च ॥३५॥
कुम्भाली च गृहौ चोक्तौ कन्या-मीनौ च केनचित्।
तद्दाये बहुसौख्यं च धनधान्यादिसम्पदाम् ॥३६॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं वाहनं पुत्रसम्भवः।
नवीनगृहनिर्माणं धर्मचिन्ता महोत्सवः ॥३७॥
विदेशराजसन्मानं वस्त्रालङ्कारभूषणम्।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे योगकारकसंयुते ॥३८॥
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये शुभराशिगे।
महाराजप्रसादेन सर्वसम्पत्सुखावहम् ॥३९॥
यवनप्रभुसन्मानं गृहे कल्याणसम्भवम् ॥३९½॥

हे द्विजनन्दन! अब मैं आपके समक्ष राहु तथा केतु के उच्च गृहादि को कहता हूँ, जिसके माध्यम से उन दोनों का शुभाशुभ फल ज्ञात हो जाता है। राहु का उच्च राशि वृष और केतु का वृश्चिक है। राहु का मूल त्रिकोण मिथुन और केतु का धन राशि है। राहु का कुम्भ और केतु का वृश्चिक स्वगृह राशि है। किसी-किसी के मत से कन्या

और मीन भी राशिगृह हैं। राहु या केतु अपने उच्चादि स्थानगत हैं तो उनकी महादशा में धन-धान्यादि सम्पत्ति का अभ्युदय, मित्र एवं मान्य जनों की सहानुभति से कार्यसिद्धि, वाहन, पुत्रलाभ, नवीन गृहनिर्माण, धार्मिक चिन्ता, महोत्सव, विदेश में भी राजसम्मान, वस्त्र, अलङ्कार एवं आभूषण की प्राप्ति होती है। राहु केतु योगकारक ग्रहों के साथ हों या शुभ ग्रह से युत-दृष्ट होकर केन्द्र, त्रिकोण, लाभ तृतीय भाव में शुभ राशिगत हों तो राजा-महाराजा की कृपा से सभी सम्पत्तियों का आगमन और विदेशीय यवनराज से भी धनागम तथा अपने घर में कल्याण होता है ॥३४-३९॥

रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ तद्दाये कष्टमादिशेत् ॥४०॥
पापग्रहेण सम्बन्धे मारकग्रहसंयुते।
नीचराशिगते वापि स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ॥४१॥
विनाशो दारपुत्राणां कुत्सितान्नं च भोजनम्।
दशादौ देहपीडा च धनधान्यपरिच्युतिः ॥४२॥
दशामध्ये तु सौख्यं स्यात् स्वदेशे धनलाभकृत्।
दशान्ते कष्टमाप्नोति स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ॥४३॥

यदि राहु ८, १२ भाव में हो तो उसकी दशा कष्टकारक होती है, यदि पाप ग्रह से सम्बन्ध रखता हो या मारकेश से युत हो या अपने नीच राशिगत हो तो स्थानभ्रष्ट, मानसिक रोग, पुत्र-स्त्री का विनाश एवं कुभोजन की प्राप्ति होती है। दशा-प्रारम्भ में शारीरिक कष्ट, धन-धान्य का विनाश, दशा के मध्य में सामान्य सुख और अपने देश में धनलाभ तथा दशा के अन्त में स्थानभ्रष्ट, मानसिक व्यथा एवं कष्ट की प्राप्ति होती है ॥४०-४३॥

गुरु-दशाफल

यः सर्वेषु नभोगेषु बुधैरतिशुभः स्मृतः।
तस्य देवेन्द्रपूज्यस्य कथयामि दशाफलम् ॥४४॥

विद्वानों द्वारा सभी ग्रहों में जिसको अत्यन्त शुभ फलकारक कहा गया है, उन देवेन्द्र-पूज्य (गुरु) के दशाफल को अब मैं कहता हूँ ॥४४॥

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे केन्द्र-लाभत्रिकोणगे।
मूलत्रिकोणलाभे वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥४५॥
राज्यलाभं महत्सौख्यं राजसन्मानकीर्तनम्।
गजवाजिसमायुक्तं देवब्राह्मणपूजनम् ॥४६॥
दारपुत्रादिसौख्यं च वाहनाम्बरलाभजम्।
यज्ञादिकर्मसिद्धिः स्याद्वेदान्तश्रवणादिकम् ॥४७॥
महाराजप्रसादेनाऽभीष्टसिद्धिः सुखावहा।
आन्दोलिकादिलाभश्च कल्याणं च महत्सुखम् ॥४८॥
पुत्रदारादिलाभश्च अन्नदानं महत्प्रियम् ॥४८½॥

गुरु यदि स्वोच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण या लाभ, मूल त्रिकोण, अपने उच्च नवमांश या अपने नवमांश में बैठा हो तो राज्य की प्राप्ति, महासुख, राजा से सम्मान, यश-घोड़े-हाथी आदि की प्राप्ति, देव-ब्राह्मण में निष्ठा, स्त्री-पुत्रादि से सुख, वाहन-वस्त्रलाभ, यज्ञादि धार्मिक कार्य की सिद्धि, वेद-वेदान्तादि का श्रवण, महाराजा की कृपा से अभीष्ट की प्राप्ति, सुख, पालकी आदि की प्राप्ति, कल्याण, महासुख, पुत्र-कलत्रादि का लाभ, अन्नदान आदि शुभ फल प्राप्त होता है ।।४५-४८½।।

नीचास्तपापसंयुक्ते जीवे रिष्फाष्टसंयुते ।।४९।।
स्थानभ्रंशं मनस्तापं पुत्रपीडामहद्भयम् ।
पश्वादिधनहानिश्च तीर्थयात्रादिकं लभेत् ।।५०।।
आदौ कष्टफलं चैव चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ।
मध्यान्ते सुखमाप्नोति राजसम्मानवैभवम् ।।५१।।

यदि बृहस्पति नीच या अस्त, पापग्रहों से युत या ८, १२ भावों में स्थित हो तो स्थाननाश, चिन्ता, पुत्रकष्ट, महाभय, पशु-चौपायों की हानि, तीर्थयात्रा आदि होता है। गुरु की दशा आरम्भ में कष्टकारक, मध्य तथा अन्त में चतुष्पदों से लाभदायक, राजसम्मान, ऐश्वर्य, सुख आदि का अभ्युदय कराने वाली होती है ।।४९-५१।।

शनि-दशाफल

अथ सर्वेषु खेटेषु योऽतिहीनः प्रकीर्तितः ।
तस्य भास्करपुत्रस्य कथयामि दशाफलम् ।।५२।।

अब सभी ग्रहों में निष्कृष्ट फलदायक शनि की महादशा का फल कहता हूँ ।।५२।।

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे मित्रक्षेत्रेऽथ वा यदि ।
मूलत्रिकोणे भाग्ये वा तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।।५३।।
दुश्चिक्ये लाभगे चैव राजसम्मानवैभवम् ।
सत्कीर्तिर्धनलाभश्च विद्यावादविनोदकृत् ।।५४।।
महाराजप्रसादेन गजवाहनभूषणम् ।
राजयोगं प्रकुर्वीत सेनाधीशान्महत्सुखम् ।।५५।।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि राज्यलाभं करोति च ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिलाभकृत् ।।५६।।

यदि शनि अपने उच्च, अपने क्षेत्र, मित्रक्षेत्र, मूल त्रिकोण, भाग्य, अपने उच्चांश, अपने नवमांश, तृतीय, लाभस्थान में बैठा हो तो राजसम्मान, सुन्दर यश, धनलाभ, विद्याध्ययन से स्वान्त सुख, महाराजा की कृपा से सेनानायक, हाथी, वाहन, आभूषण आदि का लाभ, महान् सुख, घर में लक्ष्मी की कृपा, राज्यलाभ, पुत्र-कलत्र-धनादि का लाभ, घर में कल्याण आदि शुभ फल प्रदान करने वाला होता है ।।५३-५६।।

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वाऽस्तङ्गतेऽपि वा।
विषशस्त्रादिपीडा च स्थानभ्रंशं महद्भयम् ॥५७॥
पितृमातृवियोगं च दारपुत्रादिपीडनम्।
राजवैषम्यकार्याणि ह्यनिष्टं बन्धनं तथा ॥५८॥
शुभयुक्तेक्षिते मन्दे योगकारकसंयुते।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मीनगे कार्मुके शनौ ॥५९॥
राज्यलाभं महोत्साहं गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥६०॥

यदि शनि ६, ८, १२ में हो, नीच या अस्तंगत हो तो विष या शस्त्र से पीड़ा, स्थान का विनाश, महाभय, माता-पिता से वियोग, पुत्र-कलत्रादि को पीड़ा, राजवैमनश्यता से कार्य में अनिष्ट, बन्धन आदि प्राप्त होता है। यदि शनि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध रखता हो या केन्द्र-त्रिकोण-लाभ में हो या मीन, धन राशिस्थ हो तो राज्यलाभ, हाथी, घोड़े, वस्त्र, महोत्सवादि का कार्य कराता है ॥५७-६०॥

बुध-दशा फल

अथ सर्वनभोगेषु यः कुमारः प्रकीर्तितः।
तस्य तारेशपुत्रस्य कथयामि दशाफलम् ॥६१॥
स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
मित्रक्षेत्रसमायुक्ते सौम्ये दाये महत्सुखम् ॥६२॥
धनधान्यादिलाभं च सत्कीर्तिधनसम्पदाम्।
ज्ञानाधिक्यं नृपप्रीतिं सत्कर्मगुणवर्द्धनम् ॥६३॥
पुत्रदारादि-सौख्यं च देहारोग्यं महत्सुखम्।
क्षीरेण भोजनं सौख्यं व्यापाराल्लभते धनम् ॥६४॥
शुभदृष्टियुते सौम्ये भाग्ये कर्माधिपे दशा।
आधिपत्ये बलवती सम्पूर्णफलदायिका ॥६५॥

सभी ग्रहों में जिसको कुमार कहा जाता है, उस बुध की महादशा के फल को अब मैं कहता हूँ। यदि बुध अपने उच्च में हो या स्वक्षेत्र में हो या केन्द्र-त्रिकोण-मित्रगृह में बैठा हो तो उसकी दशा में सुख, धन-धान्य का लाभ, सुकीर्ति, ज्ञानवृद्धि, राजा की सहानुभति, शुभ कार्य की वृद्धि, पुत्र-स्त्रीजन्य सुख, रोगहीनता, दुग्धयुत भोजन एवं व्यापार से धनलाभ होता है। यदि बुध पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो या शुभ ग्रह से युत हो, कर्मेश होकर भाग्य स्थान में बैठा हो और पूर्ण बली हो तो उक्त फल पूर्ण होगा, अन्यथा सामान्य फल की प्राप्ति होती है ॥६२-६५॥

पापग्रहयुते दृष्टे राजद्वेषं मनोरुजम्।
बन्धुजनविरोधं च विदेशगमनं लभेत् ॥६६॥

परप्रेष्यं च कलहं मूत्रकृच्छ्रान्महद्भयम् ।
षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये लाभभोगार्थनाशनम् ।।६७।।
वातपीडां धनं चैव पाण्डुरोगं विनिर्दिशेत् ।
नृपचौराग्निभीतिं च कृषिगोभूमिनाशनम् ।।६८।।
दशादौ धनधान्यं च विद्यालाभं महत्सुखम् ।
पुत्रकल्याणसम्पत्तिः सन्मार्गे धनलाभकृत् ।।६९।।
मध्ये नरेन्द्रसन्मानमन्ते दुःखं भविष्यति ।।७०।।

यदि बुध पापग्रह से युत-दृष्ट हो तो राजद्वेष, मानसिक रोग, अपने बन्धु-बान्धवों से वैर, विदेश-भ्रमण, दूसरे की नौकरी, कलह एवं मूत्रकृच्छ्र रोग से परेशानी होती है । यदि बुध ६, ८, १२ वें स्थान में हो तो लाभ तथा भोग एवं धन का नाश होता है । वात, पाण्डुरोग, राजा, चोर और अग्नि से भय, कृषिसम्बन्धी भूमि और गाय का विनाश होता है । सामान्यतया दशा के प्रारम्भ में धन-धान्य, विद्या-लाभ, सुख, पुत्र-कलत्रादि लाभ, सन्मार्ग में धन व्यय आदि शुभ होता है । मध्य काल में राजा से आदर प्राप्त होता है और अन्त में दुःख प्राप्त होता है ।।६६-७०।।

केतु-दशाफल

यस्तमोग्रहयोर्मध्ये कबन्धः कथ्यते बुधैः ।
तस्य केतोरिदानीं ते कथयामि दशाफलम् ।।७१।।
केन्द्रे लाभे त्रिकोणे वा शुभराशौ शुभेक्षिते ।
स्वोच्चे वा शुभवर्गे वा राजप्रीतिं मनोनुगम् ।।७२।।
देशग्रामाधिपत्यं च वाहनं पुत्रसम्भवम् ।
देशान्तरप्रयाणं च निर्दिशेत् तत्सुखावहम् ।।७३।।
पुत्रदारसुखं चैव चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ।
दुश्चिक्ये षष्ठलाभे वा केतुर्दाये सुखं दिशेत् ।।७४।।
राज्यं करोति मित्रांशं गजवाजिसमन्वितम् ।
दशादौ राजयोगाश्च दशामध्ये महद्भयम् ।।७५।।
अन्ते दूराटनं चैव देहविश्रमणं तथा ।
धने रन्ध्रे व्यये केतौ पापदृष्टियुतेक्षिते ।।७६।।
निगडं बन्धुनाशं च स्थानभ्रंशं मनोरुजम् ।
शूद्रसङ्गादिलाभं च कुरुते रोगसङ्कुलम् ।।७७।।

जिसको ग्रहों में कबन्ध कहा जाता है उस केतु के दशाफल को अब मैं कहता हूँ । केतु केन्द्र, लाभ, त्रिकोण या शुभ राशिगत हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो, अपने उच्च, शुभ वर्ग में बैठा हो तो राजा से प्रेम, मनोनुकूल वातावरण, देश या ग्राम का अधिकारी, वाहनसुख, सन्तानोत्पत्ति, विदेशभ्रमण, सुखकारक, स्त्री-पुत्रसुख एवं पशुओं से लाभ होता

है। यदि केतु ३, ६, ११ भाव में बैठा हो तो उसकी दशा में सुख, राज्यलाभ, मित्रों का सहयोग एवं हाथी, घोड़े आदि सवारी का लाभ होता है। केतु की दशा के आरम्भ में राजयोग, मध्य में भय एवं अन्त में दूरगमन और शारीरिक कष्ट होता है। २, ८, १२ वें भाव में केतु बैठा हो तो जातक पराश्रित, बन्धुनाश, स्थानविनाश, मानसिक रोग, अधम व्यक्ति का सङ्ग और रोगयुत होता है ।।७२-७७।।

शुक्रदशाफल

अथ भूतेषु यः शुक्रो मदरूपेण तिष्ठति।
तस्य दैत्यगुरोर्विप्र! कथयामि दशाफलम् ।।७८।।
परमोच्चगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
नृपाऽभिषेक-सम्प्राप्तिर्वाहनाऽम्बरभूषणम् ।।७९।।
गजाश्वपशुलाभं च नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
अखण्डमण्डलाधीश-राजसन्मानवैभवम् ।।८०।।
मृदङ्गवाद्यघोषं च गृहे लक्ष्मीकटाक्षकृत्।
त्रिकोणस्थे निजे तस्मिन् राज्यार्थगृहसम्पदः ।।८१।।
विवाहोत्सवकार्याणि पुत्रकल्याणवैभवम्।
सेनाधिपत्यं कुरुते इष्टबन्धुसमागमम् ।।८२।।
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिं गृहे गोधनसङ्ग्रहम् ।।८२½।।

अब जो सभी जीवों में मदरूप से रहता है, उस शुक्र के दशाफल को कहता हूँ। यदि शुक्र अपने परम उच्च, उच्च, स्वराशि या केन्द्र में बैठा हो तो उसकी दशा में जीवों को राज्याभिषेक की प्राप्ति, वाहन, वस्त्र, आभूषण, हाथी, घोड़े, पशु आदि का लाभ, सदा सुस्वादु भोजन, सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी से सम्मान एवं स्वगृह में लक्ष्मी की अनुकम्पा से मृदंग वाद्य-वादनपूर्ण उत्सव होता है। यदि शुक्र त्रिकोण में हो तो उस शुक्र की दशा में राज्य, धन, गृह का लाभ, गृह में विवाहादि मांगलिक कार्य, पुत्र-पौत्रादि का जन्म, सेनानायक, घर में शुभ चिन्तक मित्र का समागम, गौ आदि पशुओं की वृद्धि एवं नष्ट राज्य या धन की पुनः प्राप्ति होती है ।।७९-८२।।

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे वा व्ययराशिगे ।।८३।।
आत्मबन्धुजनद्वेषं दारवर्गादिपीडनम्।
व्यवसायात्फलं नष्टं गोमहिष्यादिहानिकृत् ।।८४।।
दारपुत्रादिपीडा वा आत्मबन्धुवियोगकृत् ।।८४½।।

यदि शुक्र ६, ८, १२ वें भाव में या स्वनीच राशिस्थ हो तो उसकी दशा में स्वबन्धु-बान्धवों में वैमनश्यता, पत्नी को पीड़ा, व्यवसाय में हानि, गाय, भैंस आदि पशुओं से हानि, स्त्री-पुत्रादि या अपने बन्धु-बान्धवों का विछोह होता है ।।८३-८४½।।

भाग्यकर्माधिपत्येन लग्नवाहनराशिगे ॥८५॥
तद्दशायां महत्सौख्यं देशग्रामाधिपालता ।
देवालय-तडागादि-पुण्यकर्मसु संग्रहः ॥८६॥
अन्नदाने महत्सौख्यं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
उत्साहः कीर्तिसम्पत्ती स्त्रीपुत्रधनसम्पदः ॥८७॥

यदि शुक्र भाग्येश या कर्मेश होकर लग्न या चतुर्थ स्थान में बैठा हो तो उसकी दशा में महत् सौख्य, देश या ग्राम का पालक, देवालय-जलाशयादि का निर्माण, पुण्य कर्मों का संग्रह, अन्नदान, सदैव सुमधुर भोजन की प्राप्ति, उत्साह, यश एवं स्त्री-पुत्र आदि से सुखानुभति होती है ॥८५-८७॥

स्वभुक्तौ फलमेवं स्याद् बलान्यन्यानि भुक्तिषु ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ॥८८॥
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रं वा त्र्यम्बकं जपेत् ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादारोग्यं च ततो भवेत् ॥८९॥

जिस प्रकार महादशा का फल निरूपण किया गया, उसी प्रकार अन्तर्दशा के फल भी होते हैं। यदि शुक्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी महादशा में देह में पीड़ा होती है। उसके दोष-निवारण हेतु रुद्री पाठ या महामृत्युञ्जय के जप आदि धार्मिक कृत्य करके सफेद गौ या भैंस का दान करना चाहिए। ऐसा करने से जातक रोगमुक्त हो जाता है ॥८८-८९॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां दशाफलाध्यायः ॥४९॥

अथ विशेषनक्षत्रदशाफलाध्यायः ॥५०॥

पराशर उवाच

स्थानस्थितिवशेनैवं फलं प्रोक्तं पुरातनैः ।
मिथो भावेशसम्बन्धात् फलानि कथयाम्यहम् ॥१॥

स्थान एवं स्थितिवशात् दशाधिकारी ग्रह अपने उच्च, स्व-वर्गादि भाव में शुभ फल एवं नीचादि भाव में रहने से अशुभ फल प्रदान करते हैं, ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है; अब मैं भावेशों के आपसी सम्बन्धों से होने वाले दशाफल को कहता हूँ ॥१॥

लग्नेशस्य दशाकाले सत्कीर्तिर्देहजं सुखम् ।
धनेशस्य दशायां तु क्लेशो वा मृत्युतो भयम् ॥२॥
सहजेशदशाकाले ज्ञेयं पापफलं नृणाम् ।
सुखाधीशदशायां तु गृहभूमिसुखं भवेत् ॥३॥
पञ्चमेशस्य पाके च विद्याप्तिः पुत्रजं सुखम् ।
रोगेशस्य दशाकाले देहपीडा रिपोर्भयम् ॥४॥

लग्नेश के दशाकाल में सुयश और शारीरिक सुख, धनेश की दशा में क्लेश या मृत्युभय, तृतीयेश की दशा अशुभकारक, चतुर्थेश की दशा में गृह-भूमि-सुख की प्राप्ति, पञ्चमेश की दशा में विद्या की प्राप्ति और पुत्रजन्य सुख एवं षष्ठेश की दशा में शारीरिक कष्ट और शत्रुभय का आभास होता है ॥२-४॥

सप्तमेशस्य पाके तु स्त्रीपीडा मृत्युतो भयम् ।
अष्टमेशदशाकाले मृत्युभीतिर्धनक्षतिः ॥५॥
धर्मेशस्य दशायां च भूरिलाभो यशःसुखम् ।
दशमेशदशाकाले सम्मानं नृपसंसदि ॥६॥
लाभेशस्य दशाकाले लाभे बाधा रुजोभयम् ।
व्ययेशस्य दशा नृणां बहुकष्टप्रदा द्विज ! ॥७॥
दशारम्भे शुभस्थाने स्थितस्यापि शुभं फलम् ।
अशुभस्थानगस्यैवं शुभस्यापि न शोभनम् ॥८॥

सप्तमेश की दशा में पत्नी को कष्ट और मृत्युभय, अष्टमेश की दशा में मरण की आशंका और धननाश, नवमेश की दशा में अधिक लाभ, यश और सुख, दशमेश की दशा में राजसभा में सम्मान, एकादशेश की दशा में लाभ में अवरोध, रोगभय एवं द्वादशेश की दशा जातक को बहुत कष्टदायक होती है। दशेश शुभ स्थान (केन्द्र-त्रिकोणादि) में

स्थित हो तो दशाफल शुभ एवं अशुभ स्थान (६, ८ आदि) में हो तो दशेश शुभ ग्रह होने पर भी अशुभ फल देने वाले होते हैं ॥५-८॥

पञ्चमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्य दशा शुभा ।
नवमेशेन युक्तस्य कर्मेशस्यातिशोभना ॥९॥
पञ्चमेशेन युक्तस्य ग्रहस्यापि दशा शुभा ।
तथा धर्मपयुक्तस्य दशा परमशोभना ॥१०॥
सुखेशसहितस्यापि धर्मेशस्य दशा शुभा ।
पञ्चमस्थानगस्यापि मानेशस्य दशा शुभा ॥११॥
एवं त्रिकोणनाथानां केन्द्रस्थानां दशाः शुभाः ।
तथा कोणस्थितानां च केन्द्रेशानां दशाः शुभाः ॥१२॥
केन्द्रेशः कोणभावस्थः कोणेशः केन्द्रगो यदि ।
तयोर्दशां शुभां प्राहुर्ज्योतिःशास्त्रविदो जनाः ॥१३॥

पञ्चमेश से युत कर्मेश की दशा शुभ फलदायक होती है, नवमेश से युत कर्मेश की दशा अत्यन्त शुभ फलकारक होती है । अन्य ग्रह भी पञ्चमेश से युत हों तो उन ग्रहों की दशा भी शुभकारक होती है तथा धर्मेश से युत ग्रह की दशा परम शुभकारक होती है । धर्मेश चतुर्थेश से युत हो तो उसकी दशा भी शुभकारक होती है । दशमेश यदि पञ्चम स्थान में हो तो भी उसकी दशा शुभकारक होती है । इसी प्रकार केन्द्रेश कोणस्थान में हो या केन्द्रेश कोण में और कोणेश केन्द्र में हो तो उनकी दशा भी शुभ फलकारक होती है, ऐसा ज्योतिषशास्त्र के मर्मज्ञ जन कहते हैं ॥९-१३॥

षष्ठाष्टमव्ययाधीशा अपि कोणेशसंयुता ।
तेषां दशाऽपि शुभदा कथिता कालकोविदैः ॥१४॥
कोणेशो यदि केन्द्रस्थः केन्द्रेशो यदि कोणगः ।
ताभ्यां युक्तस्य खेटस्य दृष्टियुक्तस्य चैतयोः ॥१५॥
दशां शुभप्रदां प्राहुर्विद्वांसो दैवचिन्तकाः ।
लग्नेशो धर्मभावस्थो धर्मेशो लग्नगो यदि ॥१६॥
एतयोस्तु दशाकाले सुखधर्मसमुद्भवः ।
कर्मेशो लग्नराशिस्थो लग्नेशः कर्मभावगः ॥१७॥
तयोर्दशाविपाके तु राज्यलाभो भवेद् ध्रुवम् ॥१७½॥

६, ८, १२ भावों के अधिपति भी कोणेश से युत हों तो उनकी दशा भी शुभ फल देने वाली होती है । कोणेश यदि केन्द्र में हों और केन्द्रेश कोणस्थान में हों तो उन केन्द्रेश और कोणेश से युत ग्रहों की दशा भी शुभ फलप्रद होती है और उन दोनों की दृष्टियुत ग्रहों की दशा भी शुभ फल प्रदान करने वाली होती है । लग्नेश धर्मभाव में और धर्मेश लग्न

में हो तो दोनों के दशाकाल में जातक को सुख और धर्म की वृद्धि होती है। कर्मेश लग्न में और लग्नेश कर्मभाव में हो तो उन दोनों के दशाकाल में जातक को राज्य का लाभ होता है ॥१४-१७½॥

त्रिषडायगतानां च त्रिषडायाधिपैर्युजाम् ॥१८॥
शुभानामपि खेटानां दशा पापफलप्रदा।
मारकस्थानगानां च मारकेशयुजामपि ॥१९॥
रन्ध्रस्थानगतानां च दशाऽनिष्टफलप्रदा।
एवं भावेशसम्बन्धादूहनीयं दशाफलम् ॥२०॥

३, ६, ११ स्थानों में बैठे ग्रहों या इनके स्वामियों से युत या दृष्ट शुभ ग्रहों की दशा भी अशुभ फलप्रद होती है। मारक स्थानगत ग्रह या मारकेश से युत ग्रह, अष्टम स्थान में स्थित ग्रह या अष्टमेश से युत-दृष्ट शुभ ग्रहों की दशा भी अशुभ फलदायक होती है। इस प्रकार भावेश और स्थानेश के परस्पर सम्बन्ध, दृष्टि, युति आदि के तारतम्य से शुभ या अशुभ फल का विवेचन करना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि त्रिकोणेश और केन्द्रेश के परस्पर सम्बन्धयुत, दृष्ट आदि रहने पर जातक को शुभ फल एवं त्रिषडाय और मारकेश-अष्टमेश के परस्पर युत-दृष्ट आदि रहने पर अशुभ फल की प्राप्ति होती है ॥१८-२०॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां विशेषनक्षत्रदशाफलाध्यायः ॥५०॥

अथ कालचक्रदशाफलाध्यायः ॥५१॥

पराशर उवाच

कथयाम्यथ विप्रेन्द्र ! कालचक्रदशाफलम् ।
तत्रादौ राशिनाथानां सूर्यादीनां फलं ब्रुवे ॥१॥
रक्तपित्तादितो व्याधिं नृणामर्कफलं वदेत् ।
धन-कीर्ति-प्रजावृद्धि-वस्त्राभरणदः शशी ॥२॥
ज्वरमाशु दिशेत् पैत्यं ग्रन्थिस्फोटं कुजस्तथा ।
प्रजानां च धनानां च सदा वृद्धिं बुधो दिशेत् ॥३॥
धनं कीर्तिं प्रजावृद्धिं नानाभोगं बृहस्पतिः ।
विद्यावृद्धिर्विवाहश्च गृहं धान्यं भृगोः फलम् ॥४॥
तापाधिक्यं महद्‌दुःखं बन्धुनाशः शनेः फलम् ।
एवमर्कादियोगेन वदेद्राशिदशाफलम् ॥५॥

पराशर ने कहा कि हे द्विज ! अब मैं कालचक्रदशा का फल कहता हूँ। इसमें पहले राशियों के अधिपति या जिस राशि पर सूर्य हो उसकी दशा में जातक को रक्तसम्बन्धी या पित्तसम्बन्धी रोग होता है। चन्द्रमा हो तो उस राशि की दशा में धन, यश, सन्तान, वस्त्र, आभूषण की वृद्धि होती है। मंगलनिष्ठ राशि की दशा में ज्वर, पित्त, गठिया, फोड़ा या घाव से सम्बन्धित व्याधि का रोग होता है। बुधनिष्ठ राशि की दशा में सन्तान, धन आदि की सदा वृद्धि होती है। गुरुनिष्ठ राशि की दशा में धन, यश, सन्तान एवं विभिन्न प्रकार के भोग की प्राप्ति होती है। शुक्र हो तो विद्या में वृद्धि, विवाह, गृह और धान्य की वृद्धि होती है एवं शनि हो तो अधिक चिन्ता, महान् दुःख और बन्धु का नाश होता है। इस प्रकार सूर्यादि ग्रहनिष्ठ राशियों की दशा का फल जानना चाहिए ॥१-५॥

प्रति राशि का नवमांशानुसार दशाफल

मेषे तु रक्तपीडा च वृषभे धान्यवर्द्धनम् ।
मिथुने ज्ञानसम्पन्नश्चान्द्रे धनपतिर्भवेत् ॥६॥
सूर्यर्क्षे शत्रुबाधा च कन्या स्त्रीणां च नाशनम् ।
तौलिके राजमन्त्रित्वं वृश्चिके मरणं भवेत् ॥७॥
अर्थलाभो भवेच्चापे मेषस्य नवभागके ॥७½॥

मेष राशि की मेष के ही नवमांश में कालचक्रदशा हो तो रक्तपीड़ा, वृष के नवमांश में धन-धान्य की वृद्धि, मिथुन में ज्ञानयुति, कर्क के नवमांश में धनाधीश, सिंह के नवमांश में शत्रुपीड़ा, कन्या में स्त्री का विनाश, तुला में राजा का मन्त्री, वृश्चिक में मरण एवं धन के नवमांश में कालचक्रदशा हो तो अर्थ का लाभ होता है ॥६-७॥

वृषनवमांश राशि दशाफल

मकरे पापकर्माणि कुम्भे वाणिज्यमेव च ॥८॥
मीने सर्वार्थसिद्धिश्च वृश्चिकेष्वग्नितो भयम्।
तौलिके राजपूज्यश्च कन्यायां शत्रुवर्धनम् ॥९॥
शशिभे दारसम्बाधा सिंहे च त्वक्षिरोगकृत्।
मिथुने वृत्तिबाधा स्याद् वृषभस्य नवांशके ॥१०॥

वृष राशि में मकर के नवमांश में कालचक्रदशा हो तो पापकार्य (अशोभनीय कार्य) में प्रवृत्ति, कुम्भनवमांश दशा में वाणिज्य-(व्यापार)-लाभ, मीन में सभी कार्यों में सफलता, वृश्चिक में अग्निभय, तुला में राजमान्य, कन्या में शत्रुवृद्धि, कर्क की दशा में पत्नी को कष्ट, सिंह में आँख में रोग एवं मिथुन में व्यवसाय में अड़चन होता है ॥८-१०॥

मिथुनगत नवांश राशियों के दशाफल

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषे तु ज्वररोगकृत्।
मीने तु मातुलप्रीतिः कुम्भे शत्रुप्रवर्द्धनम् ॥११॥
मृगे चौरस्य सम्बाधा धनुषि शस्त्रवर्धनम्।
मेषे तु शस्त्रसंघातो वृषभे कलहो भवेत् ॥१२॥
मिथुने सुखमाप्नोति मिथुनस्य नवांशके ॥१२½॥

मिथुनगत वृष की नवमांश दशा में धनलाभ, मेष में ज्वरपीड़ा, मीन में मामा से प्रीति, कुम्भ में शत्रु की वृद्धि, मकर में चौर-बाधा, धनु में शस्त्रवृद्धि, मेष में शस्त्र से भय, वृष में कलह और मिथुन की दशा में सुख की प्राप्ति होती है ॥११-१२॥

कर्कगत नवमांश राशियों के दशाफल

कर्कटे सङ्कटप्राप्तिः सिंहे राजप्रकोपकृत् ॥१३॥
कन्यायां भ्रातृपूजा च तौलिके प्रियकृन्नरः।
वृश्चिके पितृबाधा स्यात् चापे ज्ञानधनोदयः ॥१४॥
मकरे जलभीतिः स्यात् कुम्भे धान्यविवर्धनम्।
मीने च सुखसम्पत्तिः कर्कटस्य नवांशके ॥१५॥

कर्कटगत कर्क की नवमांश-दशा में संकट, सिंह में राजक्रोध, कन्या में भाईयों का आदर, तुला में दूसरे का उपकार, वृश्चिक में पितृबाधा, धनु में ज्ञान और धन का अभ्युदय, मकर में जल से भय, कुम्भ में धान्यवृद्धि एवं मीन में सुख और सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥१३-१५॥

सिंहगत राशियों के दशाफल

वृश्चिके कलहः पीडा तौलिके ह्यधिकं फलम्।
कन्यायामतिलाभश्च शशांके मृगबाधिका ॥१६॥

सिंहे च पुत्रलाभश्च मिथुने शत्रुवर्द्धनम्।
वृषे चतुष्पदाल्लाभो मेषांशे पशुतो भयम्।
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात् सिंहस्य नवभागके ॥१७॥

सिंह राशिगत वृश्चिक के नवमांश में कालचक्रदशा हो तो कलह और पीड़ा, तुला में अधिक लाभ, कन्या में विशेष लाभ, कर्क में मृगादिन्य जन्तुओं से बाधा, सिंह में पुत्रलाभ, मिथुन में शत्रुवृद्धि, वृष में गौ आदि चतुष्पदों से लाभ, मेष में पशुओं से भय और मीन में लम्बी यात्रा होती है ॥१६-१७॥

कन्यागत नवांश राशियों के दशाफल

कुम्भे तु धनलाभश्च मकरे द्रव्यलाभकृत्।
धनुषि भ्रातृसंसर्गो मेषे मातृविवर्द्धनम् ॥१८॥
वृषभे पुत्रवृद्धिः स्यान्मिथुने शत्रुवर्द्धनम्।
शशिभे तु स्त्रियां प्रीतिः सिंहे व्याधिविवर्द्धनम् ॥१९॥
कन्यायां पुत्रवृद्धिः स्यात्कन्याया नवमांशके ॥१९½॥

कन्यागत नवमांश में कुम्भ की दशा हो तो धनलाभ, मकर में भी धनलाभ, धनु में भाइयों का संसर्ग, मेष में माता का सुख, वृष में सन्तानवृद्धि, मिथुन में शत्रुवृद्धि, कर्कट में स्त्री से प्रीति, सिंह में रोगाधिक्य और कन्या में पुत्र की प्राप्ति होती है ॥१८-१९½॥

तुलागत नवमांश राशियों के दशाफल

तुलायामर्थलाभश्च वृश्चिके भ्रातृवर्द्धनम् ॥२०॥
चापे च तातसौख्यं च मृगे मातृविरोधिता।
कुम्भे पुत्रार्थलाभश्च मीने शत्रुविरोधिता ॥२१॥
अलौ जायाविरोधश्च तुले च जलबाधता।
कन्यायां धनवृद्धिः स्यात् तुलाया नवभागके ॥२२॥

तुला में तुला के ही नवमांश में कालचक्रदशा हो तो धनलाभ, वृश्चिक में भाइयों की वृद्धि, धनु में पितृसुख, मकर में मातृविरोध, कुम्भ में पुत्र एवं धन का लाभ, मीन में शत्रु से विरोध, वृश्चिक में पत्नी से विरोध, तुला में जल से भय एवं कन्या में धनागम होता है ॥२०-२२॥

वृश्चिकगत नवमांश राशियों के दशाफल

कर्कटे ह्यर्थनाशश्च सिंहे राजविरोधिता।
मिथुने भूमिलाभश्च वृषभे चाऽर्थलाभकृत् ॥२३॥
मेषे सर्पादिभीतिः स्यान्मीने चैव जलाद् भयम्।
कुम्भे व्यापारतो लाभो मकरेऽपि रुजोभयम् ॥२४॥

चापे तु धनलाभः स्यात् वृश्चिकस्य नवांशके ॥२४½॥

वृश्चिकगत कर्कट की नवमांश में कालचक्रदशा हो तो धननाश, सिंह में राजा से वैमनश्यता, मिथुन में भूमिलाभ, वृष में अर्थलाभ, मेष में सर्पभय, मीन में जलभय, कुम्भ में व्यापार से लाभ, मकर में रोगभय और धनु में धनलाभ होता है ॥२३-२४½॥

धनुराशिगत नवमांश राशियों के दशाफल

मेषे तु धनलाभः स्यात् वृषे भूमिविवर्द्धनम् ॥२५॥
मिथुने सर्वार्थसिद्धिः स्यात्कर्कटे सर्वसिद्धिकृत् ।
सिंहे तु पूर्ववृद्धिः स्यात्कन्यायां कलहो भवेत् ॥२६॥
तौलिके चार्थलाभः स्यात् वृश्चिके रोगमाप्नुयात् ।
चापे तु सुतवृद्धिः स्याच्चापस्य नवमांशके ॥२७॥

धनुगत मेष राशि के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धनलाभ, वृष में भूमि की प्राप्ति, मिथुन में सर्वसिद्धि, कर्कट में सभी कार्य सफल, सिंह में पूर्वागत धन की वृद्धि, कन्या में कलह, तुला में अर्थलाभ, वृश्चिक में रोगप्राप्ति एवं धनु में पुत्रवृद्धि होती है ॥२५-२७॥

मकरगत नवमांश राशियों के दशाफल

मकरे पुत्रलाभः स्यात्कुम्भे धान्यविवर्द्धनम् ।
मीने कल्याणमाप्नोति वृश्चिके विषबाधिता ॥२८॥
तौलिके त्वर्थलाभश्च कन्यायां शत्रुवर्द्धनम् ।
शशिभे श्रियमाप्नोति सिंहे तु मृगबाधिता ॥२९॥
मिथुने वृक्षबाधा च मृगस्य नवभागके ॥२९½॥

मकरगत मकर के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो पुत्रलाभ, कुम्भ में धान्यवृद्धि, मीन में कल्याणप्राप्ति, वृश्चिक में विषभय, तुला में अर्थलाभ, कन्या में शत्रुवृद्धि, कर्क में लक्ष्मी की प्राप्ति, सिंह में वन्य जन्तुओं का भय एवं मिथुन में वृक्षों से गिरने का भय होता है ॥२८-२९½॥

कुम्भगत नवमांश राशियों के फल

वृषभे त्वर्थलाभश्च मेषभे त्वक्षिरोगकृत् ॥३०॥
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात्कुम्भे धनविवर्द्धनम् ।
मकरे सर्वसिद्धिः स्याच्चापे शत्रुविवर्द्धनम् ॥३१॥
मेषे सौख्यविनाशश्च वृषभे मरणं भवेत् ।
युग्मे कल्याणमाप्नोति कुम्भस्य नवमांशके ॥३२॥

कुम्भ राशि में वृष के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धन-वृद्धि, मेष में नेत्र में रोग, मीन में लम्बी यात्रा, कुम्भ में धन-धान्य की वृद्धि, मकर में सभी कार्यों की सिद्धि,

धन में शत्रुवृद्धि, मेष में सुख का विनाश, वृष में मरण एवं मिथुन में कल्याण की प्राप्ति होती है ॥३०-३२॥

मीनगत नवमांश राशियों के दशाफल

कर्कटे धनवृद्धिः स्यात् सिंहे तु राजपूजनम्।
कन्यायामर्थलाभस्तु तुलायां लाभमाप्नुयात् ॥३३॥
वृश्चिके ज्वरमाप्नोति चापे शत्रुविवर्द्धनम्।
मृगे जायाविरोधश्च कुम्भे जलविरोधिता ॥३४॥
मीने तु सर्वसौभाग्यं मीनस्य नवभागके ॥३४½॥

मीन राशि में कर्कट के नवमांश में कालचक्र दशा हो तो धनवृद्धि, सिंह में राजा से पूजन, कन्या में धनलाभ, तुला में अपने व्यवसाय से लाभ, वृश्चिक में ज्वरपीड़ा, धन में शत्रुवृद्धि, मकर में पत्नी से वैमनश्यता, कुम्भ में जल से भय और मीन में सब तरह से सौभाग्य की प्राप्ति होती है ॥३३-३४½॥

दशा-अंशक्रमेणैवं ज्ञात्वा सर्वफलं वदेत् ॥३५॥
क्रूरग्रहदशाकाले शान्तिं कुर्याद्विचक्षणः ॥३५½॥

इस प्रकार जन्मसमय के नक्षत्र के चरणानुसार कालचक्र दशा से नवमांश राशियों के दशाफल जानकर सभी फलों को ज्ञात करना चाहिए। क्रूर राशियों के दशासमय में विद्वानों को शान्ति करनी चाहिए ॥३५½॥

यत्प्रोक्तं राजयोगादौ संज्ञाध्याये च यत् फलम् ॥३६॥
तत्सर्वं चक्रकाले हि सुबुद्ध्या योजयेद् बुधः।
इति संक्षेपतः प्रोक्तं कालचक्रदशाफलम् ॥३७॥

राजयोगाध्याय में जो राजयोग कहे गये हैं और संज्ञाध्याय में जो शुभाशुभ फल कहा गया है, उन सभी योगों का इस कालचक्र दशा या अन्तर दशा में स्व-बुद्धि के अनुरूप योग करके बताना चाहिए। इस प्रकार संक्षिप्त रूप में कालचक्र दशाफल कहा गया है ॥३६-३७॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कालचक्रदशाफलाध्यायः ॥५१॥

अथ चरादिदशाफलाध्याय: ॥५२॥

पराशर उवाच

चर-स्थिरादि-संज्ञा या दशाः प्रोक्ताः पुरा द्विज ! ।
शुभाऽशुभफलं तासां कथयामि तवाऽग्रतः ॥१॥
लग्नादि-द्वादशान्तानां भावानां फलकीर्तने ।
तत्तद्राशीशवीर्येण यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥२॥
बलयुक्ते च राशीशे पूर्णं तस्य तदा फलम् ।
फलं मध्यबले मध्यं बलहीने विपर्ययः ॥३॥

पराशर ने कहा कि हे द्विज ! पहले मैंने आपके समक्ष जो चर-स्थिर-द्विस्वभाव दशा का वर्णन किया था, अब उनके शुभ और अशुभ फलों को कहता हूँ। लग्न से द्वादशान्त भावों के शुभाशुभ फल जानने के लिए राशिस्वामी के बल एवं शुभत्व और अशुभत्व के अनुरूप स्व-बुद्धि-विवेकानुसार फल-निर्धारण करना चाहिए। राशीश के पूर्ण बली होने पर पूर्ण फल, मध्य बली रहने पर मध्यम फल और स्वल्प बली राशीश हो तो अल्प फल जानना चाहिए ॥१-३॥

यो यो दशाप्रदो राशिस्तस्य रन्ध्रत्रिकोणके ।
पापखेटयुते विप्रः तद्दशा दुःखदायिका ॥४॥
तृतीयषष्ठगे पापे जयादिः परिकीर्तितः ।
शुभखेटयुते तत्र जायते च पराजयः ॥५॥
लाभस्थे च शुभे पापे लाभो भवति निश्चितः ।
यदा दशाप्रदो राशिः शुभखेटयुतो द्विज ! ॥६॥
शुभक्षेत्रे हि तद्राशेः शुभं ज्ञेयं दशाफलम् ।
पापयुक्ते शुभक्षेत्रे पूर्वं शुभमसत्परे ॥७॥
पापर्क्षे शुभसंयुक्ते पूर्वं सौख्यं ततोऽशुभम् ।
पापक्षेत्रे पापयुक्ते सा दशा सर्वदुःखदा ॥८॥
शुभक्षेत्रे दशा राशौ युक्ते पापशुभैर्द्विज ! ।
शुभर्क्षे शुभसंयुक्ते पूर्वं सौख्यं ततोऽयशुभम् ॥९॥
पूर्वं कष्टं सुखं पश्चान्निर्विशङ्कं प्रजायते ।
शुभक्षेत्रे शुभं वाच्यं पापर्क्षे त्वशुभं फलम् ॥१०॥

जो दशाप्रद राशियाँ ८, ९, ५ स्थानों में पाप ग्रह से युत हों तो उनकी दशा दु:खदायिका होती है। दशाप्रद राशि से ३, ६ में पाप ग्रह के युत रहने पर उसकी दशा

में जय होता है एवं यदि शुभ ग्रह युत हो तो पराजय होती है। दशाप्रद राशि से एकादश भाव में शुभ ग्रह या पाप ग्रह की राशि हो तो उसका दशाफल शुभदायक होता है। यदि दशाप्रद राशि शुभ ग्रह की राशि हो और पाप ग्रह से युत हो तो दशारम्भ में शुभ और अन्त में अशुभ फलदायक होता है। पाप ग्रह की राशि हो और शुभ ग्रह से युत हो तो पूर्व में सौख्य और पश्चात् अशुभ फलकारक होता है। दशाप्रद राशि पाप ग्रह का गृह हो और पाप ग्रह से युत हो तो सर्वदा दुःखकारक होता है। शुभ ग्रह की राशि हो और शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो सदा सुख, यदि शुभ ग्रह की राशि हो और शुभ, पाप ग्रह हों तो पूर्व में कष्ट और उसके बाद सुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार शुभ ग्रह के क्षेत्र में शुभ और अशुभ ग्रह के क्षेत्र में अशुभ फल स्व-बुद्धि-विवेकानुसार जानना चाहिए ॥४-१०॥

द्वितीये पञ्चमे सौम्ये राजप्रीतिर्जयो ध्रुवम्।
पापे तत्र गते ज्ञेयमशुभं तद्दशाफलम् ॥११॥
चतुर्थे तु शुभं सौख्यमारोग्यं त्वष्टभे शुभे।
धर्मवृद्धिर्गुरुजनात्सौख्यं च नवमे शुभे ॥१२॥
विपरीते विपर्यासो मिश्रे मिश्रं प्रकीर्तितम्।
पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा ॥१३॥
सप्तमे पापभोगाभ्यां पापे दारार्तिरीरिता।
चतुर्थे स्थानहानिः स्यात्पञ्चमे पुत्रपीडनम् ॥१४॥
दशमे कीर्तिहानिः स्यान्नवमे पितृपीडनम्।
पाकाद्रुद्रगते पापे पीडा सर्वाप्यबाधिका ॥१५॥
उक्तस्थानगते सौम्ये ततः सौख्यं विनिर्दिशेत्।
केन्द्रस्थानगते सौम्ये लाभः शत्रुजयप्रदः ॥१६॥
जन्मकालग्रहस्थित्या सगोचरग्रहैरपि।
विचारितैः प्रवक्तव्यं तत्तद्राशिदशाफलम् ॥१७॥

दशाप्रद राशि से २, ५ भाव में बुध हो तो राजा से प्रेम और जय होता है; लेकिन वहाँ पर पाप ग्रह बैठे हों तो अशुभ फलकारक होता है। चतुर्थ भाव में शुभ ग्रह हो तो सुख, अष्टम में शुभ हो तो नीरोग, नवम में शुभ ग्रह हो तो धर्म में वृद्धि और गुरुजनों से सौख्य होता है। यदि विपरीत ग्रह बैठे हों तो विपरीत फल, मिश्रित ग्रह बैठे हों तो मिश्रित फल, पाप ग्रह युत हो तो देहपीड़ा एवं मानसिक रोग, सप्तम में पापयोग और पाप ग्रह बैठे हों तो पत्नी से विरोध, चतुर्थ में स्थाननाश, पञ्चम में पुत्रपीड़ा, दशम में यश की हीनता, नवम में पितृकष्ट एवं पाप से ११ में पाप ग्रह हो तो पीड़ा और सभी कार्यों में रुकावटें आती है। यदि उक्त भाव में शुभ ग्रह स्थित हो तो सुख कहना चाहिए। केन्द्रभाव में शुभ ग्रह हो तो लाभ और विजय होता है। जन्मकालिक राशि जैसी हो और दशा के आरम्भ काल में राशि में गोचर की जैसी स्थिति हो, उन दोनों के तारतम्य से विचार कर अपने विवेकानुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिए ॥११-१७॥

यश्च राशिः शुभाक्रान्तो यस्य पश्चाच्छुभग्रहाः ।
तद्दशा शुभदा प्रोक्ता विपरीते विपर्ययः ॥१८॥
त्रिकोणरन्ध्ररिष्फस्थैः शुभपापैः शुभाऽशुभम् ।
तद्दशायां च वक्तव्यं फलं दैवविदा सदा ॥१९॥

जो राशि शुभ ग्रहनिष्ठ हो और जिसके पिछले भाव में शुभ ग्रह हो तो उसकी दशा शुभ फलदायक और पाप ग्रह से युत रहने पर अशुभ फलदायक जाननी चाहिए । त्रिकोण, अष्टम एवं द्वादश में शुभ ग्रह हो तो शुभ और पाप ग्रह हो तो अशुभ फल कहना चाहिए ॥१८-१९॥

मेषकर्कतुलानक्रराशीनां च यथाक्रमम् ।
बाधा स्थानानि सम्प्रोक्ता कुम्भगोसिंहवृश्चिकाः ॥२०॥
पाकेशाक्रान्तराशौ वा बाधास्थाने शुभेतरे ।
स्थिते सति महाशोको बन्धनव्यसनामयाः ॥२१॥

मेष, कर्क, तुला एवं मीन राशियों के क्रम से कुम्भ, वृष, सिंह एवं वृश्चिक राशियाँ बाधास्थान कही गयी हैं अर्थात् अपनी राशि से एकादश स्थान बाधास्थान होता है । दशाप्रद राशीश जिस भाव में हो उसमें या अपने बाधास्थान में पाप ग्रह हो तो उस राशि की दशा में महाशोक, बन्धन, व्यसन, रोग आदि का भय रहता है ॥२०-२१॥

उच्चस्वर्क्षग्रहे तस्मिञ्छुभं सौख्यं धनागमः ।
तच्छून्यं चेदसौख्यं स्यात्तद्दशा न फलप्रदा ॥२२॥

जिस राशि में अपने उच्च या स्वगृही का ग्रह हो उस राशि की दशा धन का लाभ कराने वाली, सुख देने वाली और शुभकारक होती है तथा जिस राशि में ग्रह शून्य हों उस राशि की दशा सुखरहित एवं अशुभकारक होती है ॥२२॥

बाधकव्ययषड्रन्ध्रे राहुयुक्ते महद्भयम् ।
प्रस्थाने बन्धनप्राप्ती राजपीडा रिपोर्भयम् ॥२३॥
रव्याारराहुशनयो भुक्तिराशी स्थिता यदि ।
तद्राशिभुक्तौ पतनं राजकोपान् महद्भयम् ॥२४॥
भुक्तिराशित्रिकोणे तु नीचखेटः स्थितो यदि ।
तद्राशौ वा युते नीचे पापे मृत्युभयं वदेत् ॥२५॥

जिस राशि से बाधक स्थान १२, ६, ८ भाव में हो और उसमें राहु युक्त हो तो ऐसी राशि की दशा या अन्तर्दशा में महाभय, यात्रा में बन्धन, राजा से पीड़ा और शत्रु का भय होता है । यदि सूर्य, मंगल, राहु एवं शनि हो तो उस राशि की अन्तर्दशा में राजभय से पतन एवं महाभय की प्राप्ति होती है, त्रिकोण में नीच ग्रह हो या अन्तर्दशा राशि में नीच या पाप ग्रह युत हो तो जातक को मृत्यु का भय कहना चाहिए ॥२३-२५॥

भुक्तराशौ स्वतुङ्गस्थे त्रिकोणे वापि खेचरे।
यदा भुक्तिदशा प्राप्ता तदा सौख्यं लभेन्नरः ॥२६॥
नगरग्रामनाथत्वं पुत्रलाभं धनागमम्।
कल्याणं भूरिभाग्यं च सेनापत्यं महोन्नतम् ॥२७॥
पाकेश्वरी जीवदृष्टः शुभराशिस्थितो यदि।
तद्दशायां धनप्राप्तिर्मङ्गलं पुत्रसम्भवम् ॥२८॥

अन्तर्दशा राशि में या उससे नवम, पञ्चम में अपने उच्च का ग्रह हो तो ऐसी राशि के अन्तर्दशा-समय में जातक को सुख की प्राप्ति, नगर या गाँव का आधिपत्य, सन्तानोत्पत्ति, धनागम, कल्याण, अधिक भाग्योदय, सेनानायकत्व एवं सभी प्रकार से उन्नति होती है। दशा का अधिपति शुभ राशि में हो और गुरु से दृष्ट हो तो उसकी दशा में जातक को धनागम, मांगलिक कार्य और पुत्र की प्राप्ति होती है ॥२६-२८॥

सितासितभयुग्माश्च सूर्यस्य रिपुराशयः।
कौर्पितौलिघटाश्चेन्दोर्भौमस्य रिपुराशयः ॥२९॥
घटमीननृयुक्तौलिकन्या ज्ञस्य ततः परम्।
कर्कमीनालिकुम्भाश्च राशयो रिपवः स्मृताः ॥३०॥
वृषतौलिनृयुक्कन्याराशयो रिपवो गुरोः।
सिंहालिकर्कचापाश्च शुक्रस्य रिपुराशयः ॥३१॥
मेषसिंहधनुःकौर्पिकर्कटाः शनिशत्रवः।
एवं ग्रहान्तरदशां चिन्तयेत् कोविदो द्विज! ॥३२॥

शुक्र की राशि वृष, तुला, शनि की राशि मकर और कुम्भ तथा मिथुन—ये सूर्य की शत्रु राशियाँ हैं। कर्क, तुला, कुम्भ—ये चन्द्रमा की शत्रु राशियाँ हैं। इसी प्रकार कुम्भ, मीन, मिथुन, तुला और कन्या मंगल की; कर्क, मीन, वृश्चिक एवं कुम्भ बुध की; वृष, तुला, मिथुन और कन्या गुरु की; सिंह, वृश्चिक, कर्क और धनु शुक्र की तथा मेष, सिंह, धनु और कर्क शनि की शत्रु राशियाँ हैं। इस प्रकार शत्रु राशियों में ग्रह के रहने पर उसकी दशा अशुभकारक होती है। अतः इसका विचार करके ही शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए ॥२९-३२॥

ये राजयोगदा ये च शुभमध्यगता ग्रहाः।
यस्माद्वा द्वित्रितुर्यस्थाः ग्रहाः शुभफलप्रदाः ॥३३॥
तद्दशायां शुभं ब्रूयाद्राजयोगादिसम्भवम्।
शुभद्वयान्तरगतः पापोऽपि शुभदः स्मृतः ॥३४॥

जो ग्रह या राशि राजयोगकारक हो और जो शुभ ग्रह के बीच में हो, जिससे २, ३, ४ स्थान में शुभ ग्रह हों उन ग्रहों की दशा राजयोगादि शुभफलकारक होती है। दो शुभ ग्रहों के मध्य में यदि पाप ग्रह हो तो वह पाप ग्रह भी शुभ फलदायक होता है ॥३३-३४॥

गता शुभदशामध्यं दशा सौम्यस्य शोभना।
शुभा यस्य त्रिकोणस्थ-तद्दशापि शुभप्रदा ॥३५॥
आरम्भान्तौ मित्रशुभराश्योर्यदि फलं शुभम्।
प्रतिराश्यैवमब्दाद्यं विभज्य तत्फलं वदेत् ॥३६॥

जिसकी दशा के प्रारम्भ में और अन्त में स्वमित्र या शुभ ग्रह का सम्बन्ध हो उसकी सम्पूर्ण दशा शुभप्रद होती है अर्थात् आदि और अन्त में शुभ ग्रह का सम्बन्ध होने पर नीच में अशुभग्रह का सम्बन्ध भी शुभ ही माना जाता है। साथ ही जिससे त्रिकोण (५।९) में शुभ ग्रह हो उसकी दशा भी शुभकारक होती है। इस प्रकार दशा के आरम्भ और अन्त की स्थिति देखकर ही दशा के शुभाशुभ की स्थिति का ज्ञान करना चाहिए ॥३५-३६॥

आरम्भात्तत्रिकोणे तु सौम्ये तु शुभमावहेत्।
शुभराशौ शुभारम्भे दशा स्यादतिशोभना ॥३७॥
शुभादिराशौ पापश्चेद्दशारम्भे शुभा स्मृता।
शुभारम्भे कथा केति प्रारम्भस्य फलं वदेत् ॥३८॥
आरम्भे पापराशौ वा यदीशो दुर्बलो द्विज!।
नीचादौ तद्दशाद्यन्ते वदेद् भाग्यविपर्ययम् ॥३९॥

दशारम्भ के समय में उससे त्रिकोण में यदि शुभ ग्रह बैठा हो तो उसकी दशा शुभ फल देने वाली होती है। शुभ राशि हो और शुभ राशि की दशा आरम्भ हो तो अत्यधिक शुभ फल देने वाली होती है। शुभ राशि में पाप ग्रह की दशा का आरम्भ हो तो भी शुभ फल प्राप्त होता है। शुभ राशि में शुभ ग्रह की ही दशा का आरम्भ हो तो कहना ही क्या है ? अत एव दशारम्भ काल देखकर ही शुभाशुभ फलादेश करना चाहिए। दशारम्भ में पाप राशि हो अथवा उस राशि का स्वामी नीच राशि का हो या दुर्बल हो तो उस राशि की दशा में भाग्य विपरीत हो जाता है ॥३७-३९॥

यत्र स्थितो नीचखेटस्त्रिकोणे वाऽथ नीचगः।
तथा राशीश्वरे नीचे सम्बन्धो नीचखेटकैः ॥४०॥
भाग्यस्य विपरीतत्वं करोत्येव द्विजोत्तम!।
धनधान्यादिहानिश्च देहे रोगभयं तथा ॥४१॥

जिस राशि की दशा आरम्भ हो, उसमें यदि नीचस्थ ग्रह हो या उस राशि से त्रिकोण में नीच ग्रह हो, अथवा राशि का स्वामी नीच में हो या नीच ग्रह से सम्बन्ध रखता हो तो उसकी दशा में भाग्य की विपरीतता, धन-धान्य की हानि एवं देह में रोग का भय होता है ॥४०-४१॥

राहोः केतोश्च कुम्भादि वृश्चिकादि चतुष्टयम्।
स्वभं तत्र समारम्भस्तद्दशायां शुभं भवेत् ॥४२॥

कुम्भ से चार राशि राहु का एवं वृश्चिक से चार राशि केतु का स्वगृह है। राहु और केतु स्वगृह में हो तो उसकी दशा शुभ फल प्रदान करने वाली होती है ॥४२॥

यद्दशायां शुभं ब्रूयात्स चेन्मारकसंस्थितः।
यस्मिन् राशौ दशान्तः स्यात्तस्मिन् दृष्टे युतेऽपि वा ॥४३॥
शुक्रेण विधुना वा स्याद्राजकोपाद् धनक्षयः।
दशान्तश्चेदरिक्षेत्रे राहदृष्टयुतेऽपि वा ॥४४॥
इदं फलं शनेः पाके न विचिन्त्यं द्विजोत्तम!।
दशाप्रदे नक्रराशौ न विचिन्त्यमिदं फलम् ॥४५॥

जिस ग्रह की दशा शुभ कही गयी है, वह ग्रह यदि मारक स्थान में बैठा हो या जिस राशि में दशा पूर्ण हो रही हो वह राशि शुक्र, चन्द्र से युत हो या दृष्ट हो तो उसकी दशा में राजा के क्रोध से धन का नाश होता है। शत्रुक्षेत्र में दशा का अन्त हो या राहु से दृष्ट या युत राशि में दशा समाप्त हो तो भी राजक्रोध से धननाश होता है। हे द्विजोत्तम! यह फल शनि की दशा में नहीं होता, साथ ही मकर राशि की दशा में भी नहीं होता है ॥४३-४५॥

राहोर्दशान्ते सर्वस्वनाशो मरणबन्धने।
देशान्निर्वासनं वा स्यात्कष्टं वा महदश्नुते ॥४६॥
तत्त्रिकोणगते पापे निश्चयाद्दुःखमादिशेत्।
एवं शुभाऽशुभं सर्वं निश्चयेन वदेद् बुधः ॥४७॥

राहु की दशा के अन्त में सभी वस्तुओं का नाश, मरण, पराधीनता, स्वदेश-त्याग और महान् कष्ट का भोग प्राप्त होता है। यदि उससे नवम, पञ्चम स्थान में पाप ग्रह बैठे हों तो उक्त फल निश्चय ही प्राप्त होता है। इस प्रकार सभी शुभाशुभ देखकर निश्चय करके ही पण्डितों को बताना चाहिए ॥४६-४७॥

राह्वाद्याश्रितराशिस्तु भवेद्यदि दशाप्रदः।
तत्र कालेऽपि पूर्वोक्तं चिन्तनीयं प्रयत्नतः ॥४८॥
दशारम्भो दशान्तो वा मारके चेन्न शोभनम्।
तस्मिन्नेव च राहुश्चेन्निरोधो द्रव्यनाशनः ॥४९॥

राहु आदि पाप ग्रहनिष्ठ राशियों के दशाफल भी पूर्वोक्त प्रकार से ही समझने चाहिए। दशा के आरम्भ और अन्त काल में मारक ग्रह का योग या सम्बन्ध रहने पर भी शुभ फल की प्राप्ति नहीं होती एवं उनमें भी यदि राहु का सम्बन्ध हो तो उस काल में बन्धन या धन का अपव्यय ही होता है ॥४८-४९॥

यत्र क्वापि च भे राहौ दशारम्भे विनाशनम्।
गृहभ्रंशः समुद्दिष्टो धने राहुर्धनार्तिकृत् ॥५०॥

चन्द्रशुक्रौ द्वादशे चेद्राजकोपो भवेद् ध्रुवम् ।
भौमकेतू तत्र यदि वधोऽग्नेर्महती व्यथा ॥५१॥
चन्द्रशुक्रौ धने विप्र! यदि राज्यं प्रयच्छतः ।
दशारम्भे दशान्ते च द्वितीयस्थमिदं फलम् ॥५२॥

दशा के प्रारम्भ समय में जिस किसी भी भाव में राहु बैठा हो, उस भाव की हानि और गृह का नाश कहा गया है, जैसे धनभाव में राहु हो तो धन का नाश, पुत्रभाव में हो तो पुत्र का नाश। इसी प्रकार अन्य भावों का भी जानना चाहिए। यदि चन्द्र-शुक्र द्वादश भाव में हो तो राजक्रोध से हानि होती है। यदि द्वादश में मंगल और केतु स्थित हो तो वध या अग्नि का भय होता है। दशारम्भ और दशा के अन्त में चन्द्र-शुक्र द्वितीय भाव में हों तो राज्य का लाभ होता है। इस प्रकार से यह द्वितीय भाव का फल है ॥५०-५२॥

एवमर्गलभावानां फलं विज्ञैः प्रदर्शितम् ।
यस्य पापः शुभो वाऽपि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले ॥५३॥
तेन द्रष्ट्रेक्षितं लग्नं प्राबल्यायोपकल्प्यते ।
यदि पश्येद् ग्रहस्तत्र विपरीतार्गलस्थितः ॥५४॥
तद्भावस्य दशायास्तु विपरीतफलं भवेत् ।
सद्दृष्टेऽपि शुभं ब्रूयान्निर्विशङ्कं द्विजोत्तम! ॥५५॥

इसी प्रकार विद्वानों ने अर्गल भावों के भी फल कहे हैं। जिस राशि की शुभ अर्गला-कारक शुभ ग्रह या अशुभ ग्रह हो और उससे लग्न पर दृष्टि हो तो उसकी प्रधानता होती है। जिस किसी ग्रह में निराभास अर्गला हो और उसके द्वारा जिस राशि पर देखा जाता हो, उसमें प्रबलता होती है। जिस भाव में शुभार्गला की दृष्टि न हो और जो राशि-विपरीत अर्गला हो उस राशि की दशा अशुभ फल देने वाली होती है। हे द्विजोत्तम! शुभ ग्रह से दृष्ट राशि की दशा निस्सन्देह शुभ फलदायक होती है ॥५३-५५॥

यस्मिन्भावे शुभस्वामिसम्बन्धस्तुङ्गखेचरः ।
स्यात्तद्भावदशायां तु अत्यैश्वर्यमखण्डितम् ॥५६॥
यद्भावेशः स्वार्थराशिमधितिष्ठति पश्यति ।
स्यात्तद् भावदशाकाले धनलाभो महत्तरः ॥५७॥
यस्माद् व्ययगतो यस्तु यद्दशायां धनक्षयः ।
यस्मात्त्रिकोणगाः पापास्तत्रात्मशुभनाशनम् ॥५८॥
पुत्रहानिः पितुः पीडा मनस्तापो महान् भवेत् ।
यस्मात्त्रिकोणगा रिःफरन्ध्रेशार्कारसूर्यजाः ॥५९॥

जिस भाव का स्वामी शुभ ग्रह होकर उसी भाव में बैठा हो या उच्च ग्रह का सम्बन्ध हो तो उस राशि के दशाकाल में अखण्ड धन-धान्य एवं ऐश्वर्य का लाभ होता है। भावेश

धन-भाव में हो या धनभाव को देखता हो तो उस राशि के दशाकाल में विशेष धन का लाभ होता है। यदि राशि द्वादश भाव में पड़ती हो और उसकी दशा हो तो धन का नाश होता है। जिस राशि की दशा हो उससे ९, ५ स्थान में पाप ग्रह हों तो शुभ फल का विनाश, पुत्र की हानि, पितृ-कष्ट और मानसिक कष्ट होता है। जिस भाव से अष्टमेश, व्ययेश रवि, मंगल और शनि होकर त्रिकोण में बैठे हों, उस राशि की दशा भी अशुभ फल देने वाली होती है ॥५६-५९॥

पुत्रपीडा द्रव्यहानिस्तत्र केत्वहिसङ्गमे।
विदेशभ्रमणं क्लेशो भयं चैव पदे पदे ॥६०॥
यस्मात् षष्ठाष्टमे क्रूरनीचखेटादयः स्थिताः।
रोगशत्रुनृपालेभ्यो मुहुः पीडा सुदुःसहा ॥६१॥
यस्माच्चतुर्थः क्रूरः स्याद् भूगृहक्षेत्रनाशनम्।
पशुहानिस्तत्र भौमे गृहदाहः प्रमादकृत् ॥६२॥
शनौ हृदयशूलं स्यात्सूर्ये राजप्रकोपनम्।
सर्वस्वहरणं राहौ विषचौरादिजं भयम् ॥६३॥

पूर्वोक्त क्रूर ग्रह केन्द्र में हो तो पुत्रपीड़ा, धननाश, विदेश यात्रा और पग-पग पर कष्ट-भय बना रहता है। जिस भाव से षष्ठ एवं अष्टम भाव में पाप ग्रह या नीच ग्रह बैठे हों तो रोग, शत्रु-राजभय तथा बार-बार असह्य पीड़ा होती है। जिससे चतुर्थ में पाप ग्रह हो तो उस राशि की दशा में भूमि, गृह और खेत का नाश होता है, मंगल हो तो चौपायों की हानि और प्रमादवश घर जल जाता है। शनि हो तो हृदयरोग, रवि हो तो राजभय, राहु चतुर्थ में हो तो उस राशि की दशा में विष एवं चौरादि भय और सर्वस्व हरण हो जाता है ॥६०-६३॥

यस्माद् दशमभे राहुः पुण्यतीर्थाटनं भवेत्।
यस्मात्कर्मायभाग्यर्क्षगताः शोभनखेचराः ॥६४॥
विद्यार्थ-धर्म-सत्कर्म-ख्यातिपौरुषसिद्धयः।
यतः पञ्चमकामारिगताः स्वोच्चशुभग्रहाः ॥६५॥
पुत्रदारादिसंप्राप्तिर्नृपपूजा महत्तरा।
यस्मिन् पुत्रायकर्माम्बुनवलग्नाधिपाः स्थिताः ॥६६॥
तत्तद्भावार्थसिद्धिः स्याच्छ्रेयो योगानुसारतः ॥६६½॥

जिस ग्रह से दशम स्थान में राहु स्थित हो उसकी दशा में पुण्यस्थलों (तीर्थस्थलों) की यात्रा होती है। जिससे १०, ११, ९ में शुभ ग्रह हों उसकी दशा में विद्या, धन, धर्म एवं मांगलिक कार्य के सम्पादन से सुन्दर यश एवं पुरुषार्थ की सिद्धि होती है। जिससे ५, ६, ७ में शुभ ग्रह या स्वोच्चस्थ ग्रह हो उसकी दशा में पुत्र, दारा (पत्नी) एवं राजा से सम्मान की प्राप्ति होती है। जिस भाव में ५, ११, १०, ४, ९, १ स्थानों के अधिपति

बैठे हों तो उसकी दशा में जातक को उन-उन भावों से सम्बन्धित कार्यों में बलानुसार वृद्धि होती है ॥६४-६६½॥

यस्मिन् गुरुर्वा शुक्रो वा शुभेशो वापि संस्थितः ॥६७॥
कल्याणं सर्वसम्पत्तिर्देवब्राह्मणतर्पणम् ।
यच्चतुर्थे तुङ्गखेटाः शुभस्वामी ग्रहश्च वा ॥६८॥
वाहनग्रामलाभश्च पशुवृद्धिश्च भूयसी ।
तत्र चन्द्रे च लाभः स्याद्बहुधान्यरसान्वितः ॥६९॥
पूर्णे विधौ निधिप्राप्तिर्लभेद्वा मणिसञ्चयम् ।
तत्र शुक्रे मृदङ्गादिवाद्यगानपुरस्कृतः ॥७०॥

जिस भाव में गुरु, शुक्र या त्रिकोणाधिपति स्थित हो, उसकी दशा में कल्याण, समस्त सम्पत्ति की प्राप्ति एवं देवता तथा ब्राह्मणों में भक्ति होती है। जिस भाव से चतुर्थ में उच्चस्थ या त्रिकोणेश बैठा हो, उसकी दशा में जातक को वाहन एवं स्थान का लाभ तथा चौपाये पशु आदि की वृद्धि होती है। उसमें यदि चन्द्रमा भी स्थित हो तो बहुधान्य और घृतादि रसवस्तुओं का लाभ होता है। पूर्ण चन्द्र हो तो आकस्मिक निधि एवं मणियों की प्राप्ति होती है। शुक्र बैठा हो तो मृदंगादि गाने बजाने में आनन्द प्राप्त होता है ॥६७-७०॥

आन्दोलिकाप्तिर्जीवे तु कनकान्दोलिका ध्रुवम् ।
लग्न-कर्मेश-भाग्येश-तुङ्गस्थ-शुभयोगतः ॥७१॥
सर्वोत्कर्ष-महैश्वर्य-साम्राज्यादि-महत्फलम् ।
एवं तत्तद्भावदायफलं यत्स्याद्विचिन्तयेत् ॥७२॥

जिससे चतुर्थ में गुरु हो तो उसकी दशा में जातक को सुवर्णजटित पालकी आदि श्रेष्ठ सवारी का लाभ होता है। जिसमें लग्नाधिपति, कर्मेश, भाग्येश, स्वोच्चस्थ शुभ ग्रह का योग हो तो उसकी दशा में उत्साह से सभी कार्यों में सफलता, अत्यधिक ऐश्वर्य एवं राज्य आदि का महालाभ होता है। इस प्रकार तत्तद् भावों का विचार कर फल कहना चाहिए ॥७१-७२॥

एकैकोडुदशा स्वीयैर्गुणैरष्टादशात्मभिः ।
भिन्नं फलविपाकं तु कुर्याद्वै चित्रसंयुतम् ॥७३॥
परमोच्चे तुङ्गमात्रे तदर्वाक् तदुपर्यपि ।
मूलत्रिकोणभे स्वर्क्षे स्वाधिमित्रग्रहस्य भे ॥७४॥
तत्कालसुहृदो गेहे उदासीनस्य भे तथा ।
शत्रोर्भेऽधिरिपोर्भे च नीचान्तादूर्ध्वदेशभे ॥७५॥
तस्मादर्वाङ् नीचमात्रे नीचान्ते परमांशके ।
नीचारिवर्गे सखले स्ववर्गे केन्द्रकोणभे ॥७६॥

व्यवस्थितस्य खेटस्य समरे पीडितस्य च।
गाढमूढस्य च दशापचितिः स्वगुणैः फलम् ॥७७॥

एक-एक नक्षत्रदशा या ग्रहों की दशा अपने-अपने १८ गुणों से भिन्न-भिन्न प्रकार से फलदायिका होती है। जैसे–परमोच्च, केवलोच्च, उससे पूर्व या आगे, मूल त्रिकोण, स्वराशि, अधिमित्र राशि, तात्कालिक मित्र, उदासीन, शत्रु, अधिशत्रु राशि, नीच, नीच से आगे-पीछे, परम नीचस्थ, केवल नीच, शत्रुवर्ग, पापवर्ग, स्ववर्ग, केन्द्रस्थ, स्वत्रिकोणस्थ, युद्ध में पराजित, परम अस्त, सामान्य अस्त आदि भेदों से ग्रहों की दशा अपने गुणों के अनुसार शुभाशुभ फल प्रदान करती है ॥७३-७७॥

परमोच्चगतो यस्तु योऽतिवीर्यसमन्वितः।
सम्पूर्णाख्या दशा तस्य राज्यभोग्यशुभप्रदा ॥७८॥
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानां चिदावासगृहप्रदा।
तुङ्गमात्रगतस्यापि तथा वीर्याधिकस्य च ॥७९॥
पूर्णाख्या बहुलैश्वर्यदायिन्यपि रुजप्रदा।
अतिनीचगतस्यापि दुर्बलस्य ग्रहस्य तु ॥८०॥
रिक्ता त्वनिष्टफलदा व्याध्यनर्थमृतिप्रदा।
अत्युच्चेऽप्यतिनीचस्थे मध्यगस्यावरोहिणी ॥८१॥
मित्रोच्चभावप्राप्तस्य मध्याख्या ह्यर्थदा दशा।
नीचान्तादुच्चभागान्तं भषट्के मध्यगस्य च ॥८२॥
दशा चारोहिणी नीचरिपुभांशगतस्य च।
अधमाख्या भयक्लेशव्याधिदुःखविवर्धिनी ॥८३॥
नामानुरूपफलदाः पाककाले दशा इमाः ॥८३$\frac{1}{2}$॥

जो अत्यन्त बलयुत (षड् वर्गों में पूर्ण बली) होकर अपने परमोच्च में स्थित हो, उसकी सम्पूर्ण दशा कही जाती है और उसमें राज्य, भोग आदि शुभ फल प्राप्त होते हैं। केवल उच्चस्थ मात्र हो और पूर्ण बली हो तो उसकी दशा पूर्णा कहलाती है। उसकी दशा बहुत ऐश्वर्यप्रद होती है, परन्तु सामान्य रोगभय का भी आभास होता है। परम नीचस्थ और निर्बल ग्रह की दशा रिक्ता कहलाती है; उसकी दशा रोगभय, धननाश, मृत्युकारकादि अनिष्टं फलप्रद होती है। परमोच्च से परम नीच के मध्य में हो तो उसकी दशा अवरोहिणी कहलाती है। स्वमित्र राशि में या अपने उच्च में स्थित ग्रह की दशा मध्या कहलाती है, इसकी दशा भी सामान्यतया शुभकारक होती है। परम नीच से परमोच्च के मध्य में स्थित ग्रह की दशा आरोहिणी कही जाती है। नीच और शत्रु-नवमांश में स्थित ग्रह की दशा अधमा कही जाती है; जो भय, कष्ट, रोग और दुःख को बढ़ाती है। ये दशायें अपने-अपने नाम के अनुरूप फल प्रदान करती हैं ॥७८-८३$\frac{1}{2}$॥

भाग्येशगुरुसम्बन्धो योगदृक्केन्द्रभादिभिः ॥८४॥
परेषामपि दायेषु भाग्योपक्रममुन्नयेत् ।
जातको यस्तु फलदो भाग्ययोगप्रदोऽथ यः ॥८५॥
सफलो वक्रिमादूर्ध्वमन्यानपि च खेचरान् ।
दुर्बलानसमर्थांश्च फलदानेषु योगतः ॥८६॥
तारतम्यात्सुसम्बन्धा दशा ह्येताः फलप्रदाः ।
स्वकेन्द्रादिजुषां तेषां पूर्णार्द्धांघ्रिव्यवस्थया ॥८७॥

ग्रहों के संयोग, दृष्टि, केन्द्र, स्वगृह आदि से यदि भाग्येश और गुरु का सम्बन्ध हो तो अन्य ग्रहों की दशा में भी भाग्य की वृद्धि होती है। जन्मसमय में भाग्यादि शुभफल कारक जो ग्रह रहते हैं, वे वक्रत्याग (मार्गी होने पर) के अनन्तर ही फलप्रद हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के भी शुभाशुभ फल देने में निर्बलता, अक्षमता आदि से उनके योगानुसार अवगत होना चाहिए। ये सभी दशायें केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम के योगानुसार तारतम्य से पूर्ण, मध्य एवं अल्प फलप्रद होती हैं ॥८४-८७॥

शीर्षोदयभगाः स्व-स्व-दशादौ स्वफलप्रदाः ।
उभयोदयराशिस्थदशा मध्यफलप्रदा ॥८८॥
पृष्ठोदयर्क्षगाः खेटाः स्वदशान्ते फलप्रदा ।
निसर्गतश्च तत्काले सुहृदां हरणे शुभम् ॥८९॥
सम्पादयेत्तदा कष्टं तद्विपर्ययगामिनाम् ॥८९½॥

शीर्षोदय राशि में स्थित ग्रह दशा के आरम्भ में, उभयोदयस्थ ग्रह दशा के मध्य में एवं पृष्ठोदयस्थ ग्रह दशा के अन्त समय में फलप्रद होते हैं। नैसर्गिक या तात्कालिक मित्रों की अन्तर्दशा में सभी ग्रह शुभ फलकारक होते हैं एवं नैसर्गिक या तात्कालिक शत्रुओं की अन्तर्दशा में समस्त ग्रह अनिष्ट फलप्रद होते हैं ॥८८-८९½॥

दशेशाक्रान्तभावर्क्षादारभ्य द्वादशर्क्षकम् ॥९०॥
भक्त्वा द्वादशराशीनां दशाभुक्तिं प्रकल्पयेत् ।
एकैकराशेर्या तत्र सुहृत्स्वक्षेत्रगामिनी ॥९१॥
तस्यां राज्यादिसम्पत्तिपूर्वकं शुभमीरयेत् ।
दुःस्थानरिपुगेहस्थनीचक्रूरयुता च या ॥९२॥
तस्यामनर्थकलहं रोगमृत्युभयादिकम् ।
बिन्दुभूयस्त्वशून्यत्ववशात् स्वीयाष्टवर्गके ॥९३॥
वृद्धिं हानिं च तद्राशिभावस्य स्वगृहात्क्रमात् ।
भावयोजनया विद्यात्सुतस्त्र्यादिशुभाऽशुभम् ॥९४॥
धात्वादिराशिभेदाच्च धात्वादिग्रहयोगतः ।
शुभपापदशाभेदात् शुभपापयुतैरपि ॥९५॥

इष्टानिष्टस्थानभेदात् फलभेदात् समुन्नयेत् ।
एवं सर्वग्रहाणां च स्वां स्वामन्तर्दशामपि ।।९६।।

दशा का स्वामी जिस राशि में बैठा हो उस राशि से दशा का आरम्भ करके क्रम से १२ राशियों की अन्तर्दशा होती है। उन राशियों में भी जो अपने स्वामी या मित्र राशि से युत या दृष्ट हो उसकी अन्तर्दशा में द्रव्यलाभ, राज्य प्राप्ति आदि शुभ फल कहना चाहिए। दुष्ट स्थानस्थ, शत्रुगृहस्थ, नीचस्थ, क्रूर ग्रहयुत राशियों की अन्तर्दशा में अर्थहानि, कलह, रोग, मृत्यु आदि अशुभ फल कहना चाहिए। जिस राशि में अष्टवर्ग में शुभ चिह्न अधिक हो तो शुभ और अशुभ चिह्न अधिक हो तो उसकी अन्तर्दशा में अशुभ फल कहना चाहिए। अपने-अपने भाव के क्रम से तनु, धन, सुहृद आदि भावों की कल्पना कर धन, पुत्र, गृह आदि के शुभाशुभ फल से भी अवगत होना चाहिए। जैसे धनभाव को लग्न मानकर उससे द्वितीय से आर्थिक स्थिति का एवं पुत्रभाव को लग्न मानकर उससे द्वितीयादि भाव से पुत्र के धन, सुहृद, गृह, पुत्रादि का शुभाशुभ फल ज्ञात करना चाहिए। ग्रह और राशियों के जो धातु आदि कहे गये हैं, उन-उन राशियों की अन्तर्दशा में उन-उन धातुओं की वृद्धि या हानि का विचार करना चाहिए। शुभ और पाप भेद, शुभ ग्रह और पाप ग्रह के योगानुसार शुभ और अशुभ स्थानभेद से सभी ग्रहों की अन्तर्दशा के शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए ।।९०-९६।।

स्वराशितो राशिभुक्तिं प्रकल्प्य फलमीरयेत् ।
अन्तरन्तर्दशां स्वीयां विभज्यैवं पुनः पुनः ।।९७।।

इस प्रकार राशयों में राशियों की अन्तर्दशा तथा राशियों में प्रत्यन्तर की कल्पना करके भी शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए ।।९७।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां चरादिदशाफलाध्यायः ।।५२।।

अथाऽन्तर्दशाध्यायः ॥५३॥

अन्तर्दशानयन प्रकारमाह

दशाब्दाः स्व-स्वमानघ्नाः सर्वायुर्योगभाजिताः ।
पृथगन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तरदशादिकाः ॥१॥

जिस ग्रह की महादशा में अन्तर्दशा अवगत करनी हो, उसकी वर्षसंख्या को पृथक्-पृथक् ग्रहों की वर्षसंख्या से गुणा करके सभी ग्रहों की वर्षसंख्या के योग से भाग देने से लब्धि पृथक्-पृथक् अन्तर्दशा वर्षादिमान होते हैं। इसी प्रकार अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर ज्ञात करना अभीष्ट हो तो अन्तर्दशा-मान को प्रत्येक ग्रह के दशावर्ष से गुणा कर सभी ग्रहों के दशावर्षयोग से भाग देने से लब्धि पृथक्-पृथक् प्रत्यन्तर्दशा होती है। इसी प्रकार सूक्ष्मदशा, प्राणदशा का भी आनयन करना चाहिए ॥१॥

उदाहरण—सूर्य की महादशा में सूर्यादि सभी ग्रहों की अन्तर्दशा अभीष्ट हो तो—सूर्य की विंशोत्तरीय दशावर्षसंख्या ६ सभी ग्रहों का वर्षयोग १२० है।

अतः सूर्य ६ × ६/१२० = ०।३।१८
चन्द्र ६ × १०/१२० = ०।६।०
मंगल ६ × ७/१२० = ०।४।६
राहु ६ × १८/१२० = ०।१०।२४
गुरु ६ × १६/१२० = ०।९।१८
शनि ६ × १९/१२० = ०।११।१२
बुध ६ × १७/१२० = ०।१०।६
केतु ६ × ७/१२० = ०।४।६
शुक्र ६ × २०/१२० = १।०।०

सूर्य की महादशा में सूर्यादि का अन्तर

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मास	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दिन	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

इसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी अन्तर्दशा का ज्ञान करना चाहिए।

अन्तर्दशाक्रम

आदावन्तर्दशा पाकपतेस्तत्क्रमतोऽपराः ।
एवं प्रत्यन्तरादौ च क्रमो ज्ञेयो विचक्षणैः ॥२॥

किसी की भी दशा में प्रथम अन्तर्दशा स्वामी की ही होती है और उसके आगे क्रम से सभी ग्रहों की अन्तर्दशा होती है। प्रत्यन्तर, सूक्ष्म, प्राणदशा में भी यही क्रम जानना चाहिए ॥२॥

चरादि दशाओं में ग्रहों की अन्तर्दशा

भुक्तिर्नवानां तुल्या स्याद् विभाज्या नवधा दशा।
आदौ दशापतेर्भुक्तिस्तत्केन्द्रादियुजां ततः ॥३॥
विद्यात् क्रमेण भुक्त्यंशानेवं सूक्ष्मदशादिकम्।
बलक्रमात् फलं विज्ञैर्वक्तव्यं पूर्वरीतितः ॥४॥

ग्रहों की चरादि दशा या केन्द्रादि दशा में दशामान को ९ समान भाग करके अन्तर्दशा जाननी चाहिए। यहाँ प्रथम तो दशाधिप की ही अन्तर्दशा होगी, तदनन्तर केन्द्र-स्थित ग्रहों की, पुनः पणफरस्थ ग्रहों की, तत्पश्चात् आपोक्लिमस्थ ग्रहों की अन्तर्दशा बलक्रम से होती है ॥३-४॥

राशियों का अन्तर्दशा-साधन

कृत्वाऽर्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद् वदेत्।
प्रत्यन्तर्दशाद्येवं कृत्वा तत्तत्फलं वदेत् ॥५॥

राशियों का जो दशावर्ष हो, उसको १२ से गुणा करने पर जो लब्धि हो, उतना ही प्रत्येक राशि का अन्तर्दशावर्ष होता है। इसी प्रकार अन्तर्दशा-वर्ष में अनुपात से प्रत्यन्तर्दशा का भी ज्ञान करना चाहिए ॥५॥

राशियों की अन्तर्दशा में क्रम

आद्यसप्तमयोर्मध्ये यो राशिर्बलवाँस्ततः।
ओजे दशाश्रये गण्याः क्रमादुत्क्रमतः समे ॥६॥

अन्तर्दशाक्रम में प्रथम और सप्तम में से जो अधिक बली हो, उस राशि से अन्तर्दशा प्रारम्भ हो जाती है। प्रारम्भिक दशा विषम राशि की हो तो क्रम से और सम हो तो उत्क्रम से सभी राशियों की अन्तर्दशा होती है ॥६॥

विशेष-कथन

अत्राऽपरो विशेषोऽस्ति ब्रवीमि तमहं द्विज!।
चरेऽनुज्झितमार्गः स्यात् षष्ठषष्ठादिकाः स्थिरे ॥७॥
उभये कण्टकाज् ज्ञेया लग्नपञ्चमभाग्यतः।
चर-स्थिर-द्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक् क्रमो मतः ॥८॥
तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम्।
एवमुल्लिखितो राशिः पाकराशिरुदीर्यते ॥९॥

स एव भोगराशि: स्यात् पर्यायें प्रथमे स्मृत: ।
आद्याद् यावत्तिथ: पाक: पर्याये यत्र दृश्यते ।।१०।।
तस्मात् तावत्तिथो भोग: पर्याये तत्र गृह्यताम् ।
तदिदं चरपर्याय-स्थिरपर्यायियोर्द्वयो: ।।११।।
त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ।
पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा ।।१२।।

हे विप्र ! अब मैं चरादि राशियों की अन्तर्दशा में जो विशेषता है, उसको कहता हूँ। दशाश्रयदशा चर राशि में हो तो पूर्वोक्तवत् क्रम-उत्क्रम गणना से १२ राशियों की अन्तर्दशा होती है। यदि दशाश्रय राशि स्थिर रहे तो उससे आरम्भ कर ६-६ राशि के क्रम से अन्तर्दशा होती है। यदि दशाश्रय राशि द्विस्वभाव हो तो पहले उस राशि की, फिर उससे केन्द्रस्थ राशियों की, पुन: उससे पञ्चम के केन्द्रराशियों की, फिर अन्त में उससे नवम के केन्द्रस्थ राशियों की अन्तर्दशा होती है। चर, स्थिर, द्विस्वभाव तीनों प्रकार की राशियों में विषम दशाश्रय राशि रहे तो क्रम से और सम दशाश्रय राशि रहे तो उत्क्रम से गणना करनी चाहिए। दशाश्रय राशि को पाक राशि कहा जाता है। प्रथम आवृत्ति में उसे भोग राशि कहा गया है। दशाप्रद राशि सम रहे तो उससे दशाश्रय राशि जितनी आगे हो, उतनी ही आगे की राशि भोगसंज्ञक होती है। इस प्रकार पाक तथा भोग की कल्पना चर, स्थिर, त्रिकोणादि दशा में किया जाता है। पाक तथा भोग राशि में पाप ग्रह बैठा हो तो रोग-व्याधि, शारीरिक कष्ट आदि होता है ।।७-१२।।

उदाहरण—पूर्वदर्शित चर दशा चक्र का अवलोकन करें। यहाँ धन की चरदशा में धनादि की अन्तर्दशा लगानी है। धन द्विस्वभाव राशि है तथा विषम है; अत: धन से आरम्भ कर क्रम से धन से केन्द्र राशियाँ मीन, मिथुन, कन्या राशियों की, फिर धन से पञ्चम मेष राशि पड़ती है, अत: मेष से केन्द्र राशियाँ मेष, कर्क, तुला, मकर राशियाँ हुईं। पुन: धन से नवम सिंह राशि है, सिंह की केन्द्र राशियाँ सिंह, वृश्चिक, कुम्भ, वृष हैं; अत: पूर्वोक्त राशियों की क्रम से अन्तर्दशाएँ हुईं। धन का दशाभाव १० वर्ष है, अत: प्रत्येक राशि की अन्तर्दशा १ माह होगी।

धन राशि की चर दशा में अन्तर्दशा चक्र

दशेश	धन	मीन	मिथुन	कन्या	मेष	कर्क	तुला	मकर	सिंह	वृश्चिक	कुम्भ	वृष
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
संवत् २०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५५
सूर्य ०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	०
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६

यहाँ प्रथम दशाप्रद राशि धन है, अतः इसमें धन ही पाक तथा भोग राशि हो गई। धन में पाप ग्रहों का योग नहीं है, शुभ ग्रह गुरु का गृह है; अतः इसकी अन्तर्दशा में जातक को धन-धान्य तथा शारीरिक सौख्य उत्तम रहेगा।

द्वितीय पर्याय में वृश्चिक की प्रथम अन्तर्दशा होगी। वृश्चिक के स्थिर राशि होने के कारण छठी-छठी राशियों की अन्तर्दशा होगी, परन्तु वृश्चिक सम राशि है; अतः उत्क्रम से राशि ग्रहण करना है। इसलिए प्रथमतः वृश्चिक, वृश्चिक से उत्क्रम से छठी मिथुन, इससे छठवीं मकर, पुनः इससे छठवीं सिंह; इसी प्रकार गिनने पर मीन, तुला, वृष, धन, कर्क, कुम्भ, कन्या और मेष राशियों की क्रमशः अन्तर्दशा होती है। यहाँ वृश्चिक पाक राशि है और प्रथम दशाप्रद राशि से द्वादश है, अतः वृश्चिक से द्वादश तुला भोग राशि हो गई। इन दोनों राशियों में स्थित शुभाशुभ ग्रहों के माध्यम से इष्टानिष्ट समझना चाहिए। पाक को ही द्वार और भोगराशि को ही बाह्य भी कहते हैं। फिर तृतीय पर्याय में तुला से आरम्भ करके क्रम से तुलादि द्वादश राशियों की अन्तर्दशा होगी, क्योंकि तुला राशि चर तथा विषम भी है। इसी प्रकार चतुर्थादि पर्याय में भी जानना चाहिए ॥७-१२॥

पिण्डादि दशा में अन्तर्दशा-साधन प्रकार

पिण्डत्रिकदशायां तु ब्रवीम्यन्तर्दशाविधम्।
पूर्णं दशापतिर्दद्यात् तदर्धं तेन संयुतः ॥१३॥
त्रिकोणगस्तृतीयांशं तूर्यांशश्चतुरस्रगः।
स्मरगः सप्तमं भागं बहुष्वेको बली ग्रहः ॥१४॥
एवं स-लग्नकाः खेटाः पाचयन्ति मिथः स्थिताः।
समच्छेदीकृताः प्राप्ता अंशाश्छेदविवर्जिताः ॥१५॥
दशाब्दाः पृथगंशघ्ना अंशयोगविभाजिताः।
अन्तर्दशाः भवन्त्येवं तत्प्रत्यन्तर्दशादिकाः ॥१६॥

अब मैं निसर्ग, पिण्ड, अंश की दशाओं में अन्तर्दशा-साधन प्रकार को कहता हूँ। दशेश पूर्ण भाग १/१, दशेश के साथ रहने वाले ग्रहों का १/२ भाग, दशेश से त्रिकोणस्थ का त्रिभाग १/३, उससे चतुर्थ, अष्टम में स्थित ग्रहों का चतुर्थ भाग १/४, सप्तमस्थ ग्रह के सप्तमांश १/७ पाचक होते हैं। इस प्रकार लग्नसहित आठो ग्रह उक्त स्थानों में पाचक होते हैं। उक्त स्थानों में अधिक ग्रह रहें तो जो ग्रह सर्वाधिक बली है, वह पाचक होता है। ग्रह की दशा में प्राप्त पाचकों के अंशों का सवर्णन करके छेद को त्याग कर पुनः लब्ध अंशों से अलग-अलग दशावर्षों को गुणन कर अंशयोग से भाग देने से लब्ध वर्षादि अन्तर्दशा होती है। अन्तर्दशावर्ष-प्रमाण से ही प्रत्यन्तर्दशा का भी साधन करना चाहिए ॥१३-१६॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामन्तर्दशाध्यायः ॥५३॥

अथ सूर्यदशान्तर्दशाफलाध्याय: ॥५४॥

विंशोत्तरीमतेत:

सूर्य की दशा में सूर्य की अन्तर्दशा का फल

स्वोच्चे स्वभे स्थित: सूर्यो लाभे केन्द्रे त्रिकोणगे।
स्वदशायां स्वभुक्तौ च धन-धान्यादि-लाभकृत् ॥१॥
नीचाद्यशुभराशिस्थो विपरीतं फलं दिशेत्।
द्वितीयद्यूननाथेऽर्के त्वपमृत्युभयं वदेत् ॥२॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत्।
सूर्यप्रीतिकरीं शान्तिं कुर्यादारोग्यलब्धये ॥३॥

यदि सूर्य अपने उच्च (मेष १० अंश) में अथवा अपनी राशि (सिंह) में या लाभ, केन्द्र, त्रिकोण में बैठा हो तो अपनी दशा और अपनी ही अन्तर्दशा में जातक को धन-धान्य का लाभ आदि शुभ फल देने वाला होता है एवं नीचादि अशुभ स्थान में सूर्य हो तो धन-धान्यादि का नाशकारक होता है। यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो सूर्य की दशा में अन्तर्दशा के समय अपमृत्यु या मृत्युसदृश कष्ट होता है। उस दोष के परिहार हेतु एवं आरोग्य प्राप्त्यर्थ तथा सूर्य की प्रसन्नता हेतु मृत्युञ्जय-जप, सूर्य की पूजा, जपादि करानी चाहिए ॥१-३॥

चन्द्रान्तर्दशा फल

सूर्यस्याऽन्तर्गते चन्द्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
विवाहं शुभकार्यं च धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥४॥
गृहक्षेत्राभिवृद्धिं च पशुवाहनसम्पदाम्।
तुङ्गे वा स्वर्क्षगे वाऽपि दारसौख्यं धनागमम् ॥५॥
पुत्रलाभसुखं चैव सौख्यं राजसमागमम्।
महाराजप्रसादेन इष्टसिद्धिसुखावहम् ॥६॥

सूर्य की दशा में चन्द्र की अन्तर्दशा हो तो, यदि चन्द्र लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में बैठा है तो विवाहादि मांगलिक शुभ कार्य सम्पन्न होता है, साथ ही धन-धान्य की वृद्धि होती है। चन्द्र अपने क्षेत्र में बैठा हो तो धन, पशु, वाहन आदि की प्राप्ति होती है। यदि स्वोच्च, स्वगृह में चन्द्र हो तो पत्नीसुख, धनागम, पुत्र-लाभ, सुख आदि की प्राप्ति एवं राजा, महाराजा की कृपा से लक्षित लक्ष्य की प्राप्ति होती है ॥४-६॥

क्षीणे वा पापसंयुक्ते दारपुत्रादिपीडनम्।
वैषम्यं जनसंवादं भृत्यवर्गविनाशनम् ॥७॥
विरोधं राजकलहं धनधान्यपशुक्षयम्।

षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे जलभीतिं मनोरुजम् ॥८॥
बन्धनं रोगपीडां च स्थानविच्युतिकारकम् ।
दुःस्थानं चापि चित्तेन दायादजनविग्रहम् ॥९॥
निर्दिशेत् कुत्सितान्नं च चौरादिनृपपीडनम् ।
मूत्रकृच्छ्रादिरोगश्च देहपीडा तथा भवेत् ॥१०॥

यदि चन्द्रमा क्षीण अथवा पाप ग्रहों से युत हो तो जातक को स्त्री-पुत्रपीड़ा, विषम परिस्थिति, लोगों से वाद-विवाद, सेवक जन का नाश, राजा से विरोध एवं धन-धान्य-पशु आदि का क्षय होता है। यदि चन्द्रमा ६,८,१२ स्थान में हो तो जलभय, मानसिक व्यथा, बन्धन, रोग से पीड़ा, स्थाननाश, दुष्ट स्थान में गमन, दायादों से वाद-विवाद, कुभोजन, चौरभय, राजा का कोप, मूत्रकृच्छ्रादि रोग तथा शारीरिक कष्ट होता है ॥७-१०॥

दायेशाल्लाभभाग्ये च केन्द्रे वा शुभसंयुते ।
भोग-भाग्यादिसन्तोष-दारपुत्रादि-वर्धनम् ॥११॥
राज्यप्राप्तिं महत्सौख्यं स्थानप्राप्तिं च शाश्वतीम् ।
विवाहं यज्ञदीक्षां च सुमाल्याम्बरभूषणम् ॥१२॥
वाहनं पुत्र-पौत्रादि लभते सुखवर्धनम् ॥१२½॥

दशाधिपति से ११, ९, १, ४, ७, १० में शुभ ग्रह हो तो जातक को भोगप्राप्ति, भाग्योदय, सन्तोष, स्त्री-पुत्र के सुख की वृद्धि, राज्यप्राप्ति, महान् सौख्य, स्थानप्राप्ति, विवाह, यज्ञ, दीक्षा, सुन्दर हार, वस्त्र, आभूषण, वाहन एवं पुत्र-पौत्रादि सुख की प्राप्ति होती है ॥११-१२½॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥१३॥
अकाले भोजनं चैव देशाद्देशं गमिष्यति ।
द्वितीयद्यूननाथे च ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥
श्वेतां गां महिषीं दद्याच्छान्तिं कुर्यात्सुखाप्तये ॥१४॥

दशापति से ६, ८, १२ स्थान में अन्तर्दशाधिपति बैठा हो या निर्बल हो तो वह अकाल में भोजन कराने वाला एवं देश-देशान्तर में भ्रमणकारक होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश (मारकेश) की अन्तर्दशा हो तो वह अपमृत्युप्रद होता है। उसकी शान्ति और सुख-प्राप्ति के लिए श्वेत गौ और महिषी का दान करना चाहिए ॥१३-१४॥

सूर्य में भौमान्तर का फल

सूर्यस्यान्तर्गते भौमे स्वोच्चे स्वक्षेत्रलाभगे ।
लग्नात्केन्द्रत्रिकोणे वा शुभकार्यं समादिशेत् ॥१५॥
भूलाभं कृषिलाभं च धन-धान्य-विवर्धनम् ।
गृहक्षेत्रादिलाभं च रक्तवस्त्रादिलाभकृत् ॥१६॥

लग्नाधिपेन संयुक्ते सौख्यं राजप्रियं वदेत् ।
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभश्चैव भविष्यति ॥१७॥
बहुसेनाधिपत्यं च शत्रुनाशं मनोदृढम् ।
आत्मबन्धुसुखं चैव भ्रातृवर्धनकं तथा ॥१८॥

सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा हो और मंगल अपने उच्च में हो या स्वक्षेत्र में हो या ११, केन्द्र, त्रिकोण में बैठा हो तो शुभ कार्य सम्पन्न, भूमिलाभ, कृषि कार्य से उचित लाभ, धन-धान्य की वृद्धि, गृह-क्षेत्रादि का लाभ एवं रक्त वस्त्र से समुचित लाभ कहना चाहिए। यदि मंगल लग्नेश से युत हो तो सौख्य की वृद्धि और राजा का प्रियकारक होता है। यदि भाग्येश या लाभेश से युत हो तो ऐसा जातक सेनापति, शत्रुओं का नाश करने वाला, मन की स्थिरता, स्व-बन्धु तथा बान्धवों का सुख एवं भाइयों की वृद्धि से युक्त होता है ॥१५-१८॥

दायेशाद् व्ययरन्ध्रस्थे पापैर्युक्ते च वीक्षिते ।
आधिपत्यबलैर्हीने क्रूरबुद्धिं मनोरुजम् ॥१९॥
कारागृहे प्रवेशं च कथयेद् बन्धुनाशनम् ।
भ्रातृवर्गविरोधं च कर्मनाशमथापि वा ॥२०॥

मंगल यदि दशाधिकारी से १२, ८ में बैठा हो, पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हो एवं अधिकार और बल से हीन हो तो उसकी अन्तर्दशा में क्रूर बुद्धि, मानसिक व्यथा, कारावास में प्रवेश, बन्धुनाश, भाइयों में विरोध एवं कार्यनाश होता है ॥१९-२०॥

नीचे वा दुर्बले भौमे राजमूलाद्धनक्षयः ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहे जाड्यं मनोरुजम् ॥२१॥
सुब्रह्मजपदानं च वृषोत्सर्गं तथैव च ।
शान्तिं कुर्वीत विधिवदायुरारोग्यसिद्धिदाम् ॥२२॥

यदि मंगल नीच राशि का हो या दुर्बल हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को राजा से धन का नाश, मंगल द्वितीय या सप्तमेश हो तो शारीरिक व्याधि एवं मानसिक रोग हो जाता है। अत: उस समय शान्ति हेतु सुन्दर वेदपाठ, जप, दान, वृषोत्सर्ग आदि शुभ कार्य विधिवत् करने से आयु, आरोग्य और कार्यों में सफलता प्राप्त होती है ॥२१-२२॥

सूर्य में राहु का अन्तर्दशाफल

सूर्यस्यान्तर्गते राहौ लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
आदौ द्विमासपर्यन्तं धननाशो महद्भयम् ॥२३॥
चौराहि-व्रण-भीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ।
तत्परं सुखमाप्नोति शुभयुक्ते शुभांशके ॥२४॥
देहारोग्यं मनस्तुष्टी राजप्रीतिकरं सुखम् ।

लग्नादुपचये राहौ योगकारकसंयुते ॥२५॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे राजसम्मानमादिशेत् ।
भाग्यवृद्धिं यशोलाभं दारपुत्रादिपीडनम् ॥२६॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषं गृहे कल्याणशोभनम् ॥२६½॥

सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो और राहु लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में हो तो जातक को आरम्भ से २ माह तक धननाश, महान् भय, चौरभय, सर्प और व्रण (घाव)-भय तथा स्त्री-पुत्र को कष्ट होता है एवं २ माह के अनन्तर सुख की प्राप्ति होती है। यदि राहु शुभ ग्रह से युत और शुभ ग्रह के नवमांश में हो तो जातक को देहसुख, आरोग्य, मानसिक प्रसन्नता एवं राजा की कृपा से सुख की वृद्धि होती है। यदि राहु लग्न से उपचय (३,६,१०,११) में हो या योग कारक ग्रह से युत हो अथवा दशापति से शुभ स्थान में हो तो राजा से सम्मान, भाग्यवृद्धि, यश, लाभ, परन्तु पत्नी और पुत्र को सामान्य पीड़ा, पुत्रोत्पत्ति का हर्ष, सन्तोष, घर में उत्सव आदि शुभ कार्य सम्पन्न होने से कल्याण होता है ॥२३-२६½॥

दायेशादथ रिष्फस्थे रन्ध्रे वा बलवर्जिते ॥२७॥
बन्धनं स्थाननाशश्च कारागृहनिवेशनम् ।
चौराहिव्रणभीतिश्च दारपुत्रादिवर्धनम् ॥२८॥
चतुष्पाज्जीवनाशश्च गृहक्षेत्रादिनाशनम् ।
गुल्मक्षयादिरोगश्च ह्यतिसारातिपीडनम् ॥२९॥

दशापति (सूर्य) से राहु १२, ८ में हो और बलहीन हो तो बन्धन, स्थाननाश, कारागृह में वास, चौर, सर्प, व्रण का भय, परन्तु स्त्री-पुत्रादि की वृद्धि होती है। साथ ही पशु, चौपायों, गृह-क्षेत्रादि का नाश, गुल्म, क्षय, अतिसार आदि रोगों से पीड़ा होती है ॥२७-२९॥

द्विसप्तस्थे तथा राहौ तत्स्थानाधिपसंयुते ।
अपमृत्युभयं चैव सर्पभीतिश्च सम्भवेत् ॥३०॥
दुर्गाजपं च कुर्वीत छागदानं समाचरेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्याच्छान्तिमाप्नोत्यसंशयम् ॥३१॥

यदि राहु २, ७ स्थान में हो या द्वितीयेश, सप्तमेश से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में अपमृत्यु एवं सर्प का भय रहता है। उसकी शान्ति के लिए दुर्गा का पूजन, जप, छाग, कृष्णा गौ और भैंस का दान करना चाहिए। ऐसा करने से निश्चित रूप से सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होती है ॥३०-३१॥

सूर्य में गुरु की अन्तर्दशा का फल

सूर्यस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे मित्रस्य वर्गस्थे विवाहं राजदर्शनम् ॥३२॥

धनधान्यादिलाभं च पुत्रलाभं महत्सुखम् ।
महाराजप्रसादेन इष्टकार्यार्थलाभकृत् ॥३३॥
ब्राह्मणप्रियसम्मानं प्रियवस्त्रादिलाभकृत् ॥३३½॥

सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा हो और गुरु लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में हो या स्वोच्च, स्वगृह या मित्र राशि में बैठा हो तो विवाह, राजदर्शन, धन-धान्यादि का लाभ, पुत्रप्राप्ति, महान् सुख, महाराजा की कृपा से लक्षित कार्य की सिद्धि, अर्थलाभ, ब्राह्मण से सम्मान एवं अभीष्ट वस्त्रादि का लाभ होता है ॥३२-३३½॥

भाग्यकर्माधिपवशाद्राज्यलाभं वदेद् द्विज ! ॥३४॥
नरवाहनयोगश्च स्थानाधिक्यं महत्सुखम् ।
दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्यवृद्धिः सुखावहा ॥३५॥
दानधर्मक्रियायुक्तो देवताराधनप्रियः ।
गुरुभक्तिर्मनःसिद्धिः पुण्यकर्मादिसंग्रहः ॥३६॥

यदि गुरु भाग्येश या राज्येश हो तो गुरु की अन्तर्दशा में राज्यलाभ, पालकी आदि सवारी का लाभ, महान् सुख और स्थान की प्राप्ति होती है। दशापति से शुभ स्थान में हो तो जातक की भाग्यवृद्धि, सुख, दान, धर्मादि क्रिया से युत, देवतापूजक, गुरु में श्रद्धा, पुण्यकर्मकारक एवं इच्छित वस्तु को प्राप्त करने वाला होता है ॥३४-३६॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे नीचे वा पापसंयुते ।
दारपुत्रादिपीडा च देहपीडा महद्भयम् ॥३७॥
राजकोपं प्रकुरुतेऽभीष्टवस्तुविनाशनम् ।
पापमूलाद् द्रव्यनाशं देहभ्रष्टं मनोरुजम् ॥३८॥
स्वर्णदानं प्रकुर्वीत स्वेष्टजाप्यं च कारयेत् ।
गवां कपिलवर्णानां दानेनारोग्यमादिशेत् ॥३९॥

यदि दशापति (सूर्य) से गुरु ६, ८ में हो या अपने नीच में पाप ग्रह के साथ बैठा हो तो गुरु की अन्तर्दशा में अपनी स्त्री-पुत्र को पीड़ा, शरीर कष्ट, महान् भय, राजा का कोप, अभीष्ट कार्य का नाश, कुकर्म में प्रवृत्त होने के कारण धननाश, देहभ्रष्ट एवं मानसिक अशान्ति होती है। इसकी शान्ति के लिए सुवर्ण-दान, इष्टदेवता की पूजा एवं कपिला गौ दान करने से आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥३७-३९॥

सूर्य में शनि की अन्तर्दशा का फल

सूर्यस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
शत्रुनाशो महत्सौख्यं स्वल्पधान्यार्थलाभकृत् ॥४०॥
विवाहादिसुकार्यञ्च गृहे तस्य शुभावहम् ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे मन्दे सुहृद्ग्रहसमन्विते ॥४१॥

गृहे कल्याणसम्पत्तिर्विवाहादिषु सत्क्रिया ।
राजसम्मानकीर्तिश्च नानावस्त्रधनागमः ॥४२॥

सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो और शनि यदि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में बैठा हो तो शत्रु का नाश, पूर्ण सुख, स्वल्प धान्य-लाभ एवं गृह में विवाहादि शुभ कार्य सुसम्पन्न होते हैं। यदि शनि स्वोच्च में, स्वक्षेत्र या मित्रगृह में या मित्र के साथ में हो तो स्वगृह में कल्याणकारक, सम्पत्ति की वृद्धि, विवाहादि शुभ कार्य, राजा से सम्मान, कीर्ति एवं अनेक प्रकार से धन तथा वस्त्रादि की प्राप्ति होती है ॥४०-४२॥

दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
वात-शूल-महाव्याधि-ज्वरातीसारपीडनम् ॥४३॥
बन्धनं कार्यहानिश्च वित्तनाशो महद्भयम् ।
अकस्मात् कलहश्चैव दायादजनविग्रहः ॥४४॥

दशाधिकारी से ८, १२ में या क्रूर ग्रह से युत हो तो वात, शूल, महाव्याधि, ज्वर, अतिसार आदि रोगों से पीड़ा, बन्धन, कार्यनाश, धनक्षय, महाभय, अकस्मात् कलह एवं दायादों से भी विग्रह हो जाता है ॥४३-४४॥

मुक्त्यादौ मित्रहानिः स्यान्मध्ये किञ्चित्सुखावहम् ।
अन्ते क्लेशकरं चैव नीचे तेषां तथैव च ॥४५॥
पितृमातृवियोगश्च गमनागमनं तथा ।
द्वितीयद्यूननाथे तु अपमृत्युभयं भवेत् ॥४६॥
कृष्णां गां महिषीं दद्यान्मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
छागदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥४७॥

अन्तर्दशा के प्रारम्भ में मित्रों की हानि, मध्य में कुछ शुभ और अन्त में क्लेश होता है। नीचस्थ के फल भी इसी प्रकार जानने चाहिए। माता-पिता का वियोग एवं व्यर्थ भ्रमण होता है। द्वितीयेश, सप्तमेश की अन्तर्दशा में मृत्यु और भय होता है। अनिष्ट फल की शान्ति हेतु काली गाय, महिषी और छाग का दान तथा महामृत्युञ्जय जप करने से पूर्ण धन-धान्य-सम्पत्ति आदि का लाभ होता है ॥४५-४७॥

सूर्य की महादशा में बुधान्तर का फल

सूर्यस्यान्तर्गते सौम्ये स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभस्थे बुधे वर्गबलैर्युते ॥४८॥
राज्यलाभो महोत्साहो दारपुत्रादिसौख्यकृत् ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥४९॥
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्गृहे गोधनसंकुलम् ॥४९½॥

सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा हो और बुध लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ-

स्थान में हो या स्वोच्च, स्वगृह में बैठा हो तो बुध की अन्तर्दशा में राज्यलाभ, उत्साह, पत्नी-पुत्र का सुख, महाराज की अनुकम्पा से वाहन, वस्त्र, आभूषण का लाभ, धार्मिक कृत्य, तीर्थयात्रा, सुन्दर गौ आदि धन की प्राप्ति होती है ॥४८-४९½॥

भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते लाभवृद्धिकरो भवेत् ॥५०॥
भाग्यपञ्चमवर्गस्थे सन्मानो भवति ध्रुवम् ।
सुकर्मधर्मबुद्धिश्च गुरुदेवद्विजार्चनम् ॥५१॥
धनधान्यादिसंयुक्तो विवाहः पुत्रसम्भवः ॥५१½॥

यदि बुध भाग्येश, लाभेश से युत हो तो लाभ तथा वृद्धिकारक होता है। ९, ५, १० स्थान में हो तो लोक में सम्मान, सुकर्म, धार्मिक प्रकृति, गुरु और देवता में भक्ति, धन-धान्य की वृद्धि, विवाह, पुत्रोत्पत्ति आदि मांगलिक कार्य होते हैं ॥५०-५१½॥

दायेशाच्छुभराशिस्थे सौम्ययुक्ते महत्सुखम् ॥५२॥
वैवाहिकं यज्ञकर्म दानधर्मजपादिकम् ।
स्वनामाङ्कितपद्यानि नामद्वयमथाऽपि वा ॥५३॥
भोजनाम्बरभूषाप्तिरमरेशो भवेन्नरः ॥५३½॥

दशापति से बुध यदि शुभ राशि में हो या सौम्य ग्रह से युत हो तो महान् सुख, विवाह, यज्ञकर्म, दान, धर्म, जपादि अनुष्ठान, स्वनाम सहित पद्यों में कीर्ति, यश के कारण दूसरा नाम, सुभोजन, वस्त्र, आभूषण की प्राप्ति एवं इन्द्र के समान सुख प्राप्त होता है ॥५२-५३½॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे रिष्फगे नीचगेऽपि वा ॥५४॥
देहपीडा मनस्तापो दारपुत्रादिपीडनम् ।
भुक्त्यादौ दुःखमाप्नोति मध्ये किञ्चित्सुखावहम् ॥५५॥
अन्ते तु राजभीतिश्च गमनागमनं तथा ।
द्वितीये द्यूननाथे तु देहजाड्यं ज्वरादिकम् ॥५६॥
विष्णुनामसहस्रं च ह्यन्नदानं च कारयेत् ।
रजतप्रतिमादानं कुर्यादारोग्यसिद्धये ॥५७॥

दशापति से यदि बुध ६,८,१२ में हो या नीच राशि में हो तो शारीरिक पीड़ा, मानसिक चिन्ता एवं स्त्री-पुत्र को कष्ट होता है। बुधान्तर दशा के आरम्भ में दुःख, मध्य में सामान्य सुख और अन्त में राजभय तथा देशान्तर गमन होता है। द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो देहपीड़ा एवं ज्वरादि रोग होता है। आरोग्य एवं मानसिक शान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ, अन्नदान एवं विष्णु भगवान् की चाँदी की प्रतिमा बनाकर दान करनी चाहिए ॥५४-५७॥

रवि में केतु का अन्तर्दशा-फल

सूर्यस्यान्तर्गते केतौ देहपीडा मनोव्यथा।
अर्थव्ययं राजकोपं स्वजनादेरुपद्रवम् ॥५८॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमम्।
मध्ये क्लेशमवाप्नोति मृतवार्तागमं वदेत् ॥५९॥

सूर्य में केतु की अन्तर्दशा चल रही हो तो शरीर में पीड़ा, मानसिक व्यथा, धननाश, राजभय एवं बन्धु-बान्धवों से कलह होता है। यदि लग्नेश से युत हो तो प्रारम्भ में धनागम एवं सुख, मध्य में दुःख एवं अन्त में मरण या मरणसदृश समाचार प्राप्त होता है ॥५८-५९॥

अथाष्टमव्यये चैव दायेशात्पापसंयुते।
कपोलदन्तरोगश्च मूत्रकृच्छ्रस्य सम्भवः ॥६०॥
स्थानविच्युतिरर्थस्य मित्रहानिः पितुर्मृतिः।
विदेशगमनं चैव शत्रुपीडा महद्भयम् ॥६१॥

दशाधिकारी (सूर्य) से ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो गाल, दाँत एवं मूत्रकृच्छ्र रोग की सम्भावना होती है, साथ ही स्थाननाश, धन, मित्र की हानि और पिता का मरण, विदेश भ्रमण, शत्रुपीड़ा एवं महान् भय होता है ॥६०-६१॥

लग्नादुपचये केतौ योगकारकसंयुते।
शुभांशे शुभवर्गे च शुभकर्मफलोदयः ॥६२॥
पुत्रदारादिसौख्यं च सन्तोषं प्रियवर्द्धनम्।
विचित्रवस्त्रलाभश्च यशोवृद्धिः सुखावहा ॥६३॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं वदेत्।
दुर्गाजपं च कुर्वीत छागदानं सुखाप्तये ॥६४॥

लग्न से केतु ३,६,१०,११ में हो या योगकारक ग्रह से युत हो, या शुभ ग्रह के नवमांश में हो या शुभ वर्ग में हो तो शुभफल का उदय, स्त्री-पुत्रसुख, सन्तोष, मित्रों की वृद्धि, विचित्र वस्त्र का लाभ एवं सुखकारक यश की वृद्धि होती है। यदि केतु २, ७ स्थान का स्वामी हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उसकी शान्ति एवं सुख की प्राप्ति के लिए दुर्गाजी का अनुष्ठान (शत, सहस्रचण्डी), जप, छागदान आदि करना चाहिए ॥६२-६४॥

रवि में शुक्रान्तर्दशा का फल

सूर्यस्यान्तर्गते शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा।
स्वोच्चे मित्रस्ववर्गस्थेऽभीष्टस्त्रीभोग्यसम्पदः ॥६५॥
ग्रामान्तरप्रयाणं च ब्राह्मणप्रभुदर्शनम्।
राज्यलाभो महोत्साहश्छत्रचामरवैभवम् ॥६६॥

गृहे कल्याणसम्पत्तिर्नित्यं मिष्ठान्नभोजनम् ।
विद्रुमादिरत्नलाभो मुक्तावस्त्रादिलाभकृत् ॥६७॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् बहुधान्यधनादिकम् ।
उत्साहः कीर्तिसम्पत्तिर्नरवाहनसम्पदः ॥६८॥

सूर्य के अन्तर्गत शुक्र की अन्तर्दशा हो और शुक्र लग्न से केन्द्र या त्रिकोण में, स्वोच्च में या मित्र-स्ववर्ग में स्थित हो तो इच्छानुसार स्त्री-भोग, सम्पत्ति, ग्रामान्तर में भ्रमण, ब्राह्मण और राजा का दर्शन, राज्यलाभ, महान् उत्साह, छत्र-चामर की प्राप्ति, घर में मांगलिक कार्य, धन, मिष्ठान्न भोजन, मोती आदि रत्न का लाभ, वस्त्र, पशु, धन-धान्य का लाभ, उत्साह, यश एवं वाहन आदि का समुचित लाभ प्राप्त होता है ॥६५-६८॥

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे दायेशाद् बलवर्जिते ।
राजकोपो मनःक्लेशः पुत्रस्त्रीधननाशनम् ॥६९॥
भुक्त्यादौ मध्यमं मध्ये लाभः शुभकरो भवेत् ।
अन्ते यशोनाशनं च स्थानभ्रंशमथापि वा ॥७०॥
बन्धुद्वेषं वदेद् वापि स्वकुलाद् भोगनाशनम् ।
भार्गवे द्यूननाथे तु देहे जाड्यं रुजोभयम् ॥७१॥
रन्ध्ररिष्फसमायुक्ते ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥७२॥
श्वेतां गां महिषीं दद्याद्रुद्रजाप्यं च कारयेत् ।
ततः शान्तिमवाप्नोति शङ्करस्य प्रसादतः ॥७३॥

यदि शुक्र लग्न या दशापति से ६, ८, १२ में हो या बलरहित हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजभय, मानसिक कष्ट तथा पुत्र-स्त्री एवं धन का नाश हो जाता है। दशा के प्रारम्भ में मध्यफल, मध्य में शुभ फल और अन्त में अपयश, स्थानभ्रष्टता, बन्धु-बान्धवों से द्वेष एवं सुखभोग की हानि होती है। शुक्र सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट एवं रोगभय होता है। षष्ठेश अष्टमेश से युत हो तो अपमृत्यु का भय होता है। इन दोषों के शमन के लिए मृत्युञ्जय का जप, श्वेत गौ, महिषी का दान, रुद्रानुष्ठान (जप) करने से शंकर भगवान् की प्रसन्नता से सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है ॥६९-७३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सूर्यदशान्तर्दशाफलाध्याय: ॥५४॥

अथ चन्द्रान्तर्दशाफलाध्यायः ॥५५॥

चन्द्रमा की दशा में चन्द्रमा आदि का अन्तर्दशा-फल

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चन्द्रे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा।
भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥१॥
देवतागुरुभक्तिश्च पुण्यश्लोकादिकीर्तनम्।
राज्यलाभो महत्सौख्यं यशोवृद्धिः सुखावहा ॥२॥
पूर्णे चन्द्रे बलं पूर्णं सेनापत्यं महत्सुखम् ॥२$\frac{1}{2}$॥

यदि चन्द्र अपने उच्च में, स्वक्षेत्र में, त्रिकोण, एकादश या भाग्येश, कर्मेश के साथ स्थित हो तो उसकी अन्तर्दशा में हाथी, घोड़ा, वस्त्रादि का लाभ होता है एवं देवता और गुरु (मान्य) जनों में भक्ति, पुण्यश्लोकादि का पाठ, भगवद् भजन, राज्यलाभ, पूर्ण सुख तथा यश की वृद्धि होती है। यदि चन्द्र पूर्ण बली हो तो जातक को सेनानायक का अधिकार प्राप्त होता है ॥१-२$\frac{1}{2}$॥

पापयुक्तेऽथवा चन्द्रे नीचे वा रिष्फषष्ठगे ॥३॥
तत्काले धननाशः स्यात् स्थानच्युतिरथापि वा।
देहालस्यं मनस्तापो राजमन्त्रिविरोधकृत् ॥४॥
मातृक्लेशो मनोदुःखं निगडं बन्धुनाशनम्।
द्वितीयद्यूननाथे तु रन्ध्ररिष्फेशसंयुते ॥५॥
देहजाड्यं महाभङ्गमपमृत्योर्भयं वदेत्।
श्वेतां गां महिषीं दद्यात् स्वदशान्तर्गते विधौ ॥६॥

यदि चन्द्रमा पापयुत हो, नीच में हो या १२-६ में हो तो उसकी अन्तर्दशा में धननाश, स्थाननाश, आलस्य, मानसिक ताप, राजा और मन्त्रियों से वैरभाव, मातृकष्ट, मन में दुःख, बन्धन एवं बन्धुओं का नाश होता है। यदि चन्द्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो या ८, १२ के स्वामी से युत हो तो देह में जड़ता, स्थानभङ्ग एवं अपमृत्यु का भय होता है। अरिष्टशमन हेतु श्वेता गौ एवं महिषी का दान करना चाहिए ॥३-६॥

चन्द्रदशा में भौमान्तर्दशा का फल

चन्द्रस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
सौभाग्यं राजसन्मानं वस्त्राभरणभूषणम् ॥७॥
यत्नात् कार्यार्थसिद्धिस्तु भविष्यति न संशयः।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च व्यवहारे जयो भवेत् ॥८॥
कार्यलाभो महत्सौख्यं स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे फलम् ॥८$\frac{1}{2}$॥

चन्द्र के अन्तर्गत मंगल की अन्तर्दशा चल रही हो और मंगल लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में बैठा हो तो सौभाग्य, राजा से सन्मान-वस्त्र-आभूषणादि की प्राप्ति, यत्न से कार्य की सफलता, गृह, क्षेत्र की वृद्धि, व्यवहार में विजय तथा यदि मंगल अपने उच्च या स्वगृह में बैठा हो तो कार्य लाभ और पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है ॥७-८$\frac{1}{2}$॥

तथाऽष्टमव्यये भौमे पापयुक्तेऽथ वा यदि ॥९॥
दायेशादशुभस्थाने देहार्तिः परवीक्षिते ।
गृहक्षेत्रादिहानिश्च व्यवहारे तथा क्षतिः ॥१०॥
भृत्यवर्गेषु कलहो भूपालस्य विरोधनम् ।
आत्मबन्धुवियोगश्च नित्यं निष्ठुरभाषणम् ॥११॥
द्वितीये द्यूननाथे तु रन्ध्रे रन्ध्राधिपो यदा ।
तद्दोषपरिहारार्थं ब्राह्मणस्याऽर्चनं चरेत् ॥१२॥

यदि मंगल ८, १२ में हो और पापयुत हो, या दशाधिप से अशुभ (६,८,१२) में शत्रु से दृष्ट हो तो शारीरिक कष्ट, गृह-क्षेत्रों में हानि, व्यवहार में क्षति, नौकरों से कलह, राजा से विद्रोह, स्व-बन्धु-बान्धवों से विद्रोह, सदैव कटु भाषण एवं क्षण-क्षण में क्रोध का आगमन होता है। २, ७ का स्वामी होकर ८ में हो या स्वतः अष्टमेश हो तो अशुभ फलदायक होता है। तद्दोष परिहार के लिये ब्राह्मणों का अर्चन, आदर, सत्कार करने से अशुभ फल को त्याग कर शुभ फलदायक हो जाता है ॥९-१२॥

चन्द्र में राह्वन्तर दशा का फल

चन्द्रस्यान्तर्गते राहौ लग्नात् केन्द्रत्रिकोणगे ।
आदौ स्वल्पफलं ज्ञेयं शत्रुपीडा महद्भयम् ॥१३॥
चौराहिराजभीतिश्च चतुष्पाज्जीवपीडनम् ।
बन्धुनाशो मित्रहानिर्मानहानिर्मनोव्यथा ॥१४॥

चन्द्रमा की महादशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही हो और राहु केन्द्र-त्रिकोण में बैठा हो तो प्रारम्भ में सामान्य शुभफल, पश्चात् शत्रुपीड़ा, महान् भय, चोर, सर्प और राजभय, पशुओं को कष्ट, बन्धुनाश, मित्रहानि, मानहानि एवं मानसिक सन्ताप होता है ॥१३-१४॥

शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे लग्नादुपचयेऽपि वा ।
योगकारकसम्बन्धे सर्वकार्यार्थसिद्धिकृत् ॥१५॥
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे क्वचित्प्रभुसमागमः ।
वाहनाम्बरलाभश्च स्वेष्टकार्यार्थसिद्धिकृत् ॥१६॥

यदि राहु शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो अथवा लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) में हो या योगकारक ग्रहों के साथ युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में सभी कार्यों में सफलता, नैर्ऋत्य या पश्चिम दिशा में राजा आदि से समागम और उनके द्वारा वाहन का वस्त्र तथा लाभ, अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है ॥१५-१६॥

दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते।
स्थानभ्रंशो मनोदुःखं पुत्रक्लेशो महद्भयम् ॥१७॥
दारपीडा क्वचिज्ज्ञेया क्वचित् स्वाङ्गे रुजोभयम्।
वृश्चिकादिविषाद् भीतिश्चौराहिनृपपीडनम् ॥१८॥

दशापति से यदि राहु निर्बल होकर ८, १२ में बैठा हो तो स्थानहानि, मानसिक व्यथा, पुत्रकष्ट, महान् भय, कभी स्त्री को कष्ट तो कभी स्वशरीर में रोगभय, बिच्छू-सर्प आदि का विषभय, चोर और राजभय भी होता है ॥१७-१८॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्देवतादर्शनं महत् ॥१९॥
परोपकार-धर्मादि-पुण्यकर्मादिसंग्रहः ।
द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहबाधा भविष्यति ॥२०॥
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रजाप्यं समाचरेत्।
छागदानं प्रकुर्वीत देहारोग्यं प्रजायते ॥२१॥

दशापति से राहु यदि केन्द्र, त्रिकोण, ३, ११ में हो तो पुण्यकार्य, तीर्थयात्रा, देव-दर्शन, परोपकार, धार्मिक कृत्य में अभिरुचि एवं पुण्यकर्मों का संग्रह होता है। यदि २, ७ स्थान में हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उसकी शान्ति के लिए रुद्री जप और छागदान करने से देह में आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥१९-२१॥

जीवान्तर्दशा फल

चन्द्रस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वगेहे लाभगे स्वोच्चे राज्यलाभो महोत्सवः ॥२२॥
वस्त्राऽलङ्कारभूषाप्ती राजप्रीतिर्धनागमः।
इष्टदेवप्रसादेन गर्भाधानादिकं फलम् ॥२३॥
तथा शोभनकार्याणि गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत्।
राजाश्रयं धनं भूमिगजवाजिसमन्वितम् ॥२४॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥२४½॥

चन्द्रमा की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा हो और गुरु लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में हो, स्वगृह, स्वोच्च, लाभस्थान में बैठा हो तो जीवान्तर्दशा में राज्यलाभ, महोत्सव, वस्त्र, अलङ्कार, आभूषण आदि की प्राप्ति, राजकृपा, धनागम, इष्टदेव की प्रसन्नता, गर्भाधानादि की प्राप्ति, गृह में शुभ कार्य, लक्ष्मी की दृष्टि, राजाश्रय, धन, भूमि, हाथी, घोड़ा आदि का लाभ और महाराज की प्रसन्नता से सुख एवं अभीष्ट कार्य की सिद्धि होती है ॥२२-२४½॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वाऽस्तङ्गते यदि ॥२५॥
पापयुक्तेऽशुभं कर्म गुरुपुत्रादिनाशनम्।

स्थानभ्रंशो मनोदु:खमकस्मात्कलहो ध्रुवम् ॥२६॥
गृहक्षेत्रादिनाशश्च वाहनाम्बरनाशनम्।
दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥२७॥
भोजनाम्बरपश्वादिलाभं सौख्यं करोति च।
भ्रात्रादि-सुखसम्पत्तिं धैर्य-वीर्यपराक्रमम् ॥२८॥
यज्ञ-व्रत-विवाहादि-राज्यश्री-धनसम्पद: ॥२८$\frac{1}{2}$॥

यदि गुरु ६, ८, १२ में नीच या अस्त या पापग्रह से युत हो तो गुरु-(पिता या मान्य जन)-पुत्रादि का नाश, स्थाननाश, मानसिक दु;ख, स्वजनों से अकस्मात् कलह एवं घर, खेती, वाहन, वस्त्रादि का नाश होता है। यदि दशाधिकारी से केन्द्र, त्रिकोण, ३, ११ में बैठा हो तो भोजन, वस्त्र, पशु-सुख, भ्राता आदि से सुख, सम्पत्ति की प्राप्ति, धीरता, वीरता, पराक्रम, यज्ञ, व्रत, राज्यलक्ष्मी, विवाहादि मांगिलक कार्य सम्पन्न होते हैं ॥२५-२८$\frac{1}{2}$॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥२९॥
करोति कुत्सितान्नं च विदेशगमनं तथा।
भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तमन्ते क्लेशकरं भवेत् ॥३०॥
द्वितीयद्यूननाथे च ह्यपमृत्युर्भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।
स्वर्णदानमिति प्रोक्तं सर्वकष्टनिवारकम् ॥३१॥

दशेश से यदि ६,८,१२ में हो या बलरहित हो तो कुभोजन एवं देशान्तर में गमन होता है। दशा आरम्भ में शुभ और अन्त में क्लेशकारक होती है। लग्न से २,७ स्थानाधिप हो तो अपमृत्यु का भय होता है। इन दोषों के शमन के लिए शिवसहस्रनाम का जप एवं सुवर्ण दान करना चाहिए। ऐसा करने से समस्त कष्टों का निवारण होता है ॥२९-३१॥

शन्यन्तर दशाफल

चन्द्रस्यान्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वक्षेत्रे स्वांशगे चैव मन्दे तुङ्गांशसंयुते ॥३२॥
शुभदृष्टयुते वाऽपि लाभे वा बलसंयुते।
पुत्रमित्रार्थसम्पत्ति: शूद्रप्रभुसमागमात् ॥३३॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं गृहे क्षेत्रादिवृद्धिदम्।
पुत्रलाभश्च कल्याणं राजानुग्रहवैभवम् ॥३४॥

चन्द्रमा की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो और शनि यदि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वराशि, स्वनवमांश, अपने उच्च में स्थित होकर शुभ ग्रहों से युत या दृष्ट हो, या बलयुत होकर लाभ स्थान में बैठा हो तो पुत्र, मित्र, धन-सम्पत्ति की प्राप्ति, शूद्रों के सम्पर्क से व्यवस.य में अधिक लाभ, गृह में खेती की वृद्धि, पुत्रलाभ, कल्याण एवं राजा की कृपा से धन-धान्यादि सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥३२-३४॥

षष्ठाष्टमव्यये मन्दे नीचे वा धनगेऽपि वा।

तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थे स्नानं चैव तु दर्शनम् ॥३५॥
अनेकजनत्रासश्च शस्त्रपीडा भविष्यति ॥३५$\frac{१}{२}$॥

यदि शनि ६, ८, १२ में हो, या नीच में या धनभाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा के प्रारम्भ में पुण्य तीर्थों में स्नान एवं उनका दर्शन होता है; परन्तु अनेक जनों का भय एवं शस्त्रों से पीड़ा होती है ॥३५-३५$\frac{१}{२}$॥

दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे बलगेऽपि वा ॥३६॥
क्वचित्सौख्यं धनाप्तिश्च दारपुत्रविरोधकृत्।
द्वितीयद्यूनरन्ध्रस्थे देहबाधा भविष्यति ॥३७॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत्।
कृष्णां गां महिषीं दद्याद्दानेनारोग्यमादिशेत् ॥३८॥

दशापति से शनि यदि बलवान होकर केन्द्र-त्रिकोण में बैठा हो तो कभी-कभी सुख, कभी धनलाभ एवं कभी-कभी स्त्री-पुत्र से विरोध होता है। यदि शनि २, ७, ८ में हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के निवारण हेतु मृत्युञ्जय का जप तथा काली गाय एवं महिषी का दान करने से आरोग्यादि शुभ फल की प्राप्ति होती है ॥३६-३८॥

चन्द्र दशा में बुधान्तर्दशा फल

चन्द्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
स्वर्क्षे निजांशके सौम्ये तुङ्गे वा बलसंयुते ॥३९॥
धनागमो राजमानप्रियवस्त्रादिलाभकृत्।
विद्याविनोदसद्गोष्ठी ज्ञानवृद्धिः सुखावहा ॥४०॥
सन्तानप्राप्तिः सन्तोषो वाणिज्याद् धनलाभकृत्।
वाहनच्छत्रसंयुक्त-नानालङ्कार-लाभकृत् ॥४१॥

चन्द्रमा की महादशा में बुध की अन्तर्दशा हो, बुध यदि लग्न से केन्द्र-त्रिकोण-लाभ स्थान में हो या स्वराशि, स्वनवमांश, स्वोच्च, बलयुत हो तो धनागम, राजा से सम्मान, अभीष्ट वस्त्रादि का लाभ, विद्याचर्चा, सत्सङ्ग, गोष्ठी, ज्ञानवृद्धि, सुख, पुत्र की प्राप्ति, सन्तोष, व्यापार में लाभ, वाहन एवं छत्र की प्राप्ति तथा अनेक आभूषणों का लाभ होता है ॥३९-४१॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा।
विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मशुभादिकम् ॥४२॥
राजप्रीतकरश्चैव विद्वज्जनसमागमः।
मुक्तामणिप्रवालानि वाहनाम्बरभूषणम् ॥४३॥
आरोग्यप्रीतिसौख्यं च सोमपानादिकं सुखम् ॥४३$\frac{१}{२}$॥

दशापति से यदि बुध केन्द्र त्रिकोण या लाभ, धनभाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा

में विवाह, यज्ञ, दीक्षा, दान, धर्मादि शुभ कार्य होते हैं। राजा से प्रेम, विद्वानों का समागम, मोती, मूँगा, मणि, वाहन, वस्त्र, आभूषण, आरोग्य, प्रसन्नता, सुख एवं सोमरस का पान होता हैं ॥४२-४३½॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा नीचगेऽपि वा ॥४४॥
तद्भुक्तौ देहबाधा च कृषिगोभूमिनाशनम्।
कारागृहप्रवेशश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥४५॥
द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा महद्भयम्।
छागदानं प्रकुर्वीत विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥४६॥

दशापति से बुध यदि ६, ८, १२ में हो या अपने नीच राशि में हो तो उसकी अन्तर्दशा में शारीरिक कष्ट, कृषिकार्य, गौ, भूमि आदि का नाश, बन्धन एवं स्त्री-पुत्र को कष्ट होता है। यदि बुध द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो जातक को ज्वर से पीड़ा एवं महान् भय होता है। उसके शान्त्यर्थ छागदान और विष्णुसहस्र नाम का पाठ करना चाहिए ॥४४-४६॥

चन्द्रमा की महादशा में केत्वन्तर्दशा फल

चन्द्रस्यान्तर्गते केतौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
दुश्चिक्ये बलसंयुक्ते धनलाभं महत्सुखम् ॥४७॥
पुत्रदारादिसौख्यं च विधिकर्म करोति च।
भुक्त्यादौ धनहानिः स्यान्मध्यगे सुखमाप्नुयात् ॥४८॥

चन्द्रमा की दशा में केतु की अन्तर्दशा हो, केतु लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में हो या बलयुत होकर ३ भाव में हो तो धन लाभ, पूर्ण सुख, पुत्र-स्त्री आदि को सुख एवं धार्मिक कृत्य में अभिरुचि होती है। अन्तर्दशा के प्रारम्भ में धनहानि और आगे सुख की प्राप्ति होती है ॥४७-४८॥

दायेशात् केन्द्रलाभे वा त्रिकोणे बलसंयुते।
क्वचित्फलं दशादौ तु दद्यात् सौख्यं धनागमम् ॥४९॥
गोमहिष्यादिलाभं च भुक्त्यन्ते चार्थनाशनम् ॥४९½॥

दशापति से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में बली होकर केतु बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में दशा के आरम्भ में कुछ धनागम, सुख एवं गौ, महिष्यादि का लाभ होता है, लेकिन अन्त में धन का नाश हो जाता है ॥४९-४९½॥

पापयुक्तेऽथवा दृष्टे दायेशाद्रन्ध्ररिःफगे ॥५०॥
शत्रुतः कार्यहानिः स्यादकस्मात्कलहो ध्रुवम्।
द्वितीयद्यूनराशिस्थे ह्यनारोग्यं महद्भयम् ॥५१॥
मृत्युञ्जयजपं कुर्यात् सर्वसम्पत्प्रदायकम्।
ततः शान्तिमवाप्नोति शङ्करस्य प्रसादतः ॥५२॥

केतु दशापति से ८, १२ में हो या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी अन्तर्दशा में शत्रु से कार्य का नाश एवं अकस्मात् कलह होता है। यदि २, ७ भाव में हो तो शरीर में रोग का भय होता है। ऐसा भयकारक समय उपस्थित होने पर समस्त सुख-सम्पत्ति को देने वाले मृत्युञ्जय का जप करने से शंकर भगवान की प्रसन्नता से शान्ति तथा सुख की प्राप्ति होती है ॥५०-५२॥

चन्द्रमा की दशा में शुक्रान्तर्दशा-फल

चन्द्रस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि राज्यलाभं करोति च ॥५३॥
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम्।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्दारपुत्रादिवर्धनम् ॥५४॥
नूतनागारनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
सुगन्धपुष्पमाल्यादि-रम्यस्त्र्यारोग्यसम्पदम् ॥५५॥

चन्द्रमा की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो और शुक्र लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण, अपने उच्च राशि में या अपने क्षेत्र में बैठा हो तो राज्यलाभ एवं राजा की कृपा से वाहन, वस्त्र, आभूषण, पशुओं का लाभ होता है, साथ ही स्त्री-पुत्रादि को सुख, नवीन गृह का निर्माण, सदैव मिष्ठान्न भोजन, सुगन्धित पुष्प-माल्यादि से सुशोभित, सुन्दरी स्त्री का संग एवं आरोग्य सम्पदाओं की प्राप्ति होती है ॥५३-५५॥

दशाधिपेन संयुक्ते देहसौख्यं महत्सुखम्।
सत्कीर्तिसुखसम्पत्ति-गृहक्षेत्रादि-वृद्धिकृत् ॥५६॥

यदि शुक्र दशाधिप (चन्द्र) से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में शरीर में सुख, पूर्ण, सन्तोष, सुयश, सम्पत्ति, गृहभूमि आदि की वृद्धि होती है ॥५६॥

नीचे वाऽस्तङ्गते शुक्रे पापग्रहयुतेक्षिते।
भूनाशः पुत्रमित्रादिनाशनं पत्निनाशनम् ॥५७॥
चतुष्पाज्जीवहानिः स्याद्राजद्वारे विरोधकृत् ॥५७½॥

यदि शुक्र अपने नीच में हो या अस्त, पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो भूमि, पुत्र, मित्र, स्त्री, पशु की हानि एवं राजा से विरोध होता है ॥५७-५७½॥

धनस्थानगते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ॥५८॥
निधिलाभं महत्सौख्यं भूलाभं पुत्रसम्भवम्।
भाग्यलाभाधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिं करोत्यसौ ॥५९॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा।
देवब्राह्मणभक्तिश्च मुक्ताविद्रुमलाभकृत् ॥६०॥

यदि शुक्र धनभाव में या स्वोच्च स्वराशि में बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में निधि

का लाभ, पूर्ण सुख, भूलाभ एवं पुत्र की प्राप्ति होती है। यदि शुक्र लाभेश या भाग्येश के साथ हो तो भाग्य की वृद्धि, राजा की कृपा से सुख, अभीष्ट सिद्धि, देवता ब्राह्मणों में भक्ति तथा मोती, प्रवाल आदि रत्नों का लाभ होता है ॥५८-६०॥

दायेशाल्लाभगे शुक्रे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च वित्तलाभो महत्सुखम् ॥६१॥

दशापति से शुक्र लाभ, केन्द्र, त्रिकोण में बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में गृह, खेती की वृद्धि, धनलाभ एवं पूर्ण सुख की प्राप्ति होती है ॥६१॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते।
विदेशवास-दुःखार्ति-मृत्यु-चौरादि-पीडनम् ॥६२॥

दशापति से ६, ८, १२ में शुक्र हो या पाप ग्रह से युत हो तो विदेश में वास, दुःख, मृत्यु एवं चौर आदि से पीड़ा होती है ॥६२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु अपमृत्युभयं भवेत्।
तद्दोषविनिवृत्त्यर्थं रुद्रजाप्यं च कारयेत् ॥६३॥
श्वेतां गां रजतं दद्याच्छान्तिमाप्नोत्यसंशयः।
शङ्करस्य प्रसादेन नात्र कार्या विचारणा ॥६४॥

यदि शुक्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में अपमृत्यु का भय होता है। उस दोष की शान्ति हेतु रुद्री पाठ, जप एवं श्वेत गाय और चाँदी दान करने से शंकर भगवान् की कृपा से शान्ति तथा सुख की प्राप्ति होती है ॥६३-६४॥

चन्द्रमा की दशा में सूर्यान्तर्दशा-फल

चन्द्रस्यान्तर्गते भानौ स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते।
केन्द्रे त्रिकोणे लाभे वा धने वा सोदरालये ॥६५॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिर्गृहे कल्याणशोभनम्।
मित्रराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभकृत् ॥६६॥
गर्भाधानफलप्राप्तिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत्।
भुक्त्यन्ते देह आलस्यं ज्वरपीडा भविष्यति ॥६७॥

चन्द्रमा की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा चल रही हो, सूर्य स्वोच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में या धनस्थान में या तृतीय में हो तो उसकी अन्तर्दशा में नष्ट राज्य और धन की प्राप्ति, गृह में कल्याणकारक सुन्दर कार्य, मित्र एवं राजा की प्रसन्नता से गाँव और भूमि का लाभ, पुत्र की प्राप्ति होती है एवं गृह में लक्ष्मी की दृष्टि रहती है। अन्तर्दशा के अन्त में शरीर में आलस्य एवं ज्वर से पीड़ा होती है ॥६५-६७॥

दायेशादपि रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते।
नृपचौराहिभीतिश्च ज्वररोगादिसम्भवः ॥६८॥

विदेशगमने चार्तिं लभते फलवैभवम्।
द्वितीयद्यूननाथे तु ज्वरपीडा भविष्यति ॥६९॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवपूजां च कारयेत्।
ततः शान्तिमवाप्नोति शङ्करस्य प्रसादतः ॥७०॥

दशापति (चन्द्र) से सूर्य ८, १२ में पाप ग्रहयुत हो तो राज-चौर-सर्प का भय, ज्वरादि रोगों की उत्पत्ति एवं देशान्तर में जाने से पीड़ा होती है। यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में ज्वरसम्बन्धी रोगों से पीड़ा होती है। उसके दोष-निवारणार्थ श्री शंकर जी की पूजा करने पर शंकर की प्रसन्नता से शान्ति की प्राप्ति होती है ॥६८-७०॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां चन्द्रान्तर्दशाफलाध्यायः ॥५५॥

अथ भौमदशान्तर्दशाफलाध्यायः ॥५६॥

भौम दशा में भौमान्तर्दशाफल

कुजे स्वान्तर्गते विप्र! लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
लाभे वा शुभसंयुक्ते दुश्चिक्ये धनसंयुते ॥१॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते राजाऽनुग्रहवैभवम्।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थलाभकृत् ॥२॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे गोक्षीरसङ्कुलम् ॥२½॥

मंगल की महादशा में मंगल की ही अन्तर्दशा हो और मंगल यदि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण या लाभस्थान में हो या शुभ ग्रह से युत होकर ३, २ में हो या लग्नेश से युत हो तो राजा की अनुकम्पा से धन की प्राप्ति, लक्ष्मी की दृष्टि, नष्ट राज्य-धन आदि का लाभ, पुत्रोत्पत्तिजन्य शुभ उत्सव, सन्तोष और गौ, दूध आदि की वृद्धि होती है ॥१-२½॥

स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे स्वांशे वा बलसंयुते ॥३॥
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गोमहिष्यादिलाभकृत्।
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥४॥

यदि मंगल अपने उच्च में, स्वराशि में, स्वनवमांश में बलयुत होकर बैठा हो तो गृह, भूमि, गौ, महिष आदि पशुओं का लाभ होता है और राजा की कृपा से इच्छित कार्य तथा सुख की वृद्धि होती है ॥३-४॥

अथाऽष्टमव्यये भौमे पापदृग्योगसंयुते।
मूत्रकृच्छ्रादिरोगश्च कष्टाधिक्यं व्रणाद्भयम् ॥५॥
चौराहिराजपीड़ा च धनधान्यपशुक्षयः ॥५½॥

यदि मंगल ८, १२ में हो या पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों से कष्ट, व्रण-(घाव)-भय, चौर, सर्प और राजा से पीड़ा एवं धन-धान्य तथा पशुओं का नाश होता है ॥५-५½॥

द्वितीये द्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोव्यथा ॥६॥
तद्दोषपरिहारार्थं रुद्रजाप्यं च कारयेत्।
अनड्वाहं प्रदद्याच्च कुजदोषनिवृत्तये ॥७॥
तेन तुष्टो भवेद् भौमः शङ्करस्य प्रसादतः।
आरोग्यं कुरुते तस्य सर्वसम्पत्तिदायकम् ॥८॥

यदि मंगल द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में शारीरिक कष्ट एवं मानसिक चिन्ता होती है। इस अनिष्ट के शमन हेतु रुद्रजप एवं वृष का दान करना चाहिए। ऐसा करने से भगवान् शंकर की प्रसन्नता से आरोग्य की प्राप्ति एवं सभी सम्पत्ति का अभ्युदय होता है ॥६-८॥

मंगल की महादशा में राह्वन्तर्दशाफल

कुजस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे मूलत्रिकोणगे।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥९॥
तत्काले राजसम्मानं गृहभूम्यादिलाभकृत्।
कलत्रपुत्रलाभः स्याद् व्यवसायात्फलाधिकम् ॥१०॥
गङ्गास्नानफलावाप्तिं विदेशगमनं तथा ॥१०½॥

मंगल की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो और राहु अपने उच्च में, स्वमूल-त्रिकोण में शुभ.ग्रह से युत या दृष्ट हो या लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में हो तो उस समय राजा से सम्मान, गृह, भूमि, स्त्री, पुत्र आदि का लाभ, अपने व्यवसाय में विशेष अर्थागम, गङ्गा आदि पवित्र तीर्थों में स्नान और देशान्तर का भ्रमण होता है ॥९-१०½॥

तथाऽष्टमव्यये राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते ॥११॥
चौराहिव्रणभीतिश्च चतुष्पाज्जीवनाशनम्।
वातपित्तरुजो भीतिः कारागृहनिवेशनम् ॥१२॥
धनस्थानगते राहौ धननाशं महद् भयम्।
सप्तमस्थानगे वाऽपि ह्यपमृत्युभयं महत् ॥१३॥
नागपूजां प्रकुर्वीत देवब्राह्मणभोजनम्।
मृत्युञ्जयजपं कुर्यादायुरारोग्यलब्धये ॥१४॥

यदि राहु लग्न से ८, १२ में या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को चोर, सर्प, व्रण का भय होता है; साथ ही पशुओं का विनाश, वायु, पित्तजन्य रोग एवं बन्धन होता है। यदि राहु द्वितीय भाव में हो तो धन का नाश एवं महान् भय होता है। सप्तम भाव में हो तो अपमृत्यु का भय होता है। अनिष्ट के निवारण हेतु देवपूजा, ब्राह्मणभोजन एवं मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए। ऐसा करने से दीर्घायु एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥११-१४॥

मंगल में जीवान्तर्दशाफल

कुजस्यान्तर्गते जीवे त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा।
लाभे वा धनसंयुक्ते तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥१५॥
सत्कीर्तिं राजसम्मानं धनधान्यस्य वृद्धिकृत्।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिलाभकृत् ॥१६॥

मंगल की महादशा में जीव की अन्तर्दशा चल रही हो और जीव लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में हो या लाभ, धनभाव में हो या स्वोच्च, स्वनवमांश में हो तो सुयश, राजा से आदर, धन-धान्यों की वृद्धि, गृह में कल्याण, सम्पत्ति एवं स्त्री, पुत्रादि को सुखादि का लाभ होता है ॥१५-१६॥

दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ।
भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते वाहनाधिपसंयुते ॥१७॥
लग्नाधिपसमायुक्ते शुभांशे शुभवर्गगे ।
गृहक्षेत्राभिवृद्धिश्च गृहे कल्याणसम्पदः ॥१८॥
देहारोग्यं महत्कीर्तिर्गृहे गोकुलसंग्रहः ।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद्व्यवसायात्फलाधिकम् ॥१९॥
कलत्रपुत्रसौख्यं च राजसम्मानवैभवम् ॥१९½॥

यदि गुरु दशापति से केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में हो; भाग्येश, कर्मेश या चतुर्थेश या लग्नेश के साथ युत हो, शुभ नवमांश या शुभ वर्ग में हो तो उसकी अन्तर्दशा में गृह, क्षेत्र, भूमि की वृद्धि, गृह में कल्याण, सम्पत्ति, शारीरिक आरोग्यता, महान् यश, पशुओं का संग्रह, चौपायों से लाभ, व्यवसाय में उचित लाभ, स्त्री-पुत्र को सुख एवं राजा से सम्मान तथा धनलाभ होता है ॥१७-१९½॥

षष्ठाऽष्टमव्यये जीवे नीचे वाऽस्तङ्गते सति ॥२०॥
पापग्रहेण संयुक्ते दृष्टे वा दुर्बले सति ।
चौराहिनृपभीतिश्च पित्तरोगादिसम्भवम् ॥२१॥
प्रेतबाधा भृत्यनाशः सोदराणां विनाशनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युज्वरादिकम् ॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ॥२२॥

यदि गुरु लग्न से ६, ८, १२ में हो या स्वनीचराशि में या अस्त हो, पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो, निर्बल हो तो उसकी अन्तर्दशा में चौर, सर्प एवं राजभय होता है; साथ ही पित्तसम्बन्धी रोग की उत्पत्ति, प्रेतबाधा एवं नौकरों और सहोदरों का नाश होता है। यदि गुरु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय एवं ज्वरादि रोगों से पीड़ा होती है। उक्त दोष की शान्ति हेतु शिव-सहस्रनाम का पाठ कराने से दोष का निवारण होता है ॥२०-२२॥

कुजस्यान्तर्गते मन्दे स्वर्क्षे केन्द्रत्रिकोणगे ।
मूलत्रिकोणकेन्द्रे वा तुङ्गांशे स्वांशगे सति ॥२३॥
लग्नाधिपतिना वाऽपि शुभदृष्टियुतेऽसिते ।
राज्यसौख्यं यशोवृद्धिः स्वग्रामे धान्यवृद्धिकृत् ॥२४॥
पुत्रपौत्रसमायुक्तो गृहे गोधनसंग्रहः ।
स्ववारे राजसम्मानं स्वमासे पुत्रवृद्धिकृत् ॥२५॥

मंगल की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो और शनि लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में हो, अपनी राशि में हो या अपने मूल-त्रिकोण में हो या अपने उच्च में, अपने नवमांश में लग्नेश या शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजा से सुख, यश की वृद्धि,

अपने ग्राम में धन-धान्य की वृद्धि, पुत्र-पौत्रादि से युत, गृह में गायों की वृद्धि, विशेषकर अपने वार (शनि) एवं अपने मास में पुत्रादि की वृद्धि होती है ॥२३-२५॥

नीचादिक्षेत्रगे मन्दे तथाऽष्टव्ययराशिगे ।
म्लेच्छवर्गप्रभुभयं धनधान्यादिनाशनम् ॥२६॥
निगडे बन्धनं व्याधिरन्ते क्षेत्रनिवासकृत् ॥२६½॥

यदि शनि अपने नीच, शत्रु आदि राशि में हो या ८,१२ भाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में यवनराज से भय, धन-धान्य का नाश, बन्धन, रोगभय एवं कृषि-कार्य में हानि होती है ॥२६-२६½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु पापयुक्ते महद्भयम् ॥२७॥
धननाशश्च सञ्चारे राजद्वेषो मनोव्यथा ।
चौराग्निनृपपीडा च सहोदरविनाशनम् ॥२८॥
बन्धुद्वेषः प्रमादश्च जीवहानिश्च जायते ।
अकस्माच्च मृतेर्भीतिः पुत्रदारादिपीडनम् ॥२९॥
कारागृहादिभीतिश्च राजदण्डो महद्भयम् ॥२९½॥

यदि शनि द्वितीयेश, सप्तमेश हो और पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को महाभय, धननाश, सञ्चार, राजकोप, मानसिक व्यथा, चोर, अग्नि एवं राजा से पीड़ा, सोदर बन्धु-बान्धव का विनाश, बन्धुद्वेष, प्रमाद, पशुओं की हानि, अकस्मात् मृत्युभय, पुत्र एवं स्त्री को पीड़ा, कारागार में निवास और राजदण्ड के कारण महाभय उपस्थित हो जाता है ॥२७-२९½॥

दायेशात्केन्द्रराशिस्थे लाभस्थे वा त्रिकोणगे ॥३०॥
विदेशयानं लभते दुष्कीर्तिर्विविधा तथा ।
पापकर्मरतो नित्यं बहुजीवादिहिंसकः ॥३१॥
विक्रयः क्षेत्रहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोव्यथा ।
रणे पराजयश्चैव मूत्रकृच्छ्रान्महद्भयम् ॥३२॥

दशापति से शनि यदि केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में विदेश यात्रा, अनेक अपयश, पापकर्म में प्रवृत्ति, जीवहिंसादि कुकर्म में आसक्ति, भूमि-विक्रय से हानि, स्थानभ्रष्टता, मानसिक व्यथा, युद्ध में पराजय एवं मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का महान् भय होता है ॥३०-३२॥

दायेशादथ रन्ध्रे वा व्यये वा पापसंयुते ।
तद्भुक्तौ मरणं ज्ञेयं नृपचौरादिपीडनम् ॥३३॥
वातपीडा च शूलादि-ज्ञातिशत्रुभयं भवेत् ॥३४॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं भवेत् ।
ततः सुखमवाप्नोति शङ्करस्य प्रसादतः ॥३५॥

दशापति से शनि यदि ८, १२ में पाप ग्रह के साथ बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को मृत्यु या मरणतुल्य कष्ट, राजा, चोर आदि से भय, वातरोग से पीड़ा, शूलादि रोग, कुटुम्ब तथा शत्रु से भय होता है। अनिष्टशमन हेतु मृत्युञ्जय का जप श्रेयस्कर होता है एवं शंकर भगवान् की प्रसन्नता से सुख तथा शान्ति की प्राप्ति होती है ॥३३-३५॥

मंगल की दशा में बुधान्तर्दशा-फल

कुजस्यान्तर्गते सौम्ये लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
सत्कथाश्चाऽजपादानं धर्मबुद्धिर्महद्यश: ॥३६॥
नीतिमार्गप्रसङ्गश्च नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
वाहनाम्बरपश्वादिराजकर्म सुखानि च ॥३७॥
कृषिकर्मफले सिद्धिर्वारणाम्बरभूषणम् ॥३७½॥

यदि मंगल की महादशा में बुधान्तर हो और बुध यदि लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में हो तो सत्सङ्ग, अजपा जप, धार्मिक बुद्धि, महान् यश, नीतिमार्ग में प्रवृत्ति, सदैव मिष्ठान्नभोजन, वाहन-वस्त्र-पशु आदि चौपायों का लाभ, राजकर्म में प्रवृत्ति, सुख, कृषिकार्य से लाभ, सिद्धि, वारण (हाथी) एवं आभूषण की प्राप्ति होती है ॥३६-३७½॥

नीचे वास्तङ्गते वापि षष्ठाष्टव्ययगेऽपि वा ॥३८॥
हृद्रोगं मानहानिश्च निगडं बन्धुनाशनम्।
दारपुत्रार्थनाश: स्याच्चतुष्पाज्जीवनाशनम् ॥३९॥

बुध यदि स्वनीच राशि में हो या अस्त हो अथवा लग्न से ६, ८, १२ भाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को हृदयसम्बन्धी रोग, मानहानि, बन्धन, बन्धुनाश, स्त्री, पुत्र, धन का नाश और पशुओं की क्षति होती है ॥३८-३९॥

दशाधिपेन संयुक्ते शत्रुवृद्धिर्महद्भयम्।
विदेशगमनं चैव नानारोगास्तथैव च ॥४०॥
राजद्वारे विरोधश्च कलह: स्वजनैरपि ॥४०½॥

बुध यदि दशेश से युत हो तो शत्रुओं की वृद्धि, महान् भय, विदेशगमन, विभिन्न रोगों से ग्रस्तता, राजद्वार में विरोध एवं अपने बन्धु-बान्धवों से कलह होता है ॥४०-४०½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा स्वोच्चे युक्तार्थलाभकृत् ॥४१॥
अनेकधननाथत्वं राजसम्मानमेव च।
भूपालयोगं कुरुते धनाम्बरविभूषणम् ॥४२॥
भूरिवाद्यमृदङ्गादि सेनापत्यं महत्सुखम्।
विद्या-विनोद-विमला वस्त्रवाहनभूषणम् ॥४३॥
दारपुत्रादिविभवं गृहे लक्ष्मी: कटाक्षकृत् ॥४३½॥

यदि बुध दशापति से केन्द्र-त्रिकोण या स्वोच्च में हो तो लक्षित लक्ष्य की प्राप्ति, अनेक

धनों का स्वामित्व, राजसम्मान, राजयोग, धन, वस्त्र, आभूषण की प्राप्ति, अनेक वाद्य वादन, मृदङ्गादि में प्रेम, सेनाधीश, पूर्ण सुख, शास्त्रचर्चा के द्वारा स्वच्छ बुद्धि, वस्त्र, वाहन, अलंकारादि की प्राप्ति, स्त्री-पुत्रादि वैभव एवं गृह में लक्ष्मी की दृष्टि रहती है ॥४१-४३½॥

दायेशात्षष्ठरिःफस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥४४॥
तद्दाये मानहानिः स्यात् क्रूरबुद्धिस्तु क्रूरवाक् ।
चौराग्निनृपपीडा च मार्गे दस्युभयादिकम् ॥४५॥
अकस्मात्कलहश्चैव बुधभुक्तौ न संशयः ॥४५½॥

यदि बुध दशापति से ६, ८, १२ भाव में हो, पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को मानहानि, पापबुद्धि, कटु वक्ता, चोर, अग्नि, राजा से पीड़ा, मार्ग में चोर-डाकुओं का भय एवं अकारण कलह होता है ॥४४-४५½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु महाव्याधिर्भयङ्करः ॥४६॥
अश्वदानं प्रकुर्वीत विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
सर्वसम्पत्प्रदं विप्र ! सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥४७॥

यदि बुध द्वितीयेश, सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में भयङ्कर महारोग का भय होता है। उसके शमन हेतु अश्वदान, विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने से सर्वारिष्ट की शान्ति होकर सुख-सम्पत्ति का कारक होता है ॥४६-४७॥

मंगल की महादशा में केत्वन्तर्दशा का फल

कुजस्यान्तर्गते केतौ त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा ।
दुश्चिक्ये लाभगे वाऽपि शुभयुक्ते शुभेक्षिते ॥४८॥
राजानुग्रहशान्तिश्च बहुसौख्यं धनागमः ।
किञ्चित्फलं दशादौ तु भूलाभः पुत्रलाभकृत् ॥४९॥
राजसंलाभकार्याणि चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ॥४९½॥

मंगल की महादशा में केतु की अन्तर्दशा हो तथा केतु लग्न से त्रिकोण, केन्द्र में हो या ३, ११ में शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को राजा की कृपा से सुख, धनलाभ, दशा के प्रारम्भ में स्वल्प लाभ, आगे भूलाभ, पुत्रलाभ, राज्य कार्याधिकार एवं पशुओं से लाभ होता है।४८-४९½॥

योगकारकसंस्थाने बलवीर्यसमन्विते ॥५०॥
पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ।
भृत्यवर्गधनप्राप्तिः सेनापत्यं महत्सुखम् ॥५१॥
भूपालमित्रं कुरुते यागाम्बरविभूषणम् ॥५१½॥

यदि बुध योगकारक हो, बलयुत हो तो उसकी अन्तर्दशा में पुत्रलाभ, यश की वृद्धि, गृह में लक्ष्मी की दृष्टि, नौकर वर्ग से धन की प्राप्ति, सेनाधीश का अधिकार, पूर्ण सुख, राजा से मित्रता, यज्ञ क्रिया सम्पन्न तथा वस्त्र एवं आभूषण का लाभ होता है ॥५०-५१½॥

मंगल में शुक्रान्तर्दशा-फल

दायेशात्षष्ठरिःफस्थे रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥५२॥
कलहो दन्तरोगश्च चौरव्याघ्रादिपीडनम्।
ज्वरातिसार-कुष्ठादि-दारपुत्रादिपीडनम् ॥५३॥
द्वितीयसप्तमस्थाने देहे व्याधिर्भविष्यति।
अपमानमनस्तापौ धन-धान्यादि-प्रच्युतिम् ॥५४॥

दशापति से यदि शुक्र ६, ८, १२ भाव में हो या पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में कलह, दन्तरोग, चोर, व्याघ्रादि से पीड़ा, ज्वर, अतीसार, कुष्ठादि रोग का भय एवं स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है। यदि लग्न से २, ७ स्थान में हो तो शरीर में व्याधि, अपमान, मानसिक सन्ताप एवं धन-धान्यादि की हानि होती है ॥५२-५४॥

कुजस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि शुभस्थानाधिपेऽथवा ॥५५॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं गजाश्वाम्बरभूषणम्।
लग्नाधिपेन सम्बन्धे पुत्रदारादिवर्धनम् ॥५६॥
आयुषो वृद्धिरैश्वर्यं भाग्यवृद्धिसुखं भवेत् ॥५६½॥

मंगल में शुक्रान्तर का समय हो और शुक्र लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में हो या स्वोच्च राशि में, स्वराशि में या शुभ स्थान का अधिपति हो तो उसकी अन्तर्दशा में राज्य का लाभ, पूर्ण सुख, हाथी, घोड़ा, वस्त्र एवं आभूषण का लाभ होता है। यदि लग्नेश से सम्बन्ध हो तो स्त्री-पुत्रादि को सुख, आयु की वृद्धि, ऐश्वर्य की प्राप्ति, भाग्योदय एवं सुख होता है ॥५५-५६½॥

दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ॥५७॥
तत्काले श्रियमाप्नोति पुत्रलाभं महत्सुखम्।
स्वमोदश्च महत्सौख्यं धनवस्त्रादिलाभकृत् ॥५८॥
महाराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभदम्।
भुक्त्यन्ते फलमाप्नोति गीतनृत्यादिलाभकृत् ॥५९॥
पुण्यतीर्थस्नानलाभं कर्माधिपसमन्विते।
पुण्यधर्मदयाकूपतडागं कारयिष्यति ॥६०॥

दशापति से शुक्र यदि केन्द्र-त्रिकोण में हो या लाभ अथवा धनभाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को धन की प्राप्ति, पुत्रलाभ, परम सुख, अपने स्वामी से सुख, धन-वस्त्रादि का लाभ एवं महाराजा की कृपा से ग्राम, गृह, भूमि आदि का लाभ होता है। अन्तर्दशान्त में गीत, नृत्य में अभिरुचि, तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्नानादि के शुभ फल की प्राप्ति होती है। यदि कर्मेश से सम्बन्ध रखता हो तो पुण्य कार्य, धर्म, दया आदि से जातक को युक्त करता है एवं कूप, तडाग आदि का निर्माण कराता है ॥५७-६०॥

दायेशाद्रन्ध्ररिष्फस्थे षष्ठे वा पापसंयुते ।
करोति दुःखबाहुल्यं देहपीडां धनक्षयम् ॥६१॥
राजचौरादिभीतिश्च गृहे कलहमेव च ।
दारपुत्रादिपीडां च गोमहिष्यादिनाशकृत् ॥६२॥

दशापति से शुक्र ६, ८, १२ में हो या पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को अधिक दुःख, शरीर में पीड़ा, धनक्षय, राजा, चौरादि का भय, घर में कलह, स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा एवं गाय, भैंस आदि का नाश होता है ॥६१-६२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ॥६३॥

यदि शुक्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को शारीरिक कष्ट होता है । उसकी शान्ति हेतु गौ का या महिष का दान करना चाहिए । ऐसा करने से आयु एवं आरोग्य की वृद्धि होती है ॥६३॥

मंगल में सूर्यान्तर दशा-फल

कुजस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
मूलत्रिकोणलाभे वा भाग्यकर्मेशसंयुते ॥६४॥
तद्भुक्तौ वाहनं कीर्तिं पुत्रलाभं च विन्दति ।
धनधान्यसमृद्धिः स्याद् गृहे कल्याणसम्पदः ॥६५॥
क्षेमारोग्यं महद्धैर्यं राजपूज्यं महत्सुखम् ।
व्यवसायात्फलाधिक्यं विदेशे राजदर्शनम् ॥६६॥

मंगल की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा चल रही हो और सूर्य अपने उच्च में, स्वराशि में, केन्द्र, मूल त्रिकोण, लाभ में, भाग्येश कर्मेश से युत हो तो वाहन-लाभ, यश, पुत्रलाभ, धन-धान्य की वृद्धि, घर में कल्याण, आरोग्य, पूर्ण धैर्य, राजा से आदर, परम सुख, व्यवसाय से अधिक लाभ एवं देशान्तर में राजदर्शन होता है ॥६४-६६॥

दायेशात्षष्ठरिष्फे वा व्यये वा पापसंयुते ।
देहपीडा मनस्तापः कार्यहानिर्महद्भयम् ॥६७॥
शिरोरोगो ज्वरादिश्च अतीसारमथापि वा ॥६७$\frac{1}{2}$॥

दशापति से सूर्य यदि ६, ८, १२ भाव में हो या पापग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में शरीर में पीड़ा, मानसिक सन्ताप, कार्य का नाश, महान् भय, मस्तक में रोग, ज्वर एवं अतीसार आदि रोगों का भय होता है ॥६७-६७$\frac{1}{2}$॥

द्वितीयद्यूननाथे तु सर्पज्वरविषाद् भयम् ॥६८॥
सुतपीडाभयं चैव शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ।
देहारोग्यं प्रकुरुते धनधान्यचयं तथा ॥६९॥

यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो सर्प, ज्वर, विष का भय एवं पुत्र को पीड़ा होती है। शास्त्रोक्त विधि से सूर्य की आराधना करने पर शरीर में आरोग्यता और धन-धान्य का लाभ होता है ॥६८-६९½॥

मंगल में चन्द्रान्तर्दशा-फल

कुजस्यान्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
भाग्यवाहन-कर्मेश-लग्नाधिप-समन्विते ॥७०॥
करोति विपुलं गन्धमाल्यमम्बरप्राप्तिकम्।
तडागं गोपुरादीनां पुण्यधर्मादिसंग्रहम् ॥७१॥
विवाहोत्सवकर्माणि दारपुत्रादिसौख्यकृत्।
पितृमातृसुखावाप्तिं गृहे लक्ष्मीः कटाक्षकृत् ॥७२॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिसुखादिकम्।
पूर्णे चन्द्रे पूर्णफलं क्षीणे स्वल्पफलं भवेत् ॥७३॥

मंगल की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो और चन्द्रमा अपने उच्च में, स्वराशि में या केन्द्र में बैठा हो अथवा वाहनेश, भाग्येश, कर्मेश, लग्नेश के साथ हो तो उसकी अन्तर्दशा में सुगन्ध, माल्य, वस्त्रादि का अधिक लाभ, तालाब, गौशालादि का निर्माण, पुण्य तथा धार्मिक कार्यों का संग्रह, गृह में विवाहादि मांगलिक कार्य, स्त्री-पुत्र को सुख, मातृ-पितृ सौख्य एवं घर में लक्ष्मी की दृष्टि रहती है। महाराज की प्रसन्नता से सम्पत्ति की प्राप्ति, अभीष्ट कार्य की सिद्धि एवं सुख की वृद्धि होती है। यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो पूर्ण फल एवं चन्द्र के क्षीण रहने पर स्वल्प फल जानना चाहिए ॥७०-७३॥

नीचारिस्थेऽष्टमे षष्ठे दायेशाद्रिपुरन्ध्रके।
मरणं दारपुत्राणां कष्टं भूमिविनाशनम् ॥७४॥
पशुधान्यक्षयश्चैव चौरादिरणभीतिकृत्।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥७५॥
देहजाड्यं मनोदुःखं दुर्गालक्ष्मीजपं चरेत्।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादनेनारोग्यमादिशेत् ॥७६॥

यदि चन्द्रमा स्वनीच राशि में, शत्रुराशि में या दशापति से ६, ८ भाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में मरण, स्त्री-पुत्रों को कष्ट, भूमिनाश, पशुओं और धान्यों की हानि एवं चोर और युद्ध का भय होता है। यदि चन्द्रमा द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु, शारीरिक कष्ट एवं मानसिक दु:ख होता है। उसकी शान्ति के लिए श्री दुर्गा और श्री लक्ष्मी जी का जप एवं गौदान, महिषी-दान करने से आरोग्य और शान्ति की प्राप्ति होती है ॥७४-७६॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां भौमदशान्तर्दशाफलाध्यायः ॥५६॥

अथ राह्वन्तर्दशाफलाध्यायः ॥५७॥

राहु की दशा में राह्वन्तर्दशाफल

कुलीरे वृश्चिके राहौ कन्यायां चापगेऽपि वा।
तद्भुक्तौ राजसम्मानं वस्त्रवाहनभूषणम् ॥१॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं चतुष्पाज्जीवलाभकृत्।
प्रयाणं पश्चिमे भागे वाहनाम्बरलाभकृत् ॥२॥
लग्नादुपचये राहौ शुभग्रहयुतेक्षिते।
मित्रांशे तुङ्गभागांशे योगकारकसंयुते ॥३॥
राज्यलाभं महोत्साहं राजप्रीतिं शुभावहम्।
करोति सुखसम्पत्तिं दारपुत्रादिवर्द्धनम् ॥४॥

यदि राहु कर्क, वृश्चिक, कन्या और धनु राशि में हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजसम्मान, वस्त्र, वाहन, आभूषण की प्राप्ति, व्यवसाय से अधिक लाभ और पशुओं से लाभ तथा पश्चिम दिशा में यात्रा होती है। यदि राहु लग्न से ३, ६, १०, ११ में हो या योगकारक ग्रह के साथ हो या स्वोच्च, स्वमित्र राशि के नवमांश में हो तो राज्यलाभ, उत्सव, राजा से प्रेम, शुभकारक समय एवं स्त्री-पुत्रादि से सुख तथा सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥१-४॥

लग्नाष्टमे व्यये राहौ पापयुक्तेऽथ वीक्षिते।
चौरादिव्रणपीडा च सर्वत्रैवं भवेद् द्विज! ॥५॥
राजद्वारजनद्वेष इष्टबन्धुविनाशनम्।
दारपुत्रादिपीडा च भवत्येव न संशयः ॥६॥

यदि राहु लग्न से ८, १२ में हो या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो चोरभय, व्रण से कष्ट, राजजन से वैरभाव, अपने इष्ट-बन्धुओं का नाश तथा स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है। इसमें सन्देह नहीं है ॥५-६॥

द्वितीयद्यूननाथे वा सप्तमस्थानमाश्रिते।
सदा रोगो महाकष्टं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि।
आरोग्यं सम्पदश्चैव भविष्यन्ति तदा द्विज ॥७॥

यदि राहु द्वितीयेश या सप्तमेश हो या इन स्थानों में स्थित हो तो सदा रोग तथा कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में राहु की आराधना-जप-दानादि शान्तिकारक कार्य शास्त्रोक्त विधान के द्वारा करने से सम्पत्ति, आरोग्यादि का लाभ होता है ॥७॥

राहु में जीवान्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि तुङ्गस्वर्क्षांशगेऽपि वा ॥८॥
स्थानलाभं मनोधैर्यं शत्रुनाशं महत्सुखम्।
राजप्रीतिकरं सौख्यं जनोऽतीव समश्नुते ॥९॥
दिने दिने वृद्धिरपि सितपक्षे शशी यथा।
वाहनादिधनं भूरि गृहे गोधनसङ्कुलम् ॥१०॥
नैर्ऋत्ये पश्चिमे भागे प्रयाणं राजदर्शनम्।
युक्तकार्यार्थसिद्धिः स्यात् स्वदेशे पुनरेष्यति ॥११॥
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्रादिकर्मणाम्।
वाहनग्रामलाभश्च देवब्राह्मणपूजनम् ॥१२॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥१२$\frac{1}{2}$॥

यदि राहु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा हो और गुरु लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में हो या स्वोच्च, स्वक्षेत्र में, अपने उच्च के नवमांश में या अपने नवमांश में हो तो उसकी अन्तर्दशा में स्थानलाभ, मन में धैर्यता, शत्रुनाश, पूर्ण सुख, राजा से मैत्री, सौख्य, शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-प्रतिदिन सुख-सम्पत्ति की अभिवृद्धि, यान-वाहनों का लाभ, घर में गोधनों का संग्रह, नैर्ऋत्य या पश्चिम दिशा की यात्रा से राजदर्शन, उनसे वाञ्छित कार्य की सिद्धि, फिर स्वदेश आगमन, ब्राह्मणों का उपकार, तीर्थयात्रा, पुण्य-सञ्चय, वाहन, ग्राम का लाभ, देवता-ब्राह्मणपूजन (भक्ति), पुत्रोत्पत्ति, उत्सव, सन्तोष एवं सदैव मिष्ठान्न भोजन की प्राप्ति होती है ॥८-१२$\frac{1}{2}$॥

नीचे वाऽस्तङ्गते वापि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥१३॥
शत्रुक्षेत्रे पापयुक्ते धनहानिर्भविष्यति।
कर्मविघ्नो भवेत्तस्य मानहानिश्च जायते ॥१४॥
कलत्रपुत्रपीडा च हृद्रोगो राजकार्यकृत् ॥१४$\frac{1}{2}$॥

यदि गुरु स्वनीच राशि में, अस्त या लग्न से ६, ८, १२ में या शत्रुराशि में पाप ग्रह से युत हो तो धन की हानि, कार्यों में विघ्न-बाधा, मानहानि, स्त्री-पुत्रों में पीड़ा, हृदय-सम्बन्धी रोग और जातक राजकार्य का अधिकारी होता है ॥१३-१४$\frac{1}{2}$॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥१५॥
दुश्चिक्ये बलसम्पूर्णे गृहक्षेत्रादिवृद्धिकृत्।
भोजनाम्बर-पश्वादि-दानधर्म-जपादिकम् ॥१६॥
भुक्त्यन्ते राजकोपाच्च द्विमासं देहपीडनम्।
ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशश्च मातृपित्रादिपीडनम् ॥१७॥

दशापति से गुरु यदि केन्द्र, त्रिकोण, लाभ, धन, तृतीय भाव में बलयुत होकर बैठा हो तो गृह, भूमि आदि की वृद्धि होती है; साथ ही भोजन, वस्त्र, पशु आदि का लाभ एवं दान, धर्म, जपादि में प्रवृत्ति होती है। अन्तर्दशा के अन्त में राजकोप, २ माह तक शरीर में पीड़ा एवं बड़े भाई तथा माता-पिता को कष्ट होता है ॥१५-१७॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा रिःफे वा पापसंयुते।
तद्भुक्तौ धनहानिः स्याद्देहपीडा भविष्यति ॥१८॥
द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति।
स्वर्णस्य प्रतिमादानं शिवपूजां च कारयेत् ॥१९॥
श्रीशम्भोश्च प्रसादेन ग्रहस्तुष्टो द्विजोत्तम!।
देहारोग्यं प्रकुरुते शान्तिं कुर्याद्विचक्षणः ॥२०॥

दशापति से गुरु यदि ६, ८, १२ में हो या पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में धनहानि तथा शारीरिक पीड़ा होती है। यदि गुरु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उसकी शान्ति के लिए शंकर भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा बनाकर उसका पूजन करने से भगवान् शंकर प्रसन्न होकर शरीर में आरोग्यता प्रदान करते हैं ॥१८-२०॥

राहु में शन्यन्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते मन्दे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वोच्चे मूलत्रिकोणे वा दुश्चिक्ये लाभराशिगे ॥२१॥
तद्भुक्तौ नृपतेः सेवा राजप्रीतिकरी शुभा।
विवाहोत्सवकार्याणि कृत्वा पुण्यानि भूरिशः ॥२२॥
आरामकरणे युक्ते तडागं कारयिष्यति।
शूद्रप्रभुवशादिष्टलाभो गोधनसंग्रहः ॥२३॥
प्रयाणं पश्चिमे भागे प्रभुमूलाद्धनक्षयः।
देहालस्यं फलाल्पत्वं स्वदेशे पुनरेष्यति ॥२४॥

राहु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो, शनि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, अपने उच्च, स्वमूल त्रिकोण या ३, ११ भाव में बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजा की सेवा के द्वारा राजा से मैत्री, घर में विवाहादि मांगलिक उत्सव, अनेक पुण्य संचय, बगीचा, तालाब आदि का निर्माण, शूद्र राजा के होने से अभीष्ट-लाभ, पशुओं का संग्रह, पश्चिम दिशा की यात्रा से राजा द्वारा धनक्षय, शारीरिक आलस्यता के कारण अल्प-लाभ और फिर स्वदेश में आगमन होता है ॥२१-२४॥

नीचारिक्षेत्रगे मन्दे रन्ध्रे वा व्ययगेऽपि वा।
नीचारिराजभीतिश्च दारपुत्रादिपीडनम् ॥२५॥
आत्मबन्धुमनस्तापं दायादजनविग्रहम्।
व्यवहारे च कलहमकस्माद् भूषणं लभेत् ॥२६॥

यदि शनि स्वनीच, शत्रु राशि में या ८, १२ में हो तो उसकी अन्तर्दशा में नीच शत्रु, राजा से भय, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, अपने बन्धु-बान्धवों को मानसिक संताप, दायादों से कलह, व्यवहार में कलह, परन्तु अकस्मात् आभूषण की प्राप्ति होती है ॥२५-२६॥

दायेशात्षष्ठरिष्फे वा रन्ध्रे वा पापसंयुते ।
हृद्रोगो मानहानिश्च विवादः शत्रुपीडनम् ॥२७॥
अन्यदेशादिसञ्चारो गुल्मवद्व्याधिभाग् भवेत् ।
कुभोजनं कोद्रवादि जातिदुःखाद् भयं भवेत् ॥२८॥
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
कृष्णां गां महिषीं दद्याद्दानेनारोग्यमादिशेत् ॥२९॥

दशापति से शनि यदि ६, ८, १२ में हो या पाप ग्रह से युत शनि हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को हृदयसम्बन्धी रोग, मानहानि, वाद-विवाद, शत्रु से पीड़ा, विदेश में भ्रमण, गुल्म रोग, कुभोजन, कोद्रवादि जातियों से दुःख तथा भय होता है। यदि शनि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु होती है। उसकी शान्ति के लिए काली गाय या महिषी का दान करना चाहिए। ऐसा करने से आरोग्यता का लाभ होता है ॥२७-२९॥

राहु में बुधान्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते सौम्ये भाग्ये वा स्वर्क्षगेऽपि वा ।
तुङ्गे वा केन्द्रराशिस्थे पुत्रे वा बलगेऽपि वा ॥३०॥
राजयोगं प्रकुरुते गृहे कल्याणवर्द्धनम् ।
व्यापारेण धनप्राप्तिर्विद्यावाहनमुत्तमम् ॥३१॥
विवाहोत्सवकार्याणि चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ।
सौम्यमासे महत्सौख्यं स्ववारे राजदर्शनम् ॥३२॥
सुगन्धपुष्पशय्यादि स्त्रीसौख्यं चातिशोभनम् ।
महाराजप्रसादेन धनलाभो महद्यशः ॥३३॥

राहु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा हो और बुध अपनी राशि में, उच्च में या लग्न से केन्द्र, पञ्चम में बलयुत होकर बैठा हो तो उस समय राजयोगकारक होता है। गृह में कल्याण, व्यापार से धन की प्राप्ति, विद्या, उत्तम वाहन सुख, विवाह, उत्सव, पशुओं से लाभ, सौम्य मास में परम सुख, बुधवार में राजदर्शन, सुगन्ध, शय्या, स्त्री आदि का उत्तम सुख एवं राजा की कृपा से धन और यश का लाभ होता है ॥३०-३३॥

दायेशात्केन्द्रलाभे वा दुश्चिक्ये भाग्यकर्मगे ।
देहारोग्यं हृदुत्साह इष्टसिद्धिः सुखावहा ॥३४॥
पुण्यश्लोकादिकीर्तिश्च पुराणश्रवणादिकम् ।
विवाहो यज्ञदीक्षा च दानधर्मदयादिकम् ॥३५॥

दशापति से बुध यदि केन्द्र, ११, ३, ९, १० भाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में देह में रोगमुक्ति, उत्साह, अभीष्ट सिद्धि, सुख, पुण्य श्लोकों की आवृत्ति, पुराणादि का श्रवण, विवाह, यज्ञ, दीक्षा, दान, धर्म और दया का उदय होता है ॥३४-३५॥

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्देनापि युतेक्षिते ।
दायेशात्षष्ठरिःफे वा रन्ध्रे वा पापसंयुते ॥३६॥
देवब्राह्मणनिन्दा च भोगभाग्यविवर्जितः ।
सत्यहीनश्च दुर्बुद्धिश्चौराहिनृपपीडनम् ॥३७॥
अकस्मात्कलहश्चैव गुरुपुत्रादिनाशनम् ।
अर्थव्ययो राजकोपो दारपुत्रादिपीडनम् ॥३८॥

यदि बुध ६, ८, १२ में हो, शनि से युत या दृष्ट हो अथवा दशापति से ६, १२, ८ में हो या पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो देव और ब्राह्मणों की निन्दा, भाग्यहानि, सत्यता से हीन, कुबुद्धि, चोर, सर्प, राजा से पीड़ा, अकस्मात् कलह, गुरु-पुत्रादि का नाश, अपव्यय, राजा का कोप और स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है ॥३६-३८॥

द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युभयं वदेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥३९॥

यदि बुध लग्न से द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। इस दोष के शमन हेतु विष्णुसहस्रनाम का जप करना चाहिए ॥३९॥

राहु में केत्वन्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते केतौ भ्रमणं राजतो भयम् ।
वातज्वरादिरोगश्च चतुष्पाज्जीवहानिकृत् ॥४०॥
अष्टमाधिपसंयुक्ते देहजाड्यं मनोव्यथा ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे देहसौख्यं धनागमः ।
राजसम्मानभूषाप्तिर्गृहे शुभकरो भवेत् ॥४१॥

राहु की महादशा में केतु का अन्तर हो तो भ्रमण, राजभय, वातज्वरादि रोगों का भय और पशुओं की हानि होती है। केतु यदि अष्टमेश से युत हो तो शरीर में पीड़ा एवं मानसिक व्यथा होती है। शुभग्रह से युत या दृष्ट रहने पर शारीरिक सुख, धनागम, राजा से आदर तथा आभूषणों की प्राप्ति होती है एवं शुभकारक समय रहता है ॥४०-४१॥

लग्नाधिपेन सम्बन्धे इष्टसिद्धिः सुखावहा ।
लग्नाधिपसमायुक्ते लाभो वा भवति ध्रुवम् ॥४२॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात्केन्द्रे वाऽथ त्रिकोणगे ॥४२½॥

केतु लग्नेश के साथ सम्बन्ध रखता हो तो सुख और अभीष्ट की सिद्धि होती है।

लग्नेश के साथ हो तो अवश्य ही धन का लाभ होता है एवं केन्द्र या त्रिकोण में हो तो पशुओं की वृद्धि होती है ।।४२-४२½।।

रन्ध्रस्थानगते केतौ व्यये वा बलवर्जिते ।।४३।।
तद्भुक्तौ बहुरोगः स्याच्चौराहिव्रणपीडनम् ।
पितृमातृवियोगश्च भ्रातृद्वेषो मनोरुजा ।।४४।।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं छागदानं च कारयेत् ।।४५।।

केतु यदि लग्न से ८, १२ में बलहीन होकर बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में अनेक रोग, चोर, सर्प, व्रण आदि से पीड़ा, माता-पिता से वियोग, भाइयों से द्वेष एवं मानसिक रोग होता है । यदि केतु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है । उक्त दोष के निवारण हेतु छागदान करना चहिए ।।४३-४५।।

राहु में शुक्रान्तर दशा-फल

राहोरन्तर्गते शुक्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
लाभे वा बलसंयुक्ते योगप्राबल्यमादिशेत् ।।४६।।
विप्रमूलाद्धनप्राप्तिर्गो-महिष्यादि-लाभकृत् ।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ।।४७।।
सम्मानं राजसम्मानं राज्यलाभो महत्सुखम् ।।४७½।।

राहु की महादशा में यदि शुक्र का अन्तर हो और शुक्र लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में बली हो तो प्रबल योग जानना चाहिए । विप्रों द्वारा धनलाभ, गो-महिष्यादि पशुओं से लाभ, पुत्रजन्मोत्सव, सन्तोष, घर में कल्याण, सम्मान, राजा से आदर, राज्य का लाभ एवं पूर्ण सुख प्राप्त होता है ।।४६-४७½।।

स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।।४८।।
नूतनं गृहनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
कलत्रपुत्रविभवं मित्रसङ्गः सुभोजनम् ।।४९।।
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसंग्रहः ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ।।५०।।
व्यवसायात्फलाधिक्यं विवाहो मौञ्जिबन्धनम् ।।५०½।।

यदि शुक्र अपने उच्च, स्वराशि या उच्च नवमांश या स्व नवमांश में हो तो नवीन गृहनिर्माण, सदैव मिष्ठान्न–भोजन, स्त्री-पुत्रों से सुख, मित्रों का संग, सुन्दर भोजन, अन्नदान, दान और धार्मिक कृत्यों का संग्रह, राजा की कृपा से वाहन, वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति, स्व व्यवसायों से अधिक लाभ एवं घर में विवाह-उपनयनादि मांगलिक कार्य सम्पन्न होते हैं ।।४८-५०½।।

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे नीचे शत्रुगृहे स्थिते ॥५१॥
मन्दारफणिसंयुक्ते तद्भुक्तौ रोगमादिशेत्।
अकस्मात्कलहं चैव पितृपुत्रवियोगकृत् ॥५२॥
स्वबन्धुजनहानिश्च सर्वत्र जनपीडनम्।
दायादकलहश्चैव स्वप्रभोः स्वस्य मृत्युकृत् ॥५३॥
कलत्रपुत्रपीडा च शूलरोगादिसम्भवः ॥५३½॥

यदि शुक्र लग्न से ६, ८, १२ में या नीच राशि में या शत्रुगृह में हो, शनि, भौम या राहु से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में रोग, अकस्मात् कलह, पिता या पुत्र का वियोग, अपने बन्धुओं को कष्ट, साधारणतया सभी लोगों को कष्ट, दायादों से झगड़ा, अपने स्वामी या अपनी मृत्यु का भय, पत्नी-पुत्र को पीड़ा एवं शूल आदि रोगों का होना सम्भव होता है ॥५१-५३½॥

दायेशात्केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे वा समन्विते ॥५४॥
लाभे वा कर्मराशिस्थे क्षेत्रपालमहत्सुखम्।
सुगन्धवस्त्रशय्यादि गानवाद्यसुखं भवेत् ॥५५॥
छत्रचामरभूषाप्तिः प्रियवस्तुसमन्विता ॥५५½॥

दशापति से शुक्र केन्द्र-त्रिकोण में, लाभ, कर्म भाव में हो तो क्षेत्रपालों से परम सुख, सुगन्ध, वस्त्र, शय्या, गायन, वाद्य आदि से सुख एवं छत्र, चामर, आभूषण और प्रिय वस्तुओं का लाभ होता है ॥५४-५५½॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥५६॥
विप्राहि-नृप-चौरादि-मूत्रकृच्छ्रान्महद्भयम्।
प्रमेहाद्रौधिरो रोगः कुत्सितान्नं शिरोव्यथा ॥५७॥
कारागृहप्रवेशश्च राजदण्डाद्धनक्षयः।
द्वितीयद्यूननाथे वा दारपुत्रादिनाशनम् ॥५८॥
आत्मपीडा भयं चैव ह्यपमृत्युभयं भवेत्।
दुर्गालक्ष्मीजपं कुर्यात् ततः सुखमवाप्नुयात् ॥५९॥

यदि शुक्र दशापति से ६, ८, १२ में हो, पाप ग्रह से युत हो तो विप्र, सर्प, राजा, चौरादि का भय, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह एवं रक्तविकार सम्बन्धित रोग का भय, कुभोजन, सिर में रोग, कारागार में प्रवेश एवं राजदण्ड से धन की हानि होती है। यदि शुक्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो पत्नी-पुत्र को कष्ट एवं अपने को भी अपमृत्यु का भय होता है। इसकी शान्ति के लिए श्री दुर्गा जी या श्री लक्ष्मी जी का जप करना चाहिए ॥५६-५९॥

राहु में सूर्यान्तर दशा-फल

राहोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
त्रिकोणे लाभगे वाऽपि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥६०॥

शुभग्रहेण सन्दृष्टे राजप्रीतिकरं शुभम् ।
धन-धान्य-समृद्धिश्च ह्यल्पमानं सुखावहम् ॥६१॥
अल्पग्रामाधिपत्यं च स्वल्पलाभो भविष्यति ॥६१½॥

राहु की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा हो और सूर्य स्वोच्च, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण, लाभ, उच्च नवमांश या स्वांश में शुभ ग्रह के द्वारा अवलोकित हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजा से मैत्री, धन-धान्यों की वृद्धि, स्वल्प सम्मान, सुख, अल्प ग्रामाधिपतित्व एवं स्वल्प लाभ होता है ॥६०-६१½॥

भाग्यलग्नेशसंयुक्ते कर्मेशेन निरीक्षिते ॥६२॥
राजाश्रयो महाकीर्तिर्विदेशगमनं तथा ।
देशाधिपत्ययोगश्च गजाश्वाम्बरभूषणम् ॥६३॥
मनोऽभीष्टप्रदानं च पुत्रकल्याणसम्भवम् ॥६३½॥

यदि सूर्य भाग्येश का लग्नेश से युत हो और कर्मेश द्वारा देखा जाता हो तो राजाश्रय से महान् यश, विदेश में भ्रमण, देश का आधिपत्य, हाथी, घोड़ा, वस्त्र और आभूषण का लाभ, अभीष्टसिद्धि एवं पुत्र का कल्याण होना सम्भव होता है ॥६२-६३½॥

दायेशाद्रिःफरन्ध्रस्थे षष्ठे वा नीचगेऽपि वा ॥६४॥
ज्वरातिसाररोगश्च कलहो राजविग्रहः ।
प्रयाणं शत्रुवृद्धिश्च नृपचौराग्निपीडनम् ॥६५॥

दशापति से सूर्य १२, ८, ६ में हो या स्वनीच राशि में हो तो ज्वर, अतीसार रोगभय, कलह, राजविग्रह, भ्रमण, शत्रुओं की वृद्धि एवं राजा, चोर, अग्नि से पीड़ा होती है ॥६४-६५॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ।
विदेशे राजसम्मानं कल्याणं च शुभावहम् ॥६६॥

दशापति से यदि सूर्य केन्द्र, कोण या तृतीय, एकादश भाव में हो तो देशान्तर में राजा से सम्मान एवं समस्त प्रकार से कल्याण तथा शुभ होता है ॥६६॥

द्वितीयद्यूननाथे तु महारोगी भविष्यति ।
सूर्यप्रणामं शान्तिं च कुर्यादारोग्यसम्भवाम् ॥६७॥

यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो महारोग का भय होता है, इसकी शान्ति के लिए सूर्य की आराधना करने पर आरोग्यता का लाभ सम्भव होता है ॥६७॥

राहु महादशा में चन्द्रान्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते चन्द्रे स्वक्षेत्रे स्वोच्चगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा मित्रर्क्षे शुभसंयुते ॥६८॥

राजत्वं राजपूज्यत्वं धनार्थं धनलाभकृत्।
आरोग्यं भूषणं चैव मित्रस्त्रीपुत्रसम्पदः ॥६९॥
पूर्णे चन्द्रे फलं पूर्णं राजप्रीत्या शुभावहम्।
अश्ववाहनलाभः स्याद् गृहक्षेत्रादिवृद्धिकृत् ॥७०॥

राहु की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो और चन्द्रमा स्वगृह में, स्वोच्च राशि में, केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में या मित्र राशि में शुभ ग्रह से युत हो तो राज्यलाभ, राजा से पूजित, धनलाभ, आरोग्य, भूषण, मित्र-स्त्री-पुत्रादि से सुख, राजा से मैत्री, अश्व-वाहन का लाभ तथा गृह एवं भूमि की वृद्धि होती है। चन्द्रमा पूर्ण बली हो तो पूर्ण फल एवं चन्द्र क्षीण हो तो स्वल्प फल जानना चाहिए ॥६८-७०॥

दायेशात्सुखभाग्यस्थे केन्द्रे वा लाभगेऽपि वा।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि गृहे कल्याणसम्भवः ॥७१॥
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्याद्धनधान्यसुखावहा।
सत्कीर्तिलाभसम्मानं देव्याराधनमाचरेत् ॥७२॥

दशापति से चन्द्रमा यदि ५, ९, केन्द्र, लाभ में हो तो गृह में लक्ष्मी की दृष्टि से कल्याण, समस्त कार्यों की सिद्धि, धन-धान्य सुख, यश-लाभ, सम्मान की वृद्धि और देवाराधन में अभिरुचि रहती है ॥७१-७२॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते।
पिशाचक्षुद्रव्याघ्राद्यैर्गृहक्षेत्रार्थनाशनम् ॥७३॥
मार्गे चौरभयं चैव व्रणाधिक्यं महोदयम्।
द्वितीयद्यूननाथे तु अपमृत्युस्तदा भवेत् ॥७४॥
श्वेतां गां महिषीं दद्याद् विप्रायारोग्यसिद्धये।
ततः सौख्यमवाप्नोति चन्द्रग्रहप्रसादतः ॥७५॥

दशापति से चन्द्रमा ६, ८, १२ में बलहीन हो तो उसकी अन्तर्दशा में पिशाच, क्षुद्र, व्याघ्र आदि हिंसक जीवों से गृह तथा खेती में उपद्रव, मार्ग में चोर का भय, घाव और उदरसम्बन्धी रोग होता है। चन्द्रमा यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय रहता है। इस दोष के निवारण के लिए श्वेत गोदान या महिषी का दान करना चाहिए। ऐसा करने से चन्द्रमा की प्रसन्नता से सुख की प्राप्ति होती है ॥७३-७५॥

राहु में भौमान्तर्दशा-फल

राहोरन्तर्गते भौमे लग्नाल्लाभत्रिकोणगे।
केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥७६॥
नष्टराज्यधनप्राप्तिर्गृहक्षेत्राभिवृद्धिकृत्।
इष्टदेवप्रसादेन सन्तानसुखभाग् भवेत् ॥७७॥

क्षिप्रभोज्यान्महात्सौख्यं भूषणाश्वाम्बरादिकृत् ॥७७½॥

राहु की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा हो और मंगल लग्न से लाभ, त्रिकोण, केन्द्र में शुभ ग्रह से युत हो या स्वोच्च, स्वक्षेत्र में हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को नष्ट राज्य और धन की प्राप्ति, गृह-क्षेत्र में वृद्धि, स्वेष्ट देवता की प्रसन्नता से सन्तानसुख, सुस्वादु भोजन से परम सुख तथा भूषण, अश्व, वस्त्रादि से लाभ होता है ॥७६-७७½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥७८॥
रक्तवस्त्रादिलाभः स्यात्प्रयाणं राजदर्शनम् ।
पुत्रवर्गेषु कल्याणं स्वप्रभोश्च महत्सुखम् ॥७९॥
सेनापत्यं महोत्साहो भ्रातृवर्गधनागमः ॥७९½॥

दशापति से यदि मंगल केन्द्र, कोण, ३, ११ में हो तो रक्त वस्त्र आदि का लाभ, भ्रमण, राजदर्शन, पुत्रों का कल्याण, अपने स्वामी से परम सुख, सेनानायकत्व, उत्साह एवं स्वबान्धवों से धनलाभ होता है ॥७८-७९½॥

दायेशाद्रन्ध्ररि:फे वा षष्ठे पापसमन्विते ॥८०॥
पुत्रदारादिहानिश्च सोदराणां च पीडनम् ।
स्थानभ्रंशो बन्धुवर्गदारपुत्रविरोधनम् ॥८१॥
चौराहिव्रणभीतिश्च स्वदेहस्य च पीडनम् ।
आदौ क्लेशकरं चैव मध्यान्ते सौख्यमाप्नुयात् ॥८२॥

दशापति से मंगल यदि ८, १२, ६ में पाप ग्रह से युत हो तो पुत्र-स्त्री आदि को कष्ट, सहोदरों को पीड़ा, स्थाननाश, बन्धु-स्त्री-पुत्र से विरोध, चोर, सर्प और व्रण का भय, स्व-शरीर में पीड़ा, दशारम्भ काल में क्लेश और मध्य तथा अन्त में सुख होता है ॥८०-८२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं महद्भयम् ।
अनड्वाहं च गां दद्यादारोग्यसुखलब्धये ॥८३॥

मंगल यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शरीर में आलस्य और महान् भय होता है । आरोग्य और सुख की प्राप्ति के लिए वृषदान तथा गौदान करना चाहिए ॥८३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां राह्वन्तर्दशाफलाध्यायः ॥५७॥

अथ जीवान्तर्दशाफलाध्यायः ॥५८॥

गुरु की महादशा में गुर्वन्तर्दशा-फल

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
अनेकराजाधीशो वा सम्पन्नो राजपूजितः ॥१॥
गोमहिष्यादिलाभश्च वस्त्रवाहनभूषणम् ।
नूतनस्थाननिर्माणं हर्म्यप्राकारसंयुतम् ॥२॥
गजान्तैश्वर्यसम्पत्तिर्भाग्यकर्मफलोदयः ।
ब्राह्मणप्रभुसम्मानं समानं प्रभुदर्शनम् ॥३॥
स्वप्रभोः स्वफलाधिक्यं दारपुत्रादिलाभकृत् ॥३½॥

गुरु की महादशा में गुरु की ही अन्तर्दशा हो और गुरु अपने उच्च, स्वराशि या लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में स्थित हो तो उसकी अन्तर्दशा में उत्पन्न जातक अनेक राजाओं का अधिपति या सर्व सुखसम्पन्न अथवा राजा से पूजित होता है। उसे गौ-महिष्यादि पशुओं का लाभ, वस्त्र, वाहन, आभूषण की प्राप्ति, नवीन स्थान (गृह)-निर्माण, अट्टालिकासहित अनेक कमरों का निर्माण, हाथी, समस्त ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति की प्राप्ति, भाग्योदय, कार्य की सफलता, ब्राह्मण और राजा का ससम्मान दर्शन, अपने स्वामी से अधिक लाभ एवं स्त्री-पुत्रादि से लाभ होता है ॥१-३½॥

नीचांशे नीचराशिस्थे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥४॥
नीचसङ्गो महद्दुःखं दायादजनविग्रहः ।
कलहो न विचारोऽस्य स्वप्रभुष्वपमृत्युकृत् ॥५॥
पुत्रदारवियोगश्च धनधान्यार्थहानिकृत् ॥५½॥

गुरु यदि स्वनीच राशि में हो या नीच नवमांश में हो या लग्न से ६, ८, १२ भाव में हो तो नीचों का सङ्ग, महा दुःख, दायादों से विग्रह, कलह, विवेकशून्यता, अकाल मृत्यु का भय, स्त्री-पुत्रों से वियोग एवं धन-धान्य तथा अर्थों की हानि होती है ॥४-५½॥

सप्तमाधिपदोषेण देहबाधा भविष्यति ॥६॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
रुद्रजाप्यं च गोदानं कुर्यात् स्वाऽभीष्टलब्धये ॥७॥

गुरु यदि सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष की शान्ति के लिए शिवसहस्रनाम या रुद्र का जप तथा गोदान करने से अभीष्ट की सिद्धि हो जाती है ॥६-७॥

गुरु में शन्यन्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रमित्रभे ।

लग्नात्केन्द्रत्रिकोणस्थे लाभे वा बलसंयुते ॥८॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं वस्त्राभरणसंयुतम् ।
धनधान्यादिलाभश्च स्त्रीलाभो बहुसौख्यकृत् ॥९॥
वाहनाम्बरपश्वादिभूलाभः स्थानलाभकृत् ।
पुत्रमित्रादिसौख्यं च नरवाहनयोगकृत् ॥१०॥
नीलवस्त्रादिलाभश्च नीलाश्वं लभते च सः ।
पश्चिमां दिशमाश्रित्य प्रयाणं राजदर्शनम् ॥११॥
अनेकयानलाभं च निर्दिशेन्मन्दभुक्तिषु ॥११$\frac{1}{2}$॥

गुरु के अन्तर्गत शन्यन्तर हो और शनि स्वोच्च, स्वगृह, मित्रराशि में हो या लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में बलयुत होकर बैठा हो तो राज्यलाभ, पूर्ण सुख, वाहन, वस्त्र, पशु, भूमि, स्थानादि का लाभ, पुत्र-मित्रादि से सुख, पालकी की सवारी का सुख, नीले वस्त्र, नीले अश्वादि का लाभ, पश्चिम दिशा की यात्रा, राजदर्शन एवं विभिन्न प्रकार के यानों का लाभ होता है ॥८-११$\frac{1}{2}$॥

लग्नात् षष्ठाष्टमे मन्दे व्यये नीचेऽस्तगेऽप्यरौ ॥१२॥
धनधान्यादिनाशश्च ज्वरपीडा मनोरुजः ।
स्त्रीपुत्रादिषु पीडा वा व्रणात्यादिकमुद्भवेत् ॥१३॥
गृहे त्वशुभकार्याणि भृत्यवर्गादिपीडनम् ।
गोमहिष्यादिहानिश्च बन्धुद्वेषी भविष्यति ॥१४॥

लग्न से ६, ८, १२ में शनि हो या स्वनीच या अस्त या शत्रुराशि में हो तो धन-धान्य का नाश, ज्वरपीड़ा, मानसिक व्यथा, स्त्री-पुत्रादि को व्रणादि से पीड़ा, स्वगृह में अमांगलिक कार्य, सेवक, गाय, महिष्यादि की हानि एवं अपने बन्धु-बान्धवों से द्वेष हो जाता है ॥१२-१४॥

दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ।
भूलाभश्चार्थलाभश्च पुत्रलाभसुखं भवेत् ॥१५॥
गोमहिष्यादिलाभश्च शूद्रमूलाद्धनं तथा ॥१५$\frac{1}{2}$॥

दशापति से शनि यदि केन्द्र, कोण, लाभ, धनभाव में बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में भूमि, धन, पुत्र, गौ, महिष्यादि पशु का लाभ एवं शूद्र द्वारा धन की प्राप्ति होती है ॥१५-१५$\frac{1}{2}$॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥१६॥
धनधान्यादिनाशश्च बन्धुमित्रविरोधकृत् ।
उद्योगभङ्गो देहार्तिः स्वजनानां महद्भयम् ॥१७॥

दशापति से शनि यदि ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में

धन-धान्यादि का नाश, स्वबन्धु-बान्धवों और मित्रों से विरोध, उद्योगभङ्ग, शारीरिक कष्ट एवं स्वजनों में महाभय होता है ॥१६-१७॥

द्विसप्तमाधिपे मन्दे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्त्रकं जपेत् ॥१८॥
कृष्णां गां महिषीं दद्यादनेनारोग्यमादिशेत् ।
मन्दग्रहप्रसादेन सत्यं सत्यं द्विजोत्तम ! ॥१९॥

हे द्विजोत्तम ! शनि यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उस अनिष्ट की शान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का जप एवं काली गाय तथा महिष का दान करने से तो शनि देव की कृपा से अवश्य लाभ होता है ॥१८-१९॥

गुरु में बुधान्तर का फल

जीवस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि दशाधिपसमन्विते ॥२०॥
अर्थलाभो देहसौख्यं राज्यलाभो महत्सुखम् ।
महाराजप्रसादेन स्वेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥२१॥
वाहनाम्बर-पश्वादि-गोधनैस्सङ्कुलं गृहम् ॥२१½॥

गुरु की महादशा में बुधान्तर्दशा हो और बुध यदि लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण या अपने उच्च या स्वगृह में अथवा दशेश से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में जानक धनलाभ, शारीरिक सुख, राज्यलाभ, परम सुख और महाराज की प्रसन्नता से अभीष्ट-सिद्धि की प्राप्ति करता है एवं वाहन, वस्त्र तथा गौ आदि पशुधनों से उसका गृह सदा युक्त रहता है ॥२०-२१½॥

महीसुतेन सन्दृष्टे शत्रुवृद्धिः सुखक्षयः ॥२२॥
व्यवसायात्फलं नेष्टं ज्वरातीसारपीडनम् ॥२२½॥

बुध यदि मंगल द्वारा अवलोकित हो तो शत्रु की वृद्धि, सुखनाश, व्यवसाय में हानि एवं ज्वर-अतिसार आदि रोगों का भय होता है ॥२२-२२½॥

दायेशाद् भाग्यकोणे वा केन्द्रे वा तुङ्गराशिगे ॥२३॥
स्वदेशे धनलाभश्च पितृमातृसुखावहः ।
गजवाजिसमायुक्तो राजमित्रप्रसादतः ॥२४॥

दशेश से यदि बुध भाग्य या कोण या केन्द्र या स्वोच्च राशि में हो तो स्वदेश में आर्थिक लाभ, पितृ-मातृसुख एवं राजा तथा मित्रों की कृपा से हाथी-घोड़े से जातक युक्त होता है ॥२३-२४॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ।
शुभदृष्टिविहीने च धनधान्यपरिच्युतिः ॥२५॥

विदेशगमनं चैव मार्गे चौरभयं तथा।
व्रणदाहाक्षिरोगश्च नानादेशपरिभ्रमः ॥२६॥

यदि बुध दशापति से ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो और शुभ ग्रह की दृष्टि न हो तो धन-धान्य का नाश, विदेश भ्रमण, मार्ग में चोरभय, व्रण, दाह, नेत्ररोग एवं अनेक देशों में उसका भ्रमण होता है ॥२५-२६॥

लग्नात्षष्ठाष्टभावे वा व्यये वा पापसंयुते।
अकस्मात्कलहश्चैव गृहे निष्ठुरभाषणम् ॥२७॥
चतुष्पाज्जीवहानिश्च व्यवहारे तथैव च।
अपमृत्युभयं चैव शत्रूणां कलहो भवेत् ॥२८॥

यदि बुध लग्न से ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो अकारण ही कलह, गृह में आक्रोश, पशुओं की हानि, इसी प्रकार गृह-व्यवहार में भी क्षति, अपमृत्यु और शत्रुओं से झगड़ा होता है ॥२७-२८॥

शुभदृष्टे शुभैर्युक्ते दारसौख्यं धनागमः।
आदौ शुभं देहसौख्यं वाहनाम्बरलाभकृत् ॥२९॥
अन्ते तु धनहानिश्चेत् स्वात्मसौख्यं न जायते ॥२९½॥

यदि शुभ ग्रह से युत या दृष्ट बुध हो तो दशारम्भ में स्त्रीसुख, धन-लाभ, शारीरिक सन्तोष, वाहन, वस्त्रलाभ एवं दशान्त में धन की क्षति तथा शारीरिक कष्ट होता है ॥२९-२९½॥

द्वितीयद्यूननाथे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥३०॥
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्त्रकं जपेत्।
आयुर्वृद्धिकरं चैव सर्वसौभाग्यदायकम् ॥३१॥

यदि बुध द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उसके दोष-शमन हेतु विष्णुसहस्त्रनाम का जप करना चाहिए। ऐसा करने से आयु की वृद्धि होती है और पूर्ण भाग्योदय होता है ॥३०-३१॥

गुरु में केत्वन्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते केतौ शुभग्रहसमन्विते।
अल्पसौख्यधनावाप्तिः कुत्सितान्नस्य भोजनम् ॥३२॥
परान्नं चैव श्राद्धान्नं पापमूलाद्धनानि च ॥३२½॥

गुरु की दशा में केतु का अन्तर हो और केतु शुभ ग्रह से युत हो तो स्वल्प सुख, अल्प धनलाभ, कदन्न, परान्न, श्राद्धान्न आदि का भोजन और पाप मार्ग से धन की प्राप्ति होती है ॥३२-३२½॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥३३॥
राजकोपो धनच्छेदो बन्धनं रोगपीडनम् ।
बलहानिः पितृद्वेषो भ्रातृद्वेषो मनोरुजः ॥३४॥

यदि केतु दशापति से ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो राजा के कोप से धन की क्षति, बन्धन, रोग से पीड़ा, बल की हानि, पिता और भाई से द्वेष एवं मानसिक व्यथा होती है ॥३३-३४॥

दायेशात्सुतभाग्यस्थे वाहने कर्मगेऽपि वा ।
नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥३५॥
महाराजप्रसादेन स्वेष्टकार्यार्थलाभकृत् ।
व्यवसायात्फलाधिक्यं गोमहिष्यादिलाभकृत् ॥३६॥
यवनप्रभुमूलाद्वा धनवस्त्रादिलाभकृत् ॥३६½॥

यदि केतु दशापति से ५, ९, ४, १० में हो तो पालकी, हाथी, अश्व, वस्त्रादि का लाभ, राजा की अनुकम्पा से अभीष्ट कार्य की सिद्धि, धनलाभ, व्यवसाय में अधिक उपलब्धि, गौ-महिष्यादि पशुओं से लाभ एवं यवनराजा से धन-वस्त्रादि का लाभ होता है ॥३५-३६½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥३७॥
छागदानं प्रकुर्वीत मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
सर्वदोषोपशमनीं शान्तिं कुर्याद्विधानतः ॥३८॥

यदि केतु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक बाधा होती है। उसकी शान्ति के लिए छागदान और विधानपूर्वक मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए ॥३७-३८॥

गुरु में शुक्रान्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते शुक्रे भाग्यकेन्द्रेशसंयुते ।
लाभे वा सुतराशिस्थे स्वक्षेत्रे शुभसंयुते ॥३९॥
नरवाहनयोगश्च गजाश्वाम्बरसंयुतः ।
महाराजप्रसादेन लाभाधिक्यं महत्सुखम् ॥४०॥
पूर्वस्यां दिशि विप्रेन्द्र प्रयाणं धनलाभदम् ।
कल्याणं च महाप्रीतिः पितृमातृसुखावहा ॥४१॥
देवतागुरुभक्तिश्च अन्नदानं महत्तथा ।
तडागगोपुरादीनि दिशेत् पुण्यानि भूरिशः ॥४२॥

गुरु की महादशा में शुक्रान्तर हो और शुक्र लग्न से भाग्येश या केन्द्रेश से युत हो या ११, ५ में हो अथवा स्वक्षेत्र में शुभ ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में पालकी, हाथी, अश्व आदि सवारी का सुख, वस्त्रप्राप्ति, राजा की प्रसन्नता से अधिक लाभ और पूर्ण

सुख, पूर्व दिशा की यात्रा से धनलाभ, गृह में कल्याण, सबसे मैत्री, माता-पिता से सुख, देवता और गुरु में भक्ति, अन्नदान, जलाशय, गौशाला-निर्माण आदि अनेक पुण्यदायक कार्य सम्पन्न होते हैं ।।३९-४२।।

षष्ठाष्टमव्यये नीचे दायेशाद्वा तथैव च ।
कलहो बन्धुवैषम्यं दारपुत्रादिपीडनम् ।।४३।।
मन्दारराहुसंयुक्ते कलहो राजतो भयम् ।
स्त्रीमूलात्कलहश्चैव श्वशुरात्कलहस्तथा ।।४४।।
सोदरेण विवादः स्याद्धनधान्यपरिच्युतिः ।।४४½।।

यदि शुक्र दशापति से ६, ८, १२ में या अपने नीच राशि में हो तो कलह, बन्धु में विरोध एवं स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है। शुक्र यदि शनि, मंगल, राहु से युत हो तो कलह, राजभय, स्त्री के कारण झगड़ा, श्वशुर से कलह, सहोदर बन्धु से विवाद और धन-धान्य का विनाश होता है ।।४३-४४½।।

दायेशात्केन्द्रराशिस्थे धने वा भाग्यगेऽपि वा ।।४५।।
धनधान्यादिलाभश्च श्रीलाभो राजदर्शनम् ।।४६।।
वाहनं पुत्रलाभश्च पशुवृद्धिर्महत्सुखम् ।
गीतवाद्यप्रसङ्गादिर्विद्वज्जनसमागमः ।।४७।।
दिव्यान्नभोजनं सौख्यं स्वबन्धुजनपोषकम् ।।४७½।।

यदि शुक्र दशापति से केन्द्र, २, ९ भाव में हो तो धन-धान्यादि का लाभ, श्रीप्राप्ति, राजदर्शन, वाहन, पुत्र और पशुओं की वृद्धि, परम सुख, गाना-बजाना के प्रसङ्ग से विद्वानों का समागम, सुन्दर भोजन, सौख्य एवं अपने बन्धुजनों का भरण-पोषण होता है ।।४५-४७½।।

द्विसप्तमाधिपे शुक्रे तद्दशायां धनक्षतिः ।।४८।।
अपमृत्युभयं तस्य स्त्रीमूलादौषधादितः ।
तस्य रोगस्य शान्त्यर्थं शान्तिकर्म समाचरेत् ।।४९।।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ।
शुक्रग्रहप्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ।।५०।।

शुक्र यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो उसकी अन्तर्दशा में धन की क्षति, अपमृत्यु का भय और पत्नी से विवाद हो जाता है। उस दोष के निवारण हेतु शान्ति कर्म करना चाहिए। श्वेत गौ एवं महिष का दान करने के कारण शुक्र की प्रसन्नता से सुख की प्राप्ति होती है ।।४८-५०।।

गुरु में सूर्यान्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।

केन्द्रे वाऽथ त्रिकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा ॥५१॥
धने वा बलसंयुक्ते दायेशाद्वा तथैव च।
तत्काले धनलाभः स्याद्राजसम्मानवैभवम् ॥५२॥
वाहनाम्बरपश्वादिभूषणं पुत्रसम्भवः।
मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वकार्ये शुभावहम् ॥५३॥

गुरु की महादशा में सूर्यान्तर्दशा हो और सूर्य स्वोच्च में, स्वगृह में, केन्द्र, त्रिकोण में या ३, ११, २ में बलयुक्त होकर बैठा हो तो उस समय धनलाभ, राजसम्मान, ऐश्वर्य, वाहन, वस्त्र, पशु, भूषण, पुत्रप्राप्ति की सम्भावना, राजा की मैत्री से अभीष्ट सिद्धि एवं सभी कार्यों में सन्तोषप्रद प्रगति होती है ॥५१-५२॥

लग्नाष्टमव्यये सूर्ये दायेशाद्वा तथैव च।
शिरोरोगादिपीडा च ज्वरपीडा तथैव च ॥५४॥
सत्कर्मसु सदा हीनः पापकर्मचयस्तथा।
सर्वत्र जनविद्वेषो ह्यात्मबन्धुवियोगकृत् ॥५५॥
अकस्मात्कलहश्चैव जीवस्यान्तर्गते रवौ ॥५५½॥

सूर्य यदि लग्न या दशापति से ८, १२ भाव में हो तो शिर में रोग, ज्वर से पीड़ा, सत्कार्य में अरुचि, पापकार्य की वृद्धि, लोगों से वैर-भाव, अपने बन्धु-बान्धवों से वियोग और विना कारण कलह होता है ॥५४-५५½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहपीडा भविष्यति ॥५६॥
तद्दोषपरिहारार्थमादित्यहृदयं जपेत्।
सर्वपीडोपशमनं श्रीसूर्यस्य प्रसादतः ॥५७॥

सूर्य यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उसके शान्त्यर्थ आदित्यहृदय का पाठ करने से श्रीसूर्य भगवान् की अनुकम्पा से समस्त कष्टों का उपशमन होता है ॥५६-५७॥

गुरु में चन्द्रान्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षराशिस्थे पूर्णे चैव बलैर्युते ॥५८॥
दायेशाच्छुभराशिस्थे राजसम्मानवैभवम्।
दारपुत्रादिसौख्यं च क्षीराणां भोजनं तथा ॥५९॥
सत्कर्म च तथा कीर्तिः पुत्रपौत्रादिवृद्धिदा।
महाराजप्रसादेन सर्वसौख्यं धनागमः ॥६०॥
अनेकजनसौख्यं च दानधर्मादिसंग्रहः ॥६०½॥

गुरु की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो और चन्द्रमा केन्द्र, लाभ, त्रिकोण,

स्वोच्च या अपनी राशि में पूर्ण बली होकर बैठा हो तो और दशापति से शुभ स्थान में हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को राजसम्मान, ऐश्वर्य, स्त्री-पुत्रादि से सुख, दुग्धनिर्मित (पायस) सुभोजन, सत्कर्म, यश, पुत्र–पौत्रादिकों वृद्धि, महाराज की प्रसन्नता से सभी सुखों की प्राप्ति, धनलाभ और दान-धर्मादि सुपुण्यों का संग्रह होता है ।।५८-६०½।।

षष्ठाष्टमव्यये चन्द्रे स्थिते वा पापसंयुते ।।६१।।
दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
मानार्थबन्धुहानिश्च विदेशपरिविच्युतिः ।।६२।।
नृपचौरादिपीडा च दायादजनविग्रहः ।
मातुलादिवियोगश्च मातृपीडा तथैव च ।।६३।।

यदि चन्द्रमा लग्न या दशापति से ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो, बलहीन हो तो मान, धन और बन्धुओं की हानि, विदेश भ्रमण, राजा, चौरादि से पीड़ा, दायाद से विग्रह, मामा का वियोग और माता को पीड़ा होती है ।।६१-६३।।

द्वितीयषष्ठयोरीशे देहपीडा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गापाठं च कारयेत् ।।६४।।

चन्द्रमा यदि द्वितीयेश या षष्ठेश हो तो शरीर में पीड़ा होती है। इस दोष की शान्ति हेतु सप्तशती पाठ और दुर्गापूजा करनी चाहिए ।।६४।।

गुरु में भौमान्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ।।६५।।
विद्याविवाहकार्याणि ग्रामभूम्यादिलाभकृत् ।
जनसामर्थ्यमाप्नोति सर्वकार्यार्थसिद्धिदम् ।।६६।।

गुरु के अन्तर्गत भौम हो और भौम लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वराशि में, उच्च नवमांश या स्वनवमांश हो तो गृह में शास्त्रचर्चा, विवाहादि शुभकार्य, ग्राम-भूमि का लाभ, अपनी प्रतिभा की वृद्धि और सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है ।।६५-६६।।

दायेशात्केन्द्रकोणस्थे लाभे वा धनगेऽपि वा ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे धनधान्यादिसम्पदः ।।६७।।
मिष्टान्नदानविभवं राजप्रीतिकरं शुभम् ।
स्त्रीसौख्यं च सुतावाप्तिः पुण्यतीर्थफलं तथा ।।६८।।

दशापति से मंगल केन्द्र, कोण, लाभ या धनभाव में हो और शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो धन-धान्यादि सम्पत्ति का आगमन, मिष्टान्न-भोजन, राजा की प्रसन्नता, पुत्र की प्राप्ति, स्त्रीसुख एवं तीर्थयात्रा तथा पुण्यकर्मों का संग्रह होता है ।।६७-६८।।

दायेशाद्रन्ध्रभावे वा व्यये वा नीचगेऽपि वा।
पापयुक्तेक्षिते वापि धान्यार्थगृहनाशनम् ॥६९॥
नानारोगभयं दुःखं नेत्ररोगादिसम्भवः।
पूर्वार्द्धे कष्टमाधिक्यमपरार्द्धे महत्सुखम् ॥७०॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजः।
वृषभस्य प्रदानं तु सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥७१॥

दशापति से मंगल यदि ८, १२ में नीच में पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो धन-धान्य-गृह का नाश, नेत्रसम्बन्धी रोग के साथ-साथ अन्य विभिन्न रोगों का भय, दुःख, दशा के पूर्वार्द्ध में विशेष कष्ट और उत्तरार्द्ध में सुख होता है। यदि मंगल द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो देह में कष्ट एवं मानसिक रोग होता है। उसकी शान्ति के लिए समस्त सम्पत्तिदायक वृष का दान करना चाहिए ॥६९-७१॥

गुरु में राह्वन्तर्दशा-फल

जीवस्यान्तर्गते राहौ स्वोच्चे वा केन्द्रगेऽपि वा।
मूलत्रिकोणे भाग्ये च केन्द्राधिपसमन्विते ॥७२॥
शुभयुक्तेक्षिते वापि योगप्रीतिं समादिशेत्।
भुक्त्यादौ पञ्चमासांश्च धनधान्यादिकं लभेत् ॥७३॥
देशग्रामाधिकारं च यवनप्रभुदर्शनम्।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्बहुसेनाधिपत्यकम् ॥७४॥
दूरयात्राधिगमनं पुण्यधर्मादिसङ्ग्रहः।
सेतुस्नानफलावाप्तिरिष्टसिद्धिः सुखावहा ॥७५॥

गुरु की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो और राहु यदि अपने उच्च, केन्द्र, अपने मूल त्रिकोण, भाग्यस्थान में अथवा केन्द्रेश से युत हो और शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो यौगिक क्रिया में प्रेम, आरम्भ से पाँच मास तक धन-धान्यादि का लाभ, स्वदेश या ग्राम का अधिकारी, यवनराज का दर्शन, गृह में कल्याण, सम्पत्तिबाहुल्य, सेनानायक, दूरयात्रा, दूर गमन, पुण्यादि धार्मिक कृत्यों का संग्रह और सेतु-(समुद्र)-स्नानादि का लाभ तथा सुख होता है ॥७२-७५॥

दायेशाद्रन्ध्रभावे वा व्यये वा पापसंयुते।
चौराहिव्रणभीतिश्च राजवैषम्यमेव च ॥७६॥
गृहे कर्मकलापेन व्याकुलो भवति ध्रुवम्।
सोदरेण विरोधः स्याद्दायादजनविग्रहः ॥७७॥
गृहे त्वशुभकार्याणि दुःस्वप्नादिभयं ध्रुवम्।
अकस्मात्कलहश्चैव क्षुद्रशून्यादिरोगकृत् ॥७८॥

यदि दशापति से ८, १२ में पाप ग्रह युत हो तो चोर, सर्प, व्रण का भय, राजा से शत्रुता, गृह में कार्यविषमता के कारण व्याकुलता, सोदर बन्धुओं से विरोध, दायाद से विग्रह, गृह में अशुभ कार्य, दुःस्वप्न-दर्शन, अकारण ही कलह एवं क्षुद्र शून्यादि रोग का भय होता है ॥७६-७८॥

द्विसप्तमस्थिते राहौ देहबाधां विनिर्दिशेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥७९॥
छागदानं प्रकुर्वीत सर्वसौख्यमवाप्नुयात् ।
देवपूजाप्रसादेन राहुतुष्ट्या द्विजोत्तम ! ॥८०॥

यदि राहु २, ७ भाव में हो तो शारीरिक कष्ट होता है; उस दोष की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय का जप एवं छागदान करने पर राहु की प्रसन्नता से समस्त सुखों की प्राप्ति होती है ॥७९-८०॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां जीवान्तर्दशाफलाध्याय: ॥५८॥

अथ शन्यन्तर्दशाफलाध्यायः ॥५९॥

शनि में शन्यन्तर्दशा-फल

मूलत्रिकोणे स्वर्क्षे वा तुलायामुच्चगेऽपि वा।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राजयोगादिसंयुते ॥१॥
राज्यलाभो महत्सौख्यं दारपुत्रादिवर्धनम्।
वाहनत्रयसंयुक्तं गजाश्वाम्बरसङ्कुलम् ॥२॥
महाराजप्रसादेन सेनापत्यादिलाभकृत्।
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् ग्रामभूम्यादिलाभकृत् ॥३॥

शनि की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो और शनि अपने मूलत्रिकोण, स्वराशि, तुला या स्व-उच्च नवमांश या लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में या राजयोगकारक हो तो राज्यलाभ, परम सुख, स्त्री-पुत्रादि की वृद्धि, वाहन (हाथी, अश्व, नरवाहन) की प्राप्ति, वस्त्रलाभ, राजा की प्रसन्नता से सेनानायक का अधिकार प्राप्त एवं पशु, ग्राम, भूमि आदि का लाभ होता है ॥१-३॥

तथाऽष्टमे व्यये मन्दे नीचे वा पापसंयुते।
तद्भुक्त्यादौ राजभीतिर्विषशस्त्रादिपीडनम् ॥४॥
रक्तस्त्रावो गुल्मरोगो ह्यतिसारादिपीडनम्।
मध्ये चौरादिभीतिश्च देशत्यागो मनोरुजः ॥५॥
अन्ते शुभकरी चैव शनेरन्तर्दशा द्विज! ॥५$\frac{1}{2}$॥

शनि यदि लग्न से ८, १२ में या नीच में पाप ग्रह से युत हो तो अन्तर्दशारम्भ में राजभय, विष, शस्त्रादि का भय होता है और रक्तस्राव, गुल्म, अतीसारादि रोग से पीड़ा होती है। दशा के मध्य में चोर डाकू आदि का भय, देशत्याग, मानसिक व्यथा एवं अन्त में शुभ फल की प्राप्ति होती है ॥४-५$\frac{1}{2}$॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥६॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत्।
ततः शान्तिमवाप्नोति शङ्करस्य प्रसादतः ॥७॥

शनि यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। इस दोष की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय का जप करने पर शंकर भगवान् की कृपा से शान्ति की प्राप्ति होती है ॥६-७॥

शनि में बुधान्तर्दशा-फल

मन्दस्यान्तर्गते सौम्ये त्रिकोणे केन्द्रगेऽपि वा।
सम्मानं च यशः कीर्तिं विद्यालाभं धनागमम् ॥८॥

स्वदेशे सुखमाप्नोति वाहनादिफलैर्युतम् ।
यज्ञादिकर्मसिद्धिश्च राजयोगादिसम्भवम् ॥९॥
देहसौख्यं हृदुत्साहं गृहे कल्याणसम्भवम् ।
सेतुस्नानफलावाप्तिस्तीर्थयात्रादिकर्मणा ॥१०॥
वाणिज्याद्धनलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् ।
अन्नदानफलं चैव नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥११॥

शनि की महादशा में बुधान्तर्दशा हो और बुध यदि केन्द्र-त्रिकोण में हो तो समाज में सम्मान, यश, विद्या, धन का लाभ एवं स्वदेश में ही वाहनादि का सुख प्राप्त होता है। यज्ञसम्बन्धी कार्यों की सिद्धि, राजयोग, शारीरिक सुख, हृदय में उत्साह, घर में कल्याण, सेतुस्नानादि तीर्थयात्रा, व्यापार से धन का लाभ, पुराण-श्रवण (धार्मिक अनुष्ठान), अन्नदान एवं सदैव मिष्टान्न से समन्वित भोजन की प्राप्ति होती है ॥८-११॥

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये नीचे वास्तङ्गते सति ।
रव्यारफणिसंयुक्ते दायेशाद्वा तथैव च ॥१२॥
नृपाभिषेकमर्थाप्तिर्देशग्रामाधिपत्यता ।
फलमीदृशमादौ तु मध्यान्ते रोगपीडनम् ॥१३॥
नष्टानि सर्वकार्याणि व्याकुलत्वं महद्भयम् ॥१३½॥

बुध यदि लग्न से या दशापति से ६, ८, १२ में हो या नीच, अस्त हो या सूर्य, मंगल, राहु से युत हो तो दशा के आरम्भकाल में राज्याभिषेक (राज्यलाभ), धन की प्राप्ति एवं देश या ग्रामाधिपति का अधिकार प्राप्त होता है; परन्तु दशा के मध्य और अन्त में रोग से पीड़ा, सभी कार्यों का विनाश, मानसिक अशान्ति और महान् भय उपस्थित होता है ॥१२-१३½॥

द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥१४॥
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ।
अन्नदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥१५॥

बुध यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शरीर में कष्ट होता है। इस अनिष्ट के शमन हेतु विष्णुसहस्रनाम का जप करने के पश्चात् अन्नदान करने पर समस्त सुखों की प्राप्ति होती है ॥१४-१५॥

शनि में केत्वन्तर्दशा-फल

मन्दस्यान्तर्गते केतौ शुभदृष्टियुतेक्षिते ।
स्वोच्चे वा शुभराशिस्थे योगकारकसंयुते ॥१६॥
केन्द्रकोणगते वापि स्थानभ्रंशो महद्भयम् ।
दरिद्रबन्धनं भीतिः पुत्रदारादिनाशनम् ॥१७॥

स्वप्रभोश्च महत्कष्टं विदेशगमनं तथा ।
लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमः ॥१८॥
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानं दैवतदर्शनम् ॥१८½॥

शनि की महादशा में केत्वन्तर हो और केतु स्वोच्च में, स्वराशि में या योगकारक ग्रह हो और शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो, केन्द्र, त्रिकोण में हो तो उसकी अन्तर्दशा में स्थान का नाश, भय, दरिद्रता, बन्धन, पुत्र-स्त्री आदि का नाश, अपने स्वामी को कष्ट और विदेश-गमन आदि अशुभ फल प्राप्त होता है। यदि लग्नेश से युत हो तो अन्तर्दशा के आरम्भ में सुख, धनागम, गङ्गादि तीर्थों में स्नान और देवता का दर्शन होता है ॥१६-१८½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा तृतीयभवराशिगे ॥१९॥
समर्थो धर्मबुद्धिश्च सौख्यं नृपसमागमः ॥१९½॥

दशापति से केतु यदि केन्द्र, त्रिकोण ३, ११ भाव में हो तो जातक सामर्थ्य से सम्पन्न, धार्मिक बुद्धि वाला, राजा का सामीप्य प्राप्त करने वाला तथा सुखी होता है ॥१९-१९½॥

तथाऽष्टमे व्यये केतौ दायेशाद्वा तथैव च ॥२०॥
अपमृत्युभयं चैव कुत्सितान्नस्य भोजनम् ।
शीतज्वरातिसारश्च व्रणचौरादिपीडनम् ॥२१॥
दारपुत्रवियोगश्च संसारे भवति ध्रुवम् ॥२१½॥

केतु यदि लग्न से या दशापति से ८, १२ में हो तो अपमृत्यु का भय, कुभोजन, शीत ज्वर, अतीसार, घाव, चौरादि से पीड़ा एवं स्त्री-पुत्र से वियोग होता है ॥२०-२१½॥

द्वितीयद्यूनराशिस्थे देहपीडा भविष्यति ॥२२॥
छागदानं प्रकुर्वीत ह्यपमृत्युनिवारणम् ।
केतुग्रहप्रसादेन सुखशान्तिमवाप्नुयात् ॥२३॥

यदि लग्न से केतु २, ७ भाव में हो तो शरीर में कष्ट और अपमृत्यु होता है। अपमृत्यु-निवारण के लिए छागदान करने पर केतु की प्रसन्नता से सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है ॥२२-२३॥

शनि में शुक्रान्तर्दशा-फल

मन्दस्यान्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।
केन्द्रे वा शुभसंयुक्ते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥२४॥
दारपुत्रधनप्राप्तिर्देहारोग्यं महोत्सवः ।
गृहे कल्याणसम्पत्ती राज्यलाभं महत्सुखम् ॥२५॥
महाराजप्रसादेन हीष्टसिद्धिः सुखावहा ।
सम्मानं प्रभुसम्मानं प्रियवस्त्रादिलाभकृत् ॥२६॥
द्वीपान्तराद्वस्त्रलाभः श्वेताश्वो महिषी तथा ।

गुरुचारवशाद् भाग्यं सौख्यं च धनसम्पदः ॥२७॥
शनिचारान्मनुष्योऽसौ योगमाप्नोत्यसंशयम् ॥२७$\frac{1}{2}$॥

शनि की महादशा में शुक्रान्तर हो, शुक्र अपने उच्च राशि में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में या लाभ में शुभ ग्रह से युत हो तो स्त्री-पुत्र-धन की प्राप्ति, आरोग्य, उत्सव, गृह में कल्याण, सम्पत्ति, राज्यलाभ, परम सुख, राजा की प्रसन्नता से अभीष्ट की सिद्धि, सम्मान, स्वामी की प्रसन्नता, इच्छित वस्त्रादि का लाभ, देशान्तर से वस्त्रलाभ, सफेद अश्व एवं महिषी का लाभ होता है; साथ ही उस समय यदि गुरु अनुकूल हो तो भाग्योदय, सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और शनि गोचर से अनुकूल हो तो राजयोग या यौगिक क्रिया की सिद्धि होती है ॥२४-२७$\frac{1}{2}$॥

शत्रुनीचास्तगे शुक्रे षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥२८॥
दारनाशो मनःक्लेशः स्थाननाशो मनोरुजः ।
दाराणां स्वजनक्लेशः सन्तापो जनविग्रहः ॥२९॥

शुक्र यदि शत्रुगृह में, नीच या अस्त हो या लग्न से ६, ८, १२ भाव में हो तो स्त्री का नाश, मानसिक क्लेश, स्थाननाश, चित्त में आकुलता, स्वजन में दुःख, सन्ताप एवं लोगों से विग्रह होता है ॥२८-२९॥

दायेशाद् भाग्यगे चैव केन्द्रे वा लाभसंयुते ।
राजप्रीतिकरं चैव मनोऽभीष्टप्रदायकम् ॥३०॥
दानधर्मदयायुक्तं तीर्थयात्रादिकं फलम् ।
शास्त्रार्थकाव्यरचनां वेदान्तश्रवणादिकम् ॥३१॥
दारपुत्रादिसौख्यं च लभते नाऽत्र संशय ॥३१$\frac{1}{2}$॥

शुक्र यदि दशापति से भाग्य, केन्द्र या लाभस्थान में बैठा हो तो राजा की प्रसन्नता से अभीष्ट सिद्धि, दान, धर्म, दया, तीर्थयात्रा, शास्त्रचर्चा, काव्यनिर्माण, वेदान्त-श्रवण एवं स्त्री-पुत्रादि से सुख प्राप्त होता है ॥३०-३१$\frac{1}{2}$॥

दायेशाद्व्ययगे शुक्रे षष्ठे वा ह्यष्टमेऽपि वा ॥३२॥
नेत्रपीडा ज्वरभयं स्वकुलाचारवर्जितः ।
कपोले दन्तशूलादि हृदि गुह्ये च पीडनम् ॥३३॥
जलभीतिर्मनस्तापो वृक्षात्पतनसम्भवः ।
राजद्वारे जनद्वेषः सोदरेण विरोधनम् ॥३४॥

दशापति से शुक्र द्विस्वभाव राशि में हो या ६, ८ में हो तो नेत्रपीड़ा, ज्वरभय, अपने कुलाचार से हीन, दन्तरोग, गुदामार्ग में शूल, हृदय में पीड़ा, जल से भय, मानसिक सन्ताप, वृक्ष से गिरने का भय, राजभवन से द्वेष एवं सहोदर बन्धु-बान्धवों से विरोध होता है ॥३२-३४॥

द्वितीयसप्तमाधीशे आत्मक्लेशो भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥३५॥
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धिदम् ।
जगदम्बाप्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ॥३६॥

शुक्र यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो आत्मक्लेश होता है। उसके दोष-शान्त्यर्थ दुर्गासप्तशती का पाठ एवं गोदान, महिषदान करने से जगदम्बा की कृपा से आरोग्य और सुख की प्राप्ति होती है ॥३५-३६॥

शनि में सूर्यान्तर्दशा-फल

मन्दस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।
भाग्याधिपेन संयुक्ते केन्द्रलाभत्रिकोणगे ॥३७॥
शुभदृष्टियुते वापि स्वप्रभोश्च महत्सुखम् ।
गृहे कल्याणसम्पत्तिः पुत्रादिसुखवर्द्धनम् ॥३८॥
वाहनाम्बर-पश्वादि-गोक्षीरैस्संकुलं गृहम् ॥३८ $\frac{1}{2}$॥

शनि की महादशा में सूर्यान्तर हो और सूर्य अपने उच्च या स्वक्षेत्र में या भाग्येश से युत होकर केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में शुभग्रह से युत या दृष्ट होकर बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा में अपने स्वामी से पूर्ण सुख, घर में कल्याण, सम्पत्ति, पुत्रादि से सुख, वाहन, वस्त्र आदि का लाभ एवं पशु, गोदुग्ध आदि से घर सदा परिपूर्ण रहता है ॥३७-३८ $\frac{1}{2}$॥

लग्नाष्टमव्यये सूर्ये दायेशाद्वा तथैव च ॥३९॥
हृद्रोगो मानहानिश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा ।
इष्टबन्धुवियोगश्च उद्योगस्य विनाशनम् ॥४०॥
तापज्वरादिपीडा च व्याकुलत्वं भयं यथा ।
आत्मसम्बन्धि-मरणमिष्टवस्तु-वियोगकृत् ॥४१॥

सूर्य यदि दशापति से या लग्न से ८, १२ में हो तो हृदयसम्बन्धी रोग, मानहानि, स्थाननाश, मानसिक रोग, इष्ट-बन्धु-वियोग, उद्योग में अवरोध, ताप-ज्वरादि से पीड़ा, अशान्ति, भय, अपने सम्बन्धियों का मरण एवं अभीष्ट वस्तु से वियोग होता है ॥३९-४१॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं सूर्यपूजां च कारयेत् ॥४२॥

सूर्य यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के शमन हेतु सूर्य की पूजा करनी चाहिए ॥४२॥

शनि में चन्द्रान्तर-फल

मन्दस्यान्तर्गते चन्द्रे जीवदृष्टिसमन्विते ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥४३॥

पूर्णे शुभग्रहैर्युक्ते राजप्रीतिसमागमः ।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥४४॥
सौभाग्यं सुखवृद्धिं च भृत्यानां परिपालनम् ।
पितृमातृकुले सौख्यं पशुवृद्धिः सुखावहा ॥४५॥

शनि के अन्तर्गत चन्द्रान्तर हो और स्वोच्च में, स्वगृह, केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में पूर्ण चन्द्र बैठा हो और गुरु की दृष्टि हो या शुभ ग्रह से युत-दृष्ट हो तो राजा से मैत्री, राजा की प्रसन्नता से वाहन, वस्त्र, आभूषण का लाभ, सुख और सौभाग्य की वृद्धि, भृत्यों का पालन, मातृ-पितृ-कुल में सुख एवं पशुओं की वृद्धि होती है ॥४३-४५॥

क्षीणे वा पापसंयुक्ते पापदृष्टे च नीचगे ।
क्रूरांशकगते वापि क्रूरक्षेत्रगतेऽपि वा ॥४६॥
जातकस्य महत्कष्टं राजकोपो धनक्षयः ।
पितृमातृवियोगश्च पुत्रीपुत्रादिरोगकृत् ॥४७॥
व्यवसायात्फलं नेष्टं नानामार्गे धनव्ययः ।
अकाले भोजनं चैवमौषधस्य च भक्षणम् ॥४८॥
फलमेतद् विजानीयादादौ सौख्यं धनागमः ॥४८$\frac{1}{2}$॥

चन्द्रमा क्षीण हो या पाप ग्रह से युत-दृष्ट हो या स्वनीच राशि में हो या क्रूर ग्रह के नवमांश में या क्रूर ग्रह के क्षेत्र में हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को महाकष्ट, राजकोप, धन-क्षय, पितृ-मातृवियोग, कन्या-पुत्रादि को रोग, व्यवसाय से हानि, विभिन्न कारणों से धन का व्यय, असमय में भोजन और औषधियाँ सेवन करना पड़ता है—इस प्रकार का फल जानना चाहिए; परन्तु दशा के आरम्भ में सुख एवं धनागम भी होता है ॥४६-४८$\frac{1}{2}$॥

दायेशात् केन्द्रराशिस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥४९॥
वाहनाम्बर-पश्वादि-भ्रातृवृद्धिः सुखावहा ।
पितृ-मातृ-सुखावाप्तिः स्त्रीसौख्यं च धनागमः ॥५०॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं सर्वसौख्यं शुभावहम् ॥५०$\frac{1}{2}$॥

चन्द्र दशापति से केन्द्र, त्रिकोण या लाभभाव में बैठा हो तो वाहन, वस्त्र, पशु आदि की वृद्धि, भ्रातृ और सुख की प्राप्ति; पितृ-मातृसुख, स्त्रीसुख, धनलाभ, मित्र या स्वामी से अभीष्ट की सिद्धि, समस्त सुख और शुभदायक होता है ॥४९-५०$\frac{1}{2}$॥

दायेशाद् द्वादशे भावे रन्ध्रे वा बलवर्जिते ॥५१॥
शयनं रोगमालस्यं स्थानभ्रंशं सुखावहम् ।
शत्रुवृद्धिविरोधं च बन्धुद्वेषमवाप्नुयात् ॥५२॥

यदि चन्द्रमा दशापति से १२, ८ भाव में बलहीन हो तो निद्रा, रोग, आलस्य, स्थान-नाश, सुख में कमी, शत्रुवृद्धि, विरोध एवं बन्धुओं में द्वेष होता है ॥५१-५२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहालस्यं भविष्यति ।
तद्दोषशमनार्थं च तिलहोमादिकं चरेत् ॥५३॥
गुडं घृतं च दध्नाक्तं तण्डुलं च यथाविधि ।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ॥५४॥

चन्द्रमा द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट और आलस्य होता है । उक्त दोष के शमन हेतु तिल से हवन एवं गुड़, घी, दहीयुत चावल की विधिपूर्वक बली देकर गौदान एवं महिषदान करने पर आयु एवं आरोग्य की वृद्धि होती है ॥५३-५४॥

शनि में भौमान्तर-फल

मन्दस्यान्तर्गते भौमे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
तुङ्गे स्वक्षेत्रगे वापि दशाधिपसमन्विते ॥५५॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते आदौ सौख्यं धनागमः ।
राजप्रीतिकरं सौख्यं वाहनाम्बरभूषणम् ॥५६॥
सेनापत्यं नृपप्रीतिः कृषिगोधान्यसम्पदः ।
नूतनस्थाननिर्माणं भ्रातृवर्गेष्टसौख्यकृत् ॥५७॥

शनि की महादशा में मंगल का अन्तर हो और मंगल स्वोच्च, स्वक्षेत्र या दशापति से युत या लग्नेश से युत या लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में स्थित हो तो दशारम्भ में सुख, धनागम, राजा से मैत्री, वाहन, वस्त्र, आभूषण, सेनानायक, खेती, पशुओं की वृद्धि, नवीन गृहनिर्माण एवं अपने बन्धुओं से सुख प्राप्त होता है ॥५५-५७॥

नीचे चास्तङ्गते भौमे लग्नादष्टव्ययस्थिते ।
पापदृष्टियुते वापि धनहानिर्भविष्यति ॥५८॥
चौराहि-व्रण-शस्त्रादि-ग्रन्थिरोगादि-पीडनम् ।
भ्रातृपित्रादिपीडा च दायादजनविग्रहः ॥५९॥
चतुष्पाज्जीवहानिश्च कुत्सितान्नस्य भोजनम् ।
विदेशगमनं चैव नानामार्गे धनव्ययः ॥६०॥

मंगल अपने नीच राशि में अस्त हो और लग्न से ८, १२ में पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो धन की हानि, चौर, सर्प, व्रण, शस्त्रादि का भय, ग्रन्थि-(गठिया)-सम्बन्धी रोग से पीड़ा, भाई, पिता को कष्ट, दायाद से विग्रह, पशुओं की हानि, कुभोजन, विदेश-गमन और विभिन्न मार्गों से धन का नाश होता है ॥५८-६०॥

अष्टमद्यूननाथे तु द्वितीयस्थेऽथ वा यदि ।
अपमृत्युभयं चैव नानाकष्टं पराभवः ॥६१॥
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिहोमं च कारयेत् ।
वृषदानं प्रकुर्वीत सर्वारिष्टनिवारणम् ॥६२॥

मंगल यदि अष्टमेश, सप्तमेश या द्वितीय स्थान में बैठा हो तो अकालमृत्यु का भय, अनेक संकट और पराभव होता है। उस दोष के शान्त्यर्थ होम और वृषदान करने से समस्त अरिष्टों का निवारण होता है ॥६१-६२॥

शनि की दशा में राह्वन्तर-फल

मन्दस्यान्तर्गते राहौ कलहश्च मनोव्यथा।
देहपीडा मनस्तापः पुत्रद्वेषो रुजोभयम् ॥६३॥
अर्थव्ययो राजभयं स्वजनादिर्विरोधिता।
विदेशगमनं चैव गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥६४॥

शनि की महादशा में राहु की अन्तर्दशा हो तो (राहु शुभ भाव में न हो) उस समय जातक को मानसिक रोग, कलह, शारीरिक पीड़ा, मन में सन्ताप, पुत्र से वैर-भाव, रोग-भय, अनावश्यक खर्च, राजभय, आत्मीय जनों से विरोध, विदेश-भ्रमण एवं गृह और खेती में हानि होती है ॥६३-६४॥

लग्नाधिपेन संयुक्ते योगकारकसंयुते।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे केन्द्रे दायेशाल्लाभराशिगे ॥६५॥
आदौ सौख्यं धनावाप्तिं गृहक्षेत्रादिसम्पदम्।
देवब्राह्मणभक्तिं च तीर्थयात्रादिकं लभेत् ॥६६॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् गृहे कल्याणवर्द्धनम्।
मध्ये तु राजभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम् ॥६७॥

यदि राहु लग्नेश से युत हो या योगकारक ग्रह से युत हो या अपने उच्च, स्वक्षेत्र अथवा दशापति से केन्द्र, लाभभाव में हो तो दशा के आरम्भ में सुख, धन की प्राप्ति, गृह, खेती आदि से लाभ, देवता-ब्राह्मण में निष्ठा, तीर्थयात्रा, पशुओं से लाभ एवं घर में कल्याण होता है। दशा के मध्य में राजभय एवं पुत्र-मित्रादि जनों से विरोध होता है ॥६५-६७॥

मेषे कन्यागते वापि कुलीरे वृषभे तथा।
मीनकोदण्डसिंहेषु गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ॥६८॥
राजसम्मानभूषाप्तिं मृदुलाम्बरसौख्यकृत् ॥६८½॥

यदि राहु मेष, कन्या, कर्क, वृष, मीन, धनु या सिंह राशि में हो तो हाथी की प्राप्ति होने तक ऐश्वर्य की वृद्धि होती है; साथ ही राजा से सम्मान एवं आभूषण की प्राप्ति तथा रेशमी वस्त्रादि जन्य सुख की प्राप्ति होती है ॥६८-६८½॥

द्विसप्तमाधिपैर्युक्ते देहबाधा भविष्यति ॥६९॥
मृत्युञ्जयं प्रकुर्वीत छागदानं च कारयेत्।
वृषदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्सुखावहम् ॥७०॥

यदि राहु द्वितीयेश या सप्तमेश से युक्त हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के निवारण हेतु मृत्युञ्जय का जप, छागदान, वृषदान करने से समस्त सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥६९-७०॥

शनि में गुर्वन्तर्दशा-फल

मन्दस्यान्तर्गते जीवे केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
लग्नाधिपेन संयुक्ते स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ॥७१॥
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्याच्छोभनं भवति ध्रुवम्।
महाराजप्रसादेन धन-वाहन-भूषणम् ॥७२॥
सम्मानं प्रभुसम्मानं प्रियवस्त्रार्थलाभकृत्।
देवतागुरुभक्तिश्च विद्वज्जनसमागमः ॥७३॥
दारपुत्रादिलाभश्च पुत्रकल्याणवैभवम् ॥७३½॥

शनि की महादशा में गुरु का अन्तर हो और गुरु यदि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में या लाभ, या लग्नाधिप से युत होकर अपने उच्च या स्वक्षेत्र में हो तो धनाप्ति और सभी कार्यों की सिद्धि और सर्वत्र मंगल होता है। राजा की प्रसन्नता से धन, वाहन, भूषण, सम्मान, अभीष्ट वस्त्र, अर्थादि का लाभ, देवता और ब्राह्मणों में भक्ति, विद्वानों का आगमन, स्त्री-पुत्रादि से लाभ और वैभव की प्राप्ति होती है ॥७१-७३½॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे नीचे वा पापसंयुते ॥७४॥
निजसम्बन्धिमरणं धनधान्यविनाशनम्।
राजस्थाने जनद्वेषः कार्यहानिर्भविष्यति ॥७५॥
विदेशगमनं चैव कुष्ठरोगादिसम्भवः ॥७५½॥

यदि गुरु लग्न से ६, ८, १२ में, स्वनीच में या पाप ग्रह से युत हो तो अपने सम्बन्धियों का मरण, धन-धान्यादि का नाश, राजस्थान में कर्मचारियों से वैरभाव, कार्य का नाश, विदेश भ्रमण और कुष्ठादि रोगों का भय होता है ॥७४-७५½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा धने वा लाभगेऽपि वा ॥७६॥
विभवं दारसौभाग्यं राजश्रीधनसम्पदः।
भोजनाम्बरसौख्यं च दानधर्मादिकं भवेत् ॥७७॥
ब्रह्मप्रतिष्ठासिद्धिश्च क्रतुकर्मफलं तथा।
अन्नदानं महाकीर्तिर्वेदान्तश्रवणादिकम् ॥७८॥

दशापति से गुरु केन्द्र, त्रिकोण, धन, लाभभाव में बैठा हो तो ऐश्वर्य, स्त्री-सुख, धन-लाभ, भोजन, वस्त्रादि से सुख, दान-धर्मादि धार्मिक कार्यों में प्रवृत्ति, ब्रह्मनिष्ठा, सिद्धि, याज्ञिक कार्य, अन्नदान, यश, कीर्ति की प्राप्ति एवं वेद-वेदान्त के श्रवण में अभिरुचि होती है ॥७६-७८॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
बन्धुद्वेषो मनोदु:खं कलह: पदविच्युति: ॥७९॥
कुभोजनं कर्महानी राजदण्डाद्धनव्यय: ।
कारागृहप्रवेशश्च पुत्रदारादिपीडनम् ॥८०॥

दशापति से गुरु ६, ८, १२ में बलहीन हो तो स्वबन्धुओं से द्वेष, मानसिक दु:ख, कलह, स्थानत्याग, कुभोजन, कार्यनाश, राजदण्ड से धन की क्षति, कारागृह में प्रवेश एवं पुत्र-स्त्री आदि को पीड़ा होती है ॥७९-८०॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा मनोरुज: ।
आत्मसम्बन्धिमरणं भविष्यति न संशय: ॥८१॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
स्वर्णदानं प्रकुर्वीत ह्यारोग्यं भवति ध्रुवम् ॥८२॥

गुरु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट और मानसिक रोग एवं अपने सम्बन्धियों का नाश होता है । उस दोष के शमन हेतु शिवसहस्रनाम का जप एवं सुवर्णदान करने से आरोग्यलाभ होता है ॥८१-८२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां शन्यन्तर्दशाफलाध्याय: ॥५९॥

अथ बुधान्तर्दशाफलाध्यायः ॥६०॥

बुध की दशा में बुधान्तर का फल

मुक्ताविद्रुमलाभश्च ज्ञानकर्मसुखादिकम् ।
विद्यामहत्त्वं कीर्तिश्च नूतनप्रभुदर्शनम् ॥१॥
विभवं दारपुत्रादे-पितृमातृ-सुखावहम् ।
स्वोच्चादिस्थेऽथ नीचेऽस्ते षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥२॥
पापयुक्तेऽथवा दृष्टे धनधान्यपशुक्षयः ।
आत्मबन्धुविरोधश्च शूलरोगादिसम्भवः ॥३॥
राजकार्यकलापेन व्याकुलो भवति ध्रुवम् ॥३$\frac{1}{2}$॥

बुध की महादशा हो और बुध की ही अन्तर्दशा चल रही हो, बुध अपने उच्चादि शुभ स्थान में बैठा हो तो उस समय जातक को मोती-प्रवालादि रत्नों का लाभ, ज्ञान, कर्म, सुख की प्राप्ति, विद्या, यश, नवीन राजाओं का दर्शन, ऐश्वर्य एवं स्त्री, पुत्र, पितृ, मातृ आदि से परम सुख की प्राप्ति होती है। यदि बुध अपने नीच में हो या अस्त हो अथवा अशुभ ६, ८, १२ भाव में बैठा हो या पापयुत या दृष्ट हो तो धन-धान्य-पशुओं का नाश, अपने बन्धु-बान्धवों से विरोध, शूलादि रोग एवं राजकार्य से व्याकुलता होती है ॥१-३$\frac{1}{2}$॥

द्वितीयद्यूननाथे तु दारक्लेशो भविष्यति ॥४॥
आत्मसम्बन्धिमरणं वातशूलादिसम्भवः ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥५॥

बुध यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो स्त्री को कष्ट, स्वसम्बन्धियों का मरण, वायु-सम्बन्धी रोग तथा शूलादि रोग होता है। उस दोष के शान्त्यर्थ विष्णुसहस्रनाम का जप करना चाहिए ॥४-५॥

बुध में केत्वन्तर्दशा-फल

बुधस्यान्तर्गते केतौ लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
शुभयुक्ते शुभैर्दृष्टे लग्नाधिपसमन्विते ॥६॥
योगकारकसम्बन्धे दायेशात्केन्द्रलाभगे ।
देहसौख्यं धनाल्पत्वं बन्धुस्नेहमथादिशेत् ॥७॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्यात्सञ्चारेण धनागमः ।
विद्याकीर्तिप्रसङ्गश्च सम्मानप्रभुदर्शनम् ॥८॥
भोजनाम्बरसौख्यं च ह्यादौ मध्ये सुखावहम् ॥८$\frac{1}{2}$॥

बुध की महादशा में केत्वन्तर हो, केतु लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में शुभ ग्रह से युत या

दृष्ट हो या लग्नेश के साथ हो या योगकारक ग्रह से सम्बन्ध रखता हो या दशापति से केन्द्र-त्रिकोण-लाभ में बैठा हो तो उस समय शारीरिक सुख, अध्ययन, स्वबन्धुओं से प्रेम, पशुओं से लाभ, परिश्रम से धनागम, विद्या, कीर्ति, सम्मान, राजदर्शन, भोजन एवं वस्त्रसुख की प्राप्ति होती है। इस प्रकार का फल दशा के आरम्भ और मध्य में जानना चाहिए ॥६-८½॥

दायेशाद्यदि रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥९॥
वाहनात्पतनं चैव पुत्रक्लेशादिसम्भवः।
चौरादिराजभीतिश्च पापकर्मरतः सदा ॥१०॥
वृश्चिकादिविषाद् भीतिर्नीचैः कलहसम्भवः।
शोकरोगादिदुःखं च नीचसङ्गादिकं भवेत् ॥११॥

दशेश से यदि केतु ८, १२ में पाप ग्रह से युक्त हो तो वाहन से गिरने का भय, पुत्र को क्लेश, चोर, राजादि से भय, पाप कर्म में प्रवृत्ति, विच्छू, विष का भय, नीचों से कलह, शोक, रोग, दुःख आदि की सम्भावना एवं नीचों का सङ्ग होता है ॥९-११॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं छागदानं तु कारयेत् ॥१२॥

केतु यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के शमन हेतु छागदान करना चाहिए ॥१२॥

बुध में शुक्रान्तर का फल

सौम्यस्यान्तर्गते शुक्रे केन्द्रे लाभे त्रिकोणगे।
सत्कथापुण्यधर्मादिसंग्रहः पुण्यकर्मकृत् ॥१३॥
मित्रप्रभुवशादिष्टं क्षेत्रलाभः सुखं भवेत्।
दशाधिपात्केन्द्रगते त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥१४॥
तत्काले श्रियमाप्नोति राजश्रीधनसम्पदः।
वापी-कूप-तडागादि-दान-धर्मादि-संग्रहः ॥१५॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥१५½॥

बुध की महादशा में शुक्रान्तर हो, शुक्र लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में हो तो सत्कथा-श्रवण एवं पुण्य कर्म-धर्मादि शुभ कार्य का संग्रह होता है; साथ ही मित्र तथा राजा के द्वारा लक्षित कार्य की सम्पन्नता, खेती तथा सुख की प्राप्ति होती है। यदि दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में हो तो उस समय में धन, राज्य, सम्पत्ति का लाभ, वापी, कूप, जलाशयादि का निर्माण, दान-धर्मादि पुण्यों का संग्रह, अपने व्यवसाय से अधिक लाभ एवं धन-धान्य की समृद्धि होती है ॥१३-१५½॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥१६॥
हृद्रोगो मानहानिश्च ज्वरातीसारपीडनम्।

आत्मबन्धुवियोगश्च संसारे भवति ध्रुवम् ॥१७॥
आत्मकष्टं मनस्तापदायकं द्विजसत्तम ! ॥१७½॥

दशेश से शुक्र यदि ६, ८, १२ में बलहीन होकर बैठा हो तो हृदयसम्बन्धी रोग, मानहानि, ज्वर, अतीसारादि रोग से पीड़ा, स्वबन्धु-वियोग, अपने को कष्ट तथा मानसिक सन्ताप होता है ॥१६-१७½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥१८॥
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत्।
जगदम्बाप्रसादेन ततः शान्तिमवाप्नुयात् ॥१९॥

शुक्र यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु होती है। उस दोष के शान्त्यर्थ दुर्गा देवी का जप करने से जगदम्बा की कृपा से शान्ति तथा सुख की प्राप्ति होती है ॥१८-१९॥

बुध में सूर्यान्तर-फल

सौम्यस्यान्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
त्रिकोणे धनलाभे तु तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥२०॥
राजप्रसादसौभाग्यं मित्रप्रभुवशात्सुखम्।
भूम्यात्मजेन संदृष्टे आदौ भूलाभमादिशेत् ॥२१॥
लग्नाधिपेन संदृष्टे बहुसौख्यं धनागमम्।
ग्रामभूम्यादिलाभं च भोजनाम्बरसौख्यकृत् ॥२२॥

बुध की महादशा में सूर्यान्तर हो, सूर्य स्वोच्च में, स्वक्षेत्र, केन्द्र, त्रिकोण, धन, लाभ या अपने उच्च नवमांश में बैठा हो तो राजा के अनुग्रह से भाग्योदय एवं मित्र या अपने स्वामी से सुख होता है। यदि उस पर मंगल की दृष्टि हो तो दशा के आरम्भ में भूमिलाभ, लग्नेश से दृष्ट हो तो धनागम, अधिक सुख, ग्राम-भूमि-लाभ एवं भोजन-वस्त्र-सौख्यादि की प्राप्ति होती है ॥२०-२२॥

लग्नाष्टमव्यये वापि शन्यारफणिसंयुते।
दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा बलवर्जिते ॥२३॥
चौराग्निशस्त्रपीडा च वित्ताधिक्यं भविष्यति।
शिरोरुङ्मनसस्ताप इष्टबन्धुवियोगकृत् ॥२४॥

लग्न या दशापति से सूर्य ६, ८, १२ में शनि, मंगल, राहु से युत और बलहीन हो तो चोर, अग्नि, शस्त्रों से पीड़ा, पित्तसम्बन्धी रोग, शिर में पीड़ा, मानसिक सन्ताप एवं इष्ट मित्रों का वियोग होता है ॥२३-२४॥

द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं कुर्याद्यथाविधि ॥२५॥

सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अकालमृत्यु का भय रहता है। उस दोष की शान्ति के लिए विधिपूर्वक सूर्य की पूजा-अर्चना-जपादि करना चाहिए ॥२५॥

बुध दशा में चन्द्रान्तर-फल

सौम्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि गुरुदृष्टिसमन्विते ॥२६॥
योगस्थानाधिपत्येन योगप्राबल्यमादिशेत्।
स्त्रीलाभं पुत्रलाभं च वस्त्रवाहनभूषणम् ॥२७॥

बुध की महादशा में चन्द्रान्तर हो और चन्द्र लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वक्षेत्र में गुरु की दृष्टि हो या स्वत: योगकारक हो या योगकारक ग्रह के साथ हो तो योग की प्रबलता होती है। उस समय स्त्री, पुत्र, वस्त्र, वाहन एवं भूषण की प्राप्ति होती है ॥२६-२७॥

नूतनालयलाभं च नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
गीतवाद्यप्रसङ्गं च शास्त्रविद्यापरिश्रमम् ॥२८॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य प्रयाणं च भविष्यति।
द्वीपान्तरादिवस्त्राणां लाभश्चैव भविष्यति ॥२९॥
मुक्ता-विद्रुम-रत्नानि धौतवस्त्रादिकं लभेत् ॥२९½॥

साथ ही नवीन गृह का निर्माण, सदैव मिष्टान्न भोजन, गाना-बजाना, शास्त्रीय चर्चा तथा गहन अध्ययन, दक्षिण दिशा की यात्रा, द्वीपान्तर से वस्त्रलाभ तथा मोती-प्रवालादि रत्नों का लाभ होता है ॥२८-२९½॥

नीचारिक्षेत्रसंयुक्ते देहबाधा भविष्यति ॥३०॥
दायेशात्केन्द्रकोणस्थे दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा।
तद्भुक्त्यादौ पुण्यतीर्थस्थानदैवतदर्शनम् ॥३१॥
मनोधैर्यं हृदुत्सादो विदेशधनलाभकृत् ॥३१½॥

चन्द्र यदि अपने नीच या अपने शत्रुगृह में हो तो शारीरिक कष्ट होता है। दशेश से केन्द्र, त्रिकोण ३, ११ में बैठा हो तो उसकी अन्तर्दशा के आरम्भ में पुण्यतीर्थों की यात्रा, देवदर्शन, धैर्य, मनोत्साह एवं देशान्तर से आर्थिक लाभ होता है ॥३०-३१½॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा पापसंयुते ॥३२॥
चौराग्निनृपभीतिश्च स्त्रीसमागमतो भवेत्।
दुष्कृतिर्धनहानिश्च कृषिगोऽश्वादिनाशकृत् ॥३३॥

दशेश से चन्द्र ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो चोर, अग्नि, राजभय, स्त्री के कारण अपयश और धननाश एवं खेती-पशुओं का नाश होता है ॥३२-३३॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति।

तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥३४॥
वस्त्रदानं प्रकुर्वीत आयुर्वृद्धिसुखावहम् ।
जगदम्बाप्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ॥३५॥

चन्द्रमा द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक बाधा होती है । उस दोष की शान्ति के लिए दुर्गा सप्तशती का पाठ, दुर्गादेवी का जप एवं वस्त्रदान करने पर जगदम्बा की कृपा से आयु की वृद्धि और सुख-शान्ति की प्राप्ति होती है ॥३४-३५॥

बुध दशा में भौमान्तर्दशा-फल

सौम्यस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि लग्नाधिपसमन्विते ॥३६॥
राजानुग्रहशान्तिं च गृहे कल्याणसम्भवम् ।
लक्ष्मीकटाक्षचिह्नानि नष्टराज्यार्थमाप्नुयात् ॥३७॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषं गृहं गोधनसङ्कुलम् ।
गृहक्षेत्रादिलाभं च गजवाजिसमन्वितम् ॥३८॥
राजप्रीतिकरं चैव स्त्रीसौख्यं चातिशोभनम् ॥३८½॥

बुध में मंगल का अन्तर हो, मंगल लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वक्षेत्र में या लग्नेश से युत हो तो राजा की कृपा से घर में शान्ति एवं कल्याण होता है; साथ ही लक्ष्मी की गृह पर दृष्टि, नष्ट राज्य की प्राप्ति, पुत्रजन्म, उत्सव, सन्तोष, पशुओं की वृद्धि, गृह, क्षेत्र, हाथी, अश्व आदि की प्राप्ति, राजा से मैत्री एवं स्त्रीजन्य परम सुख की प्राप्ति होती है ॥३६-३८½॥

नीचक्षेत्रसमायुक्ते ह्यष्टमे वा व्ययेऽपि वा ॥३९॥
पापदृष्टियुते वापि देहपीडा मनोव्यथा ।
उद्योगभङ्गो देशादौ स्वग्रामे धान्यनाशनम् ॥४०॥
ग्रन्थिशस्त्रव्रणादीनां भयं तापज्वरादिकम् ॥४०½॥

मंगल स्वनीच में, लग्न से ८, १२ में, पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो शारीरिक पीड़ा, मानसिक व्यथा, उद्योग में अवरोध, अपने देश में ही धन-धान्य का नाश, गठिया रोग, शस्त्र, व्रण का भय, ताप और ज्वर रोग होता है ॥३९-४०½॥

दायेशात्केन्द्रगे भौमे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥४१॥
शुभदृष्टे धनप्राप्तिर्देहसौख्यं भवेन्नृणाम् ।
पुत्रलाभो यशोवृद्धिर्भ्रातृवर्गो महाप्रियः ॥४२॥

दशेश से केन्द्र त्रिकोण, लाभ में शुभ ग्रह से दृष्ट होकर मंगल बैठा हो तो धन की प्राप्ति, शारीरिक सुख, पुत्रलाभ, यश की वृद्धि और भाइयों से प्रेम होता है ॥४१-४२॥

दायेशादथ रन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते।
तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो भ्रातृवर्गे महद्भयम् ॥४३॥
नृपाग्निचौरभीतिश्च पुत्रमित्रविरोधनम्।
स्थानभ्रंशो भवेदादौ मध्ये सौख्यं धनागमः ॥४४॥
अन्ते तु राजभीतिः स्यात् स्थानभ्रंशो ह्यथापि वा ॥४४½॥

दशापति से मंगल ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो अन्तर्दशा के आरम्भ में महाक्लेश, बन्धुवर्ग में भय, राजा, चोर, अग्निभय, पुत्र तथा मित्र से विरोध, स्थाननाश, दशा-मध्य में सुख, धनागम एवं अन्त में राजभय तथा स्थाननाश होता है ॥४३-४४½॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥४५॥
गोदानं च प्रकुर्वीत मृत्युञ्जयजपं चरेत्।
शङ्करस्य प्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ॥४६॥

मंगल यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय रहता है। उक्त दोष-शान्त्यर्थ मृत्युञ्जय का जप एवं गोदान करे तो शंकर भगवान् की प्रसन्नता से सुख की प्राप्ति होती है ॥४५-४६॥

बुध में राह्वन्तर्दशा-फल

बुधस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे।
कुलीरे कुम्भगे वापि कन्यायां वृषभेऽपि वा ॥४७॥
राजसम्मानकीर्तीं च धनं च प्रभविष्यति।
पुण्यतीर्थस्थानलाभो देवतादर्शनं तथा ॥४८॥
इष्टापूर्ते च महतो मानश्चाम्बरलाभकृत्।
भुक्त्यादौ देहपीडा च त्वन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् ॥४९॥

बुध की महादशा में राहु का अन्तर हो, राहु लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में कर्क, कुम्भ, कन्या, वृष राशि का हो तो राजा से सम्मान, यश, धन, पुण्यतीर्थ-यात्रा, स्थान-लाभ, देवदर्शन, अभीष्ट-सिद्धि, मान, वस्त्र आदि का लाभ होता है। दशा के प्रारम्भ में शारीरिक कष्ट एवं दशान्त में सुख प्राप्त होता है ॥४७-४९॥

लग्नाष्टव्ययराशिस्थे तद्भुक्तौ धननाशनम्।
भुक्त्यादौ देहनाशश्च वातज्वरमजीर्णकृत् ॥५०॥

लग्न से ८, १२ में राहु हो तो उसकी अन्तर्दशा में धननाश, दशा-आरम्भ में शारीरिक कष्ट, वात, ज्वर, अजीर्ण आदि रोग का भय होता है ॥५०॥

लग्नादुपचये राहौ शुभग्रहसमन्विते।
राजसंलापसन्तोषो नूतनप्रभुदर्शनम् ॥५१॥

यदि राहु लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान में हो और शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो राजा से संलाप और नूतन राजा का दर्शन होता है ॥५१॥

दायेशाद् द्वादशे वापि ह्यष्टमे पापसंयुते ।
निष्ठुरं राजकार्याणि स्थानभ्रंशो महद्भयम् ॥५२॥
बन्धनं रोगपीडा च निज-बन्धुमनोव्यथा ।
हृद्रोगो मानहानिश्च धनहानिर्भविष्यति ॥५३॥

दशेश से यदि राहु १२, ८ में पाप ग्रह से युत हो तो राजकार्य में निष्ठुर, स्थाननाश, परम भय, बन्धन, रोग से पीड़ा, स्वबन्धुओं से मानसिक व्यथा, हृदयसम्बन्धी रोग, मानहानि, धनक्षति आदि अशुभकारक समय होता है ॥५२-५३॥

द्वितीयसप्तमस्थे वा ह्यपमृत्युर्भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गालक्ष्मीजपं चरेत् ॥५४॥
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यदायिनीम् ।
जगदम्बाप्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ॥५५॥

यदि राहु द्वितीय या सप्तम में हो तो अपमृत्यु का भय होता है । उस दोष की शान्ति के लिए दुर्गा और लक्ष्मी का मन्त्रजप, गौदान तथा महिष-दान करने से जगदम्बा की कृपा से आयु, आरोग्य और सुख की प्राप्ति होती है ॥५४-५५॥

बुध में गुर्वन्तर्दशा-फल

बुधस्यान्तर्गते जीवे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वाऽपि लाभे वा धनराशिगे ॥५६॥
देहसौख्यं धनावाप्ती राजप्रीतिस्तथैव च ।
विवाहोत्सवकार्याणि नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥५७॥
गोमहिष्यादिलाभश्च पुराणश्रवणादिकम् ।
देवतागुरुभक्तिश्च दानधर्ममखादिकम् ॥५८॥
यज्ञकर्मप्रवृत्तिश्च शिवपूजाफलं तथा ॥५८½॥

बुध की महादशा में गुरु का अन्तर हो या गुरु लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, स्वोच्च, स्वराशि में या लाभ, धनभाव में हो तो शारीरिक सुख, धनलाभ, राजा से मैत्री, घर में विवाहादि मांगलिक कार्य, उत्सव, मिष्टान्न भोजन, पशुओं का लाभ, पुराण-श्रवणादि धार्मिक कथा वार्ता, देवता और गुरु में भक्ति, दान, धर्म, याज्ञिक कार्य में प्रवृत्ति और भगवान् शंकर की पूजा से स्वान्त सुख होता है ॥५६-५८½॥

नीचे वाऽस्तङ्गते वापि षष्ठाष्टव्ययगेऽपि वा ॥५९॥
शन्यारदृष्टसंयुक्ते कलहो राजविग्रहः ।
चौरादिदेहपीडा च पितृमातृविनाशनम् ॥६०॥

मानहानी राजदण्डो धनहानिर्भविष्यति ।
विषाहिज्वरपीडा च कृषिभूमिविनाशनम् ॥६१॥

यदि गुरु स्वनीच, अस्त या लग्न से ६, ८, १२ में शनि, मंगल के द्वारा दृष्ट हो तो कलह, राजविग्रह, चोर आदि से कष्ट, शारीरिक पीड़ा, माता-पिता का नाश, मानहानि, राजदण्ड, धनहानि, विष, सर्प, ज्वर से पीड़ा एवं खेती और भूमि की हानि होती है ॥५९-६१॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते ।
बन्धुपुत्रहृदुत्साहो शुभं च धनसंयुतम् ॥६२॥
पशुवृद्धिर्यशोवृद्धिरन्नदानादिकं फलम् ॥६२½॥

दशेश से यदि गुरु केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में बलयुत होकर बैठा हो तो बन्धु-पुत्र से सुख, मन में उत्साह, शुभ, धन-पशु आदि की वृद्धि एवं अन्नदानसदृश पुण्य का लाभ होता है ॥६२-६२½॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ॥६३॥
अङ्गतापश्च वैकल्यं देहबाधा भविष्यति ।
कलत्रबन्धुवैषम्यं राजकोपो धनक्षयः ॥६४॥
अकस्मात्कलहाद् भीतिः प्रमादो द्विजतो भयम् ॥६४½॥

दशेश से गुरु ६, ८, १२ में बलहीन होकर बैठा हो तो सन्ताप, विकलता, शारीरिक कष्ट, स्त्री और बन्धुओं से वैरभाव, राजकोप, धनक्षय, अकारण ही कलह और ब्राह्मण से भय रहता है ॥६३-६४½॥

द्वितीयसप्तमस्थे वा देहबाधा भविष्यति ॥६५॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत् ।
गोभूहिरण्यदानेन सर्वारिष्टं व्यपोहति ॥६६॥

यदि गुरु द्वितीय या सप्तम भाव में हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के निवारण हेतु शिवसहस्रनाम का जप, गोदान, भूदान और सुवर्णदान करने से सभी अरिष्टों का नाश होता है ॥६५-६६॥

बुध महादशा में शन्यन्तर्दशा-फल

सौम्यस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे ।
त्रिकोणलाभगे वापि गृहे कल्याणवर्द्धनम् ॥६७॥
राज्यलाभं महोत्साहं गृहे गोधनसङ्कुलम् ॥६८॥
शुभस्थानफलावाप्तिं तीर्थवासं तथाऽऽदिशेत् ॥६८½॥

बुध की महादशा में शनि का अन्तर हो, शनि स्वोच्च में, स्वक्षेत्र में या लग्न से

केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में हो तो गृह में कल्याण की वृद्धि, राज्यलाभ, मन में उत्साह, पशु-वृद्धि, स्थानप्राप्ति, तीर्थवासादि शुभ कार्य होते हैं ॥६७-६८ $\frac{1}{2}$॥

अष्टमे वा व्यये मन्दे दायेशाद्वा तथैव च ॥६९॥
अरातिदु:खबाहुल्यं दारपुत्रादिपीडनम् ।
बुद्धिभ्रंशो बन्धुनाशः कर्मनाशो मनोरुजः ॥७०॥
विदेशगमनं चैव दुःस्वप्नादिप्रदर्शनम् ॥७० $\frac{1}{2}$॥

यदि शनि लग्न या दशेश से ८, १२ में हो तो शत्रु से दु:खाधिक्य, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, बुद्धिनाश, बन्धुओं का विनाश, कार्य में हानि, मानसिक रोग, विदेश यात्रा एवं दु:स्वप्न दर्शन होता है ॥६९-७० $\frac{1}{2}$॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥७१॥
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ॥७२॥

यदि शनि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उसके शान्त्यर्थ मृत्युञ्जय जप, काली गाय का दान और महिष-दान करने से आरोग्य लाभ होता है ॥७१-७२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां बुधान्तर्दशाफलाध्यायः ॥६०॥

अथ केत्वन्तर्दशाफलाध्यायः ॥६१॥

केतुदशा में केत्वन्तर्दशा-फल

केन्द्रे त्रिकोणलाभे वा केतौ लग्नेशसंयुते ।
भाग्यकर्मसुसम्बन्धे वाहनेशसमन्विते ॥१॥
तद्भुक्तौ धनधान्यादि चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ।
पुत्रदारादिसौख्यं च राजप्रीतिमनोरुजः ॥२॥
ग्रामभूम्यादिलाभश्च गृहं गोधनसङ्कुलम् ॥२$\frac{1}{2}$॥

केतु की महादशा में केतु की ही अन्तर्दशा हो और केतु लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में हो या लग्नेश से युत हो, भाग्येश, कर्मेश, चतुर्थेश से उसका सम्बन्ध हो तो उसकी अन्तर्दशा में धन-धान्यादि का लाभ, पशुओं की वृद्धि, पुत्र-स्त्री से सुख, राजा से मैत्री, परन्तु मानसिक रोग, ग्राम, भूमि का लाभ, घर एवं गौओं से शोभित होता है ॥१-२$\frac{1}{2}$॥

नीचास्तखेटसंयुक्ते ह्यष्टमे व्ययगेऽपि वा ॥३॥
हृद्रोगो मानहानिश्च धनधान्यपशुक्षयः ।
दारपुत्रादिपीडा च मनश्चाञ्चल्यमेव च ॥४॥

यदि केतु स्वनीच में या अस्त ग्रह से युत होकर ८, १२ भाव में बैठा हो तो हृदय-सम्बन्धी रोग, मानहानि, धन-धान्य और पशुओं का क्षय, स्त्री-पुत्र को पीड़ा और मानसिक चञ्चलता होती है ॥३-४॥

द्वितीयद्यूननाथेन सम्बन्धे तत्र संस्थिते ।
अनारोग्यं महत्कष्टमात्मबन्धुवियोगकृत् ॥५॥
दुर्गादेवीजपं कुर्यान्मृत्युञ्जयजपं चरेत् ।
एवं स्वान्तर्गते केतौ ततः सुखमवाप्नुयात् ॥६॥

यदि केतु द्वितीयेश या सप्तमेश से सम्बन्ध रखता हो या २, ७ भाव में बैठा हो तो रोगभय, परम कष्ट तथा अपने बन्धुओं से वियोग होता है। उस दोष के निवारण के लिए सप्तशती का पाठ एवं मृत्युञ्जय का जप करने से सुख की प्राप्ति होती है ॥५-६॥

केतु में शुक्रान्तर्दशा-फल

केतोरन्तर्गते शुक्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुते ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा राज्यनाथेन संयुते ॥७॥
राजप्रीतिं च सौभाग्यं दिशेत्स्वाम्बरसङ्कुलम् ।
तत्काले श्रियमाप्नोति भाग्यकर्मेशसंयुते ॥८॥

नष्टराज्यधनप्राप्तिं सुखवाहनमुत्तमम्।
सेतुस्नानादिकं चैव देवतादर्शनं महत्॥९॥
महाराजप्रसादेन ग्रामभूम्यादिलाभकृत्॥९½॥

केतु की महादशा में शुक्रान्तर्दशा हो और शुक्र अपने उच्च में या स्वक्षेत्र में हो या लग्न से केन्द्र-त्रिकोण-लाभस्थान में हो अथवा दशमेश से युत हो तो राजा से प्रेम, सौभाग्य, धन, वस्त्रादि का लाभ, भाग्येश, कर्मेश से युत हो तो श्रीप्राप्ति, नष्ट राज्य की प्राप्ति, सुख, उत्तम वाहन, सेतु (समुद्र स्थान) स्नान, देवदर्शन एवं राजा की अनुकम्पा से ग्राम, भूमि आदि का लाभ होता है॥७-९½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा॥१०॥
देहारोग्यं शुभं चैव गृहे कल्याणशोभनम्।
भोजनाम्बर-भूषाप्ति-रथ-दोलादि-लाभकृत् ॥११॥

दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, ३, ११ भाव में हो तो देह में आरोग्यता, गृह में कल्याण, शुभ, भोजन, वस्त्र, आभूषण, रथ, झूला आदि वाहन का लाभ होता है॥१०-११॥

दायेशाद्रिपुरन्ध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते।
अकस्मात्कलहं चैव पशुधान्यादिपीडनम्॥१२॥
नीचस्थे खेटसंयुक्ते लग्नात्षष्ठाष्टराशिगे।
स्वबन्धुजनवैषम्यं शिरोऽक्षिव्रणपीडनम्॥१३॥
हृद्रोगं मानहानिं च धनधान्यपशुक्षयम्।
कलत्रपुत्रपीडायाः सञ्चारं च समादिशेत्॥१४॥

दशापति से शुक्र ६, ८, १२ में पाप से ग्रह युत हो तो अकारण कलह, पशु-पीड़ा एवं धान्यनाश होता है। स्वनीच में या नीचग्रह के साथ सम्बद्ध हो या लग्न से ६, ८ में हो तो स्वबन्धु-बान्धव में वैरभाव, मस्तक, नेत्र में पीड़ा, व्रण का भय, हृदयरोग, मानहानि, धन-धान्य और पशु का क्षय एवं स्त्री-पुत्र को पीड़ा होती है॥१२-१४॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहजाड्यं मनोरुजम्।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत्।
श्वेतां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये॥१५॥

यदि शुक्र द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शरीर में कष्ट एवं मानसिक रोग होता है। उस दोष की शान्ति के लिए सप्तशती पाठ, जप, गौदान और महिष-दान करने से आयु और आरोग्य की वृद्धि होती है॥१५॥

केतु में सूर्यान्तर-फल

केतोरन्तर्गते सूर्ये स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा शुभयुक्तनिरीक्षिते॥१६॥

धनधान्यादिलाभश्च राजानुग्रहवैभवम् ।
अनेकशुभकार्याणि चेष्टसिद्धिः सुखावहा ॥१७॥

केतु की महादशा में सूर्यान्तर हो और सूर्य अपने उच्च में, स्वक्षेत्र में, केन्द्र-त्रिकोण-लाभ में शुभग्रह से युत या अवलोकित हो तो धन-धान्य का लाभ, राजा की कृपा से ऐश्वर्य की प्राप्ति, विभिन्न शुभ कार्यों का सम्पादन, सुख और अभीष्ट की सिद्धि होती है ॥१६-१७॥

अष्टमव्ययराशिस्थे पापग्रहसमन्विते ।
तद्भुक्तौ राजभीतिश्च पितृमातृवियोगकृत् ॥१८॥
विदेशगमनं चैव चौराहिविषपीडनम् ।
राजमित्रविरोधश्च राजदण्डाद्धनक्षयः ॥१९॥
शोकरोगभयं चैव उष्णाधिक्यं ज्वरो भवेत् ॥१९½॥

यदि सूर्य लग्न से ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजभय, माता-पिता का वियोग, विदेशभ्रमण, चोर, सर्प, विषभय, राजा और मित्रों से विरोध, राजदण्ड से धनक्षय, शोक, रोग, भय, अधिक गर्मी एवं ज्वरादि का भय होता है ॥१८-१९½॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनसंस्थिते ॥२०॥
देहसौख्यं चार्थलाभो पुत्रलाभो मनोदृढम् ।
सर्वकार्यार्थसिद्धिः स्यात्स्वल्पग्रामाधिपत्ययुक् ॥२१॥

दशेश से सूर्य केन्द्र, त्रिकोण, लाभ, धनभाव में हो तो शारीरिक सुख, अर्थलाभ, पुत्र-लाभ, आत्मबलयुत, समस्त कार्य सफल और जातक छोटा ग्रामाधिपति होता है ॥२०-२१॥

दायेशाद्रन्ध्ररिःफे वा स्थिते वा पापसंयुते ।
अन्नविघ्नो मनोभीतिर्धनधान्यपशुक्षयः ॥२२॥
आदौ मध्ये महाक्लेशानन्ते सौख्यं विनिर्दिशेत् ।
द्वितीयसप्तमाधीशे ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥२३॥
तस्य शान्तिं प्रकुर्वीत स्वर्णं धेनुं प्रदापयेत् ।
भास्करस्य प्रसादेन ततः सुखमवाप्नुयात् ॥२४॥

दशेश से सूर्य ८, १२ में पाप ग्रह से युत हो तो अन्न में अवरोध, मानसिक चिन्ता, धन-धान्य और पशुओं का नाश, दशा के प्रारम्भ और मध्य में महाक्लेश और अन्त में सुख होता है। यदि सूर्य द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अकाल मृत्यु का भय रहता है। उस दोष के शमन हेतु सुवर्णदान और धेनुदान करने पर सूर्य भगवान् की कृपा से सुख की प्राप्ति होती है ॥२२-२४॥

केतु की महादशा में चन्द्रान्तर्दशा-फल

केतोरन्तर्गते चन्द्रे स्वोच्चे स्वक्षेत्रगेऽपि वा ।
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा धने शुभसमन्विते ॥२५॥

राजप्रीतिर्महोत्साहः कल्याणं च महत्सुखम्।
महाराजप्रसादेन गृहभूम्यादि-लाभकृत्॥२६॥
भोजनाम्बरपश्वादिव्यवसायेऽधिकं फलम्।
अश्ववाहनलाभश्च वस्त्राभरणभूषणम्॥२७॥
देवालय-तडागादि-पुण्यधर्मादि-सङ्ग्रहम्।
पुत्रदारादिसौख्यं च पूर्णचन्द्रः प्रयच्छति॥२८॥

केतु की महादशा में चन्द्रान्तर्दशा हो और चन्द्र अपने उच्च में या स्वराशि में या लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ, धन में शुभग्रह युत हो और यदि पूर्ण चन्द्र हो तो राजा से मैत्री, उत्साह, परम सुख, राजा की प्रसन्नता से गृह-भूमि आदि का लाभ, भोजन, वस्त्र, पशु आदि से लाभ, अपने व्यवसाय में अधिक लाभ, अश्व, वाहन, वस्त्र, आभरण, आभूषणादि की प्राप्ति, देवमन्दिर, तालाब आदि जलाशयनिर्माण, दान-धर्मादि पुण्य कार्यों का संग्रह, पुत्र-स्त्री आदि से सुख की प्राप्ति होती है; पूर्ण चन्द्र न रहने पर सामान्य फल प्राप्त होता है॥२५-२८॥

क्षीणे वा नीचगे चन्द्रे षष्ठाष्टव्ययराशिगे।
आत्मसौख्ये मनस्तापं कार्यविघ्नं महद्भयम्॥२९॥
पितृमातृवियोगं च देहजाड्यं मनोव्यथाम्।
व्यवसायात्फलं कष्टं पशुनाशं भयं वदेत्॥३०॥

यदि चन्द्रमा क्षीण हो या स्वनीच में हो या लग्न से ६, ८, १२ में हो तो अपने सुख से मन में चिन्ता, कार्यों में बाधा, महान् भय, पितृ-मातृवियोग, शरीर में कष्ट, मानसिक व्यथा, व्यवसाय में कष्ट एवं पशुओं का नाश होता है॥२९-३०॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा बलसंयुते।
कृषिगोभूमिलाभं च इष्टबन्धुसमागमम्॥३१॥
तस्मात्स्वकार्यसिद्धिं च गृहे गोक्षीरमेव च।
भुक्त्यादौ शुभमारोग्यं मध्ये राजप्रियं शुभम्॥३२॥
अन्ते तु राजभीतिं च विदेशगमनं तथा।
दूरयात्रादिसञ्चारं सम्बन्धिजनपूजनम्॥३३॥

यदि चन्द्रमा दशेश से केन्द्र, त्रिकोण या लाभ में बलयुत हो तो खेती, गौ, भूमि का लाभ, इष्ट बन्धु-बान्धव का शुभागमन, उनसे अभीष्ट कार्य-सिद्धि, घर में दूध, घी, दही आदि की वृद्धि, दशा के आरम्भ में शुभ और आरोग्यता, दशा के मध्य में राजा से मैत्री एवं शुभ तथा दशान्त में राजभय, विदेश-यात्रा या दूरयात्रा और अपने बन्धुओं से आदर प्राप्त होता है॥३१-३३॥

दायेशात्षष्ठरिःफे वा रन्ध्रे वा बलवर्जिते।
धनधान्यादिहानिश्च मनोव्याकुलमेव च॥३४॥

स्वबन्धुजनवैरं च भ्रातृपीडा तथैव च।
निधनाधिपदोषेण द्विसप्तपतिसंयुते ॥३५॥
अपमृत्युभयं तस्य शान्तिं कुर्याद्यथाविधि।
चन्द्रप्रीतिकरीं चैव ह्यायुरारोग्यसिद्धये ॥३६॥

यदि चन्द्रमा दशेश से ६, ८, १२ में बलहीन हो तो धन-धान्यादि की हानि, मन में व्याकुलता, अपने बन्धुओं में वैरभाव, भाई को पीड़ा एवं यदि चन्द्रमा अष्टमेश हो या द्वितीयेश या सप्तमेश से युत हो तो अपमृत्यु का भय रहता है। उसके शान्त्यर्थ चन्द्रमा की शान्ति करने पर चन्द्रमा की प्रसन्नता से आयु, आरोग्य का लाभ होता है ॥३४-३६॥

केतु में भौमान्तर-फल

केतोरन्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वाऽपि शुभग्रहयुतेक्षिते ॥३७॥
आदौ शुभफलं चैव ग्रामभूम्यादिलाभकृत्।
धनधान्यादिलाभश्च चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ॥३८॥
गृहारामक्षेत्रलाभो राजानुग्रहवैभवम्।
भाग्ये कर्मेशसम्बन्धे भूलाभः सौख्यमेव च ॥३९॥

केतु की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा हो और मंगल लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में हो या अपने उच्च राशि या स्वक्षेत्र में शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो दशा के आदि में शुभ होता है; साथ ही ग्राम, भूमि आदि का लाभ, धन-धान्य की वृद्धि, पशुओं से लाभ, गृह, बगीचा, क्षेत्र का लाभ एवं राजा की कृपा से ऐश्वर्य की प्राप्ति भी होती है। यदि भाग्येश या कर्मेश से सम्बन्ध रखता हो तो अवश्य ही भूमि और सुख की प्राप्ति होती है ॥३७-३९॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा।
राजप्रीतियशोलाभः पुत्रमित्रादिसौख्यकृत् ॥४०॥

दशेश से मंगल यदि केन्द्र, कोण, ३, ११ भाव में हो तो राजा से प्रेम और यश का लाभ एवं पुत्र-मित्र आदि से सुख की प्राप्ति होती है ॥४०॥

तथाऽष्टमव्यये भौमे दायेशाद्धनगेऽपि वा।
द्रुतं करोति मरणं विदेशे चापदं भ्रमम् ॥४१॥
प्रमेह-मूत्र-कृच्छ्रादि-चौरादि-नृपपीडनम्।
कलहादि-व्यथायुक्तं किञ्चित्सुखविवर्द्धनम् ॥४२॥

यदि दशेश से मंगल ८, १२, २ में हो तो मरणभय, विदेशभ्रमण में बाधा, भ्रम, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगभय, चौर तथा राजा से पीड़ा, कलह, व्यथा एवं सुख का किञ्चित् आभासमात्र होता है ॥४१-४२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु तापज्वरविषाद् भयम्।
दारपीडा मनःक्लेशमपमृत्युभयं भवेत् ॥४३॥
अनड्वाहं प्रदद्यात्तु सर्वसम्पत्सुखावहम्।
ततः शान्तिमवाप्नोति भौमग्रहप्रसादतः ॥४४॥

मंगल यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो तापसम्बन्धी ज्वर और विषभय, स्त्री-पीड़ा, मानसिक क्लेश एवं अपमृत्यु का भय होता है। उस दोष के शमन हेतु वृष दान करने पर मंगल की प्रसन्नता से सम्पत्ति, सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है ॥४३-४४॥

केतु में राह्वन्तर्दशा-फल

केतोरन्तर्गते राहौ स्वोच्चे मित्रस्वराशिगे।
केन्द्रत्रिकोणे लाभे वा दुश्चिक्ये धनसंज्ञके ॥४५॥
तत्काले धनलाभः स्यात् सञ्चारो भवति ध्रुवम्।
म्लेच्छप्रभुवशात्सौख्यं धनधान्यफलादिकम् ॥४६॥
चतुष्पाज्जीवलाभः स्याद् ग्रामभूम्यादिलाभकृत्।
भुक्त्यादौ क्लेशमाप्नोति मध्यान्ते सौख्यमाप्नुयात् ॥४७॥

केतु की महादशा में राहु की अन्तर्दशा चल रही हो और राहु अपने उच्च या स्वराशि, लग्न से केन्द्र-त्रिकोण, लाभ, ३, २ भाव में बैठा हो तो उस समय में धनलाभ, भ्रमण, यवनराज से धन-धान्य-सुख की प्राप्ति, पशुओं से लाभ, ग्राम, भूमि आदि का लाभ एवं दशा के आरम्भ में क्लेश तथा मध्य और अन्त में सुख की प्राप्ति होती है ॥४५-४७॥

रन्ध्रे वा व्ययगे राहौ पापसंदृष्टसंयुते।
बहुमूत्रं कृशं देहं शीतज्वरविषाद् भयम् ॥४८॥
चातुर्थिकज्वरं चैव क्षुद्रोपद्रवपीडनम्।
अकस्मात्कलहं चैव प्रमेहं शूलमादिशेत् ॥४९॥
द्वितीयसप्तमस्थे वा तदा क्लेशं महद्भयम्।
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥५०॥

यदि ८, १२ में राहु हो और पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो तो बहुमूत्र रोग, कृश शरीर, शीत ज्वर, विषभय, चातुर्थिक ज्वर, उपद्रव, अकारण कलह एवं प्रमेय, शूलादि रोग का भय रहता है। यदि २, ७ में हो तो कष्ट तथा भय होता है। उस दोष के शमन हेतु सप्तशती का पाठ एवं जप करना चाहिए ॥४८-५०॥

केतोरन्तर्गते जीवे केन्द्रे लाभे त्रिकोणगे।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे वापि लग्नाधिपसमन्विते ॥५१॥
कर्मभाग्याधिपैर्युक्ते धनधान्यार्थसम्पदम्।
राजप्रीतिं तथोत्साहमश्वान्दोल्यादिकं दिशेत् ॥५२॥

गृहे कल्याणसम्पत्तिं पुत्रलाभं महोत्सवम्।
पुण्यतीर्थं महोत्साहं सत्कर्म च सुखावहम्॥५३॥
इष्टदेवप्रसादेन विनयं कार्यलाभकृत्।
राजसँल्लापकार्याणि नूतनप्रभुदर्शनम्॥५४॥

केतु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा हो, गुरु अपने उच्च में या स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र-त्रिकोण, लाभभाव में हो या लग्नेश से युत हो या कर्मेश, भाग्येश से युत हो तो धन-धान्य-अर्थ-सम्पत्ति की वृद्धि, राजा से मैत्री, उत्साह, अश्व, नरवाहन आदि की प्राप्ति, घर में कल्याण, सम्पत्ति, पुत्रलाभ, उत्सव, तीर्थयात्रा, सत्कार्य, सुख, अपने अभीष्टदेव की कृपा से विजय, कार्य-सिद्धि, राजा से वार्तालाप एवं नवीन राजा का दर्शन होता है॥५१-५४॥

षष्ठाष्टमव्यये जीवे दायेशान्नीचगेऽपि वा।
चौराहिव्रणभीतिं च धनधान्यदिनाशनम्॥५५॥
पुत्रदारवियोगं च त्वतीवक्लेशसम्भवम्।
आदौ शुभफलं चैव अन्ते क्लेशकरं वदेत्॥५६॥

दशेश से ६,८,१२ में गुरु हो या स्वनीच में हो तो चोर, सर्प, व्रण का भय, धन-धान्य का नाश, पुत्र-स्त्री से वियोग एवं शरीर में अत्यन्त क्लेश होता है। दशा के आरम्भ में कुछ शुभ फल भी होता है, परन्तु दशान्त में अशुभ फल प्राप्त होता है॥५५-५६॥

दायेशात्केन्द्रकोणे वा दुश्चिक्ये लाभगेऽपि वा।
शुभयुक्ते नृपप्रीतिर्विचित्राम्बरभूषणम्॥५७॥
दूरदेशप्रयाणं च स्वबन्धुजनपोषणम्।
भोजनाम्बरपश्वादि भुक्त्यादौ देहपीडनम्॥५८॥
अन्ते तु स्थानचलनमकस्मात्कलहो भवेत्॥५८$\frac{1}{2}$॥

दशेश से गुरु यदि केन्द्र-कोण, लाभ और तृतीय भाव में शुभ ग्रह से युत हो तो राजा की कृपा से विभिन्न प्रकार के वस्त्र, भूषण की प्राप्ति, दूर देश की यात्रा, स्वबन्धुओं का लालन-पोषण, सुन्दर भोजन एवं वस्त्र, पशु आदि का लाभ होता है। दशा के प्रारम्भ में कुछ शारीरिक पीड़ा एवं अन्त में स्थान-परिवर्तन तथा अकारण कलह होता है॥५७-५८$\frac{1}{2}$॥

द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति॥५९॥
तद्दोषपरिहारार्थं शिवसाहस्रकं जपेत्।
महामृत्युञ्जयं जाप्यं सर्वोपद्रवनाशनम्॥६०॥

यदि गुरु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय रहता है। उस दोष के शान्त्यर्थ शिवसहस्रनाम तथा मृत्युञ्जय का जप करने पर सभी उपद्रव शान्त होते हैं॥५९-६०॥

केतु की दशा में शन्यन्तर दशा-फल

केतोरन्तर्गते मन्दे स्वदशायां तु पीडनम् ।
बन्धोः क्लेशो मनस्तापश्चतुष्पाज्जीवलाभकृत् ॥६१॥
राजकार्यकलापेन धननाशो महद्भयम् ।
स्थानाच्च्युतिः प्रवासश्च मार्गे चौरभयं भवेत् ॥६२॥
आलस्यं मनसो हानिश्चाष्टमे व्ययराशिगे ॥६२$\frac{१}{२}$॥

केतु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो तो शरीर में पीड़ा, बन्धुओं में क्लेश, मानसिक ताप, किन्तु पशुओं से लाभ, राजा के कार्यकलाप से धननाश, भय, स्थान-नाश, प्रवास, मार्ग में चौरभय होता है। यदि ८, १२ में हो तो आलस्य एवं आत्मबल की कमी होती है ॥६१-६२$\frac{१}{२}$॥

मीनत्रिकोणगे मन्दे तुलायां स्वर्क्षगेऽपि वा ॥६३॥
केन्द्रत्रिकोणलाभे वा दुश्चिक्ये वा शुभांशके ।
शुभदृष्टयुते चैव सर्वकार्यार्थसाधनम् ॥६४॥
स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं भ्रमणं च सुखावहम् ।
स्वग्रामे सुखसम्पत्तिः स्ववर्गे राजदर्शनम् ॥६५॥

यदि शनि मीन से त्रिकोण, तुला, स्वगृह, लग्न से केन्द्र-त्रिकोण, लाभ, तृतीय में शुभ नवमांश में शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो सभी कार्य की सिद्धि, स्वामी से सुख की प्राप्ति, भ्रमण में आनन्द, अपने ग्राम में भी सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति तथा राजदर्शन का अवसर प्राप्त होता है ॥६३-६५॥

दायेशात्षष्ठरिःफे वा अष्टमे पापसंयुते ।
देहतापो मनस्तापः कार्ये विघ्नो महद्भयम् ॥६६॥
आलस्यं मानहानिश्च पितृमात्रोर्विनाशनम् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युभयं भवेत् ॥६७॥
तद्दोषपरिहारार्थं तिलहोमं च कारयेत् ।
कृष्णां गां महिषीं दद्यादायुरारोग्यवृद्धये ॥६८॥

दशेश से ६, ८, १२ में पाप ग्रह युत हो तो देह में सन्ताप, मानसिक चिन्ता, कार्य में अवरोध, भय, आलस्य, मानहानि एवं माता-पिता का विनाश होता है। यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय रहता है। उस दोष के निवारण हेतु तिल से होम करके कृष्ण गोधन तथा महिष दान करने से आयु-आरोग्य की वृद्धि होती है ॥६६-६८॥

केतु की दशा में बुधान्तर्दशा-फल

केतोरन्तर्गते सौम्ये केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रसंयुक्ते राज्यलाभो महत्सुखम् ॥६९॥

सत्कथाश्रवणं दानं धर्मसिद्धिः सुखावहा ।
भूलाभः पुत्रलाभश्च शुभगोष्ठीधनागमः ॥७०॥
अयत्नाद्धर्मलब्धिश्च विवाहश्च भविष्यति ।
गृहे शुभकरं कर्म वस्त्राभरणभूषणम् ॥७१॥

केतु के अन्तर्गत बुध की अन्तर्दशा हो और बुध लग्न से केन्द्र-त्रिकोण में या स्वोच्च, स्वगृह में हो तो राज्य का लाभ, परम सुख, सत्कथा-श्रवण, दानादि धार्मिक कार्य, सुख, भूलाभ, पुत्रप्राप्ति, शुभ गोष्ठी, धनागम, विना आयास से धर्म और विवाह, गृह में शुभ उत्सव एवं वस्त्र, आभरण, भूषण की प्राप्ति होती है ॥६६-७१॥

भाग्यकर्माधिपैर्युक्ते भाग्यवृद्धिः सुखावहा ।
विद्वद्गोष्ठीकथाभिश्च कालक्षेपो भविष्यति ॥७२॥

बुध यदि भाग्येश या कर्मेश से युत हो तो भाग्योदय, सुख, विद्वानों की गोष्ठी से सत्कथा श्रवण एवं सत्सङ्ग से समय व्यतीत होता है ॥७२॥

षष्ठाष्टमव्यये सौम्ये मन्दाराहियुतेक्षिते ।
विरोधो राजवर्गैश्च परगेहनिवासनम् ॥७३॥
वाहनाम्बर-पश्वादि-धन-धान्यादिनाशकृत् ।
भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये सौख्यं धनागमः ॥७४॥
अन्ते क्लेशकरं चैव दारपुत्रादिपीडनम् ॥७४½॥

बुध यदि लग्न से ६, ८, १२ में शनि, मंगल, राहु से युत या दृष्ट हो तो राजा के कर्मचारियों से विरोध, दूसरे के गृह में निवास, वाहन, वस्त्र, पशु, धन, धान्यादि का नाश, दशा के आरम्भ में शुभ फल, मध्य में सुख, धन की प्राप्ति एवं दशान्त में क्लेश तथा स्त्री-पुत्रादिकों को पीड़ा होती है ॥७३-७४½॥

दायेशात्केन्द्रगे सौम्ये त्रिकोणे लाभगेऽपि वा ॥७५॥
देहारोग्यं महाँल्लाभः पुत्रकल्याणवैभवम् ।
भोजनाम्बरपश्वादिव्यवसायेऽधिकं फलम् ॥७६॥

दशेश से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ में हो तो शारीरिक आरोग्यता, महालाभ, पुत्र, कल्याण, वैभव की प्राप्ति, भोजन, वस्त्र, पशु आदि से लाभ एवं व्यवसाय में अधिक फल की प्राप्ति होती है ॥७५-७६॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
तद्भुक्त्यादौ महाक्लेशो दारपुत्रादिपीडनम् ॥७७॥
राजभीतिकरश्चैव मध्ये तीर्थकरो भवेत् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु ह्यपमृत्युर्भविष्यति ॥७८॥

तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ।
ततः सुखमवाप्नोति श्रीहरेश्च प्रसादतः ।।७९।।

दशेश से बुध यदि ६, ८, १२ में बलहीन होकर बैठा हो तो दशा के आरम्भ में कष्ट, स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा, राजभय एवं दशा के मध्य में तीर्थयात्रा होती है। यदि बुध द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो अपमृत्यु का भय होता है। उस दोष की शान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का पाठ करना चाहिए। ऐसा करने से विष्णु भगवान् की कृपा से सुख की प्राप्ति होती है ।।७७-७९।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां केत्वन्तर्दशाऽफलाध्यायः ।।६१।।

अथ शुक्रान्तर्दशाफलाध्यायः ॥६२॥

शुक्र-दशा में शुक्रान्तर-फल

अथ स्वान्तर्गते शुक्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
लाभे वा बलसंयुक्ते तद्भुक्तौ च शुभं फलम् ॥१॥
विप्रमूलाद्धनप्राप्तिर्गोमहिष्यादिलाभकृत्।
पुत्रोत्सवादिसन्तोषो गृहे कल्याणसम्भवः ॥२॥
सन्मानं राजसम्मानं राज्यलाभो महत्सुखम् ॥२½॥

शुक्र की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा हो, शुक्र लग्न से केन्द्र-त्रिकोण, लाभ में बलयुत हो तो उसकी अन्तर्दशा में शुभ फल प्राप्त होता है। ब्राह्मण द्वारा धन, गाय, महिष्यादि पशु लाभ, पुत्रोत्सव, घर में सन्तोष, कल्याण, राजा से आदर, राज्यलाभ एवं परम सुख की प्राप्ति होती है ॥१-२½॥

स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥३॥
नूतनालयनिर्माणं नित्यं मिष्टान्नभोजनम्।
कलत्रपुत्रविभवं मित्रसंयुक्तभोजनम् ॥४॥
अन्नदानं प्रियं नित्यं दानधर्मादिसंग्रहः।
महाराजप्रसादेन वाहनाम्बरभूषणम् ॥५॥
व्यवसायात्फलाधिक्यं चतुष्पाज्जीवलाभकृत्।
प्रयाणं पश्चिमे भागे वाहनाम्बरलाभकृत् ॥६॥

यदि शुक्र स्वोच्च, स्वराशि, अपने उच्च नवमांश या अपने नवमांश में हो तो नूतन गृह का निर्माण, सदैव सुभोजन, स्त्री-पुत्र को सुख, मित्र समागम, अन्नदानादि धार्मिक कृत्य का संग्रह, राजा की प्रसन्नता से वाहन, वस्त्र, आभूषण की प्राप्ति, व्यवसाय तथा पशुओं से लाभ एवं पश्चिम दिशा की यात्रा से वाहन तथा वस्त्र का लाभ होता है ॥३-६॥

लग्नाद्युपचये शुक्रे शुभग्रहयुतेक्षिते।
मित्रांशे तुङ्गलाभेशयोगकारकसंयुते ॥७॥
राज्यलाभो महोत्साहो राजप्रीतिः शुभावहा।
गृहे कल्याणसम्पत्तिर्दारपुत्रादिवर्द्धनम् ॥८॥

यदि शुक्र लग्न से ३, ६, १०, ११ में हो और शुभग्रह से युत या दृष्ट हो, या मित्र राशि के नवमांश में या उच्च में, लाभेश या योगकारक ग्रह से युत हो तो राज्यलाभ, उत्साह, राजा की प्रसन्नता से गृह में कल्याण एवं सम्पत्ति-स्त्री-पुत्र की वृद्धि होती है ॥७-८॥

षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे पापयुक्तेऽथ वीक्षिते।
चौरादिव्रणभीतिश्च सर्वत्र जनपीडनम् ॥९॥
राजद्वारे जनद्वेषः इष्टबन्धुविनाशनम्।
दारपुत्रादिपीडा च सर्वत्र जनपीडनम् ॥१०॥

यदि शुक्र लग्न से ६, ८, १२ में पाप ग्रह से युत या दृष्ट हो चोर-व्रण का भय, स्वजन में पीड़ा, राजजनों से द्वेष, इष्ट-मित्र-बन्धुओं का विनाश एवं स्त्री-पुत्रादि को कष्ट होता है ॥९-१०॥

द्वितीयद्यूननाथे तु स्थिते चेन्मरणं भवेत्।
तत्र दुर्गाजपं कुर्याद्धेनुदानं च कारयेत् ॥११॥

शुक्र यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो मरण का भय रहता है। उसके शान्त्यर्थ दुर्गा-जप एवं धेनु-दान कराना चाहिए ॥११॥

शुक्र में सूर्यान्तर-फल

शुक्रस्यान्तर्गते सूर्ये सन्तापो राजविग्रहः।
दायादकलहश्चैव स्वोच्चनीचविवर्जिते ॥१२॥

शुक्र के अन्तर्गत सूर्यान्तर हो एवं सूर्य यदि अपने उच्च, नीच से भिन्न स्थान में बैठा हो तो सन्ताप, राजविग्रह एवं दायादों से कलह होता है ॥१२॥

स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे सूर्ये मित्रर्क्षे केन्द्रकोणगे।
दायेशात्केन्द्रकोणे वा लाभे वा धनगेऽपि वा ॥१३॥
तद्भुक्तौ धनलाभः स्याद्राज्यस्त्रीधनसम्पदः।
स्वप्रभोश्च महत्सौख्यमिष्टबन्धोः समागमः ॥१४॥
पितृमात्रोः सुखप्राप्तिं भ्रातृलाभं सुखावहम्।
सत्कीर्तिं सुखसौभाग्यं पुत्रलाभं च विन्दति ॥१५॥

यदि सूर्य स्वोच्च, स्वक्षेत्र, अपने मित्रराशि में हो या लग्न से या दशेश से केन्द्र-त्रिकोण में लाभ, धनभाव में हो तो उसकी अन्तर्दशा में धन का लाभ, राज्य, स्त्री, धन-सम्पत्ति का लाभ, अपने स्वामी से परम सुख, मित्रों का आगमन, माता-पिता से सुख, भ्रातृ-लाभ, यश, सुख, सौभाग्य एवं पुत्र का लाभ होता है ॥१३-१५॥

तथाऽष्टमे व्यये सूर्ये रिपुराशिस्थितेऽपि वा।
नीचे वा पापवर्गस्थे देहतापो मनोरुजः ॥१६॥
स्वजनोपरिसंक्लेशो नित्यं निष्ठुरभाषणम्।
पितृपीडा बन्धुहानी राजद्वारे विरोधकृत् ॥१७॥
व्रणपीडाहिबाधा च स्वगृहे च भयं तथा।
नानारोगभयं चैव गृहक्षेत्रादिनाशनम् ॥१८॥

यदि सूर्य ६, ८, १२ भाव में, नीच में, पापवर्ग में बैठा हो तो शरीर में सन्ताप, मानसिक रोग, अपने जनों को कष्ट, सदैव कटु भाषण, पिता को पीड़ा, बन्धु की हानि, राजद्वार में विरोध, व्रणभय, अपने घर में सर्पभय, विभिन्न रोग-भय एवं गृह, खेती आदि का नाश होता है ॥१६-१८॥

सप्तमाधिपतौ सूर्ये ग्रहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं सूर्यप्रीतिं च कारयेत् ॥१९॥

यदि सूर्य सप्तमेश हो तो ग्रहों की बाधा होती है। उस दोष के शान्त्यर्थ सूर्य की आराधना करनी चाहिए ॥१९॥

शुक्र-दशा में चन्द्रान्तर-फल

शुक्रस्यान्तर्गते चन्द्रे केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रगे चैव भाग्यनाथेन संयुते ॥२०॥
शुभयुक्ते पूर्णचन्द्रे राज्यनाथेन संयुते ।
तद्भुक्तौ वाहनादीनां लाभं गेहे महत्सुखम् ॥२१॥
महाराजप्रसादेन गजान्तैश्वर्यमादिशेत् ।
महानदीस्नानपुण्यं देवब्राह्मणपूजनम् ॥२२॥

शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो, चन्द्रमा अपने उच्च या स्वक्षेत्र या लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में हो या भाग्येश से युत हो, शुभ ग्रहयुत पूर्ण चन्द्रमा हो तो राजा की कृपा से घर में वाहन, सुख, हाथी, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति होती है और महानदी-स्नान, पुण्य कर्म तथा देवता-ब्राह्मण में श्रद्धा होती है ॥२०-२२॥

गीतवाद्य-प्रसङ्गादि-विद्वज्जन-विभूषणम् ।
गोमहिष्यादिवृद्धिश्च व्यवसायेऽधिकं फलम् ॥२३॥
भोजनाम्बरसौख्यं च बन्धुसंयुक्तभोजनम् ॥२३½॥

गाने बजाने वाले विद्वानों का समागम तथा अलंकार, गौ, भैंस आदि पशु की वृद्धि, व्यवसाय में लाभ, भोजन, वस्त्र-सुख एवं बन्धुओं सहित भोजन होता है ॥२३-२३½॥

नीचे वास्तङ्गते वापि षष्ठाष्टव्ययराशिगे ॥२४॥
दायेशात्षष्ठगे वापि रन्ध्रे वा व्ययराशिगे ।
तत्काले धननाशः स्यात्सञ्चरेत महद्भयम् ॥२५॥
देहायासो मनस्तापो राजद्वारे विरोधकृत् ।
विदेशगमनं चैव तीर्थयात्रादिकं फलम् ॥२६॥
दारपुत्रादिपीडा च निजबन्धुवियोगकृत् ॥२६½॥

यदि चन्द्रमा स्वनीच में या अस्त या लग्न या दशेश से ६, ८, १२ में हो तो उस

समय में धननाश, भ्रमण, भय, शारीरिक कष्ट, मानसिक ताप, राजद्वार में विरोध, विदेश भ्रमण या तीर्थयात्रा, स्त्री-पुत्र को पीड़ा एवं अपने बन्धुओं से वियोग होता है ॥२४-२६½॥

दायेशात्केन्द्रलाभस्थे त्रिकोणे सहजेऽपि वा ॥२७॥
राजप्रीतिकरी चैव देशग्रामाधिपत्यता ।
धैर्यं यशः सुखं कीर्तिर्वाहनाम्बरभूषणम् ॥२८॥
कूपारामतडागादिनिर्माणं धनसङ्ग्रहः ।
भुक्त्यादौ देहसौख्यं स्यादन्ते क्लेशस्तथा भवेत् ॥२९॥

दशेश से केन्द्र त्रिकोण, लाभ, तृतीय भाव में हो तो जातक राजा की कृपा से देश या ग्रामाधिपति होता है । धैर्य, यश, सुख, कीर्ति, वाहन, वस्त्र, आभूषण, कूप, तालाबादि जलाशय का निर्माण और धन का संग्रह होता है । दशा के आरम्भ में शारीरिक सुख एवं दशा के अन्त में कष्ट होता है ॥२७-२९॥

शुक्र दशा में भौमान्तर-फल

शुक्रस्यान्तर्गते भौमे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे भौमे लाभे वा बलसंयुते ॥३०॥
लग्नाधिपेन संयुक्ते कर्मभाग्येशसंयुते ।
तद्भुक्तौ राजयोगादिसम्पदं शोभनां वदेत् ॥३१॥
वस्त्राभरणभूम्यादेरिष्टसिद्धिः सुखावहा ॥३१½॥

शुक्र के अन्तर्गत मंगल का अन्तर हो और मंगल लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभ भाव में हो या अपने उच्च, स्वराशि में हो और बलयुत हो या लग्नेश, भाग्येश, कर्मेश में से किसी से युत हो तो राज्यलाभ, सम्पत्ति, वस्त्र, आभूषण, भूमि आदि अभीष्ट की सिद्धि और सुख होता है ॥३०-३१½॥

तथाऽष्टमे व्यये वाऽपि दायेशाद्वा तथैव च ॥३२॥
शीतज्वरादिपीडा च पितृमातृभयावहा ।
ज्वराद्यधिकरोगाश्च स्थानभ्रंशो मनोरुजा ॥३३॥
स्वबन्धुजनहानिश्च कलहो राजविग्रहः ।
राजद्वारजनद्वेषी धनधान्यव्ययोऽधिकः ॥३४॥

दशेश या लग्न से ८, १२ में मंगल हो तो शीतज्वर से पीड़ा, पितृ-मातृ को भय और अधिक ज्वर, स्थाननाश, मानसिक रोग, स्व-बन्धु-नाश, कलह, राजविग्रह, राजद्वार में राज-कर्मचारियों से द्वेष एवं धन-धान्य का अधिक व्यय होता है ॥३२-३४॥

व्यवसायात्फलं नेष्टं ग्रामभूम्यादिहानिकृत् ।
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥३५॥

यदि मंगल द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो व्यवसाय में हानि, ग्राम, भूमि आदि की हानि और शारीरिक कष्ट होता है ॥३५॥

शुक्रदशा में राह्वन्तर-फल

शुक्रस्यान्तर्गते राहौ केन्द्रलाभत्रिकोणगे ।
स्वोच्चे वा शुभसंदृष्टे योगकारकसंयुते ॥३६॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं च धनधान्यादिलाभकृत् ।
इष्टबन्धुसमाकीर्णं भवनं च समादिशेत् ॥३७॥
यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात् पशुक्षेत्रादिसम्भवः ॥३७½॥

शुक्र के अन्तर्गत राहु की अन्तर्दशा हो या राहु लग्न से केन्द्र, लाभ, त्रिकोण में या अपने उच्च में शुभग्रह द्वारा अवलोकित हो या योगकारक ग्रह से युत हो तो उस समय में अधिक सुख, धन-धान्यादि का लाभ, इष्ट-मित्रों का समागम, नूतन गृह का निर्माण, यात्रा से अभीष्ट की प्राप्ति एवं पशु और भूमि का लाभ होता है ॥३६-३७½॥

लग्नाद्युपचये राहौ तद्भुक्तिः सुखदा भवेत् ॥३८॥
शत्रुनाशो महोत्साहो राजप्रीतिकरी शुभा ।
भुक्त्यादौ शरमासांश्च अन्ते ज्वरमजीर्णकृत् ॥३९॥

यदि राहु लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) में हो तो सुख, शत्रुनाश, उत्साह, राजा से मैत्री, अन्तर्दशा के आरम्भ से पाँच माह तक शुभफल और अन्त में ज्वर तथा अजीर्ण एवं रोगभय होता है ॥३८-३९॥

कार्यविघ्नमवाप्नोति सञ्चरे च मनोव्यथा ।
परं सुखं च सौभाग्यं महाराज इवाऽश्नुते ॥४०॥
नैर्ऋतिं दिशमाश्रित्य प्रयाणं प्रभुदर्शनम् ।
यातुः कार्यार्थसिद्धिः स्यात्स्वदेशे पुनरेष्यति ॥४१॥
उपकारो ब्राह्मणानां तीर्थयात्राफलं भवेत् ॥४१½॥

साथ ही कार्य तथा भ्रमण में बाधा, मानसिक रोग, इसके अतिरिक्त अन्य सुख राजा के समान प्राप्त होता है। नैर्ऋत्य दिशा की यात्रा से राजदर्शन और अभीष्ट कार्य की सिद्धि प्राप्त करके जातक पुनः अपने गृह में आ जाता है तथा ब्राह्मणों का उपकार एवं तीर्थ यात्रा का पुण्यफल प्राप्त करता है ॥४०-४१½॥

दायेशाद्रन्ध्रभावस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥४२॥
अशुभं लभते कर्म पितृमातृजनावधि ।
सर्वत्र जनविद्वेषं नानारूपं द्विजोत्तम ॥४३॥
द्वितीये सप्तमे वापि देहालस्यं विनिर्दिशेत् ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥४४॥

दशेश से ८, १२ में पाप ग्रह युत हो तो माता-पिता तथा अपने लिए भी अशुभ होता है। सर्वत्र लोगों से विरोध होता है। यदि राहु लग्न से द्वितीय या सप्तम भाव में बैठा हो तो शरीर में आलस्यता और अशान्ति होती है। उस दोष के शमन हेतु मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए ॥४२-४४॥

शुक्र दशा में जीवान्तर्दशा-फल

शुक्रस्यान्तर्गते जीवे स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रगे।
दायेशाच्छुभराशिस्थे भाग्ये वा पुत्रराशिगे ॥४५॥
नष्टराज्याद्धनप्राप्तिमिष्टार्थाम्बरसम्पदम् ।
मित्रप्रभोश्च सन्मानं धनधान्यं लभेन्नरः ॥४६॥

शुक्र के अन्तर्गत गुरु की अन्तर्दशा हो, गुरु यदि अपने उच्च में, स्वक्षेत्र में, लग्न या दशेश से केन्द्र, ९, ५ भाव में हो तो नष्ट राज्य की प्राप्ति, अभीष्ट अर्थ-वस्त्र-सम्पत्ति-मित्र तथा राजा से सम्मान और धन-धान्य की प्राप्ति होती है ॥४५-४६॥

राजसम्मानकीर्तिं च अश्वान्दोलादिलाभकृत्।
विद्वत्प्रभुसमाकीर्णं शास्त्राधिकपरिश्रमम् ॥४७॥
पुत्रोत्सवादिसन्तोषमिष्टबन्धुसमागमम् ।
पितृमातृसुखप्राप्तिं पुत्रादिसौख्यमादिशेत् ॥४८॥

राजा से सम्मान, यश, अश्व, नरवाहन आदि का लाभ, विद्वान् तथा राजा का समागम, शास्त्र में अधिक परिश्रम, पुत्रजन्म, उत्सव, सन्तोष, इष्ट-मित्रों का समागम, पितृ-मातृसुख एवं पुत्रादि से सौख्य प्राप्त होता है ॥४७-४८॥

दायेशात्षष्ठराशिस्थे व्यये वा पापसंयुते।
राजचौरादिपीडा च देहपीडा भविष्यति ॥४९॥
आत्मरुग्बन्धुकष्टं स्यात्कलहेन मनोव्यथा।
स्थानच्युतिं प्रवासं च नानारोगं समाप्नुयात् ॥५०॥

दशेश से यदि ६, १२ में पाप ग्रह युत हो तो राजा और चौरादि से पीड़ा, शारीरिक कष्ट, स्वतः रोगयुत, बन्धुओं को कष्ट, कलह, मानसिक व्यथा, स्थानहानि, विदेश में वास और विभिन्न रोगों का भय रहता है ॥४९-५०॥

द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति।
तद्दोषपरिहारार्थं महामृत्युञ्जयं चरेत् ॥५१॥

यदि गुरु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष के शान्त्यर्थ मृत्युञ्जय का जप करना चाहिए ॥५१॥

शुक्र में शन्यन्तर्दशा फल

शुक्रस्यान्तर्गते मन्दे स्वोच्चे तु परमोच्चगे।
स्वर्क्षकेन्द्रत्रिकोणस्थे तुङ्गांशे स्वांशगेऽपि वा ॥५२॥
तद्भुक्तौ बहुसौख्यं स्यादिष्टबन्धुसमागमः।
राजद्वारे च सम्मानं पुत्रिकाजनसम्भवः ॥५३॥
पुण्यतीर्थफलावाप्तिर्दानधर्मादिपुण्यकृत्।
स्वप्रभोश्च पदावाप्तिः नीचस्थे क्लेशभाग्भवेत् ॥५४॥

शुक्र की महादशा में शन्यन्तर हो, शनि अपने उच्च या परमोच्च में हो, स्वराशि, उच्च नवमांश या स्वनवमांश में, लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में हो तो उसकी अन्तर्दशा में अधिक सुख, इष्ट-मित्रों का समागम, राजद्वार में सम्मान, कन्याजन्म, पुण्य-तीर्थ-स्नान, दान-धर्मादि पुण्यसंग्रह एवं राजा से अधिकार प्राप्त होता है। यदि गुरु अपने नीच राशि में हो तो क्लेश होता है ॥५२-५४॥

देहालस्यमवाप्नोति तथाऽऽयादधिकव्ययम्।
तथाऽष्टमे व्यये मन्दे दायेशाद्वा तथैव च ॥५५॥
भुक्त्यादौ विविधा पीडा पितृमातृजनावधि।
दारपुत्रादिपीडा च परदेशादिविभ्रमः ॥५६॥
व्यवसायात्फलं नष्टं गोमहिष्यादिहानिकृत्।
द्वितीयसप्तमाधीशे देहबाधा भविष्यति ॥५७॥

नीच में गुरु रहने से शरीर में आलस्यता और आय से अधिक व्यय होता है तथा दशेश से ८,१२ में शनि हो या लग्न में हो तो अन्तर्दशा के आरम्भ-काल में अनेक कष्ट, माता-पिता को भी कष्ट, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, विदेशगमन, अपने व्यवसाय से फलाभाव एवं गौ-महिष्यादि पशुओं का विनाश होता है। यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है ॥५५-५७॥

तद्दोषपरिहारार्थं तिलहोमं च कारयेत्।
मृत्युञ्जयजपं कुर्याच्चण्डीपाठमथापि वा ॥५८॥
स्वयं वा ब्राह्मणद्वारा यथाशक्ति यथाविधि।
ततः शान्तिमवाप्नोति शिवाशम्भुप्रसादतः ॥५९॥

उस दोष की शान्ति के लिए तिल होम, मृत्युञ्जय जप, दुर्गासप्तशती का पाठ, स्वतः या ब्राह्मण द्वारा विधिपूर्वक पाठ कराकर यथाशक्ति दान करे तो शिव जी की कृपा से सुख तथा शान्ति की प्राप्ति होती है ॥५८-५९॥

शुक्र की दशा में बुधान्तर-फल

शुक्रस्यान्तर्गते सौम्ये केन्द्रे लाभत्रिकोणगे।
स्वोच्चे वा स्वक्षेगे वापि राजप्रीतिकरं शुभम् ॥६०॥

सौभाग्यं पुत्रलाभश्च सन्मार्गेण धनागमः ।
पुराणधर्मश्रवणं शृङ्गारिजनसङ्गमः ॥६१॥
इष्टबन्धुजनाकीर्णं शोभितं तस्य मन्दिरम् ।
स्वप्रभोश्च महत्सौख्यं नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ॥६२॥

शुक्र के अन्तर्गत बुधान्तर हो, बुध अपने उच्च में, स्वगृह में या लग्न से केन्द्र, त्रिकोण, लाभभाव में बैठा हो तो राजा से प्रेम, शुभ, भाग्योदय, पुत्रलाभ, न्यायपूर्वक धनागम, पौराणिक कथा-वार्ता-श्रवण, रसवेत्ताओं का सङ्ग, इष्ट-मित्रों का आगमन, उनके द्वारा गृह सुशोभित, अपने स्वामी से सुख और सदैव मिष्टान्न भोजन की प्राप्ति होती है ॥६०-६२॥

दायेशात्षष्ठरन्ध्रे वा व्यये वा बलवर्जिते ।
पापदृष्टे पापयुक्ते चतुष्पाज्जीवहानिकृत् ॥६३॥
अन्यालयनिवासश्च मनोवैकल्यसम्भवः ।
व्यापारेषु च सर्वेषु हानिरेव न संशयः ॥६४॥

यदि बुध दशेश से ६, ८, १२ में बलहीन हो और पापग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो पशुओं से हानि, परगृह में निवास, मन में अशान्ति एवं सभी प्रकार के व्यापार में हानि होती है ॥६३-६४॥

भुक्त्यादौ शोभनं प्रोक्तं मध्ये मध्यफलं दिशेत् ।
अन्ते क्लेशकरं चैव शीतवातज्वरादिकम् ॥६५॥
सप्तमाधीशदोषेण देहपीडा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुसाहस्रकं जपेत् ॥६६॥

अन्तर्दशा के आरम्भ में शुभ फल, मध्य में मध्यम फल एवं दशान्त में शीत-वात-ज्वरादि से कष्ट होता है। यदि बुध सप्तमेश हो तो शारीरिक पीड़ा होती है। उस दोष की शान्ति के लिए विष्णुसहस्रनाम का जप करना चाहिए ॥६५-६६॥

शुक्रस्यान्तर्गते केतौ स्वोच्चे वा स्वर्क्षगेऽपि वा ।
योगकारकसम्बन्धे स्थानवीर्यसमन्विते ॥६७॥
भुक्त्यादौ शुभमाधिक्यान्नित्यं मिष्टान्नभोजनम् ।
व्यवसायात्फलाधिक्यं गोमहिष्यादिवृद्धिकृत् ॥६८॥

शुक्र की महादशा में केतु का अन्तर हो और केतु यदि अपने उच्च में या स्वराशि में हो या योगकारक ग्रह से सम्बन्ध रखता हो और स्थानबल से युत हो तो दशा के आरम्भ में ही शुभ फल, सदैव मिष्टान्न भोजन, स्व-व्यवसाय से अधिक लाभ एवं गौ, भैंस आदि पशुओं की वृद्धि होती है ॥६७-६८॥

धनधान्यसमृद्धिश्च संग्रामे विनयी भवेत् ।
भुक्त्यन्ते हि सुखं चैव भुक्त्यादौ मध्यमं फलम् ॥६९॥
मध्ये मध्ये महत्कष्टं पश्चादारोग्यमादिशेत् ॥६९½॥

धन-धान्य की वृद्धि, युद्ध में विजय, दशा के अन्त में सुखफल, दशा के आरम्भ में मध्यम फल एवं दशा के मध्य में बीच-बीच में कष्ट होकर पुन: कष्ट की निवृत्ति भी होती रहती है ॥६९-६९½॥

दायेशाद्रन्ध्रभावस्थे व्यये वा पापसंयुते ॥७०॥
चौराहिव्रणपीडा च बुद्धिनाशो महद् भयम् ।
शिरोरुजं मनस्तापमकर्मकलहं वदेत् ॥७१॥
प्रमेहभवरोगं च नानामार्गे धनव्यय: ।
भार्यापुत्रविरोधश्च गमनं कार्यनाशनम् ॥७२॥

यदि केतु दशेश से ८, १२ में पापग्रह से युत हो तो चोर, सर्प, व्रण का भय, बुद्धि-विभ्रम, भय, मस्तकसम्बन्धी रोग, मानसिक ताप, अकारण ही कलह, प्रमेह-सम्बन्धी रोग, विभिन्न मार्गों से धन का व्यय, स्त्री-पुत्र से विरोध, भ्रमण एवं कार्य में बाधा होती है ॥७०-७२॥

द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ।
तद्दोषपरिहारार्थं मृत्युञ्जयजपं चरेत् ॥७३॥
छागदानं प्रकुर्वीत सर्वसम्पत्प्रदायकम् ।
शुक्रप्रीतिकरीं शान्तिं तत: सुखमवाप्नुयात् ॥७४॥

यदि केतु द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो शारीरिक कष्ट होता है। उस दोष की शान्ति के लिए मृत्युञ्जय जप, छागदान करना चाहिए और शुक्र की प्रसन्नता के लिए भी कुछ शान्ति करने पर सुख की प्राप्ति होती है ॥७३-७४॥

विशेष—दशेश और अन्तर्दशाधीश—दोनों की जन्मकालिक और दशारम्भकालिक स्थिति का अवलोकन कर योगाध्याय में कथित नियमों के अनुसार सबके सम्बन्धानुसार बलाबल जानकर ही अन्तर्दशा के फल का आदेश करना चाहिए।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां शुक्रान्तर्दशाफलाध्याय: ॥६२॥

अथ प्रत्यन्तर्दशाफलाध्यायः ॥६३॥

अन्तर्दशा में प्रत्यन्तरसाधन

पृथक् स्व-स्वदशामानैर्हन्यादन्तर्दशामितिम् ।
भजेत्सर्वदशायोगैः फलं प्रत्यन्तरं क्रमात् ॥१॥

जिसकी अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी हो, उस अन्तर्दशा-वर्ष को अपने-अपने दशावर्ष से गुणा कर उसमें समस्त दशावर्ष योग से भाग देने से लब्ध ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा होती है ॥१॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की विंशोत्तरी मान से सूर्य में सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा निकालनी है। सूर्य का अन्तर्दशावर्षादि ०।३।१८ है, इसको दिनात्मक १०८ दिन करके इस १०८ को सूर्य-दशावर्ष ६ से गुणा किया तो ६४८ हुआ, इसमें समस्त दशायोग १२० का भाग दिया तो ५ दिन मिला, शेष ४८ को ६० से गुणा कर १२० का भाग दिया तो २४ घटी, शेष शून्य हो गया; अतः सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा दिनादि ५।२४।० हुआ। इसी प्रकार सूर्य की अन्तर्दशा १०८ दिन; इसको चन्द्रदशावर्ष १० से गुणा कर १२० का भाग देने पर लब्धि दिनादि ०।९।० यह सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा हुई। इस प्रकार १०८ × भौमवर्ष ७ ÷ १२० = ०।६।१८ सूर्यान्तर मंगल की प्रत्यन्तर दशा दिनादि हुई।

एवं १०८ × १८/१२० = ०।१६।१२ सूर्यान्तर में राहु की प्रत्यन्तर दशा दिनादि हुई। इसी प्रकार अपनी-अपनी दशावर्षसंख्या से गुणा कर १२० का भाग देने पर सभी ग्रहों की प्रत्यन्तर्दशा दिनादि स्पष्ट होती है।

सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	दिन
२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०	घटी

सूर्य की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	१	०	मास
१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९	दिन
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घटी

सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि की प्रत्यन्तर्दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
७	१८	१६	१९	१७	७	२१	०६	१०	दिन
२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	घटी

सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
१	१	१	१	०	१	०	०	०	मास
१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८	दिन
३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	घटी

सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मास
८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	दिन
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घटी

सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
१	१	०	१	०	०	०	१	१	मास
२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५	दिन
९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६	घटी

सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मास
१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	दिन
२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	५७	घटी

सूर्य की महादशा में केतु की अन्तर्दशा में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	दिन
२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	घटी

सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र आदि की प्रत्यन्तर्दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
२	०	१	०	१	१	१	१	०	मास
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

सूर्यान्तर्दशा में सूर्यादि प्रत्यन्तर्दशा-फल

विवादो वित्तहानिश्च दारार्तिः शिरसि व्यथा।
रव्यन्तरे बुधैर्ज्ञेयं तस्य प्रत्यन्तरे फलम् ॥२॥

सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य की ही प्रत्यन्तर्दशा हो तो उस समय जातक को लोगों से वाद-विवाद, धनहानि, स्त्री को कष्ट एवं मस्तक में पीड़ा होती है ॥२॥

विशेष—यदि सूर्य स्वोच्च में, स्वगृह में, केन्द्र, त्रिकोण, शुभ ग्रह से युत या दृष्ट, शुभ वर्ग में स्थित लग्नेश, भाग्येश, कर्मेश से युत और अन्यत्र भी शुभ स्थान में बैठा हो तो पूर्वोक्त अशुभ फल नहीं देता।

सूर्यान्तर्दशा में चन्द्रादि प्रत्यन्तर्दशा-फल

उद्वेगः कलहश्चैव वित्तहानिर्मनोव्यथा।
रव्यन्तरे विजानीयात् चन्द्रप्रत्यन्तरे फलम् ॥३॥

सूर्यान्तर में चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा हो तो उद्वेग, कलह, धननाश एवं मानसिक व्यथा होती है ॥३॥

सूर्यान्तर्दशा में भौमादि प्रत्यन्तर्दशा-फल

राजभीतिः शस्त्रभीतिर्बन्धनं बहुसङ्कटम्।
शत्रुवह्निकृता पीडा कुजप्रत्यन्तरे फलम् ॥४॥

सूर्यान्तर में मंगल की प्रत्यन्तर्दशा हो तो राजभय, शस्त्रभय, बन्धन, विभिन्न प्रकार के शंकट एवं शत्रु और अग्नि से पीड़ा होती है ॥४॥

सूर्यान्तर में राहु की प्रत्यन्तर्दशा-फल

श्लेष्मव्याधिः शस्त्रभीतिर्धनहानिर्महद्भयम्।
राजभङ्गस्तथा त्रासो राहुप्रत्यन्तरे फलम् ॥५॥

सूर्यान्तर में राहु की प्रत्यन्तर्दशा हो तो कफसम्बन्धी रोगभय, शस्त्रभय, धननाश, राज्यनाश और मानसिक त्रास हो जाता है ॥५॥

सूर्यान्तर में गुरु की प्रत्यन्तर्दशा-फल

शत्रुनाशो जयो वृद्धिर्वस्त्रहेमादिभूषणम्।
अश्वयानादिलाभश्च गुरुप्रत्यन्तरे फलम् ॥६॥

सूर्यान्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो शत्रुनाश, विजय, वस्त्र, सुवर्ण, आभूषणादि की वृद्धि एवं अश्व-यानादि का लाभ होता है ॥६॥

सूर्यान्तर में शनि की प्रत्यन्तर्दशा-फल

धनहानिः पशोः पीडा महोद्वेगो महारुजः ।
अशुभं सर्वमाप्नोति शनिप्रत्यन्तरे जनः ॥७॥

सूर्यान्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो धनहानि, पशुओं को पीड़ा, उद्वेग, महारोग एवं सभी प्रकार से अशुभ फल होता है ॥७॥

सूर्यान्तर में बुध की प्रत्यन्तर्दशा-फल

विद्यालाभो बन्धुसङ्गो भोज्यप्राप्तिर्धनागमः ।
धर्मलाभो नृपात्पूजा बुधप्रत्यन्तरे भवेत् ॥८॥

सूर्य के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तर होने पर विद्यालाभ, बन्धुओं का सङ्ग, सुस्वादु भोजन की प्राप्ति, धनागम, धर्मलाभ एवं राजा से पूजित होता है ॥८॥

सूर्यान्तर में केतु की प्रत्यन्तर्दशा-फल

प्राणभीतिर्महाहानी राजभीतिश्च विग्रहः ।
शत्रूणाञ्च महावादो केतोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥९॥

सूर्यान्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो प्राणभय, अधिक हानि, राजभय, विग्रह एवं शत्रुओं के साथ वाद-विवाद होता है ॥९॥

सूर्यान्तर में शुक्र की प्रत्यन्तर्दशा-फल

दिनानि समरूपाणि लाभोऽप्यल्पो भवेदिह ।
स्वल्पा च सुखसम्पत्तिः शुक्रप्रत्यन्तरे भवेत् ॥१०॥

सूर्यान्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो सुख और दु:ख समान रूप से व्यतीत होता है; साथ ही स्वल्प लाभ, अल्प सुख एवं सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥१०॥

चन्द्र दशा में चन्द्रान्तर की दशा में चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
०	०	१	१	१	१	०	१	०	मास
२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५	दिन
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घटी

चन्द्रमा महादशा में मंगल की अन्तर्दशा में मंगलादि की प्रत्यन्तर्दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	१	०	१	०	०	१	०	०	मास
१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७	दिन
१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०	घटी

चन्द्रदशा में राहु की अन्तर्दशा में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
२	२	२	२	१	३	०	१	१	मास
२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	दिन
०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	घटी

चन्द्रदशा में गुरु की अन्तर्दशा में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
२	२	२	०	२	०	१	०	२	मास
४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

चन्द्रदशा में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
३	२	१	३	०	१	१	२	६	मास
०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	दिन
१५	४५	१५	०	२०	३०	१५	३०	०	घटी

चन्द्रदशा में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
२	०	२	०	१	०	२	२	२	मास
१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२	दिन
१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५	घटी

चन्द्रदशा में केतु के अन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
८	१	०	०	०	१	०	१	०	मास
१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२६	दिन
१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५	घटी

चन्द्रदशा में सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	१	मास
९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	दिन
०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	घटी

चन्द्रमा के अन्तर में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर्दशा-फल

भूभोज्यधनसम्प्राप्ती राजपूजा महत्सुखम्।
लाभश्चन्द्रान्तरे ज्ञेयं चन्द्रप्रत्यन्तरे फलम् ॥११॥

चन्द्रान्तर में चन्द्रमा की ही अन्तर्दशा हो तो भूमि, भोज्य वस्तु और धन की प्राप्ति होती है, साथ ही जातक राजा से पूजित होता है एवं उसे परम सुख की प्राप्ति होती है ॥११॥

चन्द्रान्तर में भौम-प्रत्यन्तर का फल

मतिवृद्धिर्महापूज्यः सुखं बन्धुजनैः सह ।
धनागमः शत्रुभयं कुजप्रत्यन्तरे भवेत् ॥१२॥

चन्द्रान्तर में मंगल का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धि में वृद्धि, लोक में मान, स्वबन्धुओं सहित सुख, धनागम और शत्रुभय रहता है ॥१२॥

चन्द्रान्तर में राहु प्रत्यन्तर का फल

भवेत्कल्याणसम्पत्ती राजवित्तसमागमः ।
अशुभैरल्पमृत्युश्च राहुप्रत्यन्तरे द्विज ! ॥१३॥

चन्द्रान्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो कल्याण, राजकीय धनागम एवं यदि ग्रहों से युत हो तो अपमृत्यु का भय रहता है ॥१३॥

चन्द्रान्तर में गुरु का प्रत्यन्तर-फल

वस्त्रलाभो महातेजो ब्रह्मज्ञानं च सद्गुरोः ।
राज्यालङ्करणावाप्तिर्गुरुप्रत्यन्तरे भवेत् ॥१४॥

चन्द्रमा के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो वस्त्रलाभ, प्रभावशाली सद्गुरु से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति एवं राज्य तथा अलंकार की प्राप्ति होती है ॥१४॥

चन्द्रान्तर में शनि का प्रत्यन्तर-फल

दुर्दिने लभते पीडां वातपित्ताद्विशेषतः ।
धनधान्ययशोहानिः शनिप्रत्यन्तरे भवेत् ॥१५॥

चन्द्रान्तर में शनि की प्रत्यन्तर दशा हो तो वात और पित्तसम्बन्धी रोग से दुर्दिन का अनुभव एवं धन-धान्य और यश की हानि होती है ॥१५॥

चन्द्रान्तर में बुध प्रत्यन्तर्दशा-फल

पुत्रजन्महयप्राप्तिर्विद्यालाभो मनोन्नतिः ।
शुक्लवस्त्रान्नलाभश्च बुधप्रत्यन्तरे भवेत् ॥१६॥

चन्द्रान्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो पुत्रजन्म, अश्व की प्राप्ति, विद्या का लाभ, उन्नति, श्वेत वस्त्र और अन्न की प्राप्ति होती है ॥१६॥

चन्द्रान्तर में केतु प्रत्यन्तर-फल

ब्राह्मणेन समं युद्धमपमृत्युः सुखक्षयः ।
सर्वत्र जायते क्लेशः केतोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥१७॥

चन्द्रमा के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो ब्राह्मणों के साथ कलह, अपमृत्यु का भय, सुख की हानि एवं सभी जगहों पर कष्ट होता है ।।१७।।

चन्द्रान्तर में शुक्र प्रत्यन्तर्दशा-फल

धनलाभो महत्सौख्यं कन्याजन्म सुभोजनम् ।
प्रीतिश्च सर्वलोकेभ्यो भृगुप्रत्यन्तरे विधोः ।।१८।।

चन्द्रान्तर में शुक्र की प्रत्यन्तर दशा हो तो धनलाभ, पूर्ण सौख्य, कन्या का जन्म, सुभोजन और लोगों से प्रेम रहता है ।।१८।।

चन्द्रान्तर में सूर्य-प्रत्यन्तर-फल

अन्नागमो वस्त्रलाभः शत्रुहानिः सुखागमः ।
सर्वत्र विनयप्राप्तिः सूर्यप्रत्यन्तरे विधोः ।।१९।।

चन्द्रान्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो अन्न का लाभ, वस्त्र का लाभ, शत्रु की हानि, सुख एवं सभी जगहों पर विजय की प्राप्ति होती है ।।१९।।

मंगल की महादशा में मंगलान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर्दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	दिन
३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	पल

मंगल की महादशा में राहु के अन्तर में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
१	१	१	१	०	२	०	१	०	मास
२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दिन
४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घटी

मंगल की महादशा में गुरु के अन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मास
२४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दिन
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घटी

मंगल की महादशा में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर्दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
२	१	०	२	०	१	८	१	१	मास
३	२६	२३	६	१९	६	२३	२९	२३	दिन
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	पल

मंगल की महादशा में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर्दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मास
२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	दिन
३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	घटी
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल.

भौम की महादशा में केत्वन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दिन
३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

भौमदशा में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
२	०	१	०	२	१	२	१	०	मास
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घटी

भौमदशा में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर्दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दिन
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घटी

भौमदशा में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर्दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
०	०	१	०	१	०	०	१	०	मास
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	दिन
३०	१५	३०	०	०	१५	४५	१५	३०	घटी

भौमान्तर में भौम-प्रत्यन्तर्दशा-फल

शत्रुभीतिं कलिं घोरं रक्तस्रावं मृतेर्भयम्।
कुजस्यान्तर्दशायां च कुजप्रत्यन्तरे वदेत् ॥२०॥

भौमान्तर में भौम का ही प्रत्यन्तर हो तो शत्रुभय, भयङ्कर कलह एवं रक्तविकार के कारण अपमृत्यु की सम्भावना रहती है ॥२०॥

भौमान्तर में राहु प्रत्यन्तर-फल

बन्धनं राजभङ्गश्च धनहानिः कुभोजनम्।
कलहः शत्रुभिर्नित्यं राहुप्रत्यन्तरे भवेत्॥२१॥

भौमान्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो बन्धन, राज्य एवं धन का नाश, कुभोजन, कलह और शत्रु का भय रहता है॥२१॥

भौमान्तर में गुरु प्रत्यन्तर-फल

मतिनाशस्तथा दुःखं सन्तापः कलहो भवेत्।
विफलं चिन्तितं सर्वं गुरोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥२२॥

भौमान्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धिविभ्रम, दुःख सन्ताप, कलह एवं समस्त वाञ्छित कार्य असफल होते हैं॥२२॥

भौमान्तर में शनि का प्रत्यन्तर-फल

स्वामिनाशस्तथा पीडा धनहानिर्महाभयम्।
वैकल्यं कलहस्त्रासो शनेः प्रत्यन्तरे भवेत्॥२३॥

भौमान्तर में शनि की प्रत्यन्तर्दशा हो तो अपने स्वामी का नाश, पीड़ा, धननाश, महाभय, विकलता, और कलह तथा त्रास होता है॥२३॥

भौमान्तर में बुध प्रत्यन्तर-फल

सर्वथा बुद्धिनाशश्च धनहानिर्ज्वरस्तनौ।
वस्त्रान्नसुहृदां नाशो बुधप्रत्यन्तरे भवेत्॥२४॥

भौमान्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धि में भ्रम, धन की हानि, शरीर में ज्वर, वस्त्र, अन्न और मित्रों का नाश होता है॥२४॥

भौमान्तर में केतु प्रत्यन्तर-फल

आलस्यं च शिरः पीडा पापरोगोऽपमृत्युकृत्।
राजभीतिः शस्त्रघातो केतोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥२५॥

भौम के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो आलस्य, मस्तक में पीड़ा, पाप, रोग से कष्ट, अपमृत्यु, राजभय एवं शस्त्रघात आदि होता है॥२५॥

भौमान्तर में शुक्र प्रत्यन्तर्दशा-फल

चाण्डालात्सङ्कटस्त्रासो राजशस्त्रभयं भवेत्।
अतिसारोऽथ वमनं भृगोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥२६॥

भौमान्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो चाण्डाल जाति से संकट, त्रास, राजभय तथा शस्त्रभय एवं अतीसार तथा वमन रोग होता है॥२६॥

भौमान्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर-फल

भूमिलाभोऽर्थसम्पत्तिः सन्तोषो मित्रसङ्गतिः ।
सर्वत्र सुखमाप्नोति रवेः प्रत्यन्तरे जनः ॥२७॥

भौमान्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो भूमि, धन, सम्पत्ति की वृद्धि, सन्तोष, मित्रों का समागम और सभी प्रकार से सुख की प्राप्ति होती है ॥२७॥

भौमान्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर-फल

याम्यां दिशि भवेल्लाभः सितवस्त्रविभूषणम् ।
संसिद्धिः सर्वकार्याणां विधोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥२८॥

भौमान्तर में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर हो तो दक्षिण दिशा से सफेद वस्त्र तथा आभूषण का लाभ एवं समस्त कार्यों की सिद्धि होती है ॥२८॥

राहु की महादशा में राहु के अन्तर में राहु की प्रत्यन्तर दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
४	४	५	४	१	५	१	२	१	मास
२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६	दिन
४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२	घटी

राहु की दशा में गुरु के अन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
३	४	४	१	४	१	२	१	४	मास
२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९	दिन
१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	घटी

राहु की दशा में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
५	४	१	५	१	२	१	५	४	मास
१२	२५	२८	२१	२१	२५	२९	३	१६	दिन
२७	२१	५१	०	१८	३०	५४	५७	४८	घटी

राहु की दशा में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
४	१	५	१	२	१	४	४	४	मास
१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	दिन
३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	घटी

राहु की दशा में केत्वन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	२	०	१	०	१	१	१	१	मास
२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३	दिन
३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	घटी

राहु की दशा में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
६	१	३	२	५	४	५	५	२	मास
०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

राहु की दशा में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मास
१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	दिन
१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	घटी

राहु की दशा में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
१	१	२	२	२	२	१	३	०	मास
१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	दिन
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	घटी

राहु की दशा में भौमान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	१	१	१	१	०	२	०	१	मास
२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	दिन
३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	घटी

राहु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तर-फल

बन्धनं बहुधा रोगो बहुघातः सुहृद्भयम्।
राह्वन्तरदशायां च ज्ञेयं राह्वन्तरे फलम् ॥२९॥

राहु के अन्तर में राहु का ही प्रत्यन्तर हो तो बन्धन, विभिन्न रोगों से आघात एवं मित्रों का भय रहता है ॥२९॥

राहु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर-फल

सर्वत्र लभते मानं गजाश्वं च धनागमम्।
राहोरन्तर्दशायां च गुरोः प्रत्यन्तरे जनः ॥३०॥

राहु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो सर्वत्र मान-प्रतिष्ठा, अश्व, हाथी आदि वाहन तथा धन का लाभ होता है ॥३०॥

राहु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तर-फल

बन्धनं जायते घोरं सुखहानिर्महद्भयम्।
प्रत्यहं वातपीडा च शनेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥३१॥

राहु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो भयङ्कर बन्धन, सुख की हानि, महान् भय, विपक्षियों से त्रास और वातरोग होता है ॥३१॥

राहु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तर-फल

सर्वत्र बहुधा लाभः स्त्रीसङ्गाच्च विशेषतः।
परदेशभवा सिद्धिर्बुधप्रत्यन्तरे भवेत् ॥३२॥

राहु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो सभी कार्यों में सफलता, विशेष करके स्त्री से लाभ और वैदेशिक कार्य की सिद्धि होती है ॥३२॥

राहु के अन्तर में केतु के प्रत्यन्तर-फल

बुद्धिनाशो भयं विघ्नो धनहानिर्महद्भयम्।
सर्वत्र कलहोद्वेगौ केतोः प्रत्यन्तरे फलम् ॥३३॥

राहु के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धिनाश, भय, कार्यों में विघ्न, धनहानि, सर्वत्र कलह और उद्वेग होता है ॥३३॥

राहु के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर-फल

योगिनीभ्यो भयं भूयादश्वहानिः कुभोजनम्।
स्त्रीनाशः कुलजं शोकं शुक्रप्रत्यन्तरे भवेत् ॥३४॥

राहु के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो योगिनियों से भय, अश्व की हानि, कुभोजन, स्त्री-नाश और अपने वंश में शोक होता है ॥३४॥

राह्वन्तर में सूर्यादि प्रत्यन्तर-फल

ज्वररोगो महाभीतिः पुत्रपौत्रादिपीडनम्।
अल्पमृत्युः प्रमादश्च रवेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥३५॥

राह्वन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो ज्वर, परम भय, पुत्र-पौत्रों को पीड़ा, अपमृत्यु और प्रमाद होता है ॥३५॥

राह्वन्तर में चन्द्रादि प्रत्यन्तर-फल

उद्वेगकलहौ चिन्ता मानहानिर्महद्भयम्।
पितुर्विकलता देहे विधोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥३६॥

राहु के अन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर हो तो उद्वेग और कलह, चिन्ता, माननाश, भय और पिता के शरीर में कष्ट होता है॥३६॥

राहु के अन्तर में भौम प्रत्यन्तर-फल

भगन्दरकृता पीडा रक्तपित्तप्रपीडनम्।
अर्थहानिर्महोद्वेगः कुजप्रत्यन्तरे फलम्॥३७॥

राहु के अन्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो भगन्दर रोग से पीड़ा, रक्त-पित्तसम्बन्धी व्याधि, धननाश और उद्वेग होता है॥३७॥

गुरु की दशा में गुरु की अन्तर्दशा में गुरु की ही प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
३	४	२	१	४	१	२	१	३	मास
१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	दिन
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	घटी

गुरु में शन्यन्तर में शन्यादि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
४	४	१	५	१	२	१	४	४	मास
२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	दिन
२४	२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	घटी

गुरु में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
३	१	४	१	२	१	४	३	४	मास
२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९	दिन
३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	घटी

गुरु में केत्वन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	१	०	०	०	१	१	१	१	मास
१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७	दिन
३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	घटी

गुरु में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
५	१	२	१	४	४	५	४	१	मास
१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

गुरु में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मास
१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	दिन
२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	घटी

गुरु में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
१	०	२	२	२	२	०	२	०	मास
१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

गुरु में भौमान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	१	१	१	१	०	१	०	०	मास
१९	२०	१४	२३	१७	१९	१६	१६	२८	दिन
२६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	घटी

गुरु में राह्वन्तर में राहु की प्रत्यन्तर दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
४	३	४	४	१	४	१	२	१	मास
९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	दिन
३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	घटी

गुरु के अन्तर में गुरु आदि का प्रत्यन्तर-फल

हेमलाभो धान्यवृद्धिः कल्याणं सुफलोदयः ।
गुरोरन्तर्दशायां च भवेद् गुर्वन्तरे फलम् ॥३८॥

गुरु के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो सुवर्णलाभ, धान्यवृद्धि, कल्याण, भाग्योदय और सुखादि की प्राप्ति होती है ॥३८॥

गुरु के अन्तर में शन्यादि का प्रत्यन्तर-फल

गोभूमिहयलाभः स्यात्सर्वत्र सुखसाधनम् ।
संग्रहो ह्यन्नपानादेः शनेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥३९॥

गुरु के अन्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो गौ, भूमि, अश्व-लाभ एवं अन्न-पानादि के संचय से सुखानुभव होता है ॥३९॥

गुरु के अन्तर में बुधादि प्रत्यन्तर का फल

विद्यालाभो वस्त्रलाभो ज्ञानलाभः समौक्तिकः ।
सुहृदां सङ्गमः स्नेहो बुधप्रत्यन्तरे भवेत् ॥४०॥

गुरु के अन्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो विद्या, वस्त्र, ज्ञान, रत्न-लाभ, मित्रों का समागम और स्नेह होता है ॥४०॥

गुरु के अन्तर में केतु प्रत्यन्तर का फल

जलभीतिस्तथा चौर्यं बन्धनं कलहो भवेत् ।
अपमृत्युर्भयं घोरं केतोः प्रत्यन्तरे द्विज ! ॥४१॥

गुरु के अन्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो जल से भय, चोर, बन्धन, कलह और भयंकर अपमृत्यु का भय रहता है ॥४१॥

गुरु के अन्तर में शुक्र प्रत्यन्तर का फल

नानाविद्यार्थसम्प्राप्तिर्हेमवस्त्रविभूषणम् ।
लभते क्षेमसन्तोषं भृगोः प्रत्यन्तरे जनः ॥४२॥

गुरु के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो अनेक विद्या और धन की प्राप्ति, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण, क्षेम, कल्याण और सन्तोष प्राप्त होता है ॥४२॥

गुरु के अन्तर में सूर्यादि प्रत्यन्तर का फल

नृपाल्लाभस्तथा मित्रात् पितृतो मातृतोऽपि वा ।
सर्वत्र लभते पूजां रवेः प्रत्यन्तरे जनः ॥४३॥

गुरु के अन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो राजा, मित्र, पिता, माता और अन्य सभी जगहों से लाभ एवं सभी जगह से आदर प्राप्त होता है ॥४३॥

गुरु के अन्तर में चन्द्रादि प्रत्यन्तर का फल

सर्वदुःखविमोक्षश्च मुक्तालाभो हयस्य च ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि विधोः प्रत्यन्तरे द्विज ! ॥४४॥

गुरु के अन्तर में चन्द्रमा की प्रत्यन्तर्दशा हो तो सभी आपत्तियों का निवारण, रत्न और अश्वसम्बन्धी वाहनों का लाभ तथा सभी कार्य में सफलता मिलती है ॥४४॥

गुरु के अन्तर में भौम प्रत्यन्तर का फल

शस्त्रभीतिर्गुदे पीडा वह्निमान्द्यमजीर्णता।
पीडा शत्रुकृता भूमिर्भौमप्रत्यन्तरे भवेत्॥४५॥

गुरु के अन्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो शस्त्रभय, गुदामार्ग में पीड़ा, मन्दाग्नि, अजीर्णता और शत्रु से पीड़ा होती है॥४५॥

गुरु के अन्तर में राहु प्रत्यन्तर का फल

चाण्डालेन विरोधः स्याद् भयं तेभ्यो धनक्षतिः।
कष्टं जीवान्तरे ज्ञेयं राहोः प्रत्यन्तरे ध्रुवम्॥४६॥

गुरु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो चाण्डाल जाति से विरोध, उनके द्वारा ही भय, धननाश और कष्ट होता है॥४६॥

शनि की दशा में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
५	५	२	६	१	३	२	५	४	मास
२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	दिन
२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	पल

शनि की दशा में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
४	१	५	१	२	१	४	४	५	मास
१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३	दिन
१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५	घटी
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल

शनि की दशा में केत्वन्तर में केत्वादि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	२	०	१	०	१	१	२	१	मास
२३	६	१९	३	२३	२८	२३	३	२६	दिन
१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

शनि की दशा में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
६	१	३	२	५	५	६	५	२	मास
१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घटी

शनि की दशा में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मास
१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७	दिन
६	३०	५७	१८	३६	९	२७	५७	०	घटी

शनि की दशा में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
१	१	२	२	३	२	१	३	०	मास
१७	३	२५	१५	०	२०	३	५	२८	दिन
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घटी

शनि की दशा में भौमान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	१	१	२	१	०	२	०	१	मास
२३	२९	२३	३	२६	२३	६	१९	३	दिन
१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	पल

शनि की दशा में राह्वन्तर में राहु आदि की प्रत्यन्तर दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
५	४	५	४	१	५	१	२	१	मास
३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	दिन
५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	घटी

शनि की दशा में गुर्वन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
४	४	४	१	५	१	२	१	४	मास
१	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	दिन
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	घटी

शन्यन्तर में शन्यादि प्रत्यन्तर का फल

देहपीडा कलेर्भीतिर्भयमन्त्यजलोकतः ।
दुःखं शन्यन्तरे नाना शनेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥४७॥

शन्यन्तर में शनि का ही प्रत्यन्तर हो तो शारीरिक पीड़ा, कलह, अन्त्यज (नीच) लोगों से भय एवं विभिन्न प्रकार के दुःख होते हैं ॥४७॥

शन्यन्तर में बुध प्रत्यन्तर का फल

बुद्धिनाशः कलेर्भीतिरन्नपानादिहानिकृत् ।
धनहानिर्भयं शत्रोः शनेः प्रत्यन्तरे बुधे ॥४८॥

शन्यन्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धिनाश, कलह, भय, भोजनादि की चिन्ता, धननाश और अपने विपक्षियों से भय रहता है ॥४८॥

शन्यन्तर में केतु प्रत्यन्तर का फल

बन्धः शत्रोर्गृहे जातो वर्णहानिर्बहुक्षुधा ।
चित्ते चिन्ता भयं त्रासः केतोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥४९॥

शन्यन्तर में केतु की प्रत्यन्तर्दशा हो तो शत्रु के गृह में बन्धन, छवि-हानि, अधिक क्षुधा, हृदय में चिन्ता, भय और त्रास होता है ॥४९॥

शन्यन्तर में शुक्र-प्रत्यन्तर का फल

चिन्तितं फलितं वस्तुकल्याणं स्वजने सदा ।
मनुष्यकृतितो लाभः भृगोः प्रत्यन्तरे द्विज ! ॥५०॥

हे द्विज ! शन्यन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो अभीष्ट कार्य में सफलता, अपने जनों का कल्याण एवं मानविक कार्य से लाभ होता है ॥५०॥

शन्यन्तर में सूर्य-प्रत्यन्तर का फल

राजतेजोऽधिकारित्वं स्वगृहे जायते कलिः ।
ज्वरादिव्याधिपीडा च रवेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥५१॥

शन्यन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो राजा से अधिकार की प्राप्ति; परन्तु अपने गृह में कलह और ज्वरादि रोग से पीड़ा होती है ॥५१॥

शन्यन्तर में चन्द्र के प्रत्यन्तर का फल

स्फीतबुद्धिर्महारम्भो मन्दतेजा बहुव्ययः ।
बहुस्त्रीभिः समं भोगो विधोः प्रत्यन्तरे शनौ ॥५२॥

शन्यन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर हो तो प्रखर बुद्धि; बड़े कार्य का आरम्भ, तेज में मन्दता, अधिक व्यय और अधिक स्त्रियों के साथ समागम होता है ॥५२॥

शन्यन्तर में भौम-प्रत्यन्तर का फल

तेजोहानिः पुत्रघातो वह्निभीती रिपोर्भयम्।
वातपित्तकृता पीडा कुजप्रत्यन्तरे भवेत् ॥५३॥

शन्यन्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो प्रभाव में न्यूनता, पुत्र को आघात, अग्नि और शत्रु का भय, वायु तथा पित्त से पीड़ा होती है ॥५३॥

शन्यान्तर में राहु-प्रत्यन्तर का फल

धननाशो वस्त्रहानिर्भूमिनाशो भयं भवेत्।
विदेशगमनं मृत्युः राहोः प्रत्यन्तरे शनौ ॥५४॥

शन्यन्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो धन, वस्त्र तथा भूमि का नाश, भय, देशान्तर में भ्रमण तथा मृत्यु का भय रहता है ॥५४॥

शन्यन्तर में गुरु-प्रत्यन्तर का फल

गृहेषु स्त्रीकृतं छिद्रं ह्यसमर्थो निरीक्षणे।
अथ वा कलिमुद्वेगं गुरोः प्रत्यन्तरे वदेत् ॥५५॥

शनि के अन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो स्त्री द्वारा की गई अकर्मण्यता को रोकने में असमर्थता तथा कलहे और उद्वेग होता है ॥५५॥

बुध की महादशा में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
४	१	४	१	२	१	४	३	४	मास
२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	दिन
४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	घटी
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल

बुध की दशा में केत्वन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	१	०	०	०	१	१	१	१	मास
२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०	दिन
४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	३४	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

बुध की दशा में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
५	१	२	१	५	४	५	४	१	मास
२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घटी

बुध की दशा में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	१	१	१	१	०	१	मास
१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	दिन
२८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	घटी

बुध की दशा में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
१	०	२	२	२	२	०	२	०	मास
१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५	दिन
३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	६	३०	घटी

बुध की दशा में भौमान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	१	१	१	१	०	१	०	०	मास
२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	दिन
४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	पल

बुध की दशा में राह्वन्तर में राहु आदि की प्रत्यन्तर दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
४	४	४	४	१	५	१	२	१	मास
१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३	दिन
४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३	घटी

बुध की दशा में गुर्वन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
३	४	३	१	४	१	२	१	४	मास
१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	दिन
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घटी

बुध की दशा में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
५	४	१	५	१	२	१	४	४	मास
३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	दिन
२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	पल

बुधान्तर में बुधादि प्रत्यन्तर का फल

बुद्धिर्विद्यार्थलाभो वा वस्त्रलाभो महत्सुखम्।
बुधस्यान्तर्दशायाञ्च बुधप्रत्यन्तरे भवेत्॥५६॥

बुधान्तर में बुध की ही प्रत्यन्तर दशा हो तो बुद्धि, विद्या और धन का लाभ, वस्त्र की प्राप्ति एवं परम सुख होता है॥५६॥

बुधान्तर में केतु प्रत्यन्तर का फल

कठिनान्नस्य सम्प्राप्तिरुदरे रोगसम्भवः।
कामलं रक्तपित्तं च केतोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥५७॥

बुधान्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो कुभोजन, उदर-(पेट)-सम्बन्धी रोग की सम्भावना, नेत्र-सम्बन्धी व्याधि एवं रक्त और पित्तविकार होता है॥५७॥

बुधान्तर में शुक्र प्रत्यन्तर का फल

उत्तरस्यां भवेल्लाभो हानिः स्यात्तु चतुष्पदात्।
अधिकारो नृपागारो भृगोः प्रत्यन्तरे भवेत्॥५८॥

बुधान्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो उत्तर दिशा से लाभ, पशुओं से हानि एवं राजगृह में अधिकार की प्राप्ति होती है॥५८॥

बुधान्तर में सूर्यादि प्रत्यन्तर का फल

तेजोहानिर्भवेद्रोगस्तनुपीडा यदा कदा।
जायते चित्तवैकल्यं रवेः प्रत्यन्तरे बुधे॥५९॥

बुधान्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो प्रभाव की हानि, रोग का आक्रमण एवं मानसिक अशान्ति होती है॥५९॥

बुधान्तर में चन्द्र प्रत्यन्तर का फल

स्त्रीलाभश्चार्थसम्पत्तिः कन्यालाभो महद्धनम्।
लभते सर्वतः सौख्यं विधोः प्रत्यन्तरे जनः॥६०॥

बुधान्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर हो तो स्त्री-धन-सम्पत्ति का लाभ, कन्या की प्राप्ति एवं सभी तरह से सुख होता है॥६०॥

बुधान्तर में भौम प्रत्यन्तर का फल

धर्मधीधनसम्प्राप्तिश्चौराग्न्यादिप्रपीडनम्।
रक्तवस्त्रं शस्त्रघातः भौमप्रत्यन्तरे भवेत्॥६१॥

बुधान्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो धर्म, बुद्धि तथा धन की प्राप्ति, चोर, अग्नि द्वारा पीड़ा, रक्तवस्त्र का लाभ एवं शस्त्र से आघात का भय रहता है॥६१॥

बुधान्तर में राहु प्रत्यन्तर का फल

कलहो जायते स्त्रीभिरकस्माद् भयसम्भवः ।
राजशस्त्रकृता भीतिः राहोः प्रत्यन्तरे द्विज ! ॥६२॥

हे द्विज ! बुधान्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो कलह और स्त्री से अकारण भय तथा राजा और शस्त्र से भय रहता है ॥६२॥

बुधान्तर में गुरु प्रत्यन्तर का फल

राज्यं राज्याधिकारो वा पूजा राजसमुद्भवा ।
विद्याबुद्धिसमृद्धिश्च गुरोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥६३॥

बुधान्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो राज्यलाभ, राज्याधिकारी तथा राजा से सम्मान एवं विद्या, बुद्धि की समृद्धि होती है ॥६३॥

बुधान्तर में शनि प्रत्यन्तर का फल

वातपित्तमहापीडा देहघातसमुद्भवा ।
धननाशमवाप्नोति शनेः प्रत्यन्तरे जनः ॥६४॥

बुधान्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो वायु तथा पित्तसम्बन्धी रोग, शरीर में आघात और धन का क्षय होता है ॥६४॥

केतु की महादशा में केतु के अन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	दिन
३४	३०	२१	१५	३८	३	३६	१६	४९	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

केतु की दशा में शुक्रान्तर में शुक्रादि की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
२	०	१	०	२	१	२	१	०	मास
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घटी

केतु में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	दिन
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	घटी

केतु में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
०	०	१	०	१	०	०	१	०	मास
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	दिन
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	घटी

केतु में भौमान्तर में भौम आदि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	०	१	०	०	०	०	०	०	मास
८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	दिन
३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	पल

केतु में राहु के अन्तर में राहु आदि की प्रत्यन्तर्दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
१	१	१	१	०	२	०	१	०	मास
२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	दिन
४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	घटी

केतु में गुरु के अन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
१	१	१	०	१	०	०	०	१	मास
१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	दिन
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	घटी

केतु में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
२	१	०	२	०	१	०	१	१	मास
३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	दिन
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	पल

केतु में बुधान्तर में बुधादि की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
१	०	१	०	०	०	१	१	१	मास
२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	दिन
३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	घटी
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल

केत्वन्तर में केतु प्रत्यन्तर का फल

आपत्समुद्भवोऽकस्माद् देशान्तरसमागमः ।
केत्वन्तरेऽर्थहानिश्च केतोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥६५॥

केत्वन्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो अकस्मात् आपत्ति, देशान्तर में भ्रमण और धननाश होता है ॥६५॥

केत्वन्तर में शुक्र प्रत्यन्तर का फल

म्लेच्छभीरर्थनाशो वा नेत्ररोगः शिरोव्यथा ।
हानिश्चतुष्पदानां च भृगोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥६६॥

केत्वन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो यवनों से भय, धननाश, नेत्ररोग, शिर में पीड़ा और चौपायों की हानि होती है ॥६६॥

केत्वन्तर में सूर्य प्रत्यन्तर का फल

मित्रैः सह विरोधश्च स्वल्पमृत्युः पराजयः ।
मतिभ्रंशो विवादश्च रवेः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥६७॥

केत्वन्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो अपने मित्रों के साथ विरोध, अकाल मृत्यु, पराजय, बुद्धिभ्रंश और विवाद होता है ॥६७॥

केत्वन्तर में चन्द्र प्रत्यन्तर का फल

अन्ननाशो यशोहानिर्देहपीडा मतिभ्रमः ।
आमवातादिवृद्धिश्च विधोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥६८॥

केत्वन्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर हो तो अन्ननाश, कीर्ति में आघात, शारीरिक पीड़ा, मतिभ्रम एवं आँव तथा वायुसम्बन्धी रोग की वृद्धि होती है ॥६८॥

केत्वन्तर में भौम प्रत्यन्तर का फल

शस्त्रघातेन पातेन पीडितो वह्निपीडया ।
नीचाद् भीती रिपोः शङ्का कुजप्रत्यन्तरे भवेत् ॥६९॥

केत्वन्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो शस्त्रघात, पतन का भय, अग्नि से भय एवं नीच जनों और शत्रुओं से भय रहता है ॥६९॥

केत्वन्तर में राहु प्रत्यन्तर का फल

कामिनीभ्यो भयं भूयात्तथा वैरिसमुद्भवः ।
क्षुद्रादपि भवेद् भीती राहोः प्रत्यन्तरे भवेत् ॥७०॥

केत्वन्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो स्त्री और विपक्षियों से भय एवं क्षुद्र जनों से भी भय का आभास होता है ॥७०॥

केत्वन्तर में गुरु प्रत्यन्तर का फल

धनहानिर्महोत्पातो शस्त्रमित्रविनाशनम्।
सर्वत्र लभते क्लेशं गुरोः प्रत्यन्तरे फलम्॥७१॥

केत्वन्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो धन एवं मित्र का विनाश, शस्त्र से महा उत्पात और सभी जगहों से कष्ट प्राप्त होता है॥७१॥

केत्वन्तर में शनि प्रत्यन्तर का फल

गोमहिष्यादिमरणं देहपीडा सुहृद्वधः।
स्वल्पाल्पलाभकरणं शनेः प्रत्यन्तरे फलम्॥७२॥

केत्वन्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो गौ-महिष्यादि पशु और मित्रों का मरण, शारीरिक पीड़ा और अत्यन्त अल्प लाभ होता है॥७२॥

केत्वन्तर में बुध प्रत्यन्तर का फल

बुद्धिनाशो महोद्वेगो विद्याहानिर्महाभयम्।
कार्यसिद्धिर्न जायेत ज्ञस्य प्रत्यन्तरे फलम्॥७३॥

केत्वन्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो बुद्धिनाश, उद्वेग, विद्या की हानि, भय और कार्य विफल होते हैं॥७३॥

शुक्र की महादशा में शुक्रान्तर में शुक्र की प्रत्यन्तर दशा

शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	ग्रह
६	२	३	२	६	५	६	५	२	मास
२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र में सूर्यान्तर में सूर्यादि की प्रत्यन्तर दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	१	०	१	१	१	१	०	२	मास
१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र में चन्द्रान्तर में चन्द्रादि की प्रत्यन्तर दशा

चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	ग्रह
१	१	३	२	३	२	१	३	१	मास
२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र में भौमान्तर में भौमादि की प्रत्यन्तर दशा

मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	ग्रह
०	२	१	२	१	०	२	०	१	मास
२४	३	२६	६	२९	२४	१०	२१	५	दिन
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	घटी

शुक्र में राह्वन्तर में राहु आदि की प्रत्यन्तर दशा

राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	ग्रह
५	४	५	५	२	६	१	३	२	मास
१२	२४	२१	३	३	०	२४	७	३	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र में गुर्वन्तर में गुरु आदि की प्रत्यन्तर दशा

गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	ग्रह
४	५	४	१	५	१	३	१	४	मास
८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र में शन्यन्तर में शनि आदि की प्रत्यन्तर दशा

शनि	बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	ग्रह
६	५	२	६	१	३	२	५	५	मास
०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	दिन
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	घटी

शुक्र में बुधान्तर में बुध की प्रत्यन्तर दशा

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	ग्रह
४	१	५	१	२	१	५	४	५	मास
२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	दिन
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	घटीं

शुक्र में केत्वन्तर में केतु आदि की प्रत्यन्तर दशा

केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	ग्रह
०	२	०	१	०	२	१	२	१	मास
२४	१०	२१	५	२४	३	२५	६	२९	दिन
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	घटी

शुक्रान्तर में शुक्र प्रत्यन्तर का फल

श्वेताश्व-वस्त्र-मुक्ताद्यं दिव्यस्त्रीसङ्गजं सुखम्।
लभते शुक्रान्तरे प्राप्ते शुक्रप्रत्यन्तरे जनः ।।७४।।

शुक्रान्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर हो तो सफेद वस्त्र, अश्व, मोती आदि रत्न और सुन्दर स्त्री से संगम का सुख होता है ।।७४।।

शुक्रान्तर में सूर्य प्रत्यन्तर का फल

वातज्वरः शिरःपीडा राज्ञः पीडा रिपोरपि।
जायते स्वल्पलाभोऽपि रवेः प्रत्यन्तरे फलम् ।।७५।।

शुक्रान्तर में सूर्य का प्रत्यन्तर हो तो वातज्वर, मस्तक में पीड़ा, राजा और शत्रु से भी पीड़ा तथा व्यवसाय में अल्प लाभ होता है ।।७५।।

शुक्रान्तर में चन्द्र प्रत्यन्तर का फल

कन्याजन्म नृपाल्लाभो वस्त्राभरणसंयुतः।
राज्याधिकारसम्प्राप्तिः चन्द्रप्रत्यन्तरे भवेत् ।।७६।।

शुक्रान्तर में चन्द्र का प्रत्यन्तर हो तो कन्या की प्राप्ति, राजा से वस्त्र-आभूषणादि की प्राप्ति और राज्याधिकार प्राप्त होता है ।।७६।।

शुक्रान्तर में भौम प्रत्यन्तर का फल

रक्तपित्तादिरोगश्च कलहस्ताडनं भवेत्।
महान् क्लेशो भवेदत्र कुजप्रत्यन्तरे द्विज! ।।७७।।

शुक्रान्तर में भौम का प्रत्यन्तर हो तो रक्त और पित्तसम्बन्धी रोग, कलह, ताडन और महान् कष्ट होता है ।।७७।।

शुक्रान्तर में राहु प्रत्यन्तर का फल

कलहो जायते स्त्रीभिरकस्माद् भयसम्भवः ।
राजतः शत्रुतः पीडा राहोः प्रत्यन्तरे भवेत् ।।७८।।

शुक्रान्तर में राहु का प्रत्यन्तर हो तो स्त्री से कलह, अकस्मात् भय एवं राजा और शत्रु से पीड़ा होती है ।।७८।।

शुक्रान्तर में गुरु प्रत्यन्तर का फल

महद् द्रव्यं महद्राज्यं वस्त्रमुक्तादिभूषणम्।
गजाश्वादिपदप्राप्तिः गुरोः प्रत्यन्तरे भवेत् ।।७९।।

शुक्रान्तर में गुरु का प्रत्यन्तर हो तो द्रव्य, राज्य, वस्त्र, मोती, आभूषण, हाथी, अश्व, वाहन आदि का लाभ होता है ।।७९।।

शुक्रान्तर में शनि प्रत्यन्तर का फल

खरोष्ट्रछागसम्प्राप्तिर्लोहमाषतिलादिकम् ।
लभते स्वल्पपीडादि शनेः प्रत्यन्तरे जनः ॥८०॥

शुक्रान्तर में शनि का प्रत्यन्तर हो तो गदहा, उष्ट्र, छाग की प्राप्ति, लोहा, माष, तिल आदि से लाभ और कुछ पीड़ा भी होती है ॥८०॥

शुक्रान्तर में बुध प्रत्यन्तर का फल

धनज्ञानमहल्लाभो राजराज्याधिकारिता ।
निक्षेपाद्धनलाभोऽपि ज्ञस्य प्रत्यन्तरे भवेत् ॥८१॥

शुक्रान्तर में बुध का प्रत्यन्तर हो तो धन, ज्ञान, महान् लाभ, राजा से अधिकार की प्राप्ति और दूसरे के निक्षेप (धरोहर) धन का लाभ होता है ॥८१॥

शुक्रान्तर में केतु प्रत्यन्तर का फल

अपमृत्युभयं ज्ञेयं देशाद्देशान्तरागमः ।
लाभोऽपि जायते मध्ये केतोः प्रत्यन्तरे द्विज ! ॥८२॥

शुक्रान्तर में केतु का प्रत्यन्तर हो तो अपमृत्यु का भय एवं देश-विदेश में भ्रमण होता है, साथ ही बीच-बीच में आर्थिक लाभ भी होता है ॥८२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां प्रत्यन्तर्दशाफलाध्यायः ॥६३॥

अथ सूक्ष्मान्तर्दशाफलाध्यायः ॥६४॥

सूक्ष्मान्तर्दशा-साधनप्रकार

गुण्या स्व-स्वदशावर्षैः प्रत्यन्तरदशामितिः ।
खार्कैर्भक्ता पृथग्लब्धिः सूक्ष्मान्तरदशा भवेत् ॥१॥

प्रत्यन्तर दशामान को पृथक्-पृथक् दशावर्ष से गुणा कर १२० का भाग देने पर अलग-अलग सूक्ष्मान्तर्दशा का मान होता है ॥१॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की महादशा में सूर्य की ही अन्तर्दशा में सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा ५।२४ दिनादि है, इसको ५ × ६० + २४ = ३२४ घट्यात्मक हुआ, इसमें सूर्य दशा-वर्ष ६ से गुणा किया तो १९४४ हुआ, इसमें १२० का भाग दिया तो १६।१२ घट्यादि सूर्य दशा में सूर्यान्तर में सूर्य प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हुई। इसी प्रकार पूर्वोक्त सूर्य की प्रत्यन्तर्दशा ३२४ को चन्द्र दशावर्ष १० से गुणा कर १२० का भाग देने से २७।० घट्यादि चन्द्र की सूक्ष्म दशा हुई। एवं प्रकारेण—

३२४ × ७/१२० = १८।५४ घट्यादि

३२४ × १८/१२० = ४८।३६ घट्यादि

३२४ × १६/१२० = ४३।१२ घट्यादि

३२४ × १९/१२० = ५१।१८ घट्यादि

३२४ × १७/१२० = ४५।५४ घट्यादि

३२४ × ७/१२० = १८।५४ घट्यादि

३२४ × २०/१२० = ५४।० घट्यादि

अतः सूर्यदशा में, सूर्यान्तर में, सूर्य प्रत्यन्तर में, सूर्य-सूक्ष्म दशा

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
१६	२७	१८	४८	४३	५१	४५	१८	५४	घटी
१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	पल

इसी प्रकार सभी ग्रहों की सूक्ष्म दशा सिद्ध होगी।

सूर्य के प्रत्यन्तर में सूर्य-सूक्ष्म-दशा फल

निजभूमिपरित्यागो प्राणनाशभयं भवेत् ।
स्थाननाशो महाहानिः निजसूक्ष्मगते रवौ ॥२॥

सूर्य के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो अपनी भूमि का त्याग, मृत्यु का भय, स्थाननाश और सभी जगहों से हानि होती है ॥२॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा-फल

देवब्राह्मणभक्तिश्च नित्यकर्मरतस्तथा ।
सुप्रीतिः सर्वमित्रैश्च रवेः सूक्ष्मगते विधौ ॥३॥

सूर्य के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो देव-ब्राह्मण में श्रद्धा, अपने कर्म में सदैव तत्पर और मित्रों में प्रेम रहता है ॥३॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में भौम-सूक्ष्मदशा-फल

क्रूरकर्मरतिस्तिग्मशत्रुभिः परिपीडनम् ।
रक्तस्रावादिरोगश्च रवेः सूक्ष्मगते कुजे ॥४॥

सूर्य की प्रत्यन्तर दशा में भौम की सूक्ष्म दशा रहने पर कुकर्म में प्रवृत्ति, निष्ठुर शत्रुओं से पीड़ा और रक्तपात आदि रोग से जातक आक्रान्त रहता है ॥४॥

सूर्य-प्रत्यन्तर दशा में राहु की सूक्ष्मदशा-फल

चौराग्निविषभीतिश्च रणे भङ्गः पराजयः ।
दानधर्मादिहीनश्च रवेः सूक्ष्मगते कुजे ॥५॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो चोर, अग्नि और विष का भय, युद्ध में पराजय एवं दान-धर्मादि धार्मिक कृत्य में अवरोध होता है ॥५॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा-फल

नृपसत्कारराजार्हः सेवकैः परिपूजितः ।
राजचक्षुर्गतः शान्तः सूर्यसूक्ष्मगते गुरौ ॥६॥

सूर्य प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो राजा से आदर, राजसेवकों द्वारा पूजित एवं राजा का कृपापात्र होता है ॥६॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा-फल

चौर्यसाहसकर्मार्थं देवब्राह्मणपीडनम् ।
स्थानच्युतिं मनोदुःखं रवेः सूक्ष्मगते शनौ ॥७॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो चोरी और साहसिक कार्य से देवता और ब्राह्मणों को पीड़ा, उनके द्वारा स्थानत्याग और मानसिक व्यथा होती है ॥७॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा-फल

दिव्याम्बरादिलब्धिश्च दिव्यस्त्रीपरिभोगिता ।
अचिन्तितार्थसिद्धिश्च रवेः सूक्ष्मगते बुधे ॥८॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो सुन्दर वस्त्रादि का लाभ, सुन्दरी स्त्री के साथ भोग-विलास और अचिन्तित कार्य की भी सिद्धि होती है ॥८॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा-फल

गुरुतार्थविनाशश्च भृत्यदारभवस्तथा ।
क्वचित्सेवकसम्बन्धो रवेः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥९॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो सेवक और स्त्री से गौरव, धन का विनाश एवं यदा-कदा सेवक से सुसम्बन्ध भी होता है ॥९॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा-फल

पुत्रमित्रकलत्रादिसौख्यसम्पन्न एव च ।
नानाविधा च सम्पत्ती रवेः सूक्ष्मगते भृगौ ॥१०॥

सूर्य-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो पुत्र, मित्र और कलत्रादि से सुख एवं विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥१०॥

चन्द्रमा की महादशा में, चन्द्रान्तर में,
चन्द्र-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा-फल

भूषणं भूमिलाभश्च सन्मानं नृपपूजनम् ।
तामसत्वं गुरुत्वं च निजसूक्ष्मगते विधौ ॥११॥

चन्द्रमा के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो आभूषण और भूमि का लाभ, सम्मान, राजा से पूजित, तामस प्रकृति और गौरव होता है ॥११॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में भौम सूक्ष्म-दशाफल

दुःखं शत्रुविरोधश्च कुक्षिरोगः पितुर्मृतिः ।
वातपित्तकफोद्रेकः विधोः सूक्ष्मगते कुजे ॥१२॥

चन्द्र प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्म दशा हो तो दुःख, शत्रु से विरोध, पेटसम्बन्धी रोग, पिता का मरण एवं वात, पित्त और कफसम्बन्धी रोग होता है ॥१२॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा-फल

क्रोधनं मित्रबन्धूनां देशत्यागो धनक्षयः ।
विदेशान्निगडप्राप्तिर्विधोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥१३॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो मित्र तथा बन्धुओं का क्रोध, देशत्याग, धन-क्षय और विदेश में बन्धन होता है ॥१३॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा-फल

छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्पदः ।
सर्वत्र सुखमाप्नोति विधोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥१४॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो राजचिह्न (छत्र + चामर) से युत ऐश्वर्य एवं पुत्ररूपी सम्पत्ति की प्राप्ति तथा सर्वत्र सुख होता है ॥१४॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशाफल

राजोपद्रवभीतिः स्याद्व्यवहारे धनक्षयः ।
चौरत्वं विप्रभीतिश्च विधोः सूक्ष्मगते शनौ ॥१५॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो राजा का कोप और भय, अपने ही व्यवहार से धन-क्षय एवं चोर और ब्राह्मणों का भय रहता है ॥१५॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशाफल

राजमानं वस्तुलाभो विदेशाद्वाहनादिकम् ।
पुत्र-पौत्रसमृद्धिश्च विधोः सूक्षगते बुधे ॥१६॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो राजा से सम्मान, वस्तुओं का लाभ, देशान्तर से वाहन-लाभ एवं पुत्र-पौत्रादि सन्तान की वृद्धि होती है ॥१६॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशाफल

आत्मनो वृत्तिहननं सस्यशृङ्गवृषादिभिः ।
अग्निसूर्यादिभीतिः स्याद्विधोः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥१७॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो सस्य (अन्न)-औषधि-पशु आदि के द्वारा अपनी वृत्ति का हनन एवं अग्नि और सूर्यकिरण से भय रहता है ॥१७॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशाफल

विवाहो भूमिलाभश्च वस्त्राभरणवैभवम् ।
राज्यलाभश्च कीर्तिश्च विधोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥१८॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो विवाह, भूमि-लाभ, वस्त्र, आभरणादि वैभव, राज्य और यश का लाभ होता है ॥१८॥

चन्द्र-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशाफल

क्लेशात् क्लेशः कार्यनाशः पशुधान्यधनक्षयः ।
गात्रवैषम्यभूमिश्च विधोः सूक्ष्मगते रवौ ॥१९॥

चन्द्र के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो भयंकर कष्ट, कार्यनाश, पशु-धन-धान्य का क्षय, शरीर में विषमता और भूमि में भी विषमता होती है ॥१९॥

भौम की दशा में भौम के अन्तर में
भौम-प्रत्यन्तर में भौम सूक्ष्म दशाफल

भूमिहानिर्मनःखेटो ह्यपस्मारी च बन्धयुक् ।
पुरक्षोभमनस्तापो निजसूक्ष्मगते कुजे ॥२०॥

भौम के प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्म दशा हो तो भूमि की हानि, मन में खेद, मृगी रोग, बन्धन, नगर में क्षोभ और मानसिक ताप होता है ॥२०॥

भौम-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा फल

अङ्गदोषो जनाद् भीतिः प्रमदावंशनाशनम्।
वह्निसर्पभयं घोरं भौमे सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥२१॥

भौम के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो देह में दोष, लोगों से भय, स्त्री-सन्तान का नाश एवं अग्नि, सर्प का भयंकर भय होता है ॥२१॥

भौम-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा फल

देवपूजा-रतिश्चात्र मन्त्राभ्युत्थानतत्परः।
लोके पूजा प्रमोदश्च भौमे सूक्ष्मगते गुरौ ॥२२॥

भौम-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो देवपूजा में प्रेम, मन्त्रसिद्धि, लोक में सम्मान और आनन्द होता है ॥२२॥

भौम-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा फल

बन्धनान्मुच्यते बद्धो धनधान्यपरिच्छदः।
भृत्यार्थबहुलः श्रीमान् भौमे सूक्ष्मगते शनौ ॥२३॥

भौम के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो बन्धन से मुक्ति, धन-धान्यादि का लाभ तथा सेवक और धन की प्राप्ति होती है ॥२३॥

भौम-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा-फल

वाहनं छत्रसंयुक्तं राज्यभोगपरं सुखम्।
कासश्वासादिका पीडा भौमे सूक्ष्मगते बुधे ॥२४॥

भौम के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो वाहन, छत्र तथा चामर आदि राज्यभोग्य वस्तुओं से सुख, परन्तु शरीर में कास और श्वाससम्बन्धी रोग से पीड़ा होती है ॥२४॥

भौम-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा फल

परप्रेरितबुद्धिश्च सर्वत्राऽपि च गर्हिता।
अशुचिः सर्वकालेषु भौमे सूक्ष्मगते ध्वजे ॥२५॥

भौम के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो दूसरे के कथन पर विश्वास कर जातक निन्दित कार्य करता है एवं सदैव अपवित्र रहता है ॥२५॥

भौम-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा-फल

इष्टस्त्री-भोग-सम्पत्तिरिष्ट-भोजनसंग्रहः।
इष्टार्थस्यापि लाभश्च भौमे सूक्ष्मगते भृगौ ॥२६॥

भौम के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो इच्छित स्त्री के साथ सम्पर्क, धन तथा अभीष्ट भोजन का संग्रह और अभीष्ट वस्तुओं का लाभ होता है ॥२६॥

भौम-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा-फल

राजद्वेषो द्विजात् क्लेशः कार्याभिप्रायवञ्चकः।
लोकेऽपि निन्द्यतामेति भौमे सूक्ष्मगते रवौ ॥२७॥

भौम के प्रत्यन्तर में सूर्ग की सूक्ष्म दशा हो तो राजा का कोप, विप्रों से कष्ट, कार्यों में असफलता और लोक में निन्दा होती है ॥२७॥

भौम-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा-फल

शुद्धत्वं धनसम्प्राप्तिर्देवब्राह्मणवत्सलः।
व्याधिना परिभूयेत भौमे सूक्ष्मगते विधौ ॥२८॥

भौम के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो शुद्धता, धन-प्राप्ति, देव-ब्राह्मण में निष्ठा; परन्तु शरीर में रोग का भय बना रहता है ॥२८॥

राहु की दशा में राहु के अन्तर में, राहु के प्रत्यन्तर में राहु-सूक्ष्मदशा-फल

लोकोपद्रवबुद्धिश्च स्वकार्ये मतिविभ्रमः।
शून्यता चित्तदोषः स्यात् स्वीये सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥२९॥

राहु की प्रत्यन्तर दशा में राहु की ही सूक्ष्म दशा हो तो लोक में उपद्रव करने में उद्यत, अपने कार्य में मतिविभ्रम, शून्यता और चित्त दूषित होता है ॥२९॥

राहु-प्रत्यन्तर में गुरु का सूक्ष्मदशा-फल

दीर्घरोगी दरिद्रश्च सर्वेषां प्रियदर्शनः।
दानधर्मरतः शस्तो राहोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥३०॥

राहु के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो दीर्घ रोग, धनाभाव, परन्तु लोक में सबका प्रिय एवं दान-धर्मादि धार्मिक कृत्यों में उसकी अभिरुचि रहती है ॥३०॥

राहु-प्रत्यन्तर में शनि का सूक्ष्मदशा-फल

कुमार्गात् कुत्सितोऽर्थश्च दुष्टश्च परसेवकः।
असत्सङ्गमतिर्मूढो राहोः सूक्ष्मगते शनौ ॥३१॥

राहु के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो कुमार्ग से धन-संग्रह, दुष्ट स्वभाव, दूसरे के कार्य में रत एवं धूर्तों की संगति रहती है ॥३१॥

राहु-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा-फल

स्त्रीसम्भोगमतिर्वाग्मी लोकसम्भावनावृतः।
अन्नमिच्छंस्तनुग्लानी राहोः सूक्ष्मगते बुधे ॥३२॥

राहु के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो स्त्री-भोग की इच्छा में वृद्धि, वाचाल, लोक-व्यवहार का ज्ञाता एवं अन्न की इच्छा से ग्लानि होती है ॥३२॥

राहु-प्रत्यन्तर में केतु का सूक्ष्मदशा फल

माधुर्यं मानहानिश्च बन्धनं चाप्रमाकरम्।
पारुष्यं जीवहानिश्च राहोः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥३३॥

राहु के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो मधुरता, मानहानि, बन्धन, कठोरता और धन तथा जीवहानि होती है ॥३३॥

राहु-प्रत्यन्तर में शुक्र का सूक्ष्मदशा-फल

बन्धनान्मुच्यते बद्धः स्थानमानार्थसञ्चयः।
कारणाद् द्रव्यलाभश्च राहोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥३४॥

राहु के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो कारागार से मुक्ति, स्थान-मान-अर्थ का संग्रह और विभिन्न कारणों से द्रव्य का लाभ होता है ॥३४॥

राहु-प्रत्यन्तर में सूर्य का सूक्ष्मदशा का फल

व्यक्तार्शो गुल्मरोगश्च क्रोधहानिस्तथैव च।
वाहनादिसुखं सर्वं राहोः सूक्ष्मगते रवौ ॥३५॥

राहु के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो देशान्तर में निवास, गुल्म रोग, क्रोध का नाश एवं वाहनादि का सुख होता है ॥३५॥

राहु-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा का सूक्ष्मदशा-फल

मणिरत्नधनावाप्तिर्विद्योपासनशीलवान्।
देवार्चनपरो भक्त्या राहोः सूक्ष्मगते विधौ ॥३६॥

राहु के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो मणि, रत्न आदि धन की प्राप्ति, विद्या की उपासना में तत्पर एवं देवपूजा में श्रद्धावान् होता है ॥३६॥

राहु-प्रत्यन्तर में मंगल का सूक्ष्मदशा-फल

निर्जितो जनविद्रावो जने क्रोधश्च बन्धनम्।
चौर्यशीलरतिर्नित्यं राहोः सूक्ष्मगते कुजे ॥३७॥

राहु के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्म दशा हो तो पराजित होकर पलायन, क्रोध, बन्धन और चोरी के कार्य में प्रवृत्ति होती है ॥३७॥

गुरु की दशा में, गुरु के अन्तर में
गुरु के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा का फल

शोकनाशो धनाधिक्यमग्निहोत्रं शिवार्चनम्।
वाहनं छत्रसंयुक्तं स्वीये सूक्ष्मगते गुरौ ॥३८॥

गुरु के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो शोक की निवृत्ति, धनाधिक्य, अग्निहोत्र, शिव-पूजक, छत्रादि सहित वाहन का लाभ होता है ॥३८॥

गुरु-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा का फल

व्रतभङ्गो मनस्तापो विदेशे वसुनाशनम् ।
विरोधो बन्धुवर्गैश्च गुरोः सूक्ष्मगते शनौ ।।३९।।

गुरु के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो स्वीकृत व्रत भङ्ग, मानसिक सन्ताप, विदेशगमन, धननाश और अपने बन्धु-बान्धवों से विरोध होता है ।।३९।।

गुरु-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा-फल

विद्याबुद्धिविवृद्धिश्च स-सम्मानं धनागमः ।
गृहे सर्वविधं सौख्यं गुरोः सूक्ष्मगते बुधे ।।४०।।

गुरु के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो विद्या-बुद्धि की वृद्धि, लोक में सम्मान, धनागम एवं घर में हर प्रकार के सुख उपलब्ध होते हैं ।।४०।।

गुरु-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा का फल

ज्ञानं विभवपाण्डित्ये शास्त्रश्रोता शिवार्चनम् ।
अग्निहोत्रं गुरोर्भक्तिर्गुरोः सूक्ष्मगते ध्वजे ।।४१।।

गुरु के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो ज्ञानी, ऐश्वर्य सम्पन्न, पाण्डित्यपूर्ण, शास्त्रश्रोता, शिवपूजक, अग्निहोत्री और गुरु में भक्ति रखने वाला होता है ।।४१।।

गुरु-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा का फल

रोगान्मुक्तिः सुखं भोगो धनधान्यसमागमः ।
पुत्रदारादिसौख्यं च गुरोः सूक्ष्मगते भृगौ ।।४२।।

गुरु के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो रोग से छुटकारा, सुखभोग, धन-धान्य का समागम और स्त्री-पुत्रादि को सुख होता है ।।४२।।

गुरु-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का फल

वातपित्तप्रकोपश्च श्लेष्मोद्रेकस्तु दारुणः ।
रसव्याधिकृतं शूलं गुरोः सूक्ष्मगते रवौ ।।४३।।

गुरु के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो वात-पित्त का प्रकोप एवं कफ और रस-विकार से शूल रोग होता है ।।४३।।

गुरु-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा का फल

छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्पदः ।
नेत्रकुक्षिगता पीडा गुरोः सूक्ष्मगते विधौ ।।४४।।

गुरु के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो छत्र, चामरयुत ऐश्वर्य, पुत्रोत्पत्ति एवं नेत्र तथा कुक्षि में पीड़ा होती है ।।४४।।

गुरु-प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्मदशा का फल

स्त्रीजनाच्च विषोत्पत्तिर्बन्धनं च रुजोभयम्।
देशान्तरगमो भ्रान्तिर्गुरोः सूक्ष्मगते कुजे ॥४५॥

गुरु के प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्म दशा हो तो स्त्री द्वारा विष का प्रयोग, बन्धन, रोगभय, दशान्तर में भ्रमण और बुद्धिभ्रम हो जाता है ॥४५॥

गुरु-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा का फल

व्याधिभिः परिभूतिः स्याच्चौरैरपहृतं धनम्।
सर्पवृश्चिकभीतिश्च गुरोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥४६॥

गुरु के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो रोगोत्पत्ति, चोर से धन का अपहरण एवं सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओं से भय होता है ॥४६॥

शनि की दशा में, शनि के अन्तर में शनि के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा का फल

धनहानिर्महाव्याधिः वात-पीडा-कुलक्षयः।
भिन्नाहारी महादुःखी निजसूक्ष्मगते शनौ ॥४७॥

शनि के प्रत्यन्तर में शनि की ही सूक्ष्म दशा हो तो धनहानि, महाव्याधि, वात से पीड़ा, कुलनाश, पृथक् भोजन और दुःख होता है ॥४७॥

शनि-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा का फल

वाणिज्यवृत्तेर्लाभश्च विद्याविभवमेव च।
स्त्रीलाभश्च महीप्राप्तिः शनेः सूक्ष्मगते बुधे ॥४८॥

शनि के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो व्यापार से लाभ, विद्या और ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं स्त्री तथा भूमि का लाभ होता है ॥४८॥

शनि-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा का फल

चौरोपद्रव-कुष्ठादिवृत्तिक्षय-विगुम्फनम्।
सर्वाङ्गपीडनं व्याधिः शनेः सूक्ष्मगते ध्वजे ॥४९॥

शनि के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो चोरों का उपद्रव, कुष्ठादि रोग का भय, जीविका का नाश, गुम्फन और समस्त अङ्गों में पीड़ा होती है ॥४९॥

शनि-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा का फल

ऐश्वर्यमायुधाभ्यासः पुत्रलाभोऽभिषेचनम्।
आरोग्यं धनकामौ च शनेः सूक्ष्मगते भृगौ ॥५०॥

शनि के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो ऐश्वर्यलाभ, शस्त्राभ्यास, पुत्रोत्पत्ति, अभिषेक, आरोग्य एवं धन और मनोकामना की सिद्धि होती है ॥५०॥

शनि-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का फल

राजतेजोऽधिकारत्वं स्वगृहे जायते कलिः ।
किञ्चित्पीडा स्वदेहोत्था शनेः सूक्ष्मगते रवौ ॥५१॥

शनि के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो राजा से वैरभाव, अपने घर में झगड़ा और अपने शरीर में भी कुछ पीड़ा होती है ॥५१॥

शनि-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा का फल

स्फीतबुद्धिर्महारम्भो मन्दतेजा बहुव्ययः ।
स्त्रीपुत्रैश्च समं सौख्यं शनेः सूक्ष्मगते विधौ ॥५२॥

शनि के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो बुद्धि में अधिक निर्मलता, बड़े कार्य का प्रारम्भ, छवि में न्यूनता, अधिक खर्च एवं स्त्री-पुत्र से सुख होता है ॥५२॥

शनि-प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा का फल

तेजोहानिर्महोद्वेगो वह्निमान्द्यं भ्रमः कलिः ।
वातपित्तकृता पीडा शनेः सूक्ष्मगते कुजे ॥५३॥

शनि के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्म दशा हो तो कान्ति की हानि, उद्वेग, अग्नि-मन्दता, भ्रम, कलह और वात-पित्तजन्य रोगों से पीड़ा होती है ॥५३॥

शनि-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा का फल

पितृमातृविनाशश्च मनोदुःखं गुरु-व्ययम् ।
सर्वत्र विफलत्वं च शनेः सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥५४॥

शनि के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो पितृ-मातृ-वियोग, मानसिक दुःख, अधिक व्यय एवं सभी जगहों से विफलता की प्राप्ति होती है ॥५४॥

शनि-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा का फल

सन्मुद्राभोगसम्मानं धनधान्यविवर्द्धनम् ।
छत्रचामरसम्प्राप्तिः शनेः सूक्ष्मगते गुरौ ॥५५॥

शनि के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो सुन्दर मुद्रा का भोग, सम्मान, धन धान्यों की वृद्धि एवं छत्र-चामरादि राजचिह्न की प्राप्ति होती है ॥५५॥

बुध-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा का फल

सौभाग्यं राजसम्मानं धनधान्यादिसम्पदः ।
सर्वेषां प्रियदर्शी च निजसूक्ष्मगते बुधे ॥५६॥

बुध के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो सौभाग्य, राजा से सम्मान, धन-धान्यादि सम्पत्ति का लाभ और सबसे प्रीति होती है ॥५६॥

बुध-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा का फल

बालग्रहोऽग्निभीस्तापः स्त्रीगदोद्भवदोषभाक् ।
कुमार्गी कुत्सिताशी च बौधे सूक्ष्मगते ध्वजे ॥५७॥

बुध के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो बालग्रह का दोष, अग्निभय, सन्ताप, स्त्री को रोग, कुमार्ग में प्रवेश और कुभोजन प्राप्त होता है ॥५७॥

बुध-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा का फल

वाहनं धनसम्पत्तिर्जलजान्नार्थसम्भवः ।
शुभकीर्तिर्महाभोगो बौधे सूक्ष्मगते भृगौ ॥५८॥

बुध के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो वाहन, धन, सम्पत्ति, जल से उत्पन्न अन्न और धन की प्राप्ति, सुन्दर यश और महाभोग की प्राप्ति होती है ॥५८॥

बुध-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का फल

ताडनं नृपवैषम्यं बुद्धिस्खलनरोगभाक्।
हानिर्जनापवादं च बौधे सूक्ष्मगते रवौ ॥५९॥

बुध के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो ताडन, राजा से विषमता, चञ्चल बुद्धि, रोग, धन-हानि और लोक में अपयश होता है ॥५९॥

बुध-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा का फल

सुभगः स्थिरबुद्धिश्च राजसम्मानसम्पदः ।
सुहृदां गुरुसञ्चारो बौधे सूक्ष्मगते विधौ ॥६०॥

बुध के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो सौभाग्य, स्थिर बुद्धि, राजसम्मान, सम्पत्ति, मित्र तथा गुरुजनों का समागम होता है ॥६०॥

बुध-प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा का फल

अग्निदाहो विषोत्पत्तिर्जडत्वं च दरिद्रता ।
विभ्रमश्च महोद्वेगो बौधे सूक्ष्मगते कुजे ॥६१॥

बुध के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा हो तो अग्नि से दाह और विषभय, मूर्खता, दरिद्रता, मतिभ्रम एवं उद्वेग होता है ॥६१॥

बुध-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा का फल

अग्निसर्पनृपाद् भीतिः कृच्छ्रादरिपराभवः ।
भूतावेशभ्रमाद् भ्रान्तिर्बौधे सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥६२॥

बुध के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो अग्नि, सर्प और राजा से भय, अधिक परिश्रम से शत्रु पराजित एवं भूतों से उपद्रव द्वारा मतिभ्रम होता है ॥६२॥

बुध-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा का फल

गृहोपकरणं भव्यं दानं भोगादिवैभवम्।
राजप्रसादसम्पत्तिर्बौधे सूक्ष्मगते गुरौ ॥६३॥

बुध के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो सुन्दर गृह का निर्माण, दान में तत्परता, भोग-ऐश्वर्य की वृद्धि एवं राजदरबार से धनलाभ होता है ॥६३॥

बुध-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा का फल

वाणिज्यवृत्तिलाभश्च विद्याविभवमेव च।
स्त्रीलाभश्च महाव्याप्तिर्बौधे सूक्ष्मगते शनौ ॥६४॥

बुध के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो व्यापार से लाभ, विद्या, ऐश्वर्य की वृद्धि, स्त्री-लाभ और व्यापकता होती है ॥६४॥

केतु-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा का फल

पुत्रदारादिजं दुःखं गात्रवैषम्यमेव च।
दारिद्र्याद् भिक्षुवृत्तिश्च नैजे सूक्ष्मगते ध्वजे ॥६५॥

केतु के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो पुत्र-स्त्री से दुःख, शरीर में विषमता एवं दरिद्रता के कारण भिक्षावृत्ति होती है ॥६५॥

केतु-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा का फल

रोगनाशोऽर्थलाभश्च गुरुविप्रानुवत्सलः।
सङ्गमः स्वजनैः सार्द्धं केतोः सूक्ष्मगते भृगौ ॥६६॥

केतु के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो रोग से निवृत्ति, धनलाभ, गुरु और ब्राह्मण में श्रद्धा एवं स्वजनों का सङ्गम होता है ॥६६॥

केतु-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का फल

युद्धं भूमिविनाशश्च विप्रवासः स्वदेशतः।
सुहृद्विपत्तिरार्तिश्च केतोः सूक्ष्मगते रवौ ॥६७॥

केतु के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो कलह, भूमि की हानि, देशान्तर में निवास, मित्रों को भी विपत्ति और शत्रुभय होता है ॥६७॥

केतु-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा का फल

दासीदाससमृद्धिश्च युद्धे लब्धिर्जयस्तथा।
ललिता कीर्तिरुत्पन्ना केतोः सूक्ष्मगते विधौ ॥६८॥

केतु के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो दास-दासियों की वृद्धि, युद्ध में विजय और लोक में सुन्दर यश प्राप्त होता है ॥६८॥

केतु-प्रत्यन्तर में भौम की सूक्ष्मदशा का फल

आसने भयमश्वादेश्चौरदुष्टादिपीडनम् ।
गुल्मपीडा शिरोरोगः केतोः सूक्ष्मगते कुजे ॥६९॥

केतु के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्म दशा हो तो अश्व आदि सवारियों से गिरने का भय, चोरों और दुष्टों से पीड़ा एवं गुल्म तथा मस्तकरोग होता है ॥६९॥

केतु-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा का फल

विनाशः स्त्रीगुरूणां च दुष्टस्त्रीसङ्गमाल्लघुः ।
वमनं रुधिरं पित्तं केतोः सूक्ष्मगतेऽप्यगौ ॥७०॥

केतु के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो स्त्री तथा गुरु आदि मान्य जनों का विनाश, दुष्टा स्त्री के सङ्ग के कारण लघुता, वमन, रक्तविकार और पित्तसम्बन्धी रोग होता है ॥७०॥

केतु-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा का फल

रिपोर्विरोधः सम्पत्तिः सहसा राजवैभवम् ।
पशुक्षेत्रविनाशार्तिः केतोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥७१॥

केतु के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो शत्रु से विरोध, अकस्मात् राजवैभव की प्राप्ति एवं पशु और क्षेत्र की हानि के कारण दुःख होता है ॥७१॥

केतु-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा का फल

मृषा पीडा भवेत् क्षुद्रसुखोत्पत्तिश्च लङ्घनम् ।
स्त्रीविरोधः सत्यहानिः केतोः सूक्ष्मगते शनौ ॥७२॥

केतु के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो मिथ्या पीड़ा, स्वल्प सुख, उपवास, स्त्री से विरोध और सत्यता की हानि होती है ॥७२॥

केतु-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा का फल

नानाविधजनाप्तिश्च विप्रयोगोऽरिपीडनम् ।
अर्थसम्पत्समृद्धिश्च केतोः सूक्ष्मगते बुधे ॥७३॥

केतु के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा हो तो विभिन्न प्रकार को लोगों से संयोग एवं वियोग, शत्रुओं को पीड़ा तथा धन-सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥७३॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्मदशा का फल

शत्रुहानिर्महत्सौख्यं शङ्करालयनिर्मितिः ।
तडागकूपनिर्माणं निजसूक्ष्मगते भृगौ ॥७४॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में शुक्र की सूक्ष्म दशा हो तो विपक्षियों का नाश, महान् सुख एवं शिवालय या देवमन्दिर तथा तडाग-कूपादि जलाशय का निर्माण होता है ॥७४॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्मदशा का फल

उरस्तापो भ्रमश्चैव गतागतविचेष्टितम्।
क्वचिल्लाभः क्वचिद्धानिर्भृगोः सूक्ष्मगते रवौ ॥७५॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में सूर्य की सूक्ष्म दशा हो तो हृदय में सन्ताप, मतिभ्रम, इधर-उधर घूमना, कभी लाभ एवं कभी हानि होती है ॥७५॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्मदशा का फल

आरोग्यं धनसम्पत्तिः कार्यलाभो गतागतैः।
बुद्धिविद्याविवृद्धिः स्याद् भृगोः सूक्ष्मगते विधौ ॥७६॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा हो तो नीरोगता, धन-सम्पत्ति की वृद्धि, गमनागमन से कार्यसिद्धि एवं बुद्धि और विद्या की वृद्धि होती है ॥७६॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्मदशा का फल

जडत्वं रिपुवैषम्यं देशभ्रंशो महद्भयम्।
व्याधिदुःखसमुत्पत्तिर्भृगोः सूक्ष्मगते कुजे ॥७७॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में मंगल की सूक्ष्म दशा हो तो मूर्खता, शत्रु से विषमता, देशत्याग, भय, रोग और दुःख होता है ॥७७॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्मदशा का फल

राज्याग्निसर्पजा भीतिर्बन्धुनाशो गुरुव्यथा।
स्थानच्युतिर्महाभीतिर्भृगोः सूक्ष्मगतेऽप्यहौ ॥७८॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में राहु की सूक्ष्म दशा हो तो राजा, अग्नि और सर्प से भय, बन्धु-नाश, महारोग, स्थानत्याग और महाभय होता है ॥७८॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्मदशा का फल

सर्वत्र कार्यलाभश्च क्षेत्रार्थविभवोन्नतिः।
वणिग्वृत्तेर्महालब्धिर्भृगोः सूक्ष्मगते गुरौ ॥७९॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में गुरु की सूक्ष्म दशा हो तो सभी जगह से लाभ, खेती और धन-ऐश्वर्य की उन्नति एवं व्यापार से अधिक लाभ होता है ॥७९॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्मदशा का फल

शत्रुपीडा महद्दुःखं चतुष्पादविनाशनम्।
स्वगोत्रगुरुहानिः स्याद् भृगोः सूक्ष्मगते शनौ ॥८०॥

शुक्र के प्रत्यन्तर में शनि की सूक्ष्म दशा हो तो शत्रु से पीड़ा, महादुःख, पशुओं की हानि एवं अपने वंश और गुरुजनों की हानि सम्भव होती है ॥८०॥

शुक्र-प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्मदशा का फल

बान्धवादिषु सम्पत्तिर्व्यवहारो धनोन्नतिः ।
पुत्रदारादितः सौख्यं भृगोः सूक्ष्मगते बुधे ।।८१।।

शुक्र के प्रत्यन्तर में बुध की सूक्ष्म दशा हो तो अपने बन्धु-बान्धवों में धन की वृद्धि, व्यवहार-कुशलता के कारण धनलाभ एवं पुत्र और स्त्री से सुख होता है ।।८१।।

शुक्र-प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्मदशा का फल

अग्निरोगो महापीडा मुखनेत्रशिरोव्यथा ।
सञ्चितार्थात्मनः पीडा भृगोः सूक्ष्मगते ध्वजे ।।८२।।

शुक्र के प्रत्यन्तर में केतु की सूक्ष्म दशा हो तो अग्निभय, महारोग से पीड़ा, मुख़, नेत्र और मस्तक में पीड़ा, सञ्चित धन का नाश और मानसिक सन्ताप होता है ।।८२।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सूक्ष्मान्तर्दशाफलाध्यायः ।।६४।।

अथ प्राणदशाफलाध्यायः ॥६५॥

प्राणदशा-साधनप्रकार

पृथक् खगदशावर्षैर्हन्यात् सूक्ष्मदशामितिम् ।
खसूर्यैर्विभजेल्लब्धिर्ज्ञेया प्राणदशामितिः ॥१॥

सूक्ष्म दशामान को प्रत्येक ग्रहों के दशावर्षसंख्या से पृथक्-पृथक् गुणा कर गुणनफल में दशावर्ष योग (१२०) से भाग देने पर घट्यादि प्राणदशा होती है ॥१॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की सूक्ष्म दशा १६ घड़ी, १२ पल है, इसको (१६ × ६० + १२ = ९७२) पल बनाने से ९७२ हुए, इसको सूर्यवर्षसंख्या ६ से गुणा कर प्राप्त ५८३२ में १२० का भाग देने पर ० घटी, ४८ पल एवं ३६ विपल हुआ, यही सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हुई। इस प्रकार ९७२ पलात्मक सूर्य की सूक्ष्म दशा को प्रत्येक ग्रहों के दशावर्ष से गुणा कर १२० का भाग देने से सभी ग्रहों के सूर्य की सूक्ष्म दशा में प्राणदशा हो जाती है।

घटी पल विपल

९७२×१०/१२० = १। २१। ० = सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा

९७२×७/१२० = ०। ५६। ४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा

९७२×१८/१२० = २। २५। ४८ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा

९७२×१६/१२० = २। ९। ३६ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा

९७२×१९/१२० = २। ३३। ५४ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा

९७२×१७/१२० = २। १७। ४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा

९७२×७/१२० = ०। ५६। ४२ = सूर्य की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा

९७२×२०/१२० = २। ४२। ० = सूर्य की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा

उक्त प्रकारानुसार प्रत्येक ग्रह की सूक्ष्म दशा के द्वारा प्राणदशा का साधन करना चाहिए। यहाँ विस्तार-भय से सबका साधन नहीं किया गया है।

सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा सारणी

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	ग्रह
०	१	०	२	२	२	२	०	२	घटी
४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२	पल
३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०	विपल

सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

पौंश्चल्यं विषजा बाधा चौराग्निनृपजं भयम्।
कष्टं सूक्ष्मदशाकाले रवौ प्राणदशां गते॥२॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो गुदामैथुन में प्रवृत्ति, विष से बाधा, चौर, अग्नि और राजभय एवं शारीरिक कष्ट होता है॥२॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

सुखं भोजनसम्पत्तिः संस्कारो नृपवैभवम्।
उदारादिकृपाभिश्च रवेः प्राणगते विधौ॥३॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो सुख, भोजन-सम्पत्ति की प्राप्ति, बुद्धि में परिवर्तन, राजा से ऐश्वर्य की प्राप्ति एवं सन्त-सज्जन-उदारादि पुरुषों की कृपा रहती है॥३॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

भूपोपद्रवमन्यार्थे द्रव्यनाशो महद्भयम्।
महत्यपचयप्राप्ती रवेः प्राणगते कुजे॥४॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो अन्यों के कारण राजा से उपद्रव, द्रव्यनाश, भय और महान् हानि होती है॥४॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

अन्नोद्भवा महापीडा विषोत्पत्तिर्विशेषतः।
अर्थाग्निराजभिः क्लेशो रवेः प्राणगतेऽप्यहौ॥५॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो अन्न से कष्ट, विशेषकर विषभय, अग्नि तथा राजा के द्वारा धननाश और क्लेश होता है॥५॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

नानाविद्यार्थसम्पत्तिः कार्यलाभो गतागतैः।
नृपविप्राश्रमे सूक्ष्मे रवेः प्राणगते गुरौ॥६॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो विभिन्न विद्या, धन, सम्पत्ति का लाभ, गमनागमन से कार्य सिद्धि और राजा तथा ब्राह्मण से सम्बन्ध रहता है॥६॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

बन्धनं प्राणनाशश्च चित्तोद्वेगस्तथैव च।
बहुबाधा महाहानी रवेः प्राणगते शनौ॥७॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो बन्धन, प्राणनाश, मन में उद्वेग, कार्य में विघ्न और महान् हानि होती है॥७॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

राजान्नभोगः सततं राजलाञ्छनतत्पदम् ।
आत्मा सन्तर्पयेदेवं रवेः प्राणगते बुधे ॥८॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो निरन्तर राजान्न-भोजन, राजचिह्न (छत्र-चामर) की प्राप्ति या राजपद की प्राप्ति से आत्मसन्तोष होता है ॥८॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

अन्योऽन्यं कलहश्चैव वसुहानिः पराजयः ।
गुरुस्त्रीबन्धुवर्गैश्च सूर्यप्राणगते ध्वजे ॥९॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा रहने पर पूज्य जनों और स्त्री, स्वबन्धु वर्गों के साथ परस्पर कलह से धन की हानि होती है ॥९॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

राजपूजा धनाधिक्यं स्त्रीपुत्रादिभवं सुखम् ।
अन्नपानादिभोगादि सूर्यप्राणगते भृगौ ॥१०॥

सूर्य की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो राजा से पूजित, धन की वृद्धि, स्त्री-पुत्रादि से सुख और अन्न-पानादि का भोग होता है ॥१०॥

चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

स्त्रीपुत्रादिसुखं द्रव्यं लभते नूतनाम्बरम् ।
योगसिद्धिं समाधिश्च निजप्राणगते विधौ ॥११॥

चन्द्रमा की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो स्त्री-पुत्रादि से सुख, धन और नूतन वस्त्र का लाभ एवं योग और समाधि की सिद्धि होती है ॥११॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

क्षयं कुष्ठं बन्धुनाशं रक्तस्रावान्महद्भयम् ।
भूतावेशादि जायेत विधोः प्राणगते कुजे ॥१२॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो क्षय, कुष्ठरोग, बन्धुओं का विनाश, रक्तस्राव से भय एवं भूत और पिशाचादि का भय रहता है ॥१२॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

सर्पभीतिर्विशेषेण भूतोपद्रववान् सदा ।
दृष्टिक्षोभो मतिर्भ्रंशो विधोः प्राणगतेऽप्यगौ ॥१३॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो विशेषकर सर्प का भय, सदा भूतों का उपद्रव, आँख में रोग और मतिभ्रंश होता है ॥१३॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

धर्मवृद्धिः क्षमाप्राप्तिर्देवब्राह्मणपूजनम् ।
सौभाग्यं प्रियदृष्टिश्च चन्द्रप्राणगते गुरौ ॥१४॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो धार्मिक कृत्यों में वृद्धि, क्षमाप्राप्ति, देव-ब्राह्मणों का पूजन, भाग्योदय और अपने प्रियजनों से भेंट होती है ॥१४॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

सहसा देहपतनं शत्रूपद्रववेदना ।
अन्धत्वं च धनप्राप्तिश्चन्द्रप्राणगते शनौ ॥१५॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो देह में अकस्मात् कष्ट, शत्रुओं के उपद्रव से वेदना, दृष्टि में कमी और धन की प्राप्ति होती है ॥१५॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

चामरच्छत्रसम्प्राप्ती राज्यलाभो नृपात्ततः ।
समत्वं सर्वभूतेषु चन्द्रप्राणगते बुधे ॥१६॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो राजचिह्न (छत्र-चामर) की प्राप्ति या राजा से राज्य लाभ और समस्त जीवों में समता की बुद्धि होती है ॥१६॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

शस्त्राग्निरिपुजा पीडा विषाग्निः कुक्षिरोगिता ।
पुत्रदारवियोगश्च चन्द्रप्राणगते ध्वजे ॥१७॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो शस्त्र, अग्नि और शत्रु से पीड़ा, विषभय, पेट में रोग एवं स्त्री-पुत्रादि का वियोग होता है ॥१७॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

पुत्रमित्रकलत्राप्तिर्विदेशाच्च धनागमः ।
सुखसम्पत्तिरर्थश्च चन्द्रप्राणगते भृगौ ॥१८॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो पुत्र, मित्र, स्त्री आदि की प्राप्ति, विदेश से धनागम एवं सभी प्रकार के सुख-सम्पत्ति का लाभ होता है ॥१८॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

क्रूरता कोपवृद्धिश्च प्राणहानिर्मनोव्यथा ।
देशत्यागो महाभीतिश्चन्द्रप्राणगते रवौ ॥१९॥

चन्द्र की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो क्रूरता, कोप की बढ़ोत्तरी, प्राणनाश, मानसिक व्यथा, देशत्याग और महाभय होता है ॥१९॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

कलहो रिपुभिर्बन्धः रक्तपित्तादिरोगभीः ।
निजसूक्ष्मदशामध्ये कुजे प्राणगते फलम् ॥२०॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो शत्रु से झगड़ा, बन्धन एवं रक्त-पित्त-सम्बन्धी रोगभय होता है ॥२०॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

विच्युतः सुतदारैश्च बन्धूपद्रवपीडितः ।
प्राणत्यागी विषेणैव भौमप्राणगतेऽप्यहौ ॥२१॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो स्त्री-पुत्रों से विछोह, अपने बन्धुओं के उपद्रव से पीड़ा एवं विष से प्राणत्याग का भय होता है ॥२१॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

देवार्चनपरः श्रीमान्मन्त्रानुष्ठानतत्परः ।
पुत्रपौत्रसुखावाप्तिर्भौमप्राणगते गुरौ ॥२२॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो देवपूजन में तत्पर, पूज्य मन्त्रों के अनुष्ठान में तत्परता एवं पुत्र-पौत्रों से सुख की प्राप्ति होती है ॥२२॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

अग्निबाधा भवेन्मृत्युरर्थनाशः पदच्युतिः ।
बन्धुभिर्बन्धुतावाप्तिर्भौमप्राणगते शनौ ॥२३॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो अग्निभय, मरण, धननाश, स्थान-त्याग, परन्तु बन्धुओं में भ्रातृत्व की वृद्धि होती है ॥२३॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

दिव्याम्बरसमुत्पत्तिर्दिव्याभरणभूषितः ।
दिव्याङ्गनायाः सम्प्राप्तिर्भौमप्राणगते बुधे ॥२४॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो दिव्य वस्त्रों की प्राप्ति, सुन्दर आभूषण से भूषित और सुन्दर स्त्री का लाभ होता है ॥२४॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

पतनोत्पातपीडा च नेत्रक्षोभो महद्भयम् ।
भुजङ्गाद् द्रव्यहानिश्च भौमप्राणगते ध्वजे ॥२५॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो गिरने का भय, उत्पात, नेत्ररोग, सर्प से भय एवं धन का नाश होता है ॥२५॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

धनधान्यादिसम्पत्तिर्लोकपूजा सुखागमा।
नानाभोगैर्भवेद् भोगी भौमप्राणगते भृगौ ॥२६॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो धन-धान्य-सम्पत्ति की वृद्धि, लोक में सम्मान, सुख एवं अनेक प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं ॥२६॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

ज्वरोन्मादः क्षयोऽर्थस्य राजविस्नेहसम्भवः।
दीर्घरोगी दरिद्रः स्याद् भौमप्राणगते रवौ ॥२७॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो ज्वर, उन्माद, धननाश, राजा से सम्बन्ध-विच्छेद, दीर्घ रोग एवं दरिद्रता होती है ॥२७॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

भोजनादिसुखप्राप्तिर्वस्त्राभरणजं सुखम्।
शीतोष्णव्याधिपीडा च भौमप्राणगते विधौ ॥२८॥

मंगल की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो भोजन, वस्त्र, आभरणादिजन्य सुख एवं शीत तथा उष्णसम्बन्धी व्याधि से पीड़ा होती है ॥२८॥

राहु की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

अन्नाशने विरक्तश्च विषभीतिस्तथैव च।
साहसाद्धननाशश्च राहौ प्राणगते भवेत् ॥२९॥

राहु की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो अन्न से निर्मित भोजन में अरुचि, विष-भय एवं अकस्मात् धननाश होता है ॥२९॥

राहु की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

अङ्गसौख्यं विनिर्भीतिर्वाहनादेश्च सङ्गता।
नीचैः कलहसम्प्राप्ती राहोः प्राणगते गुरौ ॥३०॥

राहु की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो शारीरिक सुख, निर्भयता, वाहनों का लाभ और नीच जनों से कलह होता है ॥३०॥

राहु की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

गृहदाहः शरीरे रुङ् नीचैरपहृतं धनम्।
तथा बन्धनसम्प्राप्ती राहोः प्राणगते शनौ ॥३१॥

राहु की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो गृहदाह, शरीर में रोग, नीचों के द्वारा धन का अपहरण और बन्धन होता है ॥३१॥

राहु की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

गुरूपदेशविभवो गुरुसत्कारवर्द्धनम् ।
गुणवाञ्छीलवांश्चापि राहोः प्राणगते बुधे ॥३२॥

राहु की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो गुरु के ज्ञान से युक्त, उनकी कृपा से धन की वृद्धि एवं गुणी और शीलवान होता है ॥३२॥

राहु की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

स्त्रीपुत्रादिविरोधश्च गृहान्निष्क्रमणादपि ।
साहसात्कार्यहानिश्च राहोः प्राणगते ध्वजे ॥३३॥

राहु की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो स्त्री-पुत्रादि से विरोध, घर से निष्क्रमण एवं साहस से कार्यनाश होता है ॥३३॥

राहु की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

छत्रवाहनसम्पत्तिः सर्वार्थफलसञ्चयः ।
शिवार्चनगृहारम्भो राहोः प्राणगते भृगौ ॥३४॥

राहु की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो छत्र, वाहन, सम्पत्ति की प्राप्ति, सभी कार्यों का फलसंग्रह, शिवपूजन और गृहारम्भ होता है ॥३४॥

राहु की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

अर्शादिरोगभीतिश्च राज्योपद्रवसम्भवः ।
चतुष्पादादिहानिश्च राहोः प्राणगते रवौ ॥३५॥

राहु की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो बवासीर आदि रोग का भय, राजा के उपद्रव की सम्भावना एवं पशुओं की हानि होती है ॥३५॥

राहु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

सौमनस्यं च सद्बुद्धिः सत्कारो गुरुदर्शनम् ।
पापाद् भीतिर्मनः सौख्यं राहोः प्राणगते विधौ ॥३६॥

राहु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो मन और बुद्धि का विकास, लोक में आदर, पूज्य जनों का आगमन, पाप से भय और मानसिक सुख की अनुभूति होती है ॥३६॥

राहु की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

चाण्डालाग्निवशाद् भीतिः स्वपदच्युतिरापदः ।
मलिनः श्वादिवृत्तिश्च राहोः प्राणगते कुजे ॥३७॥

राहु की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो चाण्डाल और अग्नि से भय, पदत्याग, विपत्ति, मलिनता और नीच कार्य होता है ॥३७॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

हर्षागमो धनाधिक्यमग्निहोत्रं शिवार्चनम्।
वाहनं छत्रसंयुक्तं निजप्राणगते गुरौ ॥३८॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा रहने पर हर्ष, धन की वृद्धि, अग्निहोत्र, शिवपूजन एवं वाहन और छत्र आदि का लाभ होता है ॥३८॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

व्रतहानिर्विषादश्च विदेशे धननाशनम्।
विरोधो बन्धुवर्गैश्च गुरोः प्राणगते शनौ ॥३९॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो व्रत में बाधा, विषाद, विदेशगमन, धननाश एवं अपने बन्धुवर्गों से विरोध होता है ॥३९॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

विद्याबुद्धिविवृद्धिश्च लोके पूजा धनागमः।
स्त्रीपुत्रादिसुखप्राप्तिर्गुरोः प्राणगते बुधे ॥४०॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि, लोक में आदर, धनागम एवं स्त्री-पुत्रादि से सुख प्राप्त होता है ॥४०॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

ज्ञानं विभवपाण्डित्यं शास्त्रज्ञानं शिवार्चनम्।
अग्निहोत्रं गुरोर्भक्तिर्गुरोः प्राणगते ध्वजे ॥४१॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो ज्ञान, ऐश्वर्य, पाण्डित्य, शास्त्रज्ञान, शिवपूजन, अग्निहोत्र और गुरु में निष्ठा रहती है ॥४१॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

रोगान्मुक्तिः सुखं भोगो धनधान्यसमागमः।
पुत्रदारादिजं सौख्यं गुरोः प्राणगते भृगौ ॥४२॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो रोग से छुटकारा, सुखभोग, धन-धान्य का आगमन एवं स्त्री-पुत्र से सुख होता है ॥४२॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

वातपित्तप्रकोपं च श्लेष्मोद्रेकं तु दारुणम्।
रसव्याधिकृतं शूलं गुरोः प्राणगते रवौ ॥४३॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो वात, पित्त और कफसम्बन्धी रोग का भय एवं रस-व्याधि के कारण शूलरोग होता है ॥४३॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

छत्रचामरसंयुक्तं वैभवं पुत्रसम्पदः ।
नेत्रकुक्षिगता पीडा गुरोः प्राणगते विधौ ॥४४॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो छत्र-चामरयुत ऐश्वर्य की प्राप्ति, पुत्रलाभ एवं नेत्र तथा पेट में पीड़ा होती है ॥४४॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

स्त्रीजनाच्च विषोत्पत्तिर्बन्धनं चातिनिग्रहः ।
देशान्तरगमो भ्रान्तिर्गुरोः प्राणगते कुजे ॥४५॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो स्त्री से विषभय, कारागार में प्रवेश, देशान्तर में गमन और मतिभ्रंश होता है ॥४५॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

व्याधिभिः परिभूतः स्याच्चौरैरपहृतं धनम् ।
सर्पवृश्चिकभीतिश्च गुरोः प्राणगतेऽप्यहौ ॥४६॥

गुरु की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो रोग से आच्छादित, चोर द्वारा धन का अपहरण एवं सर्प, बिच्छू आदि का भय होता है ॥४६॥

शनि की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

ज्वरेण ज्वलिता कान्तिः कुष्ठरोगोदरादिरुक् ।
जलाग्निकृतमृत्युः स्यान्निजप्राणगते शनौ ॥४७॥

शनि की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो ज्वर से कान्ति का नाश, कुष्ठ तथा उदर रोग एवं जल और अग्नि से मरण सम्भव रहता है ॥४७॥

शनि की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

धनं धान्यं च माङ्गल्यं व्यवहाराभिपूजनम् ।
देवब्राह्मणभक्तिश्च शनेः प्राणगते बुधे ॥४८॥

शनि की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो धन-धान्य एवं मंगल की प्राप्ति, व्यवहार में कुशलता, लाभ तथा देवता और ब्राह्मणों में भक्ति होती है ॥४८॥

शनि की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

मृत्युवेदनदुःखं च भूतोपद्रवसम्भवः ।
परदाराभिभूतत्वं शनेः प्राणगते ध्वजे ॥४९॥

शनि की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो मरणसदृश कष्ट, दुःख, भूतों का उपद्रव एवं परस्त्री से अपमान होता है ॥४९॥

शनि की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

पुत्रार्थविभवैः सौख्यं क्षितिपालादितः सुखम् ।
अग्निहोत्रं विवाहश्च शनेः प्राणगते भृगौ ॥५०॥

शनि की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो पुत्र एवं अर्थ का लाभ, राजा से ऐश्वर्यलाभ, अग्निहोत्र, विवाहादि मांगलिक कार्य होता है ॥५०॥

शनि की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

अक्षिपीडा शिरोव्याधिः सर्पशत्रुभयं भवेत् ।
अर्थहानिर्महाक्लेशः शनेः प्राणगते रवौ ॥५१॥

शनि की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो आँख और मस्तक में रोग, सर्प एवं शत्रु का भय तथा धननाश और क्लेश होता है ॥५१॥

शनि की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

आरोग्यं पुत्रलाभश्च शान्तिपौष्टिकवर्धनम् ।
देवब्राह्मणभक्तिश्च शनेः प्राणगते विधौ ॥५२॥

शनि की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो आरोग्य एवं पुत्र की प्राप्ति, शान्ति तथा पौष्टिक कार्य सम्पन्न एवं देवता और ब्राह्मणों में भक्ति होती है ॥५२॥

शनि की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

गुल्मरोगः शत्रुभीतिर्मृगया प्राणनाशनम् ।
सर्पाग्निविषतो भीतिः शनेः प्राणगते कुजे ॥५३॥

शनि की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो गुल्म रोग, शत्रु से भय, मृग के कारण मरण-भय एवं सर्प, अग्नि और विष का भय रहता है ॥५३॥

शनि की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

देशत्यागो नृपाद् भीतिर्मोहनं विषभक्षणम् ।
वातपित्तकृता पीडा शनेः प्राणगतेऽप्यहौ ॥५४॥

शनि की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो देशत्याग, राजा से भय, मोहन, विषपान एवं वात-पित्तसम्बन्धी रोग से पीड़ा होती है ॥५४॥

शनि की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

सेनापत्यं भूमिलाभः सङ्गमः स्वजनैः सह ।
गौरवं नृपसम्मानं शनेः प्राणगते गुरौ ॥५५॥

शनि की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो सेनानायक, भूमिलाभ, अपने बन्धुओं का संगम, गौरव और राजा से सम्मान प्राप्त होता है ॥५५॥

बुध की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

आरोग्यं सुखसम्पत्तिर्धर्मकर्मादिसाधनम्।
समत्वं सर्वभूतेषु निजप्राणगते बुधे ॥५६॥

बुध की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो नीरोग, सुख-सम्पत्ति-धर्म और कर्म साधन एवं सभी जीवों में समभाव रहता है ॥५६॥

बुध की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

वह्नितस्करतो भीतिः परमाधिर्विषोद्भवः।
देहान्तकरणं दुःखं बुधप्राणगते ध्वजे ॥५७॥

बुध की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो अग्नि, चोर और परम विष का भय एवं मरणसदृश दुःख होता है ॥५७॥

बुध की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

प्रभुत्वं धनसम्पत्तिः कीर्तिर्धर्मः शिवार्चनम्।
पुत्रदारादिकं सौख्यं बुधप्राणगते भृगौ ॥५८॥

बुध की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो स्वामित्व, धन-सम्पत्ति और यश, धर्म की प्राप्ति, शिवपूजक, पुत्र और स्त्री से सुख होता है ॥५८॥

बुध की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

अन्तर्दाहो ज्वरोन्मादौ बान्धवानां रतिः स्त्रियाः।
प्राप्यते स्तेयसम्पत्तिर्बुधप्राणगते रवौ ॥५९॥

बुध की सूक्ष्म दशा में रवि की प्राणदशा हो तो आन्तरिक सन्ताप, ज्वर, उन्माद, बन्धु और स्त्री में प्रेम और अपहरण किया गया धन प्राप्त होता है ॥५९॥

बुध की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

स्त्रीलाभश्चार्थसम्पत्तिः कन्यालाभो धनागमः।
लभते सर्वतः सौख्यं बुधप्राणगते विधौ ॥६०॥

बुध की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो स्त्री और धनलाभ, कन्याप्राप्ति, धनागम एवं सभी जगहों से सुख की प्राप्ति होती है ॥६०॥

बुध की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

पतितः कुक्षिरोगी च दन्तनेत्रादिजा व्यथा।
अर्शांसि प्राणसन्देहो बुधप्राणगते कुजे ॥६१॥

बुध की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो पतित कार्य में प्रवृत्ति, उदर, दन्त और नेत्रसम्बन्धी रोग एवं बवासीर और मरण का भय होता है ॥६१॥

बुध की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

वस्त्राभरणसम्पत्तिर्वियोगो विप्रवैरिता ।
सन्निपातोद्भवं दुःखं बुधप्राणगतेऽप्यहौ ॥६२॥

बुध की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो वस्त्र, आभरण और सम्पत्ति से वियोग, ब्राह्मणों से वैरभाव और सन्निपात रोग होता है ॥६२॥

बुध की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

गुरुत्वं धनसम्पत्तिर्विद्या सद्गुणसंग्रहः ।
व्यवसायेन सल्लाभो बुधप्राणगते गुरौ ॥६३॥

बुध की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो गौरव, धन-सम्पत्ति और विद्या का लाभ, सद्‌गुणों की वृद्धि एवं स्व-व्यवसाय में उचित लाभ होता है ॥६३॥

बुध की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

चौर्येण निधनप्राप्तिर्विधनत्वं दरिद्रता ।
याचकत्वं विशेषेण बुधप्राणगते शनौ ॥६४॥

बुध की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो चोर के द्वारा मरण की सम्भावना, निर्धनता, दरिद्रता और भिक्षावृत्ति होती है ॥६४॥

केतु की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

अश्वपातेन घातश्च शत्रुतः कलहागमः ।
निर्विचारवधोत्पत्तिर्निजप्राणगते ध्वजे ॥६५॥

केतु की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो घोड़े से गिरने से घात, शत्रु से कलह एवं विवेकशून्यता से वधजन्य पाप होता है ॥६५॥

केतु की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

क्षेत्रलाभो वैरिनाशो हयलाभो मनःसुखम् ।
पशुक्षेत्रधनाप्तिश्च केतोः प्राणगते भृगौ ॥६६॥

केतु की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो क्षेत्र एवं अश्व का लाभ, शत्रुनाश, मानसिक सुख, धन की प्राप्ति एवं खेती और पशुओं की वृद्धि होती है ॥६६॥

केतु की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

स्तेयाग्निरिपुभीतिश्च धनहानिर्मनोव्यथा ।
प्राणान्तकरणं कष्टं केतोः प्राणगते रवौ ॥६७॥

केतु की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो चौर, अग्नि और शत्रुभय, धननाश, मानसिक रोग एवं मरणतुल्य कष्ट होता है ॥६७॥

केतु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

देवद्विजगुरोः पूजा दीर्घयात्रा धनं सुखम्।
कर्णे वा लोचने रोगः केतोः प्राणगते विधौ ॥६८॥

केतु की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो देव और ब्राह्मणों में भक्ति, लम्बी यात्रा, धन का सुख एवं कान और नेत्र में रोग होता है ॥६८॥

केतु की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

पित्तरोगो नसावृद्धिर्विभ्रमः सन्निपातजः।
स्वबन्धुजनविद्वेषः केतोः प्राणगते कुजे ॥६९॥

केतु की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो पित्तरोग, नसावृद्धि, बुद्धि में भ्रम, सन्निपात रोग और अपने बन्धुओं से द्वेष होता है ॥६९॥

केतु की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

विरोधः स्त्रीसुताद्यैश्च गृहान्निष्क्रमणं भवेत्।
स्वसाहसात्कार्यहानिः केतोः प्राणगतेऽप्यहौ ॥७०॥

केतु की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो स्त्री-पुत्रों से विरोध, घर का त्याग एवं अपने साहस से कार्य की हानि होती है ॥७०॥

केतु की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

शस्त्रव्रणैर्महारोगो हृत्पीडादिसमुद्भवः।
सुतदारवियोगश्च केतोः प्राणगते गुरौ ॥७१॥

केतु की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो शस्त्र से आघात, व्रण, हृदयरोग और स्त्री-पुत्रों से वियोग होता है ॥७१॥

केतु की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

मतिविभ्रमतीक्ष्णत्वं क्रूरकर्मरतिः सदा।
व्यसनाद् बन्धनं दुःखं केतोः प्राणगते शनौ ॥७२॥

केतु की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो मतिभ्रम, क्रूर कर्म में प्रवृत्ति, कठिन व्यसन से बन्धन और दुःख होता है ॥७२॥

केतु की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

कुसुमं शयनं भूषा लेपनं भोजनादिकम्।
सौख्यं सर्वाङ्गभोग्यं च केतोः प्राणगते बुधे ॥७३॥

केतु की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो पुष्प, शय्या, आभूषण, लेपन, सुन्दर भोजन और सुख प्राप्त होता है ॥७३॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में शुक्र का प्राणदशाफल

ज्ञानमीश्वरभक्तिश्च सन्तोषश्च धनागमः ।
पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च निजप्राणगते भृगौ ॥७४॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में शुक्र की प्राणदशा हो तो ज्ञान, ईश्वर में भक्ति, सन्तोष, धन का लाभ एवं पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है ॥७४॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में सूर्य का प्राणदशाफल

लोकप्रकाशकीर्तिश्च सुतसौख्यविवर्जितः ।
उष्णादिरोगजं दुःखं शुक्रप्राणगते रवौ ॥७५॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में सूर्य की प्राणदशा हो तो लोक में प्रसिद्धि और सुयश, पुत्रसुख से विहीन एवं उष्ण रोगादि से दुःख होता है ॥७५॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा का प्राणदशाफल

देवार्चने कर्मरतिर्मन्त्रतोषणतत्परः ।
धनसौभाग्यसम्पत्तिः शुक्रप्राणगते विधौ ॥७६॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में चन्द्रमा की प्राणदशा हो तो देवपूजक, कार्यकुशलता, मन्त्र से सन्तोष एवं धन तथा भाग्योदय होता है ॥७६॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में मंगल का प्राणदशाफल

ज्वरो मसूरिका-स्फोट-कण्डू-चिपिटकादिकाः ।
देव-ब्राह्मणपूजा च शुक्रप्राणगते कुजे ॥७७॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में मंगल की प्राणदशा हो तो ज्वर, घाव, दाद, खुजली, रोग और देव तथा ब्राह्मण का पूजक होता है ॥७७॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में राहु का प्राणदशाफल

नित्यं शत्रुकृता पीडा नेत्रकुक्षिरुजादयः ।
विरोधः सुहृदां पीडा शुक्रप्राणगतेऽप्यहौ ॥७८॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में राहु की प्राणदशा हो तो सदैव शत्रु से पीड़ा, नेत्र, पेट में रोग एवं मित्रों से विरोध के कारण मानसिक पीड़ा होती है ॥७८॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में गुरु का प्राणदशाफल

आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्रस्त्रीधनवैभवम् ।
छत्रवाहनसम्प्राप्तिः शुक्रप्राणगते गुरौ ॥७९॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में गुरु की प्राणदशा हो तो आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र, स्त्री, धन की वृद्धि एवं छत्र, वाहन आदि की प्राप्ति होती है ॥७९॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में शनि का प्राणदशाफल

राजोपद्रवजा भीतिः सुखहानिर्महारुजः ।
नीचैः सह विवादश्च भृगोः प्राणगते शनौ ॥८०॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में शनि की प्राणदशा हो तो राजा का उपद्रव, सुखनाश, रोगभय एवं नीचों के साथ विवाद होता है ।

शुक्र की सूक्ष्म दशा में बुध का प्राणदशाफल

सन्तोषो राजसम्मानं नानादिग्भूमिसम्पदः ।
नित्यमुत्साहवृद्धिः स्याच्छुक्रप्राणगते बुधे ॥८१॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में बुध की प्राणदशा हो तो सन्तोष, राजा से आदर, विभिन्न दिशा से भूमि का लाभ एवं सदैव उत्साह की वृद्धि होती है ॥८१॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में केतु का प्राणदशाफल

जीवितात्म-यशोहानिर्धन-धान्य-परिक्षयः ।
त्यागभोगधनानि स्युः शुक्रप्राणगते ध्वजे ॥८२॥

शुक्र की सूक्ष्म दशा में केतु की प्राणदशा हो तो जीवन एवं यश की हानि, निर्धनता एवं धान्य-नाश होकर केवल दान तथा भोगधन अवशेष रहता है ॥८२॥

एवमृक्षदशानां हि सान्तराणां मया द्विज ।
फलानि कथितान्यत्र संक्षेपादेव तेऽग्रतः ॥८३॥

हे द्विज ! मैंने आपके समक्ष अन्तर्दशायुत नक्षत्रदशा-फलों को संक्षेप में बताया है । उक्त दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर दशा, सूक्ष्मदशा और प्राणदशा इन—पाँचों के अधिकारियों के शुभत्व अशुभत्व का सम्यक् विचार कर वर्तमान समय में स्वविवेकानुसार शुभाशुभ फलादेश करना चाहिए ॥८३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां प्राणदशाफलाध्यायः ॥६५॥

अथ कालचक्रान्तर्दशाफलाध्याय: ॥६६॥

पराशर उवाच

जगद्धिताय प्रोक्तानि पुरा यानि पुरारिणा।
तानि चक्रान्तरदशाफलानि कथयाम्यहम् ॥१॥

पराशर कहते हैं कि श्री शंकर भगवान् ने संसार के कल्याणार्थ कालचक्रदशा कही थी। उस कालचक्र दशान्तर्दशा को अब मैं कहता हूँ ॥१॥

मेषांश में दशाचक्र

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्कट	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
स्वामी	मंगल	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	मेषांश
वर्ष	७	१६	९	२१	५	९	१६	७	१०	योग १००

मेषांश के मेषादि राशियों का अन्तर्दशासाधन करने के लिए मेषादि के दशावर्ष से गुणा कर गुणनफल में परमायु वर्ष से भाग देने से लब्ध वर्षादि मेषांश में मेषादि राशियों के अन्तर्दशावर्ष होते हैं।

जैसे मेषांश में मेष का ही अन्तर्दशा वर्ष-साधन करना है तो मेषांश ७ दशावर्ष को मेष ७ दशावर्ष से गुणा किया तो ४९ हुआ, इसमें दशावर्ष योग १०० से भाग दिया तो लब्धि ०।५।२६।२४ वर्षादि हुआ, यह मेष में मेष की (मंगल की) अन्तर्दशा हुई।

इसी प्रकार—

		वर्ष	मास	दिन	घटी	
७ × १६/१००	=	१।	१।	१३।	१२	= शुक्र की अन्तर्दशा।
७ × ९/१००	=	०।	७।	१६।	४८	= बुध की अन्तर्दशा।
७ × २१/१००	=	१।	५।	१९।	१२	= चन्द्र की अन्तर्दशा।
७ × ५/१००	=	०।	४।	६।	०	= सूर्य की अन्तर्दशा।
७ × ९/१००	=	०।	७।	१६।	४८	= बुध की अन्तर्दशा।
७ × १६/१००	=	१।	१।	१३।	१२	= शुक्र की अन्तर्दशा।
७ × ७/१००	=	०।	५।	२६।	२४	= मंगल की अन्तर्दशा।
७ × १०/१००	=	०।	८।	१२।	०	= गुरु की अन्तर्दशा।

मेषांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	५	८	०
दिन	२६	१३	१६	१८	६	१६	१३	२६	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	२४	०	०

मेषांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	
राशीश	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	योग
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	४	९	५	६	१	७	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	२१	१३	६	१३	०
घटी	३६	२४	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	०

मेषांशीय मिथुनवर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	
राशीश	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	०	१	०	०	०	१	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	०
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०

मेषांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	४	१	१	३	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२०	०
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मेषांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	६	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१८	६	०	६	१८	१२	१८	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

मेषांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग॰
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१६	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२४	०	०

मेषांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	शुक्र	योग
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	१	१६
मास	६	१	७	१	६	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०

मेषांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
राशीश	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	१	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०

मेषांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	०	१	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

वृषांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	०
घटी	४५	४५	२४	३५	३	२८	४५	४२	२८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	०

वृषांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	३	९	५	११	२	५	२	०
दिन	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	७	०
घटी	४५	२४	३५	३	१८	४५	४२	२८	४५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	५३	०

वृषांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	७	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	२१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४९	३५	४२	५३	३५	४३	४३	०

वृषांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	६	३	८	८	४	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२२	२८	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	२१	४९	३५	१४	४९	३५	३५	२८	०
पल	४६	१०	२५	१७	७	२५	१८	१८	१४	०

वृषांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
राशीश	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	३	१	३	०	१	०	०	१	१	१६
मास	०	८	११	११	८	९	९	१०	३	०
दिन	४	९	१३	८	९	१	१	१७	२४	०
घटी	१४	५२	३	४९	५२	३	३	३८	२१	०
पल	७	५६	३२	२५	५६	३२	३२	४९	११	०

वृषांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
राशीश	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	२	०	०	०	०	१	०	१	९
मास	११	२	६	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	२०	१०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	२८	३५	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१४	१८	३२	१४	१४	३५	२५	५६	०

वृषांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	५	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	१९	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	२१	१४	५३	५३	४३	१७	२३	१४	०

वृषांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	२	२	७	४	११	६	२	०
दिन	१५	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	२४	०
घटी	५२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	४२	०
पल	५६	१८	२१	२१	५३	७	२५	१८	१४	०

वृषांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	६	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	०	०
दिन	१३	२	२	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

मिथुनांशीय वृषदशावर्ष १६ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुनं	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	३	१	१	०	०	१	१	३	१	१६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

मिथुनांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	१	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१५	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१०	०	०

मिथुनांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५८	२१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४२	३३	५२	०

मिथुनांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	५	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	२३	०
घटी	२३	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	०
पल	५२	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	०

मिथुनांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	९	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	७	६	७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	५२	०

मिथुनांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१३	३	३	०	३	३	१३	२३	२३	०
घटी	४४	३६	५८	२१	५८	३६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४२	३३	५२	६	३८	३८	०

मिथुनांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१५	४७	३१	३६	२६	२६	३६	०
पल	४८	०	१०	०	४८	५२	४५	४५	५२	०

मिथुनांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
राशीश	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	११	४	०
दिन	०	२४	०	५	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

मिथुनांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	१	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	२१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

कर्कांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	२	२१
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	९	०
घटी	२	३२	९	३	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४६	४२	५६	११	४१	४१	११	०

कर्कांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	३	०
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	३९	२२	५३	३०	१८	४३	४३	१८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	१५	१५	९	५	०

कर्कांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१६	११	८	०
घटी	०	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२४	१५	४०	५१	५१	४०	४६	३०	०

कर्कांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	२	१	१	०	०	१	३	०	१	१६
मास	११	३	१०	८	८	१०	१०	११	८	०
दिन	२१	१८	९	२७	२७	९	४	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	४६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१४	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

कर्कांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	२	०
दिन	२	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	१	१२	१२	१	२०	३०	४३	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१४	०

कर्कांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	३६	३६	३६	४	१८	४४	४६	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१३	९	४०	२	२४	०

कर्कांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	११	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	००

कर्कांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
राशीश	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	३७	०

कर्कांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
राशीश	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	१०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	९	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	१८	४४	४६	१	३६	३६	३६	०
पल	१६	१३	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

सिंहांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	कन्या	वृष	मेष	मीन	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	५	८	०
दिन	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	२६	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	२४	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	
राशीश	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	योग
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	६	९	५	६	१	७	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	३१	१३	६	१३	०
घटी	३६	२४	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	
राशीश	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	०	१	०	०	०	१	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	०
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	मकर	तुला	कन्या	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	४	१	१	३	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२०	७
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	६	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१८	६	०	६	१८	१२	१८	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	, कन्या	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१६	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२५	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	१	१६
मास	६	१	७	१	६	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	कन्या	वृष	
राशीश	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	१	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

सिंहांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	कन्या	वृष	मेष	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	०	०	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

कन्यांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२५	२४	२	०
घटी	४५	४५	१४	३५	३	२८	४५	४२	२८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	०

कन्यांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	३	९	५	११	२	५	२	०
दिन	७	१९	२८	१	२	२५	४४	२	७	०
घटी	४५	५४	३५	३	२८	४५	४२	२८	४५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	१४	५३	०

कन्यांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	योग
वर्ष	०	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	७	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	३१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४९	३५	४२	४३	३५	४३	४३	०

कन्यांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	६	६	८	८	४	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२२	२८	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	२१	४९	३५	१४	४९	३५	३५	१८	०
पल	४६	१०	२५	१७	७	२५	१८	१८	१४	०

कन्यांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
राशीश	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	३	१	३	०	१	०	०	१	१	१६
मास	०	८	११	११	८	९	९	१०	३	०
दिन	४	९	१३	८	९	१	१	१७	२४	०
घटी	१४	५२	३	४९	५२	३	३	३८	२१	०
पल	७	५६	३२	२५	५६	३२	३२	४९	११	०

कन्यांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
राशीश	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	२	०	०	०	०	१	०	१	९
मास	११	२	६	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	२०	१०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	२८	३५	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१४	१८	३२	१४	१४	३५	२५	५६	०

कन्यांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	७	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	११	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	२१	१४	४३	४३	४३	१७	३२	१४	०

कन्यांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	२	२	७	४	११	६	२	०
दिन	१५	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	२४	०
घटी	५२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	४२	०
पल	५६	१७	२१	२१	५३	७	२५	१७	२१	०

कन्यांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	०	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	६	०
दिन	१३	२	२	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

तुलांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	३	१	१	०	०	१	१	३	१	१६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

तुलांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	०	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१०	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१५	०	०

तुलांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५८	२१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४२	३३	५२	०

तुलांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	५	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	२३	०
घटी	२३	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	०
पल	५२	५२	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	०

तुलांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	९	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	७	६	७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५२	३८	३८	२५	४०	२५	४५	३८	४२	०

तुलांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१३	३	३	०	३	३	१३	२३	२३	०
घटी	४४	३६	५८	२१	५८	३६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४२	३३	५२	६	३८	३८	०

तुलांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१५	४७	३१	३६	२६	२६	३६	०
पल	४८	०	१०	०	४८	५२	४५	४५	५२	०

तुलांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
राशीश	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	११	४	०
दिन	०	२४	०	५	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

तुलांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	२१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

वृश्चिकांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	२	२१
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	९	०
घटी	२	३२	९	३०	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४६	४२	५६	११	४१	४१	११	०

वृश्चिकांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	२	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	२	०
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	३९	२२	५३	३०	१८	४३	४३	१८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	१५	१५	९	५	०

वृश्चिकांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१६	११	८	०
घटी	४	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२६	१५	४०	५१	५१	४०	४६	२०	०

वृश्चिकांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	२	१	१	०	०	१	३	०	१	१६
मास	११	३	१०	८	८	१०	१०	११	८	०
दिन	२१	१८	९	२७	२७	९	२६	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	४६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१४	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

वृश्चिकांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	३	०
दिन	२५	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	१	१२	१२	१	२०	३०	४२	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१४	०

वृश्चिकांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	२६	२६	३६	४	१८	४४	४६	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१३	९	४०	२	२४	०

वृश्चिकांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	११	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	३६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	०

वृश्चिकांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
राशीश	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	३६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	३७	०

वृश्चिकांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	कर्क	सिंह	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
राशीश	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	१०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	९	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	१८	४४	४६	१	३६	२६	२६	०
पल	१६	१३	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

धनुरंशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
मास	५	१	७	५	४	७	१	५	८	०
दिन	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	२६	१२	०
घटी	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	२४	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	
राशीश	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	योग
वर्ष	२	१	३	०	१	२	१	१	१	१६
मास	६	५	६	९	५	६	१	६	१	०
दिन	२१	८	९	१८	८	२१	१३	२६	१३	०
घटी	३६	२४	३६	२	२४	३६	१२	०	१२	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	
राशीश	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	०	०	०	०	०	०	९
मास	९	१०	५	९	५	७	१०	७	५	०
दिन	२१	२०	१२	२१	८	१६	२४	१६	८	०
घटी	३६	२४	०	३६	२४	४८	०	४८	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	४	१	१	३	१	२	१	३	१	२१
मास	४	०	१०	४	५	१	५	४	१०	०
दिन	२७	१८	२०	९	१९	६	१९	९	२०	०
घटी	३६	०	२४	३६	१२	०	१२	३६	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	५	९	४	३	४	९	५	०	०
दिन	०	१२	१८	६	०	६	१८	१२	१८	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	१	०	०	०	१	०	१	०	९
मास	९	५	७	१०	७	५	९	१०	५	०
दिन	२१	८	१६	२४	१६	८	२१	२०	१२	०
घटी	३६	२४	४८	०	४८	२४	३६	२४	०	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	२	१	१	१	२	१	३	०	०	१६
मास	६	१	७	१	६	५	४	९	५	०
दिन	२१	१३	६	१३	२१	८	९	१८	८	०
घटी	३६	१२	०	१२	३६	२४	३६	०	२४	०
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

धनुरंशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
राशीश	भौम	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	०	१	७
मास	५	८	५	१	७	५	४	७	१	०
दिन	२६	१२	२६	१३	१६	१९	६	१६	१३	०
घटी	२४	०	२४	१२	४८	१२	०	४८	१२	०

धनुरंशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	१	०	२	०	०	१	०	१०
मास	०	८	७	१०	१	६	१०	७	८	०
दिन	०	१२	६	२४	६	०	२४	६	१२	०

मकरांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	३	९	५	११	२	५	०
दिन	७	७	१९	२८	१	२	२९	२४	२	०
घटी	४५	४५	२४	३५	३	२८	४५	४२	२८	०
पल	५३	५३	४२	१८	३२	१४	५३	२१	२४	

मकरांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	७	१९	२८	१	२	२४	२५	२	७	०
दिन	२	५	३	९	५	२	११	५	२	०
घटी	४५	२४	३५	३	२८	४२	४५	२८	४५	०
पल	५३	४२	१८	३२	१४	२१	५३	१४	५३	०

मकरांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	०	१	१	२	०	१	०	०	१०
मास	२	९	१०	०	५	७	०	५	५	०
दिन	३	२६	१७	२१	१९	१	२१	१९	१९	०
घटी	३१	२८	३८	१०	२४	४५	१०	२४	२४	०
पल	४६	१४	४५	३५	४२	५३	३५	४३	४३	०

मकरांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	०	१	०	०	०	०	७
मास	६	३	८	४	८	८	३	३	९	०
दिन	२७	२४	२६	२८	२२	२६	२८	२८	२६	०
घटी	३१	२१	४९	१४	३५	४९	३५	३५	२८	०
पल	४६	१०	२५	७	१७	२५	१८	१८	१४	०

मकरांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	
राशीश	शुक्र	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	०	०	०	१	१६
मास	६	८	४	८	८	३	३	९	३	०
दिन	२७	२६	२८	२२	२६	२८	२८	२६	२४	०
घटी	३१	४९	१४	३५	४५	३५	३५	२८	२१	०
पल	४६	२५	७	१७	२५	१८	१८	१४	११	०

मकरांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	
राशीश	बुध	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	२	०	०	०	१	०	१	९
मास	११	६	२	११	५	५	०	८	८	०
दिन	१३	१०	२०	१३	२	२	२१	२६	९	०
घटी	३	३५	२८	३	२८	२८	१०	४९	५२	०
पल	३२	१८	१४	३२	१४	१४	२५	३५	५६	०

मकरांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कर्क	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
राशीश	सूर्य	चन्द्र	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	०	१	०	०	०	०	०	०	०	५
मास	३	२	६	२	२	७	४	११	६	०
दिन	१५	२४	१०	२४	२४	१	२८	८	१०	०
घटी	५२	४२	३५	४२	४२	४५	१४	४९	३५	०
पल	५६	२१	१८	२१	२१	५३	७	२५	१८	०

मकरांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	५	१	२	०	०	२	१	३	२	२१
मास	२	२	२	११	११	५	८	११	२	०
दिन	७	२४	२०	२५	२५	१९	२२	१३	२०	०
घटी	४५	४२	२८	४५	४५	२४	३५	३	२८	०
पल	५३	२१	१४	५३	५३	४३	१७	३२	१४	०

मकरांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	मकर	कुम्भ	मीन	वृश्चिक	तुला	कन्या	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	०	०	१	०	१	०	२	०	९
मास	११	५	५	०	८	८	११	२	६	०
दिन	१३	२	२	२१	२६	९	१३	२०	१०	०
घटी	३	२८	२८	१०	४९	५२	३	२८	३५	०
पल	३२	१४	१४	३५	२५	५६	३२	१४	१८	०

कुम्भांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	योग
वर्ष	३	१	१	०	०	१	१	३	१	१६
मास	१	४	११	९	९	११	४	१	८	०
दिन	०	५	३	७	७	३	५	०	२४	०
घटी	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	२१	३४	०
पल	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	४१	४२	०

कुम्भांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	१	०	१	७
मास	७	१०	४	४	१०	७	४	९	४	०
दिन	२	३	१	१	३	२	५	३	५	०
घटी	३१	३६	२६	२६	३६	३१	४७	१५	४७	०
पल	४८	५२	४५	४५	५२	४८	०	१०	०	०

कुम्भांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	०	१	१	१	०	१०
मास	२	५	५	२	१०	११	१	११	१०	०
दिन	१३	२३	२३	१३	३	३	०	३	३	०
घटी	४४	२९	२९	४४	३६	५८	२१	५८	३६	०
पल	६	३८	३८	६	५२	३३	४१	३३	५२	०

कुम्भांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	४	९	५	९	४	५	०
दिन	९	९	२३	१	७	६	७	१	२३	०
घटी	२३	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	०
पल	५१	५१	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	०

कुम्भांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	
राशीश	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	४	९	५	९	४	५	२	०
दिन	९	२३	१	७	६	७	१	२३	९	०
घटी	२३	२९	२६	३५	८	३५	२६	२९	२३	०
पल	५१	३८	४५	२५	४०	२५	४५	३८	५१	०

कुम्भांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	
राशीश	गुरु	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	०	१	१	१	०	१	०	०	१०
मास	२	१०	११	१	११	१०	२	५	५	०
दिन	१३	३	३	०	३	३	१३	२३	२३	०
घटी	४४	३६	५८	२१	५८	३६	४४	२९	२९	०
पल	६	५२	३३	४१	३३	५२	६	३८	३८	०

कुम्भांशीय मेषदशावर्ष ७ में मेषादि की अन्तर्दशा

राशि	मेष	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	
राशीश	भौम	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	०	०	०	७
मास	७	४	९	४	७	१०	४	४	१०	०
दिन	२	५	३	५	२	३	१	१	३	०
घटी	३१	४७	१५	४७	३१	३६	३६	३६	३६	०
पल	४८	०	११	०	४८	५२	४५	४५	५२	०

कुम्भांशीय वृषदशावर्ष १६ में वृषादि की अन्तर्दशा

राशि	वृष	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	
राशीश	शुक्र	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	योग
वर्ष	३	१	३	१	१	०	०	१	१	१६
मास	१	८	१	४	११	९	९	१	४	०
दिन	०	२४	०	५	३	७	७	३	५	०
घटी	२१	३४	२१	४७	५८	३५	३५	५८	४७	०
पल	४१	४२	४१	०	३३	२५	२५	३३	०	०

कुम्भांशीय मिथुनदशावर्ष ९ में मिथुनादि की अन्तर्दशा

राशि	मिथुन	वृष	मेष	मीन	कुम्भ	मकर	धनु	मेष	वृष	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	भौम	शुक्र	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	०	१	९
मास	११	८	९	१	५	५	१	९	८	०
दिन	२१	२४	३	०	६	६	०	३	२४	०
घटी	१९	३४	१५	२१	८	८	२१	१५	३४	०
पल	३२	४२	१०	४२	४०	४०	४२	१०	४२	०

मीनांशीय कर्कदशावर्ष २१ में कर्कादि की अन्तर्दशा

राशि	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
राशीश	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	योग
वर्ष	५	१	२	३	१	२	०	०	०	२१
मास	१	२	२	१०	८	५	११	११	५	०
दिन	१६	१९	११	२६	१५	९	२१	२१	९	०
घटी	२	३२	९	३०	२०	४	३७	३७	४	०
पल	४७	५	४७	४२	५६	११	४१	४१	११	०

मीनांशीय सिंहदशावर्ष ५ में सिंहादि की अन्तर्दशा

राशि	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	
राशीश	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	१	५
मास	३	६	११	४	६	२	२	६	२	०
दिन	१४	८	४	२६	२९	२३	२३	२९	१९	०
घटी	१९	२२	५३	३०	१८	४३	४३	८	३२	०
पल	४	२०	१	४२	९	१५	१५	९	५	०

मीनांशीय कन्यादशावर्ष ९ में कन्यादि की अन्तर्दशा

राशि	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	
राशीश	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	योग
वर्ष	०	१	०	१	०	०	१	२	०	९
मास	११	८	८	०	५	५	०	२	६	०
दिन	९	२	२३	१६	०	०	१६	११	८	०
घटी	४	४७	४३	४४	४१	४१	४४	९	२२	०
पल	११	२६	१५	४०	५१	५१	४०	४६	२०	०

मीनांशीय तुलादशावर्ष १६ में तुलादि की अन्तर्दशा

राशि	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	
राशीश	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	योग
वर्ष	२	१	०	०	०	१	३	०	१	१६
मास	११	३	१०	८	८	१०	१०	११	८	०
दिन	२१	१८	९	२७	२७	९	२६	४	२	०
घटी	३७	५०	४६	५४	५४	४६	३०	५३	४७	०
पल	४१	१४	२	२६	२६	२	४२	१	२६	०

मीनांशीय वृश्चिकदशावर्ष ७ में वृश्चिकादि की अन्तर्दशा

राशि	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	
राशीश	भौम	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	१	०	०	१	७
मास	६	९	३	३	९	८	४	८	३	०
दिन	२५	२३	२७	२७	२३	१५	२६	२३	१८	०
घटी	६	१	१२	१२	१	२०	३०	४३	५०	०
पल	५९	२४	३३	३३	२४	५६	४२	१५	१४	०

मीनांशीय धनुदशावर्ष १० में धनु आदि की अन्तर्दशा

राशि	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	
राशीश	गुरु	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	योग
वर्ष	१	०	०	१	२	०	१	१	०	१०
मास	१	५	५	१	५	६	०	१०	९	०
दिन	२८	१७	१७	२८	९	२९	१६	९	२३	०
घटी	३६	२६	२३	३६	४	१८	४४	४६	१	०
पल	१६	३०	३०	१६	१३	९	४०	९	२४	०

मीनांशीय मकरदशावर्ष ४ में मकरादि की अन्तर्दशा

राशि	मकर	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	
राशीश	शनि	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	२	५	१	२	५	८	३	५	०
दिन	६	६	१७	२१	१३	०	२७	२७	१७	०
घटी	५८	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	०
पल	३७	३७	३०	४१	१५	५१	२६	३३	३०	०

मीनांशीय कुम्भदशावर्ष ४ में कुम्भादि की अन्तर्दशा

राशि	कुम्भ	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	
राशीश	शनि	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	योग
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
मास	२	५	११	२	५	८	३	५	२	०
दिन	६	१७	२१	२३	०	२७	२७	१७	६	०
घटी	५८	२६	३७	४३	४१	५४	१२	२६	५८	०
पल	३७	३०	४१	१५	५१	२६	२३	३०	३७	०

मीनांशीय मीनदशावर्ष १० में मीनादि की अन्तर्दशा

राशि	मीन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	
राशीश	गुरु	चन्द्र	सूर्य	बुध	शुक्र	भौम	गुरु	शनि	शनि	योग
वर्ष	१	२	०	१	१	०	१	०	०	१०
मास	१	५	६	०	१०	९	१	५	५	०
दिन	२८	९	२९	१६	९	२३	२८	१७	१७	०
घटी	३६	४	१८	४४	४६	१	३६	२६	२६	०
पल	१६	१३	९	४०	२	२४	१६	३०	३०	०

अन्तर्दशा-फल

मेषांश-फल

मेषांशे स्वान्तरे भौमे ज्वरश्च व्रणसम्भवः ।
बुधशुक्रेन्दुजीवेषु सुखं शत्रुभयं रवौ ॥२॥

मेष की दशा में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो ज्वर या व्रण (घाव) सम्भव रहता है। बुध (मिथुन + कन्या), शुक्र (वृष + तुला), चन्द्र (कर्क), जीव (धनु + मीन) की अन्तर्दशा आने पर सर्वत्र सुख एवं रवि (सिंह) की अन्तर्दशा में शत्रुभय रहता है ॥२॥

वृषांश-फल

वृषांशे स्वान्तरे सौरे कलहो रोगसम्भवः ।
विद्यालाभस्तनौ सौख्यं गुरौ तत्र गते फलम् ॥३॥
देशत्यागो मृतिर्वापि शस्त्रघातो ज्वरोऽथवा ।
वृषभस्वांशके विप्र ! कुजे तत्र गते फलम् ॥४॥
वस्त्राभरणलाभश्च स्त्रीसुयोगो महत् सुखम् ।
शुक्रेन्दुसुतचन्द्रेषु वृषभस्वांशके फलम् ॥५॥
नृपाद् भयं पितृमृतिः स्वपदाद्यैर्भयं रवौ ॥५$\frac{1}{2}$॥

वृष की दशा में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो कलह और रोग सम्भव रहता है। गुरु की अन्तर्दशा रहने पर विद्या की प्राप्ति और शारीरिक सुख; मंगल की अन्तर्दशा हो तो देशत्याग या मरण, शस्त्र से आघात एवं ज्वर होता है। शुक्र, बुध, चन्द्रमा की अन्तर्दशा हो तो वस्त्र तथा आभूषण की प्राप्ति, विवाह एवं परम सुख होता है। रवि (सिंह) की अन्तर्दशा हो तो राजा से भय, पितृनाश एवं हिंसक जीवों से भय रहता है ॥३-५$\frac{1}{2}$॥

मिथुनांश फल

मिथुने स्वांशके शुक्रे धनवस्त्रसमागमः ॥६॥
पितृमातृमृतेर्भीतिर्ज्वरश्च व्रणसम्भवः।
दूरदेशप्रयाणं च मिथुने स्वांशके कुजे ॥७॥
बुद्धि-विद्या-विवृद्धिश्च महाविभवसम्भवः।
लोके मानश्च प्रीतिश्च मिथुने स्वांशके गुरौ ॥८॥
विदेशगमनं व्याधिर्मरणं धननाशनम्।
बन्धुनाशोऽथवा विप्र! मिथुने स्वांशके शनौ ॥९॥
विद्यावस्त्रादिलाभश्च दारपुत्रादिजं सुखम्।
सर्वत्र मानमाप्नोति मिथुने स्वांशके बुधे ॥१०॥

मिथुन की दशा में शुक्र (वृष + तुला) की अन्तर्दशा हो तो धन-वस्त्रादि का आगमन होता है। मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा में माता-पिता का मरणभय, ज्वर, व्रण एवं विदेश-भ्रमण होता है। गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा रहने पर बुद्धि, विद्या की वृद्धि, महान् ऐश्वर्य, लोक में मान, प्रतिष्ठा और प्रेम होता है। मिथुन में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो विदेशगमन, रोग, मरणभय, धननाश एवं बन्धुओं की हानि होती हैं। मिथुन में बुध (मिथुन + कन्या) की अन्तर्दशा हो तो विद्या-वस्त्रादि का लाभ, स्त्री-पुत्रों से सुख और सभी जगहों से सम्मान-प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है ॥६-१०॥

कर्कांश-फल

कर्के स्वांशगते चन्द्रे पुत्र-दार-सुखं महत्।
ऐश्वर्यं लभते लोके मानं प्रीतिं तथैव च ॥११॥
शत्रुभ्यश्च पशुभ्यश्च भयं राजकुलात् तथा।
आधि-व्याधिभयं चैव कर्के स्वांशगते रवौ ॥१२॥
पुत्र-दार-सुहृत्सौख्यं धनवृद्धिस्तथैव च।
लोके मानं यशश्चैव कर्कांशे बुध-शुक्रयोः ॥१३॥
विषशस्त्रमृतेर्भीतिं ज्वररोगादि-सम्भवाम्।
पीडां चैव समाप्नोति कर्के स्वांशगते कुजे ॥१४॥

विभवस्यातिलाभश्च शरीरेऽपि सुखं तथा।
नृपात् सम्मानलाभश्च कर्के स्वांशगते गुरौ ॥१५॥
वातव्याधिभयं घोरं सर्पवृश्चिकतो भयम्।
नानाकष्टमवाप्नोति कर्के स्वांशगते शनौ ॥१६॥

कर्क की दशा में चन्द्र (कर्क) की अन्तर्दशा हो तो पुत्र-स्त्रीजन्य महान् सुख, ऐश्वर्य की प्राप्ति, लोक में मान एवं प्रेम होता है। कर्क में रवि (सिंह) का अन्तर रहने पर शत्रु, पशु और राजकुल से भय एवं आधि-व्याधि और मानसिक पीड़ा होती है। कर्क में बुध (मिथुन + कन्या) शुक्र (वृष + तुला) की अन्तर्दशा हो तो पुत्र, स्त्री और मित्रों से सुख, धन की वृद्धि, लोक में मान और यश होता है। कर्क में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो विष, शस्त्र और मृत्यु का भय होता है एवं ज्वरादि रोग और पीड़ा होती है। कर्क में गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा हो तो ऐश्वर्यादि का लाभ, शारीरिक सुख, राजा से सम्मान और लाभ होता है। कर्क में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा रहने पर वायुसम्बन्धी व्याधि का भयंकर भय, सर्प, बिच्छू आदि जन्तुओं से भय और विभिन्न कष्टों का सामना करना पड़ता है ॥११-१६॥

सिंहांश-फल

सिंहांशे स्वांशगे भौमे मुखरोगभयं दिशेत्।
पित्तज्वरकृतां बाधां शस्त्रक्षतमथापि वा ॥१७॥
धनवस्त्रादिलाभश्च स्त्रीपुत्रादिसुखं तथा।
बुधभार्गवयोर्विप्र! सिंहांशे स्वान्तरस्थयोः ॥१८॥
उच्चात् पतनभीतिश्च स्वल्पद्रव्यसमागमः।
विदेशगमनं चैव सिंहे स्वान्तर्गते विधौ ॥१९॥
भयं शत्रुजनेभ्यश्च ज्वरादिव्याधिसम्भवः।
ज्ञानहानिर्मृतेर्भीतिः सिंहे स्वान्तर्गते रवौ ॥२०॥
धन-धान्यादिलाभं च प्रसादं द्विज-भूपयोः।
विद्यावृद्धिमवाप्नोति सिंहे स्वान्तर्गते गुरौ ॥२१॥

सिंह की दशा में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो मुख में रोग, पित्त, ज्वर और शस्त्र से आघात का भय होता है। सिंह में बुध (मिथुन + कन्या), शुक्र (वृष + तुला) की अन्तर्दशा हो तो धन-वस्त्रादि का लाभ एवं स्त्री-पुत्रादिजन्य सुख होता है। सिंह ही दशा में चन्द्रमा (कर्क) की अन्तर्दशा हो तो पर्वत आदि उच्च स्थान से पतन का भय, स्वल्प धनलाभ एवं विदेश की यात्रा होती है। सिंहान्तर्गत रवि (सिंह) हो तो शत्रुओं से भय, ज्वरादि व्याधि, ज्ञान की हानि और मृत्यु का भय रहता है। सिंह की दशा में गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा हो तो धन-धान्यादि का लाभ, राजा और ब्राह्मण से प्रसन्नता तथा विद्या की वृद्धि होती है ॥१७-२१॥

कन्यांश फल

कन्यायां स्वांशगे सौरे कष्टं प्राप्नोति मानवः ।
प्रयाणं च ज्वरं चैव क्षुद्भवं वैक्लवं तथा ॥२२॥
नृपप्रसादमैश्वर्यं सुहृद्-बन्धुसमागमम् ।
विद्यावृद्धिमवाप्नोति कन्यायां स्वांशके गुरौ ॥२३॥
पित्तज्वरभवा पीडा विदेशे गमनं तथा ।
शस्त्रघातोऽग्निभीतिश्च कन्यायां स्वान्तरे कुजे ॥२४॥
भृत्य-पुत्रार्थलाभश्च नानासुखसमागमः ।
बुधभार्गवचन्द्रेषु कन्यास्वांशगतेषु च ॥२५॥
प्रयाणं रोगभीतिश्च कलहो बन्धुभिः सह ।
शस्त्रघातभयं चैव कन्यांशे स्वांशगे रवौ ॥२६॥

कन्या की दशा में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो अनेक कष्ट, विदेश यात्रा, ज्वर तथा अन्नाभाव के कारण क्षुधा से पीड़ा होती है। गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा हो तो राजा की प्रसन्नता से ऐश्वर्य-लाभ, मित्र तथा बन्धु-समागम एवं विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि होती है। कन्या की दशा में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा रहने पर पित्त, ज्वर से पीड़ा, देशान्तर गमन, शस्त्र से आघात एवं अग्निभय रहता है। बुध, शुक्र, चन्द्र (मि. + कन्या, वृष, तुला, कर्क) की अन्तर्दशा हो तो सेवक तथा पुत्र एवं धन का लाभ और अनेक सुख की प्राप्ति होती है। कन्या में रवि (सिंह) की अन्तर्दशा रहने पर दूर की यात्रा, रोगभय, बन्धुओं से कलह और शस्त्राघात का भय रहता है ॥२२-२६॥

तुलांश-फल

तुले स्वान्तर्गते शुक्रे सद्बुद्धिश्च सुखोदयः ।
स्त्री-पुत्र-धन-वस्त्रादिलाभो भवति निश्चितः ॥२७॥
पितृकष्टं सुहृद्वैरं शिरोरोगो ज्वरोदयः ।
विषशस्त्राग्निभीतिश्च तुले स्वान्तर्गते कुजे ॥२८॥
द्रव्यरत्नादिलाभश्च धर्मकार्यं नृपादरः ।
सर्वत्र सुखसम्प्राप्तिस्तुले स्वांशगते गुरौ ॥२९॥
प्रयाणं च महाव्याधिः क्षेत्रादेः क्षतिरेव च ।
शत्रुबाधा च कार्येषु तुले स्वांशगते शनौ ॥३०॥
पुत्रजन्म धनप्राप्तिः स्त्रीसुखं च मनःप्रियम् ।
भाग्योदयश्च विज्ञेयस्तुले स्वान्तर्गते बुधे ॥३१॥

तुला में शुक्र (वृष + तुला) की अन्तर्दशा रहने पर सद्बुद्धि, सुख की प्राप्ति एवं स्त्री-पुत्र-धन-वस्त्रादि का लाभ होता है। तुलांश में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा

रहने पर पिता को कष्ट, मित्रों से वैर, मस्तक में रोग, ज्वर, विष, शस्त्र तथा अग्नि का भय होता है। तुलांश में गुरु (धनु + गुरु) की अन्तर्दशा हो तो द्रव्य-रत्नादि का लाभ, धार्मिक कार्य, राजा से आदर एवं सभी जगहों से सुख की प्राप्ति होती है। शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो दूर की यात्रा, महारोग, खेती आदि की हानि तथा शत्रुओं से कार्य में बाधा होती है। तुलान्तर्गत बुध (मिथुन + कन्या) की अन्तर्दशा हो तो पुत्रोत्पत्ति, धनलाभ, स्त्री से सुख, मानसिक शान्ति एवं भाग्योदय होता है ॥२७-३१॥

वृश्चिकांश-फल

शशाङ्कबुधशुक्रेषु वृश्चिके स्वांशगेषु च।
नाना-धान्य-धनप्राप्तिर्व्याधिनाशो महत् सुखम् ॥३२॥
शत्रुक्षोभभयं व्याधिमर्थनाशं पितुर्भयम्।
श्वापदाद् भयमाप्नोति वृश्चिके स्वांशगे रवौ ॥३३॥
वातपित्तभयं चैव मसूरीव्रणमादिशेत्।
अग्निशस्त्रादिभीतिश्च वृश्चिके स्वांशगे कुजे ॥३४॥
धनं धान्यं च रत्नं च देवब्राह्मणपूजनम्।
राजप्रसादमाप्नोति वृश्चिके स्वांशगे गुरौ ॥३५॥
धनबन्धुविनाशश्च जायते मानसी व्यथा।
शत्रुबाधा महाव्याधिर्वृश्चिके स्वांशगे शनौ ॥३६॥

वृश्चिकांश में चन्द्र, बुध, शुक्र (कर्क + मिथुन + कन्या + वृष + तुला) की अन्तर्दशा हो तो विभिन्न धन-धान्यों की प्राप्ति, रोगनाश एवं परम सुख होता है। रवि (सिंह) का अन्तर रहने पर शत्रु से भय, रोग, धननाश, पितृकष्ट तथा हिंसक जन्तुओं का भय होता है। मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो वात-पित्तसम्बन्धी रोगभय, तिल या व्रण हो तथा अग्नि एवं शस्त्रभय होता है। वृश्चिकांश में गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा हो तो धन-धान्य-रत्न का लाभ; देवता और ब्राह्मणों में श्रद्धा और राजा की सहानुभति प्राप्त होती है। वृश्चिकांश में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो धन-बन्धु का नाश, मानसिक चिन्ता, शत्रुओं से बाधा और महारोग होता है ॥३२-३६॥

धन्वंश-फल

अतिदाहं ज्वरं छर्दिं मुखरोगं विशेषतः।
नानाक्लेशमवाप्नोति चापांशे स्वांशगे कुजे ॥३७॥
श्रियं विद्यां च सौभाग्यं शत्रुनाशं नृपात् सुखम्।
भार्गवेन्दुजचन्द्राणां चापे स्वस्वांशके दिशेत् ॥३८॥
भार्यावित्तविनाशं च कलहं च नृपाद् भयम्।
दूरयात्रामवाप्नोति चापांशे स्वांशगे रवौ ॥३९॥

दानधर्मतपोलाभं राजपूजनमाप्नुयात्।
भार्याविभवलाभं च चापे स्वांशगते गुरौ ॥४०॥

धनु की दशा में मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो दाह, ज्वर, जुकाम, मुख में रोग और विभिन्न प्रकार के क्लेश प्राप्त होते हैं। धनु की दशा में शुक्र, बुध, चन्द्रमा की राशियों का अन्तर हो तो धन-विद्या-सौभाग्य की प्राप्ति, शत्रुनाश एवं राजा से सुख की प्राप्ति होती है। धनु में रवि (सिंह) का अन्तर रहने पर भार्या तथा धन का विनाश, कलह, राजा से भय और दूरदेश की यात्रा होती है। धन्वंश में गुरु (धनु + मीन) की अन्तर्दशा हो तो दान-धर्म-तपस्या की वृद्धि, राजा से पूजित एवं स्त्री और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥३७-४०॥

मकरांश-फल

द्विजदेवनृपोद्भूतं कोपं बन्धुविनाशनम्।
देशत्यागमवाप्नोति मकरस्वांशगे शनौ ॥४१॥
देवार्चनं तपोध्यानं सम्मानं भूपतेः कुले।
भार्गवज्ञेन्दुजीवानां मृगांशेऽन्तर्दशाफलम् ॥४२॥
शिरोरोगं ज्वरं चैव करपादक्षतं दिशेत्।
रक्तपित्तातिसारांश्च मृगस्वांशगते कुजे ॥४३॥
विनाशं पितृबन्धूनां ज्वररोगादिकं दिशेत्।
नृपशत्रुभयं चैव मृगांशस्वांशगे शनौ ॥४४॥

मकरांश में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो ब्राह्मण, देवता और राजा का कोप, बन्धुओं का नाश एवं देशत्याग होता है। मकर की दशा में शुक्र, बुध, चन्द्र, गुरु की राशियों की अन्तर्दशा हो तो देवपूजा, तपस्या, ध्यान और राजा से सम्मान प्राप्त होता है। मकरांश में कुज (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो मस्तकरोग, ज्वर, हाथ एवं पैर में घाव और रक्त-पित्त-अतीसारसम्बन्धी रोग का भय होता है। मकरांश में शनि (मकर + कुम्भ) की अन्तर्दशा हो तो पिता और बन्धुओं का विनाश, ज्वरादि रोग एवं राजा तथा शत्रु का भय होता है ॥४१-४४॥

कुम्भांश-फल

नानाविद्यार्थलाभश्च पुत्रस्त्रीमित्रजं सुखम्।
शरीरारोग्यमैश्वर्यं कुम्भे स्वांशगते भृगौ ॥४५॥
ज्वराग्निचोरजा पीडा शत्रूणां च महद्भयम्।
मनोव्यथामवाप्नोति घटांशस्वान्तरे कुजे ॥४६॥
नैरुज्यं च सुखं चैव सम्मानं भूपतो द्विजात्।
मनःप्रसादमाप्नोति कुम्भांशस्वांशगे गुरौ ॥४७॥
धातुत्रयप्रकोपं च कलहं देशविभ्रमम्।
क्षयव्याधिमवाप्नोति कुम्भांशस्वांशगे शनौ ॥४८॥

पुत्रमित्रधनस्त्रीणां लाभं चैव मनःप्रियम्।
सौभाग्यवृद्धिमाप्नोति कुम्भांशस्वांशगे बुधे ॥४९॥

कुम्भांश में शुक्र (वृष + तुला) की अन्तर्दशा हो तो विभिन्न प्रकार की विद्या और धन का लाभ, पुत्र-स्त्री-मित्रजन्य सुख की प्राप्ति, शरीर में नीरोगता एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। मंगल (मेष + वृश्चिक) की अन्तर्दशा हो तो ज्वर, अग्नि, चोर का भय, शत्रुओं से पीड़ा, परम भय और मानसिक व्यथा होती है। कुम्भांश में गुरु की राशियों की अन्तर्दशा हो तो नीरोगता, सुख, राजा और ब्राह्मण से सम्मान एवं मानसिक प्रसन्नता होती है। कुम्भांश में शनि की राशियों की अन्तर्दशा हो तो धातुत्रय (वात + पित्त + कफ) का प्रकोप, कलह, देशभ्रमण और क्षयरोग का भय होता है। कुम्भांश में बुध (मिथुन + कन्या) की अन्तर्दशा हो तो पुत्र-मित्र-स्त्री-धनादि का लाभ, मानसिक प्रसन्नता एवं भाग्य की वृद्धि होती है ॥४५-४९॥

मीनांश-फल

विद्यावृद्धिमवाप्नोति स्त्रीसुखं व्याधिनाशनम्।
सुहृत्सङ्गं मनःप्रीतिं मीनांशस्वांशगे विधौ ॥५०॥
बन्धुभिः कलहं चैव चौरभीतिं मनोव्यथाम्।
स्थानभ्रंशमवाप्नोति मीनांशस्वांशगे रवौ ॥५१॥
रणे विजयमाप्नोति पशुभूमिसुतागमम्।
धनवृद्धिं च मीनांशे स्वांशयोर्बुध-शुक्रयोः ॥५२॥
पित्तरोगं विवादञ्च स्वजनैरपि मानवः।
शत्रूणां भयमाप्नोति मीनांशस्वांशगे कुजे ॥५३॥
धनवस्त्रकलत्राणां लाभो भूपसमादरः।
प्रतिष्ठा बहुधा लोके मीनांशस्वांशगे गुरौ ॥५४॥
धननाशो मनस्तापो वेश्यादीनां च सङ्गमात्।
देशत्यागो भवेद्वापि मीनांशस्वांशगे शनौ ॥५५॥

मीनांशीय कालचक्रदशा में चन्द्र (कर्क) की अन्तर्दशा हो तो विद्या की वृद्धि, स्त्री-सुख, रोगनाश, मित्रों का सङ्ग और मानसिक प्रसन्नता होती है। मीनांश में रवि (सिंह) की अन्तर्दशा हो तो बन्धुओं के साथ कलह, चौरभय, मानसिक व्यथा और स्थाननाश होता है। मीनांश में बुध, शुक्र की राशियों की अन्तर्दशा हो तो युद्ध में विजय, पशु, भूमि, सन्तानादि का लाभ और धन की वृद्धि होती है। मंगल की राशियों की अन्तर्दशा हो तो पित्तसम्बन्धी रोग, अपने जनों से विवाद और शत्रुओं का भय होता है। मीनांश में गुरु की राशियों की अन्तर्दशा हो तो धन-वस्त्र-कलत्रादि का लाभ, राजा से आदर एवं लोक में अधिक प्रतिष्ठा होती है। मीनांश में शनि की राशियों की अन्तर्दशा हो तो धननाश, मन में ताप और वेश्याओं के साथ समागम के कारण देश का त्याग करना पड़ता है ॥५०-५५॥

पराशर उवाच

एवं प्राज्ञैश्च विज्ञेयं कालचक्रदशाफलम् ।
अन्तर्दशाफलं चैव वामर्क्षेऽप्येवमेव च ।।५६।।
इदं फलं मया प्रोक्तं धर्माऽधर्मकृतं पुरा ।
तत्सर्वं प्राणिभिर्नित्यं प्राप्यते नाऽत्र संशयः ।।५७।।
सुहृदोऽन्तर्दशा भव्या पापस्यापि द्विजोत्तम ! ।
शुभस्यापि रिपोश्चैवमशुभं च प्रकीर्तिता ।।५८।।

पराशर मुनि ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार कालचक्रदशा तथा अन्तर्दशा के फल सव्य चक्र से जानना चाहिए। इसी प्रकार अपसव्य चक्र से भी दशाफल और अन्तर्दशा फल जानना चाहिए अर्थात् दशा या अन्तर्दशा में क्रमप्राप्त राशियों की दशा एवं उनके स्वामी के शुभत्व-अशुभत्व से शुभाशुभ फल समझना चाहिए। ये शुभाशुभ फल जीवों को पूर्वजन्म में अर्जित उनके पुण्य और पाप कर्म के अनुरूप ही प्राप्त होते हैं, जो सबको भोगना ही पड़ता है। पूर्वोक्त फलों में विशेषता यह है कि पाप ग्रहों की राशियों का जो अशुभ फल कहा गया है, अन्तर्दशा में वह दशेश का मित्र राशि हो तो उसकी अन्तर्दशा शुभ ण ़दायक होती है और शुभ ग्रह भी यदि अन्तर्दशास्वामी का शत्रु हो तो उसकी अन्तर्दशा अशुभ फलप्रद होती है। इस प्रकार तारतम्य से शुभाशुभ फल का विश्लेषण कर फलादेश करना चाहिए ।।५६-५८।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कालचक्रदशान्तर्दशाफलाध्यायः ।।६६।।

अथ कालचक्रनवांशदशाफलाध्याय: ॥६७॥

मेषांशस्थ राशियों का दशाफल

मेषे तु रक्तजा पीडा वृषभे धान्यवर्द्धनम् ।
मिथुने ज्ञानवृद्धिश्च कर्के धनपतिर्भवेत् ॥१॥
सिंहभे शत्रुबाधा स्यात् कन्यायां स्त्रीजनात् सुखम् ।
तुलभे राजमन्त्रित्वं वृश्चिके मृत्युतो भयम् ॥२॥
अर्थलाभो भवेच्चापे मेषस्य नवभागके ।
फलमेवं विजानीयाद् दशाकाले द्विजोत्तम ! ॥३॥

सामान्यतया कालचक्र दशा या अन्तर्दशा-फल बताकर अब विशेष रूप से नवमांश के अनुसार शुभाशुभ फल कहते हैं—मेषांशीय मेष राशि की दशा में रक्तविकारसम्बन्धी पीड़ा, वृष की दशा में धन-धान्यों की वृद्धि, मिथुन की दशा में ज्ञानवृद्धि, कर्क में धनपति, सिंह की दशा में शत्रुबाधा, कन्या में स्त्री से सुख, तुला की दशा में राजा का मन्त्री, वृश्चिक की दशा में मृत्यु का भय एवं धनु की दशा में धन का लाभ होता है । इस प्रकार दशाकाल में शुभाशुभ फल का ज्ञान करना चाहिए ॥१-३॥

वृषांशीय राशियों का दशाफल

मकरे पापकर्माणि कुम्भे वाणिज्यतो धनम् ।
मीने सर्वार्थसिद्धिश्च वृश्चिके वह्नितो भयम् ॥४॥
तुलभे राजपूजा च कन्यायां शत्रुतो भयम् ।
कर्के पत्नीजने कष्टं सिंहभे नेत्रपीडनम् ॥५॥
मिथुने विषतो भीतिर्वृषस्य नवमांशके ॥५$\frac{1}{2}$॥

वृषांशीय मकर की दशा में पापकर्मों में प्रवृत्ति, कुम्भ में व्यापार से धनलाभ, मीन में समस्त कार्यों की सिद्धि, वृश्चिक में अग्निभय, तुला में राजा से पूजित, कन्या में शत्रु से भय, कर्कट में स्त्री को कष्ट, सिंह में नेत्रपीड़ा एवं मिथुन में विष का भय होता है ॥४-५$\frac{1}{2}$॥

मिथुनांशीय राशियों का दशाफल

विषभे धनलाभः स्यान्मेषे तु ज्वरसम्भवः ॥६॥
मीने च मातुलप्रीतिः कुम्भे शत्रुप्रवर्धनम् ।
मकरे चोरतो भीतिश्चापे विद्याविवर्धनम् ॥७॥
मेषे तु शस्त्रसंघातो वृषे तु कलहो भवेत् ।
मिथुने सुखमाप्नोति मिथुनांशे फलं त्विदम् ॥८॥

मिथुनांशीय वृष की दशा में धनलाभ, मेष में ज्वर की सम्भावना, मीन में मामा से प्रेम,

कुम्भ में शत्रु की वृद्धि, मकर में चोर से भय, धनु में विद्या की वृद्धि, मेष में शस्त्र से आघात, वृष में कलह एवं मिथुनांशीय मिथुन की दशा में सुख की प्राप्ति होती है ॥६-८॥

कर्कांशीय राशियों का दशाफल

कर्कटे सुखमाप्नोति सिंहे भूपालतो भयम्।
कन्यायां बन्धुतः सौख्यं तुलभे कीर्तिमाप्नुयात् ॥९॥
वृश्चिके च पितुः कष्टं चापे ज्ञानधनागमः।
मकरे त्वयशो लोके कुम्भे वाणिज्यतः क्षतिः ॥१०॥
मीने सुखमवाप्नोति कर्कांशे फलमीदृशम् ॥१०½॥

कर्कांशीय में कर्क राशि की दशा हो तो सुख की प्राप्ति, सिंह में राजा से भय, कन्या में बन्धुओं से सुख, तुला में यश की प्राप्ति, वृश्चिक में पिता को कष्ट, धनु में ज्ञान और धनागम, मकर में लोक में अपयश, कुम्भ में व्यापार से हानि एवं मीन में सुख की प्राप्ति होती है ॥९-१०½॥

सिंहांशीय राशियों का दशाफल

वृश्चिके कलहः पीडा तुलभे सुखसम्पदः ॥११॥
कन्यायां धनधान्यानि कर्के पशुगणाद् भयम्।
सिंहे सुखं च दुःखं च मिथुने शत्रुवर्धनम् ॥१२॥
वृषे च सुखसम्पत्तिः मेषे कष्टमवाप्नुयात्।
मीने तु दीर्घयात्रा स्यात् सिंहांशे फलमीदृशम् ॥१३॥

सिंहांशीय वृश्चिक की दशा में कलह और पीड़ा, तुला में सुख-सम्पत्ति, कन्या में धन-धान्य की प्राप्ति, कर्क में पशुओं से भय एवं सिंह में सुख और दुःख दोनों प्राप्त होते हैं। मिथुन में शत्रुवृद्धि, वृष में सुख-सम्पत्ति, मेष में कष्ट तथा मीन में लम्बी यात्रा होती है। ऐसा सिंहांशीय फल जानना चाहिए ॥११-१३॥

कन्यांशीय राशियों का दशाफल

कुम्भभे धनलाभः स्यान्मकरेऽपि धनागमः।
चापे भ्रातृजनात् सौख्यं मेषे मातृसुखं वदेत् ॥१४॥
वृषभे पुत्रसौख्यं च मिथुने शत्रुतो भयम्।
कर्के दारजनैः प्रीतिः सिंहे व्याधिविवर्धनम् ॥१५॥
कन्यायां च सुतोत्पत्तिः कन्यांशे फलमीदृशम् ॥१५½॥

कन्यांशीय कुम्भ की दशा में धनलाभ, मकर में भी धनागम, धनु में भाइयों से सुख, मेष में मातृसुख, वृष में पुत्रसुख, मिथुन में शत्रुभय, कर्क में स्त्री से प्रेम, सिंह में रोग की वृद्धि एवं कन्या में पुत्र की प्राप्ति होती है ॥१४-१५½॥

तुलांशीय राशियों का दशाफल

तुलभे धनसम्पत्तिर्वृश्चिके भ्रातृतः सुखम् ॥१६॥
पितृवर्गसुखं चापे मातृकष्टं मृगे वदेत् ।
कुम्भे वाणिज्यतो लाभं मीने च सुखसम्पदम् ॥१७॥
वृश्चिके च स्त्रियाः पीडा तुले च जलतो भयम् ।
कन्यायां सुखसम्पत्तिस्तुलांशे फलमीदृशम् ॥१८॥

तुलांशीय तुला की दशा में धन-सम्पत्ति, वृश्चिक में भाइयों से सुख, धनु में पितृवर्गादि से सुख, मकर में मातृकष्ट, कुम्भ में व्यापार से लाभ, मीन में सुख, वृश्चिक में स्त्री-पीड़ा, तुला में जल से भय एवं कन्या में सुख-सम्पत्ति; ऐसा तुलांशीय राशियों का दशाफल जानना चाहिए ॥१६-१८॥

वृश्चिकांशीय राशियों का दशाफल

कर्कभे धनहानिः स्यात् सिंहे भूपालतो भयम् ।
मिथुने भूमिलाभश्च वृषभे धनसम्पदः ॥१९॥
मेषे तु रक्तजा पीडा मीने च सुखमादिशेत् ।
कुम्भे वाणिज्यतो लाभो मकरे च धनक्षतिः ॥२०॥
चापे च सुखसम्पत्तिर्वृश्चिकांशे फलं त्विदम् ॥२०½॥

वृश्चिकांशीय कर्क की दशा में धननाश, सिंह में राजा से भय, मिथुन में भूमि का लाभ, वृष में धन-सम्पत्ति, मेष में रक्तविकार से पीड़ा, मीन में सुख, कुम्भ में व्यापार से लाभ, मकर में धनहानि एवं धनु में सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥१९-२०½॥

धनुरंशीय राशियों का दशाफल

मेषे च धनलाभः स्यात् वृषे भूमिविवर्द्धनम् ॥२१॥
मिथुने सर्वसिद्धिः स्यात् कर्कभे सुखसम्पदः ।
सिंहे सर्वसुखोत्पत्तिः कन्यायां कलहागमः ॥२२॥
तुले वाणिज्यतो लाभो वृश्चिके रोगजं भयम् ।
चापे पुत्रसुखं वाच्यं धनुरंशे फलं त्विदम् ॥२३॥

धनुरंशीय मेष की दशा में धनलाभ, वृष में भूमिवृद्धि, मिथुन में समस्त कार्यों की सिद्धि, कर्क में सुख-सम्पत्ति, सिंह में समस्त सुखों की उत्पत्ति, कन्या में कलह, तुला में व्यापार से लाभ, वृश्चिक में रोगभय एवं धनु में पुत्रसुख होता है ॥२१-२३॥

मकरांशीय राशियों का दशाफल

मकरे पुत्रलाभः स्यात् कुम्भे धनविवर्धनम् ।
मीने कल्याणमाप्नोति वृश्चिके पशुतो भयम् ॥२४॥
तुलभे त्वर्थलाभः स्यात् कन्यायां शत्रुतो भयम् ।

कर्कटे श्रियमाप्नोति सिंहे शत्रुजनाद् भयम् ॥२५॥
मिथुने विषतो भीतिर्मृगांशे फलमीदृशम् ॥२५½॥

मकरांशीय मकर की दशा में पुत्रलाभ, कुम्भ में धन की वृद्धि, मीन में कल्याण, वृश्चिक में पशुओं से भय, तुला में धनलाभ, कन्या में शत्रु से भय, कर्कट में धन की प्राप्ति, सिंह में शत्रुभय एवं मिथुन में विषभय होता है ॥२४-२५½॥

कुम्भांशीय राशियों का दशाफल

वृषभे धनसम्पत्तिर्मेषे नेत्ररुजो भयम् ॥२६॥
मीनभे दीर्घयात्रा स्यात् कुम्भे धनविवर्धनम् ।
मकरे सर्वसिद्धिः स्याच्चापे ज्ञानविवर्धनम् ॥२७॥
मेषे सौख्यविनाशः स्यात् वृषभे मरणं भवेत् ।
मिथुने सुखसम्पत्तिः कुम्भांशे फलमीदृशम् ॥२८॥

कुम्भांशीय वृष की दशा में धन-सम्पत्ति का लाभ, मेष में नेत्ररोगभय, मीन में लम्बी यात्रा, कुम्भ में धनवृद्धि, मकर में सर्वसिद्धि, धनु में ज्ञानवृद्धि, मेष में सुखनाश, वृष में मृत्युभय एवं मिथुन में सुख-सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥२६-२८॥

मीनांशीय राशियों का दशाफल

कर्कटे धनवृद्धिः स्यात् सिंहे राजाश्रयं वदेत् ।
कन्यायां धनधान्यानि तुले वाणिज्यतो धनम् ॥२९॥
वृश्चिके ज्वरजा पीडा चापे ज्ञानसुखोदयः ।
मकरे स्त्रीविरोधः स्यात् कुम्भे च जलतो भयम् ॥३०॥
मीने तु सर्वसौभाग्यं मीनांशे फलमीदृशम् ।
दशाद्यंशक्रमेणैव ज्ञात्वा सर्वफलं वदेत् ॥३१॥

मीनांशीय दशा में कर्क की दशा हो तो धनवृद्धि, सिंह में राज्याश्रय की प्राप्ति, कन्या में धन-धान्य की प्राप्ति, तुला में व्यापार से धनलाभ, वृश्चिक में ज्वर से पीड़ा, धनु में ज्ञान तथा सुखोदय, मकर में स्त्री से विरोध, कुम्भ में जल से भय एवं मीन में सभी प्रकार से सौभाग्योदय होता है। इस प्रकार दशा के प्रारम्भ से अंशादि का ज्ञान कर समस्त फल कहना चाहिए ॥२९-३१॥

क्रूरग्रहदशाकाले शान्तिं कुर्यात् विधानतः ।
ततः शुभमवाप्नोति तद्दशायां न संशयः ॥३२॥

क्रूर ग्रहों की दशा आने पर विधिपूर्वक शान्ति कराने पर अशुभ फल नष्ट होकर शुभ फल प्राप्त होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥३२॥

बृहत्पाराशरे शास्त्रे पूर्वार्द्धो भागमुत्तमम् ।
पद्मनाभेन व्याख्यातो भावार्थः पूर्णतां गतः ॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कालचक्रनवांशदशाफलाध्यायः ॥६७॥

अथाष्टकवर्गाध्याय: ॥६८॥

मैत्रेय उवाच

भगवन्! भवताऽऽख्यातं ग्रहभावादिजं फलम्।
बहूनामृषिवर्याणामाचार्याणां च सम्मतम्॥१॥
सङ्करात् तत्फलानां च ग्रहाणां गतिसङ्करात्।
इत्थमेवेति नो सर्वे ज्ञात्वा वक्तुमलं नरा:॥२॥
कलौ पापरतानां च मन्दा बुद्धिर्यतो नृणाम्।
अतोऽल्पबुद्धिगम्यं यत् शास्त्रमेतद् वदस्व मे॥३॥
तत्तत्कालग्रहस्थित्या मानवानां परिस्फुटम्।
सुखदु:खपरिज्ञानमायुषो निर्णयं तथा॥४॥

मैत्रेय ने कहा कि हे भगवन्! आपने अनेक ऋषि-मुनि और श्रेष्ठ आचार्यों के मतानुसार ग्रहजन्य और भावसम्बन्धी फलों को कहा है। परन्तु विभिन्न प्रकार के ग्रहों की गति से अनेक प्रकार के मिश्रित फल होने के कारण 'इत्थमेवेति' अर्थात् यही फल ठीक है—ऐसा कहना कठिन है। तात्पर्य यह है कि "यही फल सही है"—ऐसा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि कलियुग में पापाचारी मनुष्यों की बुद्धि मन्द हो गई है। इसलिए अल्प बुद्धि वालों को भी जो गम्य हो, जिसके द्वारा तात्कालिक ग्रहस्थितिवश मनुष्यों के सुख-दु:ख और आयुर्दाय का स्पष्ट ज्ञान हो सके, उस प्रकार के ज्ञान (शास्त्र) को मुझे बताने की कृपा करें॥१-४॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्! कथयामि तवाग्रत:।
लोकयात्रापरिज्ञानमायुषो निर्णयं तथा॥५॥
संकरस्याविरोधश्च शास्त्रस्यापि प्रयोजनम्।
जनानामुपकारार्थं सावधानमना: श्रृणु॥६॥

पराशर बोले—हे ब्रह्मन्! आपने अच्छा प्रश्न किया, जो अल्प बुद्धि वालों को भी ज्ञात हो जाता है। अब मैं आपके समक्ष मनुष्यों के सुख-दु:ख और आयुर्दाय के निष्कर्ष तथा पूर्वकथित फलों का विपरीत जिस प्रकार न हो, उस प्रकार इस शास्त्र को लोकोपकार हेतु कहता हूँ। आप सावधानपूर्वक एकाग्रचित्त होकर श्रवण करें॥५-६॥

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भावा: संज्ञानुरूपत:।
फलदा: शुभसंदृष्टा युक्ता वा शोभना मता:॥७॥
ते तूच्चादिभगै: खेटैर्न चास्तारिभनीचगै:।
पापैर्दृष्टयुता भावा: कल्याणेतरदायका:॥८॥

तैरस्तारिभनीचस्थैर्न च मित्रस्वभोच्चगैः ।
एवं सामान्यतः प्रोक्तं होराशास्त्रज्ञसूरिभिः ॥९॥
मयैतत् सकलं प्रोक्तं पूर्वाचार्यानुवर्तिना ।
आयुश्च लोकयात्रां च शास्त्रस्यास्य प्रयोजनम् ॥१०॥
निश्चेतुं तन्न शक्नोति वसिष्ठो वा बृहस्पतिः ।
किं पुनर्मनुजास्तत्र विशेषात्तु कलौ युगे ॥११॥

लग्न से व्यय भावपर्यन्त भावों में यदि शुभ ग्रह युत या दृष्ट हो तो अपने नामानुसार वे तत् तद् विषयों में शुभ फल देते हैं, अर्थात् लग्न में शुभ ग्रह युत या दृष्ट रहने पर शारीरिक सुख एवं धन में शुभ ग्रह युत या दृष्ट हो तो आर्थिक स्थिति अच्छी रहती है। एवमेव तृतीय में सहोदर-पराक्रमादि, चतुर्थ में गृह-मातृ, पञ्चम में पुत्र विद्यादि .... व्यय से व्ययादि का शुभाशुभ फल जानना चाहिए। उक्त शुभ फल तभी प्राप्त होते हैं जब वे ग्रह उच्च स्वराशि आदि शुभ स्थान में रहते हैं। अपने नीचादि अशुभ स्थान में रहने पर ग्रह शुभ फल नहीं देते। इसी प्रकार यदि पाप ग्रह नीचादि अशुभ स्थानों में रहें तो पाप ग्रहों से युत या दृष्ट भाव अपनी-अपनी संज्ञा के अनुरूप अशुभ फल प्रदान करने वाले होते हैं, लेकिन यदि वे पाप ग्रह भी अपने स्वराशि आदि शुभ स्थानों में रहें तो वे भी अशुभ फल नहीं देते हैं। इस प्रकार साधारणतया होराशास्त्र के मर्मज्ञ दैवज्ञों ने फल कहा है। मैंने भी उन्हीं पूर्वाचार्यों के मतानुसार फल कहा है। इस शास्त्र का मुख्य प्रयोजन है—जीवों के आयुर्दाय तथा सुख और दुःख को जानना। परन्तु ग्रहगति अत्यन्त सूक्ष्म तथा गहन होने के कारण वसिष्ठ या बृहस्पति भी इस विषय का निश्चय नहीं कर पाते हैं तो फिर साधारण मनुष्य, उसमें भी कलियुग में तो निश्चय कर पाना सम्भव ही नहीं है ॥७-११॥

सामान्यांशो विशेषांशो ज्योतिःशास्त्रं द्विधोदितम् ।
प्रोक्तं सामान्यभागस्तु निश्चयांशस्तु कथ्यते ॥१२॥

ज्योतिष शास्त्र में सामान्य तथा विशेष रूप से दो भाग है। उसमें से अब तक सामान्य भाग को कहा गया है; अब विशेष भाग को कहा जाता है ॥१२॥

यथा लग्नाच्च चन्द्राच्च ग्रहाणां भावजं फलम् ।
तथाऽन्येभ्योऽपि खेटेभ्यो विचिन्त्यं दैवविद्वरैः ॥१३॥
अतो रव्यादिखेटानां सलग्नानां पृथक्-पृथक् ।
अष्टानां सर्वभावोत्थं यथोक्तमशुभं शुभम् ॥१४॥
ज्ञात्वाऽऽदौ करणं स्थानं बिन्दुरेखोपलक्षितम् ।
क्रमादष्टकवर्गस्य वाच्यं स्पष्टफलं यथा ॥१५॥

जिस प्रकार लग्न तथा चन्द्रमा से ग्रहों के द्वादश भावस्थ ग्रहों का शुभाशुभ फल कहा गया है, उसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी लग्नादि द्वादश भावों के शुभाशुभ फल होते हैं। इसलिए सूर्यादि ७ ग्रह तथा लग्न—इन आठों के क्रम से करणसंज्ञक अशुभ स्थान को

बिन्दु से तथा स्थानसंज्ञक शुभ भाव को रेखा से उपलक्षित कर निम्नानुसार शुभाशुभ फल बताना चाहिए ।।१३-१५।।

सूर्य के करण (अशुभ स्थान)

तनुस्वायुस्त्रिरिष्फेषु पञ्च कामे सुखोऽर्णवाः ।
अरौ भाग्ये त्रयः पुत्रे षट् करौ खे भवे च भूः ।।१६।।

सूर्य से १, २, ८, ३, १२ भावों में पाँच ग्रह करणकारक होते हैं। इसी प्रकार ७, ४ भाव में ४ ग्रह, ६, ९ भाव में ३ ग्रह, ५ भाव में ६ ग्रह, १० में २ ग्रह और ११ भाव में १ ग्रह करण-(बिन्दु)-प्रद होते हैं ।।१६।।

और स्पष्ट रूप से कहते हैं

लग्नेदु-जीव-शुक्र-ज्ञास्तनौ स्वे मरणेऽपि च ।
रवि-भौमार्कि-चन्द्रार्या व्यये ज्ञेन्दुसितार्यकाः ।।१७।।
सुखे होरेन्दुशुक्राश्च धर्मेऽर्कार्किकुजा अरौ ।
होराज्ञार्येन्दवः कामे भवे दैत्येन्द्रपूजितः ।।१८।।
सहजेऽर्कार्किशुक्रार्यभौमाः खे गुरु-भार्गवौ ।
सुतेऽर्कार्कीन्दु-लग्नार-शुक्राः स्युः करणं रवेः ।।१९।।

सूर्य के १,२, ८ भावों में लग्न, चन्द्र, गुरु, शुक्र और बुध—ये ५ ग्रह तथा द्वादश भाव में सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र और गुरु—ये ५ ग्रह, चतुर्थ भाव में बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरु—ये ४ ग्रह, नवम स्थान में लग्न, चन्द्र और शुक्र—ये ३ ग्रह, षष्ठ भाव में रवि, शनि और मंगल—ये ३ ग्रह, सप्तम में लग्न, बुध, गुरु और चन्द्र—ये ४ ग्रह, एकादश में केवल शुक्र, तृतीय स्थान में सूर्य, शनि, शुक्र, गुरु और मंगल—ये ५ ग्रह, दशम स्थान में गुरु और शुक्र २ ग्रह एवं पञ्चम भाव में सूर्य, शनि, चन्द्र, लग्न, मंगल और शुक्र—ये ६ ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं ।।१७-१९।।

उदाहरण—अष्टक वर्ग में शुभाशुभ का ज्ञान करने हेतु १४ तिर्यक् रेखा एवं १० खड़ी रेखा करने पर ११७ कोष्ठ वाला चक्र बनेगा। ऊपर तिर्यक् कोष्ठ में सूर्यादि ७ ग्रहों को लग्न सहित अंकित करें तथा नीचे बाँयें तरफ ऊर्ध्वाध: कोष्ठ में क्रम से १ से १२ स्थान लिखकर उक्त श्लोक के अनुसार जिस-जिस स्थान में जो-जो ग्रह करणकारक कहा गया है, उस-उस स्थान में उस ग्रह के सामने बिन्दु लिखने से पूर्वकथित करण स्पष्टतया अवगत हो जायेगा। अर्थात् जिस ग्रह के नीचे जिन भावों में बिन्दु पड़ेंगे उस ग्रह से अष्टक वर्ग वाला ग्रह अपनी गति के अनुसार जब-जब उन भावों में जायेगा तब-तब अनिष्ट फल प्राप्त होगा, साथ ही शेष स्थानों में गतिवश जब जायेगा तब शुभफल देने वाला होगा।

सूर्याष्टक चक्र में शुभाशुभ स्थान

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	बिन्दु सं.
१		०		०	०	०		०	५
२		०		०	०	०		०	५

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	बिन्दु सं.
३	०		०		०	०	०		५
४		०		०	०	०			४
५	०	०	०			०	०	०	६
६	०		०				०		३
७		०		०	०			०	४
८		०		०	०	०		०	५
९		०				०		०	३
१०					०	०			२
११						०			१
१२	०	०	०		०		०		५

सूर्य के अष्टक वर्ग में शुभाशुभ-ज्ञान हेतु चक्र का अवलोकन करें : जैसे सूर्य के सामने ३, ५, ६, १२ स्थानों में बिन्दु पड़े हैं, इसलिए ये ४ स्थान अशुभकारक हैं, अर्थात् जन्मकाल में सूर्य जहाँ है वहाँ से गिनकर इन स्थानों में सूर्य जब-जब गोचर से जायेगा, तब-तब अशुभ होगा। शेष १, २, ४, ७, ८, ९, १०, ११ स्थान में सूर्य जब-जब गोचर से जायेगा तब तब शुभ फलकारक होगा। सूर्य के समान ही मङ्गल एवं शनि का भी फल होता है, अर्थात् ३, ५, ६, १२ स्थानों में अशुभ और शेष स्थानों में शुभ फलकारक होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा से सूर्य १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ स्थानों में अशुभ एवं शेष स्थानों में शुभ होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी बिन्दुस्थान अशुभ एवं शेष स्थान शुभ जानना चाहिए।

चन्द्रमा से करणसंख्या तथा करणप्रद ग्रह

भाग्यस्वयोश्च षड् वेश्ममृतिहोरासु पञ्च च।
मानदुश्चिक्यव्ययोरेकः सुते वेदा अरिस्त्रियोः ॥२०॥
त्रयो व्ययेष्टावाये च शून्यं शीतकरस्य तु।
होरार्कारार्कि-भृगवोऽङ्गज्ञार्केन्द्वार्कि-भार्गवाः ॥२१॥
जीवोऽर्कार्कीन्दुलग्नारा होरेन्दु-गुरु-भास्कराः।
सितज्ञार्याः कुजतनुमन्दास्ते सितशीतगू ॥२२॥
होरार्कारार्किविज्जीवाः शनिः खं सकलाः क्रमात् ॥२२½॥

चन्द्रमा के ९, २ स्थान में ६ ग्रह; ४, ८, १ स्थान में ५ ग्रह; १०, ३ स्थान में १ ग्रह; ५ स्थान में ४ ग्रह; ६, ३ स्थान में ३ ग्रह; १२ स्थान में ८ ग्रह एवं ११ स्थान में शून्य **अर्थात्** सभी ग्रह करणप्रद होते हैं। जैसे प्रथम स्थान में सूर्य, लग्न, मङ्गल, शनि और शुक्र—ये ५ ग्रह; २ स्थान में गुरु, रवि, शनि, चन्द्र, लग्न और मंगल—ये ६ ग्रह; तृतीय स्थान में केवल गुरु; चतुर्थ स्थान में रवि, शनि, चन्द्र, लग्न और मंगल—ये पाँच ग्रह; पञ्चम स्थान में लग्न, चन्द्र, गुरु और सूर्य—ये ४ ग्रह; षष्ठ में शुक्र, बुध और गुरु—

ये ३ ग्रह; सप्तम में मंगल, लग्न और शनि—ये ३ ग्रह; अष्टम में शुक्र, चन्द्र, लग्न, रवि, मंगल और शनि—ये ६ ग्रह; नवम स्थान में लग्न, रवि, मंगल, बुध और गुरु—ये छ: ग्रह; दशम स्थान में केवल शनि, एकादश स्थान में शून्य ग्रह और द्वादश स्थान में सभी ग्रह बिन्दुप्रद होते हैं। उक्त स्थानों के अतिरिक्त स्थान रेखाप्रद होते हैं ॥२०-२२½॥

चन्द्रकरणप्रद चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	०		०			०	०	०	५
२	०	०		०		०	०	०	६
३					०				१
४	०	०	०					०	४
५	०	०			०			०	४
६				०	०	०			३
७			०				०	०	३
८		०	०			०	०	०	५
९	०		०	०	०		०	०	६
१०							०		१
११									शून्य
१२	०	०	०	०	०	०	०	०	८

इस प्रकार उक्त चक्र को देखने से स्पष्ट अवगत होता है कि जन्मकुण्डली में सूर्य जहाँ बैठा हो वहाँ से १, २, ४, ५, ९, १२ स्थानों में जब-जब चन्द्रमा जायेगा तब-तब अशुभ और इनसे भिन्न स्थानों में जब चन्द्रमा जायेगा तब शुभ फलकारक होगा। बुध जहाँ बैठा हो वहाँ से जब चन्द्रमा १, २, ४, ७, ८, ९, १०, १२ स्थानों में जायेगा तब अशुभ और इनसे भिन्न स्थानों में शुभ होगा। इसी प्रकार से अन्य ग्रहों से भी विचार कर शुभाशुभ फल जानना चाहिए।

भौम करणसंख्या तथा करणप्रद ग्रह

व्ययवेश्मसुतस्त्रीषु षट् सप्त धनधर्मयोः ॥२३॥
होरामृत्व्वोः शरा वेदा विक्रमे खे त्रयः क्षते।
द्वौ भवे शून्यमेवं स्यात् करणं भूमिजस्य तु ॥२४॥
कुजस्यार्केन्दुविज्जीवासता लग्नशनी च तु।
सितारगुरुमन्दाः स्युर्धर्मोक्तेषु कुजं विना ॥२५॥
चन्द्रबुधगुरुशुक्रार्किलग्नानि कुजभास्करौ।
ज्ञेन्द्वर्कसितलग्नार्या एषु शुक्रं विना ततः ॥२६॥
विना शनिं सप्त धर्मे सितेन्दुज्ञा वियत्ततः।
अर्कार्किज्ञेन्दुलग्नाराः करणं प्रोच्यते क्रमात् ॥२७॥

मंगल से १२, ४, ५, ६ स्थानों में ६ ग्रह; २, ९ स्थानों में ७ ग्रह; १, ८ स्थानों में ५ ग्रह; ३ स्थान में ४ ग्रह; दशम में ३ ग्रह; षष्ठ में २ ग्रह और ११ स्थान में शून्य ग्रह करणप्रद होते हैं।

जैसे प्रथम स्थान में सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र—ये ५ ग्रह; द्वितीय स्थान में लग्न, शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र—ये ७ ग्रह; तृतीय में शुक्र, मंगल, गुरु और शनि—ये ४ ग्रह; चतुर्थ और नवम में कथित ग्रहों में से मंगल को छोड़कर शेष ग्रह अर्थात् रवि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र और लग्न—ये ६ ग्रह; पञ्चम में चन्द्र, मंगल, गुरु, शुक्र, शनि और लग्न—ये ५ ग्रह; षष्ठ स्थान में मंगल और शनि—ये २ ग्रह; सप्तम स्थान में बुध, चन्द्र, रवि, शुक्र, लग्न और गुरु—ये ६ ग्रह; अष्टम में सप्तम में कथित शुक्र को छोड़कर शेष सभी ग्रह; नवम स्थान में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और लग्न—ये ७ ग्रह; दशम स्थान में शुक्र, चन्द्र और बुध—ये ३ ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह अर्थात् एक भी नही एवं द्वादश स्थान में रवि, शनि, बुध, चन्द्र, लग्न और मंगल—ये ६ ग्रह करण बिन्दुकारक होते हैं।

भौमस्पष्टार्थ चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	०	०		०	०	०			५
२	०	०		०	०	०	०	०	७
३			०		०	०	०		४
४	०	०		०	०	०		०	६
५		०	०		०	०	०	०	६
६			०				०		२
७	०	०		०	०	०		०	६
८	०	०		०	०			०	५
९	०	०	०	०	०	०		०	७
१०		०		०		०			३
११									शून्य
१२	०	०	०	०			०	०	६

भौम स्पष्टार्थ चक्र देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जन्माङ्ग चक्र में सूर्यनिष्ठ राशि से १, २, ४, ७, ८, ९, १२ स्थानों में गोचर से जब-जब मंगल जायेगा तब-तब अशुभ फलकारक होगा एवं इससे भिन्न स्थानों में जब-जब मंगल जायेगा तब-तब शुभ फलकारक होगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जानना चाहिए॥२३-२७॥

बुध-करणसंख्या और ग्रह

तनुस्वगृहकर्मारिधर्मेष्वग्निर्मृतौ करौ।
भ्रातृस्त्रियो रसा लाभे शून्यं पुत्रे व्यये शराः॥२८॥

बुधस्यर्केन्दुगुरवो गुरुसूर्यबुधाः क्रमात् ।
लग्नार्कारार्किचन्द्रार्या ज्ञार्कार्या हि बुधस्य तु ॥२९॥
जीवारेन्द्वार्किलग्नानि शुक्रमन्नधरासुताः ।
ज्ञेन्दुलग्नार्कशुक्रार्या ज्ञार्कौ जीवेन्दुलग्नकाः ॥३०॥
अर्कार्यशुक्राः शून्यं च होरेन्द्वारार्किभार्गवाः ॥३०$\frac{१}{२}$॥

बुध से १, २, ४, १०, ६, ९ स्थानों में ३ ग्रह; ८ में २ ग्रह; तृतीय एवं सप्तम स्थान में ६ ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह एवं ५, १२ स्थान में ५ ग्रह करण होते हैं। जैसे—प्रथम में सूर्य, चन्द्र और गुरु—ये ३ ग्रह; द्वितीय स्थान में गुरु, शुक्र और बुध—ये ३ ग्रह; तृतीय स्थान में लग्न, सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र और गुरु—ये ६ ग्रह; चतुर्थ स्थान में बुध, सूर्य और गुरु—ये ३ ग्रह; पञ्चम में गुरु, मंगल, चन्द्र, शनि और लग्न—ये ५ ग्रह; षष्ठ में शुक्र, शनि और मंगल—ये ३ ग्रह; सप्तम में बुध, चन्द्र, लग्न, रवि, शुक्र और गुरु—ये ६ ग्रह; अष्टम में बुध एवं रवि—२ ग्रह; नवम में गुरु, चन्द्र और लग्न—ये ३ ग्रह; दशम में रवि, गुरु और शुक्र—ये ३ ग्रह; एकादश में शून्य ग्रह एवं द्वादश में लग्न, चन्द्र, मंगल, शनि और शुक्र—ये ५ ग्रह करण (बिन्दु) कारक होते हैं ॥२८-३०$\frac{१}{२}$॥

बुधस्पष्टार्थ चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	०	०			०				३
२	०			०	०				३
३	०	०	०		०		०	०	६
४	०			०	०				३
५		०	०		०		०	०	५
६			०			०	०		३
७	०	०		०	०	०		०	६
८	०			०					२
९		०			०			०	३
१०	०				०	०			३
११									शून्य
१२		०	०			०	०	०	५

इस बुधस्पष्टार्थ चक्र से स्पष्ट अवगत होता है कि जन्मसमय में सूर्य जिस स्थान में बैठा हो वहाँ से १, २, ३, ४, ७, ८, १० स्थानों में बुध जब-जब जायेगा तब-तब अशुभकारक समय रहेगा एवं इससे भिन्न स्थानों में बुध गोचर से जब-जब जायेगा तब-तब शुभकारक समय रहेगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी जानना चाहिए ॥२८-३०$\frac{१}{२}$॥

गुरु के करण संख्या और ग्रह

रूपं धनाययोः खे द्वौ व्यये सप्त क्षतेऽर्णवाः ॥३१॥
मृतिविक्रमयोः पञ्च गुरोः शेषेषु वह्नयः।
लग्ने शुक्रेन्दुमन्दाः स्वे आये मन्दश्च विक्रमे ॥३२॥
लग्नारेन्दुज्ञभृगवः सुतेर्कार्यकुजा गृहे।
शुक्रमन्देन्दवो द्यूने बुध-शुक्र-शनैश्चराः ॥३३॥
जीवारार्केन्दवः शत्रौ सर्वे मन्दं विना व्यये।
कर्मणीन्दुशनी धर्मे मन्दारगुरवो मृतौ ॥३४॥
लग्नार्किसितचन्द्रज्ञाः करणं च गुरोरिदम् ॥३४ $\frac{१}{२}$॥

गुरु से द्वितीय एवं एकादश स्थान में १ ग्रह, दशम में २ ग्रह, द्वादश में ७ ग्रह, षष्ठ स्थान में ४ ग्रह, अष्टम एवं तृतीय स्थान में ५ ग्रह तथा शेष स्थानों में ३ ग्रह करण होते हैं। जैसे गुरु से १ स्थान में शुक्र, चन्द्र एवं शनि—ये ३ ग्रह; द्वितीय तथा आय स्थान में केवल शनि ग्रह; तृतीय स्थान में मंगल, चन्द्र, शुक्र, लग्न और बुध—ये ५ ग्रह; पञ्चम स्थान में सूर्य, गुरु और मंगल—ये ३ ग्रह; गृह (चतुर्थ) स्थान में शुक्र, शनि और चन्द्र—ये ३ ग्रह; सप्तम स्थान में बुध, शुक्र और शनि—ये ३ ग्रह; षष्ठ स्थान में गुरु, मंगल, सूर्य और चन्द्र—ये ४ ग्रह; द्वादश स्थान में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह; दशम स्थान में चन्द्र और शनि—ये २ ग्रह; नवम में शनि, मंगल और गुरु—ये ३ ग्रह तथा अष्टम स्थान में लग्न, शनि, शुक्र, चन्द्र और बुध—ये ५ ग्रह करणकारक होते हैं।

स्पष्टार्थ गुरुकरणचक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१		०				०	०		३
२							०		१
३		०	०	०		०		०	५
४		०				०	०		३
५	०		०		०				३
६	०	०	०		०				४
७				०		०	०		३
८		०		०		०	०	०	५
९			०		०		०		३
१०		०					०		२
११							०		१
१२	०	०	०	०	०	०		०	७

इस चक्र के अनुसार जिस ग्रह से जिस स्थान में शून्य पड़े हैं, उस स्थान में गोचर से गुरु जाने पर अशुभ और अन्य स्थान में जाने पर शुभ फलकारक होता है ॥३१-३४$\frac{1}{2}$॥

शुक्र करण संख्या तथा ग्रह

सुतायुर्विक्रमेष्वक्षि तनुस्वव्ययखेष्विषुः ॥३५॥
अष्टौ स्त्रियामरौ षड् भूर्धर्मे मित्रेऽक्षि खं भवे।
लग्ने स्वेऽर्कारविज्जीवमन्दाः सर्वे च कामभे ॥३६॥
अर्कार्यौ विक्रमस्थाने सुतेऽर्कारौ शुभे रविः।
सुखेऽर्कबुधजीवाः स्युर्भौमज्ञौ मृतिभे द्विज! ॥३७॥
शुक्रार्केन्द्वार्किलग्नार्याः शत्रौ शून्यं भवे व्यये।
होरार्किबुधशुक्रार्यास्तन्वारज्ञेन्द्विनाश्च खे ॥३८॥

पञ्चम, अष्टम एवं तृतीय स्थान में २ ग्रह; प्रथम, द्वितीय, द्वादश एवं दशम में ५ ग्रह; सप्तम में ८ ग्रह, षष्ठ में ६ ग्रह, नवम में १ ग्रह, चतुर्थ स्थान में ३ ग्रह एवं एकादश में शून्य ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं। जैसे शुक्र से १, २ भाव में सूर्य, मंगल, बुध, गुरु और शनि—ये ५ ग्रह; सप्तम में समस्त ग्रह; तृतीय में सूर्य और गुरु—ये २ ग्रह; पञ्चम में रवि और मंगल—ये २ ग्रह; नवम में केवल सूर्य ग्रह; चतुर्थ में सूर्य, बुध और गुरु—ये ३ ग्रह; अष्टम स्थान में मंगल और बुध—ये २ ग्रह; षष्ठ भाव में शुक्र, रवि, चन्द्र, शनि, लग्न और गुरु—ये ६ ग्रह; एकादश स्थान में शून्य ग्रह; द्वादश स्थान में लग्न, शनि, बुध, शुक्र और गुरु—ये ५ ग्रह तथा दशम स्थान में लग्न, मंगल, बुध, चन्द्र और सूर्य—ये ५ ग्रह करण-(बिन्दु)-कारक होते हैं ॥३५-३८॥

शुक्र-करणबोधक-चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	०		०	०	०		०		५
२	०		०	०	०		०		५
३	०				०				२
४	०			०	०				३
५	०		०						२
६	०	०			०	०	०	०	६
७	०	०	०	०	०	०	०	०	८
८				०					२
९	०		०						१
१०	०	०	०	०				०	५
११									शून्य
१२				०	०	०	०	०	५

इस चक्र से यह जानना चाहिए कि बिन्दुयुत स्थान अशुभ और बिन्दुरहित स्थान शुभ होते हैं। ग्रह अपने गतिवश सभी स्थानों में भ्रमण करते हैं ॥३५-३८॥

शनि-करणसंख्या और ग्रह

स्वस्त्रीधर्मेषु सप्ताऽङ्गं मृतिहोरागृहेषु च।
अज्ञाभ्रातृव्यये वेदा रूपं शत्रौ सुते शराः ॥३९॥
आये शून्यं शनेरेवं करणं प्रोच्यते बुधैः।
गृहे तनौ च लग्नार्कौ स्वस्त्रियोश्च रविं विना ॥४०॥
हित्वा धर्मे बुधं माने लग्नाररविचन्द्रजान्।
ततो भ्रातरि जीवार्कबुधशुक्राः क्षते रविः ॥४१॥
व्यये लग्नेदुमन्दार्काः सितार्केन्दुज्ञलग्नकाः।
सुते मृतौ बुधार्कौ च हित्वाऽऽये खं शनेर्विदः ॥४२॥

शनि से द्वितीय, सप्तम एवं नवम में ७ ग्रह; अष्टम, लग्न एवं चतुर्थ स्थान में ६ ग्रह; दशम, तृतीय एवं द्वादश में ४ ग्रह; षष्ठ में १ ग्रह; पञ्चम में ५ ग्रह एवं एकादश में शून्य ग्रह—इस प्रकार शनि के करण (बिन्दु) हैं। जैसे शनि से ४, १ स्थान में रवि को छोड़ कर शेष सभी ग्रह; नवम में बुध को छोड़कर शेष सभी ग्रह; दशम में लग्न, मंगल, रवि और बुध—ये ४ ग्रह, तृतीय में गुरु, रवि, बुध और शुक्र—ये ४ ग्रह; षष्ठ स्थान में केवल रवि; द्वादश में लग्न, चन्द्र, शनि और रवि—ये ४ ग्रह; पञ्चम में शुक्र, रवि, चन्द्र, बुध और लग्न—ये ५ ग्रह; अष्टम में बुध और रवि को छोड़कर शेष सभी ग्रह करण होते हैं तथा एकादश में शून्य ग्रह करणप्रद होते हैं।

स्पष्टार्थबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१		०	०	०	०	०	०		६
२		०	०	०	०	०	०	०	७
३	०			०	०	०			४
४		०	०	०	०	०	०		६
५	०	०		०		०		०	५
६	०								१
७		०	०	०	०	०	०	०	७
८		०	०		०	०	०	०	६
९	०	०	०		०	०	०	०	७
१०		०			०	०	०		४
११									शून्य
१२	०	०					०	०	४

इस चक्र से बिन्दुयुत स्थान अशुभ एवं बिन्दुरहित स्थान शुभ होते हैं।

यद्यपि ग्रन्थकर्ता ने 'उक्तान्ये स्थानदातारः' कहकर बिन्दुप्रद स्थान से भिन्न स्थान रेखाप्रद शुभ स्थल को सूचित कर दिया है; फिर भी मन्द बुद्धि वालों की सुगमता के लिए रेखाप्रद स्थानों को भी कह रहे हैं।

सूर्य के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

उक्ताऽन्यो स्थानदातार इति स्थानं विदुर्बुधाः।
अथ स्थानग्रहान् वक्ष्ये सुखबोधाय सूरिणाम्॥४३॥
स्वायुस्तनुषु मन्दारसूर्या जीवबुधौ सुते।
विक्रमे ज्ञेन्दुलग्नानि लग्नार्कार्किकुजा गृहे॥४४॥
ते च ज्ञेन्दू खभे चाऽऽये सर्वे शुक्रं विना व्यये।
लग्नशुक्रबुधाः शत्रौ ते च जीवसुधाकरौ॥४५॥
द्यूनेऽर्कारार्किशुक्राश्च धर्मेऽर्कारार्किविद्गुरुः॥४५½॥

पूर्वोक्त करण-(बिन्दु)-स्थान से ही अन्य स्थान (रेखाप्रद) भी विद्वानों को जानना चाहिए; फिर भी अब मैं पण्डितों की सुगमता के लिए रेखाप्रद स्थानों को कहता हूँ। सूर्य के द्वितीय, अष्टम एवं लग्नस्थान में शनि, मंगल एवं सूर्य; पञ्चम में गुरु एवं बुध; तृतीय में बुध, चन्द्र एवं लग्न; चतुर्थ में लग्न, सूर्य, शनि एवं मंगल; दशम में लग्न, सूर्य, शनि, मंगल, बुध एवं चन्द्रमा; एकादश में शुक्र को छोड़कर शेष सभी ग्रह; द्वादश में लग्न, शुक्र एवं बुध; षष्ठ में लग्न, शुक्र, बुध तथा गुरु एवं चन्द्रमा; सप्तम में सूर्य, मंगल, शनि एवं शुक्र तथा नवम में सूर्य, मंगल, शनि, बुध और गुरु—ये सभी रेखाप्रद होते हैं॥४३-४५½॥

सूर्य के रेखाबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	।		।				।		३
२	।		।				।		३
३		।		।				।	३
४	।		।				।	।	४
५				।	।				२
६		।		।	।	।		।	५
७	।		।			।	।		४
८	।		।				।		३
९	।		।	।	।		।		५
१०	।	।	।	।			।	।	६
११	।	।	।	।		।	।	।	७
१२				।	।	।			३

रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
१	३	१	३	५	६	१	३
२	६	२	५	६	७	२	४
४	१०	४	६	९	१२	४	६
७	११	७	९	११	०	७	१०
८	०	८	१०	०	०	८	११
९	०	९	११	०	०	०	१२
१०	०	१०	१२	०	०	१०	०
११	०	११	०	०	०	११	०
०	०	०	०	०	०	०	०

चन्द्रमा के रेखाकारक ग्रह और स्थान

ज्ञेन्दुजीवाः कुजार्यौ ज्ञार्केन्द्वारार्कितनूशनाः ॥४६॥
जीवशुक्रबुधा भौमबुधशुक्रशनैश्चराः ।
रवीन्द्वारार्किलग्नानि रवीन्द्वर्यज्ञभार्गवाः ॥४७॥
अर्कज्ञजीवाः शुक्रेन्दू ते च तौ लग्नभूसुतौ ।
सर्वे शून्यं क्रमात्प्रोक्तं स्थानं शीतकरस्य च ॥४८॥

चन्द्रमा से प्रथम स्थान में बुध, चन्द्र एवं गुरु; द्वितीय में मंगल एवं गुरु; तृतीय में बुध, रवि, चन्द्र, मंगल, शनि, लग्न एवं शुक्र; चतुर्थ में गुरु, शुक्र एवं बुध; पञ्चम में मंगल, बुध, शुक्र एवं शनि; षष्ठ में रवि, चन्द्र, मंगल, शनि एवं लग्न; सप्तम में सूर्य, चन्द्र, गुरु, बुध और शुक्र; अष्टम स्थान में रवि, बुध एवं गुरु; नवम स्थान में शुक्र एवं चन्द्र; दशम में सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, लग्न तथा मंगल एवं एकादश स्थान में सभी ग्रह रेखाप्रद होते हैं। द्वादश स्थान में कोई भी ग्रह रेखाप्रद नहीं होता ॥४६-४८॥

चन्द्रमा के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१		।		।	।				३
२			।		।				२
३	।	।	।	।		।	।	।	७
४				।	।	।			३
५			।	।		।	।		४
६	।	।	।				।	।	५
७	।	।		।	।	।			५
८	।			।	।				३
९		।				।			२
१०	।	।	।	।	।	।		।	७
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२									शून्य

चन्द्र के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
३	१	२	१	१	३	३	३
६	३	३	३	२	४	५	६
७	६	५	४	४	५	६	१०
८	७	६	५	७	७	११	११
१०	९	१०	७	८	९	०	०
११	१०	११	८	१०	१०	०	०
०	११	०	१०	११	११	०	०
०	०	०	११	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०	०	०

मंगल के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नमन्दकुजा भौमो होराज्ञेन्दुदिनाधिपाः ।
मन्दारौ ज्ञरवी ज्ञेन्दुजीवार्कतनुभार्गवाः ॥४९॥
मन्दारौ तौसितश्चार्किः कुजार्कार्यार्किलग्नकाः ।
सर्वे गुरुसितौ स्थानं भौमस्यैवं बिदुर्बुधाः ॥५०॥

मंगल के प्रथम स्थान में लग्न, शनि और मंगल; द्वितीय में केवल मंगल; तृतीय स्थान में लग्न, बुध, चन्द्र और सूर्य; चतुर्थ में शनि एवं मंगल; पञ्चम में बुध एवं रवि; षष्ठ में बुध, चन्द्र, गुरु, सूर्य, लग्न एवं शुक्र; सप्तम में शनि एवं मंगल; अष्टम में शनि, मंगल और शुक्र; नवम में केवल शनि; दशम में मंगल, सूर्य, गुरु, शनि एवं लग्न; एकादश में समस्त ग्रह एवं द्वादश स्थान में गुरु और शुक्र—ये ग्रह रेखाकारक होते हैं ।।४९-५०।।

मंगल के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१			।				।	।	३
२			।						१
३	।	।		।				।	४
४			।				।		२
५	।			।					२
६	।	।		।	।	।		।	६
७			।				।		२
८			।			।	।		३
९							।		१
१०	।		।		।		।	।	५
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२					।	।			२

मंगल के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
३	३	१	३	६	६	१	१
५	६	२	५	१०	८	४	३
६	११	४	६	११	११	७	६
१०	०	७	११	१२	१२	८	१०
११	०	८	०	०	०	९	११
०	०	१०	०	०	०	१०	०
०	०	११	०	०	०	११	०

बुधाष्टक वर्ग में रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नमन्दारशुक्रज्ञ लग्नारेन्दुसितार्कजाः ।
शुक्रज्ञौ लग्नचन्द्रार्किसिताराज्ञार्कभार्गवाः ॥५१॥
जीवज्ञार्केन्दुलग्नानि भूमिपुत्रशनैश्चरौ ।
तौ च लग्नेन्दुशुक्रार्या मन्दारार्कज्ञभार्गवाः ॥५२॥
लग्नमन्दारविच्चन्द्राः सर्वे जीवज्ञभास्कराः ॥५२ $\frac{1}{2}$॥

स्वाश्रित स्थान से प्रथम में लग्न, शनि, मंगल, शुक्र एवं बुध; द्वितीय स्थान में लग्न, मंगल, चन्द्र, शुक्र और शनि; तृतीय में शुक्र एवं बुध; चतुर्थ में लग्न, चन्द्र, शनि, शुक्र एवं मंगल; पञ्चम में बुध, सूर्य एवं शुक्र; षष्ठ स्थान में गुरु, बुध, सूर्य, चन्द्र एवं लग्न; सप्तम में मंगल एवं शनि; अष्टम में मंगल, शनि, लग्न, चन्द्र, शुक्र एवं गुरु; नवम में शनि, मंगल, सूर्य, बुध एवं शुक्र; दशम में लग्न, शनि, मंगल, बुध एवं चन्द्र; एकादश में समस्त ग्रह तथा द्वादश में गुरु, बुध और सूर्य—ये ग्रह रेखाप्रद होते हैं ॥५१-५२ $\frac{1}{2}$॥

बुध के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	लग्न	योग
१			।	।		।	।	।	५
२		।	।			।	।	।	५
३				।		।			२
४		।	।			।	।	।	५
५	।			।		।			३
६	।	।		।	।			।	५
७			।				।		२
८		।	।		।	।	।	।	६
९	।		।	।		।	।		५
१०		।	।	।			।	।	५
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२	।			।	।				३

बुध के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
५	२	१	१	६	१	१	१
६	४	२	३	८	२	२	२
९	६	४	५	११	३	४	४
११	८	७	६	१२	४	७	६
१२	१०	८	९	०	५	८	८
०	११	९	१०	०	८	९	१०
०	०	१०	११	०	९	१०	११
०	०	११	१२	०	११	११	०

गुरु के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

गुरोर्लग्ने सुखे जीवलग्नारार्कबुधा धने ॥५३॥
चन्द्रशुक्रौ च दुश्चिक्ये मन्दार्यार्काः शनिर्व्यये ।
सुते शुक्रेन्दुलग्नज्ञमन्दाश्चन्द्रं विना त्वरौ ॥५४॥
लग्नारार्याऽर्केन्दवोऽस्ते मृतौ जीवार्कभूसुताः ।
धर्मे शुक्रार्कलग्नेन्दुबुधा मन्दं विनाऽऽयभे ॥५५॥
माने गुरुबुधारार्कशुक्रहोरास्तथा विदुः ॥५५$\frac{1}{2}$॥

गुरु के अष्टक वर्ग में अपने-अपने आश्रित स्थान से प्रथम तथा चतुर्थ स्थानों में गुरु, लग्न, मंगल, रवि एवं बुध; द्वितीय में गुरु, लग्न, मंगल, रवि, बुध, चन्द्र और शुक्र; तृतीय में शनि, गुरु एवं रवि; द्वादश स्थान में केवल शनि; पञ्चम में शुक्र, चन्द्र, लग्न, बुध एवं शनि; षष्ठ स्थान में पञ्चम स्थान में कथित ग्रहों में से चन्द्रमा को छोड़कर शेष सभी ग्रह; सप्तम स्थान में लग्न, मंगल, गुरु, रवि एवं चन्द्रमा; अष्टम में गुरु, रवि एवं मंगल; नवम स्थान में शुक्र, रवि, लग्न, चन्द्र एवं बुध; एकादश में शनि को छोड़कर शेष सभी ग्रह तथा दशम में गुरु, बुध, मंगल, रवि, शुक्र और लग्न—ये रेखाप्रद होते हैं ॥५३-५५$\frac{1}{2}$॥

गुरु के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	।		।	।	।			।	५
२	।	।	।	।	।	।		।	७
३	।				।		।		३
४	।		।	।	।			।	५
५		।		।		।	।	।	५
६				।		।	।	।	४
७	।	।	।		।			।	५
८	।		।		।				३
९	।	।		।		।		।	५
१०	।		।	।	।	।		।	६
११	।	।	।	।	।	।		।	७
१२							।		१

गुरु के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
१	२	१	१	१	२	३	१
२	५	२	२	२	५	५	२
३	७	४	४	३	६	६	४
४	९	७	५	४	९	१२	५
७	११	८	६	७	१०	०	६
८	०	१०	९	८	११	०	७
९	०	११	१०	१०	०	०	९
१०	०	०	११	११	०	०	१०
११	०	०	०	०	०	०	११

शुक्र के रेखाप्रद ग्रह और स्थान

लग्नशुक्रेन्दवस्ते ते ज्ञार्क्यारास्ते ज्ञवर्जिताः ।।५६।।
सुतभे लग्नशशिजशशाङ्कार्यार्किभार्गवाः ।
ज्ञारौ शून्यं सिताऽर्केन्दुगुरुलग्नशनैश्चराः ।।५७।।
सर्वे रविं विना शुक्रगुरुमनाश्च मानभे ।
सर्वे कुजेन्दुरवयः क्रमाद् भृगुसुतस्य च ।।५८।।

शुक्र के अष्टक वर्ग में अपने-अपने आश्रित स्थान से प्रथम-द्वितीय में लग्न, शुक्र एवं चन्द्रमा; तृतीय स्थान में लग्न, शुक्र, चन्द्रमा और बुध, शनि, मंगल; चतुर्थ स्थान में लग्न, शुक्र, चन्द्रमा, शनि एवं मंगल; पञ्चम स्थान में लग्न, बुध, चन्द्रमा, गुरु, शनि एवं शुक्र; षष्ठ स्थान में बुध एवं मंगल; सप्तम में शून्य (कोई नहीं); अष्टम में शुक्र, सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, लग्न और शनि; नवम भाव में रवि को छोड़कर शेष समस्त ग्रह; दशम में शुक्र, गुरु, शनि; एकादश में सभी ग्रह एवं द्वादश में मंगल, चन्द्रमा और रवि रेखाप्रद होते हैं ।।५६-५८।।

शुक्र के रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१		।				।		।	३
२		।				।		।	३
३		।	।	।		।	।	।	६
४		।	।			।	।	।	५
५		।		।	।	।	।	।	६
६			।	।					२
७									शून्य
८	।	।			।	।	।	।	६
९		।	।	।	।	।	।	।	७
१०					।	।	।		३
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२	।	।	।						३

शुक्र के रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
८	१	३	३	५	१	३	१
११	२	४	५	८	२	४	२
१२	३	६	६	९	३	५	३
०	४	९	९	१०	४	८	४
०	५	११	११	११	५	९	५
०	८	१२	०	०	८	१०	८
०	९	०	०	०	९	११	९
०	११	०	०	०	१०	०	११
०	१२	०	०	०	११	०	०

शन्यष्टक वर्ग में रेखाप्रद ग्रह और स्थान

शने रवितनू सूर्यो लग्नेन्दुकुजसूर्यजाः।
लग्नार्कौ जीवमन्दाराः सर्वे सूर्यं विना क्षते ॥५९॥
अर्कोऽर्कज्ञौ बुधोऽर्कारतनुज्ञाः सकलास्ततः।
कुजज्ञगुरुशुक्राश्च क्रमात् स्थानमिदं विदुः ॥६०॥

शन्यष्टक वर्ग में प्रथम स्थान में रवि एवं लग्न; द्वितीय में सूर्य; तृतीय में लग्न, चन्द्र, मंगल एवं शनि; चतुर्थ में लग्न एवं सूर्य; पञ्चम में गुरु, शनि एवं मंगल; षष्ठ में सूर्य के अतिरिक्त सभी ग्रह; सप्तम में सूर्य; अष्टम में रवि एवं बुध; नवम में बुध; दशम में रवि, मंगल, लग्न एवं बुध; एकादश में समस्त ग्रह एवं द्वादश में मंगल, बुध, गुरु और शुक्र रेखाप्रद होते हैं ॥५९-६०॥

शन्यष्टक में रेखाबोधक चक्र

स्थान	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	।							।	२
२	।								१
३		।	।				।	।	४
४	।							।	२
५			।		।		।		३
६		।	।	।	।	।	।	।	७
७	।								१
८	।			।					२
९				।					१
१०	।		।	।				।	४
११	।	।	।	।	।	।	।	।	८
१२			।	।	।	।			४

रेखाप्रद स्थान

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.
१	३	३	६	५	६	३	१
२	६	५	८	६	११	५	३
४	११	६	९	११	१२	६	४
७	०	१०	१०	१२	०	११	६
८	०	११	११	०	०	०	१०
१०	०	१२	१२	०	०	०	११
११	०	०	०	०	०	०	०

लग्न की बिन्दुसंख्या तथा बिन्दुप्रद ग्रह

तनौ तुर्ये च वह्निः स्याद् दुश्चिक्ये द्वौ धने शराः ।
बुद्धिमृत्युंकरिःफेषु षट् खेशक्षतराशिषु ॥६१॥
रूपं स्त्रियां गुरुं त्यक्त्वा लग्नस्य करणं त्विदम् ।
होरासूर्येन्दवो लग्ने लग्नारेन्द्विनसूर्यजाः ॥६२॥
गुरुज्ञौ लग्नचन्द्रारा लसूचंमंबुसौरयः ।
क्षते शुक्रस्तथा चैकः कामे सर्वे गुरुं विना ॥६३॥
मृतौ भृगुबुधौ त्यक्त्वा धर्मे गुरुसितौ विना ।
कर्मण्याये तथा शुक्रो व्यये सूर्येन्दुवर्जिताः ॥६४॥

लग्न से प्रथम तथा चतुर्थ में तीन, तृतीय स्थान में दो, द्वितीय में पाँच, पञ्चम-अष्टम-नवम एवं व्यय में छः, दशम-एकादश तथा षष्ठ भाव में एक एवं सप्तम भाव में गुरु के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह करणप्रद होते हैं। जैसे प्रथम भाव में लग्न, सूर्य, चन्द्रमा; द्वितीय में लग्न भौम, चन्द्रमा, शनि, सूर्य; तृतीय में गुरु, बुध; चतुर्थ में लग्न, चन्द्र, मंगल; पञ्चम में लग्न, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शनि; षष्ठ में शुक्र; सप्तम में गुरु के अतिरिक्त शेष समस्त ग्रह; अष्टम में शुक्र और बुध के अतिरिक्त सभी ग्रह; धर्मभाव में गुरु एवं शुक्र का त्याग कर शेष समस्त ग्रह; दशम एवं एकादश दोनों में केवल शुक्र एवं व्ययभाव में सूर्य-चन्द्रमा को छोड़कर शेष ग्रह करणप्रद होते हैं ॥६१-६४॥

लग्न के बिन्दुबोधक चक्र

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१	०	०						०	३
२	०	०	०				०	०	५
३				०	०				२
४		०	०					०	३
५	०	०	०	०			०	०	६
६						०			१

भाव	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
७	०	०	०	०		०	०	०	७
८	०	०	०		०		०	०	६
९	०	०	०	०			०	०	६
१०						०			१
११						०			१
१२			०	०	०	०	०	०	६

इस चक्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन ग्रहों से जिन-जिन भावों में शून्य पड़े हैं, वह स्थान अशुभप्रद एवं शेष स्थान शुभप्रद हैं ॥६१-६४॥

लग्नाष्टक वर्ग के भावों में रेखा-(शुभ)-प्रद स्थान

लग्नस्येदं तु संप्रोक्तं करणं द्विजपुङ्गव! ।
अथ स्थानं प्रवक्ष्यामि लग्नस्य द्विजपुङ्गव! ॥६५॥
आर्किज्ञशुक्रगुर्वारा: सौम्यदेवेज्यभार्गवा: ।
हित्वा सौम्यगुरू शेषा: सूज्ञेज्यभृगुसूर्यजा: ॥६६॥
तथा जीवभृगू बुद्धौ सर्वे शुक्रं विना क्षते ।
जीव एकस्तथा द्यूने मृतौ सौम्यभृगू तथा ॥६७॥
धर्मे गुरुसितावेव खे भवे शुक्रमन्तरा ।
सूर्य-चन्द्रौ तथा रिष्फे स्थानं लग्नस्य कीर्तितम् ॥६८॥

हे द्विज ! इससे लग्नाष्टक वर्ग के सभी करणों (बिन्दुप्रद) को बताया गया है । अब मैं रेखाओं (शुभप्रद स्थानों) को कह रहा हूँ । प्रथम भाव में शनि, बुध, मंगल, गुरु तथा शुक्र रेखा-(शुभ)-प्रद हैं । द्वितीय में बुध, गुरु एवं शुक्र रेखाप्रद हैं । तृतीय भाव में बुध, गुरु के अतिरिक्त शेष सभी ग्रह; चतुर्थ में सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र और शनि तथा पञ्चम भाव में गुरु तथा शुक्र रेखाप्रद हैं । षष्ठ भाव में शुक्र को छोड़कर शेष सभी ग्रह रेखाप्रद हैं । सप्तम में केवल गुरु; अष्टम भाव में बुध एवं शुक्र; धर्म-(नवम)-भाव में गुरु-शुक्र एवं दशम तथा एकादश भाव में शुक्र को छोड़कर शेष समस्त ग्रह और व्यय भाव में सूर्य एवं चन्द्र रेखा-(शुभ)-प्रद होते हैं ॥६५-६८॥

लग्नाष्टक वर्ग में रेखाबोधक चक्र

भा.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
१			।	।	।	।	।		५
२				।	।	।			३
३	।	।	।			।	।	।	६
४	।			।	।	।	।		५
५					।	।			२
६	।	।	।	।	।		।	।	७

भा.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ल.	योग
७					।				१
८				।		।			२
९					।	।			२
१०	।	।	।	।	।		।	।	७
११	।	।	।	।	।		।	।	७
१२	।	।							२

अष्टक वर्गों के माध्यम से ग्रहों का शुभाशुभ स्थान अवगत करना हो तो जन्माङ्ग चक्रस्थ ग्रहों के स्थान से अष्टक वर्ग में जितने शुभकारक स्थान निर्दिष्ट हैं, उनमें रेखा (।) तथा अशुभ स्थान में बिन्दु (०) रखने से शुभाशुभबोधक रेखा-बिन्दु रखें, इस तरह लग्नसहित सभी ग्रहों के अष्टक वर्ग कुण्डली सम्पन्न होंगे।

उदाहरण—सूर्याष्टक वर्ग में सूर्य से १।२।४।७।८।९।१०।११ स्थान रेखा-(शुभ)-प्रद होते हैं, अतः कुण्डली में स्थित सूर्य से इन स्थानों में रेखा होंगे; शेष ३।५।६।१२ भावों में बिन्दु होंगे। इसी प्रकार चन्द्रमा से ३।६।१०।११ में रेखा एवं शेष में शून्य; मङ्गल से १।२।४।७।८।९।१०।११ में रेखा, शेष में बिन्दु; बुध से ३।५।६।९।१०।११।१२ में रेखा एवं शेष में बिन्दु; गुरु से ५,६,९,११ में रेखा, शेष बिन्दु; शुक्र से ६,७,१२ में रेखा एवं शेष में बिन्दु; शनि से १।२।४।७।८।९।१०।११ में रेखा तथा शेष में बिन्दु एवं लग्न से ३।४।६।१०।११।१२ में रेखा और शेष में बिन्दु रखने से सूर्याष्टक वर्गकुण्डली हो जायेगी। पूर्वदर्शित जन्माङ्ग चक्र पार्श्व में द्रष्टव्य है।

बृ.१० ८
११ ९ ७
श. १२ के. चं. ६ रा.
सू.बु. १ शु. ३ ५ मं.
२ ४

॥ जन्मकुण्डली ॥

उपरिलिखित नियमानुसार अष्टक वर्ग

सूर्याष्टक वर्ग

००००० ।।। १०वृ.
।।।।। ८ ०० ७
।।।।। ११ ००० ९ ००००० ।।। ०००० ।।।।
००० श.१२ के. ।।।।।
।।।।।। चं. ६ रा. ००
सू.शु ००००० ३ ००० ।।।।। । ००००००
बु.।।। २ ।।।। ०००० ।। ४ ०००००० ५मं.

चन्द्राष्टक वर्ग

०० ।।।।।। १०वृ. ०००० ।।।। ८ ७ ।।।।। ११ ००० ९ ००००० ।।। ।।।।। ०० ००००००० श.१२ के. । ।।।। चं. ६ रा. ०००० सू.शु ००००० बु.।।। ३ ००० ।।।।। ।।।। ०००० २ ।।। ००००० ४ ।।।।। ००० ५मं.

भौमाष्टक वर्ग

०००००० ।। १०वृ. ।।।। ८ ००० ७ ।।।।।। ११ ०० ९ ००००० ।।। ००००० ।।। ००००० श.१२ के. ।।। ।।।।।। चं. ६ रा. ०० बु. सू.शु ००००० ००० १ ३ ००० ।।।।। ।।। ००००० २ ।। ०००००० ४ । ००००००० ५मं.

बुधाष्टक वर्ग

००००० ।।। १०वृ. ००००० ८ ।।। ७ ।।।।। ११ ००० ९ ० ।।।।।। ०००० ।।। ००० श.१२ के. ।।।।। ।।।।। चं. ६ रा. ००० १ सू.शु ०००बु. ।।।।। ३ ००० ।।।।। ।।। ०००० २ ।।।। ०००० ।।। ४ ०००० ५मं.

गुर्वष्टक वर्ग

।।।।। ०० १०वृ. ००००० ।।। ८ ७ ।।।।।। ११ ०० ९ ०००० ।।।। ०००० ।।। ०००० श.१२ के. ।।।। ।।।। चं. ६ रा. ०००० सू.शु ००००१ बु.।।।। ३ ००००० ।।। ।।।।। ।०० २ ० ।।।।।। ।।।। ४ ००० ५मं.

शुक्राष्टक वर्ग

००० ।।।।। १०वृ. ००० ८ ।।।।। ७ ।।।। ११ ०००० ९ ०० ।।।।।। ००० ।।।।। ०००००० श.१२ के. ।। ।।। चं. ६ रा. ००००० १ सू.शु बु.०००० ।।।। ३ ०००० ।।।। ।।।।। ००० २ ।।।। ०००० ।।।।। ४ ००० ५मं.

शन्यष्टक वर्ग

०००० ।।।। १०वृ. ०००० ८ ।।।। ७ ।।।।। ११ ००० ९ ०००० ।।।। ००००० ।।। ००००० श.१२ के. ।।। ।।।। चं. ६ रा. ०००० १ सू.शु ०००००० बु.। ३ ०००००० ।। । ००००००० २ ।।।।। ००० ४ ०००० ।।।। ५मं.

लग्नाष्टक वर्ग

०००० ।।।। १०वृ. ।।।।। ००० ८ ७ ।।।।। ११ ००० ९ ०००००० ।। ००००० ।।। ०००००० श.१२ के. ।। ।।।। चं. ६ रा. ०००० १ सू.शु ०००० बु.।।।। ३ ००० ।।।।। ।।। ००००० २ ।।।। ००० ४ ००० ।।।।। ५मं.

उपर्युक्त कुण्डलियों में शुभ भावद्योतक रेखायें और अशुभ भावद्योतक शून्य प्रदर्शित किये गये हैं।

करण तथा बिन्दु-परिचय प्रकार

करणं बिन्दुवत् लेख्यं स्थानं रेखास्वरूपकम्।
करणं त्वशुभदं प्रोक्तं स्थानं शुभफलप्रदम् ॥६९॥

करण को बिन्दुरूप (०) तथा स्थान को रेखाकार में लिखना चाहिए। करण (बिन्दु) को अशुभप्रद और स्थान (रेखा) को शुभप्रद जानना चाहिए ॥६९॥

करण, रेखान्यास हेतु चक्रस्वरूप

दशरेखा लिखेदूर्ध्वास्तिर्यग् रेखाश्चतुर्दश।
नगेशकोष्ठसंयुक्तं चक्रमेवं प्रजायते ॥७०॥
तिर्यगष्टसु कोष्ठेषु विलग्नसहितान् खगान्।
आद्येषूर्ध्वाधरेष्वेवं भावसंख्या लिखेद् बुधः ॥७१॥
यथोक्तं विन्यसेत् तत्र करणं स्थानमेव वा।
ततः शुभाऽशुभं ज्ञात्वा जातकस्य फलं वदेत् ॥७२॥

उर्ध्वाध: दस रेखा लिखकर तिरछी १४ रेखा रखने से ११७ कोष्ठक का चक्र बन जायेगा। ऊपर के समस्त तिरछे कोष्ठकों में लग्नसहित ग्रहों को लिखें। प्रथम ऊर्ध्वाध: कोष्ठक में द्वादश भाव संख्या रखें, फिर पूर्वोक्त प्रकार से बिन्दु तथा रेखा रखने के पश्चात् शुभाशुभ का ज्ञान कर जातक का फल कहना चाहिए। उदाहरणार्थ पूर्वोक्त लग्नाष्टक वर्ग एवं रेखाबोधक चक्र का अवलोकन करना चाहिए ॥७०-७१॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामष्टकवर्गाध्याय: ॥६८॥

अथ त्रिकोणशोधनाध्यायः ॥६९॥

पराशर उवाच

एवं सलग्नखेटानां विधायाष्टकवर्गकम्।
त्रिकोणशोधनं कुर्यादादौ सर्वेषु राशिषु ॥१॥
त्रिकोणं कथ्यते विप्र मेष-सिंह-धनूंष्यथ।
वृष-कन्या-मृगास्याश्च युग्म-तौलि-घटास्तथा ॥२॥
कर्क-वृश्चिक-मीनाश्च त्रिकोणाः स्युः परस्परम् ॥२$\frac{1}{2}$॥

पराशर मुनि ने कहा कि हे विप्र ! पूर्वोक्त प्रकार से लग्नसहित सभी ग्रहों का अष्टक वर्ग बनाकर सभी राशियों का त्रिकोण-शोधन करना चाहिए। आपस में अपने से पञ्चमस्थ राशि त्रिकोणसंज्ञक होते हैं। यथा—मेष, सिंह, धनु; वृष, कन्या, मकर; मिथुन, तुला, कुम्भ एवं कर्क, वृश्चिक, मीन। ये तीन-तीन राशियाँ परस्पर त्रिकोण कही गई हैं ॥१-२$\frac{1}{2}$॥

त्रिकोणशोधन-प्रकार

अधोऽधः सर्वराशीनामष्टवर्गफलं न्यसेत् ॥३॥
त्रिकोणेषु च यन्न्यूनं तत्तुल्यं त्रिषु शोधयेत्।
एकस्मिन् भवने शून्यं तत् त्रिकोणं न शोधयेत् ॥४॥
समत्वे सर्वगेहेषु सर्वं संशोधयेद् बुधः।
पश्चात् विपश्चिता कार्यमेकाधिपतिशोधनम् ॥५॥

मेषादि १२ राशियों के नीचे अष्टक वर्ग में उत्पन्न रेखासंख्या को लिखकर त्रिकोणशोधन करना चाहिए। तीनों त्रिकोण राशियों में सर्वाल्प रेखासंख्या जिसकी हो, उसी सर्वाल्प संख्या को तीनों त्रिकोण राशियों की संख्या में घटाकर शेष संख्या को उन राशियों के नीचे रखना चाहिए। अर्थात् सर्वाल्प रेखासंख्या वाली राशि के नीचे शून्य हो जायेगा। यदि तीनों त्रिकोण राशियों में से एक राशि में रेखा शून्य हो तो त्रिकोणशोधन नहीं करना चाहिए (क्योंकि सर्वाल्प संख्या शोधन करना होता है। जहाँ सर्वाल्प संख्या शून्य हो वहाँ शून्य घटाने पर भी संख्या में विकार नहीं आयेगा, अतः शोधन करना या न करना दोनों ही बराबर हो जायगा)। यदि तीनों त्रिकोण राशियों की रेखासंख्या तुल्य हो तो शोधन करना चाहिए अर्थात् तीनों राशियों के नीचे शून्य हो जाते हैं। इस तरह त्रिकोण-शोधन के अनन्तर एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए ॥३-५॥

जैसे–जिसके अष्टक वर्ग में त्रिकोण शोधन करना है, वह ग्रह जिस राशि में स्थित हो, उसी राशि से आरम्भ कर १२ राशियों को लिखकर, फिर अपने-अपने राशियों में ग्रह को भी रख दे, पुनः उसके नीचे तत् तत् राशियों की रेखासंख्या को भी लिख दे; तदनन्तर नियमानुसार त्रिकोणशोधन करके शोधिताङ्क अंकित करना चाहिए।

सूर्याष्टक वर्ग त्रिकोणशोधन चक्र

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ग्रह	सू.शु.बु.				मं.	चं.रा.				वृ.		श.के.
रेखा योग	३	४	५	२	२	६	४	६	३	३	५	५
शोधिताङ्क	१	१	१	०	०	३	०	४	१	०	१	३

यहाँ सूर्य का त्रिकोण शोधन करना है और सूर्य जन्मकुण्डली में मेष राशि में है; अत: मेषादि १२ राशियों को लिखकर जिस राशि में जो ग्रह हैं, उन ग्रहों को तत् तत् राशि में लिख दे। फिर जिस राशि में जितनी रेखायें हैं, उनकी योगसंख्या को तत् तत् राशि के नीचे लिख दे। पुन: मेष से त्रिकोण राशि—मेष, सिंह एवं धनु हैं, अत: इनमें मेष में ३, सिंह में २ एवं धन में ३ रेखायें हैं, जिनमें से सर्वाल्प २ है; अत: २ को तीन में घटाने पर क्रमश: १, ०, १ शेष रहे। इसलिए मेष में १, सिंह में ० और धनु में १ हुआ। फिर वृष के त्रिकोण (वृष, कन्या, मकर) में वृष में ४, कन्या में ६ और मकर में ३ रेखासंख्या है। यहाँ सबसे अल्प ३ है; अत: ३ को तीनों में घटाने पर वृष में १, कन्या में ३ एवं मकर में ० शून्य शेष रहे। फिर मिथुन के त्रिकोण (मिथुन, तुला, कुम्भ) में मिथुन में ५, तुला में ४ और कुम्भ में ५ रेखायें हैं, इनमें सर्वाल्प संख्या ४ को तीनों में घटाने पर मिथुन में १, तुला में ० एवं कुम्भ में १ शेष रहे। फिर कर्कट के त्रिकोण (कर्क, वृश्चिक, मीन) में कर्क में २, वृश्चिक में ६ और मीन में ५ रेखासंख्या है। इनमें सर्वाल्प संख्या २ है, अत: २ को तीनों में घटाने पर कर्क में ०, वृश्चिक में ४ और मीन में ३ शोधिताङ्क शेष रहे। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह का त्रिकोण शोधन कर शेष अंक का ज्ञान करना चाहिए। इसके अनन्तर नियमानुसार एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए ॥३-५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां त्रिकोणशोधनाध्याय: ॥६९॥

अथैकाधिपत्यशोधनाध्याय: ॥७०॥

पराशर उवाच

पूर्वं त्रिकोणं संशोध्य राशीनां स्थापयेत् फलम्।
पृथक्-पृथक् ततः कुर्यादेकाधिपतिशोधनम्॥१॥
क्षेत्रद्वये फलानि स्युस्तदा संशोधयेद् यथा।
क्षीणेन सह चाऽन्यस्मिन् शोधयेद् ग्रहवर्जिते॥२॥
उभयोर्ग्रहसंयोगे न संशोध्य: कदाचन।
ग्रहयुक्ते फलैर्हीने ग्रहाभावे फलाधिके॥३॥
ऊनेन सममन्यस्मिन् शोधयेद् ग्रहवर्जिते।
फलाधिके ग्रहैर्युक्ते चाऽन्यस्मिन् सर्वमुत्सृजेत्॥४॥
उभयत्र ग्रहाभावे समत्वे सकलं त्यजेत्।
सग्रहाग्रहयोस्तुल्ये सर्वं संशोध्यमग्रहे॥५॥
कुलीरसिंहयो राश्यो: पृथक् क्षेत्रं पृथक् फलम्॥५$\frac{1}{2}$॥

पूर्वोक्त नियमानुसार त्रिकोणशोधन करके राशियों के नीचे शोधिताङ्क को रखकर एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए। यदि एक स्वामि के दोनों राशियों में शोधिताङ्क हो, तभी एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए; लेकिन यदि एक राशि में फल और दूसरे में फलाभाव हो तो शोधन नहीं होता। यदि दोनों राशियाँ ग्रहहीन हों और दोनों में फलभिन्नता हो तो कम फल को दोनों में घटा देना चाहिए। यदि दोनों राशियाँ युत हों तो एकाधिपत्य शोधन नहीं किया जाता। यदि एक राशि में ग्रह हो और त्रिकोण शोधिताङ्क अल्प हो तथा दूसरे में ग्रह न हो और त्रिकोण शोधिताङ्क फल अधिक हो तो अधिक फल में अल्प फल को घटा देना चाहिए और अल्प फल को यथावत् रख देना चाहिए। यदि ग्रहयुत राशि में फल अधिक हो और ग्रहहीन राशि में अल्प फल हो तो ग्रहहीन राशि का पूरा फल शोधन करना चाहिए एवं सग्रह फल को यथावत् रखना चाहिए। यदि दोनों ग्रहहीन हों और फल तुल्य हो तो दोनों में फल-शोधन कर दोनों राशियों में शून्य फल रखना चाहिए। यदि एक राशि सग्रह और दूसरा अग्रह हो तो ग्रहहीन राशि को शोधन कर शून्य बनाना चाहिए। सूर्य चन्द्रमा दोनों की एक-एक राशि है, इसलिए इन दोनों (कर्क + सिंह) के फल को यथावत् रख देना चाहिए॥१-५$\frac{1}{2}$॥

पूर्वसिद्ध सूर्य का त्रिकोण शोधितचक्र

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ग्रह	सू.शु.बु.				मं.	चं. रा.				वृ.		श.के.
रेखायोग	३	४	५	२	२	६	४	६	३	३	५	५
त्रि.शोधि.	१	१	१	०	०	३	०	४	१	०	१	२
एका.शोधि.	१	१	०	०	०	३	०	३	०	०	१	२

यहाँ पर मेष सग्रह राशि है और वृश्चिक अग्रह राशि है, मेष में ग्रह हैं तथा त्रिकोण शोधित फल १ अल्प है, दूसरे वृश्चिक में ग्रह नहीं है और त्रिकोण शोधित ४ अधिक है; अत: अल्प १ फल के तुल्य ग्रहवर्जित वृश्चिक के ४ फल में घटाने पर ३ शेष रहा, अल्प १ फल को यथावत् रख दिया है, अत: एकाधिपत्य शोधन में मेष का १ और वृश्चिक का ३ हुआ। वृष तथा तुला दोनों राशियाँ अग्रह हैं, वृष का त्रिकोणशोधन फल १ है, तुला में ० शून्य है, अत: अल्प फल (०) को दोनों में शोधन करने पर वृष में १ और तुला में शून्य हुआ। मिथुन अग्रह राशि है और कन्या सग्रह राशि है, फल १, ३ है, सग्रह राशि कन्या में फल अधिक है एवं अग्रह राशि मिथुन में फल अल्प है; अत: अग्रह राशि का फल १ शोधन कर शून्य बना दिया तथा सग्रह राशि कन्या के फल ३ को यथावत् रख दिया तो मिथुन, कन्या राशि में एकाधिपत्य शोधन फल क्रमश: ०, ३ हुआ। कर्क तथा सिंह राशिस्थ त्रिकोण शोधिताङ्क ०, ० को यथावत् रख दिया। इसी प्रकार धन अग्रह राशि अल्प १ फल है और मीन सग्रह राशि अधिक २ फल है, अत: अग्रह राशि धन का फल पूर्ण शोधित किया और सग्रह राशि मीन का फल यथावत् रख दिया, इसलिए धन का फल शून्य और मीन का फल २ हुआ। मकर सग्रह राशि फलशून्य और कुम्भ अग्रह राशि का फल १ है। अत: नियमानुसार यहाँ एकाधिपत्य शोधन नहीं होता; इसलिए मकर, कुम्भ राशि में एकाधिपत्य शोधिताङ्क यथावत् (मकर ०, कुम्भ १) हुए। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह में एकाधिपत्य शोधन करना चाहिए ॥३-५$\frac{1}{2}$॥

संशोध्यैकाधिपत्यं हि ततः पिण्डं प्रसाधयेत् ॥६॥

पूर्वोक्त नियमानुसार एकाधिपत्य शोधन के अनन्तर ही पिण्डसाधन करना चाहिए ॥६॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामेकाधिपत्यशोधनाध्याय: ॥७०॥

अथ पिण्डसाधनाध्यायः ॥७१॥

पराशर उवाच

एवं शोध्यावशेषाङ्कं राशिमानेन वर्द्धयेत्।
ग्रहयुक्ते च तद्राशौ ग्रहमानेन वर्द्धयेत् ॥१॥
सर्वेषां च पुनर्योगः पिण्डाख्यः कथ्यते द्विज!।
गोसिंहौ दशभिर्गुण्यौ वसुभिर्युग्मवृश्चिकौ ॥२॥
सप्तभिस्तुलमेषौ च मृगकन्ये च पञ्चभिः।
शेषाः स्वसंख्यया गुण्या ग्रहमानमथोच्यते ॥३॥
जीवारशुक्रसौम्यानां दशाष्टनगसायकाः।
पञ्च शेषग्रहाणां च मानं प्रोक्तमिदं क्रमात् ॥४॥

पराशर मुनि ने कहा कि हे द्विज! इस प्रकारं ग्रहों के अष्टक वर्ग में त्रिकोण तथा एकाधिपत्य शोधन से उत्पन्नाङ्क को अपने-अपने राश्यङ्क से गुणा करे, यदि उस राशि में ग्रह बैठा हो तो उस ग्रहाङ्क से भी गुणा करे। इस प्रकार प्रत्येक राशि के अंक से गुणा कर सभी का योग करना चाहिए। यही योग पिण्ड कहलाता है। अब राशि के गुणकाङ्क कहता हूँ। वृष तथा सिंह को १० से, मिथुन एवं वृश्चिक को ८ से, मेष और तुला को ७ से एवं मकर तथा कन्या को ५ से गुणा किया जाता है, शेष राशियों में उनकी अपनी संख्या से गुणा करना चाहिए अर्थात् शेष राशियाँ कर्क, धनु, कुम्भ, मीन को क्रमश ४, ९, ११ एवं १२ से गुणा करना चाहिए। इस प्रकार ग्रह के गुणकाङ्क गुरु का १०, मंगल का ८, शुक्र का ७, बुध का ५ एवं शेष ग्रहों (सूर्य, शनि, चन्द्र) का गुणकाङ्क ५ सिद्ध होता है।

॥ द्वादश राशियों का गुणकाङ्क चक्र ॥

राशि	मेष	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
गुणङ्काक	७	१०	८	४	१०	५	७	८	९	५	११	१२

॥ ग्रहगुणकाङ्क चक्र ॥

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
गुणकाङ्क	५	५	८	५	१०	७	४

॥ उदाहरण हेतु पूर्व निष्पन्न सूर्य एकाधिपत्य शोधनाङ्क चक्र ॥

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ग्रह	सू.बु.सु.				मं.	चं.				वृ.		श.
एकाधिपत्य शोधनाङ्क	१	१	०	०	०	३	०	३	०	०	१	२

यहाँ पर मेष में एकाधिपत्य शोधनाङ्क १ को मेष के गुणकांक ७ से गुणा किया तो ७ हुआ, वृष में एकाधिपत्य शोधनाङ्क १ को वृष के मान १० से गुणा किया तो १० हुआ, कन्या में एकाधिपत्य शोधनांक ३ को कन्या के गुणकांक ५ से गुणा किया तो १५ हुआ, वृश्चिक में एकाधिपत्य शोधनांक ३ को वृश्चिक के गुणकांक ८ से गुणा किया तो २४ हुआ, कुम्भ में एकाधिपत्य शोधनांक १ को कुम्भ के गुणकांक ११ से गुणा किया तो ११ हुआ, मीन में एकाधिपत्य शोधनांक २ को मीन के गुणकांक १२ से गुणा किया तो २४ हुआ। शेष राशियों का एकाधिपत्य शोधनांक ० है, अतः शून्य को गुणा करने पर शून्य ही फल होता है। इसीलिए शेष राशियों को गुणा नहीं किया गया है। कुल गुणनफल का योग ७ + १० +१५ + २४ + ११ + २४ = ९१ (इक्यानबे) हुआ, जो कि राशिपिण्ड हुआ। इसी प्रकार ग्रहपिण्ड साधन करते हैं। मेष में सूर्य, शुक्र तथा बुध हैं। मेष में एकाधिपत्य शोधनांक १ है, इसी १ को सूर्य के गुणकांक ५ से गुणा किया तो ५ हुआ, शुक्र के गुणकांक ७ से गुणा किया तो ७ हुआ, बुध के मान ५ से गुणा किया तो ५ हुआ। सिंह में मंगल है और सिंह का एकाधिपत्य शोधनांक शून्य है; अतः फलाभाव हुआ। कन्या में चन्द्रमा है और कन्या का शोधनांक ३ है, इस ३ को चन्द्र के गुणकांक ५ से गुणा किया तो १५ हुआ, मकर में गुरु हैं, परन्तु मकर का शोधनांक शून्य है। मीन में शनि है। इस मीन के शोधनांक २ को शनि के गुणकांक ४ से गुणा किया तो ८ हुआ। सभी गुणनफलों का योग = ५ + ७ + ५ + १५ + ८ = ४० ग्रहपिण्ड हुआ। राशिपिण्ड तथा ग्रहपिण्ड के योग करने से स्पष्ट पिण्ड = ९१ + ४० = १३१ (एक सौ इकतीस) हुआ। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी पिण्डसाधन करके फलादेश करना चाहिए ॥१-४॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पिण्डसाधनाध्यायः ॥७१॥

अथाऽष्टकवर्गफलाध्याय: ॥७२॥

अष्टकवर्ग से विचारणीय विषय

आत्मस्वभावशक्तिश्च पितृचिन्ता रवे: फलम्।
मनो-बुद्धि-प्रसादश्च मातृचिन्ता मृगाङ्कत: ॥१॥
भ्रातृसत्त्वं गुणं भूमिं भौमेनैव विचिन्तयेत्।
वाणिज्यकर्म वृत्तिश्च सुहृदं च बुधेन तु ॥२॥
गुरुणा देहपुष्टिश्च विद्या पुत्रार्थसम्पद:।
भृगोर्विवाहकर्माणि भोगस्थानं च वाहनम् ॥३॥
वेश्यास्त्रीजनसम्भोगं शुक्रेण च निरीक्षयेत्।
आयुश्च जीवनोपायं दु:ख-शोक-भयानि च ॥४॥
सर्वक्षयं च मरणं मन्देनैव निरीक्षयेत्।
तत्तद्भावफलाङ्केन गुणयेद् योगपिण्डकम् ॥५॥
सप्तविंशोद्धृतं शेषतुल्यर्क्षे याति भानुज:।
यदा तदा तस्य तस्य भावस्यार्तिं विनिर्दिशेत् ॥६॥

रवि से आत्मा, स्वभाव, शक्ति, पिता को सुख-दु:ख आदि का विचार करना चाहिए। चन्द्रमा से मन, बुद्धि, प्रसन्नता और माता को दु:ख-सुख, कष्ट आदि का विचार किया जाता है। मंगल से भाई का बल, गुण, भूमि आदि का विचार क़रना चाहिए। बुध से व्यापार-वाणिज्य कर्म, वृत्ति, मित्रादि का विचार किया जाता है। गुरु से शारीरिक पुष्टि, विद्या, पुत्र, अर्थ और सम्पत्ति का विचार करना चाहिए। शुक्र से विवाह कार्य, भोग, वाहन, वेश्या एवं स्त्रीजनों से सम्भोगादि का विचार करना चाहिए। शनि से आयुर्दाय, जीवनोपाय, दु:ख, शोक, भय, सभी वस्तुओं का नाश, मरण और कष्टों का विचार करना चाहिए। विशेष ध्यातव्य यह है कि जिस भाव का विचार करना अभीष्ट हो उस भाव में स्थित रेखासंख्या से उस भाव के अष्टक वर्गसम्बन्धी योगपिण्ड को गुणा कर गुणनफल में २७ का भाग देकर जो शेष रहे उतने ही संख्यक अश्विनी से नक्षत्रसंख्या में शनि जिस समय जाय उस समय उस भाव का नाश जानना चाहिए ॥१-६॥

सूर्याष्टक वर्गफल

अर्काश्रितर्क्षान्नवमो राशि: पितृगृहं स्मृतम्।
तद्राशिफलसंख्याभिर्वर्धयेद् योगपिण्डकम् ॥७॥
विभजेत् सप्तविंशत्या शेषर्क्षं याति भानुज:।
यदा तदा पितृक्लेशो भवतीति न संशय: ॥८॥

तत् त्रिकोणगते वाऽपि पिता पितृसमोऽपि वा।
मरणं तस्य जानीयात् पीडां वा महतीं वदेत्॥९॥

जन्मसमय में सूर्य जिस स्थान में हो, उससे नवाँ स्थान पिता का स्थान होता है। इसलिए सूर्याष्टक वर्गस्थ उस राशि की रेखासंख्या से सूर्याष्टक वर्ग योगपिण्ड को गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष तुल्य अश्विन्यादि नक्षत्र में जब शनि जायेगा उस समय में पिता को कष्ट होता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है तथा उस नक्षत्र से त्रिकोण नक्षत्र में भी जब-जब शनि जायेगा तब-तब भी पिता या पितृतुल्य (पालन-पोषण करने वाले) को मरण, कष्ट या क्लेश होता है॥७-९॥

उदाहरण—अष्टक वर्गाध्याय के सूर्याष्टक वर्ग के अनुसार सूर्य मेष राशि में है, सूर्य से नवम राशि धनु है, अतः धनु राशि का अष्टक वर्ग फल (रेखा) ३ से सूर्य के योगपिण्ड १३१ को गुणा करने से ३९३ हुआ; इसमें २७ का भाग देने से शेष १५ रहा, जो कि अश्विनी से गिनने पर स्वाती नक्षत्र हुआ। इसलिए स्वाती में तथा उससे त्रिकोण (शतभिषा, आर्द्रा) नक्षत्र में जब शनि जायेगा तब जातक के पिता को कष्ट या मरण जानना चाहिए। अर्थात् उस समय अशुभ दशा हो तो मरण और शुभ दशा हो तो क्लेश-कष्टादि जानना चाहिए॥७-९॥

प्रकारान्तर से विचार

गुणयेद् योगपिण्डं वा तद्राशिफलसंख्यया।
अर्कोद्धृतावशेषर्क्षं यदा गच्छति भानुजः॥१०॥
तत् त्रिकोणर्क्षकं वापि पितृकष्टं तदा वदेत्।
रिष्टप्रददशायां तु मरणं कष्टमन्यदा॥११॥

अथवा राशिफल (अष्टक वर्ग की रेखा) से योगपिण्ड को गुणा कर १२ का भाग देने से जो शेष हो, उसके तुल्य राशि में जब शनि प्राप्त हो तब पिता को कष्ट या क्लेश जानना चाहिए अर्थात् अनिष्टकारक दशा-समय में मरण और अन्य दशा में क्लेश जानना चाहिए॥१०-११॥

उदाहरण—सूर्य मेष राशि में है, उससे नवम राशि धनु है, उसकी अष्टक वर्ग रेखा-संख्या ३ से योगपिण्ड १३१ को गुणा किया तो ३९३ हुआ, इसमें १२ का भाग देने पर शेष ९ रहा, अतः धनु राशि में या उससे त्रिकोण (मेष, सिंह) राशि में जब शनि गोचर से जायेगा, तब जातक के पिता को कष्ट या मरण समझना चहिए। उस समय में शुभ ग्रह की दशा हो तो कष्ट और अशुभ ग्रह की दशा हो तो मरण तारतम्य से जानना चाहिए॥१०-११॥

पितृ अनिष्ट काल

अर्कात्तु तुर्यगे राहौ मन्दे वा भूमिनन्दने।
गुरुशुक्रेक्षणमृते पितृहा जायते नरः॥१२॥

लग्नात् चन्द्राद् गुरुस्थाने याते सूर्यसुतेऽथवा ।
पापैर्दृष्टे युते वापि पितृनाशं वदेद् बुधः ॥१३॥
लग्नात् सुखेश्वरारिष्टदशाकाले पितृक्षयः ।
अनुकूलदशाकाले नेति चिन्त्यं विचक्षणैः ॥१४॥

पूर्वोक्त त्रिकोण स्थान में जब शनि जाय, उस समय यदि सूर्य से चतुर्थ स्थान में राहु या शनि अथवा मंगल हो तो पिता का मरण होता है। अथवा गुरु-शुक्र अष्टम हो तो पिता का मरण या लग्न अथवा चन्द्रमा से गुरुस्थान (नवम स्थान) में शनि बैठा हो और पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो पिता का मरण होता है। लग्न से चतुर्थेश की अनिष्ट दशाकाल में भी पिता का क्षय होता है; लेकिन अनुकूल दशा में मरण या कष्ट नहीं होता। इस प्रकार गणक को स्वविवेक से विचार कर फलादेश करना चाहिए ॥१२-१४॥

अन्य योग

पितृजन्माष्टमे जातस्तदीशे लग्नगेऽपि वा ।
करोति पितृकार्याणि स एवात्र न संशयः ॥१५॥

जिस जातक का जन्म पिता के जन्मलग्न से अष्टम राशि में हो अथवा पिता के जन्म-लग्न से अष्टमेश अपने जन्मलग्न में स्थित हो तो जातक को पिता के कार्य को करना पड़ता है अर्थात् पिता के निधन हो जाने के कारण पिता का सम्पूर्ण कार्य—गृह कार्य आदि करना पड़ता है ॥१५॥

अन्य पितृसुख योग

सुखनाथदशायान्तु सुखप्राप्तेश्च सम्भवः ।
सुखेशे लग्नलाभस्थे चन्द्रस्थानाद् विशेषतः ।
पितृगेहसमायुक्ते जातः पितृवशानुगः ॥१६॥
पितृजन्मतृतीयर्क्षे जातः पितृधनाश्रितः ।
पितृकर्मगृहे जातः पितृतुल्यगुणान्वितः ॥१७॥
तदीशे लग्नसंस्थेऽपि पितृश्रेष्ठो भवेन्नरः ।
एवं पूर्वोक्तसामान्यफलं चात्रापि चिन्तयेत् ॥१८॥

लग्न से चतुर्थाधिप की दशा में सुखप्राप्ति की सम्भावना होती है। सुखेश लग्न या लाभ स्थान में हो या चन्द्रमा से एकादश में हो या दशम भाव में हो तो जातक पिता का आज्ञापालक होता है। पिता के जन्मलग्न से या जन्मराशि से तृतीय राशिलग्न या राशि में जातक का जन्म हो तो वह जातक पिता के धन से जीवन-यापन करने वाला होता है। पिता के जन्मलग्न या राशि से दशम राशि में जातक का जन्मलग्न या राशि पड़े तो वह जातक पिता के तुल्य गुणयुक्त होता है। यदि स्वजन्म लग्न से दशमाधिप लग्न में हो तो वह जातक पिता से भी उच्च होता है। इस प्रकार शुभाशुभ का विचार कर फलादेश करना चाहिए ॥१६-१८॥

अन्य विशेष फल

सूर्याष्टवर्गे यच्छून्यं तन्मासे वत्सरेऽपि च।
विवाहव्रतचूडादि शुभकर्म परित्यजेत् ॥१९॥
यत्र रेखाधिका तत्र मासे संवत्सरेऽपि च।
अनिष्टेऽपि रवौ जीवे शुभकर्म समाचरेत् ॥२०॥

सूर्याष्टक वर्ग में जिस राशि में अधिक शून्य हो उस मास (अर्थात् स्वभ्रमण से सूर्य के उस राशि में जाने पर), वर्ष (गुरु के स्वगत्यनुसार उस राशि में रहने पर) में विवाह-व्रतवन्ध-चूड़ादि धार्मिक कार्य नहीं करना चाहिए एवं जिस स्थान में अधिक रेखा हो, उस राशि में सूर्य के जाने पर उस माह में एवं गुरु के मध्यम मान से उस राशि में जाने पर उस वर्ष में विवाहादि शुभ कार्य करना चाहिए ॥१९-२०॥

चन्द्राष्टक वर्गफल

एवं चन्द्राष्टवर्गे च यत्र शून्यं भवेद् बहु।
तत्र तत्र गते चन्द्रे शुभं कर्म परित्यजेत् ॥२१॥
चन्द्राच्चतुर्थतो मातृ-प्रासाद-ग्राम-चिन्तनम्।
चन्द्रात् सुखफलात् पिण्डं वर्द्धयेद् भैश्च संभजेत् ॥२२॥
शेषमृक्षं शनौ याते मातृ-हानिं विनिर्दिशेत्।
तत्तत् त्रिकोणगे वापि शनौ मातृरुजं वदेत् ॥२३॥

चन्द्राष्टक वर्ग में जिस स्थान में अधिक शून्य हो, उस राशि में जब चन्द्रमा जाय तो उस समय शुभ कर्मों का त्याग करना चाहए। चन्द्रमा के चतुर्थ स्थान से माता, गृह, ग्रामादि का शुभाशुभ विचार करना चाहिए। अत: चन्द्रमा से चतुर्थ भाव के अष्टक वर्ग में जो रेखासंख्या हो, उससे चन्द्राष्टक वर्गपिण्ड को गुणा कर २७ का भाग देने पर जो शेष रहे; अश्विन्यादि से उस संख्यक नक्षत्र में जब शनि जाय तब मातृकष्ट होता है या गुणन-फल में १२ का भाग देकर जो शेष रहे उस राशि में शनि के जाने पर मातृक्लेश होता है। अथवा उस नक्षत्र से त्रिकोण नक्षत्र या राशि से त्रिकोण राशि में शनि के आरूढ होने पर माता को कष्ट जानना चाहिए ॥२१-२३॥

चन्द्राष्टक वर्ग-त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन चक्र

राशि	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
ग्रह	चं.रा.				वृ.		श.	सू.बु.शु.				मं.
रेखायोग	४	६	४	३	६	५	०	३	३	५	५	४
त्रिकोण शोधनांक	१	१	४	०	३	०	०	०	०	०	५	१
एकाधिपत्य शोधनांक	१	१	४	०	३	०	०	०	०	०	५	१०

राशिपिण्ड = ५ + ७ + ३२ + १५ + २० + १० = ८९

ग्रहपिण्ड = ५ + ३० + ८ = ४३

स्पष्ट पिण्ड = १३२

यहाँ पर कन्या राशि में चन्द्रमा रहने के कारण कन्या से सिंह तक १२ राशि लिखा गया, फिर चन्द्राष्टक वर्ग के आधार पर कन्या राशि से १२ राशियों के रेखायोग क्रमश: ४, ६, ४, ३, ६, ५, ०, ३, ३, ५, ५, ४ हैं। पुन: कन्या से क्रमश: १२ राशियों के त्रिकोण शोधनांक १, १, ४, ०, ३, ०, ०, ०, ०, ०, ५, १ हैं; इनको क्रमश: लिखा गया है। इसके बाद एकाधिपत्य शोधनांक रख कर उनको राशि के गुणकांक से गुणा कर सबका योग करने पर राशिपिण्ड ८९ हुआ, फिर एकाधिपत्य शोधनांक से ग्रह-गुणकांक से गुणा कर सबका योग ४३ हुआ, यही ग्रहपिण्ड हुआ। ग्रहपिण्ड तथा राशिपिण्ड का योग किया तो १३२ चन्द्रमा का स्पष्ट पिण्ड हुआ। यह सभी उपर्युक्त चक्र को देखने से स्पष्ट हो जायेगा। चन्द्रमा से चतुर्थ भाव से मातृकष्ट का विचार किया जाता है। चन्द्रमा से चतुर्थ भाव में रेखायोग ३ है, उस ३ से चन्द्र स्पष्ट पिण्ड १३२ को गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष १८ बचा; अत: १८ वाँ नक्षत्र ज्येष्ठा अथवा उससे त्रिकोण नक्षत्र रेवती-अश्लेषा में जब शनि जायेगा, तब मातृकष्ट होगा।

अथवा स्पष्ट चन्द्रपिण्ड १३२ को ३ से गुणा कर १२ से भाग दिया तो शेष १२ बचा, इसलिए मीन में या उससे त्रिकोण राशि कर्क, वृश्चिक में जब शनि जायेगा तब मातृ-कष्ट जानना चाहिए ॥२१-२३॥

भौमाष्टक वर्गफल

भौमाष्टवर्गे सञ्चिन्त्यं भ्रातृविक्रमधैर्यकम्।
कुजाश्रितात् तृतीयर्क्षं बुधैर्भ्रातृगृहं स्मृतम् ॥२४॥
त्रिकोणशोधनं कृत्वा यत्र स्यादधिकं फलम्।
भूमेर्लाभोऽत्र भार्याया भ्रातृणां सुखमुत्तमम् ॥२५॥
भौमो बलविहीनश्चेद् दीर्घायुर्भ्रातृको भवेत्।
फलानि यत्र क्षीयन्ते तत्र भौमे गते क्षतिः ॥२६॥
तृतीयर्क्षफलेनाथ पिण्डं संवर्ध्य पूर्ववत्।
शेषमृक्षं शनौ याते भ्रातृकष्टं विनिर्दिशेत् ॥२७॥

भौमाष्टक वर्ग से भ्राता, विक्रम तथा धीरता का विचार करना चहिए। भौमनिष्ठ राशि से तृतीय स्थान को विद्वानों ने भ्रातृगृह कहा है। त्रिकोणशोधन के अनन्तर जिस राशि के फल (रेखा) अधिक हों, उस राशि में मंगल के जाने पर उस समय भूमिलाभ, स्त्री और भाइयों का सुख प्राप्त होता है। जहाँ अष्टक वर्ग फलशून्य हो, वहाँ पर भौम के जाने पर भाइयों को कष्ट होता है एवं मंगल के निर्बल रहने पर भाई दीर्घायु होते हैं। मंगल के योगपिण्ड को फल (रेखा) से गुणा कर २७ का भाग देने पर जो शेष हो, उस शेषसंख्यक

नक्षत्र में शनि के जाने पर या १२ का भाग देकर शेष तुल्य राशि में शनि के जाने पर भाइयों को कष्ट जानना चाहिए ॥२४-२७॥

भौमाष्टक वर्ग—त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन चक्र

राशि	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
ग्रह	मं.	चं.रा.				वृ.		श.	सू.बु.शु.			
रेखासंख्या	३	६	३	५	३	२	६	३	०	२	५	१
त्रिकोण शोधनांक	३	४	०	४	३	०	३	२	०	०	२	०
एकाधिपत्य शोधनांक	३	४	०	४	०	०	३	२	०	०	०	०

राशिपिण्ड = ३० + २० + ३२ + ३३ + २४ = १३९
ग्रहपिण्ड = २४ + २० + ५ + ३ = ५२
भौम स्पष्ट पिण्ड = १९१

इस चक्रानुसार राशिपिण्ड १३९, ग्रहपिण्ड ५२ एवं योग १९१ है। मंगलाश्रित राशि से तृतीय में भाई का विचार किया जाता है। यहाँ मंगल सिंह में है, अत: उससे तृतीय भाव के रेखायोग ३ से भौमपिण्ड १९१ को गुणा कर २७ का भाग दिया तो शेष ६ बचा; अत: ६ वाँ आर्द्रा अथवा उससे त्रिकोण स्वाती, शतभिषा नक्षत्र में जब शनि जायेगा, तब भ्रातृकष्ट जानना चाहिए।

अथवा भौम स्पष्ट पिण्ड को ३ से गुणा कर १२ का भाग दिया तो शेष ९ बचा, अत: धनु में अथवा उससे त्रिकोण मेष, सिंह राशि में जब शनि जायेगा तब भ्रातृकष्ट समझना चाहिए ॥२४-२७॥

बुधाष्टक वर्गफल

बुधात्तुर्ये कुटुम्बं च मातुलं मित्रमेव च।
बुधे फलाधिके राशौ गते तेषां सुखं दिशेत् ॥२८॥
बुधाष्टवर्गं संशोध्य शेषमृक्षं गते शनौ।
कष्टं कुटुम्बमित्राणां मातुलानां च निर्दिशेत् ॥२९॥

बुध से चतुर्थ स्थान से कुटुम्ब, मामा, मित्रादि का विचार करना चाहिए। बुधाष्टक वर्ग में जिस राशि में अधिक रेखा हो उस राशि में बुध के जाने पर कुटुम्ब, मामा, मित्रादि को सुख प्राप्त होता है। जिसमें शून्य अधिक हो उस राशि में बुध के जाने पर कुटुम्बादिकों को कष्ट जानना चाहिए। पूर्ववत् रेखासंख्या से बुधाष्टक वर्ग के पिण्ड को गुणा कर २७ का भाग देने पर जो शेष रहे, उस शेषसंख्यक नक्षत्र में जब शनि जाय उस समय कुटुम्ब, मामा, मित्रादिकों का नाश जानना चाहिए एवं गुणनफल में १२ का भाग देकर जो शेष रहे, उस शेषसंख्यक राशि में शनि के जाने पर पर भी कुटुम्बादिकों को कष्ट जानना चाहिए ॥२८-२९॥

बुधाष्टक वर्ग त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन चक्र

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ग्रह	सू.बु.शु.				मं.	चं.रा.				वृ.		श.
रेखायोग	५	४	५	४	४	५	४	३	७	३	५	५
त्रिकोण शोधनांक	१	१	१	१	०	२	०	०	३	०	१	२
एकाधिपत्य शोधनांक	१	१	०	१	०	२	०	०	१	०	१	२

राशिपिण्ड = ७ + १० + ४ + १० + ९ + ११ + २४ = ७५

ग्रहपिण्ड = ५ + ५ + ७ + १० + ८ = ३५

बुध स्पष्ट पिण्ड = ११०

बुध से चतुर्थ भाव से मामा का विचार किया जाता है। बुध मेष में है और उससे चतुर्थ में ४ रेखायें हैं; अतः ४ से बुधपिण्ड ११० को गुणा कर २७ का भाग देने पर शेष ८ बचा, अतः ८ वें पुष्य में अथवा उससे त्रिकोण अनुराधा-उत्तर भाद्रपद नक्षत्र में जब शनि जायेगा, तब मामा को कष्ट जानना चाहिए। अथवा बुधपिण्ड को ४ से गुणा कर १२ का भाग दिया तो शेष ८ रहा, अतः वृश्चिक में या उससे त्रिकोण मीन, कर्क में जब शनि जायेगा तब मामा को कष्ट जानना चाहिए ॥२८-२९॥

जीवाष्टक वर्गफल

जीवात् पञ्चमतो ज्ञानं धर्मं पुत्रं च चिन्तयेत्।
तस्मिन् फलाधिके राशौ सन्तानस्य सुखं दिशेत् ॥३०॥
बृहस्पतेः सुतस्थाने फलं यत्संख्यकं भवेत्।
शत्रुनीचगृहं त्यक्त्वा तावती सन्ततिर्ध्रुवा ॥३१॥
सुतभेशनवांशैश्च तुल्या वा सन्ततिर्भवेत्।
सुतभावफलेनैवं पिण्डं संगुण्य पूर्ववत् ॥३२॥
पुत्रकष्टं विजानीयात् शेषमृक्षं गते शनौ।
एवं धर्मं च विद्यां च कल्पयेत् कालवित्तमः ॥३३॥

गुरु से पञ्चम भाव से ज्ञान, धर्म, पुत्रादि का विचार करना चाहिए। उसमें रेखा अधिक हो तो सन्तानसुख श्रेष्ठ और अशुभजन्य शून्य अधिक रहने पर सन्तानसुख में कमी जानना चाहिए तथा पञ्चम भाव में जितनी शुभ फलजन्य रेखा हो उतनी ही सन्तानसंख्या अवश्य होंगी। परन्तु वह गुरु का नीच अथवा शत्रुगृह न हो, गुरु से पञ्चमेश जितने नवमांश में हो उतनी सन्तानसंख्या जाननी चाहिए। उस पञ्चम भाव में अष्टक वर्ग के फल से गुरुयोगपिण्ड से गुणा कर २७ का भाग देने पर शेषसंज्ञक नक्षत्र, उससे त्रिकोण नक्षत्र में जब शनि जाय तब सन्तान को कष्ट समझना चाहिए अथवा १२ का भाग देने पर शेष तुल्य राशि में शनि

के जाने पर सन्तानकष्ट जानना चाहिए; साथ ही उस समय में धार्मिक कृत्य में अवरोध एवं विद्या की हानि होती है। इसलिए कालविदों को स्वबुद्धि-विवेक से भी विचार कर फलादेश करना चाहिए ॥३०-३३॥

जीवाष्टक वर्ग त्रिकोणैकाधिपत्य-शोधन चक्र

राशि	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
ग्रह	वृ.		श.	सू.बु.शु.				मं.	चं.रा.			
रेखायोग	६	६	४	४	७	३	४	६	४	४	३	४
त्रिकोण शोधनांक	२	३	१	०	३	०	१	२	०	१	०	०
एकाधिपत्य शोधनांक	२	१	१	०	२	०	१	२	०	०	०	०

राशिपिण्ड = १० + ११ + १२ + २० + ४ + २० = ७७

ग्रहपिण्ड = २ + ४ + १६ = ४०

गुरु स्पष्ट पिण्ड = ११७

यहाँ पर गुरु मकर राशि में है, गुरु से पञ्चम भाव से ज्ञान, धर्म, पुत्रादि का विचार किया जाता है। गुरु से पञ्चम (वृष) का अष्ट वर्ग फल (रेखा) ७ है, इससे गुरु स्पष्टपिण्ड को गुणा किया तो (११७ × ७) ८१९ हुआ, इसमें २७ का भाग देने पर शेष ९ रहा, अत: ९ वाँ अश्लेषा नक्षत्र में या उससे त्रिकोण ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्र में जब शनि जायेगा, तब ज्ञान, धर्मादि क्रिया में अवरोध एवं पुत्रादि को कष्ट समझना चाहिए।

अथवा उक्त गुणनफल में १२ का भाग दिया तो शेष ३ बचा, अत: मिथुन राशि में या उससे त्रिकोण राशि तुला, कुम्भ में जब शनि जायेगा, तब ज्ञान-धर्मादि कार्य में अवरोध एवं पुत्रादि को कष्टकारक होगा ॥३०-३३॥

शुक्राष्टक वर्गफल

शुक्रस्याष्टकवर्गं च निक्षिप्याकाशचारिषु।
यत्र यत्र फलानि स्युर्भूयांसि किल तत्र तु ॥३४॥
वित्तं कलत्रं भूमिं च तत्तद्देशाद् विनिर्दिशेत्।
शुक्राज्जामित्रतो दारलब्धिश्चिन्त्या विचक्षणैः ॥३५॥
जामित्र-तत्त्रिकोणस्थ-राशि-दिग्-देश-सम्भवा।
सुख-दुःखे स्त्रियाश्चिन्त्ये पिण्डं संवर्ध्य पूर्ववत् ॥३६॥

शुक्राष्टक वर्ग में जिस-जिस भाव के राशि में अधिक रेखा हो, उस-उस राशि में जब-जब शुक्र स्वगति से भ्रमण करके जाय, तब-तब धन, कलत्र, भूमि का तत् तत् राशि की दिशा और देश से लाभ जानना चाहिए। शुक्र से सप्तम भाव से स्त्री का विचार करना चाहिए। सप्तम भाव तथा उससे त्रिकोण राशि की दिशा तथा देश से द्रव्य और स्त्री का

लाभ समझना चाहिए। शुक्र से सप्तम की रेखासंख्या से शुक्र योगपिण्ड को गुणा कर २७ या १२ का भाग देकर जो शेष रहे उस शेषसंख्यक नक्षत्र या उस राशि में जब-जब शनि जाय तब-तब स्त्री आदि को कष्ट जानना चाहिए ॥३४-३६॥

शुक्राष्टक वर्ग त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन चक्र

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
ग्रह	सू.बु.शु.				मं.	चं.रा.				वृ.		श.
रेखायोग	४	४	४	५	५	३	५	५	६	५	४	२
त्रिकोण शोधनांक	०	१	०	३	१	०	१	३	२	२	०	०
एकाधिपत्य शोधनांक	०	०	०	३	१	०	०	३	२	२	०	०

राशिपिण्ड = १२ + १० + २४ + १८ + १० = ७४

ग्रहपिण्ड = ८ + २० = २८

स्पष्ट पिण्ड शुक्र का = १०२

शुक्र से सप्तम भाव से स्त्री का विचार किया जाता है। यहाँ शुक्र राशि में है। उस समय तुला राशि में शुक्राष्टक वर्ग फल (रेखा) ५ है, इससे शुक्रपिण्ड १०२ को गुणा कर २७ का भाग देने पर २७ शेष रहा, अत: २७ वें रेवती में अथवा उससे त्रिकोण अश्लेषा, ज्येष्ठा नक्षत्र में शनि के जाने पर स्त्री को कष्टकारक जानना चाहिए। अथवा पूर्व गुणनफल को १२ से भाग देने पर ६ शेष रहा, अत: कन्या राशि में या कन्या से त्रिकोण मकर, वृष राशि में शनि के जाने पर स्त्री को कष्टकारक जानना चाहिए ॥३४-३६॥

शन्यष्टक वर्गफल

शनैश्चराश्रितस्थानादष्टमं मृत्युभं स्मृतम्।
तदेव चायुषः स्थानं तस्मादायुर्विचिन्तयेत् ॥३७॥
लग्नात्-प्रभृति मन्दान्तं फलान्येकत्र कारयेत्।
तद्योगफलतुल्याब्दे व्याधिं वैरं समादिशेत् ॥३८॥
एवं मन्दादिलग्नान्तं फलान्येकत्र योजयेत्।
तत्तुल्यवर्षे जातस्य तस्य व्याधिभयं वदेत् ॥३९॥
द्वयोर्योगसमे वर्षे कष्टं मृत्युसमं दिशेत्।
दशारिष्टसमायोगे मृत्युरेव न संशयः ॥४०॥

शनि आश्रित स्थान से अष्टम स्थान को मृत्युस्थान कहा गया है। उसी अष्टम स्थान को आयुस्थान भी कहा गया है, अत: उसी स्थान से आयु का विचार करना चाहिए। लग्न से शनिनिष्ठ स्थान तक के रेखा का योग करके जो संख्या हो, उतने ही वर्ष में जातक को रोग, वैर या मरणतुल्य कष्ट होता है। इसी प्रकार शनि से लग्न तक के फल (रेखा) का

योग कर जो संख्या हो, उतने वर्ष में भी व्याधि या भय जानना चाहिए। दोनों योग (लग्न से द्वादश तक के योग) तुल्य वर्ष में मृत्युसदृश कष्ट होता है। उस समय में अशुभ प्रद दशा हो तो अवश्य ही मृत्यु होती है ॥३७-४०॥

शन्यष्टक वर्ग त्रिकोणैकाधिपत्य शोधन चक्र

राशि	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
ग्रह	श.	सू.बु.शु.			मं.	चं.रा.				लग्न	वृ.	
रेखायोग	३	१	५	२	४	१	३	३	४	४	४	५
त्रिकोण शोधनांक	०	१	२	०	१	०	०	१	१	३	१	३
एकाधिपत्य शोधनांक	०	१	१	०	१	०	०	०	०	३	१	२

राशिपिण्ड = ७ + १० + ४ + २७ + ५ + २२ = ७५

ग्रहपिण्ड = ५ + ५ + ७ + १० = २७

शनि का स्पष्ट पिण्ड = १०२

यहाँ धन लग्न है, अतः धन से शनिनिष्ठ राशि मीन तक के फलों (रेखाओं) का योग १६ होता है, अतः १६ वाँ वर्ष जातक के लिए कष्टकारक होगा एवं शनि से लग्न-पर्यन्त की रेखाओं का योग ३० होता है, अतः ३०वाँ वर्ष भी अनिष्टप्रद होगा। दोनों का योग ४६वाँ वर्ष भी कष्टप्रद होगा; इसमें मृत्यु या मृत्युतुल्य कष्ट का सामना करना पड़ेगा ॥३७-४०॥

अन्य मृत्युकथन

पिण्डं संस्थाप्य गुणयेत् शनेरष्टमगैः फलैः।
सप्तविंशतिहृच्छेषतुल्यमृक्षं गते शनौ ॥४१॥
तत्त्रिकोणर्क्षगे वापि जातकस्य मृतिं वदेत्।
अर्कहृच्छेषराशौ वा तत्त्रिकोणेऽपि तद् वदेत् ॥४२॥

शनि के अष्टक वर्ग-साधन से उत्पन्न पिण्ड को शनि के अष्टम भाव की रेखासंख्या से गुणा कर २७ का भाग देकर शेष तुल्य नक्षत्र या उससे दोनों त्रिकोण के नक्षत्र में जब शनि जाय तब जातक की मृत्यु समझनी चाहिए। अर्थात् उस समय अशुभ दशा हो तो मरण एवं शुभ दशा हो तो कष्ट जानना चाहिए। अथवा उक्त गुणनफल में १२ का भाग देने पर जो शेष हो, उस शेष के तुल्य राशि या उसके त्रिकोण राशि में जब शनि जाय तब मृत्यु का भय रहता है ॥४१-४२॥

उदाहरण—शन्यष्टक वर्ग में राशिपिण्ड ७५ और ग्रहपिण्ड २७ है, दोनों का योग १०२ शनि का स्पष्ट पिण्ड हुआ। यहाँ शनि मीन में है और मीन से अष्टम राशि तुला है। तुला की रेखा ३ है, अतः ३ से शनिपिण्ड १०२ को गुणा किया तो ३०६ हुआ,

इसमें २७ का भाग दिया तो शेष ९ बचा, अत: ९ वें अश्लेषा नक्षत्र में या उससे त्रिकोण ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्र में जब शनि जायेगा, तब मृत्यु का भय होता है। इस समय में अशुभ ग्रह की महादशा हो तो मृत्यु एवं शुभ दशा हो तो कष्टकारक होता है।

पूर्वदर्शित गुणनफल ३०६ को १२ से भाग दिया तो शेष ६ रहा, अत: शनि के कन्या में जाने पर या उससे त्रिकोण मकर-वृष राशि में जाने पर जातक का मरण होगा ऐसा जानना चाहिए ।।४१-४२।।

विशेष

शनैश्चराष्टवर्गेषु यत्र नास्ति फलं गृहे।
तत्र नैव शुभं तस्य यदा याति शनैश्चर: ।।४३।।
यत्र राशौ शुभाधिक्यं तत्र याते शनैश्चरे।
जातकस्य ध्रुवे ज्ञेयं तस्मिन् काले शुभं फलम् ।।४४।।

शनि के अष्टक वर्ग में जिस राशि में रेखा न हो अर्थात् अधिक बिन्दु हो, उस राशि में शनि के जाने से अशुभ होता है तथा जिस राशि में अधिक रेखा हो, उस राशि में शनि के जाने पर शुभ होता है। रेखा के न्यूनाधिक अनुपात से फल में भी न्यूनाधिक का विचार तारतम्य से करना चाहिए ।।४३-४४।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामष्टकवर्गफलाध्याय: ।।७२।।

अथाऽष्टकवर्गायुर्दायाध्यायः ॥७३॥

पराशर उवाच

अथात्रायुः प्रवक्ष्येऽहमष्टवर्गसमुद्भवम् ।
दिनद्वयं विरेखायां रेखायां सार्धवासरम् ॥१॥
दिनमेकं द्विरेखायां त्रिरेखायां दिनार्धकम् ।
वेदतुल्यासु रेखासु सार्धसप्तदिनं स्मृतम् ॥२॥
द्विवर्षं पञ्चरेखासु षड्रेखासु चतुःसमा ।
षड्वर्षं सप्तरेखासु वसवोऽष्टासु वत्सराः ॥३॥
एवं यदा गतायुः स्यात् सर्वखेटसमुद्भवम् ।
तदर्धं स्फुटमायुः स्यादष्टवर्गभवं नृणाम् ॥४॥

पराशर मुनि बोले, अब मैं अष्टक वर्ग से उत्पन्न आयुर्दाय को कहता हूँ। प्रत्येक ग्रह तथा लग्न के अष्टक वर्ग में अलग-अलग देखना चाहिए। जिस राशि में रेखा का अभाव हो उसमें २ दिन, जिसमें १ रेखा हो उसमें $१\frac{१}{२}$ दिन, जिसमें २ रेखा हो उसमें १ दिन, जिस राशि में ३ रेखा हो उसमें $\frac{१}{२}$ दिन, जिसमें ४ रेखा हो उसमें $७\frac{१}{२}$ दिन, जिसमें ५ रेखा हो उसमें २ वर्ष, जिसमें ६ रेखा हो उसमें ४ वर्ष, जिस राशि में सात रेखा हो उसमें ६ वर्ष एवं जिसमें ८ रेखा हो उसमें ८ वर्ष की आयु होती है। इसी प्रकार सभी ग्रहों के अष्टक वर्ग में सभी राशियों की आयु का ज्ञान कर सबका योग करके आधा करने से जो शेष रहे, वह अष्टक वर्गजन्य स्पष्ट आयु होती है ॥१-४॥

सूर्याष्टक वर्ग रेखा चक्र

राशि	१ सू.	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	योग
रेखासंख्या	३	४	५	२	२	६	४	६	३	३	५	५	
वर्ष	०	०	२	०	०	४	०	४	०	०	२	२	१४
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	०	७	०	१	१	०	७	०	०	०	०	०	९
घटी	३०	३०	०	०	०	०	३०	०	३०	३०	०	०	१५

यहाँ सूर्य मेष राशि में है, अतः मेष से १२ राशियाँ रख दिया। फिर मेष में ३ रेखायें हैं, अतः उसकी आयु ३० घटी मात्र हुई। वृष में ४ रेखायें हैं, अतः उसकी आयु ७ (सात) दिन ३० घटी हुई। मिथुन में पाँच रेखा है, अतः उसकी आयु २ वर्ष और कर्कट में २ रेखा हैं, अतः उसकी आयु मात्र १ दिन हुई। सिंह में २ रेखा, अतः उसकी आयु भी १ दिन; कन्या में ६ रेखा, अतः उसकी आयु ४ वर्ष; तुला में ४ रेखा, अतः

उसकी आयु ७ दिन ३० घटी; वृश्चिक में ६ रेखा, अतः उसकी आयु ४ वर्ष; धनु में ३ रेखा, अतः उसकी आयु ३० घटी; मकर में ३ रेखा, अतः उसकी आयु ३० घटी; कुम्भ में ५ रेखा, अतः आयु २ वर्ष एवं मीन में ५ रेखा, अतः मीन की २ वर्ष आयु हुई। सबका योग करने पर सूर्याष्टक वर्गायु वर्षादि १४।०।१८।३० और इसका आधा ७।०।९।१५ वर्षादि सूर्याष्टक वर्गज स्पष्ट आयुर्दाय हुआ। इसी प्रकार चन्द्रादि ग्रह तथा लग्न के अष्टक वर्ग से आयु लाकर सबके योगतुल्य ही जातक की स्पष्टायु जाननी चाहिए। सभी ग्रहयोग निम्नवत् हैं—

सूर्याष्टक वर्गायु—७।०।९।१५ जीवाष्टक वर्गायु—९।०।२३।०
चन्द्राष्टक वर्गायु—७।०।१२।४५ शुक्राष्टक वर्गायु—७।०।१९।३०
भौमाष्टक वर्गायु—७।०।३।४५ शन्यष्टक वर्गायु—२।०।१७।४५
बुधाष्टक वर्गायु—८।०।१५।३० लग्नाष्टक वर्गायु—७।०।१६।३०

यहाँ सबके अष्टक वर्गायु योग ५१।३।२७।५८ वर्षादि हुए, अतः जातक की स्पष्टायु वर्षादि ५१।३।२७।५८ हुई ॥१-४॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रेऽष्टकवर्गायुर्दायाध्यायः ॥७३॥

अथ समुदायाष्टकवर्गाध्यायः ॥७४॥

पराशर उवाच

द्वादशारं लिखेच्चक्रे जन्मलग्नादिभैर्युतम्।
सर्वाष्टकफलान्यत्र संयोज्य प्रतिभं न्यसेत् ॥१॥
समुदायाभिधानोऽयमष्टवर्गः प्रकथ्यते।
अतः फलानि जातानां विज्ञेयानि द्विजोत्तम! ॥२॥

पराशर बोले—हे द्विजोत्तम! द्वादश कोष्ठ की कुण्डली लिखकर उस चक्र में लग्न से लेकर द्वादशपर्यन्त सभी भाव लिखकर उसमें पूर्वसाधित समस्त ग्रहों के अष्टक वर्ग में प्रत्येक राशियों की जितनी रेखाएँ हों, सबका योग कर प्रत्येक राशि में लिखना चाहिए। इसको समुदायाष्टक कहा जाता है। इस चक्र के माध्यम से जातक का शुभाशुभ फल जानना चाहिए ॥१-२॥

समुदाय-रेखाफल

त्रिंशाधिकफला ये स्यू राशयस्ते शुभप्रदाः।
पञ्चविंशादि-त्रिंशान्तफला मध्यफला स्मृताः ॥३॥
अतः क्षीणफला ये ते राशयः कष्टदुःखदा।
शुभे श्रेष्ठफलान् राशीन् योजयेन्मतिमान्नरः ॥४॥
कष्टराशीन् सुकार्येषु वर्जयेद् द्विजसत्तम!।
श्रेष्ठराशिगतः खेटः शुभोऽन्यत्राऽशुभप्रदः ॥५॥

समुदायाष्टक वर्ग में जिस राशि में ३० या उससे अधिक रेखा हो, वह राशि शुभप्रद होती है। जिस राशि में २५ से ३० के मध्य रेखायें हों, वह राशि मध्यम एवं जिस राशि में २५ से न्यून रेखा हो, वह राशि अधम मानी जाती है। अधम राशि दु:ख तथा कष्ट-प्रद होती है। अत: जिस कार्य में जिस ग्रह का बल निर्धारित है, वह ग्रह जब श्रेष्ठ राशि में प्राप्त हो, उसी समय उस कार्य को करना चाहिए। साधारणतया चन्द्रमा सभी कार्यों में ग्राह्य है; अत: चन्द्रमा जब अधिक से अधिक रेखा वाली राशि में प्राप्त हो, तभी शुभ कार्य करने चाहिए। अर्थात् शुभ राशि में चन्द्र के रहने पर कार्य सुसम्पन्न, मध्यम राशि में मध्यम एवं अधम राशि में चन्द्रमा रहने पर अनिष्टकारक होता है। इसी प्रकार विवाहादि शुभ कार्य में गुरु, भूमि, नेतृत्वसम्बन्धी कार्य मंगल इत्यादि अन्य ग्रहों को भी जानकर जब अधिक रेखा वाली राशि में सम्बन्धित ग्रह प्राप्त हो, तभी कार्यारम्भ करना चाहिए ॥३-५॥

रेखानुसार भावफल

तन्वादि-व्ययपर्यन्तं दृष्ट्वा भावफलानि वै।
अधिके शोभनं ज्ञेयं हीने हानिं विनिर्दिशेत् ॥६॥

मध्ये मध्यफलं ब्रूयाद् तत्तद्भावसमुद्भवम् ॥६½॥

लग्न में द्वादश भावपर्यन्त राशियों की रेखा देखकर भावफल जानना चाहिए अर्थात् जिसमें समुदायाष्टक वर्ग में ३० से अधिक रेखा हो, उस भाव की वृद्धि, जिसमें २५ से कम रेखायोग हो उसमें हानि तथा जिस समुदायाष्टक वर्ग में २५-३० रेखा हो तो उस भाव का मध्यम फल जानना चाहिए ॥६॥

पुनः विशिष्ट फल

मध्यात् फलाधिको लाभो लाभात् क्षीणगतो व्ययः ॥७॥
लग्नं फलाधिकं यस्य भोगवानर्थवान् हि सः ।
विपरीतेन दारिद्र्यं भवत्येव न संशयः ॥८॥

जिस जातक के समुदायाष्टक वर्ग में दशम भाव से एकादश भाव में अधिक रेखा हो तथा द्वादश भाव में कम रेखा हो एवं लग्न में रेखासंख्या अधिक हो तो वह व्यक्ति भोगवान् एवं अर्थवान् होता है। इससे विपरीत समुदायाष्टक वर्ग में रेखाक्रम हो तो वह जातक दु:खी एवं दरिद्र होता है ॥७-८॥

दशावस्था फल

दशावदिह भावानां कृत्वा खण्डत्रयं बुधः ।
पश्येत् पापसमारूढं खण्डे कष्टकरं वदेत् ॥९॥
सौम्यैर्युक्तं शुभं ब्रूयान्मिश्रैर्मिश्रफलं यथा ।
क्रमाद् बाल्याद्यवस्थासु खण्डत्रयफलं वदेत् ॥१०॥

लग्न से व्यय भावपर्यन्त समान ३ खण्ड करके शुभाशुभ फल देखना चाहिए। जिस भाग में पापग्रह अधिक हो, वह भाग (अवस्था) कष्टकारक; जिस खण्ड में शुभ ग्रह अधिक हो, वह अवस्था सुखकारक और जिस भाग में मिश्रित (अशुभ, शुभ) ग्रह हो, वह अवस्था मिश्रित अर्थात् कभी सुखकारक एवं कभी दु:खकारक होती है।

विभागक्रम से इस प्रकार हैं—लग्न से चतुर्थ भावपर्यन्त बाल्यावस्था, पञ्चम भाव से अष्टम भाव तक युवावस्था एवं नवम भाव से द्वादश भाव तक वृद्धावस्था जाननी चाहिए। इस प्रकार जातक को किस अवस्था में अधिक सुख, किस अवस्था में दु:ख एवं किसमें सम रहेगा, आदि का विचार सरलता से अवगत किया जा सकता है।

उदाहरण—यहाँ धनु लग्न है। धनु लग्न में सूर्याष्टक वर्ग में ३ रेखा, चन्द्राष्टक वर्ग में ३ रेखा, भौमाष्टक वर्ग में ३ रेखा, बुधाष्टक वर्ग में ७ रेखा, जीवाष्टक वर्ग में ४ रेखा, शुक्राष्टक वर्ग में ६ रेखा, शन्यष्टक वर्ग में ४ रेखा तथा लग्नाष्टक वर्ग में २ रेखा हैं। इन सबका योग ३२ हुआ; यह समुदायाष्टक वर्ग में लग्नभाव (धन) में संख्या हुई। इस प्रकार धनभाव के आठों वर्ग के योग ३३ हुए, इसे द्वितीय भाव में स्थापित किया। तृतीय भाव में आठों वर्ग के योग ४१ हुए, यह तृतीय भाव की रेखासंख्या हुई। चतुर्थ

भाव में आठों वर्ग का योग २४ हुआ, यह चतुर्थ भाव की रेखासंख्या हुई। इसी प्रकार पञ्चम भाव की रेखासंख्या २४, षष्ठ भाव की रेखासंख्या ३४, सप्तम भाव की रेखासंख्या ३५, अष्टम भाव की रेखासंख्या ३१, नवम भाव की रेखासंख्या २८, दशम भाव की रेखासंख्या ३५, एकादश भाव की रेखासंख्या ३२, द्वादश भाव की रेखासंख्या ३२—इस तरह समुदायाष्टक वर्ग कुण्डली में न्यास कर बाल्य, यौवन, वार्धक्य की अवस्था, धन-धान्य, शारीरिक सुख, यश-अपयश इत्यादि का विचार करना चाहिए।

यहाँ तनुभाव में ३२ रेखा पड़ी है; अत: शारीरिक सुख उत्तम एवं धनभाव में ३३ रेखा पड़ी है, अत: आर्थिक स्थिति अच्छी रहेगी। दर्शित चक्र में लग्न, धन, पराक्रम, शत्रु, स्त्री, आयु, कर्म तथा आयभाव में ३० से अधिक रेखायें हैं, अत: इन भावों से सम्बन्धित फल उत्तम रहेगा। धर्मभाव में २८ रेखा है, अत: धार्मिक कृत्यसम्बन्धी कार्य मध्यम होंगे। भूमि, मातृ, विद्या, पुत्रादि से सम्बन्धित भाव में २५ से अल्प रेखा पड़ने के कारण इन वस्तुओं में अधम रहेगा ॥९-१०॥

रे.३३ १० वृ.
रे. ३४ ८
रे. ४१ ११
रे. ३२ ९
रे. ३२ ७
रे. २४ श.के. १२
रे. ३५ चं. ६ रा.
सु शु.बु.१ रे.२४
रे. ३५ ३
मं.२८ रे ५
रे.३४ २
रे.३१ ४

समुदायाष्टक वर्ग चक्र

शान्तिसहित रेखाफल

रेखाभिः सप्तभिर्युक्ते मासे मृत्युभयं नृणाम्।
सुवर्णं विंशतिपलं दद्यात् द्वौ तिलपर्वतौ ॥११॥
रेखाभिरष्टभिर्युक्ते मासे मृत्युवशो नरः।
असत्फलविनाशाय दद्यात् कर्पूरजां तुलाम् ॥१२॥
रेखाभिर्नवभिर्युक्ते मासे सर्पभयं वदेत्।
अश्वैश्चतुर्भिः संयुक्तं रथं दद्याच्छुभाप्तये ॥१३॥
रेखाभिर्दशभिर्युक्ते मासे शस्त्रभयं तथा।
दद्याच्छुभफलावाप्त्यै कवचं वज्रसंयुतम् ॥१४॥
अभिशापभयं यत्र रेखा रुद्रसमा द्विज।
दिक्पलस्वर्णघटितां प्रदद्यात् प्रतिमां विधोः ॥१५॥
युक्ते द्वादशरेखाभिर्जले मृत्युभयं वदेत्।
सशस्यभूमिं विप्राय दत्वा शुभफलं भवेत् ॥१६॥
विश्वप्रमितरेखाभिर्व्याघ्रान्मृत्युभयं तथा।
विष्णोर्हिरण्यगर्भस्य दानं कुर्याच्छुभाप्तये ॥१७॥
शक्रप्रमितरेखाभिर्युक्ते मासे मृतेर्भयम्।
वराहप्रतिमां दद्यात् कनकेन विनिर्मिताम् ॥१८॥

तिथिभिश्च नृपाद् भीतिर्दद्यात् तत्र गजं द्विज! ।
रिष्टं षोडशभिर्दद्यात् मूर्तिं कल्पतरोस्तथा ॥१९॥
सप्तेन्दुभिर्व्याधिभयं दद्याद् धेनुं गुडं तथा ।
कलहोऽष्टेन्दुभिर्दद्याद् रत्नगोभूहिरण्यकम् ॥२०॥
अङ्केन्दुभिः प्रवासः स्याच्छान्तिं कुर्यात् विधानतः ।
विंशत्या बुद्धिनाशः स्याद् गणेशं तत्र पूजयेत् ॥२१॥
रोगपीडैकविंशत्या दद्यात् धान्यस्य पर्वतम् ।
यमाश्विभिर्बन्धुपीडा दद्यादादर्शकं द्विज! ॥२२॥
त्रयोविंशतिसंयुक्ते मासे क्लेशमवाप्नुयात् ।
सौवर्णीं प्रतिमां दद्याद्रवेः सप्तपलैर्बुधः ॥२३॥
वेदाश्विभिर्बन्धुहीनो दद्याद् गोदशकं नृपः ।
सर्वरोगविनाशार्थं जपहोमादिकं चरेत् ॥२४॥
धीहानिः पञ्चविंशत्या पूज्या वागीश्वरो तदा ।
षड्विंशत्याऽर्थहानिः स्यात्स्वर्णं दद्याद् विचक्षणः ॥२५॥
तथा च सप्तविंशत्या श्रीसूक्तं तत्र सञ्जपेत् ।
अष्टविंशतिसंयुक्ते मासे हानिश्च सर्वथा ॥२६॥
सूर्यहोमश्च विधिना कर्तव्यः शुभकांक्षिभिः ।
एकोनत्रिंशता चापि चिन्ताव्याकुलितो भवेत् ॥२७॥
घृतवस्त्रसुवर्णानि तत्र दद्यात् विचक्षणः ।
त्रिंशता पूर्णधान्याप्तिरिति जातकनिर्णयः ॥२८॥

समुदायाष्टक वर्ग में जिस राशि में १ से ७ तक रेखा हो, उस माह में (यानी उस राशि में सूर्य के जाने पर) मरणतुल्य कष्ट या मृत्यु का भय रहता है, उस दोष की शान्ति के लिए २० तोला सुवर्ण तथा तिल के २ पर्वत (तिल के पर्वताकार २ ढेर) दान करना चाहिए। जिस राशि में ८ रेखा हो उस माह में भी मृत्यु की आशंका रहती है। उस दोष के शमन हेतु कर्पूर का तुला दान करना चाहिए। जिसमें ९ रेखा हो, उस माह में सर्पभय रहता है, उसकी शान्ति के लिए चार अश्वयुक्त रथ दान करना चाहिए। जिस राशि में १० रेखा हो, उस माह में शस्त्रभय होता है, अतः शुभ फल की प्राप्ति हेतु वज्रयुक्त कवच दान करना चाहिए। जिस राशि में ११ रेखा हो, उस माह में मिथ्यापवाद (दोषारोपण) का भय रहता है, उक्त दोष की शान्ति के लिए १० पल सुवर्ण से निर्मित चन्द्रमा का दान करना चाहिए। जिस राशि में १२ रेखा हो उस माह में जल से मृत्यु का भय रहता है, उस दोष के शमन हेतु धान्यसहित भूमि का दान करना चाहिए। जिस राशि में १३ रेखा हो, उस माह में व्याघ्र से मृत्यु का भय रहता है, उसके लिए हिरण्ययुक्त विष्णु (अर्थात् जिसके मध्य भाग में सुवर्ण हो यानी (शालीग्राम) का दान करना चाहिए। जिस राशि में १४

रेखा हो, उस माह में मृत्यु की आशंका रहती है, उसके लिए सुवर्णनिर्मित वराह की प्रतिमा दान करनी चाहिए। जिस राशि में १५ रेखा हो, उस माह में राजभय रहता है, उसकी शान्ति के लिए हाथी का दान करना चाहिए। जिस राशि में १६ रेखा हो, उस माह में अरिष्ट का भय रहता है, उस दोष की शान्ति हेतु सुवर्णनिर्मित कल्पतरु का दान करना चाहिए। जिसमें १७ रेखा हो, उसमें व्याधि का भय रहता है,उसकी शान्ति के लिए धेनु तथा गुड़ का दान करना चाहिए। जिस राशि में १८ रेखा हो, उस माह में कलह का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए रत्न, गौ, भूमि एवं सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में १९ रेखा हो उस माह में प्रवास (देशान्तर में रहने) का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए शास्त्रोक्त विधान का आश्रय लेना चाहिए। जिस राशि में २० रेखा हो, उस माह में बुद्धिनाश का भय होता है, इसकी शान्ति हेतु गणेश का पूजन करना चाहिए। जिस राशि में २१ रेखा हो उस माह में रोग एवं पीड़ा का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए धान्यपर्वत का दान करना चाहिए। जिस राशि में २२ रेखा हो, उस मास में अपने बन्धु-बान्धवों को पीड़ा होती है, उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में २३ रेखा हो, उस मास में क्लेश का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए ७ पल सुवर्ण से निर्मित सूर्य की प्रतिमा बनाकर दान करनी चाहिए। जिस राशि में २४ रेखा हो, उस मास में बन्धुहीनता का भय रहता है, उसकी शान्ति के लिए गोदान करना चाहिए तथा सभी रोगों के विनाश के लिए जप-होमादि करना चाहिए। जिस राशि में २५ रेखा हो, उस मास में बुद्धि की हानि होती है, इसकी शान्ति हेतु सरस्वती का पूजन करना चाहिए। जिस राशि में २६ रेखा हो, उस माह में अर्थ की हानि होती है, उसकी शान्ति के लिए सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिसमें २७ रेखा हो, उसमें द्रव्य की हानि होती है, इसमें श्रीसूक्त का जप करना चाहिए। २८ रेखा वाली राशि में सभी प्रकार की हानि होती है, इसकी शान्ति के लिए सूर्य का होम करना चाहिए। जिस राशि में २९ रेखा हो उस माह में मानसिक चिन्ता होती है, इसकी शान्ति के लिए घृत, वस्त्र और सुवर्ण का दान करना चाहिए। जिस राशि में ३० रेखा हो उस माह में धन-धान्य की पूर्ण प्राप्ति होती है ॥११-२८॥

विशेष—यहाँ पर सूर्य प्रत्येक वर्ष प्रति राशि पर जाता है, तो क्या प्रति वर्ष तत्तद् माह में अरिष्टकारक होता है ? नहीं, ऐसा है कि जिस वर्ष में गुरु उस राशि में हो और सूर्य जब उस राशि में जाय तथा चन्द्रमा भी उस राशि में जिस दिन प्राप्त हो, उसी समय पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होगी; अन्य समय में नहीं होगी।

३० से अधिक रेखाओं के शुभ फल

त्रिंशाधिकामी रेखाभिर्धनपुत्रसुखाप्तयः।
चत्वारिंशाधिकाभिश्च पुण्यश्रीरुपचीयते ॥२९॥

जिस राशि में ३० से अधिक रेखा हो तो उस राशि के गुरु वर्ष तथा सौर मास एवं चन्द्रमा के भी उस राशि में प्राप्त होने पर धन, पुत्र और विभिन्न प्रकार के सुख की प्राप्ति

होती है। जिस राशि में ४० से अधिक रेखा हो तो उस वर्ष, माह और चान्द्रनक्षत्र में आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ पुण्य, सम्पत्ति और प्रतिष्ठा की अभिनव वृद्धि होती है ॥२९॥

अष्टक वर्ग में विशेषता

अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु।
अतोऽष्टवर्गसंशुद्धिरन्वेष्या सर्वकर्मसु ॥३०॥
तावद् गोचरमन्वेष्यं यावन्न प्राप्यतेऽष्टकम्।
अष्टवर्गे तु सम्प्राप्ते गोचरं विफलं भवेत् ॥३१॥

जो राशि अष्टक वर्ग से शुद्ध हो वह राशि सभी शुभ कार्यों में शुद्ध होती है। अन्यत्र सभी शुभ कृत्यों में अष्टक वर्ग की शुद्धि का अन्वेषण करना चाहिए। अष्टक वर्ग शुद्धि के अभाव में गोचर शुद्धि को देखना चाहिए। अष्टक वर्ग शुद्धि प्राप्त हो तो गोचर शुद्धि विफल हो जाती है।

विशेष—निष्कर्ष यह निकलता है कि गोचर शुद्धि से अष्टक वर्ग की शुद्धि प्रबल है। अत: शुभ कृत्यों में ग्रह का बलाबल देखने के लिए अष्टक वर्ग शुद्धि ही प्रत्यक्ष मार्ग है ॥३०-३१॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां समुदायाष्टकवर्गाध्याय: ॥७४॥

अथ रश्मिफलाध्यायः ।।७५।।

पराशर उवाच

अथ रश्मीन् प्रवक्ष्यामि ग्रहाणां द्विजसत्तम! ।
दिङ्नवेष्विषु-सप्ताष्टशराः स्वोच्चे करा रवेः ।।१।।
नीचे खं चान्तरे प्रोक्ता रश्मयश्चानुपाततः ।
नीचोनं तु ग्रहं भार्धाधिकं चक्राद्विशोधयेत् ।।२।।
स्वीयरश्मिहतं षड्भिर्भजेत् स्यू रश्मयः स्वकाः ।।२$\frac{1}{2}$।।

पराशर ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! अब ग्रहों की रश्मि-(किरण)-संख्या बतलाता हूँ। सूर्यादि ग्रहों की अपने परमोच्च में क्रम से १०,९,५,५,७,८,५ रश्मिसंख्या होती है एवं परम नीच में सूर्यादि सभी ग्रहों की रश्मिसंख्या शून्य होती है। मध्य में ग्रह रहने से अनुपात के द्वारा रश्मिसाधन करना चाहिए। जिस ग्रह की रश्मिसंख्या का साधन अभीष्ट हो, उस राश्यादि ग्रह में उसके नीच राश्यादि घटाकर (शेष यदि ६ राशि से अधिक हो तो १२ राशि में घटायें, लेकिन ६ राशि से कम शेष रहने पर १२ राशि में न घटायें) इसको अपने उच्च राशि में कथित रश्मि से गुणा कर छः का भाग देने पर लब्धि रश्मिसंख्या होती है ।।१-२।।

उत्पन्न रश्मियों में विशेष संस्कार

अपरैरत्र संस्कारविशेषः कथितो यथा ।।३।।
स्वोच्चभे ते त्रिगुणिताः स्वत्रिकोणे द्विसंगुणाः ।
स्वभे त्रिघ्ना द्विसंभक्ता अधिमित्रगृहे तथा ।।४।।
वेदघ्ना रामसंभक्ता मित्रभे षड्गुणास्ततः ।
पञ्चभक्तास्तथा शत्रु-गृहे चेद् दलिताः कराः ।।५।।
अधिशत्रुगृहे द्विघ्नाः पञ्चभक्ताः समे समाः ।
शनि-शुक्रौ विना ताराग्रहा अस्तं गता यदि ।।६।।
विरश्मयो भवन्त्येवं ज्ञेयाः स्पष्टकरा द्विज ।
रश्मियोगवशादेवं फलं वाच्यं विचक्षणैः ।।७।।

हे द्विजोत्तम ! अन्य आचार्यों ने उक्त साधित रश्मिसंख्या में विशेष संस्कार कहे हैं, जिस मैं बताने जा रहा हूँ। जैसे रश्मिसाधित ग्रह अपने परमोच्च हो तो साधित रश्मि को त्रिगुणित करना, अपने त्रिकोण में ग्रह हो तो द्विगुणित करना, अपनी राशि में ग्रह हो तो त्रिगुणित कर २ का भाग देना, अधिमित्र गृह में ग्रह रहने पर ४ से गुणा कर ३ का भाग देना, मित्रराशि में ग्रह हो तो ६ से गुणा कर ५ का भाग देना, शत्रुगृह में ग्रह रहने पर साधित रश्मि को आधा करना, अधिशत्रुगृह में ग्रह हो तो २ से गुणा कर ५ का भाग देना,

सम गृह में ग्रह रहने पर साधित रश्मि ही होंगी। शनि, शुक्र को छोड़कर शेष तारा ग्रह (मं.बु.वृ.) यदि अस्त हो तो रश्मि शून्य होती है। इस प्रकार रश्मियोग के द्वारा शुभाशुभ का विचार कर फल का कथन करना चाहिए॥३-७॥

स्पष्ट ग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.	ल.
०	५	४	०	९	०	११	५	११	८
६	१३	२०	१०	२६	१२	१७	३	३	२६
५०	१५	२८	३७	४	५८	७	२०	२०	४२
१४	०	४९	२४	१८	३६	८	२१	३१	०

॥ जन्माङ्गचक्र ॥

वृ. १०
८
११
९
७
श. १२ के.
चं. ६ रा.
सू.
बु. १
शु.
३
५ मं.
२
४

।। पञ्चधा मैत्री चक्र ।।

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.
अधिमित्र	वृ.		चं.		सू.	वृ.श.	बु.शु.	
मित्र		मं.		बृ.श.	श.		बृ.	
सम	चं. मं.श.	सू. बु.	सू. वृ.	सू. शु.	चं.मं. बु.शु.	बु.	सू.	श.मं. बु.शु.
शत्रु	बु.	वृ.शु. श.	शु. श.	मं.		मं.		वृ.
अधिशत्रु	शु.		बु.	चं.		सू. चं.	चं. मं.	सू. चं.

अब ग्रहों का रश्मिसाधन करते हैं, एतदर्थ ऊपर स्पष्ट ग्रह, लग्नकुण्डली तथा पञ्चधा मैत्री चक्र का अवलोकन करना चाहिए। स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।६।५०।१४ में सूर्य के नीच राश्यादि ६।१०।०।० को घटाने से प्राप्त शेष ५।२६।५०।१४, यह ६ राशि से अल्प है, अत: इसको सूर्य की उच्च रश्मिसंख्या १० से गुणा किया तो ५८।२०।५२।२० हुआ, इसमें ६ का भाग दिया तो ९।४३ सूर्य की रश्मिसंख्या हुई। अब विशेष संस्कारार्थ जन्म

३६ बृ.

कुण्डली देखा तो सूर्य मंगल के गृह में है; मंगल सूर्य का सम ग्रह है, अत: पूर्व नियमानुसार पूर्वागत रश्मिसंख्या ही सूर्य की स्पष्ट रश्मिसंख्या ९।४३ हुई।

स्पष्ट चन्द्र राश्यादि ५।१३।१५।० में चन्द्र नीच राश्यादि ७।३ को हीन किया तो शेष १०।१०।१५।० रहा, यह ६ राशि से अधिक है, अत: इसको १२ राशि में घटाया तो १।१९।४५।० शेष रहा, इसको उच्च चन्द्रमा की रश्मिसंख्या ९ से गुणा किया तो १४।२७।४५।० हुआ, इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि २।२४ चन्द्रमा की रश्मि हुई। अब विशेष संस्कारार्थ जन्म कुण्डली तथा पञ्चधा मैत्री चक्र देखने से पता लगा कि चन्द्रमा सम ग्रह की राशि में है, अत: यथागत रश्मि ही चन्द्रमा की स्पष्ट रश्मि २।२४ हुई।

पुन: स्पष्ट मंगल राश्यादि ४।२०।२८।४९ में मंगल की नीच राश्यादि ३।२८ को हीन किया तो शेष ०।२२।२८।४९ रहा, यह ६ राशि से अल्प है, अत: इसी को उच्च मंगल की रश्मिसंख्या ५ से गुणा कर ३।२२।२४।५ हुआ, इसमें ६ राशि का भाग दिया तो लब्धि ०।२४ मंगल की रश्मिसंख्या हुई। विशेष संस्कार हेतु लग्नकुण्डली, पञ्चधा मैत्री चक्र से ज्ञान हुआ कि सम ग्रह में है, अत: पूर्वागत रश्मिसंख्या ही स्पष्ट रश्मि संख्या ०।२४ हुई।

फिर स्पष्ट बुध राश्यादि ०।१०।३७।२४ में बुध नीच राश्यादि ११।१५ को हीन किया तो शेष ०।२५।३७।२४ रहा; यह ६ राशि से अल्प है, अत: इसी को उच्च बुध रश्मिसंख्या ५ से गुणा किया तो ४।८।७।० हुआ; इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि ०।४१ बुध की रश्मिसंख्या हुई। उक्त जन्म चक्र, मैत्री चक्र से पता लगा कि बुध शत्रुगृह में है; अत: पूर्वागत ०।४१ रश्मि की आधी ०।२० बुध की स्पष्ट रश्मिसंख्या हुई।

स्पष्ट गुरु राश्यादि ९।२६।४।१८ में गुरु नीच राश्यादि ९।५ को हीन किया तो शेष ०।२१।४।१८ रहा, यह ६ राशि से अल्प है, अत: इसको गुरु की उच्च रश्मि ७ से गुणा किया तो ४।२७।३०।६ हुआ, इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि ०।४४ गुरु की रश्मि हुई, गुरु अपने मित्रगृह में रहने के कारण ०।४४ को ६ से गुणा तो किया ४।२४ हुआ, इसमें ५ का भाग दिया तो लब्धि ०।५३ हुई, जो कि गुरु की स्पष्ट रश्मिसंख्या हुई।

स्पष्ट शुक्र ०।१२।५८।३६ राश्यादि में शुक्र नीच राश्यादि ५।२७ को घटाया तो शेष ६।१५।५८।३६ रहा, यह ६ राशि से अधिक है, अत: इसको १२ में घटाया तो शेष ५।१४।१।२४ बचा, इसको शुक्र की उच्च रश्मिसंख्या ८ से गुणा किया तो ४३।२२।११।१२ हुआ, इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि ७।१४ मिली, शुक्र शत्रुगृह में बैठा है, अत: ७।१४ को आधा किया तो प्राप्त ३।२७ शुक्र की स्पष्ट रश्मि हुई।

शनि के स्पष्ट राश्यादि ११।१७।७।८ में शनि नीच राश्यादि ०।२० को घटाया तो १०।२७।७।८ शेष बचा, यह ६ राशि से अधिक है, अत: इसको १२ राशि में हीन किया तो लब्धि १।२।५२।५२ मिली, इसको शनि उच्चरश्मि ५ से गुणा किया तो ५।१४।२४।२० हुआ, इसमें ६ का भाग दिया तो लब्धि ०।५२ शनि की रश्मि हुई, शनि के स्वमित्र गृह में रहने के कारण प्राप्त ०।५२ को ६ से गुणा किया तो ५।१२ हुआ, इसमें ५ का भाग दिया तो लब्धि ०।२ मिली, यही शनि की स्पष्ट रश्मिसंख्या हुई ॥३-७॥

पूर्व निष्पन्न ग्रहों की रश्मिसंख्या

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	योग
रश्मि	९	२	०	०	०	३	०	१७
संख्या	४३	२४	२४	२०	५३	३७	२	२३

रश्मि के अनुरूप फलकथन

एकादि पञ्चपर्यन्तं रश्मिसंख्या भवेद् यदि।
दरिद्रा दुःखसन्तप्ता अपि जाताः कुलोत्तमे ॥८॥

१ से ५ तक रश्मिसंख्या हो तो जातक उत्तम धनाढ्य कुल में जन्म लेने पर भी दरिद्र और दुःखों से सन्तप्त बना रहता है ॥८॥

परतो दशकं यावत् निर्धना भारवाहकाः।
स्त्रीपुत्रगृहहीनाश्च जायन्ते मनुजा भुवि ॥९॥

जिस जातक के रश्मियोग ६ से १० तक हों वह निर्धन, भार ढोने वाला एवं स्त्री-पुत्र और गृह से हीन होता है ॥९॥

एकादशस्वल्पपुत्राः स्वल्पवित्ताश्च मानवाः।
द्वादशस्वल्पवित्ताश्च धूर्ता मूर्खाश्च निर्बलाः ॥१०॥
चौर्यकर्मरता नित्यं चेत् त्रयोदश रश्मयः।
चतुर्दशसु धर्मात्मा कुटुम्बानां च पोषकाः ॥११॥
कुलोचितक्रियासक्तो धनविद्यासमन्वितः।
रश्मिभिः पञ्चदशभिः सर्वविद्यागुणान्वितः ॥१२॥
स्ववंशमुख्यो धनवानित्याह भगवान् विधिः।
परतश्च कुलेशानां बहुभृत्या कुटुम्बिनः ॥१३॥
कीर्तिमन्तो जनैः पूर्णाः सर्वे च सुखिनः क्रमात् ॥१३$\frac{१}{२}$॥

रश्मिसंख्या ११ हो तो जातक स्वल्प पुत्र वाला एवं अल्प धनवान होता है। १२ रश्मि में स्वल्प धन, धूर्त और मूर्ख होता है। १३ रश्मि में जातक चौरकार्य करने वाला होता है। रश्मियोग १४ हो तो जातक धार्मिक बुद्धि वाला एवं अपने कुटुम्बियों का पालन-पोषण करने वाला होता है; साथ ही अपने कुल के अनुसार धर्मकारक एवं धनु तथा विद्या से युक्त होता है। रश्मियोग १५ हो तो जातक सभी विद्याओं में निपुण, धनाढ्य एवं अपने वंश में श्रेष्ठ होता है, ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है। इसके पश्चात् क्रम से १६ में कुलदीपक, १७ में बहुत सेवक रखने वाला, १८ में अधिक बन्धु-बान्धव वाला, १९ में बहुत यश वाला एवं २० में अपने जन तथा परिवारों से परिपूर्ण होता है ॥१०-१३$\frac{१}{२}$॥

पञ्चाशज्जनपालश्चेदेकविंशति-रश्मयः ॥१४॥
दानशीलः कृपायुक्तो द्वाविंशतिषु रश्मिषु।

सुखयुक् सौम्यशीलश्चेत् त्रयोविंशतिरश्मयः ॥१५॥

यदि रश्मियोग २१ हो तो जातक ५० मनुष्यों का पालक होता है। २२ रश्मि में जातक दानशील और कारुणिक होता है। २३ रश्मि में जातक सुशील और सुखयुक्त होता है ॥१४-१५॥

आत्रिंशत् परतः श्रीमान् सर्वसत्त्वसमन्वितः।
राजप्रियश्च तेजस्वी जनैश्च बहुभिर्वृतः ॥१६॥

इसके ऊपर ३० तक रश्मियोग हो तो जातक धनवान, सभी प्रकार के बलों से समन्वित, राजा का प्रियपात्र, तेजयुक्त और बहुत जनों से युक्त रहता है ॥१६॥

अत ऊर्ध्वं तु सामन्तश्चत्वारिंशत् करावधि।
जनानां शतमारभ्य सहस्रावधिपोषकः ॥१७॥

इससे ऊपर अर्थात् ३१ से ४० तक रश्मियोग रहने पर जातक क्रम से १०० से १००० तक मनुष्यों का पोषक होता है और स्वयं सामन्त होता है ॥१७॥

अत ऊर्ध्वं तु भूपालः पञ्चाशत् किरणावधि।
तत ऊर्ध्वकरैर्विप्र! चक्रवर्ती नृपो भवेत् ॥१८॥

४१ से ५० तक रश्मिसंख्या हो तो जातक राजा होता है। इससे अर्थात् ५१ से ऊपर रश्मिसंख्या रहने पर जातक चक्रवर्ती (सम्राट) राजा होता है ॥१८॥

एवं प्रसूतिकालोत्थनभोगकरसम्भवम्।
कुलक्रमानुसारेण जातकस्य फलं वदेत् ॥१९॥

इस प्रकार जन्मकालिक ग्रहों की रश्मिसंख्या का पूर्वोक्त प्रकार से साधन करके जातक की जाति, कुल के अनुसार शुभाशुभ फल कहना चाहिए ॥१९॥

क्षत्रियश्चक्रवर्ती स्याद् वैश्यो राजा प्रजायते।
शूद्रश्च साधनो विप्रो यज्ञकर्मक्रियारतः ॥२०॥

यदि रश्मिसंख्या ५० से ऊपर हो तो जातक राजकुलोत्पन्न क्षत्रिय हो तो चक्रवर्ती राजा होता है। वैश्य कुल में उत्पन्न हो तो सामान्य राजा एवं शूद्रकुल में उत्पन्न हो तो धनवान और ब्राह्मणकुल में उत्पन्न जातक यज्ञकार्य में रत रहने वाला होता है ॥२०॥

अन्य विशेष

उच्चाभिमुखखेटस्य कराः पुष्टफलप्रदाः।
नीचाभिमुखखेटस्य ततो न्यूनफलप्रदाः ॥२१॥

उच्चाभिमुख (उच्च की तरफ जाने वाले ग्रह) रश्मि के अनुरूप पूर्ण फल प्रदान करते हैं एवं नीचाभिमुख (स्वनीच की तरफ जाने वाले ग्रह) ग्रह स्वकिरण के अनुसार न्यून फल प्रदान करते हैं ॥२१॥

सर्वेषामेव खेटानामेवं रश्मिवशाद् द्विज!।
शुभं वाऽप्यशुभं चापि फलं भवति देहिनाम् ॥२२॥
रश्मिज्ञानं विना सम्यक् न फलं ज्ञातुमर्हति।
तस्माद्रश्मीन् प्रसाध्यैव फलं वाच्यं विचक्षणैः ॥२३॥

समस्त ग्रहों के शुभ-अशुभ फल रश्मिसंख्या के अनुसार ही प्राणियों पर पड़ते हैं। वस्तुत: रश्मिज्ञान के विना फल का समुचित ज्ञान नहीं हो सकता। अत: रश्मिसाधन करके ही शुभाशुभ फल का कथन करना चाहिए ॥२२-२३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां रश्मिफलाध्याय: ॥७५॥

अथ सुदर्शनचक्रफलाध्यायः ॥७६॥

पराशर उवाच

अथोच्यते मया विप्र! रहस्यं ज्ञानमुत्तमम्।
जगतामुपकाराय यत् प्रोक्तं ब्रह्मणा स्वयम् ॥१॥
चक्रं सुदर्शनं नाम यद्वशात् प्रस्फुटं फलम्।
नृणां तन्वादिभावानां ज्ञातुं शक्नोति दैववित् ॥२॥
जन्मतो मृत्युपर्यन्तं वर्षमासदिनोद्भवम्।
शुभं वाऽप्यशुभं सर्वं तच्छृणुष्वैकमानसः ॥३॥

महर्षि पराशर ने कहा कि हे ब्राह्मण ! अब आपसे मैं परम गोपनीय और उत्तम ज्ञान को कहता हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर श्रवण करें। जिस उत्तम ज्ञान को जगत् के उपकार के लिए स्वयं ब्रह्माजी ने कहा है। यह सुदर्शन नामक चक्र है, जिसके माध्यम से ज्योतिषीगण मनुष्यों के जन्म से मरण तक का प्रतिवर्ष, प्रतिमास और प्रतिदिन के शुभाशुभ फल अवगत कर सकते हैं तथा लग्न से द्वादश भावसम्बन्धी समस्त फलों का भी समुचित प्रकार से प्रतिपादन कर सकते हैं ॥१-३॥

सुदर्शन चक्रस्वरूप

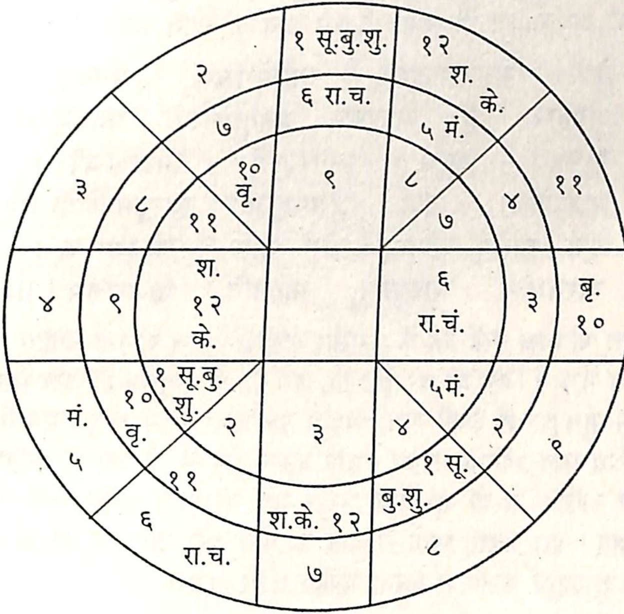
एककेन्द्रोद्भवं रम्यं लिखेत् वृत्तत्रयं द्विज!।
द्वादशारं च तत् कुर्यात् भवेदेवं सुदर्शनम् ॥४॥

हे द्विज ! एक बिन्दु को केन्द्र मानकर उस केन्द्र से ३ वृत्त खींचकर केन्द्र से तुल्य विभाग में १२ भाग करने पर 'सुदर्शन' नामक चक्र सिद्ध होता है ॥४॥

तत्राद्यवृत्ते लग्नाद्य भावा लेख्याः स-खेचराः।
तदूर्ध्ववृत्ते चन्द्राच्च भावाः खेटसमन्विताः ॥५॥
तदूर्ध्ववृत्ते सूर्याच्च क्रमाद् भावा ग्रहान्विताः।
एवमेकैकभावेऽत्र भवेत् भानां त्रयं त्रयम् ॥६॥

पूर्वोक्त 'सुदर्शन' चक्र में प्रथम वृत्त में लग्न से द्वादश भाव लिखकर ग्रहों को तत्तद् राशियों में रखना चाहिए (जो ग्रह जिस राशि में हो उसे उसी स्थान में रखना चाहिए)। उससे ऊपर वाले (मध्य) वृत्त के द्वादश कोष्ठ में चन्द्राश्रित राशि को लग्न मानकर द्वादश भाव ग्रहसहित लिखना चाहिए एवं उसके ऊपर अर्थात् तृतीय वृत्त के १२ कोष्ठ में सूर्याश्रित राशि को लग्न मानकर १२ भाव ग्रहसहित अंकित करना चाहिए। इस प्रकार इस चक्र के एक-एक भाव में तीन-तीन राशियाँ होती हैं ॥५-६॥

सुदर्शन चक्र



सुदर्शन चक्र में विशेषता

अत्र तु प्रथमो भावो लग्नेन्दुरविभिर्युतः।
तं प्रकल्प्य तनुं त्वग्रे ज्ञेया भावा धनादयः ॥७॥
तत्र तत्र ग्रहस्थित्या ज्ञेयं तत्तत्फलं बुधैः।
तनुभावे शुभः सूर्यो ज्ञेयोऽन्यत्र शुभप्रदः ॥८॥
पापोऽपि स्वोच्चराशिस्थो न भवत्यशुभप्रदः।
एवं शुभाऽशुभं दृष्ट्वा तत्तद्भावफलं वदेत् ॥९॥

सुदर्शन चक्र में विशेषता यह है कि लग्न, चन्द्र और सूर्य—ये तीनों प्रथम भाव में पड़ते हैं; इसको तनुभाव मानते हैं। उससे आगे क्रमेण धन, सहज, सुहृद द्वादश भाव जानना चाहिए। इन सभी भावों में ग्रहों की स्थिति देखकर फल का विचार करना चाहिए। इस सुदर्शन चक्र में तनुभाव में सूर्य शुभ माना जाता है और अन्यत्र सूर्य अशुभ माना जाता है। पाप ग्रह भी अपने उच्च राशि में स्थित हो तो अशुभप्रद नहीं होता है। इस प्रकार ग्रहों के शुभाशुभ विचार तथा ग्रहों के योग, वियोग, दृष्टि आदि देखकर फलादेश करने से वह फलादेश समुचित और सत्य सिद्ध होता है ॥७-९॥

यो भावः स्वामिसौम्याभ्यां युक्तो दृष्योऽयमेधते।
पापैर्दृष्टो युतो यो वा तस्य हानिः प्रजायते ॥१०॥

जो भाव अपने स्वामी से युत या दृष्ट हो और शुभ ग्रह से समन्वित हो तो उस भाव की वृद्धि, जिस भाव का स्वामी अपने स्थान में न हो और दृष्टि भी न रखता हो एवं शुभ ग्रहों से युत या अवलोकित भी न हो तो उस भाव की हानि समझनी चाहिए ॥१०॥

ज्ञेयं सग्रहभावस्य ग्रहयोगसमं फलम् ।
अग्रहस्य तु भावस्य ग्रहदृष्टिसमं फलम् ॥११॥
शुभैरेवं शुभं पापैरशुभं मिश्रखेचरैः ।
शुभाधिके शुभं ज्ञेयमशुभं त्वशुभाधिके ॥१२॥
एवं भावेषु खेटानां योगं दृष्टिं विलोक्य च ।
तारतम्येन वाच्यानि फलानि द्विजसत्तम ! ॥१३॥

ग्रहयुत भाव का उसी ग्रह के अनुसार शुभाशुभ फल जानना चाहिए। जिस भाव में ग्रह न हो उस भाव में जिस ग्रह की दृष्टि हो, उस ग्रह के अनुरूप ही फल समझना चाहिए। जिस भाव में शुभ ग्रह हों उसमें शुभ, अशुभ ग्रहनिष्ठ भाव में अशुभ एवं मिश्रित ग्रहनिष्ठ भाव में मिश्रित फल जानना चाहिए। इसी प्रकार दृष्टि में भी जानना चाहिए अर्थात् शुभ ग्रह की दृष्टि अधिक हो तो शुभ एवं अशुभ ग्रहों की दृष्टि अधिक रहने पर अशुभ फल जानना चाहिए। इस प्रकार भावों में ग्रहों के योग और दृष्टि को अच्छी तरह समझकर तारतम्य से शुभाशुभ फलादेश करना चाहिए ॥११-१३॥

यत्र नैव ग्रहः कश्चिन्न दृष्टिः कस्यचिद् भवेत् ।
तदा तद्भावजं ज्ञेयं तत्स्वामिवशतः फलम् ॥१४॥

जिस भाव में न कोई ग्रह हो और न किसी ग्रह की दृष्टि हो तो उस भाव की राशि के स्वामी के अनुरूप फल जानना चाहिए ॥१४॥

शुभोऽप्यशुभवर्गेषु ह्यधिकेष्वशुभप्रदः ।
पापोऽपि शुभवर्गेषु ह्यधिकेषु शुभप्रदः ॥१५॥
स्वभोच्चस्य शुभस्यात्र वर्गा ज्ञेयाः शुभावहाः ।
शत्रोः क्रूरस्य नीचस्य षड्वर्गा अशुभप्रदाः ॥१६॥

नैसर्गिक (स्वाभाविक) शुभ ग्रह भी अधिक पाप ग्रह के वर्ग में रहने से अशुभ फलदायक होता है और पाप ग्रह होने पर भी अधिक शुभ ग्रह के वर्ग में रहने से वह शुभ फलप्रद होता है। अपनी राशि, उच्च तथा शुभ ग्रह के वर्ग में शुभ फलदायक होते हैं, इसी प्रकार पाप ग्रह का वर्ग, शत्रु और नीच राशि के वर्ग अशुभ फलकारक होते हैं ॥१५-१६॥

एवं सर्वेषु खेटेषु भावेष्वपि द्विजोत्तम ! ।
शुभाऽशुभत्वं सञ्चिन्त्य ततस्तत्फलमादिशेत् ॥१७॥

हे द्विजों में श्रेष्ठ ! इस प्रकार से सभी ग्रहों के तथा भावों के शुभत्व और पापत्व का पूर्ण विचार करने के बाद ही फल का कथन करना चाहिए ॥१७॥

उदाहरण—अब भावों तथा ग्रहों के शुभाशुभत्व-ज्ञानार्थ स्पष्ट ग्रह, द्वादश भाव, ग्रहों के सप्तवर्ग तथा भावों के सप्तवर्ग दिये जा रहे हैं—

स्पष्ट ग्रह

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.	ल.	ग्रह
०	५	४	०	९	०	११	५	११	८	राशि
६	१३	२०	१०	२६	१२	१७	३	३	१६	अंश
५०	१५	२८	३७	४	५८	७	२०	२०	४२	कला
१४	०	४९	२४	१८	३६	८	३१	३१	०	विकला

जन्माङ्गचक्र

१०बृ.
८
११
९
७
श. के.
१२
चं.
६ रा.
सू.
बु.१
शु.
३
५ मं.
२
४

ग्रहों के द्वादश भाव चक्र

भाव	तनु	ध.	स.	सु.	पु.	रि.	जा.	मृ.	धर्म	कर्म	आय	व्यय
रा.	८	९	१०	११	०	१	२	३	४	५	६	७
अं.	१६	२१	२५	२९	२५	२१	१६	२१	२५	२९	२५	२१
क.	४२	०	१९	३८	१९	०	४२	०	१९	३८	१९	०
वि.	०	४०	२०	०	२०	४०	०	४०	२०	०	२०	४०

ग्रहों के सप्तवर्ग चक्र

ग्रह	ल.	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.	रा.	के.
गृह	वृ.	मं.	बु.	सू.	मं.	श.	मं.	वृ.	बु.	वृ.
होरा	चं.	सू.	चं.	चं.	सू.	सू.	सू.	सू.	चं.	श.
द्रेष्काण	मं.	मं.	श.	मं.	सू.	बु.	सू.	चं.	बु.	वृ.
सप्त.	वृ.	शु.	बु.	वृ.	बु.	श.	चं.	वृ.	वृ.	शु.
नव.	बु.	बु.	शु.	शु.	चं.	सू.	चं.	वृ.	श.	सू.
द्वा.	बु.	बु.	श.	मं.	सू.	मं.	बु.	बु.	शु.	मं.
त्रिं.	वृ.	श.	वृ.	बु.	वृ.	मं.	वृ.	वृ.	शु.	मं.
शुभ वर्ग	६	३	५	४	३	१	४	६	६	३
पाप वर्ग	१	४	२	३	४	६	३	१	१	४

द्वादश भावों के सप्तवर्ग चक्र

भाव	तनु.	धन	सहज	सुहृद्	पुत्र	रिपु	जाया	मृत्यु	धर्म	कर्म	आय	व्यय
गृह	वृ.	श.	श.	वृ.	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.
होरा	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.
द्रे.	मं.	बु.	शु.	मं.	वृ.	श.	शु.	वृ.	मं.	शु.	बु.	चं.
सप्त.	वृ.	मं.	चं.	वृ.	बु.	वृ.	बु.	शु.	श.	बु.	वृ.	बु.
नव.	बु.	चं.	शु.	वृ.	मं.	चं.	वृ.	श.	मं.	बु.	शु.	श.
द्वाद.	बु.	बु.	वृ.	श.	श.	श.	वृ.	वृ.	बु.	सू.	सू.	चं.
त्रिं.	वृ.	श.	शु.	मं.	शु.	श.	वृ.	श.	शु.	मं.	शु.	श.
शुभ वर्ग	६	३	६	३	४	३	७	४	३	४	६	३
पाप वर्ग	१	४	१	४	३	४	०	३	४	३	१	४

ग्रहों के शुभाशुभत्व का विवेचन

सूर्य स्वाभाविक पाप ग्रह है, ग्रह के सप्तवर्ग चक्र में ४ वर्ग पापवर्ग हैं, ३ वर्ग शुभ हैं, अतः सूर्य पापाधिक्य होने के कारण जातक के लिए अनिष्टप्रद ही सिद्ध होता है। चन्द्रमा स्वभावतः शुभ ग्रह है तथा सप्त वर्ग में ५ शुभ वर्ग हैं, २ पाप वर्ग हैं, अतः चन्द्रमा शुभाधिक्य होने के कारण जातक को शुभ फल प्रदान करता है। मंगल स्वतः क्रूर ग्रह है, सप्त वर्ग में ४ वर्ग शुभ हैं और ३ वर्ग पापवर्ग हैं। पाप वर्ग की अपेक्षा शुभ वर्ग अधिक हैं, अतः मंगल का क्रूरत्व नष्ट हुआ, इसलिए जातक के लिए यह मध्यम (उदासीन) अर्थात् न तो शुभ फल देगा, न ही अशुभ फल देगा। बुध स्वतः शुभ ग्रह है तथा ३ वर्ग शुभप्रद हैं और ४ वर्ग पापप्रद हैं। शुभ वर्ग की अपेक्षा पापवर्ग अधिक हैं, सूर्य के साथ में बुध बैठा है, सूर्य बुध का अन्तरांश लगभग ४ अंश है, अतः बुध अस्त भी है, इसलिए बुध जातक के लिए अशुभप्रद ही सिद्ध हुआ। गुरु स्वभावतः शुभ ग्रह है, सप्त वर्ग में १ वर्ग शुभ है एवं ६ वर्ग अशुभ हैं, शुभ की अपेक्षा अशुभ वर्ग अधिक हुआ। स्वभावतः शुभ और वर्गों के हिसाब से अशुभ, एक तरफ शुभ दूसरी तरफ अशुभ होने के कारण मध्यम हुआ। शुक्र स्वभावतः शुभ ग्रह है और सप्त वर्ग के ४ वर्ग शुभ एवं ३ वर्ग अशुभ हैं, अशुभ की अपेक्षा शुभ वर्ग अधिक हुआ एवं स्वतः भी शुभ होने के कारण यह शुभ ही सिद्ध हुआ है। शनि स्वभावतः क्रूर ग्रह है, ६ वर्ग में शुभ है एवं १ वर्ग अशुभकारक है, इसलिए शनि का क्रूरत्व नष्ट हो गया, अतः जातक के लिए शनि उदासीन सिद्ध हुआ। राहु स्वभावतः अशुभ ग्रह है और सप्त वर्ग में ६ वर्ग शुभ हैं, अतः राहु का पापत्व नष्ट हुआ एवं यह जातक के लिए मध्यम फलकारक हुआ। केतु स्वभाव से ही पाप ग्रह है तथा पाप वर्ग भी अधिक है, अतः केतु अशुभकारक हुआ।

अतः जातक के लिए चन्द्र-शुक्र शुभ फलकारक, मंगल-गुरु-शनि-राहु मध्यम फलकारक एवं सूर्य-बुध और केतु अनिष्टप्रद सिद्ध होते हैं ॥१७॥

सुदर्शन चक्रानुसार द्वादश भावों का विचार

सुदर्शन चक्र के लग्न में सूर्य, बुध, शुक्र, राहु और चन्द्रमा बैठे हैं। सूर्य लग्न में है। 'तनुभावे शुभः सूर्यो ज्ञेयोऽन्यत्र' इत्यादि वचन से सूर्य शुभ ही हुआ, परन्तु सप्त वर्ग के हिसाब से अशुभ है, फिर भी लग्न में सूर्य शुभ ही होता है—ऐसा विशेष कथन होने के कारण सूर्य शुभ हुआ। बुध अनिष्टप्रद है, शुक्र शुभप्रद है, चन्द्रमा शुभप्रद है, द्वादश भाव सप्त वर्ग में ६ शुभ वर्ग हैं, १ पाप वर्ग में है। पापवर्ग की अपेक्षा शुभ वर्ग अधिक है, ग्रह भी पापप्रद के अतिरिक्त शुभप्रद अधिक हैं, अतः जातक को शारीरिक सुख, मानसिक प्रसन्नता आदि होना सुनिश्चित हुआ।

धनभाव में गुरु बैठे हैं, अन्य दो स्थानों के स्वामी शुक्र तनुभाव में है, शुक्र शुभ फलकारक है। धनभाव में ३ शुभवर्ग है और ४ पापवर्ग है। शुभ वर्ग की अपेक्षा पाप वर्ग अधिक है और धनभाव में गुरु स्वनीच राशि में बैठा है, अतः जातक को आर्थिक स्थिति में विषमता, असत्कार्य से धनोपार्जन एवं यदा-कदा आर्थिक कष्ट का आभास भी होगा।

सहज भाव में ग्रहाभाव है, परन्तु सप्त वर्ग में से ६ वर्ग शुभकारक है। मात्र १ वर्ग पापवर्ग है, मंगल द्वारा पूर्ण रूप से दृष्ट है, अतः उत्साह, पराक्रम, विक्रम, आदि योग उत्तम, सहोदर बन्धुसौख्य अधम, भ्रातृसंख्या स्वल्प एवं भृत्य-सेवकजन्य सौख्य मध्यम रहेगा।

सुखभाव में शनि-केतु बैठे हैं और दोनों अशुभप्रद हैं। शुभ वर्ग ३ है और पाप वर्ग ४ हैं। शुभ वर्ग के अतिरिक्त पाप अधिक है, अतः मातृसौख्य मध्यम, भूमि, वाहन, गृह-सुख अधम एवं अन्य प्रायः अच्छे रहेंगे।

पुत्रभाव में मंगल, बृहस्पति, सूर्य, बुध, शुक्र ग्रहों का योग है और यह योग उत्तम है। ४ वर्ग में शुभ गृह हैं एवं पाप वर्ग ३ हैं, अतः सन्तानयोग उत्तम है एवं विद्या, बुद्धि प्रतिभा, वाचाल शक्ति भी उत्तम रहेगा।

रिपु भाव में राहु और चन्द्रमा है। षष्ठ चन्द्र बालारिष्टकारक होता है। रिपु भाव में ३ शुभ वर्ग एवं ४ पापवर्ग है; शुभवर्ग की अपेक्षा पापवर्ग अधिक है, अतः जातक को अपने विपक्षी से सदैव सावधान रहना चाहिए। रोग एवं शत्रुभय का आभास होता रहेगा।

जायाभाव में शनि-केतु दोनों अशुभ ग्रह बैठे हैं, परन्तु सातों वर्ग शुभ ग्रह का वर्ग है।

अतः भार्या दु:शीला, स्त्री रोगयुक्त, दुर्मुखा, अन्यासक्ता होने पर भी वर्ग शुभ होने के कारण कालान्तर में अनुकूलप्रद होती है।

आयुर्दाय भाव में सूर्य, बुध, शुक्र बैठे हैं, यह योग शुभप्रद है, सप्तवर्ग में ४ वर्ग शुभ हैं और ३ वर्ग अशुभ। अशुभ वर्ग की अपेक्षा शुभ वर्ग अधिक है, अतः दीर्घायु योग है, अधिक शुभ वर्ग होने के कारण जीवन में सफलता प्राप्त होती है।

धर्मभाव में मंगल बैठा है, यह पापग्रह है और ३ वर्ग शुभ है, ४ वर्ग पापकारक है; अतः धर्म कार्य में अवरोध एवं मानसिक अशान्ति होगी।

कर्मभाव में गुरु-चन्द्र-राहु हैं, ४ शुभ वर्ग हैं एवं ३ पापवर्ग हैं, अत: शुभ वर्ग अधिक रहने से पितृसुख उत्तम होता है, साथ ही राजसम्मान एवं व्यापार में सफलता होती है।

आयभाव में ग्रह वर्जित है, ६ शुभ वर्ग है एवं १ पाप वर्ग है। शुभ वर्ग अधिक होने के कारण स्वव्यवसाय से अधिक लाभ होता है।

व्ययभाव में मंगल-केतु हैं, ये दोनों ग्रह अनिष्टप्रद हैं। सप्त वर्ग में ३ वर्ग शुभ हैं और ४ वर्ग अशुभ हैं। अशुभ वर्ग अधिक होने के कारण व्यय अल्प होता है, यानी बचत अधिक होती है ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

यदा सुदर्शनादेव फलं सिद्ध्यति देहिनाम्।
तदा किं मुनिभिः सर्वैर्लग्नादेव फलं स्मृतम् ॥१८॥
इति मे संशयो जातस्तं भवान् छेत्तुमर्हति ॥१८½॥

मैत्रेय जी ने कहा कि हे भगवन्! यदि सुदर्शन चक्र से ही जातक के समस्त शुभाशुभ फल जाने जा सकते हैं, तो अन्य पूज्य महर्षि आचार्यों ने लग्नकुण्डली से ही फलादेश करने की प्रक्रिया क्यों बनाई है? यह मेरे मन में आशंका उपस्थित हुई है, कृपया आप उसका निराकरण करने की कृपा करें ॥१८½॥

पराशर उवाच

पृथग्भगौ यदाऽर्केन्दू लग्नादन्यत्र संस्थितौ ॥१९॥
तदा सुदर्शनाच्चक्रात् फलं वाच्यं विचक्षणैः।
एकभे द्वौ त्रयो वा चेत् तदा लग्नात् फलं वदेत् ॥२०॥

पराशर बोले—हे मैत्रेय! यदि सूर्य तथा चन्द्र भिन्न-भिन्न राशि में होकर लग्न से अन्यत्र बैठे हों, तब सुदर्शन चक्र से शुभाशुभ फल बताना चाहिए। यदि चन्द्र, सूर्य और लग्न—ये तीनों एक राशि में स्थित हों या दो एक राशि में में बैठे हों तो लग्नचक्र से ही फलादेश करना चाहिए ॥१९-२०॥

अथ विप्र! प्रवक्ष्येऽहं प्रतिवर्षादिजं फलम्।
अस्मात् सुदर्शनादेव दशान्तरदशावशात् ॥२१॥
तन्वाद्यैर्वर्षमासार्ध-द्विकघस्त्रान् प्रवर्तयेत्।
भावेशादि-द्वादशानां दशा वर्षेषु कल्पयेत् ॥२२॥
तदाद्यन्तर्दशास्तद्वन् मासादौ तद्वलैः फलम्।
तं तं भावं प्रकल्प्याङ्गं तत्तत्तन्वादिजं द्विज! ॥२३॥

हे द्विज! अब मैं आपको इसी सुदर्शन चक्र से १२ भावों की दशा-अन्तर्दशावश प्रतिवर्ष और प्रति मासादि के फल को कहता हूँ। लग्नादि भावों में प्रत्येक भाव में एक-

एक वर्ष दशामान कल्पना करके उस भाव को वर्षलग्न मानकर वहाँ से पुनः तन्वादि भाव कल्पना कर अग्रिम कथित विधि के अनुसार भावों के फल समझना चाहिए। फिर प्रति वर्ष में एक-एक राशि की एक माह अन्तर्दशा मानकर उसी राशि से प्रारम्भ करके १२ राशियों को उस मास में माह लग्न मानकर द्वादश भावों के जो फल हों, उस माह में जानना चाहिए। फिर तत् तत् मास में मासभाव से प्रारम्भ कर प्रत्येक मास की अन्तर्दशा २½ दिन के हिसाब से जाननी चाहिए।

उस २½ दिन में द्वादश भावों को लग्न मानकर उनके हिसाब से जो फल हो वह २½ दिन में जानना चाहिए। इसी प्रकार २½ दिन में भी १२ भावों की विदशा मानकर प्रति १२½ घटी का फल जानना चाहिए॥२१-२३॥

फलकथन

तत्तल्लग्नात् केन्द्रकोणाष्टमे सौम्याः शुभप्रदाः।
यत्र भावे सैंहिकेयो भवेत् तद्भावहानिकृत्॥२४॥
पापा वा यत्र बहवस्तत्तद्भावविनाशनम्।
विरिष्फारिशुभैः पापैस्त्रिषडायस्थितैः शुभम्॥२५॥
एवं प्रत्यब्दमासादौ भावानां फलचिन्तनम्।
द्वादशानां दशाऽऽवृत्त्या दशाश्चायुषि चिन्तयेत्॥२६॥

दशा के आरम्भ समय के लग्न से यदि केन्द्र कोणाष्ट (१।४।७।१०।५।९।८) में शुभ ग्रह हों तो उस-उस वर्ष, मासादि में शुभकारक होते हैं। जिस-जिस राहु या केतु का सहवास हो, उस-उस भाव की हानि होती है तथा जिस भाव में अधिक पापग्रह बैठे हों उस भाव की हानि होती है। यदि १२, ६ भाव से अन्यत्र शुभ ग्रह हो तो उस-उस भाव का फल सन्तोषप्रद होता है अर्थात् १२, ६ भाव में शुभ ग्रह रहने से उस-उस वर्ष, मासादि में अशुभ जानना चाहिए। यदि पाप ग्रह ३, ६, ११ भाव में हों तो इन भावों का फल शुभ जानना चाहिए। इस प्रकार जन्मकाल से प्रति वर्ष, प्रतिमास, दिनादि भावों का फल जानना चाहिए। इसी प्रकार परमायु (१२० वर्ष) में दश आवृत्ति द्वारा लग्नादि द्वादश भावों की दशा-अन्तर्दशादि का विचार करना चाहिए॥२४-२६॥

उदाहरण—प्रथम वर्ष में जन्मलग्न ही वर्षलग्न होता है। सुदर्शन चक्र में धन लग्न है। अतः प्रथम दशा धन की ही हुई, क्योंकि वर्षलग्न भी वही हुआ। धनादि भाव प्रथम वर्ष में पूर्ववत् ही रहेंगे।

नियमानुसार दशारम्भकालिक लग्न से केन्द्र में शनि-केतु-चन्द्रमा एवं राहु हैं और कोण में सूर्य, बुध, शुक्र तथा मंगल हैं, अतः ८ ग्रहों में से ५ ग्रह क्रूर एवं ३ ग्रह शुभ हैं। सूर्य में, स्वगृह में, जिस भाव में राहु या केतु रहे उस भाव की हानि होती है, अतः प्रथम वर्ष में गृह, सुख, वाहन आदि की हानि होगी; क्योंकि केतु चतुर्थ है। कर्मभाव में राहु बैठा है, अतः कार्य में विलम्ब, अपव्यय, मानसिक अशान्ति आदि का आभास होगा।

होगा। धनभाव में गुरु का रहना आर्थिक स्थिति में क्रमिक सुधार एवं स्व-व्यवसाय से समुचित लाभ को सूचित करता है। इस प्रकार कुल मिलाकर जातक का प्रथम वर्ष का दशाफल सन्तोषप्रद ही हुआ।

द्वितीय वर्ष में धनभाव को वर्षलग्न मानकर धनभाव को प्रथम, तृतीयादि भावों को द्वितीयादि भाव मानकर पूर्व दर्शित क्रम से शुभाशुभ का विचार एवं तृतीयादि वर्षों में तृतीयादि भाव को वर्षलग्न मानकर शुभाशुभ का विवेचन करना चाहिए।

अन्तर्दशाविचार—प्रथम वर्ष में तनुभाव धन की दशा में धन की ही अन्तर्दशा हुई। द्वितीय मास में मकर की अन्तर्दशा हुई, अतः मकर (धनभाव) को ही द्वितीय मास का लग्न मानकर कुम्भादि को धनादि भाव जानना चाहिए। द्वितीय मास के लग्न मकर में गुरु बैठे हैं, अतः शारीरिक सुख उत्तम रहेगा। केन्द्र में बुध, शुक्र एवं सूर्य बैठे हैं; अतः गृह-वाहन एवं मातृसौख्य सन्तोषप्रद रहेगा। कर्मेश शुक्र पराक्रम स्थान में है, अतः व्यापार एवं व्यवसाय उत्साह एवं पराक्रम से सम्पन्न होगा। इसी तरह तृतीयादि भावों को तनुभाव मानकर तृतीयादि मासों का शुभाशुभ फल समझना चाहिए। इस प्रकार १२ मासों का शुभाशुभ फल ज्ञात करना चाहिए।

फिर द्वितीय वर्ष में धन भाव (मकर) को वर्षलग्न मानकर मकरादि १२ राशियों की एक-एक मासतुल्य अन्तर्दशा मानकर तत् तद् भावों को मासलग्न जानना चाहिए, फिर पूर्व दर्शित नियमानुसार द्वितीय वर्षीय १२ मासों का शुभाशुभ फल ज्ञात करना चाहिए।

इस प्रकार जन्म से १२ वर्षों तक वर्ष तथा मासों का फल एवं फिर १३ वर्ष में जन्मलग्न को वर्षलग्न मानकर पूर्वोक्त नियमानुसार १२ वर्षों तथा वर्ष के अन्तर्गत स्थित सभी मासों का शुभाशुभ फल जानना चाहिए। इस प्रकार दश आवृत्ति करने से १२० वर्षों का शुभाशुभ फल समझा जा सकता है।

प्रत्यन्तर्दशा विधि—तत्तद् मास लग्न से आरम्भ कर १२ राशियों की प्रत्यन्तर्दशा होती है। प्रत्यन्तर्दशा का मान ढाई ($२\frac{१}{२}$) दिन होता है। इस प्रकार आनीत फल $२\frac{१}{२}$ दिन का होता है। यहाँ वर्ष, मास, दिन, घटी को सौरमान से जानना चाहिए।

प्रथमावृत्ति का धन्वादि दशा चक्र

दशा	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ
वर्ष	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०५५	२०५६	२०५७	२०५८	२०५९	२०६०	२०६१	२०६२	२०६३	२०६४	२०६५	२०६६
सूर्य ० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६	० ६

प्रथम वर्ष में अन्तर्दशा चक्र

दशा	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
संवत् २०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५५
सूर्य ० ६	१ ६	२ ६	३ ६	४ ६	५ ६	६ ६	७ ६	८ ६	९ ६	१० ६	११ ६	० ६

इसी प्रकार अन्य मासों को भी लगाकर शुभाशुभ का विचार करना चाहिए।

फलविचार

एवं सुदर्शनाच्चक्राद् वर्षमासादिजं फलम्।
ज्ञात्वा तथाऽष्टवर्गोत्थमुभाभ्यां फलनिर्णय: ॥२७॥
उभयत्र समत्वे हि सम्पूर्णं तत् फलं वदेत्।
विषमत्वे यदाधिक्यं तत्फलं च बलक्रमात् ॥२८॥

इस प्रकार सुदर्शन चक्र से वर्ष, मासादि का फल तथा अष्टवर्ग से उत्पन्न फल को समझकर शुभाशुभ फल का निश्चय करना चाहिए। यह दोनों तरफ से शुभ हो तो शुभप्रद और दोनों तरफ से अशुभ हो तो अनिष्टप्रद होता है। यदि एक तरफ से शुभत्व हो और दूसरी तरफ अशुभत्व हो तो बलानुसार तारतम्य से (जिसकी अधिकता हो, उसी को) शुभ अधिक हो तो शुभ और अशुभ अधिक हो तो अशुभ जानना चाहिए ॥२७-२८॥

प्रथमावृत्ति की प्रथम दशा की प्रथमान्तर्दशा की प्रथम प्रत्यन्तर्दशा

दशा	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृ.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दि.	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
घ.	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०
संवत् २०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४	२०५४
सूर्य ० ६ ५४	० ९ २४	० ११ ५४	० १४ २४	० १६ ५४	० १९ २४	० २१ ५४	० २४ २४	० २६ ५४	० २९ २४	१ १ ५४	१ ४ २४	१ ६ ५४

इसी प्रकार सभी दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, सूक्ष्म दशा, प्राणदशा को भी लगाकर जातक के वर्ष, मास, दिन, घटी, पल में शुभाशुभ फल का ज्ञान कर फलादेश चाहिए ॥२७-२८॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सुदर्शनचक्रफलाध्याय: ॥७६॥

अथ पञ्चमहापुरुषलक्षणाध्यायः ॥७७॥

पराशर उवाच

अथ वक्ष्याम्यहं पञ्च-महापुरुषलक्षणम्।
स्वभोच्चगतकेन्द्रस्थैर्बलिभिश्च कुजादिभिः ॥१॥
क्रमशो रुचको भद्रो हंसो मालव्य एव च।
शशश्चैते बुधैः सर्वैर्महान्तः पुरुषाः स्मृताः ॥२॥

पराशर बोले—हे मैत्रेय ! अब मैं आपसे पञ्च महापुरुष के लक्षण कहता हूँ। यदि भौमादि ग्रह बलवान होकर अपने उच्च, स्वगृह या केन्द्र में होते हैं तो जातक क्रमशः रुचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश नामक प्रसिद्ध महापुरुष होते हैं ॥१-२॥

रुचकलक्षण

दीर्घाननो महोत्साहो स्वच्छकान्तिर्महाबलः।
चारुभ्रूर्नीलकेशश्च सुरुचिश्च रणप्रियः ॥३॥
रक्तश्यामोऽरिहन्ता च मन्त्रविच्चोरनायकः।
क्रूरो भर्ता मनुष्याणां क्षमाऽङ्घ्रिर्द्विजपूजकः ॥४॥
वीणावज्रधनुःपाशवृषचक्राङ्कितः करे।
मन्त्राभिचारकुशली दैर्घ्ये चैव शताङ्गुलः ॥५॥
मुखदैर्घ्यसमं मध्यं तस्य विज्ञैः प्रकीर्तितम्।
तुल्यस्तुलासहस्रेण रुचको द्विजपुङ्गव ! ॥६॥
भुनक्ति विन्ध्यसह्याद्रिप्रदेशं सप्ततिं समाः।
शस्त्रेण वह्निना वाऽपि स प्रयाति सुरालयम् ॥७॥

रुचकनामक पुरुष लम्बे मुख वाला, महान् उत्साही, निर्मल कान्ति वाला, महाबली, सुन्दर भौंह वाला, काले केश वाला, सब वस्तुओं में रुचि रखने वाला, युद्धप्रिय, रक्त कृष्ण वर्ण, शत्रु का हनन करने वाला, मन्त्र को जानने वाला, चोर का नायक, क्रूर स्वभाव वाला, मनुष्यों का स्वामी, दुर्बल पैर वाला, विप्रों का पूजक, हाथ में वीणा, वज्र, धनुष, पाश, वृष चक्राङ्कित और चक्ररेखा से युक्त तथा गुह्य विचार एवं मन्त्राभिचार (मारण, उच्चाटनादि) में दक्ष होता है। वह लम्बाई में सौ अङ्गुल, मुख की लम्बाई के समान ही मध्य भाग वाला तथा तौल में एक हजार के समान होता है। वह विन्ध्याचल तथा सह्याचल पर्वत का राजा होकर ७० वर्ष तक राज्य कर ७० वर्ष की आयु में शस्त्र या अग्नि के द्वारा देवलोक में जाता है ॥३-७॥

भद्रलक्षण

शार्दूलप्रतिभः पीनवक्षा गजगतिः पुमान्।
पीनाजानुभुजः प्राज्ञश्चतुरस्रश्च योगवित् ॥८॥

सात्त्विकः शोभनांघ्रिश्च शोभनश्मश्रुसंयुतः ।
कामी शङ्खगदाचक्र-शर-कुञ्जरचिह्नकैः ॥९॥
ध्वजलाङ्गलचिह्नश्च चिह्नितांघ्रिकराम्बुजः ।
सुनासश्शास्त्रविद् धीरः कृष्णाकुञ्चितकेशभृत् ॥१०॥
स्वतन्त्रः सर्वकार्येषु स्वजनप्रीणनक्षमः ।
ऐश्वर्यं भुज्यते चास्य नित्यं मित्रजनैः परैः ॥११॥
तुलया तुलितो भारप्रमितः स्त्रीसुतान्वितः ।
सक्षेमो भूपतिः पाति मध्यदेशं शतं समाः ॥१२॥

सिंह के तुल्य प्रतापी, ऊँचे वक्ष:स्थल वाला, हाथी के समान गति वाला, जानुपर्यन्त लम्बी भुजा वाला, पण्डित, चौकोर, योग को जानने वाला, सत्त्व गुणी, सुन्दर चरण और सुन्दर दाढ़ी-मूछ वाला, कामी, शंख-गदा-चक्र-शेर-हाथी-ध्वजा-हल—इन चिह्नों से अंकित हैं चरण और भुज जिनके, सुन्दर नासिका वाला, शास्त्र को जानने वाला, गम्भीर, काले और घुँघराले बालों से सुशोभित, समस्त कार्यों में स्वतन्त्र एवं अपने जनों का भरण-पोषण करने में सक्षम भद्र पुरुष होता है । अपने मित्र जन तथा अन्य जन भी इसके धन का उपभोग करते हैं ।

इनका तौल एक भार के तुल्य होता है । यह स्त्री-पुत्र से युक्त, सामर्थ्यवान एवं मध्य देश का पालक होकर एक सौ साल तक जीवित रहता है ॥८-१२॥

हंसलक्षण

हंसो हंसस्वरो गौरः सुमुखोन्नतनासिकः ।
श्लेष्मलो मधुपिङ्गाक्षो रक्तवर्णनखः सुधीः ॥१३॥
पीनगण्डस्थलो वृत्तशिराः सुचरणो नृपः ।
मत्स्याऽङ्कुश-धनुः-शंख-कञ्ज-खट्वाङ्ग-चिह्नकैः ॥१४॥
चिह्नितांघ्रिकरः स्त्रीषु कामार्तो नैति तुष्टताम् ।
षण्णवत्यङ्गुलो दैर्घ्ये जलक्रीडारतः सुखी ॥१५॥
गङ्गायमुनयोर्मध्यदेशं पाति शतं समाः ।
वनान्ते निधनं याति भुक्त्वा सर्वसुखं भुवि ॥१६॥

हंस के तुल्य स्वर वाला, सुन्दर मुख और उच्च नाक वाला, कफ प्रकृतिक, मधु के समान पीला नेत्र, लाल नाखून, सुन्दर बुद्धि वाला, मजबूत गण्डस्थल वाला, वृत्ताकार (गोल) शिर वाला एवं सुन्दर चरण वाला राजा होता है । उसके चरण और बाहू मछली, अङ्कुश, धनुष. शंख, कमल, खटिया के समान रेखाओं से अंकित होते हैं । वह कामी होता है और सम्भोग से तृप्त नहीं होता । वह लम्बाई में ९६ अंगुल का होता है । जलविहार में रत होकर सुखपूर्वक गङ्गा तथा यमुना के मध्य देश का रक्षक होकर समस्त भूमि का सुख भोगकर सौ वर्ष के अनन्तर वन में हंसपुरुष का निधन होता है ॥१४-१६॥

मालव्य पुरुष का लक्षण

समौष्ठः कृशमध्यश्च चन्द्रकान्तिरुचिः पुमान्।
सुगन्धो नातिरक्ताङ्गो न ह्रस्वो नातिदीर्घकः ॥१७॥
समस्वच्छरदो हस्तिनाद आजानुबाहुधृक्।
मुखं विश्वाङ्गुलं दैर्घ्ये विस्तारे च दशाङ्गुलम् ॥१८॥
मालव्यो मालवाख्यं च देशं पाति स-सिन्धुकम्।
सुखं सप्ततिवर्षान्तं भुक्त्वा याति सुरालयम् ॥१९॥

सुन्दर ओष्ठ, मध्य भाग पतला, चन्द्रमासदृश सुन्दर कान्ति वाला, शरीर में सुगन्ध वाला, सामान्य रक्त वर्ण वाला, न छोटा और न अधिक लम्बा, बल्कि मध्यम कद वाला, सुन्दर और स्वच्छ दाँत वाला, हाथी के समान शब्द वाला, घुटनों तक लम्बी भुजा वाला एवं १३ अंगुल लम्बाई और चौड़ाई में १० अंगुल मुख वाला मालव्य पुरुष होता है। वह सिन्धु तथा मालव्य देश का सुखपूर्वक पालन करके ७० वर्ष की अवस्था में देवलोक चला जाता है ॥१७-१९॥

शशपुरुष का लक्षण

तनुद्विजमुखः शूरो नातिह्रस्वः कृशोदरः।
मध्ये क्षामः सुजंघश्च मतिमान् पररन्ध्रवित् ॥२०॥
शक्तो वनाद्रिदुर्गेषु सेनानीर्दन्तुरः शशः।
चञ्चलो धातुवादी च स्त्रीशक्तोऽधनान्वितः ॥२१॥
मालावीणामृदङ्गाऽस्त्र-रेखाङ्कितकरांघ्रिकः।
भूपोऽयं वसुधा पाति जीवन् खाद्रिसमाः सुखी ॥२२॥

शरीर, दाँत और मुख से सामान्य आकार वाला, शूर, कमर पतला, बीच में रेशमी, सुन्दर जंघा, बुद्धिमान्, शत्रुओं का छिद्र जानने वाला, वन तथा पर्वत और दुर्ग में रहने वाला, सेना का स्वामी, सामान्यतया ऊँचे दाँत वाला, चञ्चल, धातुवादी, स्त्री में अनुरक्त एरं दूसरे के धन से युक्त लक्षण वाला शश पुरुष होता है। इसके हाथ और पैर में माला, वीणा, मृदङ्ग तथा शस्त्र के समान रेखा के चिह्न होते हैं। यह पृथ्वी के अधिकतर भागों पर ७० वर्ष तक शासन करने के उपरान्त देवलोक में चला जाता है ॥२०-२२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पञ्चमहापुरुषलक्षणाध्यायः ॥७७॥

अथ पञ्चमहाभूतफलाध्यायः ॥७८॥

अथ पञ्चमहाभूतच्छायाज्ञानं वदामि ते।
ज्ञायते येन खेटानां वर्तमानदशा बुधैः ॥१॥

पराशर ने कहा कि हे मैत्रेय ! अब मैं आपसे पञ्च महाभूतसम्बन्धी छाया का ज्ञान कहता हूँ, जिसके द्वारा ग्रहों की वर्तमान दशा समझी जाती है ॥१॥

शिखिभूखाम्बुवातानामधिपा मङ्गलादयः।
तत्तद्बलवशाज् ज्ञेयं तत्तद्भूतभवं फलम् ॥२॥

अग्नि, भूमि, आकाश, जल और वायु के अधिपति क्रम से मंगलादि (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) ग्रह होते हैं। जो ग्रह बली हो, उस ग्रह से सम्बन्धित महाभूत का फल जानना चाहिए ॥२॥

सबले मङ्गले वह्निस्वभावो जायते नरः।
बुधे महीस्वभावः स्यादाकाशप्रकृतिर्गुरौ ॥३॥
शुक्रे जलस्वभावश्च मारुतप्रकृतिः शनौ।
मिश्रैर्मिश्रस्वभावश्च विज्ञेयो द्विजसत्तम ! ॥४॥

जन्मकाल में या गोचरकाल में यदि मंगल बली हो तो अग्निप्रकृति, गुरु के बली होने पर आकाशप्रकृति, शुक्र बली होने पर जलप्रकृति एवं शनि के बली होने पर वातप्रकृति होता है। अधिक ग्रहों के बली रहने पर मिश्र स्वभाव होता है ॥३-४॥

सूर्ये वह्निस्वभावश्च जलप्रकृतिको विधौ।
स्वदशायां ग्रहाश्छायां व्यञ्जयन्ति स्वभूतजाम् ॥५॥

सूर्य के बली होने पर अग्निस्वभाव और चन्द्र के बली होने पर जलस्वभाव होता है। सभी ग्रह अपनी-अपनी दशा में अपने महाभूत से सम्बन्धित छाया का दर्शन कराते हैं ॥५॥

वह्निस्वभाव युक्त पुरुष का लक्षण

क्षुधार्तश्चपलः शूरः कृशः प्राज्ञोऽतिभक्षणः।
तीक्ष्णो गौरतनुर्मानी वह्निप्रकृतिको नरः ॥६॥

वह्नि स्वभाव वाला पुरुष क्षुधा से दुःखी, चञ्चल, शूर, कृश, बुद्धिमान्, अधिक भोग करने वाला, तीक्ष्ण, गौर वर्ण और अभिमानी होता है ॥६॥

भूमिस्वभाव युक्त पुरुष का लक्षण

कर्पूरोत्पलगन्धाढ्यो भोगी स्थिरसुखी बली।
क्षमावान् सिंहनादश्च महीप्रकृतिको नरः ॥७॥

भूतत्त्व वाला पुरुष कपूर तथा कमल के समान गन्ध वाला, भोगी, स्थिर सुख से युक्त, बली, क्षमा करने में सक्षम एवं सिंह के समान शब्द वाला होता है ॥७॥

आकाशप्रकृतिक पुरुष का लक्षण

शब्दार्थवित् सुनीतिज्ञो प्रगल्भो ज्ञानसंयुतः ।
विवृतास्योऽतिदीर्घश्च व्योमप्रकृतिसम्भवः ॥८॥

व्योम प्रकृति वाला पुरुष शब्द तथा अर्थ को जानने वाला, नीति का ज्ञाता, चतुर, ज्ञान से युत, अनावृत मुख वाला एवं लम्बे कद वाला होता है ॥८॥

जलस्वभावयुक्त पुरुष का लक्षण

कान्तिमान् भारवाही च प्रियवाक् पृथिवीपतिः ।
बहुमित्रो मृदुर्विद्वान् जलप्रकृतिसम्भवः ॥९॥

जलप्रकृति वाला व्यक्ति कान्तियुक्त, भार वहन करने वाला, मधुरभाषी, राजा, अधिक मित्रों से युक्त, कोमल और विद्वान् होता है ॥९॥

वायुप्रकृतिक पुरुष का लक्षण

वायुतत्त्वाधिको दाता क्रोधी गौरोऽटनप्रियः ।
भूपतिश्च दुराधर्षः कृशाङ्गो जायते जनः ॥१०॥

वायु तत्त्व वाला पुरुष दाता, क्रोधी, गौर वर्ण से युक्त, भ्रमणकारक, शत्रु को जीतने वाला एवं दुबले-पतले शरीर वाला होता है ॥१०॥

अग्नि तत्त्व की छाया

स्वर्णदीप्तिः शुभा दृष्टिः सर्वकार्यार्थसिद्धिता ।
विजयो धनलाभश्च वह्निभार्यां प्रजायते ॥११॥

जब अग्नि तत्त्व का उदय होता है तो शरीर में सोने के सदृश कान्ति, सुन्दर दृष्टि, समस्त कार्यों की सिद्धि, विजय और धनलाभ का आधिक्य रहता है ॥११॥

भूतत्त्व की छाया

इष्टगन्धः शरीरे स्यात् सुस्निग्धनखदन्तता ।
धर्मार्थसुखलाभश्च भूमिच्छाया यदा भवेत् ॥१२॥

भूतत्त्व का उदय होने पर शरीर में अनेक प्रकार की सुगन्धि, नाखून, दाँत और केश स्वच्छ तथा धर्म, धन और सुख का अभ्युदय हो जाता है ॥१२॥

व्योमच्छाया-लक्षण

स्वच्छा गगनजा छाया वाक्पटुत्वप्रदा भवेत् ।
सुशब्दश्रवणोद्भूतं सुखं तत्र प्रजायते ॥१३॥

आकाशतत्त्व का उदय होने पर पुरुष में स्वच्छता, सुन्दरता बोलने में पटुता होती है तथा सुन्दर शब्द (गीतादि या भजनादि) श्रवण करने में उसे आनन्दानुभति होती है ॥१३॥

जलच्छाया का लक्षण

मृदुता स्वस्थता देहे जलच्छाया यदा भवेत्।
तदाऽभीष्टरसास्वादसुखं भवति देहिनः ॥१४॥

जब जलतत्त्व का अभ्युदय हो तो शरीर में मृदुता, स्वस्थता तथा विभिन्न प्रकार के सुन्दर स्वाद वाले भोजन मिलने से सुखानुभति होती है ॥१४॥

वायुतत्त्वच्छाया का लक्षण

मालिन्यं मूढता दैन्यं रोगाश्च पवनोद्भवाः।
तदा च शोकसन्तापौ वायुच्छाया यदा भवेत् ॥१५॥

जब वायु तत्त्व का उदय हो तो उस समय में शरीर में मलिनता, मूढता, दीनता, वायुसम्बन्धी रोग का उदय एवं शोक और सन्ताप का प्राबल्य रहता है ॥१५॥

एवं फलं बुधैर्ज्ञेयं सबलेषु कुजादिषु।
निर्बलेषु तथा तेषु वक्तव्यं व्यत्ययाद् द्विज! ॥१६॥

इस प्रकार महाभूत (पञ्च तत्त्वों) का जो फल ऊपर कहा गया है, वह फल भौमादि ग्रहों के बलवान होने पर पूर्ण रूप से प्राप्त होता है, अन्यथा बलानुसार फलों में भी अल्पता तारतम्य से समझनी चाहिए ॥१६॥

नीचशत्रुभगैश्चापि विपरीतं फलं वदेत्।
फलाप्तिरबलैः खेटैः स्वप्नचिन्तासु जायते ॥१७॥

यदि ग्रह स्वनीच, शत्रुराशि आदि अनिष्ट स्थानगत हो तो विपरीत फल समझना चाहिए। जो ग्रह बलहीन हो, उसका फल स्वप्नावस्था में या मानसिक कल्पना में ही प्राप्त होता है ॥१७॥

तद्दुष्टफलशान्त्यर्थमपि चाज्ञातजन्मनाम्।
फलपक्त्या दशा ज्ञेया वर्तमाना नभःसदाम् ॥१८॥

जिस जातक का जन्मसमय ज्ञात न हो, उसके उक्त दशाफल के अनुसार वर्तमान ग्रहदशा समझ कर दुष्ट फल हो तो उसके शान्त्यर्थ उक्त ग्रह की आराधना करनी चाहिए ॥१८॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पञ्चमहाभूतफलाध्याय: ॥७८॥

अथ सत्त्वादिगुणफलाध्यायः ॥७९॥

पराशर उवाच

अथो गुणवशेनाहं कथयामि फलं द्विज!।
सत्त्वग्रहोदये जातो भवेत् सत्त्वाधिकः सुधीः ॥१॥
रजःखेटोदये विज्ञो रजोगुणसमन्वितः।
तमःखेटोदये मूर्खो भवेज्जातस्तमोऽधिकः ॥२॥
गुणसाम्ययुतो जातो गुणसाम्यखगोदये।
एवं चतुर्विधा विप्र! जायन्ते जन्तवो भुवि ॥३॥
उत्तमो मध्यमो नीच उदासीन इति क्रमात्।
तेषां गुणानहं वक्ष्ये नारदादि-प्रभाषितान् ॥४॥

पराशर बोले कि हे विप्र ! अब मैं ग्रहों के गुण (सत्त्व, रज, तम) के अनुसार उनके फलों को कहता हूँ। जब अधिक सत्त्व गुण ग्रहों की प्रबलता रहती है तो उस समय उत्पन्न जातक सत्त्वगुणी और सुन्दर बुद्धि वाला होता है। रजोगुणाधिक समय में उत्पन्न जातक रजोगुण से युक्त एवं विद्वान् होता है। तमोगुणाधिक समय में उत्पन्न जातक तमोगुणी एवं विवेकशून्य होता है। गुण-साम्य समय में उत्पन्न जातक मिश्रित गुण वाला और मध्यम बुद्धि का होता है। इस प्रकार (उत्तम, मध्यम, अधम, उदासीन) से चार प्रकार के जन्तु संसार में उत्पन्न होते हैं। अब उनके गुणों को मैं कहता हूँ, जिसको नारदादि महर्षियों ने कहा है ॥१-४॥

उत्तम पुरुषों के गुण

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
अलोभः सत्यवादित्वं जने सत्त्वाधिके गुणाः ॥५॥

इन्द्रिय तथा मन को नियन्त्रण करना, तपस्या, पवित्रता, क्षमा, सरलता, लोभरहित, सत्यवादी और सात्त्विक गुणों से युक्त उत्तम पुरुष होता है, यह सरस तथा कोमल भी होता है ॥५॥

मध्यम पुरुषों के गुण

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाऽप्यपलायनम्।
साधूनां रक्षणं चेति गुणा ज्ञेया रजोऽधिके ॥६॥

शूरता, तेजस्वी, धैर्य, चतुरता, युद्ध में पीछे न हटना, साधुओं की रक्षा करना रजोगुणाधिक पुरुषों के गुण हैं ॥६॥

अधम पुरुषों के लक्षण

लोभश्चासत्यवादित्वं जाड्यमालस्यमेव च।
सेवाकर्मपटुत्वञ्च गुणा एते तमोऽधिके ॥७॥

लोभी, झूठ बोलने वाला, मूर्ख, आलसी तथा सेवाकार्य में चतुरता—ये तमोगुणी पुरुषों के गुण हैं ॥७॥

उदासीन पुरुषों के गुण

कृषिकर्मणि वाणिज्ये पटुत्वं पशुपालने।
सत्यासत्यप्रभाषित्वं गुणसाम्ये गुणा इमे ॥८॥

कृषि कर्म, व्यापार और पशुपालन में पटुता, असत्य तथा सत्य बोलना—ये गुण साम्य (सत्त्व, रज, तममिश्रित) उदासीन पुरुषों के लक्षण हैं ॥८॥

एतैश्च लक्षणैर्लक्ष्य उत्तमो मध्यमोऽधमः।
उदासीनश्च विप्रेन्द्र! तं तत्कर्मणि योजयेत् ॥९॥

हे विप्र! पूर्वोक्त लक्षणों का अवलोकन करके ही पुरुषों के उत्तम, मध्यम, नीच और उदासीन भेद को जानना चाहिए। तदनुसार जो जिस कार्य का सम्पादन करने में सक्षम हो, उसे उसी कार्य में लगाना चाहिए ॥९॥

द्वाभ्यामेकोऽधिको यश्च तस्याधिक्यं निगद्यते।
अन्यथा गुणसाम्यं च विज्ञेयं द्विजसत्तम! ॥१०॥

पूर्वोक्त सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणों में जो एक गुण, शेष दो गुणों से प्रबल हो उसकी अधिकता मानी जाती है। इसके विपरीत अर्थात् किसी भी एक का बल शेष दो से अधिक न होने पर गुणसाम्य माना जाता है ॥१०॥

गुणज्ञान का महत्त्व

सेव्य-सेवकयोरेवं कन्यका-वरयोरपि।
गुणैः सदृशयोरेव प्रीतिर्भवति निश्चला ॥११॥

स्वामी तथा सेवक में तथा वर एवं कन्या में यदि तुल्य गुण हो तो दोनों में सुदीर्घकालिक प्रेम होता है ॥११॥

उदासीनोऽधमस्यैवमुदासीनस्य मध्यमः।
मध्यमस्योत्तमो विप्र! प्रभवत्याश्रयो मुदे ॥१२॥

हे विप्र! पूर्वोक्त ४ प्रकार के मनुष्यों में अधम का स्वामी उदासीन, उदासीन का स्वामी मध्यम एवं मध्यम का स्वामी उत्तम जन हो तभी परस्पर प्रेम और आनन्दजनक सुख होता है ॥१२॥

अतोऽवरा वरात् कन्या सेव्यतः सेवकोऽवरः।
गुणैस्ततः सुखोत्पत्तिरन्यथा हानिरेव हि ॥१३॥

वर से कन्या एवं स्वामी से सेवक गुण में कम हो तो आपस में प्रेम और सुख होता है। इससे अन्यथा अर्थात् कन्या से वर एवं सेवक से स्वामी यदि हीन वर्ण का हो तो वहाँ सदैव हानि ही होती है ॥१३॥

वीर्यं क्षेत्रं प्रसूतेश्च समयः सङ्गतिस्तथा।
उत्तमादिगुणे हेतुर्बलवानुत्तरोत्तरम् ॥१४॥

माता, पिता, जन्मसमय, संसर्गजन्य गुण—ये सभी उत्तमादि गुणों के कारण होते हैं। इनमें उत्तरोत्तर हेतु बलवान होता है ॥१४॥

अतः प्रसूतिकालस्य सदृशो जातके गुणः।
जायते तं परीक्ष्यैव फलं वाच्यं विचक्षणैः ॥१५॥

इसलिए जन्मकाल में जिस गुण (सत्त्व, रज, तम) का प्राबल्य रहता है वही गुण जातक में भी प्राप्त होता है। अतः जन्मकाल की सम्यक् प्रकार से परीक्षा करके ही फलादेश करना चाहिए ॥१५॥

कालः सृजति भूतानि पात्यथो संहरत्यपि।
ईश्वरः सर्वलोकानामव्ययो भगवान् विभुः ॥१६॥

समस्त लोकों के स्वामी अविनाशी एवं व्यापक भगवान् काल ही समस्त चराचर जगत् के उत्पादक, पालक और संहारक भी हैं ॥१६॥

तच्छक्तिः प्रकृतिः प्रोक्ता मुनिभिस्त्रिगुणात्मिका।
तथा विभक्तोऽव्यक्तोऽपि व्यक्तो भवति देहिनाम् ॥१७॥

उस काल भगवान् की त्रिगुणात्मिका शक्ति ही प्रकृति कही जाती है, जिससे विभाजित भगवान् अव्यक्त काल भी व्यक्त होते हैं ॥१७॥

चतुर्धाऽवयवास्तस्य स्वगुणैश्च चतुर्विधः।
जायन्ते ह्युत्तमो मध्य उदासीनोऽधमः क्रमात् ॥१८॥

उस व्यक्त स्वरूप वाले भगवान् काल के अपने प्रकृति-गुण के अनुसार क्रम से उत्तम, मध्यम, उदासीन तथा अधम—ये ४ प्रकार के अवयव होते हैं ॥१८॥

उत्तमे तूत्तमो जन्तुर्मध्यमेऽङ्ग च मध्यमः।
उदासीने ह्युदासीनो जायते चाऽधमेऽधमः ॥१९॥

उस व्यापक भगवान् काल के उत्तम अंग में उत्तम जीव (चर या अचर), मध्यम अंग में मध्यम जन्तु, उदासीन अंग में उदासीन जन्तु और अधम अंग में अधम प्राणी की उत्पत्ति होती है ॥१९॥

उत्तमाङ्गं शिरस्तस्य मध्यमाङ्गमुरःस्थलम्।
जङ्घाद्वयमुदासीनमधमं पदमुच्यते ॥२०॥

व्यापक काल भगवान् का उत्तम अंग मस्तक, मध्यम अंग दोनों हाथ तथा छाती, उदासीन अंग दोनों जंघा तथा अधम अंग दोनों पैर कहा गया है ॥२०॥

एवं गुणवशादेव कालभेदः प्रजायते।
जातिभेदस्तु तद्भेदाज्जायतेऽत्र चराऽचरे ॥२१॥

इस प्रकार गुण के भेद से ही कालभेद हो जाता है और कालभेद के अनुरूप ही चर तथा अचर में जातिभेद हो जाता है ॥२१॥

एवं भगवता सृष्टं विभुना स्वगुणैः समम्।
चतुर्विधेन कालेन जगदेतच्चतुर्विधम् ॥२२॥

इस प्रकार चतुर्विध परमेश्वर काल ने अपने गुणों के अनुरूप ही संसार को चार भेदों से समन्वित बताया है ॥२२॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां सत्त्वादिगुणफलाध्यायः ॥७९॥

अथ नष्टजातकाध्यायः ॥८०॥

मैत्रेय उवाच

जन्मकालवशादेवं फलं प्रोक्तं त्वया मुने!।
यज्जन्मसमयोऽज्ञातो ज्ञेयं तस्य फलं कथम्? ॥१॥
शुभं वाऽप्यशुभं वाऽपि मनुजस्य पुराकृतम्।
अस्ति कश्चिदुपायश्चेत् तं भवान् वक्तुमर्हति ॥२॥

मैत्रेय ने कहा कि हे महामुने! आपके द्वारा जन्मकाल के माध्यम से ही जातकों का शुभाशुभ फल कहा गया है। जिस जातक का जन्मसमय अज्ञात हो, उसका शुभाशुभ बताने का कुछ उपाय हो तो उसे भी हमें बताने की कृपा करें ॥१-२॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र! लोकानुग्रहमानसा।
कथयामि तव स्नेहात् फलमज्ञातजन्मनाम् ॥३॥
वर्षायनर्तु-मासार्ध-तिथि-नक्षत्र-भादिषु ।
यदज्ञातं च तन्मानं ज्ञायते प्रश्नलग्नतः ॥४॥

पराशर मुनि बोले कि हे विप्र! आपने लोककल्याणकारक अच्छा प्रश्न किया है। मैं आपके स्नेह के कारण अज्ञात जन्मसमय वालों का शुभाशुभ फलानयन प्रकार भी कहता हूँ। जिस किसी का भी जन्मकालिक वर्ष, अयन, ऋतु, पक्ष, तिथि, नक्षत्र और राश्यादि सब या आंशिक जो भी ज्ञात न हो, वह प्रश्नलग्न से ज्ञात किया जाता है ॥३-४॥

वर्षज्ञानोपाय

प्रश्नाङ्गद्वादशांशर्क्ष-स्थिते जन्म वदेद् गुरौ।
अयनं लग्नपूर्वार्धे सौम्यं याम्यं परार्धके ॥५॥
ऋतुर्लग्नदृकाणर्क्षस्वामिभिः शिशिरादयः।
शनि-शुक्र-कुजेन्दुज्ञ-जीवैर्ग्रीष्मस्तु भानुना ॥६॥

प्रश्नकालिक स्पष्ट लग्न में जिस राशि का द्वादशांश हो, उसी राशि का संवत्सर प्रश्नकर्ता के जन्मकाल में था अर्थात् उस अज्ञात समय वाले का गुरु उसी राशि में था, जो इस समय प्रश्नकालिक लग्न का द्वादशांश है। प्रश्नकालिक लग्न के प्रथम होरा में उत्तरायण और द्वितीय होरा में दक्षिणायन जानना चाहिए। प्रश्न लग्न के द्रेष्काण के स्वामी से शिशिरादि ऋतु जाननी चाहिए। जैसे–शनि से शिशिर, शुक्र से वसन्त, भौम से ग्रीष्म, चन्द्र से वर्षा, बुध से शरद, गुरु से हेमन्त तथा सूर्य का द्रेष्काण लग्न में रहने पर भी ग्रीष्म ऋतु जानना चाहिए ॥५-६॥

अयनर्तुविरोधे तु परिवर्त्याः परस्परम् ।
बुध-चन्द्र-सुराचार्याः कुज-शुक्र-शनैश्चरैः ॥७॥

यदि अयन तथा ऋतु में विरोध उत्पन्न हो जाय तो आपस में परिवर्तन करके जानना चाहिए; जैसे–बुध के स्थान में भौम, चन्द्र के स्थान में शुक्र एवं गुरु के स्थान में शनि मानकर ऋतु का ज्ञान करना चाहिए ॥७॥

मासो दृकाणपूर्वार्धे पूर्वोऽन्यस्तु परार्धके ।
अनुपातात् तिथिर्ज्ञेया भास्करांशसमा द्विज ! ॥८॥
तद्वशादिष्टकालो यो जन्मकालसमो हि सः ।
तत्र ग्रहांश्च भावांश्च ज्ञात्वा तस्य फलं वदेत् ॥९॥

ऋतु के अवगत होने पर द्रेष्काण के पूर्वार्द्ध में ऋतु का पूर्व मास एवं द्रेष्काण के उत्तरार्द्ध में ऋतु का उत्तर मास जानना चाहिए। पुन: द्रेष्काण के गतांश पर से अनुपात के द्वारा तिथि का ज्ञान करना चाहिए। उस सूर्यांश पर से जो इष्ट घटी हो, वही प्रश्नकर्ता का जन्मसमय मानना चाहिए। उस काल पर से लग्न, ग्रह, भाव आदि साधन करके पूर्वोक्त प्रकार से शुभाशुभ फल बताना चाहिए ॥८-९॥

मैत्रेय उवाच

गुरुर्द्वादशभिर्वर्षैः पुनस्तद्राशिगो भवेत् ।
तत् कस्मिन् पर्यये तस्य ज्ञेयः संवत्सरो मुने ! ॥१०॥

मैत्रेय ने कहा कि हे महामुने ! गुरु प्रति द्वादश वर्ष में पुन: उसी राशि पर प्राप्त होते हैं। अत: किस आवृत्ति में जन्मसंवत्सर माना जाय ? ॥१०॥

पराशर उवाच

संवत्सरस्य सन्देहे प्रश्नकर्तुर्द्विजोत्तम ! ।
वयोऽनुमानतस्तत्र द्वादश द्वादशं क्षिपेत् ॥११॥
तत्रापि संशये जाते गुरुर्लग्नत्रिकोणगः ।
कल्प्यो वयोऽनुमानेन वत्सरः पूर्ववत् ततः ॥१२॥

पराशर मुनि बोले कि हे मैत्रेय ! संवत्सर के विषय में सन्देह प्राप्त होने पर प्रश्नकर्ता के वय के अनुमान से प्रश्नकाल तथा जन्म के गुरु के राश्यन्तर में १२ जोड़ने से जो संख्या हो, उनसे सम्भव संख्या के तुल्य वर्ष मानकर संवत्सर जानना चाहिए। यदि १२ योग करने पर भी वय में अन्तर का आभास हो तो प्रश्नलग्न से त्रिकोण राशि में गुरु मानकर प्रश्नकर्ता के वय के अनुसार संवत्सर जानकर पूर्वोक्त प्रकार से अयनादि का ज्ञान करना चाहिए ॥११-१२॥

मैत्रेय उवाच

ज्ञात्वा मासं ससूर्यांशं कालज्ञानं कथं भवेत् ।
भगवन्निति मे ब्रूहि लोकानुग्रहचेतसा ॥१३॥

मैत्रेय ने कहा कि हे भगवन् ! पूर्वोक्त रीति से संवत्सर तथा माह एवं अंशादि का ज्ञान तो हो जायेगा, परन्तु जन्मकालिक समय का ज्ञान कैसे होगा ? यह संसार के उपकार-हेतु कहा जाय ॥१३॥

पराशर उवाच

संक्रान्तेरिष्टसूर्यांशतुल्येऽह्नि द्विजसत्तम ! ।
रविरौदयिकः साध्यस्तस्येष्टार्कस्य चान्तरम् ॥१४॥
कलीकृत्य स्वषण्णिघ्नं स्फुटार्कगतिभाजितम् ।
लब्धं घट्यादिमानं यत् तावान् सूर्योदयात् परम् ॥१५॥
पूर्वं जन्मेष्टकालो हि क्रमाज् ज्ञेयो विपश्चिता ।
साधितौदयिकादर्कादिष्टेऽर्केऽधिकहीनके ॥१६॥

पराशर बोले—सूर्य के राश्यादि अवगत होने के पश्चात् सूर्य जितने अंश भुक्त हुए हैं, उतने ही दिन संक्रान्ति अग्रिम के दिन में सूर्योदयकालिक स्पष्ट सूर्य साधन करना चाहिए। उस सूर्य एवं पूर्वागत इष्ट काल का अन्तर करके कलात्मक बनाकर ६० से गुणा कर गुणनफल में सूर्य की स्पष्ट गति कला से भाग देने पर लब्ध घट्यादि तुल्य सूर्योदय से पूर्व या बाद प्रश्नकर्त्ता का जन्मकालिक इष्टकाल होता है। उदयकालिक सूर्य से जन्मकालिक सूर्य हीन हो तो पूर्व एवं उदयार्क से इष्टार्क अधिक हो तो सूर्योदय से बाद का इष्टकाल जान लेना चाहिए ॥१४-१६॥

उदाहरण—यदि किसी की जन्मकुण्डली नष्ट हो गई है; लेकिन अनुमान से वह व्यक्ति ३०, ३५ वर्ष का लग रहा है तो नष्ट जन्मपत्रिका बनवाने के लिए संवत् २०५४ श्रावण शुक्लाष्टमी सोमे सूर्योदय के अनन्तर योग १८।१०।१५ इष्टघटी पर उसने दैवज्ञ के समक्ष प्रश्न किया। प्रश्नकालिक स्पष्ट सूर्य ३।२४।११।५० राश्यादि, स्पष्ट लग्न ५।१८।४०।० एवं अयनांश २३।४८।२७ है।

यहाँ कन्या प्रश्नलग्न है, लग्नांश १८ होने के कारण ८ वाँ द्वादशांश है, अर्थात् कन्या से ८ वाँ मेष का द्वादशांश है। अतः ज्ञात हुआ कि प्रश्नकर्ता के जन्मसमय में गुरु मेष राशि में था। अब प्रश्नकालिक गुरु को देखा कि वह मकर राशि में है। गुरु एक-एक राशि में एक-एक वर्ष भ्रमण करता है, इसलिए आज से १० वर्ष पूर्व मेष में गुरु की स्थिति रही, फिर उससे १२ वर्ष पूर्व मेष में गुरु की स्थिति थी, इस तरह कुल २२ वर्ष हो गये। पुनः २२ वर्ष में १२ जोड़ने पर ३४ वर्ष पीछे गुरु की स्थिति मेष में होनी चाहिए तथा प्रश्नकर्त्ता की आनुमानित आयु ३०-३५ वर्ष है, अतः प्रश्नकर्त्ता का वय ३४ वर्ष हुआ। अतः २०५४ संवत् में ३४ घटाने पर संवत् २०२० में प्रश्नकर्त्ता

मं. चं. ७
६
शु.बु. ५ रा.
८
सू. ४
९
३
१० वृ.
११ के.
श. १२
२
१

प्रश्न चक्र

का जन्म सिद्ध हुआ। स्पष्ट मान से गुरु की कभी एक राशि आगे या पीछे की भी स्थिति हो सकती है, परन्तु संवत्सर मध्यम मान से ही लेना चाहिए।

अब संवत्सर का ज्ञान होने के अनन्तर अयन का ज्ञान करना चाहिए।

उदाहरण—प्रश्नलग्न कन्या राशि का उत्तरार्द्ध (१८ अंश) है, अत: 'दक्षिणायन' जन्म का अयन हुआ।

अब अयनज्ञान होने के अनन्तर ऋतुज्ञान का उदाहरण लग्न (५।१८।४०।०) में शनि का द्रेष्काण है, अत: शिशिर ऋतु सिद्ध हुई। परन्तु यहाँ पर अयन और ऋतु में विरोध हो गया, क्योंकि दक्षिणायन पूर्व में यही सिद्ध हो चुका है और दक्षिणायन में वर्षा, शरद् तथा हेमन्त—ये तीन ऋतुयें होती हैं, लेकिन यहाँ शिशिर सिद्ध हुआ है, अत:

अयनर्तुविरोधे तु परिवर्त्या: परस्परम्।
बुधचन्द्रसुराचार्या: कुजशुक्रशनैश्चरे॥

इस श्लोक के अनुसार शनि के स्थान पर गुरु माना तो गुरु से हेमन्त ऋतु हुई, इसमें अयन और ऋतु का सामञ्जस्य हुआ। अत: प्रश्नकर्त्ता का ऋतु हेमन्त हुआ।

अब मास-ज्ञानोपाय का **उदाहरण**—प्रश्नलग्न द्वितीय द्रेष्काण का परार्द्ध है। अत: हेमन्त ऋतु का द्वितीय मास पौष सिद्ध हुआ; क्योंकि मार्गशीर्ष और पौष मास हेमन्त ऋतु होता है।

अब मास-ज्ञान के बाद सूर्यांश-ज्ञान प्रकार का **उदाहरण**—प्रश्न लग्न ५।१८।४०।० है। यह द्वितीय द्रेष्काण के उत्तरार्द्ध में है। १५ अंश तक द्वितीय द्रेष्काण का पूर्वार्द्ध होता है। १५ अंश से आगे द्वितीय द्रेष्काण का उत्तरार्द्ध होता है, अत: यहाँ प्रश्नलग्न द्वितीय द्रेष्काण का उत्तरार्द्ध ३।४०।० अंशादि गत है। इस पर से जन्मकाल के सूर्य के अंशज्ञान हेतु द्रेष्काण के गत अंशादि ३।४०।० को क़ला बनाया तो २२०।० हुआ, द्रेष्काण का आधा ५ अंश होता है, ५ अंश का कला ३०० होता है। अत: अनुपात किया, यदि द्रेष्काणार्ध ३०० कला में ३० अंश मिलते हैं तो गत द्रेष्काणार्ध २२०।० कला में क्या = ३० × २२०।०/३०० = २२०।०/१०, यहाँ ३० अंश से २२० कला को गुणा कर ३०० का भाग देने पर अथवा गत २२० कला को १० से भाग देने पर २२।०।० लब्ध अंशादि प्राप्त हुई, यही जन्मकालिक सूर्य धन के भुक्तांश हुए, अत: प्रश्नकर्त्ता का जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य राश्यादि ८।२२।०।० हुआ।

अत: धन (पौष) का २२ वाँ दिन बीत गया; इससे आगे २३ वें दिन में जन्म सिद्ध हुआ। अब स्पष्ट सूर्य के ज्ञानानन्तर जन्मकालिक इष्टकाल का साधन किया जाता है। पूर्व-सिद्ध स्पष्ट सूर्य से ज्ञात हुआ कि धन की संक्रान्ति काल से २२ अंश व्यतीत हो गये हैं। अत: धन की संक्रान्ति से २३ वें दिन संवत् २०२० पञ्चाङ्ग के माध्यम से उदयकालिक स्पष्ट सूर्य बनाया तो ८।२१।५०।१५ हुआ, सूर्य गति ५७।४० है। इससे साधित जन्मकालिक सूर्य अधिक है। अत: पूर्वसिद्ध जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य ८।२२।०।० में उदयकालिक स्पष्ट

सूर्य ८।२१।५०।१५ को घटाया तो शेष ९।४५ कलादि हुआ। इसको एकजातीय बनाकर फिर उसको साठ से गुणा किया तो ३५१०० हुआ, इसमें गति कला को सजातीय बनाया तो ३४६० हुआ, इससे भाग दिया तो लब्ध घट्यादि काल १०।९ हुआ। उदयकालिक सूर्य से जन्मकालिक सूर्य अधिक रहने के कारण सूर्योदय काल से गत काल जन्मेष्ट काल हुआ। इसी इष्ट काल को मानकर भयात्, भभोग, स्पष्ट ग्रह, स्पष्ट लग्न, भावसन्धि, दशा, अन्तर्दशा, पञ्चधा मैत्री और सप्त वर्गादि सभी का साधन कर जन्मपत्रिका बनाने से जो जन्मपत्रिका तैयार होगी, वही जन्मपत्रिका पूर्वकथित प्रश्नकर्ता की नष्ट जन्मपत्रिका होगी। उसी पत्रिका के आधार पर उस प्रश्नकर्त्ता के शुभाशुभ फल का विचार करना चाहिए ॥१४-१६॥

विशेष—पूर्वकथित जो प्रारम्भिक कार्य है, उसकी युक्ति में ही विषमता लगती है। प्रश्नकर्त्ता का प्रश्नकालिक जो स्पष्ट लग्न है उसमें जिस राशि का द्वादशांश हो, उसी राशि में जन्मकालिक गुरु की स्थिति मानकर सम्पूर्ण नष्ट कुण्डली के निर्माण का विधान है। यदि प्रश्नकर्त्ता द्वारा अन्य समय में, अन्य ज्योतिषी से भी नष्ट कुण्डली हेतु प्रश्न कर पूर्व नियमानुसार नष्ट पत्रिका का निर्माण कराया जाय तो सम्भव है कि केवल लग्नमात्र न बदलकर सारी नष्ट जन्मकुण्डली ही बदल जाय। अतः ऐसा लगता है कि परम कृपालु महर्षि पराशर ने श्रद्धालु व्यक्तियों (जिसकी जन्मपत्रिका नष्ट हो गई हो) की आत्मसन्तुष्टि के लिए ऐसे विधान का आविष्कार किया है।

वास्तव में शुद्ध जन्मेष्ट काल के माध्यम से ही सम्पूर्ण फलादेश करना उत्तम होगा; क्योंकि सभी महर्षियों ने शुद्ध जन्मेष्ट काल पर अत्यधिक जोर दिया है। अन्यथा "स्पष्टतरोऽत्र जन्मसमयो वेधोऽथ खेटाः स्फुटः" अर्थात् सूक्ष्म यन्त्र के माध्यम से सूक्ष्म जन्मकाल का ज्ञान कर स्पष्ट ग्रह साधन करना—इस प्रकार का महर्षियों का कथन क्यों होता ?

अतः जहाँ तक सम्भव हो, वहाँ तक शुद्ध जन्मसमय का ही प्रयोग करना चाहिए, अर्थात् जन्मकाल के संवत्, अयन, ऋतु, मास, दिन, समय आदि में से जो अवगत हैं, उनके लिए प्रश्न नहीं करना चाहिए; क्योंकि वह तो ज्ञात ही हैं। जो ज्ञात नहीं है, उसी के लिए केवल प्रश्न करना चाहिए और उक्त नियम से अज्ञात विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सब मिलाकर नष्ट कुण्डली बनानी चाहिए ॥१४-१६॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां नष्टजातकाध्यायः ॥८०॥

अथ प्रव्रज्यायोगाध्यायः ॥८१॥

पराशर उवाच

अथ विप्र! प्रवक्ष्यामि योगं प्रव्रज्यकाभिधम्।
प्रव्रजन्ति जना येन सम्प्रदायान्तरं गृहात् ॥१॥

पराशर ऋषि ने कहा कि हे द्विज ! अब मैं प्रव्रज्यानामक योग को कहता हूँ; जिससे लोग गृहस्थाश्रम का त्याग कर अन्य सम्प्रदाय में प्रवेश करते हैं ॥१॥

प्रव्रज्या योग

चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्या बलिभिः समाः।
रव्यादिभिस्तपस्वी च कपाली रक्तवस्त्रभृत् ॥२॥
एकदण्डी यतिश्चक्रधरो निर्ग्रन्थिकः क्रमात्।
ज्ञेया वीर्याधिकस्यैव सबलेषु बहुष्वपि ॥३॥

जिस जातक के जन्मसमय में एक स्थान में ४ या ४ से अधिक ग्रह एकत्र हों तो वह जातक प्रव्रज्यानामक योग से युक्त होता है। उन ग्रहों में यदि सूर्य बली हो तो जातक तपस्वी (जंगल में कन्द-मूल का सेवन कर तपस्या करने वाला) होता है। चन्द्रमा के बली रहने पर कपाली, मंगल बली हो तो रक्त वस्त्र धारण करने वाला, बुध बली हो तो एक दण्डधारक, गुरु के बली रहने पर यति, शुक्र के बली रहने पर चक्र धारण करने वाला और शनि के बली रहने पर जातक दिगम्बर होता है। यदि एकत्रस्थ अधिक ग्रह बली हों तो उनमें जो ग्रह सबसे बली हो, उसके अनुसार प्रव्रज्या होती है ॥२-३॥

विशेष—ऊपर जो एक स्थान में कहा गया है, वस्तुतः राशि, अंश, कला एवं विकला के साम्य होने पर ही योग कहा जा सकता है। अतः ग्रह के केवल एकस्थ मात्र रहने पर पूर्ण योग नहीं होगा, बल्कि यदि अंशादि भी तुल्य हों, तभी पूर्ण योग कहा जा सकता है। साथ ही जहाँ पर पूर्ण योग हो वहीं पर पूर्ण प्रव्रज्या योग होगा, लेकिन आंशिक योग होने पर आंशिक प्रव्रज्या योग भी समझना चाहिए ॥२-३॥

निर्बल योग

सूर्येणाऽस्तं गतास्ते चेदपि वीर्यसमन्विताः।
अदीक्षितास्तदा ज्ञेया जनास्तद्गतभक्तयः ॥४॥

सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रह के बली होने पर भी यदि सूर्य सान्निध्य होकर अस्त हों तो जातक सम्बन्धित सम्प्रदाय में निष्ठा रहने पर भी उस सम्प्रदाय के मूल मन्त्रों से दीक्षित नहीं हो पाता है ॥४॥

अस्तङ्गता निर्बलाश्चेत् सबलश्च रविर्यदा ।
तदा रविभवा ज्ञेया प्रव्रज्या द्विजसत्तम ॥५॥

अन्य ग्रह निर्बल तथा अस्त हों तो ऐसी स्थिति में सूर्यजन्य प्रव्रज्या अर्थात् तपस्वी होना समझना चाहिए ॥५॥

अन्य योग

जन्मभेशोऽन्यखेटैश्चेददृष्टः शनिमीक्षते ।
तयोर्बलवशात्तत्र प्रव्रज्यामाप्नुयान्नरः ॥६॥

जन्मकालिक स्वराशि का स्वामी ग्रह अन्य ग्रहों से दृष्टिहीन होकर शनि को देखता हो तो शनि तथा जन्मराशि का स्वामी—दोनों में जो बली हो, उसकी प्रव्रज्या होती है ॥६॥

निर्बलो जन्मभेशश्चेत् केवलेनार्किणेक्षितः ।
तदा शनिभवामेव प्रव्रज्यां प्राप्नुयाज्जनः ॥७॥

जन्मराशि का स्वामी निर्बल हो और शनि द्वारा अवलोकित हो तो जातक शनि की प्रव्रज्या अर्थात् निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय में प्रवेश करता है ॥७॥

शनिदृक्काणसंस्थे च शनिभौमनवांशके ।
शनिदृष्टे विधौ ज्ञेया प्रव्रज्या शनिसम्भवा ॥८॥

यदि चन्द्रमा शनि के द्रेष्काण में हो और शनि भौम (मेष, वृश्चिक) के नवमांश में हो तथा शनि द्वारा अवलोकित हो तो शनिजन्य (निर्ग्रन्थ) प्रव्रज्या होती है ॥८॥

कुजादिषु जयो शुक्रः सौम्यगो याम्यगोऽपि वा ।
जयी सौम्यगतश्चाऽन्यः परस्परयुतौ भवेत् ॥९॥

भौमादि ग्रहों के योग होने पर ग्रहयुद्ध कहा जाता है । शुक्र उत्तर या दक्षिण जहाँ भी हो, जयी होता है । अन्य चार (मंगल, बुध, गुरु, शनि) ग्रहों के योग में जो ग्रह उत्तर रहता है वह जयी एवं जो दक्षिण रहता है, वह पराजयी समझा जाता है ॥९॥

योगच्युत योग

प्रवरज्याकारकः खेटो यद्यन्येन पराजितः ।
तदा लब्ध्वा परिव्रज्यां परित्यजति तां पुनः ॥१०॥

प्रव्रज्या योगकारक जो ग्रह हो वह ग्रह ग्रहयुद्ध में पराजित हो तो जातक पहले प्रव्रज्या ग्रहण करता है और बाद में उस प्रव्रज्या का त्याग कर देता है ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

बहवो जन्मकाले चेत् प्रव्रज्याकारकाः ग्रहाः ।
बलतुल्यास्तदा तत्र प्रव्रज्या कतमा भवेत् ॥११॥

मैत्रेय प्रश्न करते हैं कि जन्मसमय में यदि बहुत-से ग्रह प्रव्रज्याकारक हों और बल में भी समानता हो तो वहाँ पर किसकी प्रव्रज्या होगी ? ॥११॥

पराशर उवाच

बहवो बलिनश्चेत् स्युः प्रव्रज्याकारका ग्रहाः ।
तदा प्राप्नोति सर्वेषां तेषां प्रव्रज्यका ध्रुवम् ॥१२॥

मैत्रेय के प्रश्न पर पराशर मुनि कहते हैं कि यदि प्रव्रज्याकारक ग्रहों में अधिक ग्रह प्रव्रज्याकारक हों तथा बल में भी समानता हो तो उन सभी ग्रहों की प्रव्रज्या होती है ॥१२॥

तत्तद्ग्रहदशाकाले प्रव्रज्यां याति तद्भवाम् ।
त्यक्त्वा गृहीतपूर्वां तामन्यां प्राप्नोति मानवः ॥१३॥

आरम्भ में जिसकी दशा हो, उस ग्रह से सम्बन्धित प्रव्रज्या को ग्रहण किया जाता है। उस ग्रह की दशा समाप्त होने पर उस प्रव्रज्या का त्याग करके जातक अग्रिम ग्रह की प्रव्रज्या को धारण करता है। इस तरह जिस-जिस प्रव्रज्याकारक ग्रह की दशा प्रारम्भ होती है, उस-उस ग्रह से सम्बन्धित प्रव्रज्या को जातक ग्रहण करता है ॥१२॥

अन्य प्रव्रज्या-योग

दृष्टेष्विन्द्विज्यलग्नेषु शनिना नवमे गुरुः ।
राजयोगेऽत्र जातोऽसौ तीर्थकृन्नाऽत्र संशयः ॥१४॥

जिसके नवम में गुरु हो और चन्द्र, गुरु तथा लग्न को शनि देखता हो तो राजयोग होता है; परन्तु पहले राजा होकर पश्चात् प्रव्रज्याकारक होता है। ऐसे योग में समुत्पन्न जातक तीर्थंकर (बुद्धादि सदृश होकर स्वयं एक नवीन सम्प्रदाय का उपार्जन कर उसका सञ्चालन करने वाला) होता है ॥१४॥

विशेष योग

धर्मस्थानगते मन्दे ग्रहदृष्टिविवर्जिते ।
राजयोगेऽत्र यो जातः स राजा दीक्षितो भवेत् ॥१५॥

जिस जातक के जन्मलग्न से नवम भाव में शनि हो और शनि पर किसी भी ग्रह की दृष्टि न हो तो राजयोग में उत्पन्न हुआ जातक पहले राजा होकर भी बाद में किसी सम्प्रदाय में दीक्षित होता है। यदि राजयोग नहीं है तो वह स्वतः परिव्राजक होता है ॥१५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां प्रव्रज्याध्यायः ॥८१॥

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ॥८२॥

मैत्रेय उवाच

बहुधा भवता प्रोक्तं तज्जातकफलं मुने ! ।
तन्नारीणां कथं ज्ञेयमिति मे कथयाऽधुना ॥१॥

हे महामुने ! आपने जातक के शुभाशुभ फलों को बहुत प्रकार से कहा; परन्तु उनमें स्त्री-जातक का शुभाशुभ फल किस प्रकार जाना जाय ? कृपा करके इसे स्पष्ट करने का कष्ट करें ॥१॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र ! तदपि प्रवदाम्यहम् ।
स्त्रीणां पुम्भिः समं ज्ञेयं फलमुक्तं विपश्चिता ॥२॥
विशेषस्तत्र यो दृष्टः संक्षेपात् कथयामि तत् ।
लग्ने देहफलं तस्याः पञ्चमे प्रसवस्तथा ॥३॥
सप्तमे पतिसौभाग्यं वैधव्यं निधने द्विज ! ।
स्त्रीणामसम्भवं यद्यत् तत्फलं तत्पतौ वदेत् ॥४॥

पराशर ने कहा कि हे विप्र ! आपने अच्छा प्रश्न किया है और उसको भी मैं कहता हूँ । सामान्यतया पुरुषों में जो फल कहा गया है वही स्त्री में भी जान लेना चाहिए । उन फलों में जो भिन्नता है, उनको मैं यहाँ कहता हूँ । लग्न से शारीरिक सुख-दुःख, पञ्चम भाव से प्रसव (सन्तान), सप्तम भाव से पतिसौख्य तथा सौभाग्य और अष्टम भाव से वैधव्यता का ज्ञान करना चाहिए । उन फलों में स्त्री में असम्भव फल को उसके पति में जानना चाहिए ॥२-४॥

लग्नेन्दू समभे यस्याः सा नारी प्रकृतिस्थिता ।
कन्योचितगुणोपेता सुशीला शुभलक्षणा ॥५॥
शुभेक्षितौ सुरूपा च सदा देहसुखान्विता ॥५$\frac{1}{2}$॥

जिस स्त्री के जन्मसमय में लग्न तथा चन्द्र दोनों सम राशि में हों तो वह नारी समस्त कन्योचित गुणों से युक्त, सुन्दर शील वाली तथा शुभ लक्षणों से युक्त होती है । लग्न और चन्द्रमा शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो वह स्त्री सुरूपा और शारीरिक सुखों से सदा युक्त होती है ॥५$\frac{1}{2}$॥

विषमे पुरुषाकारा दुःशीला पापवीक्षितौ ॥६॥
पापाढ्यौ च गुणैर्हीना मिश्रे मिश्रफलं वदेत् ।
लग्नेन्द्वोर्यो बली तस्य फलं तत्र विशेषतः ॥७॥

लग्न, चन्द्रमा विषम राशि में हों और पापग्रहों से देखे जाते हों तो वह स्त्री पुरुष के सदृश आकृति से युक्त होकर दुष्ट स्वभाव वाली होती है। उसमें भी यदि पाप ग्रह युत हो तो वह गुण से हीन भी होती है। शुभ-अशुभ दोनों के युत होने पर मिश्रित फल जानना चाहिए। लग्न, चन्द्रमा में जो अधिक बली हो, उसके अनुसार उनके गुणों की अधिकता जाननी चाहिए ॥६-७॥

लग्नेन्द्वोर्यो बली विप्र! त्रिंशांशैस्तदधिष्ठितैः।
ग्रहराशिवशाद् वाच्यं फलं स्त्रीणां विशेषतः॥८॥

हे विप्र! लग्न तथा चन्द्रमा में जो अधिक बली हो उसकी राशि तथा उसके त्रिंशांश के अनुरूप ही स्त्रियों के फल विशेष करके जानना चाहिए ॥८॥

यथा—

कन्यैवारगृहे दुष्टा भौमत्रिंशांशके भवेत्।
कुचरित्रा तथा शौक्रे समाया बोधने स्मृता॥९॥
जैवे साध्वी, शनौ दासी, ज्ञर्क्षे कौजे छलान्विता।
शौक्रे प्रकीर्णकामा सा बौधेंऽशे च गुणान्विता॥१०॥
क्लीबाऽऽर्क्यंशे, सती जैवे, कौजे दुष्टा सितर्क्षके।
शौक्रे ख्यातगुणा बौधे कलासु निपुणा भवेत्॥११॥
जैवे गुणवती, मान्दे पुनर्भूश्चन्द्रभे ततः।
स्वतन्त्रा कुजत्रिंशांशे शौक्रे च कुलपांसना॥१२॥
बौधे शिल्पकलाऽभिज्ञा जैवे बहुगुणा शनौ।
पतिघ्नी, चार्कभे कौजे वाचाला भार्गवे सती॥१३॥
बौधे पुंश्चेष्टिता जैवे राज्ञी मान्दे कुलच्युता।
कौजे बहुगुणाऽऽर्यर्क्षे शौक्रे चाप्यसती मया॥१४॥
बौधे विज्ञानसंयुक्ता जैवेऽनेकगुणान्विता।
मान्दे चाल्परतिः प्रोक्ता, दासी कौजे तथाऽऽर्किजे॥१५॥
सुप्रज्ञा च भवेच्छौक्रे बौधे दुःस्था तथा खला।
जैवे पतिव्रता प्रोक्ता मान्दे नीचजनानुगा॥१६॥

लग्न तथा चन्द्रमा में जो बली हो वह भौमगृह (मेष, वृश्चिक) में होकर मंगल के ही त्रिंशांश में हो तो वह स्त्री बाल्यावस्था में ही पुरुष द्वारा भुक्ता होती है। शुक्र के त्रिंशांश में हो तो वयस्क होने के बाद अर्थात् विवाहोपरान्त दुश्चरित्रा होती है। यदि बुध के त्रिंशांश में हो तो माया (छल, कपट, जादू आदि) जानने वाली, गुरु के त्रिंशांश में रहने पर साध्वी और शनि के त्रिंशांश में हो तो दासी होती है। लग्न, चन्द्रमा में जो बली हो वह बुध (मिथुन, कन्या) के गृह में रहकर मंगल के त्रिंशांश में हो तो कपट को जानने वाली, शुक्र के त्रिंशांश में अधिक कामप्रवृत्ति वाली, बुध के त्रिंशांश में अधिक गुण वाली, शनि के

त्रिंशांश में क्लीबा (नपुंसिका) और गुरु के त्रिंशांश में सती होती है। शुक्र के गृह (वृष-तुला) में रहकर मंगल के त्रिंशांश में दुष्टा, शुक्र के त्रिंशांश में प्रसिद्ध गुण वाली, बुध के त्रिंशांश में समस्त कला में निपुण एवं गुरु के त्रिंशांश में हो तो गुणवती होती है; साथ ही शनि के त्रिंशांश में हो तो दूसरा पति (एक बार विवाह कर उसको छोड़कर दूसरे से सम्बन्ध) बनाने वाली होती है।

चन्द्र, लग्न में जो ग्रह बली हो वह चन्द्रगृह (कर्कट) में रहकर मंगल के त्रिंशांश में हो तो स्वतन्त्र, शुक्र के त्रिंशांश में कुलटा, बुध के त्रिंशांश में शिल्पकलाओं की ज्ञाता, गुरु के त्रिंशांश में अधिक गुण वाली एवं शनि के त्रिंशांश में पति को मारने वाली अर्थात् विधवा होती है।

चन्द्रमा एवं लग्न में जो बली हो वह सूर्यगृह (सिंह) में रहकर मंगल के त्रिंशांश में हो तो अधिक बोलने वाली, शुक्र के त्रिंशांश में सती, बुध के त्रिंशांश में पुरुष की आकृति वाली, गुरु के त्रिंशांश में रानी एवं शनि के त्रिंशांश में कुल का नाश करने वाली होती है।

गुरु की राशि (धन, मीन) में होकर मंगल के त्रिंशांश में अधिक गुण वाली, शुक्र के त्रिंशांश में असती, बुध के त्रिंशांश में विज्ञान जानने वाली, गुरु के त्रिंशांश में अनेक गुणों से युक्ता एवं शनि के त्रिंशांश में स्वल्प कामवासना वाली होती है। बली चन्द्रमा या लग्न शनिगृह (मकर, कुम्भ) में होकर मंगल के त्रिंशांश में हो तो दासी, शुक्र के त्रिंशांश में सुप्रज्ञा (पण्डिता), बुध के त्रिंशांश में नीचासंगकारिणी, गुरु के त्रिंशांश में पतिव्रता और शनि के त्रिंशांश में नीच जनों का संग करने वाली होती है ॥९-१६॥

मदे शून्ये शुभादृष्टे पतिः कापुरुषो भवेत्।
चरभे च प्रवासी स्यात् क्लीबस्तत्र ज्ञमन्दयोः ॥१७॥
सूर्येऽस्तभे पतित्यक्ता बाल्ये च विधवा कुजे।
शनावशुभसन्दृष्टे याति कन्यैव वृद्धताम् ॥१८॥
विधवास्तगतैः पापैः सौम्यैस्तु सधवा सती।
मिश्रखेटैः पुनर्भूः सा ज्ञेया मिश्रफलान्विता ॥१९॥
मिथोंऽशस्थौ सितारौ चेदन्यासक्ता तदाऽङ्गना।
सप्तमे च स्थिते चन्द्रे तदा भर्तुरनुज्ञया ॥२०॥
शुक्रभे शनिभे वाऽपि सेन्दुशुक्रे च लग्नगे।
मात्रा सह तदा नारी बन्धकी भवति ध्रुवम् ॥२१॥

जिस स्त्री के सप्तम भाव में ग्रह हीन हों और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि भी नहीं हो तो उस स्त्री का पति कायर होता है। सप्तम भाव में चर राशि हो तो उसका पति विदेश में रहने वाला होता है, सप्तम में बुध-शनि हो तो पति नपुंसक होता है, सप्तम में सूर्य के रहने पर अपने पति द्वारा वह त्याग दी जाती है, सप्तम में मंगल हो तो बाल्यावस्था में विधवा होती है, सप्तम में शनि हो और अशुभ ग्रहों से अवलोकित हो तो वह स्त्री कुमारी ही वृद्धा

हो जाती है, सप्तम में पाप ग्रह बैठे हों तो विधवा हो जाती है एवं यदि सप्तम में शुभ ग्रह हों तो सधवा और सती होती है। सप्तम में यदि शुभ और अशुभ दोनों ग्रह हैं तो मिश्रित फल होता है और उस कन्या का द्वितीय विवाह होता है। यदि शुक्र (वृष, तुला) के नवमांश में मंगल हो और मंगल (मेष, वृश्चिक) के नवमांश में शुक्र हो तो वह स्त्री अन्य पुरुष से संपर्क करने वाली होती है। इसी योग में यदि सप्तम में चन्द्रमा हो तो ऐसी स्त्री अपने पति की आज्ञा से परपुरुषगामिनी होती है। शुक्र की राशि में या शनि की राशि में चन्द्रमा, शुक्र हो या लग्न में हो तो ऐसी स्त्री अपनी माता के सहित बन्धन में होती है ॥१७-२१॥

सप्तम भावस्थित राशि नवमांश-फल

कुजर्क्षे वा तदंशेऽस्ते स्त्रीलोल: क्रोधन: पति:।
बौधर्क्षांशे तथा विद्वान् कलासु निपुण: सुधी: ॥२२॥
जैवे सर्वगुणोपेत: पतिरस्ते जितेन्द्रिय:।
शौक्रे सौभाग्यसंयुक्त: कान्त: स्त्रीजनवल्लभ: ॥२३॥
सौरर्क्षे वाऽथ सौरांशे वृद्धो मूर्खश्च सप्तमे।
अतीवामृदुरर्कांशे तदृक्षेवाऽतिकर्मकृत् ॥२४॥
अस्ते कर्के तदंशे वा कान्त: कामी मृदु: पति:।
मिश्रे मिश्रफलं वाच्यं भांशयोश्च बलक्रमात् ॥२५॥

सप्तम भाव में मंगल (मेष, वृश्चिक) राशि हो या उसके नवमांश हो तो उसका पति स्त्री में आसक्त और क्रोधी होता है। सप्तम में बुध की राशि या नवमांश हो तो उसका पति पण्डित, सुन्दर बुद्धि वाला और समस्त कलाओं में निपुण होता है। सप्तम में गुरु की राशि या उसका नवमांश हो तो उसका पति समस्त गुणों से परिपूर्ण और जितेन्द्रिय होता है। सप्तम में शुक्र की राशि या उसका नवमांश हो तो उसका पति सौभाग्यशाली, सुन्दर रूप वाला और स्त्रीजनों का प्रिय होता है। सप्तम में शनि की राशि या नवमांश हो तो उसका पति वृद्ध और मूर्ख होता है। सप्तम में सूर्य हो या उसका नवमांश हो तो उसका पति अत्यन्त कठोर एवं अति कठिन कार्य को करने वाला होता है। सप्तम में चन्द्र की राशि कर्क हो या उसका नवमांश हो तो सुन्दर कामी और कोमल प्रकृति का होता है। विभिन्न ग्रह की राशि या नवमांश के सप्तम में रहने पर मिश्र फल जानना चाहिए। यहाँ पर भी राशि तथा अंशों के ब़लाबल के अनुसार तारतम्य से फलों में न्यूनाधिकता जाननी चाहिए ॥२२-२५॥

अष्टमस्थ ग्रहों का फल

सूर्येऽष्टमगते जाता दु:खदारिद्र्यसंयुता।
क्षताङ्गी खेदयुक्ता च भवेद्धर्मपराङ्मुखी ॥२६॥
चन्द्रेऽष्टमगते नारी कुभगा कुस्तनी कुदृग्।
वस्त्राभरणहीना च रोगिणी चातिगर्हिता ॥२७॥

कुजेऽष्टमगते बाला कृशाङ्गी रोगसंयुता।
विधवा कान्तिहीना च शोकसन्तापदु:खिता ॥२८॥
बुधेऽष्टमगते जाता धर्महीना भयातुरा।
अभिमानधनैर्हीना निर्गुणा कलहप्रिया ॥२९॥

अष्टम भाव में सूर्य हो तो वह स्त्री दु:ख एवं दरिद्रता से युत, खण्डित अंग वाली, विस्मय से युक्त एवं धर्मकर्म से विमुख होती है। अष्टम में चन्द्र के रहने पर दुर्भगा, कुस्तनी, खराब दृष्टि वाली, वस्त्र-आभूषण से हीन, रोगिणी और लोक में निन्दित होती है। अष्टम में मंगल हो तो दुर्बल, रोगयुत, विधवा, कुरूपा एवं शोक-सन्ताप से दु:खी होती है। बुध के अष्टम में रहने पर धार्मिक कृत्य से हीन, डरपोक, अभिमानी, धन से रहित, गुणहीन और कलहप्रिया होती है ॥२६-२९॥

गुरावष्टमगे बाला विशीला स्वल्पसन्तति:।
पृथुपादकरा पत्या त्यक्ता बह्वशना भवेत् ॥३०॥
शुक्रेऽष्टमगते जाता प्रमत्ता धनवर्जिता।
निर्दया धर्महीना च मलिना कपटान्विता ॥३१॥
शनावष्टमगे जाता दु:स्वभावा मलिम्लुचा।
प्रवञ्चनपरा नारी भवेत् पतिसुखोज्झिता ॥३२॥
राहावष्टमभावस्थे कुरूपा पतिवर्जिता।
कठोरहृदया रोगैर्युक्ता च व्यभिचारिणी ॥३३॥

अष्टम में गुरु हो तो शील-स्वभाव से हीन, कम सन्तान वाली, स्थूल हाथ-पैर वाली, अपने पति द्वारा त्यक्ता एवं अधिक भोजन करने वाली होती है। शुक्र के अष्टम भाव में रहने पर प्रमादयुक्त, धन से हीन, दया-धर्म से हीन, मलिना एवं कपटिनी होती है। शनि के अष्टम भाव में रहने पर खराब स्वभाव वाली, मलिना, ठग एवं अपने पति के सुख से हीन होती है। राहु अष्टम भाव में हो तो कुत्सित रूप वाली, पतिसुख से वर्जित, कठोर हृदय वाली, रोग से युक्ता और व्यभिचारिणी होती है ॥३०-३३॥

वन्ध्यालक्षण

शशि-शुक्रौ यदा लग्ने मन्दाराभ्यां युतौ तदा।
वन्ध्या भवति सा नारी सुतभे पापदृग्युते ॥३४॥

जिस स्त्री के लग्न में चन्द्रमा-शुक्र हो और उसमें शनि युत हो एवं पञ्चम भाव पाप ग्रहों से युत या दृष्ट हो तो वह स्त्री वन्ध्या होती है ॥३४॥

दुर्भगा तथा सुभगा योग

कुजांशेऽस्तगते सौरि-दृष्टे नारी सरुग्भगा।
शुभांशे सप्तमे ज्ञेया सुभगा पतिवल्लभा ॥३५॥

जिस स्त्री के सप्तम भाव में मंगल (मेष-वृश्चिक) का नवमांश हो या पाप ग्रह का नवमांश हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो उस स्त्री की योनि रोगयुक्त होती है एवं शुभ ग्रह या नवमांश हो तो उस स्त्री की योनि सुन्दर और स्वामी की प्रिया होती है ।।३६।।

पितृगृह में सौख्य योग

बुधभे लग्नगे सूतौ चन्द्रशुक्रयुते द्विज ! ।
ज्ञेया पितृगृहे नारी सा सर्वसुखसंयुता ।।३६।।

जिसके जन्मसमय में बुध (मिथुन, कन्या) का लग्न हो और उसमें चन्द्र-शुक्र युत हो तो वह स्त्री पिता के गृह में सब प्रकार की सुख से युक्त रहती है ।।३६।।

अधिक गुणयोग

लग्ने चन्द्रज्ञशुक्रेषु बहुसौख्यगुणान्विता ।
जीवे तत्रातिसम्पन्ना पुत्रवित्तसुखान्विता ।।३७।।

लग्न में चन्द्र, बुध, शुक्र हो तो ऐसी स्त्री अधिक गुण तथा सौख्य से युत रहती है एवं उसमें गुरु भी हो जाय तो अधिक पुत्र, धन और सुख से भी परिपूर्ण होती है ।।३७।।

वन्ध्या तथा काकवन्ध्या योग

लग्नादष्टमगौ स्यातां चन्द्राकौं स्वर्क्षगौ तदा ।
वन्ध्याऽथ काकवन्ध्या चेदेवं चन्द्रबुधौ यदा ।।३८।।

लग्न से अष्टम में सूर्य, चन्द्र अपने (कर्क, सिंह) ही राशि का हो तो वह स्त्री वन्ध्या होती है। यदि अष्टम भाव में मिथुन, कर्क, कन्या राशि हो और उसमें बुध, चन्द्रमा बैठे हों तो वह स्त्री कारकवन्ध्या होती है ।।३८।।

शनिमङ्गलभे लग्ने चन्द्रभार्गवसंयुते ।
पापदृष्टे च सा नारी वन्ध्या भवति निश्चयात् ।।३९।।

मेष, वृश्चिक, मकर, कुम्भ लग्न हो और उसमें चन्द्र, शुक्र बैठे हों एवं उस पर पाप ग्रहें की दृष्टि हो तो वह स्त्री अवश्य ही वन्ध्या होती है ।।३९।।

मृतवत्सा योग

स-राहौ सप्तमे सूर्ये पञ्चमे पापसंयुते ।
शुक्रेज्यराहवो मृत्यौ मृतापत्या च सा भवेत् ।।४०।।

सप्तम में राहु के सहित सूर्य हो अथवा अष्टम भाव में शुक्र, गुरु, राहु हों और पञ्चम भाव में पाप ग्रह हो तो वह स्त्री मृतवत्सा होती है ।।४०।।

शुक्रेज्यावष्टमे सारौ सप्तमे वा कुजौ भवेत् ।
शनिना दृग्युतो नारी गलद्गर्भा प्रकीर्तिता ।।४१।।

अष्टम भाव में शुक्र, गुरु हो या सप्तम में मंगल हो एवं शनि के द्वारा दृष्ट या युत हो तो वह स्त्री गर्भ धारण करने में असमर्थ होती है अर्थात् उसे गर्भ नहीं ठहरता है ॥४१॥

कुलनाश योग

पापकर्तरिके लग्ने चन्द्रे जाता च कन्यका।
समस्तं पितृवंशं च पतिवंशं निहन्ति सा ॥४२॥

जिस कन्या के जन्मसमय में लग्न तथा चन्द्रमा कर्त्तरी योग में हों (द्वादश में मार्गी पाप ग्रह तथा द्वितीय स्थान में वक्री पाप ग्रह होने पर कर्त्तरी योग होता है) तो वह स्त्री पितृ-कुल तथा पतिकुल—दोनों का नाश करने वाली होती है ॥४२॥

विषकन्या योग

स-सर्पाग्निजलेशर्क्षे भानुमन्दारवासरे।
भद्रातिथौ जनुर्यस्याः सा विषाख्या कुमारिका ॥४३॥

अश्लेषा-कृतिका-शतभिषा नक्षत्र, रवि-शनि-मंगलवार, भद्रा (२, ७, १२) तिथि—इन तीनों के योग में जिस कन्या का जन्म होता है वह विषकन्या कही जाती है ॥४३॥

सपापश्च शुभो लग्ने द्वौ पापौ शत्रुभस्थितौ।
यस्या जनुषि सा कन्या विषाख्या परिकीर्तिता ॥४४॥

जिसके जन्मसमय में लग्न में एक पाप ग्रह तथा एक शुभ ग्रह हो और दो पाप ग्रह अपने शत्रुराशि में बैठा हो वह विषकन्या होती है। पुरुष में उक्त योग के होने पर उसे विष-वर कहना चाहिए ॥४४॥

विषकन्या का फल

विषयोगे समुत्पन्ना मृतवत्सा च दुर्भगा।
वस्त्राभरणहीना च शोकसन्तप्तमानसा ॥४५॥

विषयोग में उत्पन्न कन्या मृतवत्सा, दुर्भगा, वस्त्र-आभूषण से हीन और शोक से तप्त मन वाली होती है ॥४५॥

विषभङ्ग योग

सप्तमेशः शुभो वाऽपि सप्तमे लग्नतोऽथवा।
चन्द्रतो वा विषं योगं विनिहन्ति न संशयः ॥४६॥

लग्न से अथवा चन्द्रमा से सप्तमेश शुभ ग्रह हो अथवा सप्तम भाव में शुभ ग्रह रहने पर विषयोगजन्य अनिष्ट का नाश होता है ॥४६॥

पतिहन्तृ योग

लग्ने व्यये सुखे वाऽपि सप्तमे वाऽष्टमे कुजे।
शुभदृग्योगहीने च पतिं हन्ति न संशयः ॥४७॥

जिस कन्या के लग्न, १२, ४, ७, ८ भाव में मंगल हो और उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि या योग न हो तो वह स्त्री विधवा होती है ॥४७॥

वैधव्यभङ्ग योग

यस्मिन् योगे समुत्पन्ना पतिं हन्ति कुमारिका।
तस्मिन् योगे समुत्पन्नो पत्नीं हन्ति नरोऽपि च ॥४८॥
स्त्रीहन्ता परिणीता चेत् पतिहन्त्री कुमारिका।
तदा वैधव्ययोगस्य भङ्गो भवति निश्चयात् ॥४९॥

जिस योग में उत्पन्न कन्या पति का हनन करती है, उसी योग में उत्पन्न पुरुष भी पत्नी का हनन करता है। पतिहन्त्री कन्या का पत्नीहन्ता पुरुष के साथ विवाह होने से वैधव्य योग नष्ट हो जाता है ॥४८-४९॥

पुरुषाकृति स्त्री द्वारा मैथुन योग

मिथोंऽशस्थौ मिथो दृष्टौ सितार्की वा सितर्क्षके।
घटांशे लग्नगे नारी प्रदीप्तं मदनानलम् ॥५०॥
संशान्तिं नयति स्त्रीभिः सखीभिर्मदनातुरा।
पराभिः पुरुषाकार-स्थिताभिर्द्विजसत्तम ! ॥५१॥

शुक्र के नवमांश में शनि और शनि के नवमांश में शुक्र हो तथा दोनों परस्पर दृष्टि रखते हों या शुक्र (वृष, तुला) का लग्न हो, लग्न में कुम्भ का नवमांश हो तो इन दोनों योगों में उत्पन्न कन्या कामासक्त होकर पुरुषाकृति बनाई हुई अपनी सहेली से मैथुन क्रिया कराकर अपनी कामाग्नि को शान्त कर लेती है ॥५०-५१॥

वेदवेत्ता योग

कुजज्ञगुरुशुक्रैश्च बलिभिः समभे तनौ।
कुशलाऽनेकशास्त्रेषु सा नारी ब्रह्मवादिनी ॥५२॥

जिस कन्या की जन्मकुण्डली में मंगल, बुध, गुरु तथा शुक्र बलवान हो और सम राशि का लग्न हो तो वह स्त्री अनेक शास्त्रों में दक्षता-प्राप्त और ब्रह्म को बताने वाली ब्रह्मवादिनी होती है ॥५२॥

प्रव्रज्या योग

क्रूरे सप्तमगे कश्चित् खेचरो नवमे यदि।
सा प्रव्रज्यां तदाप्नोति पापखेचरसम्भवाम् ॥५३॥

सप्तम भाव में क्रूर ग्रह हो और नवम में कोई भी ग्रह हो तो पाप ग्रह से सम्बन्धित होने के कारण वह स्त्री प्रव्रज्या धारण कर लेती है अर्थात् संन्यासिनी हो जाती है ॥५३॥

पति के समक्ष मृत्युयोग

विलग्नादष्टमे सौम्ये पापदृग्योगवर्जिते।
मृत्युः प्रागेव विज्ञेयस्तस्या मृत्युर्न संशयः ॥५४॥

जिस स्त्री के लग्न से अष्टम में शुभ ग्रह हो, उस पर पाप ग्रह की दृष्टि न हो और योग भी न हो तो उस स्त्री का पति के समक्ष ही मरण होता है ॥५४॥

पति के साथ मरण योग

अष्टमे शुभपापौ चेत् स्यातां तुल्यबलौ यदा।
सह भर्ता तदा मृत्युं प्राप्त्वा स्वर्याति निश्चयात् ॥५५॥

यदि अष्टम भाव में तुल्यसंज्ञक पाप और शुभ ग्रह हों, पाप और शुभ ग्रह के बल भी तुल्य हों तो वह स्त्री पति के साथ ही मृत्यु को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त होती है ॥५५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां स्त्रीजातकाध्यायः ॥८२॥

अथाङ्गलक्षणफलाध्याय: ॥८३॥

मैत्रेय उवाच

बहुधा भवता प्रोक्तं जन्मकालात् शुभाऽशुभम्।
श्रोतुमिच्छामि नारीणामङ्गचिह्नैः फलं मुने! ॥१॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुने! आपने जन्मकालिक लग्न के अनुसार बहुत से शुभाशुभ फलों को कहा, अब मैं नारियों के अङ्गलक्षण के माध्यम से शुभाशुभ फल सुनना चाहता हूँ ॥१॥

पराशर उवाच

शृणु विप्र! प्रवक्ष्यामि नारीणामङ्गलक्षणम्।
फलं यथाऽऽह पार्वत्यै भगवान् शङ्करस्तथा ॥२॥

पराशर ने कहा—हे विप्र! पूर्व समय में जिस प्रकार भगवान् शंकर ने पार्वती को नारियों के अङ्गलक्षण द्वारा शुभाशुभ फल बतलाया था, उसी प्रकार मैं भी आपको नारियों के अंगलक्षण द्वारा शुभाशुभ फल बतलाता हूँ ॥२॥

पादतललक्षण

स्निग्धं पादतलं स्त्रीणां मृदुलं मांसलं समम्।
रक्तमस्वेदमुष्णं च बहुभोग-प्रदायकम् ॥३॥
विवर्णं परुषं रूक्षं खण्डितं विषमं तथा।
सूर्याकारञ्च शुष्कं च दुःखदौर्भाग्यदायकम् ॥४॥

जन्मकाल में जिस स्त्री के पैर के तलुए (निचला भाग) चिकने, कोमल, पुष्ट, सम (न अधिक बड़ा, न छोटा), रक्त, पसीने से हीन और गरम हों वह स्त्री अधिक भोग करने वाली होती है। जिसके तलुए खराब वर्ण के, कठोर, रूखे, कटे-फटे, विषम, टेढ़े-मेढ़े, सूर्प के सदृश और शुष्क हों तो वह स्त्री दुःख तथा दुर्भाग्य का भोग करने वाली होती है ॥३-४॥

पादतलरेखा

शङ्ख-स्वस्तिक-चक्राऽब्ज-ध्वज-मीनाऽऽतपत्रवत्।
यस्याः पादतले चिह्नं सा ज्ञेया क्षितिपाङ्गना ॥५॥
भवेत् समस्तभोगाय तथा दीर्घोर्ध्वरेखिका।
रेखाः सर्पाऽऽखु-काकाभा दुःखदारिद्र्यसूचिकाः ॥६॥

जिस स्त्री के पादतल में शंख, स्वस्तिक, चक्राकार, कमल, ध्वज, मछली एवं

छाता के चिह्न अंकित हों एवं ऊर्ध्व रेखा लम्बी हो तो वह स्त्री बहुत सुख भोगने वाली रानी होती है। जिस स्त्री के पादतल में सर्प, मूषक या कौवे के समान चिह्न हो वह स्त्री दु:ख भोगने वाली दरिद्रा होती है ॥५-६॥

पादनखलक्षण

रक्ताः समुन्नताः स्निग्धा वृत्ताः पादनखाः शुभाः।
स्फुटिताः कृष्णवर्णाश्च ज्ञेया अशुभसूचकाः ॥७॥

जिस स्त्री के पैर के नाखून लाल वर्ण के, ऊँचे, गोलाकार एवं चिकने हों तो वे शुभदायक होते हैं। जिसके पैर के नाखून फटे हुए और काले हों, वे अशुभता को सूचित करते हैं ॥७॥

अङ्गुष्ठलक्षण

उन्नतो मांसलोऽङ्गुष्ठो वर्तुलोऽतुलभोगदः।
वक्रो ह्रस्वश्च चिपिटो दुःखदारिद्र्यसूचकः ॥८॥

जिस स्त्री के पैर का अँगूठा ऊँचा, पुष्ट और गोलाकार हो, वह अतुल भोग को भोगने वाली होती है, साथ ही यदि अंगूठा टेढ़ा, छोटा एवं चिपटा हुआ हो तो वह दु:ख एवं दरिद्रता का सूचक होता है ॥८॥

पाद के अङ्गुलियों का लक्षण

मृदवोऽङ्गुलयः शस्ता घना वृत्ताश्च मांसलाः।
दीर्घाङ्गुलीभिः कुलटा कृशाभिर्धनवर्जिता ॥९॥

पैर की अङ्गुलियाँ कोमल, घनी, वृत्ताकार और पुष्ट हों तो शुभकारक; लम्बी हों तो कुलटा एवं पतली अंगुली होने पर स्त्री धन से हीन होती है ॥९॥

भवेद्ध्रस्वाभिरल्पायुर्विषमाभिश्च कुट्टनी।
चिपटाभिर्भवेद्दासी विरलाभिश्च निर्धना ॥१०॥
यस्या मिथः समारूढाः पादाङ्गुल्यो भवन्ति हि।
बहूनपि पतीन् हत्वा परप्रेष्या च सा भवेत् ॥११॥

जिस स्त्री के चरण की अंगुलियाँ छोटी हों वह अल्पायु होती है। विषम (छोटी-बड़ी, टेढ़ी-मेढ़ी) हो तो कुट्टनी, चिपटी हो तो दासी, छिद्र वाली हो तो निर्धनी एवं जिसकी अंगुलियाँ ऊपर उठी हों वह बहुत पतियों का हनन कर अन्त में दूसरे की सेविका होकर जीवन-यापन करने वाली होती है ॥१०-११॥

यस्याः पथि चलन्त्याश्च रजो भूमेः समुच्छलेत्।
सा पांसुला भवेन्नारी कुलत्रयविघातिनी ॥१२॥
यस्याः कनिष्ठिका भूमिं गच्छन्त्या न परिस्पृशेत्।
सा हि पूर्वपतिं हत्वा द्वितीयं कुरुते पतिम् ॥१३॥

जिस स्त्री के मार्ग में चलने पर धूल उड़े वह स्त्री तीनों कुल में लाञ्छन लगाने वाली कुलटा होती है। जिस स्त्री के चलने पर कनिष्ठिका अंगुली से भूमि का स्पर्श न हो, वह स्त्री पूर्व पति का हनन कर दूसरा पति बना लेती है ॥१२-१३॥

मध्यमाऽनामिका चापि यस्या भूमिं न संस्पृशेत्।
पतिहीना च सा नारी विज्ञेया द्विजसत्तम! ॥१४॥
प्रदेशिनी भवेद्यस्या अंगुष्ठाद् व्यतिरेकिणी।
कन्यैव दूषिता सा स्यात् कुलटा च तदग्रतः ॥१५॥

जिस स्त्री के चलने पर मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से भूमि का स्पर्श न हो, वह नारी पतिहीन (विधवा) होती है। जिस स्त्री के अंगूठे के अतिरिक्त उसके ऊपर भी अंगुली हो, वह कन्यावस्था में ही पुरुष के सङ्ग से दूषित कुलटा भी होती है ॥१४-१५॥

पादपृष्ठलक्षण

उन्नतं पादपृष्ठं चेत् तदा राज्ञी भवेद् ध्रुवम्।
अस्वेदमशिराढ्यञ्च मांसलं मसृणं मृदु ॥१६॥
अन्यथा धनहीना च शिरालं चेत्तदाऽध्वगा।
रोमाढ्यं चेद् भवेद्दासी निर्मांसं यदि दुर्भगा ॥१७॥

जिस स्त्री का पादपृष्ठभाग उन्नत हो एवं पसीने से रहित, शिरारहित, पुष्ट, चिकना और कोमल हो वह रानी होती है। इसके विपरीत होने पर धन से हीन दरिद्रा होती है। पाद का पृष्ठभाग शिरादृष्ट हो तो मार्ग में भ्रमण करने वाली, रोमसहित हो तो दासी और माँस-रहित हो तो दुर्भगा होती है ॥१६-१७॥

पैर के पिछले भाग (एड़ी) का लक्षण

सुभगा समपार्ष्णिः स्त्री पृथुपार्ष्णिश्च दुर्भगा।
कुलटोन्नतपार्ष्णिश्च दीर्घपार्ष्णिश्च दुःखिता ॥१८॥

जिस स्त्री के पैर का पिछला भाग (एड़ी) बराबर हो वह सुभगा, स्थूल हो तो दुर्भगा, ऊँचा रहने पर कुलटा एवं लम्बा हो तो दुःखभोगिनी होती है ॥१८॥

जङ्घालक्षण

अरोमे च समे स्निग्धे यस्या जङ्घे सुवर्तुले।
विसिरे च सुरम्ये सा राजपत्नी भवेद् ध्रुवम् ॥१९॥

जिस स्त्री का जङ्घा (पैर के ऊपर एवं घुटने के नीचे का भाग) रोमरहित, समान, चिकना, गोलाकार, शिराहीन एवं देखने में सुन्दर हो, वह स्त्री राजपत्नी होती है ॥१९॥

जानुलक्षण

वर्तुलं मांसलं स्निग्धं जानुयुग्मं शुभप्रदम्।
निर्मांसं स्वैरचारिण्या निर्धनायाश्च विश्लथम् ॥२०॥

जिस स्त्री का जानु (घुटना) गोलाकार, पुष्ट तथा चिकना हो तो वह उसके लिए शुभप्रद होता है। मांसहीन हो तो वह स्त्री स्वच्छन्द घूमने वाली एवं शिथिल हो तो धनहीन दरिद्रा होती है ॥२०॥

ऊरुलक्षण

घनौ करिकराकारौ वर्तुलौ मृदुलौ शुभौ।
यस्या ऊरू शिराहीनौ सा राज्ञी भवति ध्रुवम् ॥२१॥
चिपिटौ रोमशौ यस्या विधवा दुर्भगा च सा ॥२१½॥

जिस स्त्री का ऊरु (जाँघ) हाथी के सूँड के समान गोलाकार हो, घने (मिले हुए), कोमल एवं शिरा से रहित हो, वह स्त्री रानी होती है। जिस स्त्री का जाँघ चिपटा और रोम-युक्त हो वह स्त्री विधवा और दुर्भगा होती है ॥२१½॥

कटिलक्षण

चतुर्भिर्विंशतियुतैरङ्गुलैश्च समा कटिः।
समुन्नत-नितम्बाढ्या प्रशस्ता स्यात् मृगीदृशाम् ॥२२॥

जिस स्त्री की कटि (कमर) २४ अंगुल हो, नितम्ब उन्नत हो तो ऐसी मृगनयनी स्त्री सौभाग्यवती होती है ॥२२॥

विनता चिपिटा दीर्घा निर्मांसा सङ्कटा कटिः।
ह्रस्वा रोमैः समायुक्ता दुःखवैधव्यसूचिका ॥२३॥

जिस कन्या की कटि टेढ़ी, चिपटी, लम्बी, मांसरहित, संकुचित, छोटी एवं रोमयुक्त हो, वह स्त्री दुःख तथा वैधव्य को प्राप्त करने वाली होती है ॥२३॥

नितम्बलक्षण

नितम्बः शुभदः स्त्रीणामुन्नतो मांसलः पृथुः।
सुखसौभाग्यदः प्रोक्तो ज्ञेयो दुःखप्रदोऽन्यथा ॥२४॥

स्त्री का उन्नत, पुष्ट एवं स्थूल नितम्ब सुख-सौभाग्यदायक होता है, इससे विपरीत होने पर दुःखप्रद होता है ॥२४॥

भगलक्षण

स्त्रीणां गूढमणिस्तुङ्गो रक्ताभो मृदुरोमकः।
भगः कमठपृष्ठाभः शुभोऽश्वत्थदलाकृतिः ॥२५॥

स्त्री का भग यदि छिपा हुआ, मणितुल्य, उच्च लाल वर्ण का, मुलायम रोम से युक्त, कछुए के पीठ के सदृश उन्नत एवं पीपल के पत्ते के तुल्य हो तो उसे शुभप्रद माना गया है ॥२५॥

कुरङ्गखुररूपो यश्चुल्लिकोदरसन्निभः।
रोमशो दृश्यनाशश्च विवृतास्योऽशुभप्रदः ॥२६॥

मृग के खुर के समान, चूहे के उदर (पेट) के तुल्य, कठोर रोमयुक्त, ऊँची मणि वाला एवं खुला मुख वाला भग अशुभप्रद कहा गया है ॥२६॥

वामोन्नतस्तु कन्याजः पुत्रजो दक्षिणोन्नतः ।
शङ्खावर्तो भगो यस्याः सा विगर्भाऽङ्गना मता ॥२७॥

जिस स्त्री का भग बाँयीं ओर ऊँचा हो तो वह भग कन्या सन्तानकारक एवं दक्षिण तरफ उन्नत हो तो वह पुत्र सन्तानकारक होता है। शंख के तुल्य वलय वाला भग हो तो उस भग द्वारा गर्भ धारण नहीं होता ॥२७॥

वस्तिलक्षण

मृद्वी वस्तिः प्रशस्ता स्याद् विपुलाल्पसमुन्नता ।
रोमाढ्या च शिराला च रेखाङ्का न शुभप्रदा ॥२८॥

जिसकी वस्ति (नाभि से नीचे एवं योनि से ऊपर का भाग) मुलायम, बड़ा एवं थोड़ा ऊँचा हो तो उसे शुभकारक जानना चाहिए। रोग से युक्त, शिरासहित एवं रेखायुक्त वस्ति को अशुभप्रद जानना चाहिए ॥२८॥

नाभिलक्षण

गम्भीरा दक्षिणावर्ता नाभिः सर्वसुखप्रदा ।
व्यक्तग्रन्थिः समुत्ताना वामावर्ता न शोभना ॥२९॥

जिस स्त्री की नाभि दबी हुई एवं दक्षिण तरफ घुमी हुई हो तो वह समस्त सुख प्रदान करने वाली होती है तथा कुछ ऊपर की ओर उठी हुई, वाम तरफ घुमी हुई और उठी हुई ग्रन्थि वाली हो तो वह अशुभकारक होती है ॥२९॥

कुक्षिलक्षण

पृथुकुक्षिः शुभा नारी सूते सा च बहून् सुतान् ।
भूपतिं जनयेत् पुत्रं मण्डूकाभेन कुक्षिणा ॥३०॥

जिस स्त्री की कुक्षि (पेट) विस्तारयुक्त हो तो वह शुभ होती है और अधिक पुत्रों को उत्पन्न करने में सक्षम होती है तथा जिसका पेट मेढ़क के समान हो, उसका पुत्र राजा होता है ॥३०॥

उन्नतेन वलीभाजा सावर्तेन च कुक्षिणा ।
वन्ध्या संन्यासिनी दासी जायते क्रमशोऽबला ॥३१॥

उन्नत कुक्षि वाली स्त्री वन्ध्या होती है, वलीयुत उदर वाली संन्यासिनी होती है एवं भँवरयुक्त कुक्षि वाली स्त्री दासी होती है ॥३१॥

पार्श्वलक्षण

समे समांशे मृदुले पार्श्वे स्त्रीणां शुभप्रदे ।
उन्नते रोमसंयुक्ते शिराले चाऽशुभप्रदे ॥३२॥

स्त्री का पार्श्व भाग समान, पुष्ट एवं कोमल हो तो शुभप्रद होता है। यदि पार्श्व भाग उन्नत रोमयुक्त एवं शिरा से व्याप्त हो तो अशुभ होता है ।।३२।।

हृदयलक्षण

निर्लोमं हृदयं स्त्रीणां समं सर्वसुखप्रदम्।
विस्तीर्णं च सलोमं च विज्ञेयमशुभप्रदम् ।।३३।।

जिस स्त्री का हृदय रोमरहित और समान हो तो वह समस्त सुखों को देने वाला होता है; साथ ही हृदय यदि रोमयुत और विस्तृत हो तो उसे अशुभप्रद समझना चाहिए ।।३३।।

कुचलक्षण

समौ पीनौ घनौ वृत्तौ दृढौ शस्तौ पयोधरौ।
स्थूलाग्रौ विरलौ शुष्कौ स्त्रीणां नैव शुभप्रदौ ।।३४।।

जिस स्त्री के दोनों स्तन बराबर, पुष्ट, घने, वृत्ताकार और दृढ हों तो वे शुभप्रद होते हैं। स्तन के अग्रभाग स्थूल, दोनों भिन्न-भिन्न और माँसरहित शुष्क हों तो उन्हें अशुभकारक जानना चाहिए ।।३४।।

दक्षिणोन्नतवक्षोजा नारी पुत्रवती मता।
वामोन्नतस्तनी कन्याप्रजा प्रोक्ता पुरातनैः ।।३५।।

जिस स्त्री का दहिना कुच उन्नत हो वह पुत्रवती होती है और वाम स्तन के उन्नत होने पर कन्यावती होती है—ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ।।३५।।

चूचुक-(स्तन का अग्र भाग)-लक्षण

नारीणां चूचुके शस्ते श्यामवर्णे सुवर्तुले।
अन्तर्भग्ने च दीर्घे च कृशे चापि न शोभने ।।३६।।

स्त्री के स्तन का अग्रभाग श्याम वर्ण और गोलाकार हो तो शुभदायक होता है। अन्दर की ओर दबा हुआ, लम्बा एवं सूक्ष्म स्तन शुभप्रद नहीं होता ।।३६।।

स्कन्धलक्षण

स्त्रीणां स्कन्धौ समौ पुष्टौ गूढसन्धी शुभप्रदौ।
रोमाढ्यावुन्नतौ वक्रौ निर्मांसावशुभौ स्मृतौ ।।३७।।

जिस स्त्री के कन्धे सम (न ऊँच, न नीच) एवं पुष्ट हों, सन्धि दबे हुए हों तो शुभप्रद होती है। रोम के सहित, उन्नत, वक्र (टेढ़े-मेढ़े) एवं मांसरहित हों तो उन्हें अशुभप्रद कहा गया है ।।३७।।

कक्ष-(काँख)-लक्षण

सुसूक्ष्मरोमे नारीणां पुष्टे स्निग्धे शुभप्रदे।
कक्षे शिराले गम्भीरे न शुभे स्वेदमेदुरे ।।३८।।

स्त्री की कक्षा (काँख) सुन्दर, सूक्ष्म रोमों से युक्त, पुष्ट एवं मुलायम रहने पर शुभप्रद होती है। शिरायुक्त, गहरी, मांसरहित एवं पसीने से युक्त काँख अशुभप्रद कही गई है ॥३८॥

भुजलक्षण

गूढास्थी कोमलग्रन्थी विशिरौ च विरोमकौ।
सरलौ वर्तुलौ चैव भुजौ शस्तौ मृगीदृशाम् ॥३९॥
निर्मांसौ स्थूलरोमाणौ ह्रस्वौ चैव शिराततौ।
वक्रौ भुजौ च नारीणां क्लेशाय परिकीर्तितौ ॥४०॥

जिस स्त्री की भुजा दबी हुई हड्डियों वाली हो, गाँठ कोमल हो, शिरा तथा रोम से हीन हो एवं सरलाकार गोल हो तो वह भुजा शुभप्रद और मांसहीन स्थूल रोमों से युक्त, छोटी, शिरायुत, टेढ़ी भुजा स्त्री के लिए क्लेश प्रदान करने वाली होती है ॥३९-४०॥

हस्त अंगुष्ठ-लक्षण

सरोजमुकुलाकारौ कराङ्गुष्ठौ मृगीदृशाम्।
सर्वसौख्यप्रदौ प्रोक्तौ कृशौ वक्रौ च दुःखदौ ॥४१॥

जिस स्त्री के हाथ के अंगूठे कमल के कली के समान हों तो उसे समस्त सुखों को देने वाला कहा गया है। यदि कृश, दुबला-पतला, टेढ़ा अंगुष्ठ हो तो दुःखदायक होता है ॥४१॥

करतललक्षण

स्त्रीणां करतलं रक्तं मध्योन्नतमरन्ध्रकम्।
मृदुलं चाल्परेखाढ्यं ज्ञेयं सर्वसुखप्रदम् ॥४२॥
विधवा बहुरेखेण रेखाहीनेन निर्धना।
भिक्षुका च शिराढ्येन नारी करतलेन हि ॥४३॥

जिस स्त्री की हथेली रक्त वर्ण, मध्य भाग सामान्य ऊँची, अंगुली मिलाने पर छिद्र-हीन, कोमल एवं अल्प रेखा से युत हो तो सब प्रकार से सुखप्रद जानना चाहिए। बहुत रेखा वाली हो तो विधवा, रेखा से हीन हो तो दरिद्रा एवं हथेली में शिरा हो तो वह स्त्री भिक्षुणी (भीख माँगने वाली) होती है ॥४२-४३॥

करपृष्ठलक्षण

पाणिपृष्ठं शुभं स्त्रीणां पुष्टं मृदु विरोमकम्।
शिरालं रोमशं निम्नं दुःख-दारिद्र्य-सूचकम् ॥४४॥

स्त्री के हाथ का पृष्ठभाग पुष्ट, मुलायम और रोम से हीन रहने पर शुभ होता है। वही यदि शिरा से युक्त, रोमसहित एवं दबा हुआ हो तो दुःख तथा दरिद्रता की सूचना देता है ॥४४॥

करतलरेखालक्षण

यस्याः करतले रेखा व्यक्ता रक्ता च वर्तुला।
स्निग्धा पूर्णा च गम्भीरा सा सर्वसुखभागिनी ॥४५॥
मत्स्येन सुभगा ज्ञेया स्वस्तिकेन धनान्विता।
राजपत्नी सरोजेन जननी पृथिवीपतेः ॥४६॥
सार्वभौमप्रिया पाणौ नद्यावर्ते प्रदक्षिणे।
शङ्खातपत्रकमठैर्भूपस्य जननी भवेत् ॥४७॥

जिस स्त्री के हथेली की रेखा स्पष्ट, लाल वर्ण, गोल, कोमल, पूर्ण एवं दबी हुई हो वह सभी सुखों का भोग करने वाली होती है। यदि हथेली में मत्स्य रेखा हो तो सौभाग्य-युक्त, स्वस्तिक चिह्न हो तो धनवती एवं कमल के तुल्य रेखा हो तो राजपत्नी तथा राज-माता होती है। नदी के समान रेखा होने पर वह स्त्री चक्रवर्ती राजा की प्राणप्रिया होती है। स्त्री का हाथ यदि शंख, छत्र और कछुए के सदृश चिह्नों से युक्त हो तो वह स्त्री राजमाता होती है ॥४५-४७॥

रेखा तुलाकृतिः पाणौ यस्याः सा हि वणिग्वधूः।
गज-वाजि-वृषाभा वा करे वामे मृगीदृशः ॥४८॥

जिस स्त्री के वाम हथेली में तराजू अथवा हाथी, घोड़ा या बैल के तुल्य रेखा हो तो वह स्त्री व्यापारी की पत्नी होती है ॥४८॥

रेखा प्रसादवज्राभा सूते तीर्थकरं सुतम्।
कृषीबलस्य पत्नी स्याच्छकटेन युगेन वा ॥४९॥
चामराङ्कुश-चापैश्च राजपत्नी पतिव्रता।
त्रिशूलाऽसि-गदा-शक्ति–दुन्दुभ्याकृति-रेखया ॥५०॥

जिस स्त्री की हथेली में दरबार (महल) या वज्र के समान रेखा हो, वह स्त्री शास्त्र-निर्माता या संप्रदायसंस्थापक पुत्र को उत्पन्न करने वाली होती है। जिसकी हथेली में बैलगाड़ी, हल या जूआ सदृश चिह्न हो वह स्त्री कृषक की पत्नी होती है। जिसके हाथ में चँवर, अंकुश, त्रिशूल, तलवार, गदा, शक्ति एवं दुन्दुभि के तुल्य रेखा हो, तो ऐसी स्त्री पतिव्रता राजपत्नी होती है ॥४९-५०॥

अङ्गुष्ठमूलान्निर्गत्य रेखा याति कनिष्ठिकाम्।
सा नारी पतिहन्त्री स्याद् दूरतस्तां परित्यजेत् ॥५१॥
काय-मण्डूक-जम्बूक-वृक-वृश्चिक–भोगिनः।
रासभोष्ट्र-विडालाभा रेखा दुःखप्रदाः स्त्रियः ॥५२॥

जिस स्त्री के अंगुष्ठमूल से निकल कर कनिष्ठा तक रेखा गई हो वह नारी पति का हनन करने वाली होती है। ऐसी स्त्री को दूर से ही त्याग देना चाहिए। जिसके हाथ में

कौआ, मेढ़क, शृंगार, भेड़, बिच्छू, सर्प, गदहा, उष्ट्र या बिल्ली के सदृश रेखा हो वह स्त्री दुःख भोगने वाली होती है ॥५१-५२॥

अंगुलि-लक्षण

मृदुलाश्च सुपर्वाणो दीर्घा वृत्ताः क्रमात् कृशाः ।
अरोमकाः शुभाः स्त्रीणामङ्गुल्यः परिकीर्तिताः ॥५३॥
अतिह्रस्वाः कृशा वक्रा विमला रोमसंयुताः ।
बहुपर्वयुता वाऽपि पर्वहीनाश्च दुःखदाः ॥५४॥

जिस स्त्री के हाथ की अंगुलियाँ कोमल हों, सुन्दर पर्वों से युत हों, दीर्घ, वृत्ताकार, कृश एवं रोमरहित हों तो उन्हें शुभकारक कहा गया है। जिसकी अंगुलियाँ अत्यन्त छोटी हों, कृश, टेढ़ी, छिद्र तथा रोमयुक्त हों, अधिक पर्व अथवा पर्वरहित हों तो उन्हें दुःखदायक जानना चाहिए ॥५३-५४॥

नखलक्षण

रक्तवर्णा नखास्तुङ्गा सशिखाश्च शुभप्रदाः ।
निम्ना विवर्णा पीता वा पुष्पिता दुःखदायकाः ॥५५॥

जिस स्त्री का नाखून रक्त वर्ण, उन्नत एवं शिखायुक्त हो तो वह शुभप्रद होता है। गहरा, मलिन, पीला, सफेद बिन्दुओं से युक्त हों तो ऐसे नख दुःखदायक होते हैं ॥५५॥

पृष्ठभागलक्षण

अन्तर्निमग्नवंशास्थि पृष्ठं स्यान्मांसलं शुभम् ।
स-शिरं रोमयुक्तं वा वक्रं चाऽशुभदायकम् ॥५६॥

स्त्री का पृष्ठ भाग दबा हुआ, हड्डी एवं मांसयुक्त तथा पुष्ट हो तो शुभ एवं शिरा तथा रोमयुक्त और टेढ़ा हो तो अशुभदायक होता है ॥५६॥

कण्ठलक्षण

स्त्रीणां कण्ठस्त्रिरेखाङ्कस्त्वव्यक्तास्थिश्च वर्तुलः ।
मांसलो मृदुलश्चैव प्रशस्तफलदायकः ॥५७॥
स्थूलग्रीवा च विधवा वक्रग्रीवा च किङ्करी ।
वन्ध्या च चिपिटग्रीवा लघुग्रीवा च निःसृता ॥५८॥

जिस स्त्री का कण्ठ तीन रेखा से युक्त, हड्डी न दिखने वाली, गोलाकार, मांसयुक्त एवं कोमल हो तो वह शुभ फलदायक; स्थूल कण्ठ विधवाकारक एवं टेढ़ा कण्ठ दासी बनाने वाली होती है। चिपटी ग्रीवा वाली स्त्री वन्ध्या एवं छोटी कण्ठ हो तो सन्तान से हीन होती है ॥५७-५८॥

कृकाटिका-लक्षण

श्रेष्ठा कृकाटिका ऋज्वी समांसा च समुन्नता।
शुष्का शिराला रोमाढ्या विशाला कुटिलाऽशुभा ॥५९॥

जिस स्त्री की कृकाटिका (काठी अर्थात् कण्ठ का उठा हुआ मध्य भाग) सीधी, मांस से पुष्ट एवं सामान्य उन्नत हो तो वह शुभप्रद होती है एवं यदि शुष्क (मांसरहित), शिरा तथा रोम से युक्त, बड़ी और टेढ़ी हो तो उसे अशुभदायक समझना चाहिए ॥५९॥

चिबुकलक्षण

अरुणं मृदुलं पुष्टं प्रशस्तं चिबुकं स्त्रियाः।
आयतं रोमशं स्थूलं द्विधा भक्तमशोभनम् ॥६०॥

जिस स्त्री का चिबुक लाल वर्ण, मुलायम और पुष्ट हो तो वह शुभ होता है। फैला हुआ, रोमयुक्त, स्थूल और दो भाग में विभक्त रहने वाले चिबुक को अशुभप्रद जानना चाहिए ॥६०॥

कपोल-(गाल)-लक्षण

कपोलावुन्नतौ स्त्रीणां पीनौ वृत्तौ शुभप्रदौ।
रोमशौ परुषौ निम्नौ निर्मांसौ चाऽशुभप्रदौ ॥६१॥

जिस स्त्री का गाल उन्नत, पुष्ट और गोल हो तो वह शुभ होता है। यदि रोमसहित, कठोर, दबा हुआ एवं मांसहीन हो तो अशुभप्रद होता है ॥६१॥

मुखलक्षण

स्त्रीणां मुखं समं पृष्ठं वर्तुलं च सुगन्धिमत्।
सुस्निग्धं च मनोहारि सुख-सौभाग्यसूचकम् ॥६२॥

स्त्री का मुख, सम (न बड़ा, न छोटा), पुष्ट, गोलाकार, सुगन्धित, चिकना, मुलायम, देखने में सुन्दर एवं मन को हरण करने वाला हो तो उसे शुभप्रद कहा गया है, इससे विपरीत मुख को अशुभ जानना चाहिए ॥६२॥

अधरलक्षण

वर्तुलः पाटलः स्निग्धा रेखाभूषितमध्यभूः।
मनोहरोऽधरो यस्याः सा भवेद् राजवल्लभा ॥६३॥
निर्मांसः स्फुटितो लम्बो रुक्षो वा श्यामवर्णकः।
स्थूलोऽधरश्च नारीणां वैधव्यक्लेशसूचकः ॥६४॥

जिस स्त्री का अधर (नीचे का ओठ) श्वेत-रक्त मिले हुए रंग वाला, गोलाकार, मुलायम, मध्य भाग में रेखा से युक्त, सुन्दर एवं मनोहर हो तो वह स्त्री राजप्रिया होती है। मांसहीन, फटा हुआ, लम्बा, रूखा, श्याम वर्ण एवं स्थूल अधर रहने पर वैधव्य तथा क्लेश का सूचक होता है ॥६३-६४॥

उत्तरोष्ठलक्षण

रक्तोत्पलनिभः स्निग्ध उत्तरोष्ठो मृगीदृशाम्।
किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमा सुखसौभाग्यदो भवेत् ॥६५॥

जिस स्त्री का ऊपर का ओठ रक्तकमलसदृश लाल, चिकना, सामान्य रूप से मध्य भाग उठा हुआ हो एवं रोमरहित हो तो वह सुख-सौभाग्यदायक होता है। इससे भिन्न को अशुभप्रद जानना चाहिए ॥६५॥

दन्तलक्षण

स्निग्धा दुग्धनिभाः स्त्रीणां द्वात्रिंशद्दशनाः शुभाः।
अधस्तादुपरिष्टाच्च समाः स्तोकसमुन्नताः ॥६६॥
अधस्तादधिकाः पीता श्यामा दीर्घा द्विपङ्क्तयः।
विकटा विरलाश्चापि दशना न शुभाः स्मृताः ॥६७॥

स्त्री के दाँत चिकने, दूध के समान सफेद, संख्या में ३२, ऊपर तथा नीचे के समान एवं थोड़े उन्नत हों तो शुभकारक होते हैं। यदि ऊपर की अपेक्षा नीचे अधिक, पीले या काले, लम्बे, दो पंक्ति में, विकट एवं अलग-अलग हों तो उन्हें अशुभप्रद माना गया है ॥६६-६७॥

जिह्वालक्षण

शोणा मृद्वी शुभा जिह्वा स्त्रीणामतुलभोगदा।
दुःखदा मध्यसङ्कीर्णा पुरोभागेऽतिविस्तरा ॥६८॥
सितया मरणं तोये श्यामया कलहप्रिया।
मांसलया धनैर्हीना लम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी ॥६९॥
प्रमादसहिता नारी जिह्वया च विशालया ॥६९½॥

जिस स्त्री का जीभ लाल वर्ण तथा कोमल हो, वह असंख्य भोगों का भोग करने वाली होती है। जिसका मध्य भाग संकुचित एवं अग्र भाग अति विस्तृत हो वह दुःख का भोग करने वाली होती है। सफेद जीभ वाली स्त्री का जल से मरण होता है एवं जिसकी जीभ श्याम वर्ण की हो तो ऐसी स्त्री कलहकारिणी होती है। इसी प्रकार मोटी जीभ वाली दरिद्रा, लम्बी जीभ वाली अखाद्य वस्तु का भक्षण करने वाली एवं विशाल जीभ वाली स्त्री प्रमादयुक्ता होती है ॥६८-६९॥

तालुलक्षण

सुस्निग्धं पाटलं स्त्रीणां कोमलं तालु शोभनम् ॥७०॥
श्वेते तालुनि वैधव्यं पीते प्रव्रजिता भवेत्।
कृष्णे सन्ततिहीना स्याद् रूक्षे भूरिकुटुम्बिनी ॥७१॥

जिस स्त्री का तालु चिकना श्वेत-रक्त मिश्रित (पाटल) वर्ण एवं कोमल हो तो वह

शुभ; केवल श्वेत तालु वाली स्त्री विधवा, पीली तालु वाली संन्यासिनी, कृष्ण तालु वाली सन्तानहीना, रूखी तालु होने पर स्त्री अधिक परिवार वाली होती है ।।७०-७१।।

हास्यलक्षण

अलक्षितरदं स्त्रीणां किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ।
स्मितं शुभप्रदं ज्ञेयमन्यथा त्वशुभप्रदम् ।।७२।।

जिस स्त्री के हँसते समय दाँत न दिखाई दें, कुछ उठे हुए गाल हों और मन्द हास्य हो तो ऐसी स्त्री शुभप्रद होती है। इससे भिन्न हो तो उसे अशुभप्रद जानना चाहिए ।।७२।।

नासिकालक्षण

समवृत्तपुटा नासा लघुच्छिद्रा शुभप्रदा ।
स्थूलाग्रा मध्यनिम्ना वा न प्रशस्ता मृगीदृशाम् ।।७३।।

जिस स्त्री की नासिका समान, गोलाकार एवं जिसके दोनों छिद्र लघु हों तो वे शुभप्रद एवं नाक का अग्रभाग स्थूल तथा मध्य भाग गहरा हो तो अशुभप्रद होता है ।।७३।।

रक्ताग्राऽऽकुञ्चिताग्रा वा नासा वैधव्यकारिणी ।
दासी सा चिपिटा यस्या ह्रस्वा दीर्घा कलिप्रिया ।।७४।।

जिस स्त्री की नासिका का अग्रभाग रक्त वर्ण और संकुचित हो तो वह विधवा होती है। चिपटी नासिका वाली स्त्री दासी एवं अधिक छोटी या अधिक लम्बी नासिका वाली स्त्री कलहकारिणी होती है ।।७४।।

नेत्रलक्षण

शुभे विलोचने स्त्रीणां रक्तान्ते कृष्णतारके ।
गोक्षीरवर्णे विशदे सुस्निग्धे कृष्णपक्ष्मणी ।।७५।।

स्त्री की आँखें अन्त में लाल वर्ण वाली, पुतलियाँ काली, गाय के दुग्धसदृश श्वेत एवं बड़ी-बड़ी चिकनी काली पलकों वाली हों तो उन्हें शुभ कहा गया है ।।७५।।

उन्नताक्षी न दीर्घायुर्वृत्ताक्षी कुलटा भवेत् ।
रमणी मधुपिङ्गाक्षी सुखसौभाग्यभागिनी ।।७६।।
पुंश्चली वामकाणाक्षी वन्ध्या दक्षिणकाणिका ।
पारावताक्षी दुःशीला गजाक्षी नैव शोभना ।।७७।।

जिस स्त्री की आँखें ऊँची हों वह अल्पायु होती है; गोलाकार आँख वाली स्त्री कुलटा होती है; सुन्दर, मधुसदृश पिङ्गल नेत्र वाली स्त्री सुख और सौभाग्य को भोगने वाली होती है; जिसकी बाँयीं आँख कानी हो वह व्यभिचारिणी होती है; दाहिनी आँख से कानी स्त्री बाँझ होती है; कबूतर के समान नेत्र वाली स्त्री दुष्ट स्वभाव वाली होती है एवं हाथी के समान आँख वाली स्त्री शुभकारक नहीं होती ।।७६-७७।।

पक्ष्मलक्षण

मृदुभिः पक्ष्मभिः कृष्णैर्घनैः सूक्ष्मैः सुभाग्ययुक्।
विरलैः कपिलैः स्थूलैर्भामिनी दुःखभागिनी ॥७८॥

स्त्री के पलक कोमल, काले, घने और सूक्ष्म हों तो वह सौभाग्यवती होती है। विरल, कपिल वर्ण, स्थूल पलक रहने वाली स्त्री दुःखभागिनी होती है ॥७८॥

भ्रूलक्षण

वर्तुलौ कार्मुकाकारौ स्निग्धे कृष्णे असंहते।
सुभ्रुवौ मृदुरोमाणौ सुभ्रुवां सुखकीर्तिदौ ॥७९॥

स्त्री की भौंहें गोलाकार, धनुष के सदृश, चिकनी काली, परस्पर न मिली हुई एवं कोमल रोमों से युक्त होने पर सुख तथा कीर्ति प्रदान करने वाली होती हैं ॥७९॥

कर्णलक्षण

कर्णौ दीर्घौ शुभावर्तौ सुतसौभाग्यदायकौ।
शष्कुलीरहितौ निन्द्यौ शिरालौ कुटिलौ कृशौ ॥८०॥

जिस स्त्री के दोनों कान लम्बे, गोलाकार एवं साथ घूमे हुए हों तो वह पुत्र तथा सौभाग्य को प्राप्त करती है। विस्तारहीन, शिरायुत, टेढ़े एवं मांसरहित कर्ण अशुभता को प्रकट करते हैं ॥८०॥

भाललक्षण

शिराविरहितो भालः निर्लोमाऽर्धशशिप्रभः।
अनिम्नस्त्र्यङ्गुलस्त्रीणां सुतसौभाग्यसौख्यदः ॥८१॥
स्पष्टस्वस्तिकचिह्नश्च भालो राज्यप्रदः स्त्रियाः।
प्रलम्बो रोमशश्चैव प्रांशुश्च दुःखदः स्मृतः ॥८२॥

जिस स्त्री का भाल (ललाट) शिरा तथा रोमरहित, अर्ध चन्द्राकार के समान एवं लम्बाई में तीन अंगुल हो, वह पुत्र के साथ-साथ सौभाग्यसुख को भी प्राप्त करती है। यदि भाल में स्पष्ट स्वस्तिक चिह्न हो तो वह स्त्री राजप्रिया होती है। अधिक लम्बा, रोमयुक्त एवं बहुत ऊँचा भाल हो तो उस स्त्री के लिए दुःखदायी होता है ॥८१-८२॥

मूर्धा-(मस्तक)-लक्षण

उन्नतो गजकुम्भाभो वृत्तो मूर्धा शुभः स्त्रियः।
स्थूलो दीर्घोऽथवा वक्रो दुःखदौर्भाग्यसूचकः ॥८३॥

स्त्री का हाथी के मस्तक सदृश ऊँचा और गोलाकार मस्तक शुभ तथा स्थूल, लम्बा अथवा टेढ़ा मस्तक दुःख-दुर्भाग्य का सूचक होता है ॥८३॥

केशलक्षण

कुन्तलाः कोमलाः कृष्णाः सूक्ष्मा दीर्घाश्च शोभनाः ।
पिङ्गलाः परुषा रूक्षा विरला लघवोऽशुभाः ॥८४॥
पिङ्गला गौरवर्णाया श्यामायाः श्यामलाः शुभाः ।
नारीलक्षणतश्चैवं नराणामपि चिन्तयेत् ॥८५॥

स्त्री के केश कोमल, काले, पतले, लम्बे हों तो वे शुभप्रद होते हैं। पिङ्गल वर्ण के, कठोर, रूखे, बिखरे हुए छोटे केश अशुभसूचक होते हैं। परन्तु गौर वर्ण की स्त्री के पिङ्गल एवं श्याम वर्ण की स्त्री के काले केश को शुभ ही जानना चाहिए।

इसी प्रकार स्त्री के अङ्गलक्षण के द्वारा पुरुषों का भी अंग-लक्षण अवगत करना चाहिए ॥८४-८५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामङ्गलक्षणफलाध्यायः ॥८३॥

अथ तिलादिलाञ्छनफलाध्यायः ॥८४॥

पराशर उवाच

अथाऽहं देहजातानां लाञ्छनानां फलं ब्रुवे।
आवर्तानां तिलानां च मशकानां विशेषतः ॥१॥

पराशर ने कहा कि हे मैत्रेय ! अब मैं स्त्री-पुरुष दोनों के शरीर में उत्पन्न भँवर, तिल, मशकादि चिह्नों का फल कहता हूँ ॥१॥

अङ्गनानां च वामाङ्गे दक्षिणाङ्गे नृणां शुभम्।
रक्ताभं तिलकाभं वा लोम्नां चक्रमथापि वा ॥२॥
तिलादि-लाञ्छनं स्त्रीणां हृदि सौभाग्यसूचकम्।
यस्या दक्षिणवक्षोजे रक्ते तिलकलाञ्छने ॥३॥
सा सन्तितितिं सूते सुखसौभाग्यसंयुताम् ॥३½॥

तिल, मशकादि चिह्न स्त्री के वाम अंग में एवं पुरुषों के दक्षिण अंग में शुभ होते हैं। यदि स्त्री का हृदय रक्त वर्ण के तिल, चक्रादि चिह्नों से युत हो तो वह स्त्री सौभाग्यवती होती है। जिस स्त्री के दाहिने स्तन पर रक्त वर्ण का तिल या मशकादि चिह्न हो, वह स्त्री पुत्र-पौत्रादि से युत हो सुख-सौभाग्य को प्राप्त करती है ॥२-३½॥

रक्ताभं तिलकं यस्याः स्त्रिया वामे स्तने भवेत् ॥४॥
एक एव सुतस्तस्या भवतीति विदो विदुः ॥४½॥

जिस स्त्री के वाम स्तन पर रक्त वर्ण के तिल या मशकादि चिह्न हों, उसे मात्र एक ही पुत्र होता है ॥४½॥

पुत्रीपुत्रयुता ज्ञेया तिलके दक्षिणे स्तने ॥५॥

जिस स्त्री के दाहिने स्तन पर तिल हों उसे बहुत कन्यायें तथा पुत्र होते हैं ॥५॥

भ्रुवोर्मध्ये ललाटे वा लाञ्छनं राजसूचकम्।
कपोले मशको रक्तो नित्यं मिष्ठान्नदायकः ॥६॥

भौहों के मध्य भाग में या ललाट में रक्त वर्ण के तिल या मशकादि के चिह्न हों तो उसे राज्य-सौख्य प्राप्त होता है। गाल में रक्त वर्ण का तिल या मशकादि के चिह्न होने से सदैव मिष्ठान्न की प्राप्ति होती है ॥६॥

भगस्य दक्षिणे भागे लाञ्छनं यदि योषितः।
सा हि पृथ्वीपतेः पत्नी सूते वा भूपतिं सुतम् ॥७॥

जिस स्त्री के भग के दक्षिण भाग में तिलादि का चिह्न हो, वह स्त्री रानी या राजमाता होती है ॥७॥

नासाग्रे लाञ्छने रक्तं राजपत्न्याः प्रजायते।
कृष्णवर्णं तु यस्याः सा पुँश्चली विधवाऽथ वा ॥८॥
नाभेरधो नृणां स्त्रीणां लाञ्छनं च शुभप्रदम्।
कर्णे गण्डे करे वाऽपि कण्ठे वाऽप्यथ लाञ्छनम् ॥९॥
प्राग्गर्भे पुत्रदं ज्ञेयं सुख-सौभाग्यदं तथा।
तिलादि लाञ्छनं विप्र! गुल्फदेशे च दुःखदम् ॥१०॥

जिस स्त्री के नासिका के अग्रभाग में रक्त वर्ण के तिलादि मशक हों, वह रानी होती है। यदि कृष्ण वर्ण का दाग हो तो वह व्यभिचारिणी या विधवा होती है। नाभि से नीचे में पुरुष या स्त्री का चिह्न शुभप्रद होता है। कर्ण, गाल, हाथ और कण्ठ में चिह्न हो तो उसे प्रथम गर्भ में पुत्र की प्राप्ति होती है और वह सुख-सौभाग्यदायक होता है। हे विप्र ! यदि गुल्फ (जाँघ) में मशकादि चिह्न हो तो वह दुःख एवं दारिद्र्य को देने वाला होता है ॥८-१०॥

त्रिशूलाकृति-चिह्नं च ललाटे यदि जायते।
नारी राजप्रिया ज्ञेया भूपतिश्च नरो भवेत् ॥११॥

जिस स्त्री के ललाट में त्रिशूल के तुल्य चिह्न हो, वह स्त्री राजप्रिया होती है एवं पुरुष के ललाट में वही चिह्न हो तो वह राजा होता है ॥११॥

रोमावर्तलक्षण

लोम्नां प्रदक्षिणावर्तो हृदि नाभौ करे श्रुतौ।
दक्षपृष्ठे शुभो वस्तौ वामावर्तोऽशुभप्रदः ॥१२॥

जिसके हृदय, नाभि, हाथ, कान और पृष्ठ के दाहिने भाग तथा वस्ति (नाभि-लिङ्ग का मध्य भाग) में रोमावली (भँवर) दक्षिण की ओर घुमी हुई हो तो वह शुभ होती है। यदि वाम भाग की ओर रोमावली का घुमाव हो तो उसे अशुभप्रद जानना चाहिए ॥१२॥

कट्यां गुह्येऽथवाऽऽवर्तो स्त्रीणां दौर्भाग्यसूचकः।
उदरे हन्ति भर्तारं मध्यपृष्ठे च पुँश्चली ॥१३॥
कण्ठे ललाटे सीमन्ते मध्यभागे च मूर्धनि।
आवर्तो न शुभः स्त्रीणां पुंसां वाऽपि द्विजोत्तम! ॥१४॥

कमर और गुह्य स्थल में रोमावर्त्त शुभ नहीं होता। उदर में स्थित रोमावली पति का हनन करने वाली होती है। पीठ के मध्य भाग में रोमावली वाली स्त्री व्यभिचारिणी होती है। कण्ठ, ललाट, माँग (मस्तक के मध्य भाग) में रोमावर्त होने पर उसे अशुभप्रद जानना चाहिए ॥१३-१४॥

सुलक्षणाः सुचरिता अपि मन्दायुषं पतिम्।
दीर्घायुषं प्रकुर्वन्ति प्रमदाश्च मुदास्पदम्॥१५॥

पूर्वोक्त शुभ लक्षणों से युक्त एवं सुन्दर चरित्र वाली स्त्री अल्पायु पति को भी दीर्घायु, धन-धान्य से पूर्ण और सुखी बना लेती है॥१५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां तिलादिलाञ्छनफलाध्यायः॥८४॥

अथ पूर्वजन्मशापद्योतनाध्यायः ॥८५॥

मैत्रेय उवाच

महर्षे! भवता प्रोक्तं फलं स्त्रीणां नृणां पृथक्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो वेदविदांवर ॥१॥

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति शास्त्रेषु श्रूयते मुने!।
अपुत्रः केन पापेन भवतीति वद प्रभो! ॥२॥
जन्मलग्नाच्च तज्ज्ञानं कथं दैवविदां भवेत्।
अपुत्रस्य सुतप्राप्तेरुपायं कृपयोच्यताम् ॥३॥

मैत्रेय बोले—हे महामुने ! आपने स्त्री-पुरुषों के विभिन्न प्रकार से शुभाशुभ फलों को कहा है। शास्त्रों में 'अपुत्रों की गति नहीं होती है'—ऐसा कहा गया है। किस पाप से मनुष्य पुत्ररहित (अपुत्र) होते हैं और किस उपाय से उन्हें पुत्रादि की प्राप्ति होती है; कृपया मुझे यथार्थ रूप से बताने की कृपा करें ॥१-३॥

पराशर उवाच

साधु पृष्टं त्वया विप्र! कथ्यते हि तथा मया।
यथोमया हि पृष्टेन शिवेन कथितं पुरा ॥४॥

पराशर ने कहा—हे विप्र ! आपने अच्छा प्रश्न किया है। प्राचीन काल में उमा ने शंकर जी से ऐसा ही प्रश्न किया था और भगवान् शंकर ने जो उत्तर उमा को दिया था, उसी प्रकार से मैं भी आपको बताता हूँ ॥४॥

पार्वत्युवाच

केन योगेन पापेन ज्ञायतेऽपत्यनाशनम्।
तेषां च रक्षणोपायं कृपया नाथ! मे वद ॥५॥

पार्वती बोली कि हे नाथ ! किस पाप के कारण मनुष्य सन्तानहीन होते हैं, सन्तानहीन योग कैसे जाना जा सकता है तथा सन्तानरक्षा का क्या उपाय है—इन सबको कृपया मुझे यथार्थ रूप से बतलाने की कृपा करें ॥५॥

शङ्कर उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि! कथयामि तवाऽधुना।
सन्तानहानियोगांश्च तद्रक्षोपायसंयुतान् ॥६॥

शङ्कर जी ने कहा कि हे देवि ! आपने अच्छा प्रश्न किया है। अब मैं मानवों के सन्तान-हानि योग तथा सन्तानरक्षण के उपाय को आपसे कहता हूँ ॥६॥

सन्तानहानि योग

गुरु-लग्नेश-दारेश-पुत्रस्थानाधिपेषु च।
सर्वेषु बलहीनेषु वक्तव्या त्वनपत्यता ॥७॥

गुरु, लग्नाधिप, सप्तमेश और पुत्रस्थान के स्वामी—ये सभी बलहीन निर्बल हों तो अपत्य-(सन्तान)-हीन योग हो जाता है ॥७॥

रव्यार-राहु-शनयः सबलाः पुत्रभावगाः।
तदाऽनपत्यता चेत् स्युरबलाः पुत्रकारकाः ॥८॥

यदि सूर्य, मंगल, राहु और शनि बलयुत होकर पञ्चम भाव में हों तो उन्हें सन्तानहीन योग जानना चाहिए; यही निर्बल होकर पञ्चम में रहने से पुत्रकारक योग बनाते हैं ॥८॥

शापज्ञाननिरूपण

पुत्रस्थानगते राहौ कुजेन च निरीक्षिते।
कुजक्षेत्रगते वाऽपि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥९॥
पुत्रेशे राहुसंयुक्ते पुत्रस्थे भानुनन्दने।
चन्द्रेण संयुते दृष्टे सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१०॥
कारके राहुसंयुक्ते पुत्रेशे बलवर्जिते।
लग्नेशे कुजसंयुक्ते सर्पशापात् सुतक्षयः ॥११॥
कारके भौमसंयुक्ते लग्ने च राहुसंयुते।
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१२॥
भौमांशे भौमसंयुक्ते पुत्रेशे सोमनन्दने।
राह-मान्दियुते लग्ने सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१३॥
पुत्रभावे कुजक्षेत्रे पुत्रेशे राहुसंयुते।
सौम्यदृष्टे युते वाऽपि सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१४॥
पुत्रस्था भानु-मन्दाराः स्वर्भानुः शशिजोऽङ्गिराः।
निर्बलौ पुत्रलग्नेशौ सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१५॥
लग्नेशे राहुसंयुक्ते पुत्रेशे भौमसंयुते।
कारके राहुयुक्ते वा सर्पशापात् सुतक्षयः ॥१६॥

पुत्रस्थान में राहु हो और मंगल की दृष्टि हो अथवा मंगल के क्षेत्र (मेष, वृश्चिक) में राहु हो और मंगल द्वारा अवलोकित हो तो सर्प के शाप से मनुष्य को पुत्रहीन जानना चाहिए। पुत्रेश राहु के साथ हो और पुत्रभाव में शनि हो, उसमें चन्द्र की युति या दृष्टि हो तो सर्प के शाप से सन्तान की हानि होती है। पुत्रकारक (गुरु, पञ्चमेश, लग्नेश आदि) ग्रह के साथ राहु हो और पुत्रेश बलहीन हो अथवा लग्नेश के मंगल के साथ रहने पर भी सर्पशाप से पुत्र का अभाव जानना चाहिए। पुत्रकारक ग्रह के साथ मंगल हो, लग्न में राहु

हो, पुत्रेश ६, ८, १२ भाव में हो तो सर्पशाप से सन्तानहानि जाननी चाहिए। यदि बुध पुत्रेश होकर मंगल के नवमांश में हो और मंगल से युत हो, लग्न में राहु तथा गुलिक हो तो सर्पशाप से सन्तान का नाश होता है। पुत्रभाव मंगल का क्षेत्र हो, पुत्रेश राहु तथा बुध से युत या दृष्ट हो तो भी सर्पशाप से सन्तानहीन योग होता है। सन्तानभाव में सूर्य, शनि, मंगल, राहु, बुध एवं गुरु हों और पुत्रेश, लग्नेश निर्बल हों तो सर्पशाप से सन्तान का अभाव होता है। लग्नेश राहु से युत हो और पुत्रेश के साथ मंगल हो, पुत्रकारक ग्रह के साथ राहु के युत रहने पर भी सर्पशाप से सन्तान का अभाव होता है ॥८-१६॥

शान्ति का उपाय

ग्रहयोगवशेनैव नृणां ज्ञात्वाऽनपत्यता।
तद्दोषपरिहारार्थं नागपूजां समारभेत् ॥१७॥
स्वगृहोक्तविधानेन प्रतिष्ठां कारयेत् सुधीः।
नागमूर्तिं सुवर्णेन कृत्वा पूजां समाचरेत् ॥१८॥
गो-भू-तिल-हिरण्यादि दद्याद् वित्तानुसारतः।
एवं कृते तु नागेन्द्र–प्रसादात् वर्धते कुलम् ॥१९॥

इस प्रकार ग्रहयोग के बलाबलानुसार सन्तानहीन योग जानकर उसकी शान्ति का उपाय करना चाहिए। उक्त सन्तानहीन योग के निवारण हेतु अपनी गृहपद्धति के अनुरूप सुवर्णमयी नागप्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करके विधिपूर्वक नागपूजा करके गौ, भूमि, तिल, सुवर्णादि अपनी शक्ति के अनुसार दान करने पर नागराज की कृपा से पुत्रोत्पत्ति और कुल की वृद्धि होती है ॥१७-१९॥

पितृशाप से सन्तानहीन योग

पुत्रस्थानं गते भानौ नीचे मन्दांशकस्थिते।
पार्श्वयोः क्रूरसम्बन्धे पितृशापात् सुतक्षयः ॥२०॥
पुत्रस्थानाधिपे भानौ त्रिकोणे पापसंयुते।
क्रूरान्तरे पापदृष्टे पितृशापात् सुतक्षयः ॥२१॥
भानुराशिस्थिते जीवे पुत्रेशे भानुसंयुते।
पुत्रे लग्ने च पापाढ्ये पितृशापात् सुतक्षयः ॥२२॥
लग्नेशे दुर्बले पुत्रे पुत्रेशे भानुसंयुते।
पुत्रे लग्ने पापयुते पितृशापात् सुतक्षयः ॥२३॥
पितृस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे वाऽपि कर्मगे।
पुत्रे लग्ने च पापाढ्ये पितृशापात् सुतक्षयः ॥२४॥
पितृस्थानाधिपो भौमः पुत्रेशेन समन्वितः।
लग्ने पुत्रे पितृस्थाने पापे सन्ततिनाशनम् ॥२५॥

पितृस्थानाधिपे दुःस्थे कारके पापराशिगे।
स-पापौ पुत्रलग्नेशौ पितृशापात् सुतक्षयः ॥२६॥
लग्नपञ्चमभावस्था भानु-भौम-शनैश्चराः।
रन्ध्रे रिष्फे राहु-जीवौ पितृशापात् सुतक्षयः ॥२७॥
लग्नादष्टमगे भानौ पुत्रस्थे भानुनन्दने।
पुत्रेशे राहुसंयुक्ते लग्ने पापे सुतक्षयः ॥२८॥
व्ययेशे लग्नभावस्थे रन्ध्रेशे पुत्रराशिगे।
पितृस्थानाधिपे रन्ध्रे पितृशापात् सुतक्षयः ॥२९॥
रोगेशे पुत्रभावस्थे पितृस्थानाधिपे रिपौ।
कारके राहुसंयुक्ते पितृशापात् सुतक्षयः ॥३०॥

तुला राशि का सूर्य शनि के नवमांश में होकर पुत्रभाव में बैठा हो और आगे-पीछे (चतुर्थ-षष्ठ में) क्रूर ग्रह बैठे हों तो पिता के शाप से सन्तानाभाव जानना चाहिए। सूर्य पुत्रेश होकर त्रिकोण में पाप ग्रह से युत या पाप ग्रहों के बीच में हो और पाप ग्रहों द्वारा अवलोकित हो तो पितृशाप के कारण सन्तानहीनता होती है। बृहस्पति सिंह राशि में हो और पुत्रेश सूर्य के साथ हो तथा पञ्चम, लग्न में पाप ग्रह के रहने से पितृशाप के फलस्वरूप सन्तानाभाव होता है। लग्नाधिप दुर्बल होकर पुत्रभाव में हो और पुत्रेश सूर्य के साथ हो तथा लग्न एवं पुत्रभाव में पाप ग्रह हो तो पिता के शाप से सन्तान की हानि होती है। पितृस्थानाधिप पञ्चम में एवं पुत्रेश दशम में हो और पुत्रस्थान तथा लग्न में पापग्रह के रहने से पिता के शाप के कारण सन्तानाभाव होता है। दशमेश भौम पुत्रेश के साथ हो एवं लग्न, पुत्र तथा पितृस्थान में पापग्रह रहे तो पिता की रुष्टता के कारण सन्तानहीनता होती है। दशमेश ६, ८, १२ में हो और पुत्रकारक ग्रह पापग्रह की राशि में हो तथा पुत्रेश एवं लग्नेश पापयुत हो तो पितृशाप से सन्ताननाश होता है। लग्न एवं पञ्चम भाव में सूर्य, मंगल, शनि हो एवं ८, १२ भाव में राहु, गुरु हो तो पितृशाप से सन्तानहानि होती है।

लग्न से अष्टम में सूर्य, पुत्रस्थान में शनि, पुत्रेश और राहु की युति एवं लग्न में भी पाप ग्रह रहने से पितृशाप से सन्तानहीनता होती है। व्ययेश लग्न में हो, अष्टमेश पुत्रभाव में हो तथा दशमेश के अष्टम में रहने से पितृशाप से सन्तानाभाव होता है। षष्ठेश पुत्रभाव में, दशमेश षष्ठ में, पुत्रकारक राहु की युति हो तो पिता के शाप से जातक सन्तानहीन हो जाता है ॥२०-३०॥

पितृदोषशमनोपाय

तद्दोषपरिहारार्थं गयाश्राद्धं च कारयेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेदत्र अयुतं वा सहस्रकम् ॥३१॥
अथवा कन्यकादानं गोदानं च समाचरेत्।
एवं कृते पितुः शापान्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥३२॥

वर्धते च कुलं तस्य पुत्र-पौत्रादिभिः सदा ।
ग्रहयोगवशादेवं फलं ब्रूयाद् विचक्षणः ॥३३॥

ग्रहयोगवशात् यदि पितृशाप से सन्तानावरोध योग हो तो उस दोष के शमनार्थ श्रद्धापूर्वक गयाश्राद्ध कराकर दश हजार, एक हजार अथवा सौ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए अथवा अपने घर में कन्या हो तो कन्यादान और गोदान करने से जातक पितृशाप से मुक्त होकर पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति करता है, जिससे उसके कुल की उन्नति तथा वृद्धि होती है ॥३१-३३॥

माता के शाप से सन्तानहानि योग

पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे नीचे वा पापमध्यगे ।
हिबुके पञ्चमे पापे मातृशापात् सुतक्षयः ॥३४॥
लाभे मन्दसमायुक्ते मातृस्थाने शुभेतरे ।
नीचे पञ्चमगे चन्द्रे मातृशापात् सुतक्षयः ॥३५॥
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे लग्नेशे नीचराशिगे ।
चन्द्रे च पापसंयुते मातृशापात् सुतक्षयः ॥३६॥
पुत्रेशेऽष्टारिरिष्फस्थे चन्द्रे पापांशसङ्गते ।
लग्ने पुत्रे च पापाढ्ये मातृशापात् सुतक्षयः ॥३७॥
पुत्रस्थानाधिपे चन्द्रे मन्दराह्वारसंयुते ।
भाग्ये वा पुत्रभावे वा मातृशापात् सुतक्षयः ॥३८॥
मातृस्थानाधिपे भौमे शनिराहुसमन्विते ।
चन्द्रभानुयुते पुत्रे लग्ने वा सन्ततिक्षयः ॥३९॥
लग्नात्मजेशौ शत्रुस्थौ रन्ध्रे मात्रधिपः स्थितः ।
पितृनाशाधिपौ लग्ने मातृशापात् सुतक्षयः ॥४०॥
षष्ठाष्टमेशौ लग्नस्थौ व्यये मात्रधिपः सुते ।
चन्द्र-जीवौ पापयुक्तौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥४१॥
पापमध्यगते लग्ने क्षीणे चन्द्रे च सप्तमे ।
मातृपुत्रे राहु-मन्दौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥४२॥
नाशस्थानाधिपे पुत्रे पुत्रेशे नाशराशिगे ।
चन्द्रमातृपतौ दुःस्थे मातृशापात् सुतक्षयः ॥४३॥
चन्द्रक्षेत्रे यदा लग्ने कुजराहुसमन्विते ।
चन्द्रमन्दौ पुत्रसंस्थौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥४४॥
लग्ने पुत्रे मृतौ रिष्फे कुजो राहू रविः शनिः ।
मातृलग्नाधिपौ दुःस्थौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥४५॥

नाशस्थानं गते जीवे कुजराहुसमन्विते ।
पुत्रस्थाने मन्दचन्द्रौ मातृशापात् सुतक्षयः ॥४६॥
एवं योगं बुधैर्दृष्ट्वा विज्ञेया त्वनपत्यता ।
ततः सन्तान-रक्षार्थं कर्तव्या शान्तिरुत्तमा ॥४७॥
सेतुस्नानं प्रकर्तव्यं गायत्रीलक्षसंख्यका ।
रौप्यमात्रं पयः पीत्वा ग्रहदानं प्रयत्नतः ॥४८॥
ब्राह्मणान् भोजयेत्तद्वदश्वत्थस्य प्रदक्षिणम् ।
कर्तव्यं भक्तियुक्तेन चाऽष्टोत्तरसहस्रकम् ॥४९॥
एवं कृते महादेवि ! शापान्मोक्षो भविष्यति ।
सुपुत्रं लभते पश्चात् कुलवृद्धिश्च जायते ॥५०॥

चन्द्र पुत्रेश होकर नीच में या पापग्रहों के मध्य में हो, चतुर्थ-पञ्चम भाव में पापग्रह हो तो माता के शाप से सन्तान का अभाव होता है। एकादश में शनि, मातृस्थान में पाप ग्रह एवं नीच चन्द्रमा के पञ्चम में रहने से मातृशाप के कारण सन्ताननाश होता है। पुत्रेश ६, ८, १२ में हो, लग्नेश नीच में हो और चन्द्रमा पाप ग्रह से युत हो तो मातृशाप से सन्ताननाश होता है। पुत्रेश ८, ६, १२ में हो, चन्द्रमा पाप ग्रह के नवमांश में हो और लग्न तथा पुत्रस्थान में पाप ग्रह हो तो मातृशाप से सन्तान का नाश होता है। पुत्रेश चन्द्र हो और शनि, मंगल, राहु से युत होकर भाग्य या पुत्रभाव में रहे तो मातृशाप से सन्तान का नाश होता है। चतुर्थेश भौम शनि-राहु से युत हो, लग्न-पञ्चम में चन्द्र-सूर्य की युति हो तो मातृशाप से सन्तान का अभाव होता है। लग्नेश-पुत्रेश षष्ठ में, चतुर्थेश अष्टम में एवं दशमेश तथा अष्टमेश लग्न में हो तो मातृशाप से सन्तानहीनता होती है। षष्ठेश-अष्टमेश लग्न में, चतुर्थेश व्ययभाव में एवं चन्द्र-गुरु पञ्चम में पापयुक्त हो तो मातृशाप के फलस्वरूप सन्तानहीनता होती है। पाप ग्रह के मध्य में लग्न हो, क्षीण चन्द्र सप्तम में हो और मातृ-पुत्र स्थान में राहु-शनि हो तो मातृशाप से सन्तानहीनता होती है। अष्टमेश पञ्चम में, पुत्रेश अष्टम में, चतुर्थेश तथा चन्द्रमा ६, ८, १२ में हो तो जातक मातृशाप से सन्तानहीन होता है। कर्क लग्न में मंगल-राहु हो और चन्द्रमा, शनि के पुत्रभाव में रहने से मातृशाप के कारण सन्तान का अभाव होता है। लग्न, पञ्चम, अष्टम, द्वादश में मंगल, राहु, सूर्य और शनि हो, चतुर्थेश-लग्नेश ६, ८, १२ में हो तो मातृशाप से सन्तानहीनता होती है। अष्टम में गुरु, मंगल, राहु हो एवं पञ्चम में शनि, चन्द्रमा रहने से मातृशाप से सन्तानहीनता होती है। इस प्रकार ग्रहों के योग देखकर यदि अनपत्य योग हो तो सन्तानप्राप्ति हेतु और सन्तान-रक्षार्थ उत्तम शान्ति करनी चाहिए। यथा सेतुस्नान-समुद्रस्नान करके केवल दुग्धपान कर लक्ष गायत्री का जप करना चाहिए। तदनन्तर विधिपूर्वक ग्रहशान्ति कर ग्रहदान एवं ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए। भक्तिपूर्वक १००८ वार पीपल की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। हे देवि ! ऐसा करने से मातृशाप से मुक्ति होकर जातक को सुन्दर पुत्ररत्न प्राप्त होता है एवं कुल की वृद्धि होती है॥३४-५०॥

भ्रातृशाप से असन्तान-लक्षण

अथो योगान् प्रवक्ष्यामि भ्रातृशापसमुद्भवान् ।
यज्ज्ञात्वाऽपत्यरक्षार्थं यत्नं कुर्याद् विचक्षणः ॥५१॥
भ्रातृस्थानाधिपे पुत्रे कुजराहुसमन्विते ।
पुत्रलग्नेश्वरौ रन्ध्रे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५२॥
लग्ने सुते कुजे मन्दे भ्रातृपे भाग्यराशिगे ।
कारके नाशभावस्थे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५३॥
भ्रातृस्थाने गुरुर्नीचे मन्दः पञ्चमगो यदि ।
नाशस्थाने तु चन्द्रारौ भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५४॥
तनुस्थानाधिपे रिष्फे भौमः पञ्चमगो यदि ।
रन्ध्रे स-पापपुत्रेशे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५५॥
पापमध्यगते लग्ने पापमध्ये सुतेऽपि च ।
लग्नेशपुत्रपौ दुःस्थौ भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५६॥
कर्मेशे भ्रातृभावस्थे पापयुक्ते तथा शुभे ।
पुत्रगे कुजसंयुक्ते भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५७॥
पुत्रस्थाने बुधक्षेत्रे शनि-राहु-समन्विते ।
रिष्फे विदारौ विज्ञेयो भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५८॥
लग्नेशे भ्रातृभावस्थे भ्रातृस्थानाधिपे सुते ।
लग्नभ्रातृसुते पापे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥५९॥
भ्रात्रीशे मृत्युभावस्थे पुत्रस्थे कारके तथा ।
राहुमन्दयुते दृष्टे भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥६०॥
नाशस्थानाधिपे पुत्रे भ्रातृनाथेन संयुते ।
रन्ध्रे आरार्किसंयुक्ते भ्रातृशापात् सुतक्षयः ॥६१॥

अब मैं भ्रातृशाप के कारण अपुत्रता योग को कहता हूँ, जिस योग को जानकर पुत्र-रक्षार्थ प्रयत्न किया जा सकता है। भ्रातृस्थानेश के साथ राहु-मंगल युत होकर पञ्चम में बैठे हों और पुत्रेश तथा लग्नेश अष्टम में हो तो भ्रातृशाप से पुत्रक्षय होता है। लग्न या पञ्चम में मंगल-शनि हो और तृतीयेश नवम में हो तथा भ्रातृकारक ग्रह अष्टम में हो तो भ्रातृशाप से सन्तानाभाव होता है। भ्रातृस्थान में नीच गुरु हो, शनि पञ्चम में बैठा हो और अष्टम में चन्द्रमा तथा मंगल बैठे हों तो भ्रातृशाप से सन्तान का अभाव समझना चाहिए। लग्नेश द्वादश में हो, मंगल पञ्चम में बैठा हो, सन्तानेश पाप ग्रहसहित अष्टम में हो तो भ्रातृशाप के कारण सन्तानहीनता जाननी चाहिए। पाप ग्रह के मध्य में लग्न हो तथा पञ्चम भाव के आगे-पीछे भी पाप ग्रह हों और लग्नेश-पुत्रेश के ६, ८, १२ में रहने से भी सन्तानहानि समझनी चाहिए। कर्मेश पाप ग्रह के साथ तृतीय में हो तथा शुभ ग्रह के भौम के साथ पञ्चम में रहने से भी

भ्रातृशाप से सन्तान का अभाव जानना चाहिए। पञ्चम भाव में मिथुन या कन्या राशि हो और उसमें शनि-राहु हों, बुध-मंगल व्यय भाव में हो तो भ्रातृशाप से सन्तानहीनता जाननी चाहिए। लग्नेश तृतीय में, तृतीयेश पञ्चम में और प्रथम, तृतीय, पञ्चम में पाप ग्रह के रहने से भी सन्तान का अभाव होता है। तृतीयेश अष्टम में, पुत्रकारक ग्रह पञ्चम में राहुशनि से युत हो या दृष्ट हो तो भ्रातृशाप से पुत्र का नाश होता है। अष्टमेश तृतीयेश के साथ होकर पञ्चम में हो और अष्टम में शनि-मंगल बैठे हों तो भ्रातृशाप से अनपत्यता होती है ॥५१-६१॥

भ्रातृशाप से मुक्ति का उपाय

भ्रातृशापविमोक्षार्थं वंशस्य श्रवणं हरेः।
चान्द्रायणं चरेत् पश्चात् कावेर्यां विष्णुसन्निधौ ॥६२॥
अश्वत्थस्थापनं कुर्याद् दशधेनूंश्च दापयेत्।
पत्नीहस्तेन पुत्रेच्छुर्भूमिं दद्यात् फलान्विताम् ॥६३॥
एवं यः कुरुते भक्त्या धर्मपत्न्या समन्वितः।
ध्रुवं तस्य भवेत् पुत्रः कुलवृद्धिश्च जायते ॥६४॥

भ्रातृशाप से मुक्त होने के लिए हरिवंश पुराण का श्रवण करना चाहिए। साथ ही चान्द्रायण व्रत करके कावेरी नदी या अन्य पुण्यसलिला के तीर में शालिग्राम के समक्ष पीपल का पेड़ लगाना और अपनी पत्नी के हाथ से दश गौदान के साथ-साथ फलयुक्त भूमि का दान करना चाहिए। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पत्नीयुक्त होकर स्वधर्म करने से अवश्य ही पुत्र की प्राप्ति होती है एवं और कुल की वृद्धि भी हो जाती है ॥६२-६४॥

मातुल के शाप से सन्तानहीन योग

पुत्रस्थाने बुधे जीवे कुज-राहु-समन्विते।
लग्ने मन्दे सुताभावो ज्ञेयो मातुलशापतः ॥६५॥
लग्ने पुत्रेश्वरौ पुत्रे बुध-भौमार्कि-संयुतौ।
ज्ञेयं मातुलशापत्वाज्जनस्य सन्ततिक्षयः ॥६६॥
लुप्ते पुत्राधिपे लग्ने सप्तमे भानुनन्दने।
लग्नेशे बुधसंयुक्ते तस्यापि सन्ततिक्षयः ॥६७॥
ज्ञातिस्थानाधिपे लग्ने व्ययेशेन समन्विते।
शशिसौम्यकुजे पुत्रे विज्ञेयः सन्ततिक्षयः ॥६८॥

पुत्रस्थान में बुध, गुरु, मंगल, राहु बैठे हों और लग्न में शनि स्थित हो तो मामा के शाप से सन्तान का नाश जानना चाहिए। लग्नेश-पुत्रेश पञ्चम में एवं बुध, मंगल शनि के साथ हो तो मामा के शाप से जातक को सन्तानहीन जानना चाहिए। पुत्रेश लुप्त (अस्त) होकर लग्न में हो और सप्तम में शनि हो एवं लग्नेश बुध से युत हो तो सन्तान का नाश होता है। चतुर्थेश व्ययेश के साथ होकर लग्न में हो और चन्द्रमा, बुध, मंगल पञ्चम में हों तो मातुल के शाप से सन्तान का अभाव जानना चाहिए ॥६५-६८॥

मातुलदोष-शान्त्युपाय

तद्दोषपरिहारार्थं विष्णुस्थापनमाचरेत् ।
वापी-कूप-तडागादि-खननं सेतुबन्धनम् ॥६९॥
पुत्रवृद्धिर्भवेत्तस्य संपद्वृद्धिः प्रजायते ।
इति योगवशादेवं शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ॥७०॥

यदि ग्रहयोगवश मातुल-दोष का योग बनता हो तो दोष के निवारणार्थ भगवान् विष्णु की मूर्ति स्थापित कर पूजा एवं वापी-कूप-तडागादि का निर्माण कराना चाहिए तथा बाँध बँधवाना चाहिए। ऐसा करने से पुत्र की प्राप्ति तथा सम्पत्ति की वृद्धि होती है ॥६९-७०॥

ब्रह्मशाप के कारण सन्तानहीन योग

बलगर्वेण यो मर्त्यो ब्राह्मणानवमन्यते ।
तद्दोषाद् ब्रह्मशापाच्च तस्य स्यात् सन्ततिक्षयः ॥७१॥
गुरुक्षेत्रे यदा राहुः पुत्रे जीवारभानुजाः ।
धर्मस्थानाधिपे नाशे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७२॥
धर्मेशे पुत्रभावस्थे पुत्रेशे नाशराशिगे ।
जीवारराहुभिर्युक्ते ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७३॥
धर्मभावाधिपे नीचे व्ययेशे पुत्रभावगे ।
राहुयुक्तेक्षिते वाऽपि ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७४॥
जीवे नीचगते राहौ लग्ने वा पुत्रराशिगे ।
पुत्रस्थानाधिपे दुःस्थे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७५॥
पुत्रभावाधिपे जीवे रन्ध्रे पापसमन्विते ।
पुत्रेशे सार्कचन्द्रे वा ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७६॥
मन्दांशे मन्दसंयुक्ते जीवे भौमसमन्विते ।
पुत्रेशे व्ययराशिस्थे ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७७॥
लग्ने गुरुयुते मन्दे भाग्ये राहुसमन्विते ।
व्यये वा गुरुसंयुक्ते ब्रह्मशापात् सुतक्षयः ॥७८॥

जो मनुष्य अपने बल, धन या अन्य वस्तु के अभिमान से ब्राह्मणों को अपमानित करता है, उसे ब्राह्मण के शाप से सन्तान का अभाव होता है। धन, मीन राशि में राहु हो, पञ्चम में गुरु, मंगल, शनि हो और धर्मेश अष्टम में हो तो ब्रह्मशाप से सन्तानहीनता होती है। धर्मेश पुत्रभाव में, पुत्रेश अष्टम में, गुरु-मंगल राहुयुक्त हो तो ब्रह्मशाप से सन्तान का अभाव होता है। धर्मेश नीच में, व्ययेश पञ्चम में राहुयुक्त हो या दृष्ट हो तो ब्रह्मशाप से सन्तान का नाश होता है। गुरु नीच में हो या दृष्ट हो तो ब्रह्मशाप से सन्ताननाश होता है। गुरु नीच में हो, राहु लग्न में या पञ्चम में हो और पञ्चमेश ६, ८, १२ भाव में बैठा हो तो ब्रह्मशाप से सन्तानहीनता जाननी चाहिए। पुत्रेश गुरु पाप ग्रह से युक्त हो अष्टम में बैठा

हो और पञ्चमेश रवि, चन्द्रमा के साथ अष्टम भाव में बैठा हो तो ब्रह्मशाप से सन्तान की हानि होती है। गुरु, मकर, कुम्भ के नवमांश में शनि-मंगल से युक्त हो और पुत्रेश व्ययभाव में बैठा हो तो ब्रह्मशाप से सन्तानहीनता जाननी चाहिए। यदि लग्न में गुरु-शनि हो, भाग्य में राहु हो या व्यय में राहु तथा गुरु हों तो ब्रह्मशाप से सन्तान-प्राप्ति में अवरोध जानना चाहिए ॥७१-७८॥

ब्रह्मशापमोचनोपाय

तस्य दोषस्य शान्त्यर्थं कुर्याच्चान्द्रायणं नरः।
ब्रह्मकृच्छ्रत्रयं कृत्वा धेनुं दद्यात् सदक्षिणाम् ॥७९॥
पञ्चरत्नानि देयानि सुवर्णसहितानि च।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद्यथाशक्ति द्विजोत्तम! ॥८०॥
एवं कृते तु सत्पुत्रं लभते नाऽत्र संशयः।
मुक्तशापो विशुद्धात्मा स नरः सुखमेधते ॥८१॥

उपर्युक्त ब्रह्मशाप से मुक्त होने के लिए एक चान्द्रायण व्रत तथा तीन ब्रह्मकृच्छ्र नामक व्रत करके दक्षिणासहित गौदान एवं सुवर्णयुक्त पञ्चरत्न का दान करके यथाशक्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणभोजन कराने से सत्पुत्र की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है। ऐसा करने से वह मनुष्य शुद्धात्मा होकर सुख का भोग करता है ॥७९-८१॥

भार्याशाप से सन्ताननाश का लक्षण

दारेशे पुत्रभावस्थे दारेशस्यांशपे शनौ।
पुत्रेशे नाशराशिस्थे पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८२॥
नाशसंस्थे कलत्रेशे पुत्रेशे नाशराशिगे।
कारके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८३॥
पुत्रस्थानगते शुक्रे कामपे रन्ध्रमाश्रिते।
कारके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८४॥
कुटुम्बे पापसंयुक्ते कामपे नाशराशिगे।
पुत्रे पापग्रहैर्युक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८५॥
भाग्यस्थानगते शुक्रे दारेशे नाश-राशिगे।
लग्ने सुते च पापाढ्ये पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८६॥
भाग्यस्थानाधिपे शुक्रे पुत्रेशे शत्रुराशिगे।
गुरुलग्नेशदारेशा दुःस्थाश्चेत् सन्ततिक्षयः ॥८७॥
पुत्रस्थाने भृगुक्षेत्रे राहुचन्द्रसमन्विते।
व्यये लग्ने धने पापे पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८८॥
सप्तमे मन्दशुक्रौ च रन्ध्रेशे पुत्रभे रवौ।
लग्ने राहुसमायुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥८९॥

धने कुजे व्यये जीवे पुत्रस्थे भृगुनन्दने ।
शनिराहुयुते दृष्टे पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥९०॥
नाशस्थौ वित्तदारेशौ पुत्रे लग्ने कुजे शनौ ।
कारके पापसंयुक्ते पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥९१॥
लग्नपञ्चमभाग्यस्था राहुमन्दकुजाः क्रमात् ।
रन्ध्रस्थौ पुत्रदारेशौ पत्नीशापात् सुतक्षयः ॥९२॥

दारेश पुत्रभाव में एवं सप्तमेश के नवमांश में शनि हो और पुत्रेश अष्टम भाव में हो तो पत्नी के शाप से सन्तानहीनता होती है। सप्तमेश अष्टम में, पुत्रेश नाशराशि में हो और पुत्रकारक ग्रह पाप से युक्त हो तो स्त्री के शाप से सन्तानहीन योग होता है। शुक्र पुत्रभाव में, सप्तमेश अष्टम में एवं पुत्रकारक ग्रह पाप ग्रह से युक्त हो तो भार्या के शाप से सन्तानहीनता जाननी चाहिए। सप्तमेश अष्टम में, द्वितीय में पाप ग्रह योग हो और पञ्चम भी पाप ग्रहनिष्ठ हो तो दारा के शाप से सन्तानराहित्य होता है। शुक्र भाग्यस्थान में हो, सप्तमेश अष्टम में, लग्न या पञ्चम में पाप ग्रह से युक्त हो तो स्त्री के शाप से जातक सन्तान से वञ्चित होता है। शुक्र भाग्येश हो, पुत्रेश शत्रु राशिगत हो और गुरु लग्नेश, सप्तमेश ६,८,१२ में बैठे हों तो पत्नी के शाप से सन्तानहीनता होती है। वृष, तुला राशि पञ्चम में हो और वहाँ राहु-चन्द्रमा बैठे हों और व्यय, लग्न, धनभाव में पाप ग्रह बैठे हों तो स्त्री के शाप से सन्तानहीनता जाननी चाहिए। शनि-शुक्र सप्तम में, अष्टमेश पुत्रभाव में एवं राहुयुक्त सूर्य लग्न में हों तो पत्नी के शाप से जातक अपुत्र होता है। द्वितीय में मंगल, व्यय में गुरु, शुक्र एवं पञ्चम में शनि-राहु युत हों या दृष्ट हों तो पत्नी के शाप से पुत्र का क्षय होता है। धनेश-सप्तमेश अष्टम में हो, पञ्चम, लग्न में मंगल-शनि हो और पुत्रकारक ग्रह पापयुक्त हो तो पत्नी के शाप से सन्तानहीनता होती है। प्रथम, पञ्चम, नवम में राहु, शनि, मंगल क्रम से हों एवं पुत्रेश-दारेश अष्टम में हो तो पत्नी के शाप से सन्तान का अभाव जानना चाहिए ॥८२-९२॥

शापनिवृत्ति हेतु उपाय

शापमुक्त्यै च कन्यायां सत्यां तद्दानमाचरेत् ।
कन्याभावे च श्रीविष्णोर्मूर्तिं लक्ष्मीसमन्विताम् ॥९३॥
दद्यात् स्वर्णमयीं विप्र! दशधेनुसमन्विताम् ।
शय्यां च भूषणं वस्त्रं दम्पतिभ्यां द्विजन्मनाम् ॥९४॥
ध्रुवं तस्य भवेत् पुत्रो भाग्यवृद्धिश्च जायते ॥९४½॥

हे विप्र! पत्नी के शाप से मुक्ति पाने के लिए यदि अपने गृह में कन्या हो तो कन्यादान करना चाहिए। यदि कन्या न हो तो सुवर्ण से निर्मित लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान् की प्रतिमा बनाकर दश सवत्सा गौ, शय्या, आभूषण तथा वस्त्र, दक्षिणा द्विज-दम्पति को दान करने से निश्चय ही उस मनुष्य को पुत्र की प्राप्ति होती है; साथ ही साथ भाग्य की वृद्धि भी हो जाती है ॥९३-९४॥

प्रेतरुष्टता के कारण सन्तानहीन योग

कर्मलोपे पितृणां च प्रेतत्वं तस्य जायते ॥९५॥
तस्य प्रेतस्य शापाच्च पुत्राभावः प्रजायते।
अतोऽत्र तादृशान् योगान् जन्मलग्नात् प्रवच्म्यहम् ॥९६॥
पुत्रस्थितौ मन्दसूर्यौ क्षीणचन्द्रश्च सप्तमे।
लग्ने व्यये राहुजीवौ प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥९७॥
पुत्रस्थानाधिपे मन्दे नाशस्थे लग्नगे कुजे।
कारके नाशभावे च प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥९८॥
लग्ने पापे व्यये भानौ सुते चारार्किसोमजाः।
पुत्रेशे रन्ध्रभावस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥९९॥
लग्ने स्वर्भानुना युक्ते पुत्रस्थे भानुनन्दने।
गुरौ च नाशराशिस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१००॥
लग्ने राहौ स-शुक्रेज्ये चन्द्रे मन्दयुते तथा।
लग्नेशे मृत्युराशिस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१०१॥
पुत्रस्थानाधिपे नीचे कारके नीचराशिगे।
नीचस्थग्रहदृष्टे च प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१०२॥
लग्ने मन्दे सुते राहौ रन्ध्रे भानुसमन्विते।
व्यये भौमेन संयुक्ते प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१०३॥
कामस्थानाधिपे दुःस्थे पुत्रे चन्द्रसमन्विते।
मन्दमान्दियुते लग्ने प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१०४॥
वधस्थानाधिपे पुत्रे शनिशुक्रसमन्विते।
कारके नाशराशिस्थे प्रेतशापात् सुतक्षयः ॥१०५॥

जो मनुष्य अपने मृत पितरों का तर्पण श्राद्धादि क्रिया नहीं करता है, वह मृत मनुष्य प्रेत बन जाता है और प्रेत की रुष्टता के कारण जातक को सन्तान का अवरोध हो जाता है; अत: अब मैं जन्मलग्न के द्वारा सन्तान के अवरोधकारक योगों को बताता हूँ। शनि-सूर्य पञ्चम में हो और सप्तम में क्षीण चन्द्रमा एवं प्रथम, द्वादश में राहु-गुरु हो तो प्रेतशाप से जातक सन्तानहीन होता है। पुत्रेश शनि अष्टम में, लग्न में मंगल और पुत्रप्रद ग्रह के अष्टम रहने से जातक प्रेतशाप से सन्तानरहित होता है। लग्न में पाप ग्रह, द्वादश में सूर्य, मंगल और शनि, बुध पञ्चम में हो तथा पुत्रेश के अष्टम में रहने से प्रेतशाप से सन्तति नहीं होती है। लग्न में राहु, पञ्चम में शनि एवं गुरु अष्टम में हो तो प्रेतशाप से सन्तान का नाश होता है। लग्न में राहु, शुक्र, गुरु, चन्द्र, शनि बैठे हों और लग्नेश अष्टम भाव में हो तो प्रेतशाप से सन्तानहीनता होती है। पुत्रेश नीच में हो, पुत्रकारक ग्रह भी स्वनीच में हो और नीचस्थ ग्रहों द्वारा देखा जाता हो तो प्रेतशाप से जातक सन्तानहीन हो जाता है। लग्न में

शनि, पञ्चम में राहु, अष्टम में सूर्य और व्यय में मंगल हो तो भी प्रेतशाप के कारण जातक सन्तानहीन होता है। सप्तमेश ६, ८, १२ में हो और पञ्चम में चन्द्रमा, लग्न में शनि, गुलिक हो तो प्रेत के शाप से सन्तानाभाव होता है। अष्टमेश पञ्चम में शनि-शुक्र से युत हो और पुत्रकारक ग्रह अष्टम भाव में विराजमान हों तो प्रेतशाप से सन्तानहीनता होती है ॥९१-१०५॥

प्रेतशान्ति का उपाय

अस्य दोषस्य शान्त्यर्थं गयाश्राद्धं समाचरेत्।
कुर्याद्रुद्राभिषेकञ्च ब्रह्ममूर्तिं प्रदापयेत् ॥१०६॥
धेनुं रजतपात्रं च तथा नीलमणिं द्विज!।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् तेभ्यश्च दक्षिणां दिशेत् ॥१०७॥
एवं कृते मनुष्यस्य शापमोक्षः प्रजायते।
पुत्रोत्पत्तिर्भवेत्तस्य कुलवृद्धिश्च जायते ॥१०८॥

प्रेतदोष की निवृत्ति हेतु गया में श्राद्ध करना चाहिए और रुद्राभिषेक तथा सुवर्ण-निर्मित ब्रह्मा की मूर्ति बनाकर गाय, चाँदी का पात्र एवं नीलमणि का दान करना चाहिए। पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देने से मनुष्य प्रेतशाप से मुक्त हो जाता है और सत्पुत्र को प्राप्त करता है तथा उसके कुल की वृद्धि होती है ॥१०६-१०८॥

सामान्यतया अनपत्य योग में शान्ति

तथा ज्ञशुक्रजे दोषे पुत्राप्तिः शम्भुपूजनात्।
जीवचन्द्रकृते विप्र! मन्त्रयन्त्रौषधादितः ॥१०९॥
राहुजे कन्यकादानात् सूर्यजे हरिकीर्तनात्।
गोदानात् केतुजे दोषे रुद्रजापात् कुजाऽऽर्किजे ॥११०॥
सर्वदोषविनाशाय शुभसन्तानलब्धये।
हरिवंशकथा भक्त्या श्रोतव्या विधिना द्विज! ॥१११॥

सामान्यतया ग्रहकृत दोष में यदि बुध-शुक्रकृत दोष हो तो शिवपूजन से; गुरु-चन्द्रमाकृत दोष में मन्त्र, यन्त्र, औषधि-सेवन से; राहुकृत दोष में कन्यादान से; सूर्यकृत दोष में हरिकीर्तन से; केतुकृत दोष में गोदान से एवं शनि-मंगलकृत दोष में रुद्राराधन से पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है। अथवा समस्त दोषों के निवारण हेतु भक्तिपूर्वक हरिवंश कथा का श्रवण करने से भी पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है ॥१०९-१११॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां पूर्वजन्मशापद्योतनाध्यायः ॥८५॥

अथ ग्रहशान्त्यध्यायः ॥८६॥

मैत्रेय उवाच

ग्रहाणां दोषशान्त्यर्थं तेषां पूजाविधिं वद ? ।
मानवानां हितार्थाय संक्षेपात् कृपया मुने ! ॥१॥

मैत्रेय ने कहा—हे मुने ! कृपया ग्रहजनित अनिष्टता की शान्ति तथा उसके पूजा की विधि मानव के हित के लिए संक्षेप में मुझे बताने की कृपा करें ॥१॥

पराशर उवाच

ग्रहाः सूर्यादयः पूर्वं मया प्रोक्ता द्विजोत्तम ! ।
जगत्यां सर्वजन्तूनां तदधीनं सुखाऽसुखम् ॥२॥
तस्मात् सुशान्तिकामो वा श्रीकामो वा सुचेतसा ।
वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तेषां यज्ञं समाचरेत् ॥३॥

पराशर बोले—हे द्विजोत्तम ! सूर्यादि ग्रहों के गुण-दोष-प्रकृति-स्वरूप आदि मैंने पूर्व में कहा है। इस जगत् में समस्त जीवों के सुख-दुःख, शुभ-अशुभ आदि फल ग्रह के अधीन हैं। इसीलिए जो जन्तु अपने को शान्ति, सम्पत्ति, वृष्टि, आयुर्दाय और पुष्टि की अभिलाषा रखता हो, उसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक ग्रहों का यज्ञ (अनुष्ठान, जप, पूजन, सम्बन्धित रत्नधारण) आदि करना चाहिए ॥२-३॥

ग्रहपूजन हेतु मूर्ति का निर्माण

ताम्राच्च स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ ।
रजतादयसः सीसात् कांस्यात् कार्याः क्रमाद् ग्रहाः ॥४॥
पूर्वोक्तैः स्वस्ववर्णैर्वा पटे लेख्या द्विजोत्तमैः ।
स्वस्वोक्तदिग्विभागेषु गन्धाद्यैर्मण्डलेषु वा ॥५॥

सूर्य की मूर्त्ति ताम्र से, चन्द्रमा की स्फटिक से, भौम की रक्त चन्दन से, उभौ (बुध-गुरु) की सुवर्ण से, शुक्र की प्रतिमा चाँदी से, शनि की लोहा से, राहु की सीसा से और केतु की प्रतिमा (मूर्ति) कांसे से बनानी चाहिए। अथवा चन्दन या स्याही से तत् तत् वर्णों के कपड़े में नवों ग्रहों की प्रतिमा बनाकर स्व-स्व दिशा में प्रस्थापित करना चाहिए ॥४-५॥

ध्यानार्थ ग्रहों का स्वरूप

रवि का स्वरूप

पद्मासनः पद्महस्तः पद्मपत्रसमद्युतिः ।
सप्ताश्वरथसंस्थश्च द्विभुजश्च दिवाकरः ॥६॥

कमल के आसन पर, हाथ में कमलपुष्प लिए हुए, कमलपुष्प के समान लाल वर्ण वाले, सात घोड़ों से युक्त रथ में बैठे हुए और दो भुजाओं से युक्त—ऐसा रवि का ध्यान करना चाहिए ॥६॥

चन्द्रमा का स्वरूप

श्वेतः श्वेताम्बरो देवो दशाश्वः श्वेतभूषणः ।
गदाहस्तौ द्विबाहुश्च विधातव्यो विधुर्द्विज ! ॥७॥

सफेद वर्ण वाले, सफेद वस्त्र धारणकर्त्ता, दश घोड़ों से युक्त रथ में विराजमान, श्वेत आभूषण से सुशोभित, हाथ में गदा लिए हुए, दो बाहु वाले—ऐसे चन्द्रमा का ध्यान करना चाहिए ॥७॥

भौम का स्वरूप

रक्तमाल्याम्बरधरो शक्ति-शूल-गदाधरः ।
वरदस्तु चतुर्बाहुर्मङ्गलो मेषवाहनः ॥८॥

रक्त माला धारण करने वाला, लाल वस्त्र पहनने वाला, चार भुजा वाला, हाथ में शक्ति, शूल, गदा और वर को धारण किये हुए मेष पर सवारी करने वाला—ऐसा मंगल का स्वरूप है, अतः मंगल का ऐसा ही ध्यान करना चाहिए ॥८॥

बुध का स्वरूप

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकार-समद्युतिः ।
खड्ग-चर्म-गदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥९॥

पीले रंग की माला धारण किये हुए, पीत वस्त्रधारी, सुवर्ण के समान द्युति वाले, हाथ में खड्ग, ढाल, गदा और वर धारण किये हुए, सिंह पर सवार—ऐसा बुध का स्वरूप होता है ॥९॥

गुरु-शुक्र का स्वरूप

गुरु-शुक्रौ क्रमात् पीत-श्वेतवर्णौ चतुर्भुजौ ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्र-कमण्डलू ॥१०॥

गुरु को पीत वर्ण एवं शुक्र को श्वेत वर्ण, दोनों चार भुजा वाले, क्रम से दण्ड, अक्षसूत्र और वर, कमण्डलु धारण किये हुए जानना चाहिए ॥१०॥

शनि का स्वरूप

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः ।
बाण-बाणासनधरो विज्ञेयोऽर्कसुतो द्विज ॥११॥

नीलमणि के तुल्य कान्ति वाले, चतुर्भुज, शूल, वर, बाण और धनुष धारण किये हुए एवं गृध्र वाहन वाला शनि का स्वरूप जानना चाहिए ॥११॥

राहु का स्वरूप

करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः ।
सिंहस्थो नीलवर्णश्च राहुरेवं प्रकल्प्यते ॥१२॥

भयंकर मुख वाला, चतुर्भुजा वाला, खड्ग, ढाल, शूल, वर धारण करने वाला, नील वर्णयुक्त और सिंह वाहन वाला राहु का स्वरूप जानना चाहिए ॥१२॥

केतु का स्वरूप

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः ।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥१३॥

धूम्र वर्ण वाला, दो भुजा से युक्त, गदा और वर धारण किये हुए, विकारयुक्त मुख वाला एवं गृध्र वाहनयुक्त केतु का स्वरूप होता है ॥१३॥

सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितप्रदाः ।
स्वाङ्गुलेनोच्छ्रिता विज्ञैः शतमष्टोत्तरं सदा ॥१४॥

सभी ग्रहों की मूर्त्ति मस्तक में आभूषणयुक्त, सुन्दर, संसार में हितकारक और अपने अंगुल से १०८ अंगुल की ऊँचाई से युक्त बनानी चाहिए ॥१४॥

ग्रहपूजनविधि

यथावर्णं प्रदेयानि पुष्पाणि वसनानि च ।
गन्धो दीपो बलिश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः ॥१५॥
यस्य ग्रहस्य यद् द्रव्यमन्नं यस्य च यत् प्रियम् ।
तच्च तस्मै प्रदातव्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥१६॥

जिस ग्रह का जो वर्ण कहा गया है उस वर्ण के पुष्प, वस्त्र, चन्दन, गुग्गुलादि धूप, नैवेद्य एवं जिस ग्रह का जो द्रव्य कहा गया है, वह द्रव्य तथा जिस ग्रह को जो अन्न प्रिय हो वह अन्न श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अर्पण करके सुयोग्य ब्राह्मण को देना चाहिए ॥१५-१६॥

ग्रह-मन्त्र तथा जपसंख्या

'आकृष्णेन' इमं देवा, 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्' ।
'उद्बुध्यस्वे'ति मन्त्राश्च जपेदथ 'बृहस्पते' ॥१७॥
'अन्नात् परिश्रुतश्चे'ति 'शन्नो देवीरभीष्टये' ।
'कया नश्चित्र' इत्येवं 'केतुं कृण्वन्निमांस्तथा' ॥१८॥
सप्त रुद्रा दिशो नन्दा नवचन्द्रा नृपास्तथा ।
त्रिपक्षा अष्टचन्द्राश्च सप्तचन्द्रास्तथैव च ॥१९॥
इमाः संख्याः सहस्रघ्ना जपसंख्याः प्रकीर्तिताः ।
क्रमादर्कादिखेटानां प्रीत्यर्थं द्विजपुङ्गव ! ॥२०॥

ग्रह पूजन के पश्चात् 'आकृष्णेन' इत्यादि वैदिक मन्त्र से ७ हजार सूर्य का जप करना चाहिए। 'इमं देवा' इत्यादि वैदिक मन्त्र से ११ हजार चन्द्रमा का; 'अग्निर्मूर्धा दिव' इत्यादि मन्त्र से १० हजार मंगल का; 'उद्बुध्यस्व' इत्यादि वैदिक मन्त्र द्वारा ९ हजार बुध का; 'बृहस्पते अति' इत्यादि मन्त्र से १९ हजार गुरु का; 'अन्नात् परिश्रुतो' इत्यादि मन्त्र से १६ हजार शुक्र का 'शन्नो देवीरभीष्ट' इत्यादि मन्त्र से २३ हजार शनि का; 'कया नश्चित्र' इत्यादि मन्त्र से १८ हजार राहु का और 'केतुं कृण्वन्ति' इत्यादि वैदिक मन्त्र द्वारा १७ हजार केतु का जप करना चाहिए ॥१७-२०॥

ग्रहशान्त्यर्थ ग्रहसमिधा तथा हवनसंख्या

अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गस्तु पिप्पलः।
उदुम्बरः शमी दुर्वा कुशाश्च सन्निधः क्रमात् ॥२१॥
होतव्या मधु-सर्पिभ्यां दध्ना क्षीरेण वा युताः।
एकैकस्य त्वष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा ॥२२॥

सूर्यादि ग्रहों के हवनार्थ समिधा क्रम से आक, पलास, खैर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब तथा कुश हैं। मधु, घी, दही, दूध, चरु में युत करके प्रत्येक ग्रह के लिए १०८ अथवा २८ की संख्या में ग्रहशान्त्यर्थ हवन करना चाहिए ॥२१-२२॥

ग्रहशान्त्यर्थ ब्राह्मणभोजनान्न

गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरषाष्टिकम्।
दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च ॥२३॥
दद्यात् ग्रहक्रमादेवं विप्रेभ्यो भोजनं द्विज!।
शक्तितो वा यथालाभं देयं सत्कारपूर्वकम् ॥२४॥

सूर्यादि ग्रहों के प्रीत्यर्थ ब्राह्मणभोजन यथा—सूर्य हेतु गुड़युक्त भात, चन्द्रमा हेतु दुध से निर्मित भात (पायस), मंगल के प्रसन्नार्थ हविष्यान्न, बुध हेतु दूध से बने साठी चावल का भात, गुरु के लिए दही-भात, शुक्र के लिए हविष्यान्न, शनि के लिए चूर्णान्न, राहु के लिए माँस-भात और केतु के प्रसन्नार्थ खिचड़ी का ब्राह्मणों को आदरपूर्वक भोजन कराना चाहिए ॥२३-२४॥

ग्रहशान्त्यर्थ ब्राह्मणदक्षिणा

धेनुः शङ्खस्तथाऽनड्वान् हेम वासो हयः क्रमात्।
कृष्णा गौरायसं छाग एता रव्यादिदक्षिणाः ॥२५॥

रवि आदि ग्रहों के प्रसन्नार्थ क्रम से सवत्सा गौ, शंख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, घोड़ा, काली गाय, लोहे के निर्मित अस्त्र और बकरे का दान करना चाहिए ॥२५॥

यस्य यश्च यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत्।
एषां धात्रा वरो दत्तः 'पूजिताः पूजयिष्यथ' ॥२६॥

मानवानां ग्रहाधीना उच्छ्रायाः पतनानि च।
भावाऽभावौ च जगतां तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः ॥२७॥

जिस मनुष्य के लिए जिस समय जो ग्रह अशुभकारक हो उस मनुष्य को उस समय उस ग्रह का विधिपूर्वक जप-पूजनादि करना चाहिए, क्योंकि ब्रह्मा जी ने ग्रहों को वर दिया है कि जो मनुष्य तुम्हारी पूजा अर्चना करता है उसका तुम कल्याण करो और मानवों की उन्नति, अवनति तथा उत्पत्ति और नाश भी ग्रहों के ही अधीन है; अतः ग्रह पूज्यों के भी पूज्य होते हैं ॥२६-२७॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ग्रहशान्त्यध्यायः ॥८६॥

अथाऽशुभजन्मकथनाध्यायः ॥८७॥

पराशर उवाच

अथाऽन्यत् सम्प्रवक्ष्यामि सुलग्ने सुग्रहेष्वपि।
यदन्यकारणेनापि भवेज्जन्माऽशुभप्रदम् ॥१॥
दर्शे कृष्णचतुर्दश्यां विष्ट्यां सोदरभे तथा।
पितृभे सूर्यसंक्रान्तौ पातेऽर्केन्दुग्रहे तथा ॥२॥
व्यतीपातादिदुर्योगे गण्डान्ते त्रिविधेऽपि वा।
यमघण्टेऽवभे दग्धयोगे त्रीतरजन्म च ॥३॥
प्रसवस्य विकारेऽपि ज्ञेयं जन्माऽशुभप्रदम्।
शान्त्या भवति कल्याणं तदुपायं च वच्म्यहम् ॥४॥

पराशर बोले—हे मैत्रेय ! शुभ लग्न एवं सुन्दर ग्रहों का योग होने पर भी अन्य कारणों से मनुष्य का जन्म अशुभप्रद होता है, उसे अब मैं कहता हूँ। जिसका जन्म अमावस्या, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी एवं भद्रा करण में, अपने सहोदर भाइयों के नक्षत्र में, माता या पिता के नक्षत्र में, सूर्य की संक्रान्ति में, पात योग में, सूर्य तथा चन्द्रग्रहण में, व्यतिपातादि अनिष्टकारक योग में, त्रिविध गण्डान्त (तिग-नग-लग) में, यमघण्ड योग में, दग्ध योग में, त्रीतर-(तीन कन्या के बाद पुत्र या तीन पुत्र के बाद कन्या का जन्म)-जन्य योग में, प्रसवविकार (सम्बन्धित योनि से असम्बन्धित का जन्म या हीन अथवा अधिक अङ्ग वाला जन्तु) में जन्म अशुभप्रद होता है, लेकिन शान्ति करने पर सभी शुभकारक होते हैं ! इसलिए उन अशुभों के शान्ति के उपायों को मैं विधिपूर्वक कहता हूँ ॥१-४॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामशुभजन्मकथनाध्यायः ॥८७॥

अथ दर्शजन्मशान्त्यध्याय: ॥८८॥

पराशर उवाच

मैत्रेय ! दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।
तद्दोषपरिहाराय शान्तिं कुर्याद् विचक्षण: ॥१॥
कलशस्थापनं कृत्वा प्रथमं विधिपूर्वकम् ।
उदुम्बर-वटा-ऽश्वत्थ-चूतानां पल्लवाँस्तथा ॥२॥
स-निम्बानां च मूलानि त्वचस्तत्र विनिक्षिपेत् ।
पञ्चरत्नानि निक्षिप्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥३॥

पराशर ने कहा कि हे मैत्रेय ! दर्श (अमावास्या) में उत्पन्न जातक अपने माता-पिता को दरिद्र (अनिष्ट) बनाता है। इसलिए दर्शदोष के शमनार्थ उसकी शान्ति करनी चाहिए। शान्त्यर्थ प्रथमत: तो विधिपूर्वक कलश-स्थापन कर उसमें गूलर, बट, पीपल, आम तथा नीम के पल्लव, जड़, त्वचा (छाल) एवं पञ्चरत्न रख कर उसे दो वस्त्रों से वेष्टित करना चाहिए ॥१-३॥

पूजाप्रकार

'सर्वे समुद्र' इति चाऽऽपोहिष्ठादित्र्यृचेन च ।
आमन्त्र्य कलशे तच्च स्थापयेद् वह्निकोणके ॥४॥
दर्शस्य देवयोश्चाऽथ चन्द्र-भास्करयो: क्रमात् ।
प्रतिमां स्वर्णजां नित्यं राजतीं ताम्रजां तथा ॥५॥
'आप्यायस्वे'ति मन्त्रेण 'सविता' पश्चात्तमेव च ।
उपचारै: समाराध्य ततो होमं समाचरेत् ॥६॥
समिधश्च चरुं विद्वान् क्रमेण जुहुयाद् व्रती ।
भक्त्या 'सवितृ' मन्त्रेण 'सोमो धेनुश्च' मन्त्रत: ॥७॥
अष्टोत्तरशतं वाऽपि अष्टाविंशतिरेव वा ।
अभिषेकं तथा कुर्यात् दम्पत्योश्च सपुत्रयो: ॥८॥
हिरण्यं रजतं चैव कृष्णधेनुश्च दक्षिणा ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् शक्त्या तत: क्षेममवाप्नुयात् ॥९॥

वस्त्र से कलश को वेष्टित करने के अनन्तर 'सर्वे समुद्रा' इत्यादि तथा 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से विधिपूर्वक कलश को अभिमन्त्रित करके उस कलश को आग्नेय कोण में स्थापित करने के पश्चात् अमावास्या के देवता सूर्य तथा चन्द्रमा की सुवर्णमयी या रजतमयी या ताम्रमयी प्रतिमा बनाकर क्रम से 'आप्यायस्व' तथा 'सविता' इत्यादि मन्त्र से षोडशोपचार

या पञ्चोपचार से विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए। सूर्यनिर्दिष्ट और चरु से सवितृ मन्त्र से १०८ या २८ की संख्या में सूर्य के लिए अग्नि से आहुति देनी चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा के लिए निर्दिष्ट समिधा और चरु से 'सोमो धेनु' इत्यादि मन्त्र से १०८ या २८ आहुति चन्द्रमा के लिए अग्नि में देनी चाहिए। इसके अनन्तर दम्पति (माता-पिता) को सन्तानसहित कलश के जल से अभिषेक करके सुवर्ण, चाँदी तथा कृष्णा गाय की दक्षिणा देनी चाहिए। पुनः अपनी शक्ति के अनुरूप ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार शान्ति करने से अनिष्ट का नाश होकर कल्याण प्राप्त होता है ॥४-९॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां दर्शजन्मशान्त्यध्यायः ॥८८॥

अथ कृष्णचतुर्दशीजन्मशान्त्यध्यायः ॥८९॥

पराशर उवाच

कृष्णपक्षचतुर्दश्याः षड्भागेषु फलं क्रमात्।
जन्म चेत् प्रथमे भागे तदा ज्ञेयं शुभं द्विज! ॥१॥
द्वितीये पितरं हन्ति मातरं च तृतीयके।
चतुर्थे मातुलं चैव पञ्चमे वंशनाशनम् ॥२॥
षष्ठे तु धननाशः स्यादात्मनो नाश एव वा।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं कुर्यात् प्रयत्नतः ॥३॥

पराशर बोले—हे द्विज ! यदि किसी का जन्म कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को हुआ हो तो चतुर्दशी के मान का छः विभाग करने के उपरान्त यदि प्रथम भाग में जन्म हो तो शुभ, द्वितीय भाग में स्व-पिता का नाश, तृतीय में माता का अनिष्ट, चतुर्थ में मामा का अनिष्ट, पञ्चम में स्व-कुल का नाश और षष्ठ भाग में जन्म होने से धन का नाश अथवा स्वयं का नाश होता है। अतः दोष के शमनार्थ शीघ्र शान्ति करनी चाहिए ॥१-३॥

पूज्य देवता का स्वरूप

शिवस्य प्रतिमां कुर्यात् सौवर्णीं कर्षसम्मिताम्।
तदर्धार्धमितां वाऽपि यथावित्तं मनोहराम् ॥४॥
बालचन्द्रकिरीटाञ्च श्वेतमाल्याम्बरान्विताम्।
त्रिनेत्रां च वृषासीनां वराभयकरामथ ॥५॥

स्व-द्रव्यानुसार एक कर्ष या कर्षार्ध तुल्य सुवर्णमयी भगवान् शंकर की इस प्रकार की सुन्दर मूर्त्ति बनाये, जो जिनके मस्तक पर बाल चन्द्र, सफेद माला और श्वेत वस्त्र धारित हो। जिनके तीन नेत्र हों, बैल पर चढ़े हुए हों, दो भुजा वाले हों एवं वर और अभय धारण किये हुए हों ॥४-५॥

पूजा का प्रकार

'त्र्यम्बकं' चेति मन्त्रेण पूजां कुर्यादतन्द्रितः।
आवाह्य वारुणैर्मन्त्रैराचार्यो मन्त्रतत्त्ववित् ॥६॥
'इमं मे वरुणे'त्येवं 'तत्त्वा यामी'त्यृचा पुनः।
'त्वन्नो अग्ने' इत्यनया 'स त्वं नो' इत्यृचापि च ॥७॥
आग्नेयं कुम्भमारभ्य पूजयेत् भक्तितः क्रमात्।
'आ नो भद्रेति' सूक्तं च 'भद्रा अग्नेश्च' सूक्तकम् ॥८॥

जप्त्वा पुरुषसूक्तं च 'कद्रुद्रे'ति तथा जपेत्।
शङ्करस्याऽभिषेकं च ग्रहपूजां च कारयेत्॥९॥
समिदाज्यचरुंश्चैव तिलमाषांश्च सर्षपान्।
अश्वत्थ-प्लक्ष-पालास-खादिराः समिधः शुभाः॥१०॥
अष्टोत्तरशतं वह्नौ जुहुयाद् विधिपूर्वकम्।
अष्टाविंशतिसंख्या वा होमं कुर्यात् पृथक्-पृथक्॥११॥
मन्त्रेण 'त्र्यम्बकेना'ऽथ तिलान् व्याहृतिभिस्तथा।
ग्रहहोमं च विधिवत् कुर्यात् क्षेमं ततो भवेत्॥१२॥
अभिषेकं च जातस्य तत्पित्रोश्चापि मन्त्रवित्।
कुर्यात् ततो यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् सुधीः॥१३॥

मन्त्रार्थवित् आचार्य के द्वारा वारुण मन्त्र से आवाहन कर त्र्यम्बक मन्त्र से विधिपूर्वक श्रद्धायुक्त होकर पूजन करना चाहिए। 'इमं मे वरुण' 'तत्त्वा यामि' इत्यादि ऋचा से तथा 'त्वं नो अग्ने' एवं 'सत्वं नो' इत्यादि मन्त्र से आग्नेय कोणस्थित कुम्भ से प्रारम्भ कर भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए। 'आ नो भद्रा' तथा 'अग्नेश्च' इत्यादि सूक्त का जप करने के अनन्तर पुरुषसूक्त तथा 'कद्रु द्रे'त्यादि मन्त्र का पाठ करना चाहिए। भगवान् शङ्कर का अभिषेक एवं नवग्रहों का पूजन करके समिधा, घी, चरु, तिल, माष, सरसों तथा पीपल, पाकड़, पलास और खैर की समिधा से १०८ अथवा २८ की संख्या में प्रत्येक ग्रहों के लिए अलग-अलग अग्नि में आहुति देनी चाहिए। पुनः विधिपूर्वक 'त्रयम्बकं' इत्यादि मन्त्र से तिलों का हवन कर व्याहृति से ग्रहों का हवन करने पर अवश्य ही उस जातक का क्षेम (कल्याण) होता है। इसके अनन्तर कलश के जल से जातकसहित माता-पिता का अभिषेक करके शक्त्यनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए॥६-१३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां कृष्णचतुर्दशीजन्मशान्त्यध्यायः॥८९॥

अथ भद्रावमदुर्योगशान्त्यध्यायः ॥९०॥

पराशर उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि भद्रायामवमे तथा।
व्यतीपातादिदुर्योगे यमघण्टादिके च यत्॥१॥
जन्माशुभफलं प्रोक्तं तस्य शान्तिविधिं द्विज!।
प्राप्ते प्रसूतिदुर्योगे शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः॥२॥

पराशर बोले—हे द्विज! अब मैं भद्राकरण, तिथिक्षय, व्यतीपात आदि दुष्ट योग एवं यमघण्ट आदि कुयोग में जन्म होने से जो अशुभ फल कहा गया है, उस दुर्योग की शान्ति-विधि को कहता हूँ। प्रसव काल में जो दुर्योग हो, वह दुर्योग जन्म के अनन्तर जिस दिन पड़े, उसी दिन उसकी शान्ति करनी चाहिए॥१-३॥

शान्ति-विधि

दैवज्ञैर्दर्शिते वाऽपि सुलग्ने सुदिने गृही।
पूजनं देवतानां च ग्रहाणां यजनं तथा॥३॥
शङ्करस्याऽभिषेकं च घृतदीपं शिवालये।
आयुर्वृद्धिकरं कुर्यादश्वत्थस्य प्रदक्षिणाम्॥४॥
हवनं विष्णुमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं सुधीः।
ब्राह्मणान् भोजयेत् शक्त्या ततः कल्याणमाप्नुयात्॥५॥

कुयोगोत्पन्न जातक तथा उसके माता-पिता को चाहिए कि सुयोग्य दैवज्ञ द्वारा निर्दिष्ट सुदिन और शुभ लग्न में देवताओं की पूजा, ग्रहजप, पूजनादि कर भगवान् शंकर का अभिषेक, शिवालय में घृत दीप का दान तथा आयुर्दाय की वृद्धि करने वाले पीपल का पूजन-परिक्रमा आदि करके भगवान् विष्णु के मन्त्र द्वारा १०८ की संख्या में हवन करके यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। ऐसा करने से उक्त दोष का नाश होकर जातक कल्याण को प्राप्त करता है॥३-५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां भद्रावमदुर्योगशान्त्यध्यायः॥९०॥

अथैकनक्षत्रजननशान्त्यध्यायः ॥९१॥

पराशर उवाच

अथ यद्येकनक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः ।
प्रसूतिश्च तयोर्मृत्युरथवैकस्य निश्चयः ॥१॥
तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि गर्गादिमुनिभाषितम् ।
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ॥२॥
रिक्ताविष्टिविवर्ज्ये च समये शान्तिमाचरेत् ।
अग्नेरीशानदिग्भागे नक्षत्रप्रतिमां शुभाम् ॥३॥
तन्नक्षत्रोक्तमन्त्रेण पूजयेत् कलशोपरि ।
रक्तवस्त्रेण सञ्छाद्य वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥४॥
स्व-स्वशाखोक्तमार्गेण कुर्यादग्निमुखं तथा ।
पुनस्तेनैव मन्त्रेण हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥५॥
प्रत्येकं समिदन्नाज्यैः प्रायश्चित्तान्तमेव हि ।
अभिषेकं ततः कुर्यादाचार्यश्च द्वयोरपि ॥६॥
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादाचार्याय विशेषतः ।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥७॥

पराशर बोले कि हे मैत्रेय ! अपने सोदर भाइयों के नक्षत्र में या माता-पिता के जन्म-नक्षत्र में यदि किसी का जन्म हो तो उन दोनों या उनमें से एक का निश्चय ही मृत्यु अथवा मृत्यु के सदृश कष्ट होता है। इसलिए गर्गादि मुनियों ने जो उसकी शान्ति कही है, उसे मैं कहता हूँ। सुदिन में, शुभ नक्षत्र में चन्द्रमा तथा तारा अनुकूल के समय में, रिक्ता (४, ९, १४) तिथि, भद्रा समय को छोड़कर अन्य समय में शान्ति करनी चाहिए। अग्नि से ईशान कोण में जन्मनक्षत्र की सुन्दर मूर्त्ति बनाकर स्थापित कलश के ऊपर रख कर रक्त वस्त्र से ढक कर दो वस्त्र से वेष्टित कर उस नक्षत्र के मन्त्र से विधिपूर्वक पूजन कर स्व-स्व शाखानुसार अग्निमुख करके, पुनः उसी मन्त्र से घृत समिधा में १०८ की संख्या में हवन करने के उपरान्त आचार्य द्वारा कलशस्थ जल से उन (पिता-पुत्र, भाई-बहन) का अभिषेक करने के उपरान्त यजमान द्वारा ऋत्विजों को एवं विशेषकर आचार्य को स्व-वित्तानुसार दक्षिणा देकर ब्राह्मणों को भोजन कराने से पूर्ण कल्याणकारक होता है ॥१-७॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामेकनक्षत्रजननशान्त्यध्यायः ॥९१॥

अथ संक्रान्तिजन्मशान्त्यध्यायः ॥९२॥

पराशर उवाच

घोरा-ध्वांक्षी-महोदर्यो मन्दा मन्दाकिनी तथा।
मिश्रा च राक्षसी सूर्यसंक्रान्तिः सूर्यवासरात्॥१॥
संक्रान्तौ च नरो जातो भवेद् दारिद्र्यदुःखभाक् ।
शान्त्या सुखमवाप्नोति ततः शान्तिविधिं ब्रुवे॥२॥

पराशर बोले कि सूर्यादि वारों में संक्रान्ति हो तो क्रम से घोरा, ध्वांक्षी, महोदरी, मन्दा, मन्दाकिनी, मिश्रा एवं राक्षसी नामक संक्रान्ति होती है। संक्रान्ति में जन्म लेने वाला जातक दरिद्र तथा दु:खी होता है, परन्तु उसकी शान्ति करने से वह सुखी हो जाता है; अत: शान्तिविधि को मैं कहता हूँ॥१-२॥

शान्तिविधि

नवग्रहमखं कुर्यात् तस्य दोषोपशान्तये।
गृहस्य पूर्वदिग्भागे गोमयेनोपलिप्य च॥३॥
स्वलंकृतप्रदेशे तु व्रीहिराशिं प्रकल्पयेत्।
पञ्चद्रोणमितं धान्यैस्तदर्धं तण्डुलैस्तथा॥४॥
तदर्धं च तिलैः कुर्याद्राशिं च द्विजसत्तम!।
पृथक् त्रितयराशौ तु लिखेदष्टदलं बुधः॥५॥
पुण्याहं वाचयित्वा तु आचार्यं वृणुयात् पुरा।
धर्मज्ञं मन्त्रतत्त्वज्ञं शान्तिकर्मणि कोविदम्॥६॥

पूर्वोक्त संक्रान्तिजनित दोष के शमनार्थ नवग्रह याग करना चाहिए। उसके लिए स्वगृह के पूर्व भाग में गोबर से लेपन कर नाना प्रकार के उपकरण से अलंकृत स्थान में ५ द्रोणतुल्य साठी धान्य, तदर्ध (अढ़ाई) द्रोण चावल तथा उसके आधा (सवा अढ़ैया) तिल की पृथक्-पृथक् राशियाँ (ढेरियाँ) बनाकर तीनों ढेरियों में अष्टदल बनाकर फिर पुण्याहवाचन श्रवण कर धर्मज्ञ तथा मन्त्रतत्त्वार्थज्ञाता पौष्टिक (शान्ति) कार्य सम्पादन में दक्ष आचार्य का वरण करना चाहिए॥३-६॥

राशिषु स्थापयेत् कुम्भानव्रणान् सुमनोहरान्।
तीर्थोदकेन सम्पूर्य समृदौषधपल्लवम्॥७॥
पञ्चगव्यं क्षिपेत्तत्र वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्।
कुम्भोपरि न्यसेत् पात्रं सूक्ष्मवस्त्रेण वेष्टितम्॥८॥

प्रतिमां स्थापयेत् तत्र साधि-प्रत्यधि-दैवताम् ।
अधिदेवं भवेत् सूर्यश्चन्द्रः प्रत्यधिदैवतम् ॥९॥
चन्द्रादित्याकृती पार्श्वे मध्ये संक्रान्तिमर्चयेत् ।
प्रतिमां पूजने पूर्वं वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् ॥१०॥
ततो व्याहृतिपूर्वेण तत्तन्मन्त्रेण पूजयेत् ।
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां व्रजेत् ॥११॥
'उत्सूर्य' इति मन्त्रेण सूर्यपूजां समाचरेत् ।
'आप्यायस्वे'ति मन्त्रेण चन्द्रपूजां समाचरेत् ॥१२॥
उपचारैः षोडशभिर्यद्वा पञ्चोपचारकैः ।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण प्रधानप्रतिमां स्पृशन् ॥१३॥
अष्टोत्तरसहस्रं वाऽप्यष्टोत्तरशतं जपेत् ।
अथाऽष्टाविंशतिं वाऽपि जपेन्मन्त्रं स्वशक्तितः ॥१४॥

पूर्वरचित तीनों ढेरियों के ऊपर अखण्डित छिद्रहीन सुन्दर कलशों को रखकर तीर्थ-जल से उन्हें भरकर उनमें सप्तमृत्तिका, शतौषधी, पञ्चपल्लव, पञ्चगव्य रखकर उन्हें दो वस्त्रों से वेष्टित कर उन कलशों के ऊपर सूक्ष्म वस्त्र से लपेट कर छोटा पात्र (सरइ आदि) रख दे। पुनः उन पर अधिदेव, प्रत्यधिदेवसहित प्रधान देव (संक्रान्तिस्वरूप प्रतिमा) रखे। इस कार्य में सूर्य अधिदेव और चन्द्रमा प्रत्यधिदेव होते हैं। अतः दोनों पार्श्व में सूर्य तथा चन्द्रमा का एवं मध्य में प्रधान (संक्रान्ति) का पूजन करे। प्रतिमापूजन से पूर्व स्व-शक्त्यनुसार प्रत्येक प्रतिमा पर दो-दो वस्त्र अर्पण करे। इसके अनन्तर व्याहृतिपूर्वक स्व-स्व मन्त्रों द्वारा प्रत्येक देव का पूजन करे। जैसे–'त्रयम्बकं' इत्यादि मन्त्र से प्रधान (संक्रान्ति) प्रतिमा की एवं 'उत्सूर्य' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की और 'आप्यायस्व' इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा की षोडशोपचार या पञ्चोपचार से भक्तिपूर्वक पूजन करके फिर प्रधान प्रतिमा को छूकर मृत्युञ्जय मन्त्र का १००८ या १०८ अथवा २८ वार स्वशक्ति के अनुसार जप करना चाहिए ॥७-१४॥

कुम्भेभ्यः पश्चिमे देशे स्थण्डिलेऽग्निं प्रकल्पयेत् ।
स्वगृह्योक्तविधानेन कारयेत् संस्कृतानलम् ॥१५॥
त्रैयम्बकेन मन्त्रेण समिदाज्यचरून् हुनेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रं वा अष्टोत्तरशतं यथा ॥१६॥
अष्टाविंशतिमेवाऽपि कुर्याद् होमं स्वशक्तितः ।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण तिलहोमञ्च कारयेत् ॥१७॥
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा–अभिषेकं च कारयेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादेवं शान्तिमवाप्नुयात् ॥१८॥

स्थापित कुम्भों के पश्चिम स्थण्डिल पर विधिपूर्वक अग्निस्थापन कर अपनी शाखा के अनुसार अग्निसंस्कार कर 'त्रयम्बकम्' इत्यादि मन्त्र से समिधा और चरु द्वारा १००८ या १०८ अथवा २८ की संख्या में अपनी शक्ति के अनुसार आहुति देनी चाहिए। फिर महामृत्युञ्जय मन्त्र से तिल का हवन कर, पुन: स्विष्टकृत् हवन करके स्थापित कलशों के जल से जातक और उनके माता-पिता का अभिषेक कर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराने से अनिष्ट का नाश होकर शान्ति और कल्याण होता है ॥१५-१८॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां संक्रान्तिजन्मशान्त्यध्याय: ॥९२॥

अथ ग्रहणजननशान्त्यध्यायः ॥९३॥

पराशर उवाच

सूर्येन्दुग्रहणे काले येषां जन्म भवेद् द्विज!।
व्याधिः कष्टं च दारिद्र्यं तेषां मृत्युभयं भवेत्॥१॥
अतः शान्तिं प्रवक्ष्यामि जनानां हितकाङ्क्षया।
सूर्यस्येन्दोश्च ग्रहणं यस्मिनृक्षे प्रजायते॥२॥
तन्नक्षत्रपते रूपं सुवर्णेन प्रकल्पयेत्।
सूर्यग्रहे सूर्यरूपं सुवर्णेन स्वशक्तितः॥३॥
चन्द्रग्रहे चन्द्ररूपं रजतेन तथैव च।
राहुरूपं प्रकुर्वीत सीसकेन विचक्षणः॥४॥

पराशर बोले—हे द्विज ! जिस जातक का जन्म सूर्य या चन्द्रमा के ग्रहणसमय में हो, उसे व्याधि, कष्ट, दरिद्रता, मृत्यु या मरणसदृश कष्ट और भय होता है। इसलिए ग्रहणजनन शान्ति को जनहितार्थ को मैं कहता हूँ। सूर्य या चन्द्रग्रहण जिस नक्षत्र में हुआ हो, उस नक्षत्राधिप ('नासत्यान्तक वह्नि' इत्यादि मुहूर्त्तचिन्तामणि के अनुसार) की प्रतिमा का सुवर्ण से निर्माण करे तथा सूर्यग्रहण में सुवर्णघटित सूर्य की प्रतिमा एवं चन्द्रग्रहण में चाँदी से निर्मित चन्द्रमा की प्रतिमा और शीशे से राहु की प्रतिमा बनानी चाहिए॥१-४॥

शुचौ देशे समं स्थानं गोमयेन प्रलेपयेत्।
तत्र च स्थापयेद् वस्त्रं नूतनं सुमनोहरम्॥५॥
त्रयाणामेव रूपाणां स्थापनं तत्र कारयेत्।
सूर्यग्रहे प्रदातव्यं सूर्यप्रीतिकरं च यत्॥६॥
रक्ताक्षतं रक्तगन्धं रक्तमाल्याम्बरादिकम्।
चन्द्रग्रहे प्रदातव्यं चन्द्रप्रीतिकरं च यत्॥७॥
श्वेतगन्धं श्वेतपुष्पं श्वेतमाल्याम्बरादिकम्।
राहवे च प्रदातव्यं कृष्णपुष्पाम्बरादिकम्॥८॥
दद्यान्नक्षत्रनाथाय श्वेतगन्धादिकं तथा।
सूर्यं सम्पूजयेद्धीमानाकृष्णेति च मन्त्रतः॥९॥
तथा चन्द्रं 'इमं देवा' इति मन्त्रेण भक्तितः।
दूर्वाभिः पूजयेद्राहुं 'कया न' इति मन्त्रतः॥१०॥
सूर्येन्द्वोरर्कपालाशसमिद्भिर्जुहुयात् क्रमात्।
तथा च राहोः प्रीत्यर्थं दूर्वाभिर्द्विजसत्तम!॥११॥

ब्रह्मवृक्षसमिद्भिश्च भेशाय जुहुयात् पुनः ॥११½॥

पवित्र समतल भूमि पर गोमय से लेप कर उस स्थान पर नवीन मनोहर सुन्दर वस्त्र के ऊपर पूर्वनिर्मित तीनों मूर्त्तियों की स्थापना करे। सूर्यग्रहण में सूर्य के प्रीतिकारक वस्तुओं तथा रक्ताक्षत, रक्तचन्दन, लाल माला और लाल वस्त्र अर्पण करे। चन्द्रग्रहण पर चन्द्र के प्रीतिकारक वस्तुओं तथा सफेद चन्दन, श्वेत पुष्प, सफेद माला और श्वेत वस्त्र समर्पण करे। राहु के प्रीतिकारक वस्तु तथा कृष्ण पुष्प एवं काला वस्त्र अर्पण करना चाहिए। नक्षत्रस्वामी के लिए सफेद चन्दन तथा आदि शब्द से सफेद माला, सफेद वस्त्र आदि समर्पण करना चाहिए। सूर्य की पूजा 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र से, चन्द्रमा की 'इमं देवा' इत्यादि मन्त्र से एवं राहु की 'प्रत्यर्थं कयान' इत्यादि मन्त्र से दूर्वा द्वारा करनी चाहिए। तदनन्तर आक की समिधा से सूर्य के लिए, पलास की समिधा से चन्द्रमा के लिए, दुर्वा से राहु के लिए एवं नक्षत्राधिपति के निमित्त पीपल की समिधा से यथाशक्ति हवन करना चाहिए ॥५-११½॥

अभिषेकं ततः कुर्यात् जातस्य कलशोदकैः ॥१२॥
आचार्यं पूजयेद् भक्त्या सुशान्तो विजितेन्द्रियः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु यथाशक्ति विसर्जयेत् ॥१३॥
एवं ग्रहणजातस्य शान्तिं कृत्वा विधानतः।
सर्वविघ्नं विनिर्जित्य सौभाग्यं लभते नरः ॥१४॥

हवन के अनन्तर शान्तिकलश के जल से जातक का अभिषेक कर सुशान्त होकर भक्तिपूर्वक आचार्य की पूजा कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देकर विसर्जन करना चाहिए। इस प्रकार ग्रहण में जन्म लेने वाले का विधानपूर्वक शान्ति करने से जातक भी सभी विघ्नों को जीत कर सुख, कल्याण और सौभाग्य को प्राप्त करता है ॥१२-१४॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ग्रहणजननशान्त्यध्यायः ॥९३॥

अथ गण्डान्तजननशान्त्यध्यायः ॥९४॥

गण्डान्त-लक्षण

पराशर उवाच

तिथि-नक्षत्र-लग्नानां गण्डान्तं त्रिविधं स्मृतम्।
जन्म-यात्रा-विवाहादौ भवेत्तन्निधनप्रदम् ॥१॥

पराशर मुनि ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! तिथि, नक्षत्र तथा लग्न—तीन प्रकार का गण्डान्त कहा गया है, जिसे कि जन्म, यात्रा, विवाहादि शुभ कार्यों में मृत्यु या मृत्युसदृश कष्टकर कहा गया है ॥१॥

तिथिगण्डान्त

पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धौ नाडीचतुष्टयम्।
अध ऊर्ध्वं च मैत्रेय! तिथिगण्डान्तमुच्यते ॥२॥

हे मैत्रेय ! पूर्णा तिथि की अन्तिम २ घड़ी तथा नन्दा तिथि की आरम्भिक २ घड़ी मिलाकर कुल ४ घड़ी का तिथिगण्डान्त होता है अर्थात् पूर्णिमा की अन्तिम २ घड़ी और प्रतिपदा की आरम्भिक २ घड़ी, पञ्चमी की अन्तिम २ घड़ी तथा षष्ठी की आरम्भिक २ घड़ी एवं दशमी की अन्तिम २ घड़ी तथा एकादशी की प्रारम्भिक २ घड़ी में तिथिगण्डान्त होता है ॥२॥

नक्षत्रगण्डान्त

रेवतीदास्रयोः सार्पमघयोः शाक्रमूलयोः।
सन्धौ नक्षत्रगण्डान्तमेवं नाडीचतुष्टयम् ॥३॥

रेवत्यन्त अश्विनी का आदि, अश्लेषान्त मघा का आदि और ज्येष्ठान्त मूलादि की २-२ घड़ी अर्थात् ४ घड़ी नक्षत्रगण्डान्त कहलाता है ॥३॥

लग्नगण्डान्त

मीनाजयोः कर्किहर्योर्लग्नयोरलिचापयोः।
सन्धौ च लग्नगण्डान्तमध ऊर्ध्वं घटीमितम् ॥४॥

मीन-मेष की, कर्क-सिंह की, वृश्चिक-धन लग्न की सीमा में आधी घड़ी मिलाकर कुल १ घड़ी लग्नगण्डान्त कहा जाता है ॥४॥

एषु चाभुक्तमूलाख्यं महाविघ्नप्रदं स्मृतम्।
इन्द्राक्षसयोः सन्धौ पञ्चाष्टघटिकाः क्रमात् ॥५॥

पूर्वोक्त गण्डान्तों में ज्येष्ठा के अन्त की ५ घड़ी एवं मूल के आरम्भ की ८ घड़ी को 'अभुक्त मूल' कहा गया है। यह महाविघ्नकारक एवं अशुभदायक माना जाता है ।।५।।

अथ गण्डान्तजातस्य शिशोः शान्तिविधिं ब्रुवे।
गण्डान्तकालजातस्य सूतकान्त्यदिने पिता ।।६।।
शान्तिं शुभेऽह्नि वा कुर्यात् पश्येत् तावन्नतं शिशुम्।
वृषभं तिथिगण्डान्ते नक्षत्रे धेनुमेव च ।।७।।
काञ्चनं लग्नगण्डान्ते दद्यात्तद्दोषशान्तये।
आद्यभाग-प्रजातस्य पितृश्चाप्यभिषेचनम् ।।८।।
द्वितीये तु शिशोर्मातुरभिषेकं च कारयेत् ।।८½।।

अब गण्डान्त में उत्पन्न जातक की शान्ति-विधि को मैं कहता हूँ। गणडान्तजनित शान्ति जननाशौचनिवृत्ति के दिन अथवा अन्य सुदिन, शुभ लग्न में करना चाहिए। जब तक शान्ति न हो जाय तब तक जातक के पिता को जातक का मुख नहीं देखना चाहिए। तिथिगण्डान्त में बैल का दान, नक्षत्र गण्डान्त में सवत्सा गौदान तथा लग्न गण्डान्त में सुवर्ण का दान करना चाहिए। गण्डान्त के पूर्व भाग में जन्म हो तो पिता जातक को अपनी गोद में रखकर अभिषेक करवाये एवं द्वितीय भाग में माता की गोद में रखकर जातक का अभिषेक करवाना चाहिए ।।६-८½।।

सुवर्णेन तदर्धेण यथावित्तं द्विजोत्तम!।
तिथिभेशादिरूपं च कृत्वा वस्त्रसमन्वितम् ।।९।।
उपचारैर्यथाशक्ति कलशोपरि पूजयेत्।
पूजान्ते समिदन्नाज्यैर्होमं कुर्याद्यथाविधि ।।१०।।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादेवं दोषात्प्रमुच्यते।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं सम्प्राप्नोति दिने दिने ।।११।।

१६ माषा तुल्य सुवर्ण से अथवा ८ माषा या ४ माषा अथवा द्रव्यानुसार तिथि गण्डान्त में तिथिस्वामी, नक्षत्र गण्डान्त में नक्षत्रस्वामी तथा लग्न गण्डान्त में लग्नस्वामी की प्रतिमा बनाकर वस्त्रसहित कुम्भ के ऊपर रखकर पूर्वोक्त विधानानुरूप षोडशोपचार या पञ्चोपचार से यथाशक्ति पूजन करके पूजान्त में समिधा, घृतादि से विधिपूर्वक हवन करना चाहिए। पूर्वोक्त विधान से कुम्भस्थ जल से अभिषेक कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस प्रकार शान्ति करने से दोषमुक्त होकर जातक की आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है ।।९-११।।

इति बृहत्पराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां गण्डान्तजननशान्त्यध्याय: ।।९४।।

अथाभुक्तमूलजननशान्त्यध्यायः ॥९५॥

परा‍शर उवाच

ज्येष्ठामूलभयोर्यस्मादधिपाविन्द्रराक्षसौ ।
महावैरात् तयोः सन्धिर्महादोषप्रदः स्मृतः ॥१॥
अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीं वाऽपि परित्यजेत् ।
अथवाऽब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत् ॥२॥
तद्दोषपरिहारार्थमथ शान्तिविधिं ब्रुवे ॥२½॥

महर्षि पराशर ने कहा कि हे मैत्रेय ! ज्येष्ठा का स्वामी इन्द्र तथा मूल का स्वामी राक्षस है। इन दोनों में महान् वैमनश्यता होने के कारण अन्य दोषों के अतिरिक्त इसमें महान् दोष कहा गया है। इसलिए इस अभुक्त मूल में उत्पन्न पुत्र या पुत्री जो भी हो, उसका त्याग कर देना चाहिए अथवा जन्म से ८ वर्ष तक जातक के मुख को उसके पिता को नहीं देखना चाहिए। अब अभुक्त मूल के शमनार्थ शान्तिविधि को मैं बताता हूँ ॥१-२॥

तत्राऽऽदौ दोषबाहुल्यान् मूलशान्तिर्निगद्यते ॥३॥
जन्मतो द्वादशाहे वा तदृक्षे वा शुभे दिने ।
जातस्य वाऽष्टमे वर्षे शान्तिं कुर्याद् विधानतः ॥४॥

ज्येष्ठा तथा मूल दोनों में विशेष अनिष्टप्रद होने के कारण सर्वप्रथम मूल के शान्ति-विधान को मैं कहता हूँ। जातक के जन्म से द्वादश दिन में अथवा जन्म से आगे पुनः वह नक्षत्र जिस दिन प्राप्त हो, उस दिन में या शुभ वार, शुभ लग्न में अथवा जातक के ८ वर्ष के होने पर विधानपूर्वक शान्ति कराना चाहिए ॥३-४॥

सुसमे च शुभे स्थाने गोमयेनोपलेपिते ।
मण्डपं स्वगृहात् प्राच्यामुदीच्यां वा प्रकल्पये ॥५॥
चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलंकृतम् ।
कुण्डं ग्रहादियज्ञार्थं तद्बहिश्च प्रकल्पयेत् ॥६॥
सुवर्णेन तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ।
नक्षत्रदेवतारूपं कुर्याद् वित्तानुसारतः ॥७॥
श्यामवर्णं महोग्रं च द्विशिरस्कं वृकाननम् ।
खड्गचर्मधरं तद्वद् ध्येयं कुणपवाहनम् ॥८॥

समतल भूमि में गोबर से लिपे हुए पवित्र स्थान में अपने गृह से पूर्व अथवा उत्तर दिशा में तोरणादि से सुशोभित चार द्वार वाला सुन्दर मण्डप निर्माण कर उस मण्डप के बाहर ग्रहयज्ञार्थ (हवन हेतु) कुण्ड का निर्माण करे। एक सुवर्ण (१६ माषा) या ८ अथवा

४ माषा या अपने द्रव्यानुसार मूल नक्षत्रस्वामी राक्षस की काले वर्ण की मूर्ति; जिसने २ मस्तक, २ भुजा, भयावह मुख और खड्ग तथा ढाल हाथ में धारण किया हुआ और जो मृतक मनुष्य पर सवार हो, उसकी प्रतिमा बनाये ॥५-८॥

सुवर्णस्य च मूल्यं वा स्थापयित्वा प्रपूजयेत्।
सुवर्ण सर्वदैवत्यं यतः शास्त्रेषु निश्चितम् ॥९॥

शिल्पज्ञ के अभाव में प्रतिमा तैयार न हो तो सुवर्ण का मूल्य ही स्थापित कर उसका पूजन करना चाहिए, क्योंकि सुवर्ण समस्त देवों को प्रिय होता है ॥९॥

आचार्यं वरयेत् पश्चात् स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
कलशस्थापनं कुर्यात् स्वगृह्योक्तविधानतः ॥१०॥
पञ्चगव्यादिकं क्षेप्यं कलशे तीर्थवारि च।
शतौषध्यादिकं तत्र शतच्छिद्रघटे क्षिपेत् ॥११॥
वंशपात्रं च संस्थाप्य तत्र वै पश्चिमामुखम्।
अर्चयेन्निर्ऋतिं देवं शुक्लवस्त्राक्षतादिभिः ॥१२॥
इन्द्रं तदधिदेवं च जलं प्रत्यधिदैवतम्।
स्वस्वशाखोक्तमन्त्रेण प्रधानादीन् प्रपूजयेत् ॥१३॥
देवाधिदेवप्रीत्यर्थं होमं कुर्याद्यथाविधि।
अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतं वा नियतेन्द्रियः ॥१४॥
मृत्युप्रशमनार्थं च मन्त्रं त्रैयम्बकं जपेत्।
प्रार्थयेच्च ततो देवमभिषेकार्थमादरात् ॥१५॥

इसके अनन्तर मांगलिक शब्द स्वस्तिवाचनपूर्वक आचार्य का वरण करे। पुनः अपनी शाखा के अनुसार विधानपूर्वक कलशस्थापन कर उसमें पञ्चगव्य, शतौषधि एवं अन्य समस्त मांगलिक द्रव्य तथा तीर्थों के जल छोड़कर शतछिद्र वाले कुम्भ पर बाँस के पत्र रख कर उसके ऊपर पूर्वनिर्मित नक्षत्रदेव को राक्षस-स्वरूप प्रतिमा को पश्चिमाभिमुख रख कर सफेद वस्त्र, चन्दन, अक्षतादि से उसका पूजन करे तथा उसके अधिदेव इन्द्र एवं प्रत्यधिदेव जल की भी स्व-स्व शाखोक्त मन्त्रों द्वारा पूजन कर उन सभी देवों के प्रसन्नतार्थ होम करे। होम में अपनी शक्ति के अनुसार १००८ या १०८ आहुतियाँ अग्नि में प्रदान करे। इसके अनन्तर मृत्यु के शमन हेतु मृत्युञ्जय मन्त्र 'त्र्यम्बकं यजा' इत्यादि का यथाशक्ति जप कर अभिषेक हेतु सभी देवों की प्रार्थना करनी चाहिए ॥१०-१५॥

भद्रासनोपविष्टस्य सस्त्रीपुत्रस्य मन्त्रवित्।
आचार्यो यजमानस्य कुर्यात् प्रीत्याभिषेचनम् ॥१६॥
वस्त्रान्तरितकुम्भायां स्नापयेत्तदनन्तरम्।
शुक्लाम्बरधरस्तद्वत् श्वेतगन्धानुलेपनः ॥१७॥

धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च शक्तितः ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥१८॥

पवित्र आसन पर बैठे हुए स्त्री-पुत्र तथा यजमान को आचार्य वस्त्र से आच्छादित पूर्वोक्त दोनों कुम्भों के अमृतसदृश जल से स्नान करावे। कुम्भस्नान के अनन्तर सफेद वस्त्र एवं श्वेत चन्दन धारण कर यजमान आचार्य को सवत्सा धेनु का दक्षिणासहित दान करे और अन्य ब्राह्मणों को भी दक्षिणा देकर यथेच्छ भोजन कराना चाहिए ॥१६-१८॥

यत्पापं यच्च मे दौःस्थ्यं सर्वगात्रेष्ववस्थितम् ।
तत्सर्वं भक्षयाज्य त्वं लक्ष्मीं पुष्टिं च वर्धय ॥१९॥
अनेनैव तु मन्त्रेण सम्यगाज्ये विलोकयेत् ।
मूलगण्डोद्भवस्यैवं सर्वपापं प्रणश्यति ॥२०॥

हे आज्य ! मेरे शरीर में स्थित जो पाप हो, जो दुर्बलता हो, जो अनिष्ट हो वह सब तुम भक्षण करो और मुझे लक्ष्मी तथा पुष्टि प्रदान करो—ऐसा कहकर पात्र में स्थित घृत में अपने मुख तथा शरीर को अच्छी प्रकार देखना चाहिए। इस प्रकार शान्ति करने से मूल, गण्ड में उत्पन्न बालक के सभी दोष शान्त हो जाते हैं ॥१९-२०॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामभुक्तमूलजननशान्त्यध्यायः ॥९५॥

अथ ज्येष्ठादिगण्डजननशान्त्यध्यायः ॥९६॥

पराशर उवाच

ज्येष्ठागण्डान्तजातस्तु पितुः स्वस्य च नाशकः ।
तस्य शान्तिविधिं वक्ष्ये सर्वविघ्नोपशान्तये ॥१॥
मूलशान्तिसमं सर्वमत्रापि मण्डपादिकम् ।
इन्द्रोऽत्र देवता तद्वदधिदेवोऽनलस्तथा ॥२॥
विज्ञेयं च तथा विप्र! रक्षः प्रत्यधिदैवतम् ॥२½॥

पराशर ने कहा कि हे मैत्रेय ! अब मैं ज्येष्ठा गण्डान्त की शान्ति विधि कहता हूँ; क्योंकि ज्येष्ठा गण्डान्त में उत्पन्न बालक के साथ-साथ उसके पिता को भी अनिष्ट होता है । इस शान्ति में भी मण्डप, कलश, ब्राह्मणवरण एवं आचार्यवरणादि कार्य मूलशान्ति की तरह ही होता है । इसमें प्रधान देव इन्द्र होते हैं और अधिदेव अग्नि तथा प्रत्यधिदेव राक्षस को जानना चाहिए ॥१-२॥

यथाशक्ति सुवर्णेन कुर्यादिन्द्रस्वरूपकम् ॥३॥
वज्राङ्कुशधरं दिव्यं गजराजोपरिस्थितम् ।
शालितण्डुलसंयुक्तकुम्भस्योपरि पूजयेत् ॥४॥
स्वस्वगृह्योक्तमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
अभिषेकं च होमं च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥५॥
इन्द्रसूक्तं जपेद् भक्त्या मन्त्रं मृत्युञ्जयं तथा ।
प्रार्थयेदिन्द्रदेवं च ततः शान्तिमवाप्नुयात् ॥६॥

स्वशक्ति के अनुसार सुवर्ण से प्रधान देव इन्द्र की हाथ में वज्र-अंकुश धारण किये एवं ऐरावत हाथी के ऊपर बैठे हुए सुन्दर स्वरूप बनाकर उसे शालि धान के चावल से भरे हुए कलश के ऊपर रख कर अपने-अपने गृह्योक्त मन्त्र द्वारा गन्धाक्षत-पुष्प से अधिदेव, प्रत्यधिदेवसहित प्रधान देव की पूजा कर यथाशक्ति हवन, अभिषेक एवं ब्राह्मणभोजन कराना चाहिए । तत्पश्चात् इन्द्रसूक्त तथा मृत्युञ्जय का जप करके इन्द्र भगवान् से प्रार्थना करने पर परम शान्ति की प्राप्ति होती है ॥३-६॥

अथ वा शक्त्यभावे तु कुर्याद् गोदानमेव हि ।
यतः समस्तभूदानाद् गोदानमतिरिच्यते ॥७॥

अथवा पूर्वोक्त शान्ति करने में अक्षम हो तो केवल गोदान मात्र करने से भी शान्ति होती है, क्योंकि अत्यधिक भूदान से भी गोदान को श्रेष्ठ कहा गया है ॥७॥

मूलेन्द्राहिमघागण्डजाते दद्याद् गवां त्रयम्।
गोयुग्मं पौष्णदास्रोत्थे गण्डान्ते च द्विजन्मने ॥८॥
अन्यगण्डे च दुर्योगे गामेकां हि प्रदापयेत्।
गोरभावे च विप्राय दद्यात् तन्मूल्यमेव हि ॥९॥

मूल, ज्येष्ठा, अश्लेषा, मघा—इन नक्षत्रों का गण्डान्त हो तो तीन गोदान करना चाहिए। रेवती-अश्विनी में दो गोदान और अन्य गण्डान्त या दुर्योग में एक गोदान करना चाहिए। गौ के न मिलने पर गौ के मूल्य के बराबर द्रव्य ब्राह्मणों को दान देना चाहिए ॥८-९॥

ज्येष्ठानक्षत्रजा कन्या विनिहन्ति धवाग्रजम्।
विशाखान्त्यपदोत्पन्ना कन्या देवरघातिनी ॥१०॥
तस्याः प्रदानकालेऽतो गोदानमपि कारयेत् ॥१०½॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के बड़े भाई का नाश करती है तथा विशाखा के चतुर्थ चरण में उत्पन्न कन्या अपने देवर का नाश करती है; अतः उसके पाणिग्रहण के समय में उक्त दोष के शमनार्थ गोदान अवश्य करना चाहिए ॥१०½॥

आश्लेषान्त्यत्रिपादोत्थौ मूलाद्यत्रिपदोद्भवौ ॥११॥
कन्यासुतौ हतः श्वश्रूं श्वशुरञ्च यथाक्रमम्।
तयोर्विवाहकालेऽतः शान्तिं कुर्याद् विचक्षणः ॥१२॥
तत्तद्दोषविनाशाय यथावित्तानुसारतः।
धवाग्रजाद्यभावे तु न दोषाय प्रजायते ॥१३॥

अश्लेषा के २, ३, ४ पाद में उत्पन्न कन्या या बालक अपनी सास के लिए तथा मूल के १, २, ३ पाद में उत्पन्न कन्या या बालक अपने श्वसुर के लिए नष्टकारक होते हैं। इसलिए उनके विवाह के समय में विधिपूर्वक शान्ति करनी चाहिए। जिसको अनिष्ट हो उनके परिवार में यदि वे न हों तो दोष नहीं होता है ॥११-१३॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां ज्येष्ठादिगण्डजननशान्त्यध्यायः ॥९६॥

अथ त्रीतरजन्मशान्त्यध्यायः ॥९७॥

पराशर उवाच

अथाऽन्यत् सम्प्रवक्ष्यामि जन्मदोषप्रदं द्विज ! ।
सुतत्रये सुताजन्म तत्त्रये सुतजन्म चेत् ॥१॥
तदाऽरिष्टभयं ज्ञेयं पितृ-मातृकुलद्वये ।
तत्र शान्तिविधिं कुर्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥२॥

महर्षि पराशर बोले—हे द्विज ! अब मैं जन्मसम्बन्धी अन्य दोषों को कहता हूँ। यदि तीन पुत्र के अनन्तर कन्या का जन्म हो अथवा तीन कन्या के बाद पुत्र का जन्म हो तो उसके पितृवंश तथा मातृकुल में अशुभ होता है, अतः उक्त दोष के शमन हेतु स्ववित्तानुसार विधिपूर्वक शान्ति करनी चाहिए ॥१-२॥

सूतकान्तेऽथ वा शुद्धे समये च शुभे दिने ।
आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरस्सरम् ॥३॥
ब्रह्म-विष्णु-महेशेन्द्र-प्रतिमाः स्वर्णजाः शुभाः ।
पूजयेद् धान्यराशिस्थ-कलशोपरि भक्तितः ॥४॥

जननाशौचनिवृत्ति के दिन अथवा जननाशौच बीतने के बाद शुभ दिन में आचार्य एवं ऋत्विजों के वरण के उपरान्त ग्रहयज्ञ कर ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र की सुवर्णनिर्मित सुन्दर प्रतिमा बनाकर धान की ढेरी के ऊपर कलश रख कर क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्र की पूर्वनिर्मित सुवर्णप्रतिमा को स्थापित कर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए ॥३-४॥

चत्वारि रुद्रसूक्तानि शान्तिसूक्तानि सर्वशः ।
विप्र एको जपेद् होमकाले च शुचिसंयतः ॥५॥
आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलाँश्चरून् ।
अष्टोत्तरं सहस्त्रं वा शतं वाऽष्टौ च विंशतिम् ॥६॥
ब्रह्मादिसर्वदेवेभ्यः स्वस्व-गृह्योक्तमन्त्रतः ।
ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं पुनः ॥७॥
अभिषेकं च जातस्य सकुटुम्बस्य कारयेत् ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥८॥
कांस्याज्यवीक्षणं कृत्वा दीनानाथांश्च तर्पयेत् ।
एवं शान्त्या च मैत्रेय! सर्वारिष्टं विलीयते ॥९॥

प्रधान देव के पूजन के बाद एक ब्राह्मण को पवित्र होकर चार रुद्रसूक्त तथा सम्पूर्ण

शान्ति- सूक्त का सुमधुर स्वर में पाठ करना चाहिए। आचार्य को समिधा, घी, तिल तथा चरु से १००८ बार या १०८ अथवा २८ बार स्वसामर्थ्य के अनुसार ब्रह्मादि चारो देवता का स्व-स्व गृह्योक्त मन्त्र से हवन करना चाहिए। उसके बाद स्विष्टकृत तथा पूर्णाहुति कर जातकसहित परिवार का कलशस्थ जल से अभिषेक करके ऋत्विजों को यथाशक्ति दक्षिणा तथा ब्राह्मणभोजन कराकर पुनः कांस्य पात्रस्थ घी में अपना स्वरूप देख कर दीन-दुःखी एवं असहाय को अन्न, वस्त्र, धनादि से सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार विधिपूर्वक शान्ति करने से त्रीतर जन्म-जन्य अनिष्ट की निवृत्ति होकर सुख-समृद्धि की प्राप्ति होती है ।।५-९।।

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां त्रीतरजन्मशान्त्यध्यायः ।।९७।।

अथ प्रसवविकारशान्त्यध्यायः ॥९८॥

पराशर उवाच

अथाऽहं सम्प्रवक्ष्यामि विकारं प्रसवोद्भवम्।
येनाऽरिष्टं समस्तस्य ग्रामस्य च कुलस्य च ॥१॥
अत्यल्पे वाऽधिके काले प्रसवो यदि जायते।
हीनाङ्गो वाऽधिकाङ्गो वा विशिरा द्विशिरास्तथा ॥२॥
नार्यां पश्वाकृतिर्वापि पशुष्वपि नराकृतः।
प्रसवस्य विकारोऽयं वित्तनाशोपजायते ॥३॥

महर्षि पराशर बोले कि हे मैत्रेय ! अब मैं प्रसवविकारजन्य अनिष्ट को कहता हूँ, जिस अनिष्ट के द्वारा समस्त कुल या ग्राम का अनिष्ट होता है। निर्धारित समय से बहुत पहले या बहुत पीछे प्रसव होना अथवा जन्तु का हीन अङ्ग या अधिक अङ्ग वाला होना, या मस्तक-रहित अथवा २ मस्तक वाला होना, अथवा स्त्री के गर्भ से पशु की आकृति के जातक का होना या पशु के गर्भ से मनुष्याकृति के जातक का होना प्रसवविकार कहा जाता है, जिसके कारण महान् विपत्ति एवं अनिष्ट का भय उपस्थित जाता है ॥१-३॥

यस्य स्त्रियाः पशूनां वा विकारः प्रसवोद्भवः।
अनिष्टं भवने तस्य कुलेऽपि च महद् भवेत् ॥४॥
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिः कार्या प्रयत्नतः।
स्त्री वा गौर्वडवा वाऽपि परित्याज्या हितार्थिना ॥५॥

जिस मनुष्य की स्त्री में या पशुओं में प्रसवविकार हो, उस मनुष्य के घर में या कुल में महान् अनिष्ट होता है। इसलिए उस महान् दोष की निवृत्ति के लिए यत्नपूर्वक शान्ति करनी चाहिए। अथवा अपना हित चाहने वाले व्यक्ति को उस प्रसवविकार वाली स्त्री, घोड़ा, गौ आदि पशुओं का परित्याग कर देना चाहिए ॥४-५॥

नार्याः पञ्चदशे वर्षे जन्मतः षोडशेऽपि वा।
गर्भो वा प्रसवो वाऽपि न शुभाय प्रजायते ॥६॥
सिंहराशिस्थितेऽर्के गौर्नक्रस्थे महिषी तथा।
प्रसूता स्वामिनं हन्ति स्वयं चापि विनश्यति ॥७॥
ब्राह्मणाय प्रदद्यात् तां शान्तिं वाऽपि समाचरेत्।
ब्रह्म-विष्णु-महेशानां ग्रहाणां चैव पूजनम् ॥८॥
सर्वं होमादिकं कर्म कुर्यात् त्रीतरशान्तिवत्।
ततो गृही सुखी भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९॥

स्त्री के जन्मसमय से १५वें वर्ष में या १६वें वर्ष में गर्भप्रसव हो तो वह अनिष्टप्रद होता है। सिंह राशि में सूर्य के रहते समय गौ या मकर राशि में सूर्य के रहते समय भैंस का प्रसव उसके पालक के साथ-साथ स्वामी का भी विनाशक होता है, इसलिए उस गौ और भैंस को ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए। अथवा विधि-विधानपूर्वक शान्ति करनी चाहिए। इसकी शान्ति भी त्रीतर शान्तिसदृश ही है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रदेव का पूजन-अर्चन, ग्रहयज्ञ, हवन, अभिषेक, ब्राह्मणदान, भोजनादि—इन सभी शान्तिकर्मों को त्रीतरजन्म-शान्तिसदृश ही करना चाहिए। इस प्रकार शान्ति करने से जातक समस्त अरिष्टजन्य पापों से मुक्त होकर सुख एवं कल्याण का भागी होता है ॥६-९॥

एवं त्वरिष्टे सम्प्राप्ते नरः शान्तिं करोति यः।
सर्वान् कामानवाप्नोति चिरजीवी सुखी च सः ॥१०॥

इस प्रकार अरिष्ट प्राप्त होने पर जो मनुष्य विधिपूर्वक शान्ति कर लेता है एवं वह समस्त लक्षित वस्तुओं को प्राप्त कर चिरञ्जीवी और सुखी होता है ॥१०॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यां प्रसवविकारशान्त्यध्यायः ॥९८॥

अथोपसंहाराध्याय: ॥९९॥

पराशर उवाच

यच्छास्त्रं ब्रह्मणा प्रोक्तं नारदाय महात्मने।
तदेव शौनकादिभ्यो नारदः प्राह सादरम् ॥१॥
ततो मया यथा ज्ञातं तुभ्यमुक्तं तथा द्विज!।
नासूयकाय दातव्यं परनिन्दारताय वा ॥२॥
जडाय दुर्विनीताय नाज्ञाताय कदाचन।
देयमेतत् सुशीलाय भक्ताय सत्यवादिने ॥३॥
मेधाविने विनीताय सम्यग् ज्ञातकुलाय च।
पुण्यदं ज्यौतिषं शास्त्रमग्र्यं वेदाङ्गमुत्तमम् ॥४॥

महर्षि पराशर ने कहा—हे मैत्रेय ! इस शास्त्र का सबसे पहले ब्रह्मा जी ने महात्मा नारद जी को उपदेश किया और नारद जी ने आदरपूर्वक शौनकादि ऋषियों को बताया तथा शौनकादि ऋषियों के द्वारा जिस प्रकार मुझे इसका ज्ञान प्राप्त हुआ, उसी प्रकार मैंने आपको बताया है। पुण्यप्रद, वेदाङ्गों में श्रेष्ठ ज्यौतिष शास्त्र को असूयक, दूसरे की निन्दा करने वाले, मूर्ख, दुर्बुद्धि, शठ और अपरिचित व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। जो सुन्दर शील वाला हो, इस शास्त्र में श्रद्धा रखने वाला, सत्यवादी, मेधावी, नम्र और जिसका कुल अच्छी तरह परिचित हो, उसी को यह श्रेष्ठ वेदाङ्ग ज्यौतिष शास्त्र का ज्ञान देना चाहिए ॥१-४॥

जानाति कालमानं यो ग्रहर्क्षाणां च संस्थितिम्।
होराशास्त्रमिदं सम्यक् स विजानाति नाऽपरः ॥५॥
होराशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सत्यवाग् विजितेन्द्रियः।
शुभाऽशुभं फलं वक्ति सत्यं तद्वचनं भवेत् ॥६॥

जो मनुष्य सही-सही काल का ज्ञान रखता हो और ग्रह-नक्षत्रों की संस्थिति अच्छी प्रकार जानता हो वही व्यक्ति इस होराशास्त्र को अच्छी प्रकार जान सकता है, अन्य व्यक्ति इस शास्त्र का ज्ञानाधिकारी नहीं हो सकता। जो होराशास्त्र का मर्मज्ञ हो और सत्यवक्ता तथा जितेन्द्रिय हो, उसके द्वारा प्रतिपादित शुभाशुभ फल का कथन पूर्णत: सत्य होता है ॥५-६॥

ये सुशास्त्रं पठन्तीदं ये वा शृण्वन्ति भक्तितः।
तेषामायुर्बलं वित्तं वृद्धिमेति यशः सदा ॥७॥

जो इस श्रेष्ठ होराशास्त्र का सम्यग् अध्ययन करता या भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके आयुर्दाय, बल, धन तथा सुन्दर यश की वृद्धि होती है ॥७॥

इत्थं पराशरेणोक्तं होराशास्त्रं चमत्कृतम् ।
नवं नवजनप्रीत्यै विविधाध्यायसंयुतम् ॥८॥
श्रेष्ठं जगद्धितायेदं मैत्रेयाय द्विजन्मने ।
ततः प्रचरितं पृथ्व्यामादृतं सादरं जनैः ॥९॥

इस प्रकार महर्षि पराशर जी ने प्राचीन होराग्रन्थों से चमत्कारयुक्त अनेकों अध्यायों से समन्वित अत्यन्त श्रेष्ठ नवीन होराशास्त्र को संसार के कल्याण हेतु मैत्रेय को बताया। उसके अनन्तर समस्त पृथ्वी में इस शास्त्र का प्रचार-प्रसार हुआ और सभी लोगों ने इस शास्त्र का आदर किया ॥८-९॥

अध्यायक्रमकथन

ग्रन्थेऽस्मिन् पृथगध्यायैर्विषया विनिवेशिताः ।
सृष्टिक्रमोऽवताराश्च गुणाः खेटस्य भस्य च ॥१०॥
विशेषलग्नं वर्गाश्च तद्विवेकश्च राशिदृक् ।
अरिष्टं तद्विभङ्गश्च विवेको भावजस्तथा ॥११॥
भावानां च फलाध्यायो भावेशोत्थफलं तथा ।
अप्रकाशफलं स्पष्ट-खेटदृष्टि-प्रसाधनम् ॥१२॥
ततः स्पष्टबलाध्याय इष्टकष्टप्रसाधनम् ।
पदं चोपपदं तद्वदर्गला त्वथ कारकाः ॥१३॥
कारकांशफलं योगकारकाध्याय एव च ।
नाभसा विविधा योगाश्चन्द्रयोगोऽर्कयोगकः ॥१४॥
राजयोगस्ततः प्रोक्तो राजसम्बन्धयोगकः ।
विशेषधनयोगाश्च योगा दारिद्र्यकारकाः ॥१५॥
आयुर्मारकभेदाश्च ग्रहावस्थाः फलान्विताः ।
नानाविध-दशाध्यायास्तत्फलाध्याय-संयुताः ॥१६॥
अन्तः-प्रत्यन्तर-प्राण-सूक्ष्मसंज्ञाश्च तद्भिदाः ।
सूर्याद्यष्टकवर्गश्च त्रिकोणपरिशोधनम् ॥१७॥
एकाधिपत्यसंशुद्धिस्ततः पिण्डप्रसाधनम् ।
ततश्चाऽष्टकवर्गाणां प्रस्फुटानि फलानि च ॥१८॥
ततोऽप्यष्टकवर्गायुःसाधनं च ततः परम् ।
समुदायाष्टवर्गोत्थ-फलाध्यायः परिस्फुटः ॥१९॥
ग्रहरश्मिफलाध्यायः सुदर्शनफलं तथा ।
महापुरुषचिह्नानि महाभूतफलानि च ॥२०॥
गुणत्रय—फलाध्यायस्ततोऽप्यज्ञात—जन्मनाम् ।
जन्मलग्नादिविज्ञानं प्रव्रज्यालक्षणानि च ॥२१॥

स्त्रीणां च फलवैशिष्ट्यमङ्गलक्ष्मफलानि च ।
पूर्वपापोत्थ-शापोत्थ-योगा वै पुत्र्यकारका: ॥२२॥
सत्पुत्रप्राप्त्युपायाश्च सहैव प्रतिपादिता: ।
जन्मन्यनिष्टलग्नर्क्ष-तिथ्यादि-प्रतिपादनम् ॥२३॥
तत्तच्छान्तिविधिश्चैव संक्षेपेण प्रदर्शित: ।
प्रसवस्य विकाराश्च कथिता: शान्तिसंयुता: ॥२४॥
एवं जातकवर्येऽत्र निविष्टा विषया: शतम् ।
विज्ञाय विबुधास्त्वेतान् प्राप्नुवन्तु यश:श्रियम् ॥२५॥

इस बृहत्पाराशर होरा नामक ग्रन्थ में अलग-अलग विषयों को एक-एक अध्याय में रखा गया है। जैसे–सृष्टिक्रमाध्याय, अवतारकथनाध्याय, ग्रहनक्षत्रगुण, विशेष लग्न, षोडश वर्ग, वर्गविवेक, राशिदृष्टि, अरिष्ट, अरिष्टभङ्ग, द्वादशभावफलाध्याय, द्वादश भावविचार, भावेशों के फल, अप्रकाश ग्रहफल, खेटों की स्पष्ट दृष्टि, स्पष्ट बलसाधनाध्याय, इष्ट तथा कष्टसाधन, पद, उपपद, अर्गला, कारक, कारकांश फलाध्याय, योगकारक, नाभसयोग, विविध योग, चन्द्रयोग, रवियोग, राजयोग, राजसम्बन्धी योग, विशेष धनयोग, दारिद्रययोग, आयुर्दाय, मारकेशभेदाध्याय, ग्रहावस्थाध्याय, उनके फल, नक्षत्रादि विभिन्न प्रकार की दशा, दशाफलाध्याय, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, प्राण तथा सूक्ष्म दशा, सूर्यादि ग्रह तथा लग्न के अष्टक वर्ग, त्रिकोण शोधन, एकाधिपत्य शोधन, पिण्डप्रसाधन, अष्टक वर्ग फलाध्याय, अष्टक वर्ग से स्पष्टायुर्दाय, समुदायाष्टक वर्ग तथा फल, ग्रहरश्मिसाधन तथा फल, सुदर्शनचक्रानुसार फल में विशेषता, महापुरुषलक्षण, आकाश आदि पञ्च महाभूतों के फल, सत्यादि तीनों गुणों के फल, नष्ट जन्मपत्रसाधन, प्रव्रज्यायोग, स्त्रीजातक में विशेष फलकथन, अङ्गलक्षण तथा फल, अङ्ग में स्थित तिलादि फल, पूर्व जन्म के शाप के कारण सन्तानहीनता तथा सन्तानप्राप्ति का उपाय, जन्म में अनिष्ट तिथि, नक्षत्र, लग्न कथन तथा फल और उनकी शान्ति के उपाय, प्रसव में विकार तथा शान्ति इत्यादि अनेकों विषयों का इस बृहत्पाराशरहोराशास्त्र नामक ग्रन्थ में समावेश किया गया है। इन समस्त विषयों को भली-भाँति समझकर यश और सुख-समृद्धि का लाभ प्राप्त करना चाहिए ॥१०-२५॥

इति बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे भावबोधिन्यामुपसंहाराध्याय: ॥९९॥

बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्

लघूत्तरीय प्रश्न और उत्तर

(१) प्रश्न—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रणेता कौन हैं ?

उत्तर—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रणेता महामुनि पराशर जी हैं।

(२) प्रश्न—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में कुल कितने अध्याय हैं ?

उत्तर—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र कुल ९९ अध्याय से समन्वित ग्रन्थ है।

(३) प्रश्न—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रथम तथा पञ्चम अध्याय का नाम लिखिये ?

उत्तर—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रथम अध्याय का नाम 'सृष्टिक्रमकथनाध्याय' और पञ्चम 'ज्ञानाध्याय' है।

(४) प्रश्न—'भगवन्! परमं पुण्यं' इत्यादि पूर्ण श्लोक लिखकर उसका भाव प्रस्तुत कीजिये ?

उत्तर— भगवन्! परमं पुण्यं गुह्यं वेदाङ्गमुत्तमम् ।
त्रिस्कन्धं ज्यौतिषं होरा गणितं संहितेति च ॥

इसका आशय-हे भगवन्! वेद-वेदांग शास्त्रों में श्रेयस्कर ज्योतिष शास्त्र होरा, गणित तथा संहिता—इस प्रकार ३ भागों में विभक्त है।

(५) प्रश्न—होराशास्त्र के अनुसार किन-किन अवतारों को पूर्णावतार और किन अवतारों को जीवांशमिश्रित अवतार माना गया है ?

उत्तर—रामावतार, कृष्ण, नृसिंह तथा वराहावतार को पूर्णावतार अर्थात् पूर्ण परमात्मांश माना गया है एवं इनसे भिन्न जो अवतार हैं, उनमें जीवांश को भी युक्त माना गया है।

(६) प्रश्न—किन-किन ग्रहों से किन-किन महापुरुषों का अवतार हुआ है ?

उत्तर—सूर्य से रामावतार, चन्द्र से कृष्णावतार, भौम से नृसिंहावतार, बुध से बौद्धावतार, गुरु से वामन, शुक्र से परशुराम, शनि से कूर्म, राहु से वराह तथा केतु से मत्स्यावतार हुआ है।

(७) प्रश्न—भचक्र के २७ विभाग करके प्रत्येक भाग में क्या कल्पना की गई है ?

उत्तर—भचक्र के २७ विभाग में अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों का स्थान-निर्धारण किया गया है, इसी प्रकार भचक्र को १२ विभाग कर मेषादि द्वादश राशियों का स्थान-निर्धारण किया गया है।

(८) प्रश्न—पाराशरानुसार ग्रहों के नाम लिखिये ?

उत्तर—सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये नव ग्रह हैं।

(९) प्रश्न—सूर्यादि ग्रह किन-किन वस्तुओं के कारक हैं ?

उत्तर—सूर्य आत्माकारक, चन्द्र मन, भौम सत्त्व, बुध वाचाल शक्ति, गुरु ज्ञान एवं शुक्र वीर्य और दु:ख का कारक है।

(१०) प्रश्न—सूर्य का स्वरूप प्रस्तुत कीजिये ?

उत्तर—सूर्य शहदसदृश पिङ्गल नेत्र, चर शरीर वाला, पित्त प्रकृति का, बुद्धिमान् एवं स्वल्प केश वाला पुरुष ग्रह है।

(११) प्रश्न—सप्त धातुओं में कौन किस धातु का स्वामी है ?

उत्तर—सूर्य अस्थि, चन्द्र रक्त, मंगल मज्जा, बुध त्वचा, गुरु वसा, शुक्र वीर्य और शनि स्नायु (नसों) का अधिपति है।

(१२) प्रश्न—राहु किस जाति का ग्रह है और उसका स्थान कहाँ है ?

उत्तर—राहु चाण्डाल जाति का अधिपति है एवं केतु शंकर जातियों का स्वामी है। शनि, राहु और केतु का स्थान दीमकाश्रित है।

(१३) प्रश्न—कौन-कौन ग्रह किन-किन ऋतुओं को अवगत कराते हैं ?

उत्तर—शुक्र का वसन्त, भौम तथा सूर्य का ग्रीष्म, चन्द्र का वर्षा, बुध का शरद, गुरु का हेमन्त और शनि का शिशिर ऋतु है।

(१४) प्रश्न—ग्रहों की उच्च-नीच राशियाँ अंकित करें ?

उत्तर—मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन और तुला—ये राशियाँ क्रम से सूर्यादि ग्रहों की उच्च राशियाँ हैं और इन राशियों से ठीक सप्तम राशियाँ सूर्यादि ग्रहों की नीच राशियाँ होती हैं।

(१५) प्रश्न—ग्रहों का तात्कालिक शत्रु-मित्र कैसे अवगत किया जाता है ?

उत्तर—रवि आदि सभी ग्रह जन्मकाल में जिस स्थान में हैं, वहाँ से १०, ४, ११, ३, १२, २ स्थानों में रहने वाले ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं। इन स्थानों से भिन्न स्थानों में रहने वाले ग्रह तात्कालिक शत्रु होते हैं।

(१६) प्रश्न—धूम नामक ग्रह कैसे स्पष्ट किया जाता है ?

उत्तर—धूम (अप्रकाश) नामक ग्रह के साधनार्थ तात्कालिक स्पष्ट सूर्य में ४ रा. १३ अं. २० क. युत करने से धूम नामक स्पष्ट ग्रह होता है, जो सभी कार्यों का नाश करने वाला होता है।

(१७) प्रश्न—गुलिक लग्नसाधन कैसे किया जाता है ?

उत्तर—गुलिकारम्भ समय को इष्टकाल मानकर लग्न-साधन विधि से लग्न-साधन करने से गुलिक लग्न होता है।

(१८) प्रश्न—प्राणपद साधनविधि स्पष्ट कीजिये।

उत्तर—सूर्योदय से जन्मकाल तक के समय को पलात्मक बनाकर १५ का भाग देने से जो राश्यादि प्राप्त हो; यदि सूर्य चर राशि में हो तो उस प्राप्ति को स्पष्ट सूर्य में जोड़ने से राश्यादि प्राणपद होता है।

(१९) प्रश्न—कालपुरुष के अङ्गों में मेषादि राशियों का न्यास कीजिये ?

उत्तर—भगवान् कालपुरुष के मस्तक में मेष, मुख में वृष, हृदय में मिथुन-कर्कट, पेट में सिंह, कटिप्रदेश में कन्या, बस्ति में तुला, लिङ्ग में वृश्चिक, जंघा में धनु, घुटने में मकर, घुटने के निचले भाग में कुम्भ और पैर में मीन राशि का निवासस्थान माना गया है।

(२०) प्रश्न—राशियों का चरादि में विभाग कैसे करते हैं ?

उत्तर—मेष, कर्क, तुला, मकर—ये चर राशियाँ हैं; वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ—ये स्थिर एवं मिथुन, कन्या, धनु, मीन—ये राशियाँ द्विस्वभावसंज्ञक हैं।

(२१) प्रश्न—धन राशि का स्वरूप व्यक्त कीजिए ?

उत्तर—धन राशि पृष्ठोदयी, सत्त्वगुणी, पिङ्गल वर्ण, रात्रिबली, अग्नितत्त्व, समदेह, धनुषधारी, पूर्वदिशावासी, भूमिचारी और तेजस्वी है। इसका स्वामी गुरु है।

(२२) प्रश्न—घटी लग्नसाधन-विधि बताइये ?

उत्तर—सूर्योदय से एक घटी प्रमाण से जो लग्न व्यतीत होता है, वही घटी लग्न कहा जाता है।

(२३) प्रश्न—बृहत्पाराशरहोराशास्त्र में १६ वर्ग बताये गये हैं, उनके नाम लिखिए ?

उत्तर—१. गृह, २. होरा, ३. द्रेष्काण, ४. चतुर्थांश, ५. सप्तमांश, ६. नवमांश, ७. दशमांश, ८. द्वादशांश, ९. षोडशांश, १०. विंशांश, ११. चतुर्विंशांश, १२. सप्तविंशांश, १३. त्रिंशांश, १४. खवेदांश, १५. अक्षवेदांश, १६. षष्ट्यंश—ये सभी वर्ग षोडशांश में आते हैं।

(२४) प्रश्न—नवमांश की गणना कैसे की जाती है ?

उत्तर—चर राशि में ग्रह है तो उसी राशि से, यदि स्थिर राशि में ग्रह है तो उससे नवीं राशि से, द्विस्वभाव राशि में ग्रह रहने से उससे पञ्चम राशि से नवमांश की गणना की जाती है।

(२५) प्रश्न—षोडश वर्ग में कितना-कितना विंशोपक बल होता है ?

उत्तर—होरा में १. त्रिंशांश में १, दृक्काण में १, षोडशांश में २, नवमांश में ३, गृह में ३॥, षष्ट्यंश में ४ और शेष ९ वर्गों में आधा-आधा करके कुल २० विंशोपक बल होते हैं।

(२६) प्रश्न—कुण्डली में १२ भावों के नाम दर्शाइये।

उत्तर—१, ४, ७, १० भावों को केन्द्र कहा जाता है। २, ५, ८, ११ भावों को पणफर कहा जाता है और ३, ६, ९, १२ भावों को आपोक्लिम कहा जाता है।

(२७) प्रश्न—मेषादि राशियों के दृष्टिभेद का प्रतिपादन कीजिए।

उत्तर—राशियाँ अपने सम्मुख और दोनों पार्श्व में दो, इस प्रकार कुल तीन स्थान में दृष्टि रखती हैं।

(२८) प्रश्न—किन्हीं दो अरिष्टकारक योग को लिखिए ?

उत्तर—१. लग्न से षष्ठ, अष्टम, द्वादशस्थ चन्द्र हो और चन्द्रमा पापग्रह द्वारा अवलोकित हो तो जातक का शीघ्र मरणकारक योग होता है।

२. शुभ ग्रह भी ६, ८, १२ भाव में वक्री हो एवं पाप ग्रह द्वारा दृष्ट हो तो एक मास में मरणकारक होता है।

(२९) प्रश्न—मातृकष्ट या मरणकारक योग लिखिए ?

उत्तर—चन्द्रमा यदि तीन क्रूर ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो उस जातक की माता मर जाती है या मरणसदृश कष्ट को प्राप्त होती है।

(३०) प्रश्न—पितृकष्टकारक योग कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—लग्न में शनि, सप्तम में भौम, षष्ठ में चन्द्रमा स्थित रहने से उस जातक का पिता मरणतुल्य कष्ट या मरण को प्राप्त हो जाता है। समस्त जीवों का पिता सूर्य होता है तथा माता चन्द्रमा होती है; अत: सूर्य-चन्द्र के शुभाशुभानुसार माता-पिता के शुभाशुभ का विचार करना चाहिए।

(३१) प्रश्न—किसी एक अरिष्टभङ्गयोग को लिखिए ?

उत्तर—यदि बुध, गुरु तथा शुक्र—इन ग्रहों में से एक भी ग्रह बलवान होकर केन्द्र में स्थित हो तो उस जातक का अरिष्ट नष्ट होकर उसे दीर्घायु योग प्राप्त होता है।

(३२) प्रश्न—सौ वर्ष जीवित रहने का योग प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—तुला लग्न में जन्म हुआ हो और द्वादश भाव में बलयुक्त होकर सूर्य स्थित हो तो बीच-बीच में सामान्य रोगी रहते हुए भी जातक १०० वर्ष तक वह जीवित रहता है।

(३३) प्रश्न—प्रथम भाव (लग्न) से क्या-क्या देखा जाता है ?

उत्तर—प्रथम भाव से शरीर, स्वरूप, वर्ण, बलाबल, सुख, दु:ख, स्वभाव आदि सभी विषयों का विचार करने का शास्त्रीय आदेश है।

(३४) प्रश्न—द्वितीय भाव से विचारणीय विषय प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—द्वितीय भाव से धन (आर्थिक स्थिति), धान्य, कुटुम्ब, मृत्यु, शत्रु, रत्न—ये सभी विषय विचार करने चाहिए।

(३५) प्रश्न—नवम एवं दशम भाव से क्या-क्या विचार किया जाता है ?

उत्तर—भाग्य, शाला, धार्मिक कृत्य—ये सभी नवम भाव से एवं राज्य, आकाश, पितृसम्बन्धी सभी विषय का विचार दशम भाव से करना चाहिए।

(३६) प्रश्न—सहज भाव का संक्षिप्त फल स्पष्ट करें ?

उत्तर—सहज भाव शुभ ग्रह से युत या दृष्ट हो तो वह जातक सहोदरों से युक्त एवं पराक्रमी होता है। मंगल और तृतीय स्थानाधिप तृतीय भाव को अवलोकित करें तो जातक को सहोदर सुख जानना चाहिए।

(३७) प्रश्न—दत्तक या कृत्रिम पुत्र का योग प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—पञ्चम भाव में मिथुन, कन्या, मकर, कुम्भ राशि पड़ी हो और उसमें शनि तथा मान्दि गुलिक हो तो दत्तक या कृत्रिम पुत्र का योग होता है।

(३८) प्रश्न—४० वर्ष में पुत्रप्राप्ति का योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—लग्न से नवम में गुरु हो और गुरु से नवम में शुक्र हो अथवा लग्नेश शुक्र से युत हो तो ४० वर्ष में पुत्ररत्न की प्राप्ति होती है।

(३९) प्रश्न—५६ वर्ष में पुत्रशोक योग लिखें ?

उत्तर—लग्न में गुलिक हो और लग्नाधिपति अपने परम नीच राशि में बैठा हो तो ५६ वें वर्ष में पुत्रहीन योग आता है।

(४०) प्रश्न—मुख में व्रणकारक योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—लग्नेश मंगल राशि (मेष, वृश्चिक) में हो या बुध की राशि (मिथुन, कन्या) में किसी भाव में बुध से दृष्ट लग्नेश हो तो मुख में व्रण होता है।

(४१) प्रश्न—जातक में कुष्ठयोग कैसे जाना जाता है ?

उत्तर—भौम या बुध के लग्नेश होकर चन्द्र, राहु तथा शनि से युक्त रहने पर जातक को कुष्ठ रोग का आभास होता है।

(४२) प्रश्न—जातक को पूर्ण दाम्पत्य सौख्य योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—यदि सप्तमेश अपनी राशि या सर्वोच्च में हो तो उस जातक का दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सुखमय व्यतीत होता है।

(४३) प्रश्न—अधिक स्त्रीयोग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—यदि सप्तमेश नीच या शत्रु राशि में निर्बल होकर बैठा हो तो उस जातक की स्त्री रोगयुक्ता होती है और उसकी बहुत-सी स्त्रियाँ होती हैं।

(४४) प्रश्न—दीर्घायु योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—अष्टमेश के केन्द्र में रहने से दीर्घायुर्दाय जातक को प्राप्त होता है।

(४५) प्रश्न—अल्पायु योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—अष्टमेश नीच में एवं अष्टम भाव में पाप ग्रह हो, लग्नेश निर्बल हो तो जातक अल्पायु होता है।

(४६) प्रश्न—परम भाग्यशाली योग लिखें ?

उत्तर—भाग्येश बली होकर भाग्यभाव में हो तो वह जातक परम भाग्यशाली होता है।

(४७) प्रश्न—पिता-पुत्र में वैमनस्यता का योग लिखें ?

उत्तर—यदि षष्ठेश के साथ लग्नेश भाग्यभाव में हो तो पिता-पुत्र में परस्पर शत्रुता होती है।

(४८) प्रश्न—भिक्षुक योग अंकित करें ?

उत्तर—दशमेश, तृतीयेश और भाग्येश यदि निर्बल अथवा नीच राशि में स्थित या अस्त हों तो जातक भिक्षुक होता है।

(४९) प्रश्न—लग्नेश के लग्न में रहने से क्या होता है ?

उत्तर—लग्नेश यदि लग्न में हो तो जातक पुष्ट शरीर वाला, पराक्रमी, मनस्वी, अधिक चञ्चल एवं अधिक स्त्री रखने वाला होता है।

(५०) **प्रश्न**—चतुर्थेश के लग्न में रहने से क्या होता है?

उत्तर—चतुर्थेश लग्न में हो तो जातक विद्या, गुण, भूमि और श्रेष्ठ वाहनों से परिपूर्ण होता है तथा उसे माता से सुख प्राप्त होता है।

(५१) **प्रश्न**—नवमेश के धनभाव में रहने से क्या होता है?

उत्तर—नवमेश धनभाव में हो तो जातक पण्डित, लोकप्रिय, धनी, कामी और स्त्री-पुत्रादि-सुख से युक्त होता है।

(५२) **प्रश्न**—धूम नामक ग्रह के लग्न में रहने से क्या होता है?

उत्तर—धूम नामक ग्रह लग्न में हो तो जातक योद्धा, निर्मल दृष्टि, निर्दय और अत्यन्त क्रूर स्वभाव का होता है।

(५३) **प्रश्न**—दशमस्थ पात ग्रह का फल लिखिए?

उत्तर—दशम भाव में पात ग्रह हो तो जातक सम्पत्तिशालि, धर्मज्ञ, धार्मिक स्वभाव वाला, महाबुद्धिमान् और पण्डित होता है।

(५४) **प्रश्न**—लग्नस्थ का परिधि फल दर्शायें?

उत्तर—लग्न में परिधि हो तो जातक विद्वान्, सत्यवक्ता, शान्त, धनी, पुत्रवान्, पवित्र, दाता तथा गुरु का भक्त होता है।

(५५) **प्रश्न**—आयभाव में चाप रहने से क्या होता है?

उत्तर—आयभाव में चाप हो तो जातक सदा लाभ प्राप्त करने वाला, नीरोग, प्रबल मन्त्रज्ञ, स्त्रीप्रिय एवं अस्त्र चलाने में दक्ष होता है।

(५६) **प्रश्न**—प्राणपद के लग्न में रहने से क्या होता है?

उत्तर—लग्न में प्राणपद हो तो जातक बलहीन, रोगी, गूँगा, पागल, मूर्ख, अङ्गहीन एवं सदा दु:खी होता है।

(५७) **प्रश्न**—फलकथन का अधिकारी कौन होता है?

उत्तर—जो व्यक्ति व्यक्त-अव्यक्त गणित में दक्ष हो; शब्दशास्त्र में निपुण एवं न्याय शास्त्र का ज्ञाता हो; दिग्देश, काल से भली-भाँति परिचित हो, जितेन्द्रिय हो, सत्यवादी हो, वही व्यक्ति समुचित फलादेश कर सकता है।

(५८) **प्रश्न**—उच्च रश्मिसाधन कैसे किया जाता है?

उत्तर—ग्रह के उच्च रश्मिसाधनार्थ—ग्रह में स्वनीच को घटाकर ६ से कम हो तो उसी को, यदि ६ से अधिक हो तो १२ राशि में शोधित कर शेष राश्यादि की राशि-संख्या में १ जोड़ने से और अंशादि को द्विगुणित करने से उस ग्रह की उच्च रश्मि होती है।

(५९) **प्रश्न**—पद किसे कहते हैं?

उत्तर—लग्न से जितने आगे की राशि में लग्नपति हो, उससे फिर उतने ही आगे

जो राशि हो, वह लग्न का पद कहलाता है। इसी प्रकार प्रत्येक भाव का पद जानना चाहिए ।

(६०) प्रश्न—पद से पेटसम्बन्धी व्याधि का ज्ञान कैसे होता है ?

उत्तर—पद से सप्तम स्थान में राहु अथवा केतु के रहने से जातक उदरसम्बन्धी व्याधि का अनुभव करता है।

(६१) प्रश्न—अर्गला किसको कहते हैं ?

उत्तर—जिससे ग्रह या भाव का फलनिश्चय होता है, उस योग को अर्गला कहते हैं। यदि राशि या ग्रह से २, ४, ११ स्थान में ग्रह हो तो अर्गलायोग होता है।

(६२) प्रश्न—स्थिर कारक का विभाजन किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—सूर्य और शुक्र में जो ग्रह बली हो, वह पितृकारक होता है। चन्द्र, शुक्र में जो बली हो, वह मातृकारक होता है। भौम से बहन, शाला, छोटे भाई और माता का भी विचार किया जाता है।

(६३) प्रश्न—लग्नादि द्वादश भावों के कारक ग्रह लिखें ?

उत्तर—लग्न के सूर्य, द्वितीय के गुरु, तृतीय के मंगल, चतुर्थ के चन्द्र, पञ्चम के गुरु, षष्ठ के मंगल, सप्तम के शुक्र, अष्टम के शनि, नवम के गुरु, दशम के बुध, आय के गुरु, व्यय के शनि—ये क्रम से लग्नादि द्वादश भावों के कारक ग्रह हैं।

(६४) प्रश्न—राजयोग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—यदि आत्माकारक के नवमांश में तथा लग्न के नवमांश में शुभ ग्रह हो और केवल शुभ ग्रह द्वारा अवलोकित हो तो जातक अवश्य राजा होता है।

(६५) प्रश्न—परस्त्रीगामी योग दर्शायें ?

उत्तर—यदि चन्द्रमा, भौम या शुक्र के षड्वर्ग में आत्माकारक ग्रह हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है।

(६६) प्रश्न—चोर से अपहृत धन वाला या स्वत: चौरयोग लिखें ?

उत्तर—आत्माकारकांश में गुलिक हो तथा उस पर चन्द्रमा की पूर्ण दृष्टि हो तो उस जातक का धन चोर हरण कर लेता है या वह स्वत: चोर बन जाता है।

(६७) प्रश्न—कारकांश से द्वितीय स्थान का फल प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—कारकांश से द्वितीय भाव में शुक्र और मंगल के षड्वर्ग हो तो जातक परस्त्रीगामी होता है। कारकांश से द्वितीय भाव में गुरु के रहने पर भी जातक पर स्त्री में आसक्त होता है।

(६८) प्रश्न—कारकांश कुण्डली से क्षयरोग का ज्ञान कैसे होता है ?

उत्तर—कारकांश से पञ्चम स्थान में मंगल तथा राहु दोनों के रहने से क्षय रोग की सम्भावना रहती है, उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो निश्चय ही क्षय रोग होता है।

(६९) प्रश्न—केमद्रुम नामक योग लिखें ?

उत्तर—आत्माकारक नवमांश अथवा लग्न, अथवा पद से द्वितीय तथा अष्टम भाव में तुल्य पाप ग्रह रहने पर केमद्रुम नामक योग होता है।

(७०) प्रश्न—मीन लग्न में उत्पन्न जातक के शुभाशुभ ग्रह कौन हैं ?

उत्तर—मीन लग्न में जन्म प्राप्त करने वाले जातक को शनि, रवि, बुध पाप फल-कारक हैं, मंगल और चन्द्रमा शुभ फलप्रद, मंगलकारक होकर भी स्वत: मारकत्व फल प्रदान नहीं करता है।

(७१) प्रश्न—आकृति योग के नाम लिखें ?

उत्तर—गदा, शकट, शृङ्गाटक, पक्षी, हल, वज्र, यव, कमल, वापी, यूप, शर, शक्ति, दण्ड, नौका, कूट, छत्र, चाप, अर्धचन्द्र, चक्र और समुद्र—ये २० आकृति योग कहे जाते हैं।

(७२) प्रश्न—दलयोग का लक्षण प्रस्तुत करें ?

उत्तर—३ केन्द्र में सभी शुभ ग्रह हों अथवा ३ केन्द्र में सभी पाप ग्रह हों तो क्रम से माला और सर्पनाम का दो दलयोग होता है।

(७३) प्रश्न—वीणा योग में उत्पन्न व्यक्ति क्या करता है ?

उत्तर—वीणा योग में उत्पन्न व्यक्ति गीत, नृत्य, बाजा में स्नेह रखने वाला, सुखी, धनी, नेता और बहुत सेवक वाला होता है।

(७४) प्रश्न—गजकेशरी योग कैसे बनता हैं ?

उत्तर—लग्न अथवा चन्द्रमा से यदि बृहस्पति केन्द्र में हो और केवल शुभग्रह से दृष्ट हो, अस्त, नीच और शत्रु राशि में न हो तो गजकेशरी नामक योग बनता है।

(७५) प्रश्न—चामर नामक योग लिखें ?

उत्तर—लग्नेश अपने उच्च में होकर केन्द्र में बैठा हो, उस पर गुरु की दृष्टि हो अथवा शुभ ग्रह, लग्न में नवम, दशम, सप्तम भाव में हो तो चामर योग होता है। चामर योग में उत्पन्न व्यक्ति राजमान्य, दीर्घायु और पण्डित होता है।

(७६) प्रश्न—वेशी, वोशी, उभयचारी योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—चन्द्रमा को छोड़कर भौमादि ग्रहों में से कोई भी ग्रह यदि सूर्य से दूसरे में रहे तो वेशी योग होता है, सूर्य के द्वादश में रहने से वोशी योग और दोनों (२।१२) में रहने से उभयचारी नामक योग होता है।

(७७) प्रश्न—राजयोग कैसे बनता है ?

उत्तर—पद में शुभ ग्रह और चन्द्रमा हो, द्वितीय भाव में गुरु हो, उस पर उच्चस्थ ग्रह की दृष्टि हो तो निश्चय राजयोग होता है।

(७८) प्रश्न—विशेष धनप्राप्ति योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—नवमेश और पञ्चमेश विशेषकर धनप्रद होते हैं। इन दोनों से युक्त जो ग्रह हों वे भी अपनी दशाकाल में धन प्रदान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

(७९) प्रश्न—धनहीन योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—लग्नेश के व्यय में और व्ययेश के लग्न में तथा मारकेश से युक्त या दृष्ट रहने पर जातक धनहीन होता है।

(८०) प्रश्न—अमितायुयोग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—कर्क लग्न हो, उसमें चन्द्र-गुरु बैठे हों, बुध-शुक्र केन्द्र में एवं रवि, मंगल, शनि—ये ३, ६, ११ भाव में बैठे हों तो अमितायुर्दाय होता है।

(८१) प्रश्न—दिव्य आयुर्दाय योग लिखें ?

उत्तर—सभी शुभ ग्रह केन्द्र-त्रिकोण में हों और सभी पाप ग्रह ३।६।११ में हों, अष्टम भाव में शुभ ग्रह की राशि पड़ी हो तो उस जातक की दिव्यायुर्दाय होती है।

(८२) प्रश्न—मारकेश किसको कहते हैं ?

उत्तर—सप्तम और द्वितीय स्थान को मारक स्थान कहते हैं, द्वितीय स्थान के स्वामी तथा सप्तम स्थान के स्वामी को मारकेश कहा जाता है।

(८३) प्रश्न—मरण स्थान का विचार कैसे करते हैं ?

उत्तर—तृतीय स्थान में शुभ ग्रह की दृष्टि या योग हो तो तीर्थस्थान में मरण होगा, पाप की दृष्टि या युति रहने से अधार्मिक क्षेत्र में मरण होगा। शुभ-पाप ग्रह का संमिश्रण रहने पर मध्यम स्थान में अन्त्य होगा।

(८४) प्रश्न—मरण के पश्चात् गन्तव्य स्थान का विचार कैसे किया जाता है ?

उत्तर—लग्न से ६, ७, ८ स्थानों में से किसी एक स्थान में गुरु हो तो देवलोक, चन्द्र-शुक्र हो तो चन्द्रलोक, रवि-भौम रहने पर भूलोक एवं बुध, शनि हो तो मरण के बाद अधोलोक में जीव चला जाता है।

(८५) प्रश्न—ग्रहों के बालादि अवस्था का ज्ञान कैसे किया जाता है ?

उत्तर—विषम राशियों में ६, ६ अंशों से क्रम से बाल, कुमार, युवा, वृद्ध तथा मृत—ये ५ अवस्थायें होती हैं। सम राशियों में विपरीत अर्थात् ६-६ अंशों में मृत, वृद्ध, युवा, कुमार और बालादि अवस्था जाननी चाहिए।

(८६) प्रश्न—दीप्तादि कितनी अवस्थायें ग्रहों की होती हैं ?

उत्तर—दीप्त, स्वस्थ, मुदित, शान्त, दीन, दुःखी, विकल, खल, क्रोधी—इस प्रकार ग्रहों की दीप्तादि अवस्थायें होती हैं।

(८७) प्रश्न—ग्रहों की शयनादि अवस्था प्रस्तुत करें ?

उत्तर—शयन, उपवेशन, नेत्रपाणि, प्रकाशन, गमन, आगमन, सभावास, आगम, भोजन, नृत्यलिप्सा, कौतुक तथा निद्रा—ये ग्रहों की शयनादि अवस्थायें हैं।

(८८) प्रश्न—दशाभेद कितने हैं और मुख्य दशा कौन-कौन है ?

उत्तर—दशाभेद तो विभिन्न हैं, उनमें सर्वसाधारण के लिए विंशोत्तरी दशा मुख्य है। विशेष रूप से अष्टोत्तरी, षोडशोत्तरी, द्वादशोत्तरी, पञ्चोत्तरी, षष्टिहायनी आदि अनेक दशा का उल्लेख शास्त्रों में प्राप्त है।

(८९) प्रश्न—यदि विंशोत्तरी मुख्य दशा है तो उसका क्रम व्यक्त कीजिए ?

उत्तर—कृत्तिका से प्रारम्भ करके क्रम से सूर्य, चन्द्र, भौम, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र—ये तीन आवृत्ति से दशाधिप होते हैं।

(९०) प्रश्न—सूर्यादि दशाओं का दशावर्ष प्रस्तुत कीजिए ?

उत्तर—सूर्यादि दशाओं का दशावर्ष क्रम से ६, १०, ७, १८, १६, १९, १७, ७, २० है।

(९१) प्रश्न—जन्मकालिक दशा के मुख्य भोग्य वर्षादि कैसे ज्ञात करते हैं ?

उत्तर—जिस ग्रह की दशा में जन्म हो, उसकी दशावर्षसंख्या को भयात् से गुणा कर भभोग से भाग दे तो दशा के भुक्त वर्षादि होंगे। उसको कुल दशावर्षप्रमाण में घटा देने पर दशा के भोग्य वर्षादि होते हैं।

(९२) प्रश्न—षष्टिहायिनी दशा का विचार कब किया जाता है ?

उत्तर—जिसके जन्मलग्न में रवि हो, उस जातक को षष्टिहायनी नामक दशा से शुभाशुभ फल बताना चाहिए।

(९३) प्रश्न—प्रात:-सायं सन्ध्या का विभाजन कैसे किया जाता है ?

उत्तर—अर्धास्त सूर्यबिम्ब से ५ घटी पूर्व, ५ घटी पश्चात् एवं अर्ध सूर्योदय से ५ घटी पूर्व, ५ घटी पश्चात् इस प्रकार १०-१० घटी सायं और प्रात:सन्ध्या होती है।

(९४) प्रश्न—तृतीय भाव में स्थित राशि की चक्रदशा में क्या फल होता है ?

उत्तर—तृतीयस्थ राशि की चक्रदशा में अपने बन्धुओं को सुख, शौर्य, धैर्य, अतिशय सुख, सुवर्णादि आभूषण, वस्त्र का लाभ और राजा से आदर-सम्मान प्राप्त होता है।

(९५) प्रश्न—कर्मभावस्थ राशि का दशाफल बतायें ?

उत्तर—कर्मभावस्थ राशि की दशा में राज्यप्राप्ति, भूप से आदर, स्त्री-पुत्र-सम्बन्धी सौख्य, धन-धान्यवृद्धि, धार्मिक कथा-वार्ता के माध्यम से समय व्यतीत होता है।

(९६) प्रश्न—चरादि राशियों के दशावर्ष प्रस्तुत करें ?

उत्तर—चर राशियों में ७ वर्ष, स्थिर राशियों में ८ वर्ष एवं द्विस्वभाव राशियों में ९ वर्ष दशावर्षप्रमाण बताया गया है।

(९७) प्रश्न—कारक दशा किसे कहा जाता है ?

उत्तर—आत्माकारक ग्रह से दशा आरम्भ कर क्रम से आठ कारकों की दशा कारकदशा कही गयी है।

(९८) प्रश्न—पञ्च स्वर किसे कहते हैं ?

उत्तर—अकार, इकार, उकार, एकार और ओकार को पञ्च स्वर कहा गया है।

(९९) प्रश्न—योगिनी कितने हैं, उनके नाम प्रस्तुत करें ?

उत्तर—योगिनी नामक दशा में आठ योगिनियाँ होती हैं; जिनके नाम क्रमश: मंगला, पिङ्गला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा एवं संकटा हैं।

(१००) प्रश्न—तारा दशा का निर्माण कैसे किया जाता है ?

उत्तर—विंशोत्तरीय दशानुसार ही तारा दशा मानी गई है।

(१०१) प्रश्न—सूर्यदशा में सूर्यान्तर का फल लिखें ?

उत्तर—सूर्य स्वोच्च या स्वगृह, केन्द्र, त्रिकोण में हो तो धन-धान्य-लाभ, पदोन्नति आदि शुभ कार्य होते हैं। यदि सूर्य नीचादि अशुभ स्थान में हो तो अशुभ फलदायक होता है।

(१०२) प्रश्न—सूर्य की महादशा में भौमान्तर दशा का फल प्रस्तुत करें ?

उत्तर—सूर्य की महादशा में मंगल का अन्तर हो तो जातक को भूमिलाभ, धन-धान्य की वृद्धि, गृह आदि का लाभ होता है। शर्त यह है कि मंगल शुभ स्थान अथवा केन्द्र त्रिकोण में हो, अन्यथा विपरीत फल प्राप्त होगा।

(१०३) प्रश्न—रविमहादशा में केतु के अन्तर्दशाफल का निरूपण कीजिए ?

उत्तर—रवि में केतु की अन्तर्दशा प्रारम्भ होने पर देह में कष्ट, मानसिक तनाव, धनहानि, राजभय, बन्धु-बान्धवों से वैनस्यता, कलह आदि होता है।

(१०४) प्रश्न—चन्द्रमा की महादशा में भौमान्तर्दशा कैसी होती है ?

उत्तर—चन्द्रमा में मंगल का अन्तर आने पर यदि मंगल केन्द्र-त्रिकोण में हो तो भाग्यवृद्धि, राजसम्मान, वस्त्राभूषण का लाभ एवं कार्य की सिद्धि होती है।

(१०५) प्रश्न—मंगल में राहु का अन्तर आने पर क्या फल प्राप्त होता है ?

उत्तर—मंगल में राहु का अन्तर हो तो राहु के स्वमूल, त्रिकोण, स्वोच्चादि स्थान में रहने पर राजसुख, भूमिलाभ एवं स्त्री-पुत्र से सुख प्राप्त होता है।

(१०६) प्रश्न—'द्वितीयं धूननाथे तु' इस श्लोक को पूरा लिख कर इसका तात्पर्य प्रस्तुत करें ?

उत्तर— द्वितीयं धूननाथे तु महारोगो भविष्यति।
सूर्यप्रमाणं शान्तिं च कुर्यादारोग्यसम्भवाम्॥

तात्पर्य यह कि यदि द्वितीयेश या सप्तमेश हो तो महारोगभय होता है। उसके शान्त्यर्थ सूर्योपासना करनी चाहिए।

(१०७) प्रश्न—गुरु में गुरु का अन्तर्दशाफल निरूपण कीजिए ?

उत्तर—गुरु में गुरु की अन्तर्दशा हो तो यदि गुरु स्वोच्च, स्वराशि, केन्द्र, त्रिकोण में स्थित हो तो जातक अनेक राजाओं का अधिपति एवं धन-धान्य से पूर्ण होता है।

(१०८) प्रश्न—'मन्दस्यान्तर्गते चन्द्रे' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें ?

उत्तर— मन्दस्यान्तर्गते चन्द्रे जीवदृष्टिसमन्विते।
स्वोच्चे स्वक्षेत्रकेन्द्रस्थे त्रिकोणे लाभगेऽपि वा॥

(१०९) प्रश्न—बुध की दशा में किसी एक का अन्तर्दशाफल लिखें ?

उत्तर— सौम्यस्यान्तर्गते चन्द्रे लग्नात्केन्द्रत्रिकोणगे।
स्वोच्चे वा स्वर्क्षगे वापि गुरुदृष्टिसमन्विते।
योगस्थानाधिपत्येन योगप्राबल्यमादिशेत्॥

(११०) प्रश्न—केतु में केतु का ही अन्तर आने पर क्या होता है ?

उत्तर—यदि केतु अपने नीच राशि में, अस्त ग्रह से युत होकर ८,११ में हो तो जातक को हृदयरोग, मान-धन-पशु-हानि, स्वजन को कष्ट और मानसिक चञ्चलता होती है।

(१११) प्रश्न—शुक्रान्तर्दशाध्याय में से एक श्लोक लिखें ?

उत्तर— षष्ठाष्टमव्यये शुक्रे पापयुक्तेऽथ वीक्षिते।
चौरादिव्रणभीतिश्च सर्वत्र जन-पीडनम् ॥

(११२) प्रश्न—'गीतावाद्यप्रसङ्गादि' इत्यादि पूर्ण श्लोक लिखकर तात्पर्य प्रस्तुत करें ?

उत्तर— गीतवाद्यप्रसङ्गादि विद्वज्जनविभूषणम्।
गोमहिष्यादिवृद्धिश्च व्यवसायेऽधिकं फलम् ॥

तात्पर्य यह कि गाने-बजाने वाले और विद्वानों से सम्पर्क, गौ, महिष्यादि पशुओं का लाभ, व्यवसाय से विशेष फलदायक होता है।

(११३) प्रश्न—गुरु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तर आने पर जातक को क्या होता है ?

उत्तर—गुरु के अन्तर में राहु का प्रत्यन्तर प्राप्त होने पर जातक को चाण्डाल जाति से विरोध, उसके द्वारा धन की हानि और कष्ट होता है।

(११४) प्रश्न—'उत्तरस्यां भवेल्लाभो' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें ?

उत्तर— उत्तरस्यां भवेल्लाभो हानि: स्यात्तु चतुष्पदात्।
अधिकारो नृपागारे भृगो: प्रत्यन्तरे भवेत् ॥

(११५) प्रश्न—सूक्ष्मान्तर दशासाधन कैसे किया जाता है ?

उत्तर—प्रत्यन्तर दशामान को ग्रहों की पृथक्-पृथक् दशामान से गुणाकर १२० का भाग दें। लब्धि प्रत्यन्तर दशा में अलग-अलग सूक्ष्मान्तर्दशा का मान होगा।

(११६) प्रश्न—वृष की दशा में मकर-कुम्भ के अन्तर में क्या होता है ?

उत्तर—वृष की दशा में मकर-कुम्भ की अन्तर्दशा में जातक को कलह एवं नवीन रोगोत्पत्ति होती है; गुरु के अन्तर में विद्या-लाभ एवं शारीरिक सुख होता है।

(११७) प्रश्न—'मिथुने स्वांशके शुक्रे' इत्यादि श्लोक लिखें ?

उत्तर— मिथुने स्वांशके शुक्रे धनवस्त्रसभागम:।
पितृमातृमृतेर्भीति: ज्वरश्च व्रणसम्भव: ॥
दूरदेशप्रयाणं च मिथुने स्वांशके कुजे ॥

(११८) प्रश्न—कुम्भांशीय राशियों के दशाफल का निरूपण करें ?

उत्तर—कुम्भांशीय वृष की दशा में धन-वृद्धि, मेष में नेत्रपीड़ा, मीन में भ्रमण, कुम्भ में धनलाभ, मकर में कार्यसाफल्य एवं धन में ज्ञानवृद्धि होती है।

(११९) प्रश्न—जीवाष्टक वर्ग के फल का निरूपण करें ?

उत्तर—गुरु से पञ्चम भाव से ज्ञान, धार्मिक कृत्य और पुत्र का विचार किया जाता है। उस पञ्चम स्थान में अष्टक वर्ग शुभ फल अधिक हो तो सन्तान का सुख उत्तम होता है।

(१२०) प्रश्न—'तन्वादि व्ययपर्यन्तं' इत्यादि श्लोक को पूरा करें ?

उत्तर— तन्वादिव्ययपर्यन्तं दृष्ट्वा भावफलानि वै।
अधिके शोभनं ज्ञेयं हीने हानिं विनिर्दिशेत् ॥

(१२१) प्रश्न—सूर्यादि ग्रहों की अपने परमोच्च में और परम नीच में रश्मि (किरण) संख्या कितनी होती है ?

उत्तर—सूर्यादि ग्रह की अपने परमोच्च भाग में रहने पर क्रम से १०, ९, ५, ५, ७, ८, ५ रश्मिसंख्या होती है और परम नीच भाग में रहने पर शून्य रश्मि होती है। बीच में हो तो अनुपात से सूर्यादि ग्रहों की रश्मिसंख्या अवगत करनी चाहिए।

(१२२) प्रश्न—रश्मिसंख्यानुसार फलबोधक पद्य को प्रस्तुत करें ?

उत्तर— एकादि पञ्चपर्यन्तं रश्मिसंख्या भवेद् यदि।
दरिद्रा दु:खसन्तप्ता अपि जाता: कुलोत्तमे।
परतो दशकं यावत् निर्धना भारवाहका: ॥

(१२३) प्रश्न—सुदर्शन चक्र द्वारा क्या-क्या फलादेश किया जाता है ?

उत्तर—सुदर्शन चक्र द्वारा दैवज्ञजन मनुष्यों को जन्म से अन्त्य तक का प्रति वर्ष, प्रतिमास और प्रतिदिनसम्बन्धी शुभाशुभ फल का ज्ञान कराते हैं।

(१२४) प्रश्न—सुदर्शन चक्र का निर्माण कैसे किया जाता है ?

उत्तर—एक बिन्दु से तीन वृत्त बनाकर उसमें केन्द्र से बराबर विभाग करके १२ रेखायें खींचे तो सुदर्शन नामक चक्र तैयार होता है।

(१२५) प्रश्न—सुदर्शन चक्र में ग्रहसहित लग्नन्यास कैसे करते हैं ?

उत्तर—सुदर्शन चक्र में प्रथम वृत्त के अन्तर्गत १२ कोष्ठ में लग्नादि द्वादश भाव ग्रहसहित रखें। उससे ऊपर के वृत्त के १२ कोष्ठ में चन्द्रनिष्ठ राशि से १२ भाव में ग्रहसहित रखें। ऊपर वाले तृतीय वृत्त में सूर्याश्रित राशि से १२ कोष्ठ में ग्रहसहित न्यास करना चाहिए।

(१२६) प्रश्न—जिस भाव का न कोई ग्रह हो और न ग्रहों की दृष्टि हो तो फल कैसे बताना चाहिए ?

उत्तर—जिस भाव में न कोई ग्रह हो और न ग्रहों की दृष्टि हो तो उस भाव के राशिस्वामी के अनुरूप फलादेश करना चाहिए।

(१२७) प्रश्न—'एवं सर्वेषु खेटेषु' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें।

उत्तर— एवं सर्वेषु खेटेषु भावेष्वपि द्विजोत्तम।
शुभाशुभत्वं सञ्चिन्त्य ततस्तत्फलमादिशेत् ॥

(१२८) प्रश्न—पञ्च महापुरुष के नाम क्या हैं ? उनका निरूपण करें।

उत्तर—पञ्च महापुरुष के नाम ये हैं—१. रुचक, २. भद्र, ३. हंस, ४. मालव्य और ५. शश। ये प्रसिद्ध पञ्च महापुरुष कहे गये हैं।

(१२९) प्रश्न—भद्र नामक महापुरुष का लक्षण प्रस्तुत करें ?

उत्तर—सिंह के समान प्रतिभायुक्त, उच्च वक्षःस्थल, गजगामी, स्थूल और लम्बी भुजा वाला, पण्डित, योगज्ञाता, सात्त्विक, सुन्दर पैर, सुन्दर दाढ़ी-मूँछ वाला, भोगी, शंख, चक्र, गदा, शर, गज, ध्वजा, हल—इन चिह्नों से युक्त, शास्त्रज्ञाता, घुँघुराले बालों से युक्त, सभी कार्यों में स्वतन्त्र, अपने परिवार का पूर्ण सन्तुष्टि के साथ भरण-पोषण करने वाला एवं दीर्घायु भद्र नामक महापुरुष होता है।

(१३०) प्रश्न—पञ्च महाभूत के स्वामी कौन-कौन हैं ?

उत्तर—अग्नि, भूमि, आकाश, जल और वायु—ये पञ्च महाभूत हैं। इनके स्वामी क्रम से मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि हैं।

(१३१) प्रश्न—अग्नितत्त्व पुरुष का लक्षण लिखिए ?

उत्तर— क्षुधार्तश्चपल: शूर: कृश: प्राज्ञोऽतिलक्षण: ।
तीक्ष्णो गौरतनुर्मानी वह्निप्रकृतिको नर: ।।

(१३२) प्रश्न—श्रेष्ठ (उत्तम) पुरुषों के गुण का विवेचन कीजिए ?

उत्तर—उत्तम पुरुष इन्द्रिय तथा मन को वश में रखते हैं। तपस्या, क्षमा, शौच, सरलता, सत्यवक्ता और सन्तोष—ये गुण उत्तम पुरुषों में रहते हैं।

(१३३) प्रश्न—उदासीन पुरुषों के गुण बताइये ?

उत्तर—कृषि कर्म, व्यापार, पशुसेवा में निपुणता, सत्यासत्य-वक्ता—ये सब उदासीन पुरुषों के गुण होते हैं।

(१३४) प्रश्न—'सेव्य-सेवकयोरेवं' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें ?

उत्तर— सेव्य-सेवकयोरेव कन्यकावरयोरपि ।
गुणै: सदृशयोरेव प्रीतिर्भवति निश्चला ।।

(१३५) प्रश्न—जातक में किस-किसके स्वभाव आते हैं ?

उत्तर—जातक में माता, पिता, जन्मकाल तथा सङ्गति—इन चार के गुण, स्वभाव, धर्म, प्रकृति आदि स्वत: आते हैं।

(१३६) प्रश्न—किसी जातक का संवत्सर ज्ञात नहीं हो तो कैसे ज्ञात किया जाता है ?

उत्तर—प्रश्नकालिक लग्न में जिस राशि का द्वादशांश विद्यमान हो, उसी राशि के संवत्सर को प्रश्नकर्त्ता का संवत्सर जानना चाहिए।

(१३७) प्रश्न—किसी एक प्रवज्या योग को प्रस्तुत करें ?

उत्तर—यदि स्व जन्मराशि का अधिपति बलहीन हो और केवल शनि से दृष्ट हो तो प्रवज्या योग कहा गया है।

(१३८) प्रश्न—प्रवज्या से च्युत योग लिखें ?

उत्तर—यदि प्रवज्याकारक ग्रह युद्ध में पराजित हो तो जातक प्रवज्या लेकर कालान्तर में प्रवज्या त्याग देता है।

(१३९) प्रश्न—सुशीला रूपशीलयुक्ता कन्या का योग लिखें ?

उत्तर—कन्या के जन्मकाल में लग्न तथा चन्द्र दोनों समराशि में हों तो वह कन्या समस्त स्त्रियोचित गुणों से समन्वित और स्वभाव से सुशीला, रूपवती एवं शारीरिक सुख से युक्त होती है।

(१४०) प्रश्न—स्त्री की कुण्डली में अष्टमस्थ सूर्यफल का निरूपण करें ?

उत्तर—स्त्री के जन्माङ्ग में सूर्य अष्टम भाव में हो तो वह स्त्री दु:ख-दरिद्रता से युक्त, क्षताङ्गी एवं धर्म-कर्म से हीन होती है।

(१४१) प्रश्न—स्त्री की कुण्डली में अष्टम बुध हो तो क्या होता है ?

उत्तर—स्त्री की कुण्डली में अष्टमस्थ बुध रहने पर वह धर्म से च्युत, भययुक्त, अभिमानिनी, धन-गुण से हीन एवं कलहप्रिया होती है।

(१४२) प्रश्न—वन्ध्या योग का निरूपण करें ?

उत्तर—लग्न में चन्द्रमा और शुक्र यदि शनि या भौम से युक्त हों और पञ्चम भाव पर पाप ग्रह की दृष्टि या योग हो तो वह स्त्री वन्ध्या होती है।

(१४३) प्रश्न—कन्या को पैतृक सुखयोग लिखें ?

उत्तर—मिथुन अथवा कन्या लग्न में चन्द्रमा और शुक्र हो तो वह कन्या अपने पिता के गृह में सभी सौख्य से युक्त रहती है।

(१४४) प्रश्न—काकवन्ध्या योग कैसे बनता है ?

उत्तर—अष्टम भाव में कर्क अथवा सिंह राशि हो, उसमें सूर्य-चन्द्र दोनों हों तो वह स्त्री वन्ध्या होती है। यदि मिथुन, कर्क, कन्या राशिस्थ, अष्टम में बुध-चन्द्रमा रहे तो वह स्त्री काकवन्ध्या होती है।

(१४५) प्रश्न—मृतवत्सा योग प्रस्तुत करें ?

उत्तर—सप्तम में राहु से युक्त सूर्य हो या अष्टम में राहु से युक्त गुरु-शुक्र हो एवं पञ्चम भाव पापयुक्त हो तो वह स्त्री मृतवत्सा होती है।

(१४६) प्रश्न—पति एवं पितृकुलनाशकारक योग लिखें ?

उत्तर—जिस कन्या के जन्मसमय में चन्द्र और लग्न में पाप ग्रह का कर्त्तरी योग हो तो वह कन्या पतिकुल एवं पितृकुल का नाश करने वाली होती है।

(१४७) प्रश्न—कर्त्तरी योग कैसे बनता है ?

उत्तर—लग्न से द्वादश भाव में मार्गी पाप ग्रह हो और द्वितीय भाव में वक्री पाप ग्रह के रहने पर कर्त्तरी नामक योग होता है, इसी प्रकार चन्द्रमा से भी जानना चाहिए।

(१४८) प्रश्न—वेदादि शास्त्रज्ञातयोग लिखें ?

उत्तर—यदि मंगल, बुध, गुरु तथा शुक्र बली हो और सम राशि का लग्न हो तो वह स्त्री अनेक शास्त्रों की ज्ञाता एवं ब्रह्मवादिनी होती है।

(१४९) प्रश्न—'स्निग्धं पादतलं' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें ?

उत्तर— स्निग्धं पादतलं स्त्रीणां मृदुलं मांसजं समम्।
रक्तमस्वेदमुष्णं च बहुभोगप्रदायकम् ।।

(१५०) प्रश्न—दु:ख-सुखदायक पाद-नख का लक्षण लिखिए ?

उत्तर—जिस कन्या के नाखून रक्तवर्ण, चिकने, ऊँचे तथा गोल हों तो वह स्त्री सुख भोगने वाली होती है। कटे, फटे, काले, नाखून हो तो दु:खभागिनी होती है।

(१५१) प्रश्न—अंगुष्ठलक्षण प्रस्तुत करें ?

उत्तर—पैर का अँगूठा उन्नत, पुष्ट तथा गोल हो तो सुखप्रद; लेकिन यदि टेढ़ा, छोटा, चिपटा हो तो दु:खप्रद जानना चाहिए।

(१५२) प्रश्न—जानु (घुटना) का लक्षण लिखें ?

उत्तर—जिस स्त्री का घुटना गोलाकार, पुष्ट और चिक्कन हो तो शुभप्रद, मांसहीन रहने पर व्यभिचारिणी और ढीला हो तो दरिद्रा होती है।

(१५३) प्रश्न—नाभि का लक्षण अवगत करायें ?

उत्तर—स्त्री की नाभि गहरी, दाहिनी भाग में घुमी हुई हो तो सर्व सुखदायक होती है, ऊपर को उठी ग्रन्थि वाली एवं वामावर्त वाली नाभि अनिष्ट फलप्रद होती है।

(१५४) प्रश्न—करपृष्ठ-लक्षण प्रस्तुत करें ?

उत्तर—स्त्री के हाथ का पृष्ठ भाग पुष्ट, कोमल, केशहीन होने पर शुभ फलप्रद एवं शिरायुक्त, रोमसहित गहरा हो तो अशुभ फलदायक होता है।

(१५५) प्रश्न—'रक्तवर्णा नखास्तुङ्गा' इत्यादि श्लोक पूरा लिखें ?

उत्तर— रक्तवर्णा नखास्तुङ्गा सशिखाश्च शुभप्रदा: ।
निम्ना विवर्णा पीता वा पुष्पिता दु:खदायका: ।।

(१५६) प्रश्न—रोमावर्त का लक्षण लिखिए ?

उत्तर—हृदय, नाभि, हाथ, कान, पृष्ठ के दाहिने भाग और बस्ति में रोमावली का दाक्षिणावर्त चक्र रहने पर शुभ और वामावर्त हो तो अशुभजनक जानना चाहिए।

(१५७) प्रश्न—अपत्यहानियोगजन्य श्लोक से अवगत करायें ?

उत्तर— गुरुलग्नेश-दारेशपुत्रस्थानाधिपेषु च।
सर्वेषु बलहीनेषु वक्तव्या त्वनपत्यता ।।

(१५८) प्रश्न—मातृशाप से अनपत्ययोग लिखिए ?

उत्तर—पञ्चमेश, चन्द्रमा यदि नीच या पाप ग्रहों के बीच में हों तथा चतुर्थ-पञ्चम भाव में पाप ग्रह बैठे हों तो माता के शाप से जातक सन्तानहीन होता है।

(१५९) प्रश्न—भ्रातृशाप से कैसे अनपत्य योग होता है ?

उत्तर—तृतीयेश, राहु, भौम—ये पुत्रभाव में हों और पञ्चमेश-लग्नेश मृत्युभाव में हों तो भ्राता के शाप से अनपत्यता जाननी चाहिए।

(१६०) प्रश्न—पूजा में ध्यानार्थ सूर्य ग्रह का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—कमल के आसन में स्थित, हस्त में कमलफूल लिए हुए, कमल के समान रक्त वर्ण, सप्ताश्व के रथ में आरूढ, दो भुजाओं से सुशोभित—इस तरह सूर्य का ध्यान करना चाहिए।

(१६१) प्रश्न—शनि के स्वरूप दर्शायें ?

उत्तर—नीलमणि के सदृश कान्ति वाला, चार भुजा, शूल, शर, धनुष धारण किया हुआ, गृध्र पर सवार—इस प्रकार शनि का स्वरूप जानना चाहिए।

(१६२) प्रश्न—होमार्थ ग्रहों की समिधा तथा हवनसंख्या लिखें ?

उत्तर—सूर्यादि ग्रहों के प्रसन्नतार्थ क्रम से आक, पलास, खैर, चिरचिरी, पीपल, गूलर, शमी, दूब तथा कुश की समिधा, मधु, घृत, दही अथवा दूध के साथ; १०८ या २८ हवनसंख्या हैं।

(१६३) प्रश्न—सूर्यादि ग्रहों की दक्षिणा प्रस्तुत करें ?

उत्तर—सूर्यादि ग्रहों के प्रीत्यर्थ निम्न दक्षिणा देनी चाहिए—सूर्य—सवत्सा गौ, चन्द्र—शंख, मंगल—बैल, बुध—सुवर्ण, गुरु—वस्त्र, शुक्र—घोड़ा, शनि—काली गौ, राहु—लोहे का अस्त्र और केतु—बकरा—ये ग्रहदक्षिणा हैं।

(१६४) प्रश्न—'यस्य यश्च यदा' इत्यादि श्लोक लिखें ?

उत्तर— यस्य यश्च यदा दुःस्थ स तं यत्नेन पूजयेत्।
एषां धात्रा वरे दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ॥

(१६५) प्रश्न—अमावास्या में जननशान्तिविधि लिखें ?

उत्तर—अमावास्या में सन्तानोत्पत्ति होने से दरिद्रता होती है। अतः उसकी शान्ति करनी चाहिए। शान्ति विधि—विधि-विधान से कलशस्थापना कर उसमें गूलर, वट, पीपल, आम, नीम के पल्लव, जड़ और छाल तथा पञ्चरत्न रखकर वस्त्र से आच्छादित कर विधिपूर्वक पूजन करने से अमावास्याजननजन्य अनिष्ट का नाश होता है।

(१६६) प्रश्न—गण्डान्त कितने प्रकार के होते हैं और उनका फल क्या है ?

उत्तर—गण्डान्त तिथि, नक्षत्र एवं लग्नसम्बन्धी तीन प्रकार के होते हैं। गण्डान्त में जन्म, यात्रा, विवाह आदि शुभ कार्य मरणजनक कहा गया है।

(१६७) प्रश्न—तिथिगण्डान्त कैसे बनता है ?

उत्तर—५, १०, १५ तिथि का अन्त और १, ६, ११ तिथि के आदि—ये २-२ घड़ी मिलाकर ४ घड़ी तिथिगण्डान्त कहा जाता है।

(१६८) प्रश्न—नक्षत्रगण्डान्त क्या है ?

उत्तर—रेवती, अश्विनी, आश्लेषा, मघा, ज्येष्ठा, मूल के अन्त-आरम्भ की ४-४ घड़ी नक्षत्रगण्डान्त कहा गया है।

(१६९) **प्रश्न**—लग्नगण्डान्त क्या है ?

उत्तर—मीन-मेष, कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु लग्न के अन्त्य-आदि मिलाकर १ घड़ी लग्नगण्डान्त कहा गया है।

(१७०) **प्रश्न**—त्रीतर दोष कैसे होता है ?

उत्तर—यदि लगातार तीन पुत्र के बाद कन्या का जन्म हो या तीन कन्याजन्म के बाद पुत्र हो तो ऐसे योग को त्रीतर योग कहा गया है, ऐसी स्थिति में दोषशमनार्थ शान्ति करनी चाहिए।

(१७१) **प्रश्न**—प्रसवविकार क्या है और उसका फल क्या होता है ?

उत्तर—मनुष्य की स्त्री में गाय, सरीसृप आदि का जन्म हो, इसे ही प्रसवविकार कहा जाता है। ऐसा होने पर उस जातक के घर या कुल में अनिष्ट होता है, अत: दोष के शान्त्यर्थ सावधानीपूर्वक शान्ति करनी चाहिए।

(१७२) **प्रश्न**—'ये सुशास्त्रं पठ' इत्यादि श्लोक का तात्पर्य प्रस्तुत करें।

उत्तर—जो व्यक्ति इस उत्तम होराशास्त्र को पढ़ता है या भक्तिपूर्वक अध्ययन करता है अथवा सावधानीपूर्वक श्रवण करता है, उसके आयुर्दाय, बल, बुद्धि तथा धन, यश की सदैव वृद्धि होती है।

(१७३) **प्रश्न**—माता-पिता-भ्राता के नक्षत्र में जन्म हो तो क्या करना चाहिए।

उत्तर—यदि सोदर भ्राता या माता-पिता के जन्मनक्षत्र में किसी का जन्म हो तो उन दोनों अथवा उनमें से एक का मरण या मरणसदृश कष्ट होता है। अत: ऐसी स्थिति में विधिपूर्वक शान्ति करनी चाहिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न और उत्तर

(१) प्रश्न—आकाशस्थ ग्रह ······· भ्रमण करते हैं।
उत्तर—(क) पश्चिमाभिमुख (ख) पूर्वाभिमुख (ग) दक्षिणाभिमुख (घ) उत्तराभिमुख।

(२) प्रश्न—ग्रहों में सेनापति ग्रह ······· है।
उत्तर—(क) सूर्य (ख) शुक्र (ग) मंगल (घ) गुरु।

(३) प्रश्न—ग्रहों में अस्थिकारक ग्रह ······· है।
उत्तर—(क) चन्द्र (ख) सूर्य (ग) मंगल (घ) शनि।

(४) प्रश्न—सूर्य ······· राशि का उच्च होता है।
उत्तर—(क) मेष (ख) सिंह (ग) वृश्चिक (घ) मीन।

(५) प्रश्न—सिंह ······· राशि का स्वामी है।
उत्तर—(क) मंगल (ख) बुध (ग) सूर्य (घ) गुरु।

(६) प्रश्न—ग्रह अपने उच्च रहने पर ······· देता है।
उत्तर—(क) अशुभफल (ख) शून्य फल (ग) शुभफल (घ) मध्यम फल।

(७) प्रश्न—कालपुरुष के ······· में कर्क राशि पड़ता है।
उत्तर—(क) कटि (ख) लिङ्ग (ग) हृदय (घ) घुटना।

(८) प्रश्न—वृष राशि का ······· वर्ण होता है।
उत्तर—(क) रक्त (ख) पीत (ग) कृष्ण (घ) श्वेत।

(९) प्रश्न—एक द्रेष्काण में ······· होते हैं।
उत्तर—(क) ५ अंश (ख) १५ अंश (ग) १० अंश (घ) ४-२० अंश।

(१०) प्रश्न—मकर राशि का नवमांश ······· से प्रारम्भ होता है।
उत्तर—(क) मेष से (ख) तुला से (ग) मकर से (घ) मीन से।

(११) प्रश्न—द्वादशांश की गणना ······· की जाती है।
उत्तर—(क) अपने से पञ्चम राशि से (ख) अपने से सप्तम राशि से (ग) अपने से अष्टम राशि से (घ) अपने ही राशि से।

(१२) प्रश्न—केन्द्र से अग्रिम भाव को ······· कहते हैं।
उत्तर—(क) केन्द्र (ख) त्रिकोण (ग) पणफर (घ) आपोक्लिम।

(१३) प्रश्न—लग्न से तृतीय भाव को ······· कहते हैं।
उत्तर—(क) धनभाव (ख) सहोदर (ग) कर्म (घ) भाग्य।

(१४) प्रश्न—ग्रह ······· भाव को पूर्ण देखते हैं।
उत्तर—(क) प्रथम (ख) चतुर्थ (ग) सप्तम (घ) दशम।

(१५) प्रश्न :—लग्न से ······· विचार किया जाता है।
उत्तर—(क) नौकर का (ख) बन्धु-बान्धव का (ग) शरीर का (घ) उपदेश का।

(१६) **प्रश्न**— ······· स्थान को मारक स्थान कहते हैं।

उत्तर—(क) चतुर्थ (ख) अष्टम (ग) द्वितीय (घ) पञ्चम।

(१७) **प्रश्न**—षष्ठेश लग्न या अष्टम हो तो शरीर में ······· होता है।

उत्तर—(क) घाव (ख) ज्वर (ग) दाग (घ) सर्दी।

(१८) **प्रश्न**—सप्तमेश शुभ ग्रह की राशि में शुक्र अपने उच्च या गृह में हो तो ······· जातक का विवाह होता है।

उत्तर—(क) ७ वर्ष में (ख) ९ वर्ष में (ग) १५ वर्ष में (घ) १७ वर्ष में।

(१९) **प्रश्न**—लग्नेश नीच राशि में हो और द्वितीयेश अष्टम भाव में हो तो ······· स्त्री का नाश होता है।

उत्तर—(क) १० वर्ष में (ख) १३ वर्ष में (ग) १८ वर्ष में (घ) २० वर्ष में।

(२०) **प्रश्न**—लग्नेश उच्च में, चन्द्र एकादश भाव में हो और गुरु के अष्टम भाव में रहने से जातक ······· होता है।

उत्तर—(क) हीनायु (ख) मध्यमायु (ग) दीर्घायु (घ) अल्पायु।

(२१) **प्रश्न**—षष्ठेश के साथ लग्नेश के भाग्य भाव में रहने पर पिता-पुत्र में परस्पर ······· होती है।

उत्तर—(क) मित्रता (ख) शत्रुता (ग) समता (घ) दुर्जनता।

(२२) **प्रश्न**—यदि १०, ११ भाव में पाप ग्रह हो तो जातक ······· होता है।

उत्तर—(क) उत्तम कार्यकर्ता (ख) नीच कार्यकर्ता (ग) अधम कार्यकर्ता (घ) समाजसेवक।

(२३) **प्रश्न**—उपपद से द्वितीय स्थान में केतु और शुक्र हो तो जातक की स्त्री को ······· रोग होता है।

उत्तर—(क) श्वेतप्रदर (ख) रक्तप्रदर (ग) रक्तविकार (घ) ज्वर।

(२४) **प्रश्न**—पद से ६ठे भाव में पाप ग्रह हो, उस पर शुभ ग्रह से योग या दृष्टि नहीं हो तो जातक ······· होता है।

उत्तर—(क) कृपण (ख) दानी (ग) चोर (घ) साधु।

(२५) **प्रश्न**—दशम भाव का कारकग्रह ······· है।

उत्तर—(क) सूर्य (ख) बुध (ग) भौम (घ) शनि।

(२६) **प्रश्न**—बली बुध कारकांश में हो तो जातक ······· होता है।

उत्तर—(क) कलाकार (ख) शिल्प विद्या में निपुण (ग) नाटककार (घ) संगीतकार।

(२७) **प्रश्न**—सप्तमेश दशम भाव में स्वोच्च का हो और दशमेश नवमेश से युत हो तो ······· योग होता है।

उत्तर—(क) मृदंग (ख) चामर (ग) शंख (घ) श्रीनाथ।

(२८) प्रश्न—लग्नेश बलवान् हो और भाग्येश स्वमूल, त्रिकोण, उच्च या स्वराशि में होकर केन्द्र में हो तो ······· योग होता है।

उत्तर—(क) कुसुम (ख) कलानिधि (ग) लक्ष्मी (घ) कल्पद्रुम।

(२९) प्रश्न—पद में शुभ ग्रह तथा चन्द्र हो, द्वितीय भाव में गुरु हो और उन पर उच्चस्थ ग्रह की दृष्टि हो तो ······· होता है।

उत्तर—(क) दरिद्र (ख) राजयोग (ग) भिक्षुक (घ) प्रवज्या।

(३०) प्रश्न—रवि और चन्द्रमा में जो बली हो वह यदि गुरु के द्रेष्काण में हो तो जातक ······· आया है।

उत्तर—(क) चन्द्रलोक से (ख) देवलोक से (ग) मर्त्यलोक से (घ) यमलोक से।

(३१) प्रश्न—ग्रहों की दीप्तादि ······· अवस्थायें होती हैं।

उत्तर—(क) नव (ख) पञ्च (ग) सप्त (घ) दश।

(३२) प्रश्न—विंशोत्तरीय गणनाक्रम में सूर्य की वर्षसंख्या ······· है।

उत्तर—(क) १० (ख) ८ (ग) ६ (घ) ९।

(३३) प्रश्न—कर्क लग्न और उसी के द्वादशांश में जिसका जन्म है, उसके लिए ······· दशा लगानी चाहिए।

उत्तर—(क) विंशोत्तरी (ख) योगिनी (ग) पञ्चोत्तरी (घ) अष्टोत्तरी।

(३४) प्रश्न—विंशोत्तरी दशा में मंगल दशा के अनन्तर ······· दशा आती है।

उत्तर—(क) बुध (ख) शुक्र (ग) राहु (घ) शनि।

(३५) प्रश्न—अनिष्ट सूर्य दोषशमनार्थ होमहेतु समिधा ······· है।

उत्तर—(क) पलासु (ख) आक (ग) खैर (घ) गूलर।

(३६) प्रश्न—सूर्य के अनिष्ट होने पर सूर्यजपसंख्या ······· है।

उत्तर—(क) १० हजार (ख) ५ हजार (ग) ७ हजार (घ) १२ हजार।

(३७) प्रश्न—अनिष्ट चन्द्रध्यान हेतु ······· मूर्त्ति का निर्माण करें।

उत्तर—(क) ताम्र से (ख) काष्ठ से (ग) स्फटिक से (घ) लोहे से।

(३८) प्रश्न—श्राद्धाधिकारी अपने मृत पितरों का श्राद्ध नहीं करता है तो वह मृत मनुष्य प्रेत होकर ······· है।

उत्तर—(क) धन (ख) पुत्र (ग) शाप (घ) आशीर्वाद।

(३९) प्रश्न—यदि शनि के नवांशगत नीच का सूर्य पञ्चम भाव में हो और उसके आगे-पीछे पाप ग्रह हो तो ······· से सन्तान का अभाव होता है।

उत्तर—(क) मातृशाप से (ख) पितृशाप से (ग) भ्रातृशाप से (घ) कुलदेव के शाप से।

(४०) प्रश्न—जिस स्त्री के कपाल में त्रिशूल सदृश चिह्न हो, वह ······· होती है।

उत्तर—(क) नौकरानी (ख) राजरानी (ग) अभागिनी (घ) पटरानी।

(४१) प्रश्न—जिस स्त्री के वाम हाथ में तराजू-सदृश चिह्न हो, वह ····· स्त्री होती है।

उत्तर—(क) ब्राह्मण की (ख) शूद्र की (ग) बनियाँ की (घ) अन्त्य वर्ण की।

(४२) प्रश्न—लग्न से सप्तम भाव से ······· विचार किया जाता है।

उत्तर—(क) पुत्र का (ख) धन का (ग) पत्नी का (घ) भाई का।

(४३) प्रश्न—शनि से अष्टम भाव से ····· विचार किया जाता है।

उत्तर—(क) राज्य का (ख) रोग का (ग) आयु का (घ) धर्म का।

(४४) प्रश्न—दृष्टिचक्र देखने पर स्पष्ट ज्ञान होता है प्रत्येक राशि की दृष्टि ······· पर होती है।

उत्तर—(क) एक राशि (ख) चार राशि (ग) तीन राशि (घ) पाँच राशि।

(४५) प्रश्न—जन्म से ······· वर्षपर्यन्त बालारिष्ट रहता है, अत: तब तक आयुर्दाय का विचार नहीं करना चाहिए।

उत्तर—(क) ५ वर्ष (ख) १२ वर्ष (ग) २० वर्ष (घ) २४ वर्ष।

(४६) प्रश्न—चन्द्रमा पर ३ पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो उस जातक की माता ······· होती है।

उत्तर—(क) विदुषी (ख) प्रगल्भा (ग) अल्पायु (घ) दीर्घायु।

(४७) प्रश्न—लग्न में गुरु तथा द्वितीय में शनि, रवि, भौम, बुध हो तो उस जातक के ······· पिता का मरण होता है।

उत्तर—(क) अध्ययनसमय में (ख) यज्ञोपवीत के समय में (ग) विवाह के समय में (घ) धार्मिक कार्य के समय में।

(४८) प्रश्न—शरीर, स्वरूप, वर्ण, सुख, दु:ख, स्वभाव ये सब विषय ······· देखना चाहिए।

उत्तर—(क) चतुर्थ भाव से (ख) लग्न से (ग) पञ्चम से (घ) सप्तम से।

(४९) प्रश्न—लग्नेश पापयुक्त हो अथवा ६, ८, १२ स्थान में हो तो जातक को ······· होता है।

उत्तर—(क) सुख (ख) रोग (ग) क्लेश (घ) धन।

(५०) प्रश्न—यदि मंगल द्वादशेश अथवा गुरु से युक्त हो और तृतीय भाव में चन्द्र हो तो जातक के सहोदर भाई की संख्या ······· जाननी चाहिए।

उत्तर—(क) ३ (ख) ५ (ग) ७ (घ) ९।

(५१) प्रश्न—यदि लग्न में षष्ठेश और अष्टमेश दोनों शुक्र से युक्त हों तो ······· जातक को रोगोत्पत्ति होती है।

उत्तर—(क) शत्रु के द्वारा (ख) मित्र के द्वारा (ग) स्त्री के द्वारा (घ) अन्य व्यक्ति के द्वारा।

(५२) प्रश्न—लग्न से ६, ८ में सूर्य हो और उससे १२वें में चन्द्रमा हो तो ५ अथवा ९ वर्ष में जातक को ······ का भय जानना चाहिए।

उत्तर—(क) अग्नि (ख) वायु (ग) जल (घ) रोग।

(५३) प्रश्न—अष्टमेश केन्द्र में हो और लग्नेश निर्वल हो तो ······ वर्षपर्यन्त जातक की आयु होती है।

उत्तर—(क) २० से २५ (ख) २० से २७ (ग) २० से ३२ (घ) २० से ३५।

(५४) प्रश्न—पुरुष ग्रह प्रथम द्रेष्काण में, नपुंसक ग्रह द्वितीय द्रेष्काण में और स्त्री ग्रह तृतीय द्रेष्काण में रहने पर जातक को ······ बल प्रदान करते हैं।

उत्तर—(क) १ चरण (ख) २ चरण (ग) ३ चरण (घ) ४ चरण।

(५५) प्रश्न—मध्य रात्रि और इष्टकाल के अन्तर को ······ कहा जाता है।

उत्तर—(क) उन्नत काल (ख) नतकाल (ग) इष्ट काल (घ) अन्त्य काल।

(५६) प्रश्न—ग्रह पर शुभ ग्रहों की दृष्टि योग के चतुर्थांश बलैक्य में जोड़ने से तथा पाप ग्रहों की दृष्टि के चतुर्थांश घटाने से ग्रहों के ······ ज्ञान होता है।

उत्तर—(क) बल का (ख) रश्मि का (ग) दृष्टि का (घ) परिधि का।

(५७) प्रश्न—लग्न से या पद से अथवा उपपद से नवम भाव में शनि, चन्द्र, बुध रहने पर जातक ······ हीन होता है।

उत्तर—(क) धन (ख) विद्या (ग) सन्तान (घ) यश।

(५८) प्रश्न—पद से ३ में शनि राहु हो तो जातक के ······ का मरण होता है।

उत्तर—(क) मित्र (ख) पुत्र (ग) छोटे भाई (घ) बड़े भाई।

(५९) प्रश्न—कारकांश से षष्ठ में पाप ग्रह हो तो जातक ······ कर्ता होता है।

उत्तर—(क) काव्य (ख) गीत (ग) कृषि (घ) नाटक।

(६०) प्रश्न—चन्द्र और शुक्र परस्पर दृष्ट तृतीय-एकादश स्थान में हों तो ······ योग होता है।

उत्तर—(क) कुसुम (ख) दरिद्र (ग) राज (घ) धनाढ्य।

(६१) प्रश्न—ब्रह्मलोक वर्ष में उत्पन्न जातक अश्वमेधादि यज्ञ कर ······ पद प्राप्त करता है।

उत्तर—(क) राज (ख) मन्त्री (ग) इन्द्र (घ) नीच।

(६२) प्रश्न—मारकेश से युक्त-दृष्ट लग्नेश षष्ठ में और षष्ठेश लग्न में हो तो जातक ······ हीन होता है।

उत्तर—(क) विद्या (ख) ज्ञान (ग) धन (घ) जन।

(६३) प्रश्न—गीध, उल्लू, शुक, काक तथा साँप की परमायु ······ वर्ष की होती है।

उत्तर—(क) १००० (ख) ३००० (ग) ४००० (घ) ५००।

(६४) प्रश्न—कर्क के द्वितीय, तृतीय, वृश्चिक के प्रथम, द्वितीय और मीन का प्रथम द्रेष्काण—इन सब द्रेष्काण को ······· द्रेष्काण कहते हैं।

उत्तर—(क) पक्षी (ख) खग (ग) सर्प (घ) गरुड़।

(६५) प्रश्न—जिससे १०वें स्थान में राहु हो उसकी दशा में ······· की यात्रा होती है।

उत्तर—(क) विदेश (ख) स्वदेश (ग) पुण्य तीर्थों (घ) कुत्सित देशों।

(६६) प्रश्न—चन्द्रमा यदि द्वितीयेश, सप्तमेश या षष्ठेश हो तो शरीर में ······· होता है।

उत्तर—(क) जलन (ख) दाग (ग) कष्ट (घ) ज्वर।

(६७) प्रश्न—यदि शनि की दशा या अन्तर्दशा आती है तो शनिजन्य कष्ट के निवारणार्थ शनि का जप किया जाता है, जिसकी जप संख्या ······· है।

उत्तर—(क) १५ हजार (ख) २० हजार (ग) २३ हजार (घ) २५ हजार।

(६८) प्रश्न—शुक्र यदि नीच में या अस्त हो अथवा ६, ८, १२ स्थान में हो तो ······· कष्ट होता है।

उत्तर—(क) पुत्र को (ख) कन्या को (ग) स्त्री को (घ) मित्र को।

(६९) प्रश्न—योगिनी दशा क्रम में शंकटा का ······· वर्ष है।

उत्तर—(क) ५ (ख) ७ (ग) ८ (घ) ९।

(७०) प्रश्न—योगिनी दशा क्रम में पाँचवीं ······· दशा है।

उत्तर—(क) पिंगला (ख) मंगला (ग) भद्रिका (घ) सिद्धा।

(७१) प्रश्न—संक्रान्तिजन्य दोषशान्त्यर्थ ······· करना चाहिए।

उत्तर—(क) जप (ख) पूजन (ग) नवग्रहयज्ञ (घ) होम।

(७२) प्रश्न—यदि मंगलवार को सूर्य संक्रान्ति हो तो उस संक्रान्ति का नाम ······ है।

उत्तर—(क) घोरा (ख) ध्वाँक्षी (ग) महोदरी (घ) मन्दा।

(७३) प्रश्न—यदि किसी का जन्म सूर्यग्रहण के समय हो तो अनिष्ट होता है। अनिष्टशान्त्यर्थ ······· की सूर्यप्रतिमा बनाकर पूजन करना चाहिए।

उत्तर—(क) सुवर्ण (ख) चाँदी (ग) लोहे (घ) काँसे।

(७४) प्रश्न—अनिष्ट राहु-शान्त्यर्थ ······· रत्न धारण करना चाहिए।

उत्तर—(क) पोखराज (ख) नीलम (ग) गोमेद (घ) मूँगा।

●

अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

- **अमरकोष**। 'रत्नप्रभा' संस्कृत-हिन्दीटीका सहित। डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**। विमला-चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दीव्याख्या। कृष्णमणि त्रिपाठी
- **उत्तररामचरितम्**। 'रमा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। रमाकान्त त्रिपाठी
- **किरातार्जुनीयम्**। मल्लिनाथ कृत संस्कृत-हिन्दीव्याख्यासहित। बदरीनारायणमिश्र
- **पञ्चतन्त्रम्**। 'अभिनवराजलक्ष्मी' संस्कृत-हिन्दीटीका सहित। सम्पादक-बालशास्त्री व्याख्याकार-सीतारामशास्त्री एवं गुरुप्रसाद शास्त्री।
- **मृच्छकटिकम्**। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या। जगदीशचन्द्र मिश्र
- **मेघदूतम्**। विस्तृत भूमिका, पदच्छेद, अन्वय, अनुवाद, संस्कृत हिन्दीव्याख्या, व्याकरण टिप्पणी सहित। व्याख्याकार.डॉ० दयाशंकर शास्त्री
- **रघुवंशम्**। 'सञ्जीविनी' तथा 'चन्द्रकला' हिन्दीव्याख्या। श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
- **स्वप्नवासवदत्तम्**। 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या। शेषराजशर्मा 'रेग्मी'
- **हितोपदेश**। 'अभिनवराजलक्ष्मी' संस्कृत-हिन्दीटीका सहित। सम्पादक-बालशास्त्री व्याख्याकार-गुरुप्रसाद शास्त्री एवं सीताराम शास्त्री ।
- **कालिदास ग्रंथावली**। रामतेजपाण्डेयकृत हिन्दीटीका। सम्पा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

संस्कृत विषय से सम्बन्धित सभी प्रतियोगिता परीक्षा में निश्चित सफलता हेतु संस्कृत व्याकरण का सर्वाधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक संस्करण

श्रीमद्विद्वद्वर-वरदराजाचार्यप्रणीता

लघुसिद्धान्तकौमुदी

श्रीधरमुखोल्लासिनी-हिन्दी-व्याख्यासमन्विता
(पदच्छेद, समास, अनुवृत्तिक्रम, सूत्रार्थ, भावार्थों का स्फोरण, विस्तृत हिन्दीव्याख्या, प्रयोगसिद्धि के साथ उदाहरण एवं अभ्यासार्थ प्रश्नावली सहित)

व्याख्याकार:
गोविन्द प्रसाद शर्मा (गोविन्दाचार्य)

मूल्य-200 | छात्र संस्करण | पृष्ठसंख्या-1248

प्राप्ति स्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाऊस
4697/2, 21-ए, अंसारी रोड,
दरियागंज नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : (011) 23286537

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के - 37/117 गोपाल मंदिर लेन
वाराणसी-221001
दूरभाष : (0542) 2335263